* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *
कल्याण
व्रतपर्वोत्सव-अङ्क
वर्ष ७८
संख्या १
गीताप्रेस, गोरखपुर

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,५०,०००)

'हरि-तोषन यह सुभ ब्रत आचरु'

जौ मन भज्यो चहै हरि-सुरतरु।
तौ तज बिषय-बिकार, सार भ्रुज, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु॥
सम, संतोष, बिचार बिमल अति, सतसंगति, ये चारि दृढ़ करि धरु।
काम-क्रोध अरु लोभ-मोह-मद, राग-द्वेष निसेष करि परिहरु॥
श्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु।
नयननि निरखि कृपा-समुद्र हरि अग-जग-रूप भूप सीताबरु॥
इहै भगति, बैराग्य-ग्यान यह, हरि-तोषन यह सुभ ब्रत आचरु।
तुलसिदास सिव-मत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिंन डरु॥

अर्थात् हे मन! यदि तू भगवद्रूपी कल्पवृक्षका सेवन करना चाहता है तो विषयोंके विकारको छोड़कर सार-रूप श्रीराम-नामका भजन कर और जो मैं कहता हूँ उसे अब भी कर (अभीतक कुछ बिगड़ा नहीं)। समता, संतोष, निर्मल विवेक और सत्संग—इन चारोंको दृढ़तापूर्वक धारण कर। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान एवं राग और द्वेषको बिलकुल ही छोड़ दे, इनका लेशमात्र भी न रहे। कानोंसे भगवत्कथा सुन, मुखसे (राम-) नाम जपा कर, हृदयमें श्रीहरिका ध्यान किया कर, मस्तकसे प्रणाम तथा हाथोंसे भगवान्‌की सेवा किया कर। नेत्रोंसे कृपासागर चराचर विश्वमय महाराज जानकीवल्लभ रामचन्द्रजीके दर्शन किया कर। यही भक्ति है, यही वैराग्य है, यही ज्ञान है और इसीसे भगवान् प्रसन्न होते हैं, अतएव तू इसी शुभ व्रतका आचरण कर। हे तुलसीदास! यही शिवजीका बतलाया हुआ मार्ग है। इस (कल्याणमय) मार्गपर चलनेसे स्वप्नमें भी भय नहीं रहता (मनुष्य परमात्माको प्राप्तकर अभय हो जाता है)।

इस अङ्कका मूल्य १३० रु० (सजिल्द १५० रु०)

वार्षिक शुल्क*
भारतमें १३० रु०
सजिल्द १५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Air Mail)
US$ 13 (Sea Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क*
भारतमें ६५० रु०
सजिल्द ७५० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$125 (Air Mail)
US$ 65 (Sea Mail)

* कृपया नियम देखें।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
गोबिन्दभवन-कार्यालयके लिये केशोराम अग्रवालद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित
website : www.gitapress.org | e-mail : booksales@gitapress.org

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्यों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ७८वें वर्ष—सन् २००४ का यह विशेषाङ्क **'व्रतपर्वोत्सव-अङ्क'** आप लोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४७२ पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग दो माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) यहाँ भेज देना चाहिये। जिससे जाँचकर आपके सुविधानुसार राशिकी उचित व्यवस्था की जा सके। सम्भव हो तो वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये। ऐसा करके आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ-साथ 'कल्याण' के पावन प्रचारमें सहयोगी भी हो सकेंगे।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा *अपनी सदस्य-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये।* पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पिन-कोड आवश्यक है। अतः अपने लिफाफेपर छपा अपना पता जाँच लेना चाहिये।

४-*'कल्याण'* एवं *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

'कल्याण' के उपलब्ध पुराने विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य(रु०)
६	श्रीकृष्णाङ्क	१००	२५	सं० स्कन्दपुराणाङ्क	१५०	४४-४५	नरसिंह-पुराणम्	६०
७	ईश्वराङ्क	९०	२६	भक्त-चरिताङ्क	१२०	४४-४५	अग्निपुराण	११०
८	शिवाङ्क	१००	२७	बालक-अङ्क	११०	४८	श्रीगणेश-अङ्क	७५
९	शक्ति-अङ्क	१००	२८	सं० नारदपुराण	१००	४९	हनुमान-अङ्क	७०
१०	योगाङ्क	९०	३०	सत्कथा-अङ्क	१००	५१	सं० श्रीवराहपुराण	६०
१२	संत-अङ्क	१२५	३१	तीर्थाङ्क	१००	५३	सूर्याङ्क	६०
१५	साधनाङ्क	१००	३४	सं० देवीभागवत (मोटा टाइप)	१३०	६६	सं० भविष्य-पुराण	९०
१६	भागवताङ्क	१३०	३५	सं० योगवासिष्ठाङ्क	९०	६७	शिवोपासनाङ्क	७५
१८	सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क	६५	३६	सं० शिवपुराण (बड़ा टाइप)	११०	६८	रामभक्ति-अङ्क	६५
			३७	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	११०	६९	गो-सेवा-अङ्क	७५
१९	सं० पद्मपुराण	१२०	३९	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	८५	७२	भगवल्लीला-अङ्क	६५
२१	सं० मार्कण्डेयपुराण	५५				७४	सं० गरुडपुराणाङ्क	९०
२१	सं० ब्रह्मपुराण	७०	४३	परलोक और पुनर्जन्माङ्क	१००	७५	आरोग्य-अङ्क	८०
२२	नारी-अङ्क	१००	४४-४५	गर्गसंहिता [भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन]	८०	७६	नीतिसार-अङ्क	८०
२३	उपनिषद्-अङ्क	१००				७७	भगवत्प्रेम-अङ्क (११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	१००
२४	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	१२०						

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-विक्री-विभागसे प्राप्य हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

॥ श्रीहरिः ॥

'व्रतपर्वोत्सव-अङ्क' की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

व्रतपर्वोत्सव-मीमांसा

विषय	पृष्ठ-संख्या

भारतीय संस्कृतिके मुख्य पर्व, उत्सव एवं व्रत

बारह महीनोंके व्रतपर्वोत्सव

आञ्चलिक व्रतपर्वोत्सव

चित्र-सूची

(रंगीन-चित्र)

(रेखा-चित्र)

विषय	पृष्ठ-संख्या

विषय	पृष्ठ-संख्या

आनन्दकन्द भगवान् बालकृष्णका झूलनोत्सव
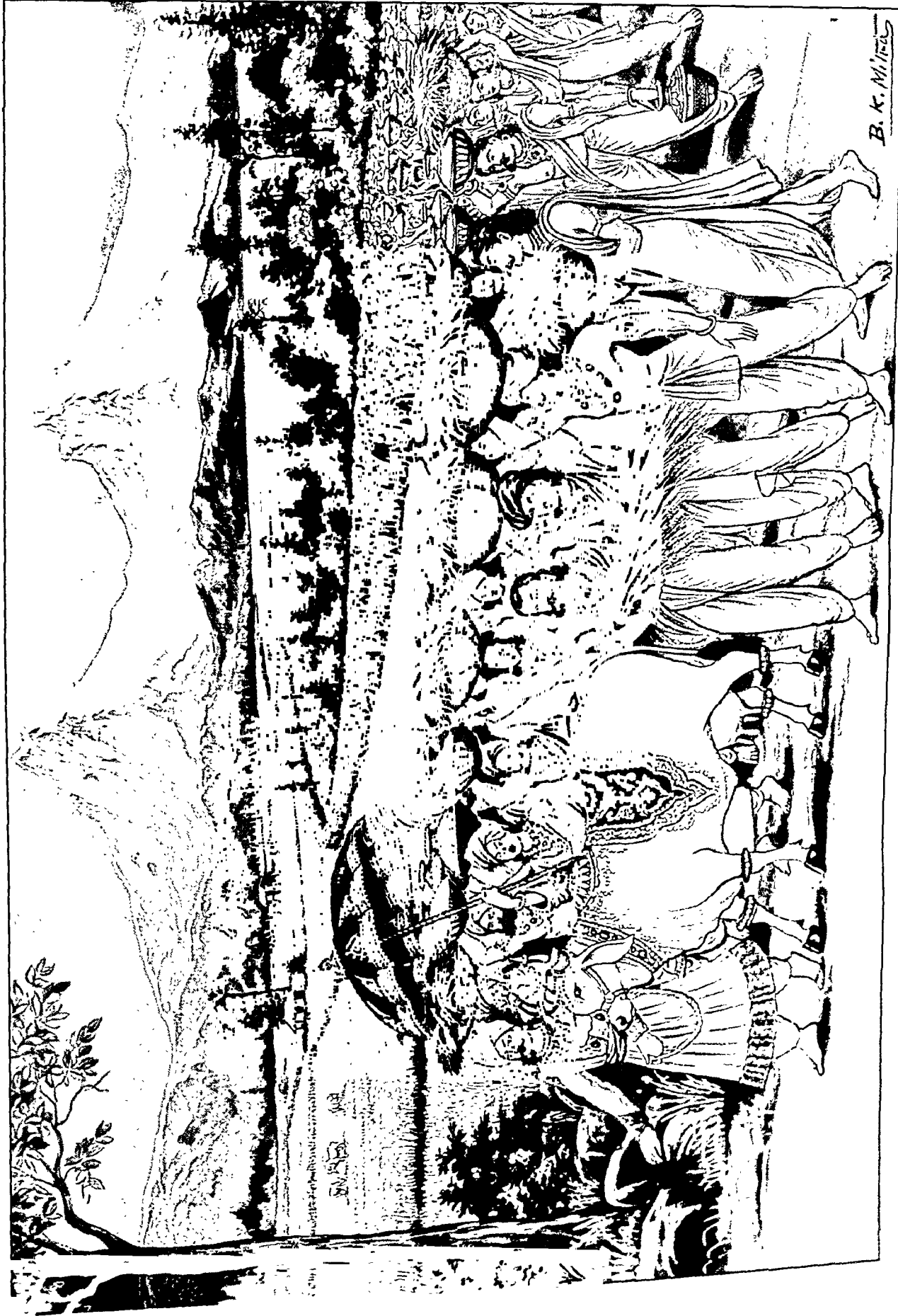
गोपूजनोत्सवकी शोभायात्रा
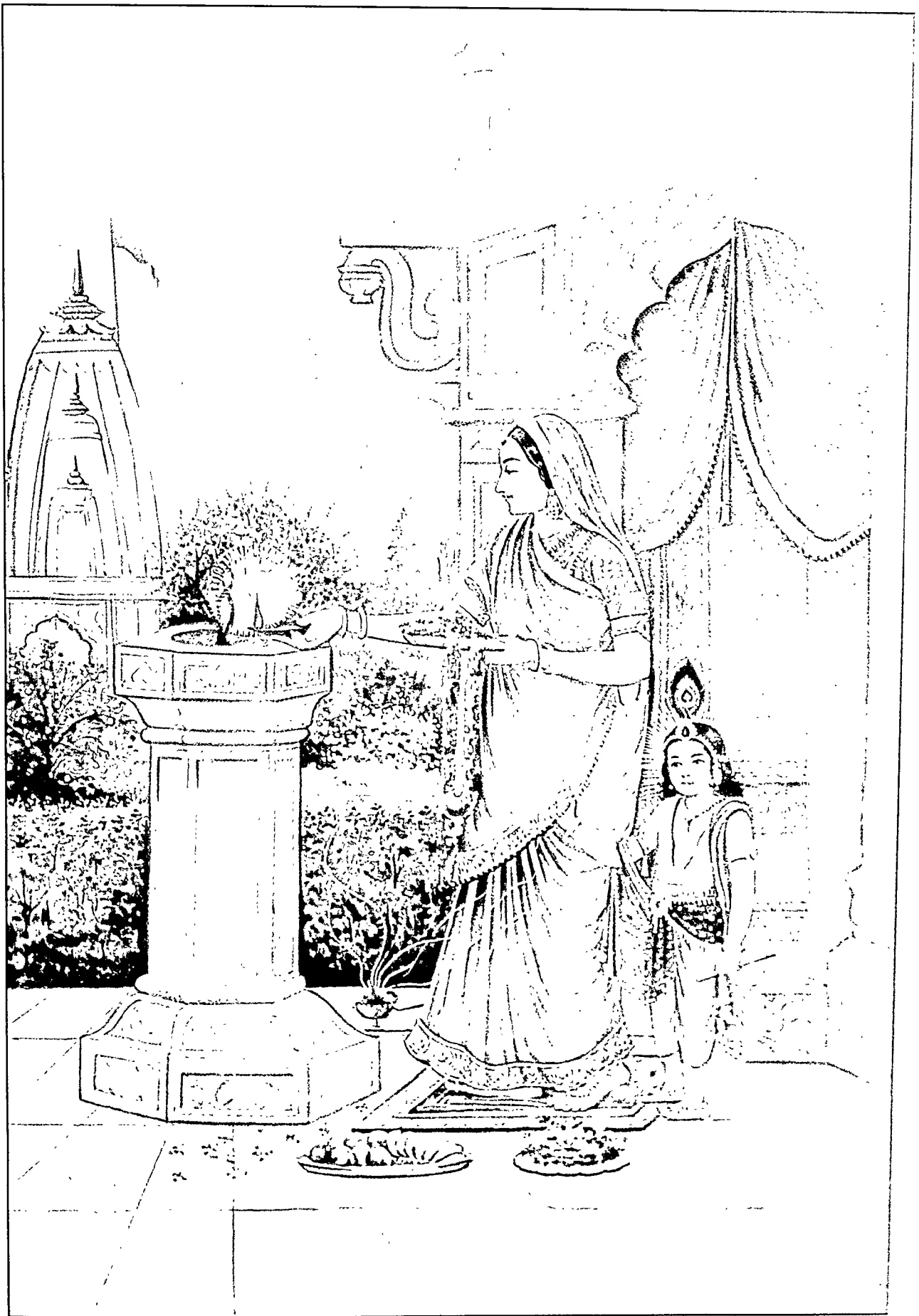
व्रत-पर्वपर तुलसी-पूजन

व्रताधिपति भगवान् विष्णुका नामसंकीर्तन-महोत्सव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

कृष्णव्रताः कृष्णमनुस्मरन्तो रात्रौ च कृष्णं पुनरुत्थिता ये।
ते कृष्णदेहाः प्रविशन्ति कृष्णमाज्यं यथा मन्त्रहुतं हुताशे॥

वर्ष ७८ | गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०६०, श्रीकृष्ण-सं० ५२२९, जनवरी २००४ ई० | संख्या १

पूर्ण संख्या ९२६

महानामसंकीर्तन-महोत्सव

दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं ते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा। भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमत्कीर्तनदर्शनाय॥
प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव॥

(श्रीमद्भा०, माहात्म्य ६। ८५-८६)

भगवान् श्रीहरिको प्रसन्न देखकर देवर्षि नारदजीने उन्हें एक विशाल सिंहासनपर वैठा दिया और सब लोग उनके सामने संकीर्तन करने लगे। उस कीर्तनको देखनेके लिये श्रीपार्वतीजीके सहित महादेवजी और ब्रह्माजी भी आये। कीर्तन आरम्भ हुआ। प्रह्लादजी तो चञ्चलगति (फुर्तीले) होनेके कारण करताल वजाने लगे, उद्धवजीने झाँझें उठा लीं, देवर्षि नारद वीणाकी ध्वनि करने लगे, स्वर-विज्ञान (गान-विद्या)-में कुशल होनेके कारण अर्जुन राग अलापने लगे, इन्द्रने मृदङ्ग बजाना आरम्भ किया, सनकादि बीच-बीचमें जयघोष करने लगे और इन सबके आगे शुकदेवजी तरह-तरहकी सरस अङ्गभङ्गी करके भाव बताने लगे।
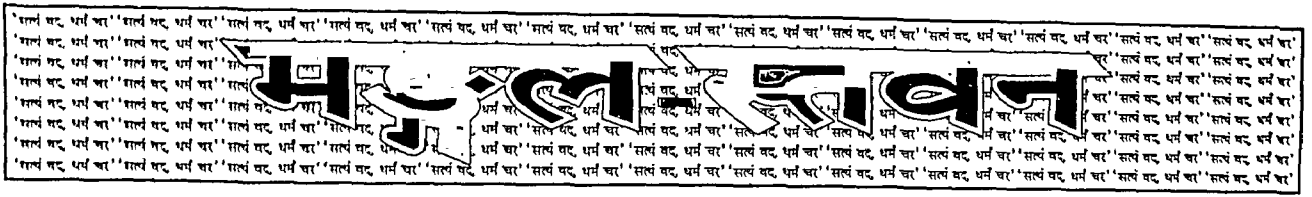
वैदिक व्रतानुशंसा

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥

व्रतोंकी रक्षा करनेवाले हे अग्निदेव! मैं व्रताचरण करूँगा, आप मुझे व्रतोंके आचरणकी शक्ति प्रदान कीजिये। मेरा यह व्रताचरण निर्विघ्न सम्पन्न हो जाय। मैं असत्यसे दूर रहकर सत्यका ही आचरण करूँ। ऐसा आशीर्वाद मुझे प्रदान कीजिये (यजु० १।५)।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

व्रत धारण करनेसे मनुष्य दीक्षित होता है। दीक्षासे उसे दाक्षिण्य (दक्षता, निपुणता) प्राप्त होता है। दक्षताकी प्राप्तिसे श्रद्धाका भाव जाग्रत् होता है और श्रद्धासे ही सत्यस्वरूप ब्रह्मकी प्राप्ति होती है (यजु० १९।३०)।

व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहीह।
तं त्वा वयं जातवेदः समिद्धं प्रजावन्त उप सदेम सर्वे॥

व्रतोंके स्वामी हे अग्निदेव! आप व्रतानुष्ठानके द्वारा सम्यक् रूपसे प्रसन्न होते हैं। सर्वदा प्रसन्न मनवाले होकर आप हमारे घरमें प्रकाशित होनेकी कृपा करें। इस प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न तथा सम्यक् रूपसे प्रकाशमान हे जातवेद! पुत्र-पौत्रादिसे युक्त हम सभी आपकी उपासनामें लगे रहें (अथर्व० ७।७४।४)।

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा।
त्वं यज्ञेष्वीड्यः॥

हे अग्निदेव! आप व्रतका पालन-रक्षण करनेवाले हैं। हे दीप्तिमान् देव! आप सभी मनुष्योंमें विद्यमान रहते हैं। आप सभी यज्ञों (कर्मों)-में विराजमान रहते हैं। आप प्रशंसनीय हैं, स्तुत्य हैं (ऋग्वेद ८।११।१)।

'अन्नं न निन्द्यात्। तद् व्रतम्।' 'अन्नं न परिचक्षीत। तद् व्रतम्।' 'अन्नं बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्।' 'न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत। तद् व्रतम्।'

'अन्नकी निन्दा न करे, वह व्रत है।' 'अन्नकी अवहेलना न करे, वह एक व्रत है।' 'अन्नको बढ़ाये, वह एक व्रत है।' 'अपने घरपर ठहरनेके लिये आये हुए किसी भी अतिथिको प्रतिकूल उत्तर न दे, वह एक व्रत है' (तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली अनु० ७—१०)।

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्॥

सत्य ही विजयी होता है, झूठ नहीं; क्योंकि वह देवयान नामक मार्ग सत्यसे परिपूर्ण है। जिससे पूर्णकाम ऋषिलोग (वहाँ) गमन करते हैं, जहाँ वह सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्माका उत्कृष्ट धाम है (मुण्डक० ३।१।६)।
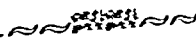
व्रत-वैभव

व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा नृप।
देवादयो भवन्त्येव तेषां प्रीता न संशयः॥

(भविष्यपुराण)

व्रताचरण, उपवास, नियमोंके परिपालन तथा विविध दानोंसे व्रतियोंपर सभी देवता, ऋषि-मुनि तथा संसारके प्राणी निश्चित प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं।

उपवासैस्तथा तुल्यं तपः कर्म न विद्यते॥
दिव्यं वर्षसहस्रं तु विश्वामित्रेण धीमता।
तपसाक्रान्तमेकेन भक्तेन स च विप्रत्वमागतः॥
उपोष्य विधिवद्देवांस्त्रिदिवं प्रतिपेदिरे।
ऋषयश्च परां सिद्धिमुपवासैरवाप्नुयुः॥
ये कुर्वन्ति उपवासांश्च विधानेन शुभान्विताः।
न यान्ति ते मुनिश्रेष्ठ नरकान् भीमदारुणान्॥

(पद्मपुराण)

उपवासके समान कोई तपश्चर्या नहीं है। महामति महर्षि विश्वामित्रजीने दिव्य हजार वर्षोंतक महान् तप किया और एकभुक्तव्रतका आचरण किया, उसीके प्रभावसे उन्होंने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया, उन्होंने व्रतोपवासद्वारा विविध देवताओंकी उपासना कर उत्तम स्वर्गलोक प्राप्त किया। ऋषियोंने भी उपवासोंके परिपालनसे परम सिद्धि प्राप्त की। जो कल्याणकामी विधिपूर्वक व्रतोपवासोंका परिपालन करते हैं, वे दारुण तथा भयंकर नरकोंमें नहीं जाते।

व्रतोपवासैर्यैर्विष्णुर्नान्यजन्मनि तोषितः।
ते नरा मुनिशार्दूल ग्रहरोगादिबाधिनः॥

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

जिन्होंने पूर्वजन्ममें व्रतोपवासोंके द्वारा भगवान् विष्णुको प्रसन्न नहीं किया, वे मनुष्य ही इस जन्ममें ग्रह, रोग, व्याधिकष्ट आदिसे पीडित रहते हैं।

न पूजितो भूतपतिः पुरा यै-
र्व्रतं न चीर्णं न च सत्यमुक्तम्।
दारिद्र्यशोकामयदुःखदग्धाः
प्रायोऽनुशोचन्ति त एव मर्त्याः॥

(स्कन्दपुराण)

जिन्होंने पूर्वमें भूतोंके अधिपति भगवान् शंकरका पूजन नहीं किया, व्रतपालन नहीं किया, सत्य वचनका पालन नहीं किया, वे ही मनुष्य दरिद्रता, शोक, रोग तथा दुःखोंसे दग्ध होते हैं तथा पश्चात्तापको प्राप्त होते हैं।

ये सर्वदा व्रतपराश्च शिवं स्मरन्ति
तेषां न दृष्टिपथमप्युपयान्ति दूताः।
याम्या महाभयकृतोऽपि च पाशहस्ताः
दंष्ट्राकरालवदना विकटोग्रवेषा॥

(स्कन्दपुराण)

जो सदा ही व्रतपरायण रहते हैं और भगवान् शिवका स्मरण करते रहते हैं, उनके सामने महान् भय उत्पन्न करनेवाले, हाथमें पाश धारण किये हुए, भयंकर दाढ़ोंसे युक्त मुखवाले तथा उग्र वेशवाले यमराजके विकट दूत नहीं आते।

अर्चयन्ति महादेवं यज्ञदानसमाधिभिः॥
व्रतोपवासनियमैर्होमैः स्वाध्यायतर्पणैः।
तेषां वै रुद्रसायुज्यं सामीप्यञ्चातिदुर्लभम्॥
सलोकतां च सारूप्यं जायते तत्प्रसादतः।

(कूर्मपुराण)

जो व्रत, उपवास, नियम, होम, स्वाध्याय, तर्पण, यज्ञ, दान तथा ध्यान-समाधिके द्वारा भगवान् महादेवका अर्चन करते हैं, उन्हें भगवान् शंकरकी कृपासे अति दुर्लभ रुद्रसायुज्य, सामीप्य, सालोक्य तथा सारूप्य मोक्षकी प्राप्ति होती है।

धुन्धुमारस्तु राजर्षिर्लेभे पुत्रशतं पुरा।
दानेन नियमेनैव तपसा च व्रतेन च॥
सगरो नाम राजर्षिर्दिक्षु सर्वासु विश्रुतः।
पुत्राणां च शतं प्राप्तं तेन राज्ञा महात्मना॥
तथा दशरथो राजा व्रतेषु निरतः सदा।
यज्ञदानतपोयोगैः सन्तुष्टः पुरुषोत्तमः।
स्वयं पुत्रत्वमापेदे तस्य राज्ञो महात्मनः॥
जनको नाम राजर्षिस्तपोव्रतनिधिः स्वयम्।
ऐश्वर्यमतुलं प्राप्य योगिनां गतिमाप्नुयात्॥

(गरुडपुराण)

प्राचीन कालमें राजर्षि धुन्धुमारने दान, नियमोंके पालन, तपस्या तथा व्रताचरणके द्वारा सौ पुत्रोंको प्राप्त किया था। राजर्षि सगरका नाम सर्वत्र विश्रुत है। उन महान् आत्मावाले राजाने भी व्रतोपवासचर्याके प्रभावसे ही सौ पुत्रोंको प्राप्त किया। महाराज दशरथ सदा व्रतपरायण रहते थे। उन्होंने भी यज्ञ, दान, तप तथा योगबलसे भगवान् पुरुषोत्तम नारायणको प्रसन्न किया, फलस्वरूप वे स्वयं श्रीरामके रूपमें उनके पुत्ररूपमें प्रकट हुए। राजर्षि जनक तो तपोव्रतके विग्रह ही थे, उन्होंने व्रतचर्याके प्रभावसे अतुलनीय ऐश्वर्य और योगियोंको प्राप्त होनेवाली परम गतिको प्राप्त किया।

व्रतपर्वोत्सव—एक समीक्षा

व्रत, पर्व और उत्सव हमारी लौकिक तथा आध्यात्मिक उन्नतिके सशक्त साधन हैं, इनसे आनन्दोल्लासके साथ ही हमें उदात्त जीवन जीनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है। वास्तवमें सम्पूर्ण सृष्टिका उद्भव आनन्दसे ही है और यह सृष्टि आनन्दमें ही स्थित भी है। भारतीय पर्वोंके मूलमें इसी आनन्द और उल्लासका पूर्ण समावेश है। दुःख, भय, शोक, मोह तथा अज्ञानकी आत्यन्तिक निवृत्ति और अखण्ड आनन्दकी प्राप्ति ही इन व्रतपर्वोत्सवोंका लक्ष्य है। यही कारण है कि ये व्रत और पर्व प्राणीको अन्तर्मुख होनेकी प्रेरणा करते हैं। स्नान, पूजन, जप, दान, हवन तथा ध्यानादि कृत्य एक प्रकारके व्रत हैं। इनमेंसे प्रत्येक मनुष्यकी बाह्य वृत्तिको अन्तर्मुख करनेमें समर्थ है।

व्रत

व्रताचरणसे मनुष्यको उन्नत जीवनकी योग्यता प्राप्त होती है। व्रतोंमें तीन बातोंकी प्रधानता है—१-संयम-नियमका पालन, २-देवाराधन तथा ३-लक्ष्यके प्रति जागरूकता। व्रतोंसे अन्तःकरणकी शुद्धिके साथ-साथ बाह्य वातावरणमें भी पवित्रता आती है तथा संकल्पशक्तिमें दृढ़ता आती है। इनसे मानसिक शान्ति और ईश्वरकी भक्ति भी प्राप्त होती है। भौतिक दृष्टिसे स्वास्थ्यमें भी लाभ होता है अर्थात् रोगोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति होती है। यद्यपि रोग भी पाप हैं और ऐसे पाप व्रतोंसे ही दूर भी होते हैं तथापि कायिक, वाचिक, मानसिक और संसर्गजनित सभी प्रकारके पाप, उपपाप और महापापादि भी व्रतोंसे ही दूर होते हैं।

व्रतोंके भेद—व्रत दो प्रकारसे किये जाते हैं १-उपवास अर्थात् निराहार रहकर और २-एक बार संयमित आहारके द्वारा। इन व्रतोंके कई भेद हैं—**१-कायिक**—हिंसा आदिके त्यागको कायिकव्रत कहते हैं। **२-वाचिक**—कटुवाणी, पिशुनता (चुगुली) तथा निन्दाका त्याग और सत्य, परिमित तथा हितयुक्त मधुर भाषण 'वाचिकव्रत' कहा जाता है। **३-मानसिक**—काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या तथा राग-द्वेष आदिसे रहित रहना 'मानसिकव्रत' है।

मुख्य रूपसे अपने यहाँ तीन प्रकारके व्रत माने गये हैं—१-नित्य, २-नैमित्तिक और ३-काम्य। नित्य वे व्रत हैं जो भक्तिपूर्वक भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये निरन्तर कर्तव्यभावसे किये जाते हैं। एकादशी, प्रदोष, पूर्णिमा आदि व्रत इसी प्रकारके हैं। किसी निमित्तसे जो व्रत किये जाते हैं वे 'नैमित्तिकव्रत' कहलाते हैं। पापक्षयके निमित्त चान्द्रायण, प्राजापत्य आदि व्रत इसी कोटिमें हैं। किसी विशेष कामनाको लेकर जो व्रत किये जाते हैं वे 'काम्यव्रत' कहे जाते हैं। कन्याओंद्वारा वरप्राप्तिके लिये किये गये गौरीव्रत, वटसावित्रीव्रत आदि काम्यव्रत हैं। इसके अतिरिक्त भी व्रतोंके एकभुक्त, अयाचित तथा मितभुक् और नक्तव्रत आदि कई भेद हैं।

व्रतोंके अधिकारी—धर्मशास्त्रोंके अनुसार अपने वर्णाश्रमके आचार-विचारमें रत रहनेवाले, निष्कपट, निर्लोभी, सत्यवादी, सम्पूर्ण प्राणियोंका हित चाहनेवाले, वेदके अनुयायी, बुद्धिमान् तथा पहलेसे निश्चय करके यथावत् कर्म करनेवाले व्यक्ति ही व्रताधिकारी होते हैं। उपर्युक्त गुणसम्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री और पुरुष—सभी व्रतके अधिकारी हैं।* सौभाग्यवती स्त्रीके लिये पतिकी अनुमतिसे ही व्रत करनेका विधान है।

यथाविधि व्रतोंके समाप्त होनेपर अपने सामर्थ्यानुसार व्रतका उद्यापन भी करना चाहिये। उद्यापन करनेपर ही व्रतकी सफलता है।

'व्रत' का आध्यात्मिक अर्थ उन आचरणोंसे है जो शुद्ध, सरल और सात्त्विक हों तथा उनका विशेष मनोयोग तथा निष्ठापूर्वक पालन किया जाय। कुछ लोग व्यावहारिक जीवनमें सत्य बोलनेका प्रयास करते हैं और सत्यका आचरण भी करते हैं, परंतु कभी-कभी उनके जीवनमें कुछ ऐसे क्षण आ जाते हैं कि लोभ और स्वार्थके वशीभूत होकर उन्हें असत्यका आश्रय लेना पड़ता है तथा वे उन क्षणोंमें झूठ भी बोल जाते हैं। इस प्रकार वे व्यक्ति सत्यव्रती नहीं कहे जा सकते। अतः आचरणकी शुद्धताको कठिन परिस्थितियोंमें न छोड़ना व्रत है। प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी प्रसन्न रहकर जीवन व्यतीत करनेका अभ्यास ही व्रत है। इससे मनुष्यमें श्रेष्ठ कर्मोंके सम्पादनकी योग्यता आती है, कठिनाइयोंमें आगे बढ़नेकी शक्ति प्राप्त होती है, आत्मविश्वास दृढ़ होता है और अनुशासनकी भावना विकसित होती है।

* निजवर्णाश्रमाचारनिरतः शुद्धमानसः। अलुब्धः सत्यवादी च सर्वभूतहिते रतः॥ अवेदनिन्दको धीमानधिकारी व्रतादिषु॥ (स्कन्दपुराण) ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव द्विजोत्तम। (कूर्मपुराण)

आत्मज्ञानके महान् लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये प्रारम्भिक कक्षा व्रतपालन ही है। इसीसे हम अपने जीवनको सार्थक बना सकते हैं। व्रताचरणसे मानव महान् बनता है।

पर्वोत्सव

भारतीय संस्कृतिका यह लक्ष्य है कि जीवनका प्रत्येक क्षण पर्वोत्सवोंके आनन्द एवं उल्लाससे परिपूर्ण हो। इन पर्वोमें हमारी संस्कृतिकी विचारधाराके बीज छिपे हुए हैं। आज भी अनेक विघ्न-बाधाओंके बीच हमारी संस्कृति सुरक्षित है और विश्वकी सम्पूर्ण संस्कृतियोंका नेतृत्व भी करती है। इसका एकमात्र श्रेय हमारी पर्वपरम्पराको ही है। ये पर्व समय-समयपर सम्पूर्ण समाजको नयी चेतना प्रदान करते हैं तथा दैनिक जीवनकी नीरसताको दूर करके जनजीवनमें उल्लास भरते हैं और उच्चतर दायित्वोंका निर्वाह करनेकी प्रेरणा प्रदान करते हैं।

'पर्व' का शाब्दिक अर्थ है—गाँठ अर्थात् सन्धिकाल। हिन्दूपर्व सदा सन्धिकालमें ही पड़ते हैं। पूर्णिमा, अमावास्या, अष्टमी तथा संक्रान्ति आदिको शास्त्रोंमें पर्व कहा गया है। शुक्लपक्षकी तथा कृष्णपक्षकी सन्धिवेलाओंमेंसे अमावास्या तथा पूर्णिमा पर्व हैं। सूर्य-संक्रमणमें परिवर्तन होनेसे संक्रान्ति भी पर्व है। दैनिक जीवनमें प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल—त्रिकालकी सन्ध्या भी सन्धिकालमें होनेके कारण पर्वके रूपमें अभिहित है।

प्रत्येक सन्धिकाल जहाँ पर्वकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है, वहीं शरीरकी दृष्टिसे सावधानी रखने योग्य भी है। कच्ची नींदमें किसीको जगा देनेपर हानि होनेकी सम्भावना रहती है। ऋतुओंके सन्धिकालमें अनेक रोग हो सकते हैं, उस समय संयमकी अधिक आवश्यकता होती है। इसी प्रकार प्रत्येक सन्धिकालमें एक प्रभावकी समाप्ति तथा दूसरे प्रभावका प्रारम्भ होनेकी स्थिति होती है। ऐसे समयमें विशेष संयम न करनेसे हानिकी सम्भावना रहती है। इसीलिये चिकित्साशास्त्र ऋतुओंकी सन्धियोंके समयके संयम, त्याज्य आहार एवं त्याज्य कर्म तथा इसके साथ ही लाभप्रद आहार एवं करणीय कर्मोंका विशद वर्णन करता है। इसी प्रकार पर्व भी सन्धिकाल होनेके कारण उनमें भी दो प्रभावोंका संक्रमण रहता है। अतः उस संक्रमणकालके प्रभावकी दृष्टिसे शास्त्रोंने उस समय कुछ कृत्योंका तथा कुछ पदार्थोंके सेवनका विधान और कुछ कृत्यों तथा पदार्थोंके सेवनका निषेध बताया है। उनके विधानको पालन करनेसे लाभ तथा उल्लंघन करनेसे हानि होना स्वाभाविक है, भले ही हम उस सूक्ष्म हानि या लाभका अनुभव न कर सकें। इसीलिये हमारे धर्मशास्त्रोंने एकादशी, प्रदोष, पूर्णिमा, रामनवमी, जन्माष्टमी, दशहरा, दीपावली, शिवरात्रि तथा होली आदि व्रतपर्वोत्सवोंपर मनुष्यमात्रके लिये यह करना चाहिये और यह नहीं करना चाहिये—इस प्रकारके विधि-निषेधकी योजना की है। विधि-निषेधकी इस व्यवस्थाके अनुसार ही लोगोंद्वारा इन पर्वोत्सवोंको मनानेकी परम्परा है।

पर्वोंके भेद

व्रतोंकी भाँति ही पर्वोंके भी तीन मुख्य भेद हैं—१-नित्य, २-नैमित्तिक तथा ३-काम्य। कुछ पर्व ऐसे होते हैं जिनका समय निश्चित है। सन्ध्यादिसे लेकर एकादशी, प्रदोष दीपावली, होली आदि ऐसे ही पर्व हैं, ये 'नित्यपर्व' हैं। कुछ पर्व ऐसे हैं जो किसी निमित्तसे आते हैं, जैसे—ग्रहण, कुम्भ, पुत्रजन्मोत्सव, ग्रह-नक्षत्र आदिके किसी योगविशेषसे अथवा किसी घटनासे पड़नेवाले—ये पर्व 'नैमित्तिक' हैं। ग्रहशान्ति या कामनाविशेषसे कुछ व्रत-पूजन, उत्सव किये जाते हैं; जैसे—पुत्रकामनावालेके लिये पयोव्रतका वर्णन है। ऐसे व्रत-पर्व कामना होनेपर ही किये जाते हैं; ये काम्य कहे जाते हैं।

पर्वोंके ऊपरके भेदोंके अतिरिक्त उनके दूसरे प्रकारके भी भेद किये जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१-दिव्यपर्व

कुछ पर्व तिथि, नक्षत्र, दिन, ग्रहयोगके कारण मनाये जाते हैं जिन्हें 'दिव्यपर्व' कहते हैं। संक्रान्ति, कुम्भ, वारुणी, ग्रहण आदि दिव्यपर्व हैं। ये विशेष ग्रह-नक्षत्रोंके योगके समय होते हैं। सूर्यकी संक्रान्तियोंसे महीने बनते हैं। सूर्य जब एक राशिसे दूसरी राशिपर जाता है, तब ऋतुओंमें परिवर्तन आता है। सूर्य हमारे शरीरमें नेत्रके देवता हैं, शरीरमें जो उष्णता है वह सूर्यसे ही आती है तथा बुद्धि भी सूर्यसे ही प्रेरणा प्राप्त करती है। इस प्रकार सूर्यका एक राशिसे दूसरी राशिमें जाना नेत्र, बुद्धि तथा विश्वकी समस्त ऊष्माको प्रभावित करता है। जिस प्रकार सूर्यका सम्बन्ध हमारे शरीरसे है वैसे ही चन्द्रमा भी मनके देवता हैं। रसनेन्द्रिय और जलपर उनका प्रभाव है।

कुम्भ तथा वारुणीपर्व—कुम्भपर्व सूर्य, चन्द्र एवं बृहस्पतिके विशेष संयोगपर आता है। प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन एवं नासिकमें—ये पर्व प्रति बारह वर्षपर पड़ते हैं। इसी प्रकार वारुणीपर्व भी वरुण तथा दूसरे ग्रह-नक्षत्रोंके योगसे होता है।

ग्रहण—दिव्यपर्वोंमें ग्रहणका भी विशेष स्थान है। ग्रहणके समय भोजन आदि करनेसे अनेक रोग होते हैं।

इसलिये आहार आदि अनेक कार्य वर्जित हैं। उस समय जो घड़ेमें भरा जल या भोजन रखा हो, वह भी फिर उपयोग करने योग्य नहीं होता। मन तथा बुद्धिपर पड़े प्रभावसे लाभ उठानेके लिये जप, ध्यानादिका विधान है। ग्रहणके समय किये गये जप, यज्ञ, दान आदिका सामान्यकी अपेक्षा बहुत अधिक महत्त्व वर्णित है। देखा गया है कि गर्भिणी स्त्री यदि ग्रहणकी ओर देखती है तो गर्भस्थ शिशुके अङ्ग विकृत हो जाते हैं। यह प्रभाव सगर्भा पशुजातियोंपर भी पड़ता है। ग्रहणके समय स्त्रीसहवाससे दोनोंकी नेत्रज्योति क्षीण हो जाती है। अनेक बार अन्धे होनेका भी भय हो जाता है। इस प्रकार ग्रहणका प्रभाव तर्क एवं परीक्षणसे भी सिद्ध है। ग्रहणकालमें उच्छृङ्खल आचारसे मानसिक अव्यवस्था और बुद्धिविकार तो होता ही है, शारीरिक स्वास्थ्यकी भी बड़ी हानि होती है। अतः इस सम्बन्धमें सबको सावधान रहना चाहिये।

पुरुषोत्तममास—हर तीन वर्षके पश्चात् एक चान्द्रमास बढ़ जाता है, जिसे 'पुरुषोत्तममास' कहते हैं। यह पूरा महीना ही पर्व होता है। पूरे महीनेमें संयम एवं उपासनाका महत्त्व सामान्य समयसे अधिक है। जब चान्द्रमासके लगातार दो पक्षोंमें सूर्यकी संक्रान्ति नहीं पड़ती, तब वह एक मास अधिक हो जाता है। इस अधिकमासमें स्नान, ध्यान, जप, कीर्तन, भजन, कथाश्रवण आदिका विशेष महत्त्व माना गया है। वृन्दावन, अयोध्या आदि भारतके मुख्य तीर्थोंमें समारोहपूर्वक धार्मिक आयोजन इस मासमें किये जाते हैं। शास्त्रोंके अनुसार इसका विशेष पुण्य है। काशीकी पञ्चक्रोशीपरिक्रमा पुरुषोत्तममासमें विशेषरूपसे होती है।

२-देवपर्व

दिव्यपर्वोंके पश्चात् देवपर्वोंका स्थान है। हमारा एक वर्ष देवताओंका एक दिन-रात्रि होता है। दक्षिणायनके महीने देवताओंका रात्रिकाल है और उत्तरायणके महीने देवताओंका दिन माना गया है। इसलिये महत्त्वपूर्ण मङ्गलकार्य उत्तरायणमें होते हैं। इसी प्रकार एक महीनेके दोनों पक्षोंमें शुक्लपक्ष देवताओंका कार्यकाल है और कृष्णपक्ष उनका विश्रान्तिकाल है। अतः अधिकांश पर्व शुक्लपक्षमें ही पड़ते हैं। पृथ्वीपर जिस दिन जिस ग्रहका प्रभाव अधिक रहता है, वह दिन उस ग्रहके नामसे पुकारा जाता है। उस दिन उस ग्रहका व्रत-पूजन करनेसे शान्ति और अनुकूलता प्राप्त होती है। इसी प्रकार कुछ तिथियाँ देवपर्व हैं; जैसे—गणेशचतुर्थी, एकादशी, प्रदोष आदि तिथियाँ देवताओंके विशेष पर्व हैं। गणेशजीका पर्व चतुर्थी, भगवान् विष्णुका पर्व एकादशी तथा इसी प्रकार भूतभावन भगवान् शङ्करका पर्व प्रदोष है। इस प्रकार देवताओंके विभिन्न पर्व हैं, उन पर्वोंका आचार, विधान, संयम तथा पूजा आदि उस देवशक्तिके अनुरूप होते हैं, जिसका वह पर्व है।

३-पितृपर्व

आश्विनमासका कृष्णपक्ष पूरा पितृपर्व है। यह मास पितरोंके लिये दिनमें मध्याह्नकालतक भोजनकाल है। इस समय उन्हें पिण्डका स्मरण होता है। इसके अतिरिक्त जिस दिन उनका शरीरान्त हुआ हो वह दिन भी उन्हें स्मरण होता है। यह समय पितृश्राद्धका है। इनके अतिरिक्त अमावास्या एवं संक्रान्तिके अवसरपर तथा विशेष तीर्थोंमें जानेपर पितृश्राद्धका विधान है। उन तीर्थों तथा समयोंमें दिये गये पिण्डसे तथा ब्राह्मण-भोजन, दान आदिसे पितरोंकी तृप्ति सहज होती है; क्योंकि भाव-ग्रहणके लिये उस समय वे सम्पर्कमें होते हैं।

४-कालपर्व

जिस दिन सृष्टिकी रचना हुई थी वह तिथि पर्व है। इसी प्रकार युगोंके प्रारम्भकी तिथियाँ भी पर्व हैं। वर्षकी प्रथम तिथि तो विश्वके सभी देशों और जातियोंमें पर्व मानी ही जाती है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा विक्रमी संवत्सरकी आरम्भ तिथि है, जो भारतीय तिथिगणनामें मुख्य रूपसे मान्य है। अतः कालसम्बन्धी पर्व भी संक्रमणकालके दिव्यपर्वोंकी भाँति ही हैं।

५-जयन्तीपर्व

भारतीय संस्कृतिमें नश्वर रूपकी तथा देश या जातिके भौतिक उत्कर्षकी कोई महत्ता नहीं है। जयन्तियाँ मनायी जाती हैं भगवान्‌के अवतारोंकी या उन महापुरुषोंकी जिनका स्मरण भगवान्‌की स्मृतिको जाग्रत् करता है। भगवत्सांनिध्यप्राप्त महा-पुरुषोंकी तथा भगवान्‌के अवतारोंके अतिरिक्त दूसरे किसीकी जयन्ती मनाना शरीरको महत्त्व देना है या भोगवृत्तिको प्रोत्साहित करना है। इसीलिये भारतमें रामनवमी, जन्माष्टमी, शिवरात्रि, नृसिंहचतुर्दशी, वामनद्वादशी, हनुमज्जयन्ती, गणेशचतुर्थी, परशुरामजयन्ती आदि पावन पर्व मनाये जाते हैं, जिसमें परमात्म-प्रभुका स्मरण होता है तथा व्यक्ति अन्तर्मुख होनेकी दिशामें अग्रसरित होता है। मनुष्य या जातिका स्मरण उसे भौतिक उत्कर्षकी प्रेरणा प्रदान करेगा, भोग एवं यशवृत्ति बढ़ायेगा तथा बहिर्मुख होनेकी ओर प्रवृत्त करेगा। पाश्चात्त्य सभ्यतामें यश एवं भोगकी ही प्रधानता है, इसलिये महान् विजेताओं या विद्वानोंका स्मरण करना अथवा उनका स्मारक बनाना उनकी स्वाभाविक वृत्ति है। भारतमें भी ये सब उत्सव पाश्चात्त्य प्रभावसे ही आये हैं और वह भी विशेषकर अंग्रेजोंके प्रभावसे। वास्तवमें ये हमारी संस्कृतिके सर्वथा विपरीत हैं और हमें बहिर्मुख करनेके साधन हैं।

६-प्राणिपर्व

हिन्दूधर्ममें प्रत्येक पदार्थ तथा प्राणीके अधिष्ठातृ देवता माने जाते हैं। विश्वमें हम जिन्हें साधारण प्राणी मानते हैं उनमें भी कुछ दिव्य प्राणी हैं। नाग और गौ—ये दिव्य प्राणियोंमें हैं। जैसे—ग्रामके अधिष्ठातृ देवताकी पूजा होती है, वैसे ही ग्रामनागकी पूजा भी विशेष अवसरोंपर होती है तथा इनकी पूजाके पर्व भी होते हैं। नागपञ्चमी नागदेवताकी पूजाका मुख्य पर्व है। राजस्थान आदि कई क्षेत्रोंमें तो बड़े सम्मानके साथ नागदेवकी पूजा सम्पन्न की जाती है। यथासम्भव नागोंको न मारनेकी परम्परा है।

इसी प्रकार गोमाता सर्वदेवमयी हैं। हिन्दुओंके सभी देवी-देवताओंका निवास गायमें है। शास्त्र गायकी महिमासे भरे पड़े हैं। निष्ठापूर्वक गोमाताकी सेवा की जाय तो अभीष्ट फल प्राप्त करना कोई कठिन बात नहीं है। शास्त्रके अनुसार प्रत्येक हिन्दू गृहस्थके घरमें गोसेवा होनी चाहिये, नित्य गोपूजन होना चाहिये। भोजनसे पूर्व गोग्रास देना तो भारतवासियोंका नित्य कर्म है। गोमाताकी पूजाका मुख्य पर्व गोपाष्टमी है जो आनन्दकन्द ब्रह्माण्डनायक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके गोचारणका प्रथम दिन है। मदनमोहन श्रीश्यामसुन्दरने इसी दिन गोपूजन किया था। अतः भारतवासी भी गोपाष्टमीपर्वपर समारोहपूर्वक गोपूजन करते हैं।

७-वनस्पतिपर्व

जैसे प्राणियोंके अधिष्ठातृ देवता होते हैं, वैसे ही वनस्पतियोंके भी अधिष्ठातृ देवता होते हैं। कुछ दिव्य वनस्पतियाँ हैं जिनके प्रत्यक्ष पूजनका विधान शास्त्रोंमें वर्णित है। भौतिक दृष्टिसे इन वनस्पतियोंके प्रत्यक्ष लाभ भी मनुष्यको प्राप्त होते हैं; जैसे—अश्वत्थ (पीपल)-वृक्ष, तुलसीका पौधा, वटवृक्ष तथा निम्ब (नीम)-वृक्ष, कदली (केला)-वृक्ष, बिल्व (बेल)-वृक्ष, आँवलावृक्ष आदिके पूजनका विधान है। इन वृक्षोंके अलग-अलग अधिष्ठातृ देवता हैं तथा कुछ वृक्षोंके पूजनके निर्धारित दिन हैं जो पर्वरूपमें माने जाते हैं। जैसे अश्वत्थकी पूजा विशेषरूपसे शनिवारको करनेका विधान है, तुलसीकी पूजा यद्यपि प्रतिदिन करनी चाहिये, परंतु कार्तिकमासमें तथा वैकुण्ठचतुर्दशी आदि तिथियोंपर इसका विशेष महत्त्व माना गया है। देवोत्थापनी एकादशीके दिन तो तुलसीके साथ भगवान्का विवाह भी कराया जाता है। अमावास्याको वटवृक्षके पूजनका विधान है। केलेके वृक्षका पूजन मुख्यरूपसे बृहस्पतिवारको करनेका विधान है। इसी प्रकार बिल्ववृक्षका पूजन सोमवारको होता है। इन वनस्पतियोंके पत्र और फल भी भगवान्की पूजामें प्रयुक्त होते हैं। बिल्वपत्र तथा बिल्वफल भूतभावन सदाशिवकी पूजामें चढ़ाये जाते हैं। तुलसीपत्र भगवान् विष्णु (शालग्राम)-की पूजामें चढ़ाना अनिवार्य है। शीतलाष्टमीपर शीतला माताके साथ निम्बवृक्षकी भी पूजा होती है। इसी प्रकार कार्तिकमासमें अक्षयनवमीपर आँवलेके वृक्षके पूजनकी बड़ी महिमा है। इस दिन इस वृक्षके नीचे बैठकर इसकी जड़में दूधसे पितरोंका तर्पण करना चाहिये तथा वृक्षके नीचे बैठकर ही ब्राह्मणभोजन, दान तथा स्वयं भोजनका शास्त्रोंमें विशेष पुण्य बताया गया है। इसी प्रकार इन वृक्षोंके फल भी भगवान्की पूजामें अर्पित किये जाते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेमसे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्कामप्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

८-मानवपर्व

मानवपर्व तीन प्रकारके होते हैं। एक ऐसे पर्व जो सामाजिक रूपसे मनाये जाते हैं। जैसे कोई यज्ञ, कथा, सत्संग आदि। कृषि, उद्योग तथा व्यापार आदिमें भी देवपूजनका विशेष महत्त्व माना गया है। समष्टिरूपसे भी इनके पर्व मनाये जाते हैं; जैसे—विश्वकर्मापूजा, नवान्नेष्टियज्ञ, वसन्तपञ्चमीपर सरस्वतीपूजन, दीपावलीपर लक्ष्मीपूजन आदि।

दूसरे प्रकारके पर्व व्यक्तिके जीवनसे सम्बन्धित होते हैं; जैसे—पुत्रजन्मोत्सव, विवाहमहोत्सव, नवीन गृहका गृहप्रवेश—ये सब व्यक्तिके पर्व हैं। इनमें भी जप, व्रत, हवन, पितरों एवं देवताओंका अर्चन, ब्राह्मणोंका पूजन तथा दान, प्रीतिगोष्ठी आदि उत्सव किये जाते हैं। इन अवसरोंपर व्यक्ति प्रमत्त न हो जाय तथा भौतिक समृद्धिके गर्वमें बहिर्मुखताकी ओर न बढ़ सके। इसके लिये विशेष सावधानीकी आवश्यकता है।

तीसरे प्रकारके पर्व हैं किसी विशेष उद्देश्यसे किये गये पूजन तथा समारोह। ऐसे पर्वोंका कोई समय निश्चित नहीं रहता। हमारी श्रद्धा-भक्तिभावना ही इन उत्सवोंका कारण होती है। भागवतसप्ताह, यज्ञसत्र, पुराणसत्र, कथा-कीर्तन, पूजन-सत्संग—इन पर्वोंके मुख्य अङ्ग हैं। इन उत्सवोंमें सब प्रकारके गान, नृत्य, वाद्य, चित्र आदि कलाओंका भी उच्चतम विकास होता है। इन कलाओंकी विशेषता यह है कि ये सदा भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये 'स्वान्तःसुखाय' होती हैं, जो व्यक्तिको दिव्य आनन्द प्रदान करती हैं।

९-तीर्थपर्व

विश्वमें जितने प्रकारके प्राणी हैं, उनमें मनुष्योंकी संख्या बहुत थोड़ी है। चूँकि मनुष्ययोनि ही कर्मयोनि है और इसी मानवयोनिमें जन्म लेकर ही जीव भगवद्धाम अथवा भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकारकी बात स्थानके विषयमें भी है। पृथ्वीपर जितनी भूमि है उनमें पुण्यभूमि बहुत कम है। अपने शास्त्र भारतवर्षको पुण्यभूमि मानते हैं—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।

(विष्णु० २।३।२४)

अर्थात् स्वर्गमें देवता लोग यह गीत गाते हैं कि वे व्यक्ति धन्य हैं जिन्होंने भारतभूमिमें जन्म लिया; क्योंकि यह भारतभूमि केवल भोगभूमि नहीं है बल्कि कर्मभूमि भी है। इसी पुण्यभूमिपर भगवान् अवतार लेते हैं। प्रभुके अवतारके समय उनके दिव्य धामोंका प्राकट्य भी इस पृथ्वीपर हो जाता है, भारतमें जहाँ-जहाँ भगवान्‌का प्राकट्य हुआ या जहाँ-जहाँ भगवान्‌के अवतार हुए, वहाँ-वहाँ दिव्य धामोंका भी प्राकट्य हुआ अर्थात् वह भूमि दिव्य हो गयी। ये स्थान हमारे तीर्थस्थल बन गये। जैसे भगवद्दर्शनप्राप्त महापुरुष परम पावन हो जाते हैं, वैसे ही यह स्थूल देश जो चिन्मय देशका सांनिध्य पा लेता है, पावन हो जाता है। ऐसे ही देश तीर्थ कहे जाते हैं; क्योंकि वे दूसरोंको पवित्र करनेकी शक्ति प्राप्त कर चुके होते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी तीर्थमें जाता है तब वह उस तीर्थके पावनकारी प्रभावको प्राप्त करता है। चुम्बकका लोहेपर पूरा प्रभाव पड़नेके लिये यह आवश्यक है कि लोहेपरके जंगको दूर कर दिया जाय। इसी प्रकार तीर्थका पूरा पावनकारी प्रभाव प्राप्त करनेके लिये उस तीर्थके अनुरूप शास्त्रोंमें वर्णित संयम, नियम एवं आचारविधानका पालन करना चाहिये। उस आचारके उल्लंघनसे दोष एवं हानि भी होती है; क्योंकि कोई प्रभाव हमपर पड़ रहा हो और हम उसके विपरीत चेष्टा करें तो हानि होना स्वाभाविक है।

तीर्थोंके मुख्य देवता भी होते हैं। उन तीर्थोंके अनुरूप कृत्य होते हैं; जैसे—गया पितृलोकसे सम्बन्धित तीर्थ है वहाँ दिये पिण्ड पितरोंको अक्षय तृप्ति देते हैं। जब कोई तीर्थयात्री अपनी तीर्थयात्रा प्रारम्भ करता है तब वह पूजन आदि करके प्रस्थान करता है। तीर्थमें जबतक वह रहता है, वह पूरा समय उसके लिये पर्वकाल है। उसे तीर्थमें निर्दिष्ट नियमोंका पालन करना पड़ता है। घर लौटनेपर वह पुनः पूजन-यज्ञादि करके तीर्थयात्राको साङ्ग पूर्ण करता है। इस प्रकार तीर्थमें जानेपर पर्व होता है। इसके अतिरिक्त कुछ तीर्थोंके कुछ विशेष पर्वकाल हैं; जैसे—प्रयागमें माघमास। इन समयोंमें इन तीर्थोंका अपने नित्य दिव्य धामोंसे अधिक निकट सम्पर्क हो जाता है और ग्रहयोगके प्रभाव भी वहाँ अनुकूल रहते हैं।

पर्वोंका श्रेणी-विभाग—पर्वोंमें होनेवाले कार्योंके अनुसार भी कुछ विभाग किये जा सकते हैं। कुछ पर्व **उपासनाप्रधान** होते हैं, कुछ **व्रतप्रधान**, कुछ **यज्ञप्रधान**, कुछ **स्नानप्रधान**, कुछ **अनुष्ठानप्रधान** और कुछ **महोत्सवप्रधान** पर्व हैं। प्रत्येक पर्वमें एक कर्म मुख्य होनेपर भी दूसरे कर्मोंकी भी सहभागिता रहती है; जैसे—एकादशी रात्रिजागरण एवं उपवासप्रधान पर्व है, किंतु जप, दान, पूजन तथा कीर्तन—ये सब इसमें महत्त्वपूर्ण हैं। विशेषतः संकीर्तन एवं भगवत्पूजन तो एकादशीके मुख्य कृत्योंमें हैं।

इसी प्रकार कुछ पर्व **वर्णप्रधान** भी हैं; जैसे—श्रावणीकर्म ब्राह्मणोंका, विजयादशमी क्षत्रियोंका, दीपावली वैश्योंका और होली शूद्रोंका पर्व कहा जाता है, परंतु इन सभी पर्वोंमें सभी वर्णोंकी सहभागिता रहती है। पूरा हिन्दूसमाज अनादि कालसे अपनेको एक शरीर मानता आया है। उसमें पार्थक्यकी भावना, पृथक्-पृथक् पर्व, पृथक्-पृथक् आदर्श-जैसी कोई वस्तु नहीं है। शरीरके अङ्गोंके समान अपने अधिकारके अनुसार सबके कार्य भिन्न-भिन्न हैं, पर समष्टिरूपसे सब एक हैं। सबका लक्ष्य एवं आचार एक है। अतः सबके पर्व भी एक ही हैं।

चूँकि सन्धिकालको ही पर्व कहा गया है, हमारे शास्त्रोंने सन्धि (पर्व)-का परम उद्देश्य जीव एवं ब्रह्मकी सन्धि माना है। सन्ध्याका भी शास्त्रीय अर्थ है—जीव-ब्रह्मकी सन्धि और योगका भी शास्त्रीय अर्थ यही है। इस आत्मपरमात्मैक्यके प्रयत्नके लिये जो काल प्रतिदिन निश्चित है उसे सन्ध्या कहते हैं और जो काल नित्य न आकर किसी विशेष अवसरों तथा कारणोंसे उपस्थित होते हैं उन्हें पर्व कहते हैं। सन्ध्या और पर्वके अर्थ प्रायः एक ही हैं।

हमारे प्राचीन सभी सनातनपर्व आध्यात्मिक भावनासे ओतप्रोत हैं। उनमें भारतीय संस्कृतिकी जीवनप्रेरणा है। आज आवश्यकता है कि इन पर्व-कृत्योंका रक्षण पूरी तत्परतासे किया जाय तथा इनमें समयानुसार विकृतियाँ न आने पायें और पर्वोंके वास्तविक उद्देश्यका ज्ञान लुप्त न हो। इस संदर्भमें पूर्ण सावधानी बरती जानी चाहिये।

—राधेश्याम खेमका
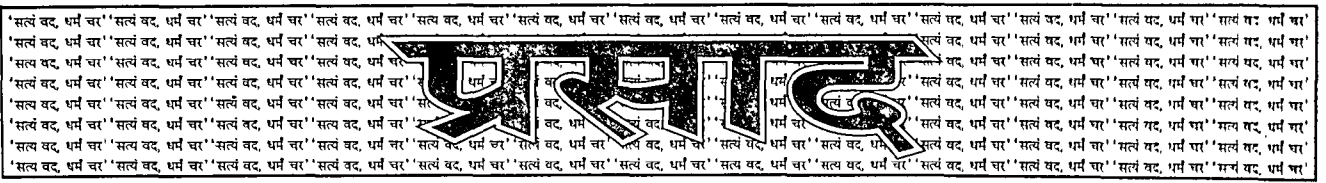
भगवान्‌का शरणागतपालन-व्रत

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा० रा० ६। १८। ३३)

जो कोई एक बार भी 'मैं तुम्हारा हूँ'—ऐसा कहकर शरणागत होता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है।

भगवान् एकमात्र सबके शरणदाता हैं। अपने भक्तोंके लिये उनकी ऐसी कृपा है कि वे सबकी कामनाके अनुरूप अलग-अलग रूप धारणकर संसारमें प्रकट होते हैं। कभी वे बालकका रूप धारणकर इस धराधामपर अवतरित होते हैं तो कभी वृद्ध बनकर। कभी स्त्री बनकर आते हैं तो कभी पुरुष। कभी परम ऐश्वर्यशाली राजा बन जाते हैं तो कभी बुद्ध-जैसे भिक्षुक। कभी परशुराम-समान उद्धत वीर बनकर आते हैं तो कभी पूर्ण शान्त श्रीराम बनकर। कभी मनुष्यरूप धारणकर जीवोंको शरण देते हैं तो कभी मत्स्य, कच्छप और सूकर-सदृश पशु बनकर तथा कभी-कभी नरसिंहकी तरह मनुष्य-पशुका मिश्रित स्वरूप भी धारण कर लेते हैं। भक्तोंकी जैसी भावना होती है, दयानिधान भगवान् वैसे ही स्वरूपमें स्वयंको प्रकट करते हैं—

भक्तचित्तानुसारेण जायते भगवानजः॥

(अ०रा०कि० ५। २४)

भगवान्‌ने स्वयं कहा है कि जो भक्त मेरे जिस स्वरूपकी अर्चना करना चाहता है, मैं उसकी श्रद्धाको उसी रूपके प्रति स्थिर कर देता हूँ—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥

(गीता ७। २१)

व्रत समस्त कामनाओंका सिद्धि-द्वार है। शास्त्रोंमें प्रयोजनवशात् विविध व्रतोंके विधान अभिहित हैं और देवता, संत, मनुष्य, तिर्यक्-योनि—सभी अपने-अपने उद्देश्योंकी परिपूर्तिके लिये यथायोग्य व्रतोंका आश्रय ग्रहण करते हैं। समान्यतया गृहस्थ जहाँ लौकिक एवं पारलौकिक कामनाओंकी पूर्तिहेतु विभिन्न व्रतोंमें तत्पर होते हैं, वहाँ भगवत्प्रेमी भक्तजन अपने प्रियतम प्रभुके प्रीत्यर्थ ही आजीवन व्रत-परिपालन करते देखे जाते हैं। यह अद्भुत बात है कि एक व्रत हमारे भगवान्‌को भी अत्यन्त प्रिय है, जिसका परिपालन वे अनादि कालसे करते आये हैं और करते रहेंगे। पूर्णकाम भगवान्‌का वह अनुपम व्रत है—अपने शरणागत भक्तोंका सर्वथा-सर्वदा परिपालन, जिसे उन्होंने स्वेच्छया स्वीकार किया है।

भगवान् भक्तवत्सल हैं। अपने दासोंके लिये कुछ भी करनेमें उन्हें संकोच नहीं होता। जिसने एक बार भी अन्तःकरणसे द्रवित होकर उन्हें पुकार लगा दी, बस, भगवान्‌को वहाँ पहुँचते क्षणभर भी नहीं लगता। गजराजकी करुण प्रार्थना हो, द्रौपदीकी दीन याचना हो अथवा अज्ञानतापूर्वक अजामिलद्वारा लगायी गयी पुकार ही क्यों न हो; भगवान्‌ने सदा अपने शरणागतोंकी रक्षा की है। अपने व्रतके प्रति उनकी प्रतिबद्धता ऐसी है कि सर्वतन्त्रस्वतन्त्र होकर भी वे भक्तोंके सुखके लिये—साधारण मनुष्यके लिये समस्त प्रकारके संकट सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं—

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥

× × ×

अवतरेउ अपने भगत हित निजतंत्र नित रघुकुलमनी॥

भक्तोंकी इच्छाएँ पूर्ण करना भगवान्‌का सहज स्वभाव है। दशरथपुत्र बनकर उन्होंने मनु-शतरूपाकी लालसा पूरी की, रावणसे संत्रस्त पृथ्वी तथा देवताओंकी पीड़ाको दूर किया; उत्पाती राक्षसकुलका संहार कर ऋषि-मुनियोंके निर्विघ्न भजनका मार्ग प्रशस्त किया और अपने नित्य शरणापन्न मुनि नारदके शाप-वचनको सार्थकता प्रदान की। वन-प्रवासके बहाने प्रभुने चिरकालसे प्रतीक्षारत शबरी, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य इत्यादि अपने सभी अनन्य उपासकोंको स्वयं उनके समीप जाकर उन्हें दर्शन दिया। मुनि सुतीक्ष्णसे भगवान् अपने अनुग्रहका कारण बड़े स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त करते हुए कहते हैं—'मेरे अतिरिक्त तुम्हारा और कोई

साधन नहीं है, इसलिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ; क्योंकि मेरे मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले जो भक्त निरपेक्ष और अनन्यगति होकर मेरी ही शरण स्वीकार कर लेते हैं, उन्हें मैं नित्यप्रति दर्शन देता हूँ।'

मन्मन्त्रोपासका लोके मामेव शरणं गताः॥
निरपेक्षा नान्यगतास्तेषां दृश्योऽहमन्वहम्।

(अ० रा० अरण्य० २। ३६-३७)

भगवान्‌को अपने सेवक प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। काकभुशुण्डिजीसे वे स्वयं इस तथ्यका उद्‌घाटन करते हुए कहते हैं कि उन्हें अपनी सृष्टिमें सभी जीवोंसे अधिक प्रिय मनुष्य हैं, मनुष्योंमें भी ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें भी वेदाचारी, उनमें भी विरक्त, विरक्तोंमें भी ज्ञानी, ज्ञानियोंमें भी विज्ञानी अधिक प्रिय हैं, किंतु जिसे मेरी गति छोड़कर किसी अन्यकी आशा नहीं रह गयी है, वह सेवक तो मुझे सबसे अधिक प्रिय है। मैं बार-बार तुमसे अपने निज सिद्धान्तका सत्य बता रहा हूँ कि मुझे अपने सेवकसदृश प्रिय और कोई नहीं है—

निज सिद्धांत सुनावउँ तोही। सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही॥
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥

(रा०च०मा० ७। ८६। २, ७-८)

कदाचित् इसीलिये भगवान् अपने प्रति किसीके किये गये अपकार तो भूल जाते हैं, परंतु निज शरणागतोंके प्रति किये गये अपराध वे सहन नहीं कर पाते। जब भगवान्‌ने वालीद्वारा सुग्रीवकी पत्नीके बलात् हरण एवं उनके प्रति किये गये अन्य अत्याचारोंकी करुण कथा सुनी तो स्वभावतः शान्त उनकी भुजाएँ क्रोधसे फड़कने लगीं—

सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला॥

उन्होंने सुग्रीवको अपने बलका विश्वास दिलाते हुए सब प्रकारसे उसके मनोनुकूल कार्य करनेका वचन दिया—*सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥* तुरंत वालिवधकी प्रतिज्ञा की—**हनिष्यामि तव द्वेष्यं शीघ्रं भार्यापहारिणम्। इति प्रतिज्ञामकरोत्सुग्रीवस्य पुरस्तदा॥** (अ० रा० कि० १। ५९) और अन्ततः अपने वचनको क्रियान्वित कर शरणागत मित्र सुग्रीवको मनोवाञ्छित फल प्रदान किया।

इसी प्रकार राक्षसराज विभीषण जब रावणका परित्याग कर भगवान्‌की शरणमें आया, तब मित्र सुग्रीवने उसे भेद लेनेके उद्देश्यसे आनेकी आशंका व्यक्त करते हुए बंदी बनाकर रखनेका नीतिगत परामर्श दिया, लेकिन शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामको यह प्रस्ताव भला कैसे स्वीकार्य होता? उन्होंने अपने व्रतको दुहराते हुए सुग्रीवसे कहा कि शरणागतोंके भयको नष्ट करना तो मेरी प्रतिज्ञा है। मेरा व्रत है—

मम पन सरनागत भयहारी॥

अपने शरणागतपालन-व्रतको सुस्पष्ट करते हुए भगवान् कहते हैं कि जिसे करोड़ों ब्राह्मणोंकी हत्याका पाप लगा हो, शरणमें आनेपर मैं उसका भी परित्याग नहीं करता—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥

पुनः भगवान् कहते हैं कि यदि विभीषण भयभीत होकर मेरी शरणमें आया है तो मैं उसे प्राणोंकी तरह रखूँगा—

जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

और कृपासिन्धु भगवान्‌ने न केवल विभीषणको अपना आश्रय प्रदान किया, बल्कि अत्यन्त सकुचाते हुए उसे अचल लङ्काराज्यरूपी वह सम्पदा सौंपी, जिसे रावणने दस सिरोंका बलिदान देकर भगवान् शिवसे प्राप्त किया था—

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

(रा०च०मा० ५।४९ ख)

देवता या राक्षस, मनुष्य या पशु-पक्षी, जिसने जब भी भगवान्‌की शरण ली, उसे उन्होंने कभी निराश नहीं किया। जिसने उन्हें सच्चे मनसे जहाँ चाहा, वहीं पा लिया और जो एक बार उनका आश्रय पा लिया, उसकी सारी जिम्मेदारियोंका वहन वे स्वयं करने लगते हैं—'**योगक्षेमं वहाम्यहम्।**' तभी तो हिरण्यकशिपु भक्तराज प्रह्लादको हरिभक्तिसे विरत करनेके सारे उद्योग करता रहा और प्रभु पल-पल उसकी रक्षा करते रहे। इसीलिये भगवान् अर्जुनसे अपने शरणागतवात्सल्य-व्रतको बताते हुए दृढ़तापूर्वक कहते हैं—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८।६६)

भगवान् अपने शरणागतपालन-व्रतकी प्रतिज्ञाको दुहराते हुए घोषणा करते हैं कि मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त हो, मेरी पूजा करनेवाला हो और मुझको ही नमस्कार कर। इससे तू निःसंदेह मुझे ही प्राप्त होगा; यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

(गीता १८।६५)

सचमुच भगवान्‌के समान कृपालु और दृढव्रती तो स्वयं भगवान् ही हो सकते हैं, जिन्होंने महाभारतयुद्धमें शस्त्रग्रहण न करनेकी अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर भक्त भीष्मकी उनसे शस्त्र उठवा लेनेकी प्रतिज्ञाको सत्य प्रमाणित करके अपने शरणागतपालन-व्रतका निर्वाह किया। भगवद्भक्त भीष्म भगवान्‌की इस अपूर्व कृपाका स्मरण करके कृतकृत्यताका अनुभव करते हैं और उनके ही चरणोंमें अपनी प्रीतिकी कामना व्यक्त करते हैं—

'भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षोः'

(श्रीमद्भा० १।९।३९)

शरणागतोंको सद्‌गति देनेवाले ऐसे अटल व्रतधारी भगवान्‌से हमारी विनती है कि वे अपने चरणोंमें हमें भी शरण प्रदान करें और हम दीन शरणागतोंपर अपनी कृपादृष्टि सदा बनाये रखें।

(डॉ० श्रीसत्येन्दुजी शर्मा, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

अङ्ग-अङ्गके उत्सव—श्रीकृष्ण

उत्सवोंका आनन्द तो उत्सवोंके उत्स श्रीकृष्णके रसिकजनोंसे पूछो—इनके उत्सव किसी दिवस या तिथिविशेषपर सम्पन्न होकर समाप्त नहीं हो जाते और न ही पुनरावृत्तिके लिये अगले वर्षकी प्रतीक्षा करते हैं, इनके तो अङ्ग-अङ्ग जब देखो तब कोई-न-कोई पर्व, कुछ-न-कुछ उत्सव मना रहे होते हैं। नयन, कर्ण, नासिका, रसना और त्वचा—सभीके अपने-अपने उत्सव हैं।

१-**नयनोत्सव**—गोपियोंका नयनोत्सव होता—जब दिव्य-दर्शन श्रीकृष्णकान्त व्रजकी वीथियोंमें, गिरिराज या यमुनाजीकी ओर आते-जाते दीख जाते। इनके सदा पिपासु नेत्र उनके राशि-राशि रूपसौन्दर्यका पान कर अपनी चिरपिपासाका शमन करते। इससे अधिक उल्लासपर्व इनके नयनोंके लिये और क्या हो सकता था?

क्रीडाप्रिय इन प्रियवरके कौतुक एवं अठखेलियोंका अवलोकन कर इनके प्रणयीजन नयनोंका परम पर्व मनाया करते हैं। नयनोंके उस उत्सवका तो क्या कहें, जब प्राणप्रेष्ठ निपट निकट—अति समीप होते हैं। अपने कमलकोमल दृगोंसे अपने अन्तरङ्गजनोंके नयनोंमें झाँककर देखते हैं।

इन्हीं प्रणयीजनोंका सर्वोपरि उत्सव—परम पर्वोत्सव तो अन्यत्र ही है। अपने प्रियाप्रियतमको परस्पर क्रीडामें निमग्न निरख—उन्हें परस्पर परमानन्दका आदान-प्रदान करते देख, उनकी कायव्यूहस्वरूपा ये सखियाँ स्वयं उसी परमानन्दका साक्षात्कार किया करती हैं। ब्रजरसकी, रसोपासनाकी परिणति यही तो है—इस उत्सव-उल्लासमें प्रेमप्रदाता! कभी ऐसे नयनानन्दसिन्धुके एक बिन्दुका उपहार हमें भी प्रदान करोगे?

२-कर्णोत्सव—मधुसे भी मधुर माधवकी अमृतोपम वाणी श्रवण कर प्रेमीजन कर्णोत्सव मनाया करते हैं। उन मनमोहनके मनोमोहक उद्‌गार कर्णोंके माध्यमसे उर-प्राणोंमें प्रवेश कर कितना सुख प्रदान करते हैं। भोरवेलामें उनकी झलककी ललक लिये गोपकुमारियाँ नन्दभवनके द्वारपर जा खड़ी होती हैं। 'यशोदारानी! प्रातः सर्वप्रथम तुम्हारे लाड़लेका मुखड़ा देखनेसे हमारे दुग्ध-दधिका विक्रय अच्छा होता है। नेक, बुला तो दो उसे बाहर।' यशोदा सब समझती हैं, कहती हैं—'पर वह तो अभी सो रहा है।' भीतरसे मधुर स्वर झंकृत होता है—'मैया! मैं जाग रहा हूँ।' दर्शनसे भी अधिक सुख इस स्वरसे प्राप्त होता है। यही है ललक-कलकवालोंका कर्णोत्सव।

सदा इनसे उलाहना-उपालम्भ रखनेवाली नहीं, करनेवाली गोपियोंको कदाचित् कहीं अधिक सुख प्रतीत तब होता है, जब यत्र-तत्र होनेवाली इनकी सराहना श्रवणगोचर हो जाय। उस समय प्रियका प्रशंसक प्रियवरसे अधिक प्रिय लगने लगता है। परमप्रेमीके परमप्रियजनो! तुम धन्य हो।

मुरलीके रन्ध्रोंमें स्वर भरकर जबतक वे हम गोपियोंको मुरलीध्वनिमें हमारे नाम ले-लेकर हमारा आह्वान करते हैं—दूर वनसे या यमुनापुलिनसे, मिलनके गीत गाते-सुनाते हैं तब लगता है इससे बड़ा उल्लास कोई होता ही नहीं। करुणावरुणालय! इस कर्णोत्सवके कतिपय कृपाकण हमपर भी बरसाओ न!

३-नासोत्सव—श्रीकृष्ण जिस मार्गसे आते-जाते हैं, उस मार्गमें प्रसरित सुवास उनके गन्तव्यका बोध करा देती है। कारण—नासिका उस सुवासको सहज ग्रहणकर स्वयं सुवासित होती है। यह सुगन्ध ग्रहण करना नासिकाका सर्वोत्तम उत्सव है। उनके चारु चरणोंमें अर्पित एवं पश्चात् उनसे उतारे निर्माल्यकी उत्साहपूर्वक सुगन्ध प्राप्त करना तो कितने ही भक्तोंके आह्लादका विषय है।

कहीं वे प्राणप्रियतम स्वयं छीनकर हमारी वस्तुएँ ग्रहण करें तब तो कुछ कहते ही नहीं बनता। चीरचोर, चितचोरसे पुनः प्राप्त चीर अब गोपियोंको अपने नहीं लगे। उनके द्वारा स्वयंगृहीत तथा स्वीकृत, उनकी संस्पृष्ट वस्तु अक्षरशः प्रसाद बन गयी और परम प्रसन्नताका विधान बन गयी। इन चीरोंमें अब उनके श्रीअङ्गोंके स्पर्शका सुवास या जिस नायिकाको उनके श्रीविग्रहसे—उनके कमनीय कलेवरसे स्पर्शित वायु श्वासमें मिली है, उनके इस घ्राणोत्सवका किञ्चित् परिचय हे गोपीवल्लभ! कभी हमें भी कराओ न!

४-वाक्-उत्सव—वक्ताशिरोमणि, हास-परिहासप्रवीण, व्रजके रँगीले-रसीले ठाकुरके साथ सम्भाषणका सुख अपने-आपमें उत्सव है। रासलीलामें अन्तर्धान हुए श्यामसुन्दर जब गोपियोंके सामने पुनः प्रकट हुए तो इन्होंने उन्हें छकानेके लिये सीधा प्रश्न किया—अन्तर्धान होकर हमें क्यों सताते हो? तुम जानते हो कि तुम्हारा मिलनसुख, तुम्हारा प्रेम ही हमारा एकमात्र धन है। वे बोले—सचमुच क्या तुम मेरे प्रति प्रेमको ही परमधन मानती हो? तुम्हारे प्रेमसे अधिक हमारा धन हो ही क्या सकता है? तो ठीक है मेरे अभावमें वह धन घटा या बढ़ा? बढ़ा न! तुम्हारा धन बढ़ाकर मैंने तुम्हारा प्रिय किया है या अप्रिय? स्वयं गोपियाँ निरुत्तर!

सामने सराहना करनेमें संकोची श्रीराधाजीने जब एक बार कहा कि श्यामसुन्दर! सारा संसार ही तो तुम्हें चाहता-सराहता है तो वे बोले—वही मैं तुम्हें! तो कौन अधिक हुआ? भोरी किशोरीने नयनोंमें मुसकराकर, तनिक उन्हें

निहारकर इनके पादपद्मोंपर अपना कोमल कर रख दिया। **'वमितं मधुरम्'**—उनके श्रीमुखसे अनायास अकस्मात् नि:सृत उनके उद्‌गार बड़े प्रफुल्लित करनेवाले होते हैं। फ्रांसीसी संत लारेंस कहते थे कि परमात्माके साथ मानसिक सम्भाषण उनकी प्राप्तिका सुनिश्चित साधन है। काश! हम भी इस सुखके पात्रमात्र कभी बन जायँ।

५-स्पर्शोत्सव—यों तो प्राणप्रियतमका दर्शन, उनका स्वरश्रवण, उनका सुवास, उनका सम्भाषण—सभी परम पर्वोत्सव हैं, पर सबकी परिणति, सबका पराकर्ष तो उनके श्रीअङ्ग-सङ्गमें ही है। वे कण्ठसे लगा लें, हृदयसे लगा लें तो सब पर्व, सब उत्सव सम्मिलित हो जाते हैं—इस एक उत्सवमें।

यह प्राप्त हो जानेपर तो नित्योत्सव है, नित्य नवोत्सव। गोपियाँ हों या गौराङ्गदेव, मीराजी हों या आंडाळ, भले ही हालहीके उनके प्रेमी-प्रियजन हों—सब उनके नित्य निजधाममें सतत उत्सव मना रहे हैं।

ऐसे उत्सवकी पात्रता कभी हमें भी प्रदान कर दो हमारे उत्सवोंके उत्स, हमारे हृदयके स्वामी! हमारा अमर जीवन उत्सवमय हो जाय।

(श्रीश्याम भाईजी) [प्रेषिका—सुश्री अरुणिमाजी]
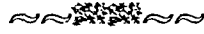
मानवीय मर्यादाके प्रतीक सत्यव्रती श्रीरामका दृढव्रत

['सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई']

भगवान् श्रीरामके आदर्श चरित्रमें उनका दृढव्रत मूलत: अधिष्ठित है। श्रीराम मानवीय मर्यादाके प्रतीक पुरुष हैं और गोस्वामी तुलसीदासजीके श्रीरामचरितमानसमें इस मर्यादाका आधार उनका दृढव्रत है।

'व्रत' शब्दका कोशगत अर्थ धार्मिक कृत्य, धार्मिक अनुष्ठान, नियम, संयम और प्रतिज्ञा है। जो आपत्तिमें भी धर्म न छोड़े वह दृढव्रत कहलाता है। श्रीवाल्मीकिजी श्रीरामके असंख्य गुणोंका उल्लेख करते हुए उनके संदर्भमें दो अभिव्यक्तियोंका उपयोग करते हैं—'सत्यवाक्य' तथा 'दृढव्रत'।

गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसमें कहते हैं कि श्रीरामगुणग्राम श्रीसीतारामजीके प्रति प्रेमकी उत्पत्तिके लिये जननी और जनक हैं तथा सब व्रत, धर्म और नियमोंके बीज हैं—

जननि जनक सिय राम प्रेम के । बीज सकल ब्रत धरम नेम के ॥

अर्थात् श्रीरघुनाथजी सभी व्रतोंके बीज हैं। उनके प्रतिकूल जितने व्रत, धर्म और नियम हैं, वे सब निर्मूल हैं, निष्फल हैं। श्रीरामजीने अपने चरितद्वारा समस्त व्रतों, धर्मों और नियमोंका पालन करके एक आदर्श स्थापित किया है। सच तो यह है कि जीवन और जगत्‌के सारे व्रत श्रीरामसे ही मर्यादित होते हैं, इसीसे यहाँ चरितको व्रतादिका बीज कहा गया है।

श्रीरामका जीवन दृढव्रतका पर्याय है। वाल्मीकिरामायणमें श्रीराम कहते हैं—सीते! मैं तुम्हें छोड़ सकता हूँ, लक्ष्मणको छोड़ सकता हूँ, अपने प्राणोंका भी परित्याग कर सकता हूँ, परंतु जो मैंने प्रतिज्ञा की है विशेषत: ब्राह्मणोंके प्रति, उसे मैं कभी नहीं छोड़ सकता—

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्॥
न तु प्रतिज्ञा संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।

(वा० रा० ३।१०।१८-१९)

इसी प्रकार अन्यत्र भी श्रीरामके दृढव्रतकी प्रशंसा करते हुए वाल्मीकिजी कहते हैं—'राम सत्य पराक्रमवाले हैं। उनके प्राण भले ही चले जायँ, वे कभी झूठ नहीं बोलते, सदा सत्य भाषण करते हैं। वे देना ही जानते हैं, लेना नहीं'—

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम्।
अपि जीवितहेतोर्हि रामः सत्यपराक्रमः॥

(वा०रा० ५।३३।२५)

अन्यत्र भी श्रीरामके इन गुणोंका वर्णन मिलता है—

द्विः शरं नाभिसंधत्ते…… रामो द्विर्नाभिभाषते॥

(महानाटक २।२४, हनुमन्नाटक १।४९)

श्रीरामके बाणका प्रभाव तो जगविदित है। अपने

भक्तोंके त्राण और लोककल्याणके लिये राक्षसोंके प्राण एक ही बाणमें ले लेते हैं।

श्रीरामचरितमानसमें ताड़का, मारीच, सुबाहु आदिका वध एक ही बाणमें करते हैं तथा जयन्तलीला, वालिवधप्रतिज्ञा, रावणसभाभंग, मेघनादके मायायुद्धके संदर्भमें एक ही बाणका वर्णन मिलता है।

एक रावण क्या, जब रावणने मायासे स्वयं सैकड़ों रूप धारण करके वानरसेना एवं देवताओंको अत्यन्त भयभीत कर दिया, तब—

सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस॥

(रा०च०मा० ६।९६)

इन सभीके पीछे भगवान्‌की वह दृढ प्रतिज्ञा है, जो मुनियोंके समक्ष वे वीरोचित भावमें उद्घोषित करते हैं—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

(रा०च०मा० ३।९)

भगवान् श्रीरामको सत्यसन्ध कहनेका संदर्भगत अर्थ है कि वे कैकेयीसे वन जानेकी प्रतिज्ञा कर चुके हैं, उसे न छोड़ेंगे और दृढव्रत हैं अर्थात् जो मुनिव्रत, तपस्वी वेष धारण कर लिया है, उसका परित्याग न करेंगे; क्योंकि रघुराई हैं अर्थात् सभी रघुवंशी सत्यप्रतिज्ञ और दृढव्रती होते हैं, पर ये सब रघुवंशियोंके राजा हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं।

ऐसे श्रीरामके दृढव्रतके दो मूल आधारभूत तत्त्व हैं—शरणागतवत्सलता और अभयदान। वाल्मीकिरामायणमें भगवान् श्रीरामका स्पष्ट उद्घोष है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा०रा० ६।१८।३३)

अर्थात् जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ'—ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा सदाके लिये व्रत है।

लोक-जीवनमें अन्नदान, द्रव्यदान, गोदान आदिका बड़ा महत्त्व है। मनुष्य इन दानोंसे पुण्यार्जन करता है, परंतु श्रीराम सम्पूर्ण जीवलोकको अभयदान देते हैं। यह दान सर्वोपरि है और यही प्रभु श्रीरामकी भगवत्ता है।

अभयदान भगवान् श्रीरामका प्रमुख जीवनव्रत है। श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामीजीने भगवान् श्रीरामके अभयदानका वर्णन प्रमुखतासे किया है।

देवताओं और पृथ्वीको भयभीत जानकर उनके स्नेहयुक्त वचन सुनकर शोक और संदेहको हरनेवाली गम्भीर आकाशवाणी हुई—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
हरिहउँ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई॥
तब ब्रह्माँ धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जियँ आवा॥

(रा०च०मा० १।१८७।१, ७, ९)

दृढव्रती श्रीरामके अवतरणकी आकाशवाणीसे ही पूरी पृथ्वी और पूरा देवलोक निर्भय हो गया, यह श्रीरामका अभयदान है।

अवतरणके पश्चात् जब श्रीराम प्रथम-प्रथम लोकोद्धारके लिये विश्वामित्र-आश्रमकी ओर चरण बढ़ाते हैं तो दृढव्रती श्रीरामजी एक ही बाणसे ताड़काका वध करते हैं और मुनि विश्वामित्रको अभयदान देते हैं—

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥

(रा०च०मा० १।२१०।१)

श्रीरामचरितमानसके दो प्रमुख पात्र सुग्रीवजी और विभीषणजी अपने ही भाईके अत्याचारसे भयभीत तथा संत्रस्त हैं। भगवान् श्रीराम दोनोंको अभयदान देते हैं। वातात्मज श्रीहनुमान् अपने परमाराध्य श्रीरामजीसे कहते हैं—

नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥
तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे॥

(रा०च०मा० ४।४।२-३)

दृढव्रती श्रीरामने जब सुग्रीवजीकी व्यथा-कथा सुनी तो उनकी दोनों भुजाएँ फड़क उठीं और एक ही बाणसे वालिवध करके सुग्रीवको निर्भय करनेकी प्रतिज्ञा की। अति कृपालु रघुवीरने सुग्रीवको वालित्राससे मुक्त कर दिया—

बालि त्रास ब्याकुल दिन राती। तन बहु ब्रन चिंता जर छाती॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥

(रा०च०मा० ४।१२।३-४)

इसी प्रकार रावणके अत्याचारसे प्रताड़ित श्रीविभीषणजी जब त्राहि-त्राहि करते हुए श्रीरामकी शरण ग्रहण करते हैं—

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।

त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

(रा०च०मा० ५।४५)

तब भगवान् श्रीराम उन्हें हृदयसे लगा लेते हैं, विभीषणजी धन्य-धन्य हो जाते हैं और कहते हैं—

अब मैं कुसल मिटे भय भारे। देखि राम पद कमल तुम्हारे॥

(रा०च०मा० ५।४७।५)

हे श्रीरामजी! आपके चरणारविन्दके दर्शन कर अब मैं कुशलपूर्वक हूँ, मेरे भारी भय मिट गये।

शरणागतवत्सल श्रीरामको बार-बार विभीषणका ही स्मरण हो रहा है—

तात को सोच न मातु को सोच न सोच अवध के राज गये को।
पंचबटी बन माँझ छुटी नहीं सोच जटायु के पंख जरे को॥
लछिमन के उर सक्ति लगी नहिं सोच है रावण सीय हरे को।
बारहिं बार कहें रघुनाथ मोहि सोच विभीषण बाँह गहे को॥

सच है दृढव्रती भगवान् श्रीराम जिसे एक बार आश्रय दे देते हैं, उसे फिर त्यागते नहीं—

तुलसी अजहूँ राम भजु छाँड़ि कपट-छल छाँह।
सरनागत की राम ने कब नहिं पकरी बाँह॥

भगवान् श्रीरामका आश्रय जिसने लिया उसको दूसरेका आश्रय नहीं लेना पड़ा है—

द्विः स्थापयति नाश्रितान्॥

(हनुमन्नाटक १।४८)

रामचन्द्रजी आश्रितोंको दो बार स्थापित नहीं करते, एक ही बारमें अभय कर देते हैं। ऐसे असंख्य उदाहरण मानस एवं अन्य ग्रन्थोंमें मिलते हैं।

भगवान् श्रीरामने अवतरणके पूर्व आकाशवाणीसे देवताओंको अभयदान दिया था, उस वचनकी पूर्ति रावणवधसे श्रीरामने की। गोस्वामीजी मानसमें कहते हैं—

कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद।
भालु कीस सब हरषे जय सुख धाम मुकुंद॥

(रा०च०मा० ६।१०३)

इस प्रकार अयोध्याकी क्रीडाभूमि हो या जनकपुरकी रंगभूमि, अरण्यकी लीलाभूमि हो अथवा लङ्काकी युद्धभूमि श्रीरामका व्रत कहीं खण्डित नहीं होता।

ऐसे दृढव्रती, शरणागतवत्सल, अभयदाता श्रीरामजीकी कृपासे ही उनकी शरण ग्रहण कर भयभीत और संत्रस्त जीव भवसागरसे तर सकता है, ऐसी दृढोक्ति मानसमें काकभुशुण्डिजीकी है—

अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥
साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतग्य संन्यासी॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी॥
तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥

(रा०च०मा० ७।१२४।४—७)

(डॉ० श्रीराधानन्द सिंहजी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, एल्-एल्०बी०)

'आज नृप सकल सम्पदा पाई'

'प्रभु जगनाथ अवधमें आयो, घर-घर बजत बधाई'
आज नृप सकल सम्पदा पाई

चैत शुकुल नौमीतिथी आजू
लियो अवतार प्रभु जग राजू
सुर, नर, मुनि सब नाचन लागे
सकल धरा हरसाई॥ आज०॥
जगके मातु पिता श्रीनाथा
पालत, सृजत, हरत रघुनाथा
प्रेम भगतिके पाछे स्वामी
बिसर गये प्रभुताई॥ आज०॥

भगत बछल प्रभु वचन निभायो
अंसन सहित अवधमें आयो
मातु कौशिला अति बड़भागी
रघुपति सो सुत पाई॥ आज०॥
प्रेममगन तीनों महतारी
श्याम मनोहर सुत छबि प्यारी
कहे 'बेताब' परम सुख ऐसो
कौ कर सकत बड़ाई॥ आज०॥

('श्रीवेतावजी' केवलारवी)

भरतजीके व्रत-नियम

['जासु नेम ब्रत जाइ न बरना']

महामहिमामण्डित भरतजीका उज्ज्वल विशाल हृदय रत्नाकरके समान गुणरत्नोंकी खान है। रघुवंशकी यशस्वी-परम्पराके अनुकूल उनके शास्त्रसम्मत विचार हिमगिरिके समान उच्च एवं महान् हैं। भरतजीका यशस्वी उज्ज्वल चरित्र निर्मल निष्कलंक चन्द्रमाके समान शुभ्र एवं पवित्र है। उनका चित्त आकाशवत् सबके लिये प्रेम, भक्ति एवं मैत्रीका शुभ पावन स्थल है तथा उनकी पावन कीर्ति गङ्गाजीके समान सबका हित करनेवाली है।

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

भरतजीके मानस एवं जिह्वापर सरस्वतीका निवास है। नियम-व्रतका दृढ़तासे पालन करनेके कारण उनकी जिह्वा मरालीके समान है। उनकी वाणीमें विवेक, धर्म एवं नीतिरूपी त्रिवेणीका पावन संगम है।

बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥

तुलसीदासजी भरतजीकी वन्दना सर्वप्रथम करते हुए कहते हैं—

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥

भरतजी भगवान्‌के अंश हैं। ब्रह्मकोटिकी आत्मा हैं। अत: भगवान्‌के समान रामानुज भक्तके चरण ब्रह्मांश होनेके कारण परम पूज्य एवं आराध्य हैं। कठोपनिषद्‌के अनुसार जीवका परम लक्ष्य व्रत, संयम, नियमका पालन करते हुए मन, बुद्धिपर नियन्त्रण करके, इन्द्रियरूपी घोड़ेको वशमें करके श्रेयपथ—सन्मार्गपर चलकर विष्णुपद प्राप्त करना है। अत: जीवमात्रके लिये भरतजी महानतम आदर्श हैं। उनका नियम-व्रत सराहनीय है। हमलोगोंके लिये दैनिक जीवनमें नित्य आचरणीय है, परम पवित्र है। उन्होंने *'संपति सब रघुपति कै आही'*—इस अनासक्ति-व्रतका जीवनभर पूर्ण-रूपेण पालन किया। भरतजीका व्रताचरण मानवमात्रके लिये परम कल्याणप्रद है। उनके साथ अयोध्यावासी भी व्रत करते हैं—

पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग॥

व्रतमें फलाहार, दुग्धाहार, अन्नत्याग, एक समय भोजन इत्यादि अनेक विधान हैं। अन्नत्याग व्रतमें इसलिये आवश्यक है कि अन्नके दोष-गुणसे रस, रक्त, मांसादि प्रभावित होते हैं। अत: शरीरके दोषोंको दूर करनेहेतु शरीरको हलका, स्फूर्तिदायक, स्वस्थ बनानेहेतु अन्नत्याग अत्यन्त आवश्यक एवं आयुर्वेदसम्मत है।

तीर्थ-सेवनसे भी सत्य एवं श्रद्धा गुणोंकी प्राप्ति होती है और व्रताचरणका सम्यगनुपालन सध जाता है। भरतजी प्रयागमें त्रिवेणीसंगमपर श्रद्धापूरित हृदयसे परम सत्यरूप व्रतकी प्राप्तिहेतु प्रार्थना करते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

भरतजीके व्रत-नियमसे प्रभावित होकर भरद्वाजजीने कहा—

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥

भरतजीने भरद्वाजके आतिथ्य-सत्कार—जिस सत्कारमें ऋद्धि-सिद्धियोंने स्वर्गिक भोगकी सामग्री जुटा रखी थी, उस ओर मनसे भी स्पर्श नहीं किया।

संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार॥

अयोध्याकाण्ड द्रष्टव्य है। बार-बार पठनीय, मननीय एवं आचरणीय है; क्योंकि उसमें भरतजीका पावन चरित्र है। भरतजीके हृदयमें सियारामजीका निवास है। अत: वे सांसारिक भोगोंमें कैसे फँस सकते थे? भोगसे अज्ञानकी प्राप्ति होती है और मन मलिन हो जाता है।

भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥

वाल्मीकिजीने भगवान्‌के निवासहेतु चौदह स्थान बताये हैं, जिसमें *'चरन राम तीरथ चलि जाहीं'* भी एक है और भरतजीकी दशा देखिये—

चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु॥

भरतजीने अयोध्याके विशाल राज्यको ठुकरा दिया, जिसे देखकर इन्द्र भी ईर्ष्या करते थे।

अवध राजु सुर राजु सिहाई । दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा॥

भरतजीके व्रतपालनके परिणामसे उनका मुखमण्डल कमलके समान खिला रहता है। देह दुर्बल तो हो रही है लेकिन तेज, बलकी वृद्धि हो रही है। व्रतपालनसे उत्साह बढ़ता ही जा रहा है। मनकी निर्मलतासे श्रीरामप्रेमकी पुष्टि हो रही है—

नित नव राम प्रेम पनु पीना । बढ़त धरम दलु मनु न मलीना॥
सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं । देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥

भरतजीके इस व्रतको देखकर मुनि वसिष्ठजीने आशीर्वाद देते हुए कहा—

समुझब कहब करब तुम्ह जोई । धरम सारु जग होइहि सोई॥

हनुमान्-भरतमिलन-प्रसंग कलिके जीवोंके उद्धारके लिये परम स्मरणीय है। व्रतोपासनामें इष्टदेवका ध्यान कैसे किया जाय? भरतजी इसके अनुपम उदाहरण हैं। हनुमान्‌जीने भरतजीको देखा—

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥

शान्त, अचल, स्थिर, कुशके आसनपर बैठे हुए भरतजी राम-रामका जप कर रहे हैं। प्रेममें गद्गद हैं। आँखोंसे अश्रुप्रवाह हो रहा है। यदि हम भी शान्तचित्त स्थिर आसनमें बैठकर श्रीरामनाम-स्मरण करें तो शीघ्र ही रामराज्यके नागरिक बन जायँगे। हमारा सर्वविध कल्याण अवश्य होगा। त्रिविध ताप शान्त हो जायँगे।

भगवान् श्रीरामको माता कैकेयीके आदेशसे वन मिला था। भरतजीको विधिसम्मत राज्य प्राप्त हुआ था। भगवान् श्रीरामने चौदह वर्षोंतक अपने व्रतका पूर्ण निर्वाह किया। वे निषादराज गुहसे कहते हैं—

बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु॥

मुनिव्रतका पालन श्रीरामजीने जंगलमें किया, लेकिन भरतजीने तो अवध-जैसे राज्यमें भोगोंके बीच रहकर भोगरूपी पापपङ्कसे अलिप्त कमलकी भाँति राम-प्रेमके व्रतका परिपालन किया। जिसे देखकर सब कह उठे—

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥

पुण्यकार्य करनेमें विघ्न-बाधाएँ भी आती हैं। चित्रकूट-यात्राके समय इन्द्रने सरस्वतीसे भरतकी मति फेरनेको कहा। लेकिन सरस्वतीने इन्द्रकी बात नहीं मानी। देवराज इन्द्रको गुरु बृहस्पतिजीने समझाया कि भरतजी भक्तशिरोमणि हैं, उनसे डरना उचित नहीं है। साथ ही यह भी बताया—

भरत सरिस को राम सनेही । जगु जप राम रामु जप जेही॥

इसलिये भरतजीके चरणोंमें अनुराग करो। सब विधिसे मङ्गल होगा। देवराज इन्द्र मान गये और उनका स्वभाव बदल गया।

पुण्यात्मा—धर्मात्माके दर्शन, स्मरण एवं कीर्तनसे

आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति होती है। जैसे चित्रकूटके मार्गपर स्त्री-पुरुषोंको सुखकी प्राप्ति भरतजीके दर्शनसे हुई। सबका भवरोग मिट गया। परमपदके योग्य हो गये। मानो उनके लिये रेगिस्तानमें कल्पतरु उग आया। जीवन अमृतमय बन गया। जन्मसे रंकको मानो पारस मिल गया—

भरत दरसु देखत खुलेउ मग लोगन्ह कर भागु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु॥

अन्तमें भरतजीके व्रत-नियमकी फलश्रुतिके विषयमें गोस्वामीजी कहते हैं—

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

तुलसीदासजीकी ज्योतिर्मयी प्रज्ञाको प्रणाम है, जिन्होंने भरतप्रेमका इतना दिव्य अनुरागपूर्ण सुन्दर ढंगसे विवेचन किया।

भरतजीके इस प्रकारके महान् उदात्त तपस्या-व्रतका ध्यान करते हुए अपना जीवन धन्य बनाना चाहिये।

(डॉ० श्रीओ३म्प्रकाशजी द्विवेदी)

श्रीहनुमान्‌जीका सेवाव्रत

श्रीरामजीके सेवकोंमें हनुमान्‌जी अद्वितीय हैं तभी तो भगवान् श्रीशंकरजी कहते हैं—

हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥
(रा०च०मा० ७।५०।८-९)

यद्यपि बड़भागी तो अनेक हैं। मनुष्यशरीर प्राप्त करनेवाला प्रत्येक प्राणी बड़भागी है; क्योंकि—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
(रा०च०मा० ७।४३।७)

परंतु मनुष्यशरीर प्राप्तकर सच्चे अर्थमें बड़भागी तो वह है जो श्रीरामकथाका श्रवण करे—

जे सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी॥
(रा०च०मा० १।१५२।३)

तथा श्रीरामकथाका श्रवण करके जो श्रीरामानुरागी हो जाते हैं वे मात्र बड़भागी ही नहीं, अपितु अति बड़भागी हैं, तभी तो वानर कहते हैं—

हम सब सेवक अति बड़भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी॥
(रा०च०मा० ४।२६।१३)

जो भक्तिमार्गपर चलकर भगवान्‌की ओर बढ़ते हैं वे अति बड़भागी हैं, किंतु भगवान् कृपापूर्वक जिसके पास स्वयं चलकर पहुँच जाते हैं वे तो अतिशय बड़भागी हैं, तभी तो तुलसीदासजी माता अहल्याके लिये लिखते हैं—

अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी…।

परंतु परहितके भावसे प्रभुकी सेवामें देहोत्सर्ग कर देनेवाले श्रीजटायुजीको भी श्रीरामचरितमानसकी भावभरी भाषामें परम बड़भागी कहकर सम्बोधित किया गया है। यथा—

राम काज कारन तनु त्यागी। हरि पुर गयउ परम बड़ भागी॥
(रा०च०मा० ४।२६।८)

भगवान् शंकर कहते हैं कि भले ही कोई बड़भागी, अति बड़भागी, अतिशय बड़भागी और परम बड़भागी बना रहे, किंतु—

हनूमान सम नहिं बड़भागी।

क्योंकि—

गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥

हनुमान्‌जी श्रीरामजीके प्रति सेवाभावसे समर्पित हैं किंतु उन्हें सेवक होनेका अभिमान नहीं है; क्योंकि उनका मन प्रभुप्रीतिसे भरा है। *'प्रीति सेवकाई'* दोनोंका उनमें मणिकाञ्चनयोग दिखायी देता है। वे अपनेको प्रभुके हाथोंका बाण समझते हैं—

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥

(रा०च०मा० ५।१।८)

किसीने बाणसे पूछा कि तुम्हारे चरण तो हैं नहीं फिर भी तुम चलते हो अर्थात् साधनके बिना तुम्हारी गति कैसे होती है तो बाणने उत्तर दिया कि मैं अपने चरणसे नहीं चलता, वरन् मैं अपने स्वामीके हाथसे चलता हूँ। मैं तो साधनहीन हूँ, मेरी गति तो भगवान्‌के हाथ है। इस प्रकार हनुमान्‌जी अपनेको श्रीरामजीका बाण समझकर सेवा करते हुए अपनी प्रत्येक सफलतामें भगवान्‌की कृपाका हाथ देखते हैं। इसलिये जब श्रीजानकीमाताने उलाहना देते हुए कहा—हनुमन्! प्रभु तो अत्यन्त कोमलचित्त हैं, किंतु मेरे प्रति उनके कठोरतापूर्ण व्यवहारका कारण क्या है?

कोमलचित कृपाल रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई॥

(रा०च०मा० ५।१४।४)

इतना कहते-कहते माता मैथिली अत्यन्त व्यथित हो गयीं, उनके नेत्र निर्झर हो गये। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। अत्यन्त कठिनाईसे वे इतना ही कह पायीं कि आह! प्रभुने भी मुझे भुला दिया।

बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥

(रा०च०मा० ५।१४।७)

हनुमान्‌जीने निवेदन किया माँ! प्रभुने आपको भुलाया नहीं है तो श्रीजानकीमाताने पूछा कि इसका क्या प्रमाण है कि प्रभुने मुझे भुलाया नहीं है, तब हनुमान्‌जीने प्रतिप्रश्न करते हुए कहा कि माता! प्रभुने आपको भुला दिया है इसका क्या प्रमाण है? जानकी मैयाने कहा कि चित्रकूटमें इन्द्रपुत्र जयन्तने कौआ बनकर मेरे चरणमें चोंचका प्रहार किया तो प्रभुने उसके पीछे ऐसा बाण लगाया कि उसे कहीं त्राण नहीं मिला, किंतु आज मेरा हरण करनेवाला रावण त्रिकूटपर बसी लङ्कामें आरामसे रह रहा है, इसीलिये लगता है—

अहह नाथ हौं निपट बिसारी॥

तब हनुमान्‌जीने कहा—माँ! प्रभुने जयन्तके पीछे तो सींकके रूपमें बाण लगाया था—

चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना॥

(रा०च०मा० ३।१।८)

माताजी! सोचिये लकड़ीकी छोटी-सी सींक, क्या बाण बनी होगी! जानकी मैया बोलीं—बेटा! बात सींककी नहीं, प्रभुके संकल्पकी है।

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥

(रा०च०मा० ३।२।१)

हनुमान्‌जीने फिर कहा—माँ! यदि जयन्तके पीछे प्रभुने सींकके रूपमें बाण लगा दिया तो क्या यह सम्भव नहीं कि रावणके पीछे प्रभुने वानरके रूपमें बाण लगा दिया हो। हे माता! आप कृपापूर्वक देखिये तो आपके समक्ष हनुमान्‌के रूपमें श्रीरामजीका बाण ही उपस्थित है—

जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चलेउ हनुमाना॥

(रा०च०मा० ५।१।८)

माता! प्रभुने आपको भुलाया नहीं है, आप चिन्ता न करें—

निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥

(रा०च०मा० ५।१५)

अब यहाँ रघुपतिबाणसे *'जिमि अमोघ रघुपति कर बाना'* तथा कृशानुसे *'दनुजवनकृशानुम्'* का संकेत मिलता है।

श्रीजानकीमाता अत्यन्त प्रसन्न होकर बोलीं—बेटा! तुमने मेरे मनका भ्रम मिटा दिया। मैं समझ गयी कि श्रीरामबाणके रूपमें तुम मेरे समक्ष उपस्थित हो। हनुमान्‌जी बोले—त्राहि! माता त्राहि! आप ऐसा न कहें आपको तो पहलेसे ही यह विदित था कि श्रीरामबाणके रूपमें यहाँ हनुमान् उपस्थित है। तभी तो आपने रावणको फटकारते हुए कहा था—

अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥

(रा०च०मा० ५।९।८)

उपर्युक्त प्रसंगसे इसी तथ्यकी पुष्टि होती है कि

हनुमान्‌जी अपनेको प्रभुका बाण अर्थात् उनके हाथका यन्त्र समझते हैं। तभी तो लङ्कादहन-जैसा दुष्कर कार्य करके जब वे श्रीजानकीमाताके पास पहुँचे तो संत तुलसीदासने लिखा—

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि॥
(रा०च०मा० ५।२६)

करबद्ध मुद्रामें अत्यन्त विनम्र लघुरूपधारी अपने लाड़ले लाल हनुमान्‌जीको देखकर जानकीमाता बोलीं—बेटा हनुमन्!

लंक जला के जली भी नहीं हनुमन्त विचित्र है पूँछ तुम्हारी।
कौन-सा जादू 'राजेश' भरा हँसि पूँछति हैं मिथिलेश दुलारी

हनुमान्‌जीने उत्तर दिया—माँ!

बोले कपी हिय राघव आगे हैं पीछे है पूँछ रहस्य है भारी
वानर को भला पूछता कौन श्रीरामजीके पीछे है पूँछ हमारी

ऐसे परम विनम्र श्रीराम-सेवाव्रती हनुमान्‌जीके चरणों शत-शत नमन।

जिनके लिये स्वयं भगवान् शंकर कहते हैं—

हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी।
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई।
(स्वामी श्रीराजेश्वरानन्दजी सरस्वती 'राजेश रामायणी')

जगन्माता पार्वतीका तपोव्रत

संस्कृत वाङ्मयमें भगवती पार्वतीके तपोव्रतका वर्णन विस्तारसे किया गया है। शिवपुराणमें कथा आती है कि ब्रह्माजीके आदेशानुसार भगवान् शंकरको वरण करनेके लिये पार्वतीने कठोर तप किया था। ब्रह्माके आदेशोपरान्त महर्षि नारदने पार्वतीको पञ्चाक्षर-मन्त्र—'**शिवाय नमः**' की दीक्षा दी। दीक्षा लेकर पार्वती सखियोंके साथ तपोवनमें जाकर कठोर तपस्या करने लगीं। उनके कठोर तपका वर्णन शिवपुराणमें इस प्रकार आया है—

हित्वा मतान्यनेकानि वस्त्राणि विविधानि च।
वल्कलानि धृतान्याशु मौञ्जीं बद्ध्वा तु शोभनाम्॥
हित्वा हारं तथा चर्म मृगस्य परमं धृतम्।
जगाम तपसे तत्र गङ्गावतरणं प्रति॥
(रुद्रसंहिता, पार्वतीखण्ड २२।२९-३०)

माता-पिताकी आज्ञा लेकर पार्वतीने सर्वप्रथम राजसी वस्त्रों तथा अलंकारोंका परित्याग किया। उनके स्थानपर कटिमें मूँजकी मेखला धारणकर वल्कल वस्त्र पहन लिया। हारको गलेसे निकालकर मृगचर्म धारण किया और गङ्गावतरण नामक पावन क्षेत्रमें सुन्दर वेदी बनाकर वे तपस्यामें बैठ गयीं।

पार्वतीकी उग्र तपस्याका वर्णन शिवपुराणमें पुनः इस प्रकार किया गया है—

ग्रीष्मे च परितो वह्निं प्रज्वलन्तं दिवानिशम्।
कृत्वा तस्थौ च तन्मध्ये सततं जपती मनुम्॥
सततं चैव वर्षासु स्थण्डिले सुस्थिरासना।
शिलापृष्ठे च संसिक्ता बभूव जलधारया॥
शीते जलान्तरे शश्वत्तस्थौ सा भक्तितत्परा।
अनाहारातपत्तत्र नीहारेषु निशासु च॥
एवं तपः प्रकुर्वाणा पञ्चाक्षरजपे रता।
दध्यौ शिवं शिवा तत्र सर्वकामफलप्रदम्॥
(रुद्रसं०, पार्वतीखण्ड २२।४०—४३)

भाव यह है कि मन और इन्द्रियोंका निग्रहकर पार्वतीजी ग्रीष्मकालमें अपने चारों ओर अग्नि जलाकर बीचमें बैठ गयीं तथा ऊपरसे सूर्यके प्रचण्ड तापको सहन करती हुई तनको तपाती रहीं। वर्षाकालमें वे खुले आकाशके नीचे शिलाखण्डपर बैठकर अहर्निश जलधारासे शरीरको सींचती रहीं। भयंकर शीत-ऋतुमें जलके मध्य रात-दिन बैठकर उन्होंने कठोर तप किया। इस प्रकार निराहार रहकर पार्वतीने पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करते हुए सकल मनोरथ पूर्ण करनेवाले भगवान् सदाशिवके ध्यानमें मनको लगाया।

महाकवि तुलसीदासने श्रीरामचरितमानसमें पार्वतीके तपका वर्णन अत्यन्त रोचक ढंगसे प्रस्तुत किया है। सयानी पार्वतीको देखकर माता मैना और पिता हिमालयको पुत्रीके विवाहकी चिन्ता हुई। इतनेमें महर्षि नारद वहाँ आ गये। नारदजीको घरमें आया देखकर राजा-रानीने कन्याके

भविष्यके विषयमें पूछा—

त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन मुनिबर हृदयँ बिचारि॥

(रा०च०मा० १।६६)

नारदजीने पार्वतीका हाथ देखकर जो भविष्यवाणी की वह इस प्रकार है—

कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी। सुता तुम्हारि सकल गुन खानी॥
सुंदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी॥
सब लच्छन संपन्न कुमारी। होइहि संतत पियहि पिआरी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। एहि तें जसु पैहहिं पितु माता॥

(रा०च०मा० १।६७।१—४)

हिमवान्‌ने प्रश्नमें बेटीके अवगुण पहले पूछे थे, किंतु नारदजीने पहले पार्वतीके गुणोंका कथन किया। नारदजी चतुर और मनोवैज्ञानिक वक्ता हैं। अत: माता-पितासे पार्वतीके दिव्य गुणोंकी चर्चा करते हैं। सद्गुणोंकी एक लम्बी सूची नारदजीने प्रस्तुत की, किंतु जब हिमवान्‌ने पूछा कि महाराज! कुछ दोष हों तो वे भी बतला दें। पुन: नारदजीने कहा—*'सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी'*—दो-चार अवगुण भी हैं उन्हें भी सुन लो—

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी॥

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख॥

(रा०च०मा० १।६७।७; दो० ६७)

नारदजीने कहा कि आपकी पुत्री तो सर्वगुणसम्पन्न है, किंतु इसका पति जटाजूटधारी, नग्न तथा अमङ्गलवेशवाला होगा। नारदजीकी बात सुनकर माता-पिता तो उदास हो गये, किंतु पार्वतीको आन्तरिक प्रसन्नता हुई—

सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी॥
नारदहूँ यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना॥

(रा०च०मा० १।६८।१-२)

माता-पिताकी उदासीका कारण यह है कि सर्वगुणरूपसम्पन्न कुमारीको ऐसा अमङ्गलवेशधारी पति मिलेगा और पार्वती इसलिये प्रसन्न हैं कि हमें भगवान् शिवजी मिलेंगे। राजा-रानीकी उदासीको दूर करते हुए नारदजीने आगे स्पष्ट कर दिया—

जे जे बर के दोष बखाने। ते सब सिव पहिं मैं अनुमाने॥
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषउ गुन सम कह सबु कोई॥

(रा०च०मा० १।६९।३-४)

नारदजीने कहा कि जिन दोषोंका वर्णन मैंने किया वे सभी शंकरजीमें हैं और पार्वतीका विवाह यदि भगवान् शंकरसे हो गया तो ये दोष भी गुणमें परिणत हो जायँगे; क्योंकि समर्थवान्‌को दोष नहीं लगते—

समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥

(रा०च०मा० १।६९।८)

और अन्तमें नारदजीने यहाँतक कह दिया कि शिवको छोड़कर संसारमें पार्वतीके लिये दूसरा वर है ही नहीं, किंतु आशुतोष होनेपर भी शंकरजी दुराराध्य हैं। यानी शिवजी कठोर उपासनासे प्रसन्न होते हैं। उनको प्राप्त करनेका एक ही उपाय है कि पार्वती वनमें जाकर कठोर तप करे—

संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥

(रा०च०मा० १।७०।३—५)

नारदजीकी प्रेरणासे माता-पिताकी आज्ञा लेकर पार्वतीजी हिमालयके गहन वनमें तपस्या करने चली जाती हैं।

उनकी कठोर तपस्याका वर्णन श्रीरामचरितमानसमें विस्तारसे किया गया है—

उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू॥
नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥
संवत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाँए॥
कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा॥
बेल पाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई॥
पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥

भयउ मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥

(रा०च०मा० १।७४।१—८, दो० ७४)

पार्वतीजीके तपमें हठसे अधिक शिवपदमें आन्तरिक अनुराग है। अतः शिवजीके चरणोंका ध्यान करते हुए उन्होंने सम्पूर्ण भोगों तथा सुखके साधनोंका परित्याग कर दिया। भगवान् शंकरके चरणकमलोंमें नित्य नूतन अनुराग होनेके कारण शरीरका भान मिट गया और तन-मन तपस्यामें लीन हो गया। एक हजार वर्षतक मूल और फलका, सौ वर्ष केवल शाकका आहार किया। कुछ दिनतक पानी और हवाका आहार किया, कुछ दिन इन्हें भी त्यागकर कठिन उपवास किया। पुनः वृक्षसे गिरी हुई बेलकी सूखी पत्तियाँ खाकर तीन हजार वर्ष व्यतीत किया। जब पार्वतीने सूखी पत्तियाँ लेना भी बंद कर दिया तो उनका नाम अपर्णा पड़ गया। पार्वतीकी कठोर तपस्याको देखकर आकाशवाणी हुई कि हे देवि! तुम्हारे मनोरथ पूर्ण हो गये। अब तुम हठ छोड़कर घर जाओ, भगवान् शंकरसे शीघ्र मिलन होगा।

ब्रह्मवाणीने एक विचित्र बात कह दी—अबतक ऐसी तपस्या किसी धीर, मुनि, ज्ञानीने नहीं की। जिनकी तपस्याकी सराहना स्वयं ब्रह्मवाणी करे, भला उनकी प्रशंसा सामान्य व्यक्ति क्या कर सकता है?

अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी॥

(रा०च०मा० १।७५।१)

अर्थात् तपस्वियोंकी—व्रतियोंकी अग्रिम पंक्तिमें पार्वती प्रथम स्थानपर सुपूजित हैं।* उनका तपोव्रत पातिव्रत्यका आदर्श है तथा सर्वथा अनुकरणीय है।

(डॉ० स्वामी श्रीजयेन्द्रानन्दजी महाराज, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, डिप०इन०एड०)

भक्तराज प्रह्लाद—शीलव्रतके आदर्श

[शीलव्रतीके लिये कुछ भी असाध्य नहीं]

एक बार अपने पुत्र दुर्योधनको शोक-संतप्त देखकर धृतराष्ट्रने पूछा—'तात! तुमने महान् ऐश्वर्य प्राप्त किया है, तुम्हें समस्त सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं और सारे भाई, मित्र तथा सम्बन्धी सदा तुम्हारी सेवामें उपस्थित रहते हैं, फिर भी तुम दिन-प्रतिदिन दुर्बल क्यों होते जा रहे हो?'

दुर्योधनने कहा—'पिताजी! युधिष्ठिरके महलमें दस हजार महामनस्वी स्नातक ब्राह्मण प्रतिदिन सोनेकी थालियोंमें भोजन करते हैं। उसके पास अद्भुत श्री—सम्पत्ति, उत्तम सभा और समृद्धि है। युधिष्ठिरके कुबेरसदृश उस विशाल ऐश्वर्यको देखकर मैं निरन्तर शोकमें डूबा जा रहा हूँ।'

यह सुनकर धृतराष्ट्रने कहा—'तात दुर्योधन! इस प्रसंगमें मैं तुम्हें नारदजीद्वारा प्रोक्त एक शीलविषयक कथा सुनाता हूँ, जिसे तुम ध्यानसे सुनो।'

प्राचीन कालकी बात है। भक्तराज प्रह्लादके अखण्ड शीलव्रतके प्रभावके कारण अनायास ही उन्हें स्वर्गसहित तीनों लोकोंका साम्राज्य प्राप्त हो गया और सारे लोक उनके वशवर्ती हो गये। अपने राज्याधिकारसे वञ्चित होनेमें प्रह्लादकी शीलसम्पन्नताको कारण जानकर देवराज इन्द्रने अपने प्रभावमें वृद्धि करनेका निश्चय किया और देवगुरु बृहस्पतिके समीप जाकर उनसे अपने श्रेयकी जिज्ञासा प्रकट की। बृहस्पतिने उन्हें परम कल्याणकारी ज्ञानका उपदेश दिया। तदुपरान्त 'इस श्रेय-ज्ञानसे विशिष्ट और क्या

* महाकवि कालिदासने 'कुमारसम्भव' के पञ्चम सर्गमें पार्वतीके तपका वर्णन विस्तारसे किया है।

ज्ञातव्य है?' इन्द्रके इस प्रकार पूछनेपर बृहस्पतिने उनसे कहा—'सुरश्रेष्ठ! इससे भी महत्त्वपूर्ण वस्तुका ज्ञान महात्मा शुक्राचार्यको है। तुम उन्हींके पास जाकर उस वस्तुका ज्ञान प्राप्त करो।' तब महातपस्वी इन्द्रने शुक्राचार्यसे निष्ठापूर्वक श्रेयका ज्ञान प्राप्त किया। 'क्या इससे भी विशेष श्रेय है?' इन्द्रके पूछनेपर सर्वज्ञ आचार्य शुक्रने उनसे कहा—इससे भी विशेष श्रेयका ज्ञान महात्मा प्रह्लादको है। तुम उन्हींके पास जाकर उस वस्तुका ज्ञान प्राप्त करो।

तब प्रसन्नचित्त इन्द्र ब्राह्मणका रूप धारण करके प्रह्लादके पास गये और बोले—'राजन्! मैं श्रेय जानना चाहता हूँ।'

प्रह्लादने उत्तर दिया—'हे द्विजश्रेष्ठ! तीनों लोकोंके राज्यकी व्यवस्थामें व्यस्त रहनेके कारण मेरे पास क्षणभरका भी अवकाश नहीं है। अतः समयाभाववश मैं आपको उपदेश नहीं दे सकता।'

यह सुनकर ब्राह्मणने कहा—'राजन्! आपको जब भी अवसर मिलेगा, उसी समय मैं आपसे श्रेयका उपदेश ग्रहण करना चाहता हूँ।'

ब्राह्मणकी ऐसी बात सुनकर प्रह्लादने प्रसन्नतापूर्वक उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया और शुभ समयमें उन्हें श्रेयका ज्ञान प्रदान किया।

इन्द्रने अनेक प्रकारसे प्रह्लादकी सेवा करते हुए जब उनसे त्रिलोकीका राज्य प्राप्त करनेका कारण जाननेकी उत्सुकता व्यक्त की तो प्रह्लादने उनसे कहा—विप्र! 'राजा हूँ'—इस अहंकारवश मैं कभी ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करता, बल्कि जब वे मुझे शुक्रनीतिका उपदेश करते हैं, तब मैं संयमपूर्वक उनकी आज्ञाका पालन करता हूँ। मैं सदा शुक्राचार्यके नीतिमार्गका अनुसरण करता हूँ, निरन्तर ब्राह्मणोंकी सेवा करता हूँ, किसीके दोष नहीं देखता। संयतेन्द्रिय बनकर तथा क्रोधपर विजय पाकर धर्ममें मन लगाता हूँ। ब्राह्मणके मुखमें जो शुक्राचार्यका नीतिवाक्य है, वही इस पृथ्वीका अमृत है, वही सर्वोत्तम नेत्र है। राजाको इसी अमृतवचनके अनुसार व्यवहार करना चाहिये। बस, इतना ही श्रेय है।

पुनः इन्द्रकी सेवा और विनयसे प्रसन्न होकर प्रह्लादने उनसे मनोवाञ्छित वर माँगनेको कहा।

ब्राह्मण रूपधारी इन्द्रने कहा—'राजन्! यदि आप प्रसन्न हैं और मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो मैं आपका शील प्राप्त करना चाहता हूँ, यही मेरा वर'—

भवतः शीलमिच्छामि प्राप्तुमेष वरो मम॥

(महा० शान्ति० १२४।४२)

शीलनिधान प्रह्लादने 'तथास्तु' कहकर अपने वचनके अनुरूप वर देकर (शीलका दानकर) ब्राह्मणको विदा तो कर दिया, पर भीतर-ही-भीतर वे भयभीत हो उठे। अभी वे चिन्तामग्न ही थे कि उनके शरीरसे एक विशालकाय परम कान्तिमान् तेज निकलकर अलग हो गया। उससे प्रह्लादने पूछा—'आप कौन हैं?'

पुरुषने उत्तर दिया—'राजन्! मैं शील हूँ। तुम्हारे द्वारा त्याग देनेके कारण अब मैं जाकर उसी श्रेष्ठ ब्राह्मणके शरीरमें निवास करूँगा, जो यहाँ तुम्हारा शिष्य बनकर तुम्हारी सेवा कर रहा था।'

इतना बोलकर शील अदृश्य हो गया और इन्द्रके शरीरमें जाकर प्रविष्ट हो गया। उस तेजके जाते ही प्रह्लादके शरीरसे फिर एक वैसा ही तेज प्रकट हुआ। प्रह्लादने पूछा—'आप कौन हैं?'

उसने उत्तर दिया—'राजन्! मैं धर्म हूँ। अब मैं उस श्रेष्ठ ब्राह्मणके पास जाऊँगा, क्योंकि जहाँ शील रहता है, वहीं मैं भी रहता हूँ।'

धर्मके जाते ही प्रह्लादके शरीरसे एक तीसरा, वैसा ही प्रज्वलित-सा तेज प्रकट हुआ। प्रह्लादके पूछनेपर उस महातेजस्वीने कहा—'राजन्! मैं सत्य हूँ। अब मैं धर्मके पीछे-पीछे जाऊँगा।'

सत्यके जानेके पश्चात् प्रह्लादके शरीरसे एक अन्य तेज प्रकट हुआ। परिचय पूछनेपर उसने उत्तर दिया—'प्रह्लाद! तुम मुझे वृत्त (सदाचार) समझो। जहाँ सत्य होता है, वहीं मैं भी रहता हूँ।'

जब सदाचार भी चला गया, तब प्रह्लादके शरीरसे महान् शब्द करता हुआ एक अन्य तेज प्रकट हुआ। उसने अपना परिचय देते हुए कहा—'प्रह्लाद! मुझे बल समझो। जहाँ सदाचार रहता है, वहीं मेरा भी स्थान है।'

ऐसा बोलकर बल भी वहाँसे चल पड़ा। तब प्रह्लादके शरीरसे एक प्रभामयी देवी प्रकट हुई। प्रह्लादने पूछा—'आप कौन हैं?'

वे बोलीं—'मैं लक्ष्मी हूँ। हे सत्यपराक्रमी वीर! मैं स्वयं ही आकर तुम्हारे शरीरमें निवास करती थी, परंतु अब तुम्हारे त्याग देनेसे जा रही हूँ; क्योंकि मैं सदा बलकी अनुगामिनी हूँ।'

लक्ष्मीकी बात सुनकर भयाक्रान्त प्रह्लादने पूछा—'हे परमेश्वरि! *आप कहाँ जा रही हैं? मैं यह जानना चाहता हूँ कि वास्तवमें वह श्रेष्ठ ब्राह्मण कौन था?*'

लक्ष्मी बोलीं—'प्रभो! तुमने जिसे उपदेश दिया, वे ब्राह्मणके रूपमें साक्षात् इन्द्र थे। तुमने शीलके द्वारा ही तीनों लोकोंपर विजय पायी थी, यह जानकर ही सुरेन्द्रने तुम्हारे शीलका हरण कर लिया। धर्म, सत्य, सदाचार, बल और मैं (लक्ष्मी)—ये सब सदा शीलके ही आधारपर रहते हैं, शील ही इन सबका मूल है—

धर्मः सत्यं तथा वृत्तं बलं चैव तथाप्यहम्।
शीलमूला महाप्राज्ञ सदा नास्त्यत्र संशयः॥

(महा० शान्ति० १२४।६२)

ऐसा बोलकर लक्ष्मी भी देवराज इन्द्रके पास चली गयीं, जहाँ शील आदि गये थे।

इस प्रकार दुर्योधनको प्रह्लादकी यह कथा सुनाकर धृतराष्ट्रने कहा—'बेटे! *मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसी भी* प्राणीसे द्रोह न करना, सबपर दया करना और यथाशक्ति दान देना—यह शील कहलाता है, जो सर्वत्र प्रशंसनीय है—

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते॥

(महा० शान्ति० १२४।६६)

अपना जो भी पुरुषार्थ और कर्म दूसरोंके लिये हितकर न हो अथवा जिसे करनेमें संकोचका अनुभव होता हो, उसे किसी तरह नहीं करना चाहिये—

यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्म पौरुषम्।
अपत्रपेत वा येन न तत् कुर्यात् कथञ्चन॥

(महा० शान्ति० १२४।६७)

जो कर्म जिस प्रकार करनेसे भरी सभामें मनुष्यकी प्रशंसा हो, उसे उसी प्रकार करना चाहिये। यह संक्षेपमें शीलका स्वरूप तुम्हें बता रहा हूँ—

तत्तु कर्म तथा कुर्याद् येन श्लाघ्येत संसदि।
शीलं समासेनैतत् ते कथितं कुरुसत्तम॥

(महा० शान्ति० १२४।६८)

इसलिये यदि तुम युधिष्ठिरसे भी अधिक वैभव तथा ऐश्वर्य पाना चाहते हो तो शीलवान् बनो। शास्त्रज्ञानका फल शील है। शील महान् तीर्थ है और शील ही सर्वोत्तम आभूषण है—'**शीलं परं भूषणम्।**' शीलके बलपर ही मान्धाताने एक दिनमें, जनमेजयने तीन दिनोंमें और नाभागने सात दिनोंमें इस पृथ्वीका राज्य प्राप्त कर लिया था—

एकरात्रेण मान्धाता त्र्यहेण जनमेजयः।
सप्तरात्रेण नाभागः पृथिवीं प्रतिपेदिरे॥

(महा० शान्ति० १२४।१६)

निस्संदेह शीलके द्वारा तीनों लोकोंपर विजय पायी *जा सकती है। शीलव्रतधारियोंके लिये संसारमें कुछ भी* असाध्य नहीं है—

शीलेन हि त्रयो लोकाः शक्या जेतुं न संशयः।
न हि किञ्चिदसाध्यं वै लोके शीलवतां भवेत्॥

(महा० शान्ति० १२४।१५)

(श्रीमती श्यामाजी शर्मा)

व्रतोपासना

व्रतोपासनाका महत्त्वपूर्ण स्वरूप है—'एक भगवान् ही समस्त विश्व-चराचरके रूपमें अभिव्यक्त हैं—यह समझकर किसीका अपमान, अनिष्ट न करके, किसीको दुःख न पहुँचाकर, किसीका अहित न कर सदा-सर्वदा अपनी सारी योग्यता, सारी शक्ति, सारी सम्पत्ति, सारी बुद्धि और सारा जीवन लगाकर मन-वाणी-शरीरसे सबका सम्मान करना, सबका दुःख-निवारण करना, सबको सुख पहुँचाना और सबका हित करना।' श्रीमद्भागवतमें भगवान् कपिलदेव कहते हैं—'मैं सबका आत्मा, सबमें स्थित हूँ' जो मेरी उपेक्षा करके केवल मेरा पूजन करता है वह तो भस्ममें ही हवन करता है। जो दूसरे जीवोंसे वैर बाँधता है, वह तो उनके शरीरोंमें स्थित मुझ आत्मासे ही द्वेष करता है, उसके मनको कभी शान्ति नहीं मिल सकती—'भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति।'
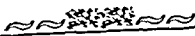
व्रतोंके आदि उपदेष्टा भगवान् वेदव्यास और उनकी व्रतचर्या

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥

(वायु० १।१।२)

श्रीपराशरजीके पुत्र, सत्यवतीके हृदयको आनन्दित करनेवाले उन वेदव्यासजीकी जय हो, जिनके मुखकमलसे निःसृत शास्त्ररूपी सुधाधाराका पान सारा संसार करता है।

'**व्यासो नारायणः साक्षात्**' वेदव्यासजी साक्षात् नारायणके अवतार हैं। अज्ञानान्धकारमें निमग्न प्राणियोंको सदाचार, धर्माचरण, देवोपासना तथा व्रतोपवासादि नियमोंकी सच्चर्याका उपदेश देनेके लिये उनका अवतरण हुआ है और प्रसिद्धि यही है कि व्यासजी आज भी अजर-अमर हैं। भक्तजन उनकी नित्य उपासना तथा सेवा-पूजामें संलग्न रहते हैं। भगवान् वेदव्यासकी अवतरणतिथि आषाढ़ पूर्णिमा है, इस दिन उनकी विशेष आराधना-पूजा होती है तथा व्रतोपवासके नियमोंका परिपालन होता है और बड़े समारोहसे महोत्सव मनाया जाता है। यह तिथि गुरुपूर्णिमाके रूपमें प्रसिद्ध है। यह श्रद्धा, आस्था और समर्पणका पर्व है।

महर्षि वेदव्यासजी वसिष्ठके प्रपौत्र, शक्ति ऋषिके पौत्र तथा महर्षि पराशरके पुत्र एवं महाभागवत शुकदेवजीके पिता हैं। ये महाशाल शौनकादि महर्षियों, शंकराचार्य, गोविन्दाचार्य और गौडपादाचार्य आदि विभूतियोंके परम गुरु रहे हैं। जगद्गुरुके रूपमें व्यासजीकी महनीय पवित्र कीर्ति सर्वत्र समुज्ज्वलित है।

भगवान् वेदव्यासजीका जीवोंपर परम अनुग्रह है, वे दया, कृपा एवं सदाचारकी प्रतिमूर्ति हैं। जीवोंका कल्याण कैसे हो—इसके लिये वे निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। धर्माचरण, व्रतोपवासचर्या तथा सदाचार उनके जीवनमें प्रतिष्ठित है। उनकी तपश्चर्या एवं व्रतचर्या सबके लिये अनुकरणीय है।

पुराणोंमें प्रसिद्धि है कि यमुना नदीके द्वीपमें उनका प्राकट्य हुआ, इसलिये वे द्वैपायन कहलाये और श्याम (कृष्ण) वर्णके थे, इसलिये कृष्णद्वैपायन कहलाये। वेदसंहिताका उन्होंने विभाजन किया, इससे व्यास किंवा वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध हुए—

विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद् व्यास इति स्मृतः॥

(महा०, आदि० ६३।८८)

परंतु जब उन्होंने देखा कि अल्पमेधावी प्रजावर्ग गूढ वेदार्थोंको इतनेपर भी नहीं समझ पा रहा है, तब वेदार्थोंके उपबृंहणके लिये उन्होंने अष्टादश महापुराणों-उपपुराणोंके साथ ही एक लाख श्लोकवाले 'महाभारत' नामक विशाल ग्रन्थकी रचना की। इसके अतिरिक्त शास्त्रीय आचार-

दर्शनके लिये बृहद् व्यासस्मृति, लघुव्यासस्मृति आदि ग्रन्थ इन्हींकी कृपासे हमें प्राप्त हुए। वैदिक एवं औपनिषदिक शंकाओंकी निवृत्तिके लिये 'ब्रह्मसूत्र' या वेदान्तदर्शनका इन्होंने ही निर्माण किया। योगदर्शनपर व्यासभाष्य इनकी अद्भुत रचना है। ब्रह्माण्डपुराणका एक भाग 'अध्यात्मरामायण' इन्हींकी कृपासे हमें प्राप्त हो सका है। आजका सम्पूर्ण विश्वविज्ञान एवं साहित्यिक वाङ्मय व्यासजीका ही उच्छिष्ट है। '**व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्**' की उक्ति सर्वथा सार्थक है।

इतना होनेपर भी वेदव्यासरचित पुराणवाङ्मय भारतीय सनातन संस्कृतिका सर्वाधिक उपकारक रहा है। वास्तवमें सनातन संस्कृतिका सम्यक् अवबोध तथा प्रत्यभिज्ञान बिना पुराणोंके सम्भव नहीं है। भगवान् वेदव्यासने तो यहाँतक कह दिया है कि वेदोंमें तिथि, नक्षत्र आदि काल-निर्णायक और ग्रह-संचारकी कोई युक्ति नहीं बतायी गयी है। तिथियोंकी वृद्धि, क्षय, पर्व, ग्रहण आदिका भी निर्णय उनमें नहीं है। यह निर्णय सर्वप्रथम इतिहास-पुराणोंके द्वारा ही निश्चित किया गया है। जो बातें वेदोंमें नहीं हैं, वे सब स्मृतियोंमें हैं और जो इन दोनोंमें नहीं हैं वे पुराणोंके द्वारा

ज्ञात होती हैं—

न वेदे ग्रहसंचारो न शुद्धिः कालबोधिनी।
तिथिवृद्धिक्षयो वापि पर्वग्रहविनिर्णयः॥
इतिहासपुराणैस्तु निश्चयोऽयं कृतः पुरा।
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ॥
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते॥

(ना० पु०, उ०, अ० २४)

उपर्युक्त कथनमें स्पष्ट निर्देश है वेदोंमें व्रतोपवास, पर्व, ग्रहण आदि नियमों तथा व्रतचर्याका जो सूक्ष्म संकेतमात्र आया है उसका वेदव्यासजीने आख्यान-उपाख्यानके माध्यमसे पुराणोंमें विस्तारसे प्रतिपादन कर दिया है। वेदव्यासजीने बताया है कि व्रतोपवास पापकर्मोंको दूर करने, पुण्यका आधान करने तथा भगवत्प्राप्तिके मार्गमें परम सहायक हैं। व्रतोपवासके द्वारा आचारकी सम्यक् प्रतिष्ठा होती है और धर्माचरणका ठीक-ठीक परिपालन हो सकता है।

इसीलिये वेदव्यासजीने पुराणोंमें व्रत, पर्व एवं उत्सवसम्बन्धी सम्पूर्ण विधियोंका सन्निवेश कर दिया है। व्रत क्यों करणीय हैं, कब-कब कौन-से व्रत करने चाहिये, व्रतकर्ताको किन-किन नियमोंका पालन करना चाहिये, उपवासमें आहारका क्या विधान है, व्रतोंकी दीक्षा कैसे लेनी चाहिये तथा व्रतोंके दिनोंमें कैसे व्रतके अधिष्ठाता देवका अर्चन-पूजन एवं वन्दन करना चाहिये और व्रतकी पूर्तिपर कैसे उद्यापन करना चाहिये इत्यादि सम्पूर्ण विधान बता दिया है। इसके साथ ही विभिन्न तीर्थोंकी महिमा, देवप्रासादोंके उत्सव, विभिन्न पर्वोंपर होनेवाले विशाल महोत्सवोंका भी निर्देश कर दिया है। यह सामग्री हमें पुराणके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। अगर वेदव्यासजी कृपाकर पुराणोंकी रचना न करते तो हमें यह सब कुछ जानकारी ही नहीं होती। भारतीय संस्कृतिकी जो आचारपरम्परा है, उसका दर्शन ही नहीं होता।

प्रायः सभी पुराणों-उपपुराणोंमें व्रतोपवासोंका प्रतिपादन हुआ है तथापि विशेष विवरणकी दृष्टिसे अग्निपुराण, भविष्यपुराण, मत्स्यपुराण, पद्म, स्कन्द, वाराह तथा विष्णुधर्मोत्तर आदि पुराण बड़े महत्त्वके हैं। यहाँ संक्षेपमें थोड़ा निदर्शन किया जाता है—

अग्निपुराणमें वर्णित भगवान् वेदव्यासजीका व्रतोपवासवर्णन बहुत ही महत्त्वका है तथा यह व्रतोंका सारतत्त्व है। इसमें लगभग २६ अध्यायोंमें प्रतिपदासे लेकर अमावास्या एवं पूर्णिमातकके व्रतोंका वर्णन है। तदनन्तर वारव्रत, नक्षत्रव्रत, मासव्रत एवं संक्रान्तिव्रतोंका वर्णन है।

भगवान् वेदव्यासजी व्रतकी परिभाषा बताते हुए कहते हैं—शास्त्रोक्त नियमको ही व्रत कहते हैं, वही तप माना गया है। दम (इन्द्रियसंयम) और शम (मनोनिग्रह) आदि विशेष नियम भी व्रतके ही अङ्ग हैं। व्रत करनेवाले पुरुषको शारीरिक संताप सहन करना पड़ता है, इसीलिये व्रतको तप नाम दिया गया है। इसी प्रकार व्रतमें इन्द्रियसमुदायका नियमन (संयम) करना होता है, इसलिये उसे नियम कहते हैं। व्यासजीके मूल वचन इस प्रकार हैं—

शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम्।
नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादयः॥
व्रतं हि कर्तृसन्तापात्तप इत्यभिधीयते।
इन्द्रियग्रामनियमान्नियमश्चाभिधीयते ॥

(अग्निपुराण १७५। २-३)

व्रतोंकी महिमा बताते हुए व्यासजी कहते है—व्रत-उपवास आदिके पालनसे प्रसन्न होकर देवता एवं भगवान् भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं—

ते स्युर्देवादयः प्रीता भुक्तिमुक्तिप्रदायकाः॥

(अग्निपुराण १७५। ५)

क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियसंयम, देवपूजा, अग्निहोत्र, संतोष तथा चोरीका अभाव—ये दस नियम सामान्यतः सम्पूर्ण व्रतोंमें आवश्यक माने गये हैं—

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहरणं सन्तोषोऽस्तेयमेव च॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः।

(अग्निपुराण १७५। १०-११)

यदि व्रत करनेमें असमर्थता हो तो पत्नी या पुत्रसे उस व्रतको पूर्ण कराये, आरम्भ किये हुए व्रतका पालन जननाशौच तथा मरणाशौचमें भी करना चाहिये। केवल पूजनका कार्य बंद कर देना चाहिये। जल, मूल, फल, दूध हविष्य (घी), ब्राह्मणकी इच्छापूर्ति, गुरुका वचन तथा औषध—ये आठ व्रतके नाशक नहीं हैं—

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥

(अग्निपुराण १७५। ४३)

व्यासजी व्रतचर्याके सम्बन्धमें बताते हैं—व्रतीको चाहिये कि वह सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय करे। अपनी शक्तिके अनुसार हवन करे। प्रतिदिन स्नान तथा परिमित भोजन करे, गुरु, देवता तथा ब्राह्मणोंका पूजन करे और व्रतके स्वामी-देवताकी प्रार्थना-पूजा करे। व्रतके अन्तमें व्रतकी पूर्णताके लिये यथाविधि पारणा करे। गोदान तथा दक्षिणाके साथ विविध दान करे।

वेदव्यासरचित भविष्यपुराण तो व्रतोंका कोश ही है। इसका अधिकांश भाग व्रतोंसे ही परिपूर्ण है। प्रारम्भमें ही वेदव्यासजी व्रतोपवासकी महिमा बताते हुए कहते हैं कि व्रत, उपवास, नियम, विविध प्रकारके दानसे देवता, ऋषि-महर्षि आदि उन व्रतियोंपर प्रसन्न होते हैं। फिर देवताकी जो तिथि है उसपर उपवास करनेपर तो देवता अवश्य ही प्रसन्न होते हैं—

व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा नृप।
देवादयो भवन्त्येव प्रीतास्तेषां न संशयः॥
विशेषादुपवासेन तिथौ किल महीपते।
प्रीता देवादयस्तेषां भवन्ति कुरुनन्दन॥

(भविष्य०ब्रा० १६। १३-१४)

भविष्यपुराणमें प्रतिपत् कल्पसे व्रतोंका प्रारम्भ किया गया है। प्रतिपत् कल्पमें सर्वप्रथम तिथियोंके प्रादुर्भावका आख्यान है। ब्रह्माजीने जिस दिन सृष्टिका प्रारम्भ किया उसका नाम प्रतिपदा रखा, इसीलिये प्रतिपदा पहली तिथि है। प्रतिपदाको ब्रह्माजीका पूजनोत्सव तथा व्रत किया जाता है। आगे द्वितीयाकल्प, तृतीयाकल्प—इस प्रकारसे व्रतोंका वर्णन किया है। द्वितीयाकल्पमें महर्षि च्यवनकी कथा आयी है तथा पुष्पद्वितीयाव्रतका वर्णन आया है। इसी प्रकार अशून्यशयनव्रतका विधान वर्णित है। तृतीयाकल्पमें गौरीव्रत, चतुर्थीकल्पमें गणेशचतुर्थीव्रत, पञ्चमीकल्पमें नागपञ्चमीव्रतका विस्तारसे वर्णन है। षष्ठीकल्पमें षष्ठी तिथिके अधिष्ठाता भगवान् कार्तिकेयके साथ षष्ठीव्रतका वर्णन है। सप्तमी तिथि भगवान् सूर्यकी है। इसलिये सप्तमीकल्पमें भगवान् सूर्यसम्बन्धी विभिन्न सप्तमीव्रतोंका विस्तारसे वर्णन है—रथसप्तमी, सूर्यकी रथयात्रा, फलसप्तमी, रहस्यसप्तमी, सिद्धार्थसप्तमी, विजयसप्तमीका वर्णन है। तदनन्तर द्वादश रविवारव्रतोंका एवं आदित्यवारव्रतका वर्णन है। इसी प्रकार आगे जयन्तीसप्तमी, जयासप्तमी, महाजयासप्तमी, नन्दासप्तमी, मार्तण्डसप्तमी, कामदासप्तमी और निक्षुभार्कसप्तमीका विधान उपदिष्ट है। भविष्यपुराणमें भी श्रीसत्यनारायणव्रतकथा आयी है, जो स्कन्दपुराण रेवाखण्डकी कथासे भिन्नता रखती है।

भविष्यपुराणके सम्पूर्ण उत्तरपर्वमें तो व्रत-ही-व्रत हैं, जिनमें संवत्सरप्रतिपदाव्रत, अशोकव्रत, जातिस्मरभद्रव्रत, रम्भातृतीयाव्रत, गोष्पदतृतीयाव्रत, हरकालीव्रत, ललितातृतीया, उमामहेश्वरव्रत, सौभाग्यशयन, अक्षयतृतीया, सरस्वतीव्रत, श्रीपञ्चमी, कमलषष्ठी, मन्दारषष्ठी, ललिताषष्ठी, मुक्ताभरणसप्तमी, अचलासप्तमी, बुधाष्टमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, दूर्वाष्टमी, श्रीवृक्षनवमी, दशावतारव्रत और आशादशमी मुख्य हैं। तदनन्तर विभिन्न द्वादशीव्रतों तथा उनके आख्यानका वर्णन है। गोवत्सद्वादशी, देवशयनी एवं देवोत्थानी एकादशी-द्वादशीव्रतोंका वर्णन है। भीष्मपञ्चकव्रत, वामनद्वादशी, शिवचतुर्दशीव्रत, अनन्तचतुर्दशी, पौर्णमासी तथा अमावास्याव्रतोंका वर्णन है। सावित्रीव्रतमें सत्यवान्-सावित्रीकी कथा तथा वटवृक्षपूजनकी महिमा वर्णित है। इसके बाद वारव्रतों तथा नक्षत्रव्रतोंका वर्णन है। भद्रा तिथिका आख्यान आया है। शनैश्चरव्रतमें पिप्पलादका आख्यान आया है। उत्तरपर्वके १२९वें अध्यायमें लगभग शताधिक प्रकीर्णव्रतोंका वर्णन हुआ है।

पुराणोंमें पद्मपुराणकी विशेष महिमा है। इसके सृष्टिखण्डमें विभिन्न तिथि, मास तथा नक्षत्रोंमें होनेवाले रुद्रव्रत, नीलव्रत, प्रीतिव्रत, गौरीव्रत, शिवव्रत, सौम्यव्रत, सौभाग्यव्रत, सारस्वतव्रत, साम्यव्रत, आनन्दव्रत, अहिंसाव्रत, सूर्यव्रत, विष्णुव्रत, शीलव्रत, देवीव्रत, वैनायकव्रत, भवानीव्रत, मोक्षव्रत, सोमव्रत आदिका वर्णन व्यासजीने किया है। उत्तरखण्डमें वर्षभरकी २६ एकादशीव्रतोंका विधान तथा उनके माहात्म्यकी कथाएँ विस्तारसे आयी हैं। साथ ही चातुर्मास्यव्रतका भी वर्णन है।

स्कन्दपुराणमें विस्तारसे विभिन्न व्रतोंकी चर्चा आयी है। घर-घरमें कही-सुनी जानेवाली श्रीसत्यनारायणव्रतकी प्रसिद्ध कथा स्कन्दपुराणके रेवाखण्डके नामसे ही प्रसिद्ध है।

मत्स्यपुराणमें व्यासजीने विस्तारसे व्रतोंका विधान बतलाया है। यथा—नक्षत्रशयनव्रत, आदित्यशयन, श्रीकृष्णाष्टमी, रोहिणीचन्द्रशयन, सौभाग्यशयन, अनन्ततृतीया, रसकल्याणिनीव्रत, आनन्दकरीतृतीया, अक्षयतृतीया, सारस्वतव्रत, भीमद्वादशी, अशून्यशयन, अङ्गारकव्रत,

विशोकसप्तमी, फलसप्तमी, मन्दारसप्तमी तथा विभूतिद्वादशी आदि। मत्स्यपुराणके अध्याय १०१ में देवव्रत, रुद्रव्रत, प्रीतिव्रत आदि ६० व्रतोंका एक साथ वर्णन आया है।

वाराहपुराणके व्रतप्रकरणमें सर्वप्रथम प्रतिपदासे अमावास्यातक तथा पुनः पूर्णिमा तिथियोंकी उत्पत्तिकी कथा है और प्रत्येक तिथिके देवताका निरूपण है। तदनन्तर मत्स्य, कूर्म आदि दशावतारोंके द्वादशीव्रतोंकी कथाएँ हैं और फिर प्रकीर्णव्रतोंमें शुभव्रत, धन्यव्रत, सौभाग्य आदि व्रतोंका वर्णन है।

मानसिक व्रतोंकी चर्चा करते हुए व्यासजी बताते हैं कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) तथा ब्रह्मचर्यका पालन—ये सब मानस व्रत हैं। सभी व्रतोंमें इनका पालन आवश्यक है—**अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्मषम्। एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि व्रतधारिणि॥** (वाराहपुराण)। इस प्रकार व्यासजीद्वारा प्रतिपादित व्रत-वाङ्मय बहुत विशाल है। महाभारतमें भी व्रतोंके लम्बे अध्याय हैं।

एक विशेष बात यह भी है कि व्रतोंका जितना परवर्ती वाङ्मय है, सब व्यासजीसे उपकृत है। व्रतोंपर जितने निबन्धग्रन्थ बने हैं; यथा—कृत्यकल्पतरु, हेमाद्रिका व्रतखण्ड, स्मृतितत्त्व, वर्षकृत्यकौमुदी, निर्णयसिन्धु, भगवन्त-भास्करका समयमयूख, संस्कारमयूख, वीरमित्रोदयका परिभाषाप्रकाश, व्रतप्रकाश, धर्मसिन्धु, व्रतकल्पद्रुम, व्रतराज, व्रतार्क, व्रतकौस्तुभ, मुक्तकसंग्रह एवं उद्यापनसम्बन्धी—उद्यापनकौमुदी, उद्यापन-चन्द्रिका आदि—इन सभी व्रतग्रन्थोंमें प्रधानरूपसे वेदव्यासरचित पुराणोंके वचन ही संगृहीत हैं। इनमें एक स्थानपर ही सभी पुराणोंमें आये व्रतोपवाससम्बन्धी वचन मिल जाते हैं।

व्रतनिधि भगवान् वेदव्यास व्रतोंके आदि-उपदेष्टा हैं और सभी व्रतकर्ताओंके परम आदर्श हैं। भारतीय जनमानस सदा उनका ऋणी रहेगा। इन विशाल बुद्धिवाले भगवान् वेदव्यासजीको बार-बार नमन है—

'नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे।'

श्रीमद्वल्लभाचार्यजीकी उत्सव-परम्परा

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके पुष्टिमार्गके परमाराध्य, परमसेव्य और सर्वस्व पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण रसस्वरूप, सदानन्द हैं—**'सदानन्दरूपो भगवान्'** (सुबोधिनी ३।४।१४), **'सदानन्दः कृष्ण उक्तः'** (सुबो० १०।१।१२)। वे सदानन्द प्रभु परम मङ्गलमय, मङ्गलनिधान और मङ्गलोंमें महामङ्गल हैं—**'मङ्गलमङ्गलं व्रजभुवि मङ्गलम्'** (गुसाईंजी विट्ठलनाथजी-मङ्गल-चतुष्पदी)।

मधुराधिपति प्रभुका आनन्दात्मक श्रीअङ्ग और उनसे सम्बद्ध सब कुछ मङ्गलमय है—

'मंगल भूषण सब अंग सोहत, मंगल मूरति आनंद कन्द।'

महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीका अखण्ड और सुदृढ़ विश्वास है, सतत अनुभूति है कि सदानन्द प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र तो स्वयं ही नित्य उत्सवरूप हैं। तभी तो जब भक्त प्रभुके दर्शन करता है तो उसे धारावाहिक, एक-जैसी अनुभूति नहीं होती। भक्तको रसस्वरूप प्रभु प्रतिक्षण अपने अलौकिक सौन्दर्यका, दिव्यातिदिव्य भावों और अर्थोंका नया-नया बोध करवाते रहते हैं। पहले क्षणमें मङ्गलमय प्रभुके दर्शनका जो अलौकिक रसात्मक अनुभव होता है, वह अगले क्षणके प्रभु-दर्शनके प्रति अभिनव रुचि जगाता है। अतः भक्त प्रभुके दर्शन कितनी ही बार और कितनी ही देरतक क्यों न करे, उसे तृप्ति होती ही नहीं है, भगवद्दर्शनकी चाह बढ़ती ही जाती है। महाप्रभुजीने सुबोधिनीमें इसी दिव्य रहस्यको इन शब्दोंमें स्पष्ट किया है—**'नित्योत्सवत्वाद्भगवतो न भगवद्दर्शनस्य धारावाहिकज्ञानत्वम्। प्रतिक्षणमलौकिकार्थबोधात्। पूर्वपूर्वदर्शनस्य रुच्युत्पादकत्वमेव। ....अतएव न कदापि तृप्तिर्भगवद्दर्शने।'** (१।११।२५)

श्रीमद्वल्लभाचार्यजीका मत है कि उत्सव मनके आह्लादकी ऐसी बाढ़ है, ऐसा हर्षातिरेक है, जिसमें हमारा तन और मन रसमग्न हो जाता है तथा हम रसमत्त होकर सब कुछ भूल जाते हैं—**'उत्सवो नाम मनसः सर्वविस्मारक आह्लादः'** (सुबोधिनी १०।३०।३)। पुष्टिमार्गीय उत्सव रसरूप प्रभु श्रीकृष्णकी भावमयी, रसात्मिका सेवाके ही विविध रसात्मक प्रकार हैं।

पुष्टिमार्गमें चार प्रकारके उत्सव होते हैं—१-नित्य-उत्सव, २-नैमित्तिक-उत्सव, ३-पर्व-उत्सव और ४-मनोरथ-उत्सव।

नित्य-उत्सव—पुष्टिमार्गके सेव्य प्रभु श्रीगोवर्धनधर

उत्सवनायक ही नहीं, अपितु स्वयं उत्सवरूप हैं। अत: पुष्टिभक्तोंके लिये तो नित्य ही नवीन उत्सव रहता है। मङ्गलासे शयनतककी स्नेहात्मिका भगवत्सेवाका प्रत्येक क्षण उनके लिये उत्सव है। भक्तका चित्त भगवत्प्रवण होकर भगवान्‌में और उनकी सेवामें तन्मय—तल्लीन होकर सर्वविस्मारक—सब कुछ भुला देनेवाले परमानन्दमें मग्न रहता है। पुष्टिमार्गीय अष्टछापके महानुभाव कवि चतुर्भुजदासजी इसी स्थितिका वर्णन एक पदमें इस प्रकार करते हैं—

माई री आजु औरु काल्हि औरु प्रति छिनु और हि औरु
देखिये रसिक गिरिराजधरन।
नित प्रति नव छबि बरनें सो कौन कवि,
नित हीं सिंगारु बागे बरन बरन॥
स्याम तन अंग अंग मोहत कोटि अनंग
उपजी सोभा तरंग बिश्व के मनु हरन।
'चत्रभुज' प्रभु कौ रूप सुधा, नैनपुट
पान कीजै जीजै रहिये सदाई सरन॥

प्रभुके श्रीअङ्गसे क्षण-प्रतिक्षण, नित्य, सतत विश्व-मनमोहिनी छविकी तरङ्गें उठती ही रहती हैं तभी तो श्रीमहाप्रभुजी कहते हैं—'अतएव न कदापि तृप्तिर्भगवद्दर्शने।'

पुष्टिमार्गके उत्सवनायक कुँवर कन्हाई तो नित्य ही सजे-धजे दूल्हा हैं, जिनके दर्शन, सेवासे, राग-भोग-शृङ्गार समर्पित करनेसे नित्य ही आनन्दका समुद्र उमड़ता रहता है—

दिन दूल्हे मेरो कुँवर कन्हाई।
नित उठ सखा शृंगार बनावत,
नित ही आरती उतारत मैया॥
नित उठ चन्दन चौक लिपावै,
नित ही मोतिन चौक पुरैया।
नित ही मंगल कलश धरावत,
नित ही वन्दनमाल बँधैया॥
नित उठ व्याह गीत मंगल धुन,
नित ही सुर मुनि वेद पढ़ैया।
नित नित आनन्द होत वारिनिधि,
नित ही 'गदाधर' लेत बलैया॥

नैमित्तिक-उत्सव—नैमित्तिक-उत्सव किसी निमित्त या विशेष प्रसङ्गसे जुड़े हुए रहते हैं। महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यका प्राकट्य दिवस (वैशाख कृष्ण एकादशी), प्रभुचरण गुसाँईजी श्रीविट्ठलनाथजीका प्रादुर्भाव-उत्सव (पौष कृष्ण नवमी), विभिन्न धर्माचार्य गोस्वामी बालकोंके जन्मोत्सवोंको नैमित्तिक-उत्सव माना जाता है। इन उत्सवोंमें पलना, विशिष्ट शृङ्गार और विशेष भोग-सामग्री होती है तथा उत्सवनायकका बधाई-गान होता है।

पर्व-उत्सव—सनातन धर्मके प्राय: सभी धार्मिक-सांस्कृतिक पर्व तथा मुख्य चार विष्णु-जयन्तियाँ (श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी, श्रीवामनद्वादशी एवं श्रीनृसिंहचतुर्दशी) पर्वोत्सवके रूपमें मनायी जाती हैं। पुष्टिमार्गीय सेवा-प्रणाली तथा मुख्य उत्सवोंका आधार श्रीमद्भागवत है, अत: पुष्टिमार्गमें वर्षके पर्वोत्सवोंका शुभारम्भ जन्माष्टमीसे होता है। श्रीहरिरायजी महाप्रभुने पद्यबद्ध उत्सव-तालिका भी दी है। आपने पचहत्तर उत्सवोंकी सूची दी है। पुष्टिमार्गमें जन्माष्टमी, नन्दमहोत्सव, राधाष्टमी, दान-एकादशी, विजयादशमी, गोवर्धनपूजन, अन्नकूट, गोपाष्टमी, गङ्गादशहरा, प्रबोधिनी-तुलसीविवाह, स्नानयात्रा, ज्येष्ठाभिषेक, रथयात्रा, ठकुरानी तीज, पवित्रा एकादशी एवं द्वादशी (पुष्टिमार्गका स्थापना-दिवस) आदि उत्सव विशेष उत्साह एवं उमङ्गके साथ मनाये जाते हैं। उत्सवोंपर अभ्यङ्ग, पञ्चामृत आदि एवं विशेष शृङ्गार होता है। प्रभुको विशेष भोग धराये जाते हैं तथा प्रसङ्गोंके अनुरूप कीर्तन-गान होता है। वसन्तोत्सव एवं होलीके प्रसङ्गपर तो धमारकी धूम मची रहती है। अन्नकूट तो एक महान् यज्ञरूपमें प्रतीत होता है। दीपावलीका महत्त्व तो सर्वविदित है। पुष्टिभक्त भी **'आज दिवाली बड़ो पर्व दिन'**—गाकर अपना उल्लास प्रकट करते हैं।

मनोरथ-उत्सव—जब भक्त प्रभुके सुखके लिये अपने मनकी कामनाओं, अभिलाषाओं, उमङ्गोंका विशेष उत्साह और हर्षके साथ विनियोग करता है तो मनोरथ होता है। कभी वह ऋतुके अनुरूप प्रभुके सुखके लिये फूलमण्डली, नौका-विहार आदिके आयोजनोंका मनोरथ (उत्सव) करता है। कभी अपने परिवारके किसी मङ्गल-प्रसङ्गपर प्रभुके लिये पलना, हिण्डोला आदिका मनोरथ करके अपने मनके उल्लासको प्रकट करता है। मनोरथ-उत्सवमें भक्त अपनी अभिलाषाके अनुरूप विशिष्ट शृङ्गार एवं भोग प्रभुको समर्पित करता है। ये मनोरथ

कामनापूर्तिकी आशा या मनौतियोंके रूपमें नहीं होते। पुष्टिमार्गमें किसी भी कामनापूर्तिके लिये प्रभुसे प्रार्थना करना निषिद्ध है। अतः मनोरथ सकाम नहीं होते, केवल प्रभु-सुखकी भावनासे किये जाते हैं। पुष्टिमार्गमें फल तो स्वयं श्रीकृष्ण हैं एवं उनकी सेवा परम पुरुषार्थरूपा एवं फलात्मिका है।

पुष्टिमार्गमें उत्सवोंके तीन रूप होते हैं—१-उत्सव, २-महोत्सव और ३-महामहोत्सव।

उत्सव सब कुछ भुला देनेवाला मनका आह्लाद, हर्ष उत्सवके रूपमें प्रकट होता है। मनका आह्लाद या हर्ष वास्तवमें उत्सव तब बनता है, जब अपने सजातीय, समानधर्मा स्नेही स्वजनोंको उसमें सम्मिलित किया जाय। इससे आह्लादमें एक समान रसात्मकता प्रकट होती है, यही उत्सव बन जाता है। महाप्रभुकी आज्ञा है—'**उत्सवत्व-सम्पादनाय सजातीयान् एकरसोत्पादनार्थं विशेषमाह।**' (सुबोधिनी १०।३०।३)। महोत्सवमें मनका उल्लास, आह्लाद व्यक्ति या उसके परिवार एवं अन्तरङ्ग स्वजनोंतक सीमित नहीं रहता। उसमें परिजनों, इष्ट-मित्रोंको भी सम्मिलित किया जाता है। वह धार्मिक आयोजन सामाजिकता ग्रहण करता हुआ-सा प्रतीत होता है।

महोत्सव हर्षातिरेकका ज्वार या उफान है। वह व्यक्ति, उसके परिवार और परिजनों या इष्ट मित्रोंतक सीमित नहीं रहता बल्कि पूरे नगर या राष्ट्रका हो जाता है। हर व्यक्ति उससे जुड़ जाता है। आनन्दका प्रवाह घर-घर, डगर-डगर, गली-गलीमें उमड़कर बह निकलता है। नृत्य और गान होता है, वाद्य बजाये जाते हैं, माङ्गलिक द्रव्य एक-दूसरेपर लगाये जाते हैं, मङ्गलप्रद द्रवोंका छिड़काव होता है, दान और भेंट दी जाती है। नन्दबाबा और यशोदाजीके घर प्रभु श्रीकृष्णके प्रादुर्भावके उपलक्ष्यमें ऐसा ही **महामहोत्सव** हुआ था। गोप-गोपियाँ नाच-गा रहे थे, बाजे बज रहे थे, मङ्गल द्रव्योंको उड़ाया और छिड़का जा रहा था। निमन्त्रणकी कोई आवश्यकता नहीं थी। जिसने सुना वही आनन्दमें मग्न होकर दौड़ पड़ा—

गोपाः समाययू राजन् नानोपायनपाणयः॥
गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम्।
हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः॥
अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे।
गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः॥
तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत्।

(श्रीमद्भा० स्क० १० अ० ५)

कृष्णजन्मके महामहोत्सवके उल्लासमें स्वयं महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी भी सुबोधिनी-लेखनके समय सब कुछ भूलकर उमङ्ग-आह्लादके साथ बोल उठते हैं—'**प्रादुर्भूतो मम स्वामी**' अर्थात् 'मेरे स्वामीका प्राकट्य हो गया है।' इस परमानन्दमें डूबकर सूरदास बधाई गाने लगते हैं—***'ब्रज भयो महरि के पूत जब यह बात सुनी। सुनि आनन्दे सब लोक गोकुल गणित गुनी।'*** सूरदास तन्मयतामें गोपीजनकी दिव्य भावनाओंका वर्णन करने लगे तो महाप्रभुजीने विचार किया कि यह दिव्य आनन्द तो भगवदीयोंके हृदयमें ही अनुभव करनेयोग्य है।—***'सुनु सूर! सबन की यह गति जिन हरिचरन भजे।'*** आप श्रीने सूरदासजीकी महामहोत्सवकी परमानन्दमयी अनुभूतिकी प्रशंसा करते हुए कहा—'सूर! तुम तो नन्दालयकी लीलामें प्रत्यक्ष निकट ही खड़े हो।'

महाप्रभुजी उत्सवोंको जीवनव्यापी और नित्य बनाना चाहते हैं। वे भक्तोंको प्रेरणा देते हुए कामना करते हैं—'गोकुलमें गोपिकाओंको तथा व्रजवासियोंको जो सुख प्राप्त हुआ था वह सुख क्या भगवान् मुझे भी प्रदान करेंगे? वृन्दावनमें अथवा गोकुलमें उद्धवजीके आगमनपर जैसा महोत्सव हुआ था, वैसा कभी मेरे मनमें भी होगा?' हमारा जीवन प्रभु-कृपासे उत्सवमय बने, यही आकाङ्क्षा महाप्रभुजीकी है। यही पुष्टिभक्तोंकी कामना है—

गोकुले गोपिकानां तु सर्वेषां व्रजवासिनाम्।
यत् सुखं समभूत् तन्मे भगवान् किं विधास्यति॥
उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा।
वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित्॥

(निरोधलक्षणम् २-३)

(डॉ० श्रीगजाननजी शर्मा, सम्पादक—'*श्रीवल्लभ-चिन्तन*')
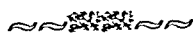
श्रीचैतन्योपदिष्ट एकादशीतत्त्वविमर्श

भगवान् श्रीचैतन्यदेवका आविर्भाव पूर्वबंगके अपूर्व धाम नवद्वीपमें हुआ था। चौबीस वर्षकी अवस्थामें लोककल्याणकी भावनासे आपने उस समय संन्यास धारण किया, जब भारतवर्षमें चारों ओर विभीषिकाका साम्राज्य था, विदेशी शासकोंके भयसे जनता स्वधर्मका परित्याग कर रही थी। तब आपने यात्राओंमें हरिनामके माध्यमसे हरिनाम-संकीर्तनका प्रचार कर प्रेमस्वरूपा एक बहुत बड़ी क्रान्ति ला दी।

संन्यासग्रहणके पश्चात् श्रीचैतन्यने दक्षिणप्रान्तकी ओर प्रस्थान किया। उस समय दक्षिणमें मायावादियोंके प्रचार-प्रसारके कारण वैष्णवधर्म प्राय: लुप्त होता जा रहा था। यदि उस समय चैतन्यदेव हरिनाम-संकीर्तनका प्रचार न करते तो यह भारतवर्ष वैष्णवधर्मविहीन हो जाता।

हरिनामका स्थान-स्थानपर प्रचार कर चैतन्यदेव श्रीरंगम् पहुँचे और वहाँ गोदानारायणकी अपूर्व रूपमाधुरी देख भावावेशमें नृत्य करने लगे। श्रीचैतन्यका भावविभावित स्वरूप देख मन्दिरके प्रधान अर्चक श्रीवेंकट भट्ट चमत्कृत हो उठे और भगवान्‌की प्रसादी-माला उनके गलेमें डाल दी तथा उन्हें बताया कि वर्षाकालीन यह चातुर्मास कण्टकाकीर्ण, जलप्लावन एवं हिंसक जीव-जन्तुओंके प्राबल्यके कारण यात्रामें निषिद्ध है, अत: उनसे चार मासतक निजगृहमें निवासकी प्रार्थना की।

श्रीवेंकट भट्टके अनुरोधपर श्रीचैतन्यदेवके चार मास उनके आवासपर व्यतीत हुए। उन्होंने पुत्र श्रीगोपाल भट्टको दीक्षित कर वैष्णवधर्मकी शिक्षाके साथ शास्त्रीय प्रमाणोंसहित एक स्मृतिग्रन्थकी रचनाका आदेश दिया।

कुछ समय पश्चात् श्रीगोपाल भट्ट वृन्दावन आये एवं वहाँ निवास कर उन्होंने पञ्चरात्र, पुराण और आगम-निगमोंके प्रमाणसहित २५१ ग्रन्थोंका उदाहरण देते हुए हरिभक्तिविलास-स्मृतिकी रचना की। इस संदर्भित ग्रन्थमें उन्होंने एकादशीतत्त्व-विषयपर विशेष विवेचना की।

चातु:साम्प्रदायिक वैष्णवोंके लिये आवश्यक रूपमें एकादशीव्रतका महत्त्वपूर्ण स्थान है। एकादशीव्रत करनेसे जीवनके सम्पूर्ण पाप विनष्ट हो जाते हैं। इस व्रतको सहस्रों यज्ञोंके समान माना गया है।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी तथा विधवा स्त्रियाँ भी एकादशीव्रतके अधिकारी हैं।

एकादशीव्रतका त्याग कर जो अन्न सेवन करता है, उसकी निष्कृति नहीं होती। जो व्रतीको भोजनके लिये कहता है, वह भी पापका भागी होता है—

निष्कृतिर्धर्मशास्त्रोक्ता नैकादश्यान्नभोजिन:।

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण १२। १९)

एकादशीको यदि कोई जननाशौच या मरणाशौच हो तब भी व्रतका परित्याग नहीं करना चाहिये। एकादशीको नैमित्तिक श्राद्ध भी उपस्थित हो तो उस दिन न कर परदिन द्वादशीको करना चाहिये—

एकादश्यां यदा राम श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
तद्दिनं तु परित्यज्य द्वादश्यां व्रतमाचरेत्॥

(विष्णुरहस्य १२। २७)

एकादशीव्रतके संदर्भमें श्रीचैतन्यानुमोदित समाधानपरक कुछ विशिष्ट सिद्धान्त भी निर्धारित किये गये हैं।

शास्त्रानुमोदित चार तिथि एवं चार नक्षत्र-समन्वित आठ महाद्वादशीव्रत भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय होनेके कारण एकादशीके स्थानपर द्वादशीको व्रत विधेय है; कारण आठ महाद्वादशी परम पवित्र और पापोंको नष्ट करनेवाली कही गयी हैं। इन सिद्धान्तोंको मान्यता देते हुए श्रीचैतन्य-मतानुयायी वैष्णवजन द्वादशीको व्रत तथा त्रयोदशीको पारण करते हैं।

ये चार नक्षत्रयुक्त द्वादशीव्रत इस प्रकार हैं—(१) शुक्लपक्षीय पुनर्वसुयुक्ता जया, (२) श्रवणयुक्ता विजया, (३) रोहिणीयुक्ता जयन्ती और (४) पुष्ययुक्ता पापनाशिनी द्वादशी। निम्नलिखित चार तिथियुक्ता द्वादशी हैं—

(१) उन्मीलिनी—अरुणोदयप्रवृत्त सम्पूर्ण एकादशी परदिन प्रात: द्वादशीमें वृद्धिको प्राप्त हो, किंतु द्वादशीकी किसी भी दशामें वृद्धि न हो।

(२) वञ्जुली—शुक्ल अथवा कृष्णपक्षीय एकादशीकी वृद्धि न होकर द्वादशीकी वृद्धि अर्थात् एकादशी सम्पूर्ण और परदिन द्वादशी सम्पूर्ण एवं त्रयोदशीमें प्रात: मुहूर्तार्ध द्वादशी

हो, इसमें परदिन द्वादशी-मध्यमें ही पारण कर्तव्य है।

(३) त्रिस्पृशा—अरुणोदयमें एकादशी, सम्पूर्ण दिन-रात्रिमें द्वादशी एवं परदिन प्रभातमें त्रयोदशी हो, किंतु किसी भी दशामें दशमीयुक्त नहीं होनी चाहिये।

(४) पक्षवर्द्धिनी—अमावास्या अथवा पूर्णिमाकी वृद्धि अर्थात् षष्टिदण्डात्मिका अमावास्या अथवा पूर्णिमा एवं परदिन प्रतिपदामें भी किंचित् परिलक्षित हो।

एकादशीव्रतके दिन सम्भवतः निराहार अथवा दूध, फलका उपयोग करना चाहिये एवं परदिन पारणरूपमें अन्नका सेवन विधेय है।

इसमें भी श्रवणयुक्त विजया द्वादशीमें कुछ और भी व्रतके विषयमें विचारणीय है।

विष्णुशृंखल—१-तिथिक्षय होनेके कारण श्रवण-नक्षत्रस्पृष्ट-द्वादशी जब एकादशीको स्पर्श करती है।

२-एकादशी एवं श्रवणनक्षत्रका एक साथ होना।

देवदुन्दुभि—द्वादशी, एकादशी, श्रवण एवं बुधवारका एक साथ होना। इसमें द्वादशीव्रत विधेय है।

वेध—एकादशीव्रतोंमें दशमीके साथ यदि मुहूर्तमात्र भी एकादशीका स्पर्श हो जाता है तो उसे वेध कहते हैं। अतः दशमीविद्धा एकादशीव्रत नहीं करना चाहिये।

(डॉ० आचार्य श्रीगौरकृष्णजी गोस्वामी शास्त्री, काव्यपुराण दर्शनतीर्थ, आयुर्वेदशिरोमणि)
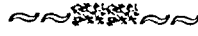
गोस्वामी तुलसीदासजीका व्रत-दर्शन

संतशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी भक्तिके प्रधान आचार्य हैं। उनका जीवन सदाचारसम्पन्न और व्रतोपवासमय था। श्रीरामप्रेमरूपी व्रतके तो वे साक्षात् मूर्तिमान् स्वरूप ही थे। प्रभु श्रीरामके चरणोंमें अनन्य निष्ठा ही उनका जीवन-व्रत था। गोस्वामीजीने अपने जीवन-व्रतको श्रीभरतजीके मुखसे इस प्रकार कहलवाया—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

(रा० च० मा० २। २०४)

भक्तके लिये भगवान्‌के चरणोंका आश्रय ही सबसे बड़ा आश्रय होता है। वह पूर्ण निष्ठासे प्रभुचरणोंके आश्रयका ही व्रत ग्रहण किये रहता है। गोस्वामीजीकी इसी व्रतचर्याका दर्शन उनके श्रीरामचरितमानस आदि ग्रन्थोंमें पदे-पदे दिखायी देता है। उनके प्राणनाथ श्रीनाथ ठाकुरजीका अवतरण तो विभिन्न व्रतोंकी मर्यादाकी प्रतिष्ठाके लिये ही हुआ। भगवान् श्रीरामकी प्रायः सभी लीलाएँ व्रतोत्सवयुक्त हैं।

श्रीरामचरितमानसमें परात्पर ब्रह्म भगवान् नारायणके श्रीरामावतारकी विस्तृत कथा है। यह अवतार भी महाराज स्वायम्भुव मनु और महारानी शतरूपाजीके तपोव्रत और अनन्यतासे श्रीभगवान्‌के रीझनेपर ही हुआ। दोनों शाकाहार, फलाहार और कन्दाहार करते हुए सच्चिदानन्द ब्रह्मका स्मरण करते रहे। पुनः उन्होंने मूल-फलको त्यागकर छः हजार वर्षोंतक जलाहारव्रत एवं सात हजार वर्षोंतक समीराहारव्रत करके पुनः निराहारव्रतपूर्वक एक पैरपर खड़े रहकर कठिन तपका अनुष्ठान किया। भगवत्कृपासे उनका तपोव्रत पूर्ण हुआ और महाराज स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपाजीका व्रत श्रीरामावतारका हेतु बना।

भगवान्‌के प्राकट्य-महोत्सवके विषयमें गोस्वामीजीने

गोस्वामी तुलसीदासजीने भगवान् श्रीरामके मर्यादामय आदर्श जीवनकी झाँकी प्रस्तुत करते हुए उनके वनवासव्रतका जो वर्णन किया है, वह प्रसंग पग-पगपर लोकशिक्षा तथा अध्यात्मका ज्ञान करानेवाला है। प्रभु श्रीरामका वनवासव्रत दीर्घकालीन है। उस समय निषादराज गुहने उनसे शृङ्गवेरपुरमें रहनेका अनुरोध किया। भगवान् श्रीरामने अपने वनवासव्रतकी बात बताकर निषादराज गुहके अनुरोधको अस्वीकार करते हुए कहा—

बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु॥

(रा०च०मा० २।८८)

अर्थात् मुझे चौदह वर्पतक मुनियोंका व्रत और वेष धारण कर मुनियोंके योग्य आहार करते हुए वनमें ही रहना है, गाँवमें निवास करना उचित नहीं है। वनवासमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी व्रतीवत् दिनचर्याका एक दृश्य दर्शनीय है, जो निषादराज गुहने भरतलालजीको दिखाया था और कहा था कि वटकी छायामें सीताजीके करकमलोंद्वारा बनी वेदी है, जहाँ मुनिवृन्दके साथ बैठकर श्रीसीतारामजी नित्य ही शास्त्र, वेद, पुराणोंकी कथाएँ और इतिहास सुना करते हैं—

जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥

(रा०च०मा० २।२३७)

जंगलमें भी मङ्गलोत्सव होता था, जिसके विषयमें गोस्वामी तुलसीदासजीने बताया कि पर्णकुटीमें लक्ष्मणजी और सीताजीसहित श्रीरामचन्द्रजी अमरावतीमें शची और जयन्तके साथ वास करनेवाले देवराज इन्द्रके समान सुशोभित हुए—

रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत॥

(रा०च०मा० २।१४१)

गोस्वामीजीने रणमें भी भगवान् श्रीरामकी व्रतशीलताके दर्शन कराये हैं। श्रीरामजीका पहला युद्ध विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षाके समय ताड़का, सुबाहु, मारीच आदि यज्ञ और धर्मके विरोधी राक्षसोंके साथ हुआ। प्रात:काल भगवान् श्रीरामने विश्वामित्रजीसे निर्भय होकर यज्ञ करनेको कहा। सब मुनि होम करने लगे और वे रखवालीपर रहे—

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख कीं रखवारी॥

(रा०च०मा० १।२१०।१-२)

इस प्रसंगसे प्रकट होता है कि श्रीराम-लक्ष्मण यज्ञ-रक्षार्थ व्रत धारण करके अन्नाहार छोड़ फलाहार करते हुए तत्पर रहे। परिणामस्वरूप व्रतपरायण श्रीरामलक्ष्मणकी विजय हुई और कुखाद्य और कुपेय खाने-पीनेवाले राक्षसोंका विनाश हुआ।

रावणवधके उपरान्त विजयोत्सव हुआ। गोस्वामीजीने बताया कि श्रीरामचन्द्रजीकी जयध्वनि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें भर गयी। देवता और मुनिगण फूल बरसाकर जय-जयकार करने लगे। नगाड़े बजाये गये। विजयोल्लासमें वानर-भालू भी हर्षित होकर जय-जयकार करने लगे। उनके बीच विभीषणजीने विमानसे वस्त्राभूषणोंकी वर्षा की।

राज्याभिषेकके अवसरपर भी विशेष व्रताचरण आवश्यक होता है। गोस्वामीजी बताते हैं—गुरु वसिष्ठजीने राज्याभिषेकके लिये श्रीरामचन्द्रजीसे संयम करनेको कहा था—

भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू॥
राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहै काजू॥

(रा०च०मा० २।१०।२-३)

भगवान् श्रीरामका राज्य-काल तो व्रत करते ही बीता। उन्होंने करोड़ों अश्वमेध-यज्ञ किये और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिये—

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥

(रा०च०मा० ७।२४।१)

श्रीरामराज्यमें नित्य नये मङ्गलोत्सव होते थे। सभी वर्गके लोग हर्षित रहते थे—

नित नव मंगल कौसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कुरी॥

(रा०च०मा० ७।१५।८)

श्रीरामचरितमानसमें वर्णित भगवान् श्रीरामके जन्म, विवाह, वनवास, युद्ध और राज्य-संचालन—सर्वत्र व्रतोत्सवकी प्रतिष्ठा दिखायी पड़ती है।

श्रीरामचरितमानसके सभी प्रमुख पात्र व्रती हैं, जिनमें भरतलालजी अग्रगण्य हैं। वे चित्रकूटसे लौटकर नन्दिग्राममें पर्णकुटीमें रहते हुए भोजन, वस्त्र, व्रत तथा नियम—सभी बातोंमें ऋषियोंके कठिन तपोव्रतका पालन प्रेमसहित

संतोंका सहज व्रत—परहितचिन्तन

वस्तुकी चाह नहीं रहती। वे तो आप्तकाम-पूर्णकाम रहते हैं और भगवन्निष्ठाके आनन्दोल्लासमें सदा निमग्न रहते हैं, तथापि उनकी यही चाह रहती है कि किस प्रकार संसारके प्राणी दुःखसे उबरें। इसीलिये उनसे जो भी क्रियाएँ बनती हैं, सब परमार्थके लिये होती हैं स्वार्थके लिये नहीं। उनमें स्वका भान ही नहीं रहता। केवल परहितचिन्तन और सबके कल्याण-मङ्गलकी भावनासे वे परिपूरित रहते हैं।

परिश्रम करते हैं, उसी परिश्रम अथवा क्रियामें उन्हें परम आनन्द प्राप्त होता है। दूसरेके कष्टको दूर करनेमें जो परिश्रम करना पड़ता है, वह परिश्रम ही संतोंका—सत्पुरुषोंका परम सुख है—आनन्द है। संतोंका सच्चा सुख परोपकार किंवा परहितचिन्तन ही है और यही उनका सहज व्रत है।

महात्मा तुलसीदासजी कहते हैं कि जो दूसरेके दुःखसे द्रवीभूत हो जाय, वही पवित्रहृदय संत है—*'पर दुख*

द्रवहिं संत सुपुनीता।' भगवान्‌की मङ्गलमयी वाणी है कि संतजन सभी प्राणियोंके कल्याणमें लगे रहते हैं—'**सर्वभूतहिते रता:।**' वास्तवमें यह परोपकारव्रत सर्वोपरि व्रत है। विशुद्ध निष्कामभावसे स्वल्प भी इस व्रतका अनुपालन भयरूपी महान् संसारसागरसे तारकर सर्वदा अभय प्राप्त करा देता है—'**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।**' भगवान्‌ने '**यो मद्भक्त: स मे प्रिय:**' तथा '**गुणातीत: स उच्यते**' और '**स वै भागवतोत्तम:**' कहकर सच्चे संतोंका स्वरूप बताया है। जिसमें यह स्पष्ट निर्दिष्ट है कि जो भी सच्चे मनसे परहित-चिन्तनरूप व्रतमें दीक्षित हो जाता है, वह सदा-सदाके लिये संत हो जाता है और भगवत्प्रिय बन जाता है। भगवान्‌की प्रीति मिल जाय इससे बड़ी उपलब्धि इस जीवनकी और क्या हो सकती है? यह प्रभुप्रीति हमें भगवत्कृपासे सच्चे संतोंके द्वारा ही प्राप्त होती है; क्योंकि उनमें सद्भावकी प्रतिष्ठा रहती है, द्वेषका तो नाम ही नहीं रहता। वे इतने दयालु होते हैं कि दूसरेका दु:ख देखकर उनका हृदय पिघल जाता है। वे दूसरेके हितको ही अपना हित समझते हैं। इसमें वे हेतुका विचार नहीं करते—

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥

(रा०च०मा० ३।४६।७)

गोस्वामीजीने संतोंके परहितचिन्तनव्रतके अनुपालनीय स्वरूपका बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। यथा—

पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥
संत सहहिं दुख परहित लागी। परदुख हेतु असंत अभागी॥
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। परहित निति सह बिपति बिसाला॥
संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी॥
संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

(रा०च०मा० ७।१२१।१४—१६, २१; १२५।६—८)

पद्मपुराणमें संतोंके परहितचिन्तनव्रतनिष्ठाके विषयमें देवदूत और राजा महीरथका संवाद दिया गया है जिसमें बताया गया है कि जब राजा महीरथको विष्णुदूत नरकके मार्गसे वैकुण्ठ ले जाने लगे तो राजाके शरीरकी वायुके स्पर्शसे ही नरकोंके बड़े-बड़े दु:ख भोगते हुए दीन-दु:खी जनोंकी व्यथा दूर होने लगी, तब राजाने देवदूतोंसे निवेदन किया—'भाई! मुझे इन दीन-दु:खी और आर्तजनोंसे अलग मत करो, मैं इन्हें छोड़कर वैकुण्ठ जाना पसंद नहीं करता। संसारमें वह मनुष्य पापी है, जो समर्थ होकर भी आर्तजनोंके शोकको दूर नहीं करता। भाई! मेरे शरीरको स्पर्श करनेवाली वायुसे यदि प्राणियोंको सुख पहुँचा हो तो मुझे उसी जगह ले चलो जहाँ कि वे आर्तजन रहते हैं। जो पुरुष चन्दनके समान दूसरेके सन्तापको दूर करनेवाले हैं, वे सचमुच चन्दन ही हैं। इस संसारमें कर्मशील पुरुष वे ही हैं जो कि परोपकारके कारण पीडित रहते हैं। संसारमें संत वे ही हैं जो दूसरेके दु:खोंको दूर करते हैं और आर्तजनोंकी पीडाके विनाशके लिये जिनके प्राण तृणके समान हैं। ऐसे परोपकारी संतजनोंसे ही इस पृथिवीका धारण हो रहा है, केवल अपना नित्यका मानसिक सुख तो नरकके समान है। इस कारण संतजन अन्यके सुखसे ही सदा सुखी रहते हैं। इस संसारमें आर्तजनोंका दु:ख नाश किये बिना सुखकी प्राप्ति होती हो तो उसकी अपेक्षा नरकमें गिरना अच्छा है, मर जाना अच्छा है।'*

इस भारतधराका यह प्रभाव है कि यहाँके पशु-पक्षी भी साधुभावमें प्रतिष्ठित रहकर परहितके लिये आत्मदानतक करते हैं—

महाभारतमें एक कपोतपक्षीकी कथा आयी है, जिसमें बताया गया है कि उस कपोतकी धर्मपत्नी शत्रुके पाशपञ्जरमें पड़कर भी भूखे-प्यासे, दीन व्याधकी प्राणरक्षाके लिये अपने पतिसे इन उदार शब्दोंमें कहती है—'पतिदेव! इस

* नार्तं जन्तुमहं हित्वा पीडितुं गन्तुमुत्सहे। तं पापिष्ठं धिगार्तानामार्तिशक्तो न हन्ति य:॥
मदङ्गसङ्गमोच्छिष्टवायुस्पर्शेन ते यदि। जन्तव: सुखिनो जातास्तस्मात्तत्र नयन्तु माम्॥
परतापच्छिदो ये तु चन्दना इव चन्दनम्॥
परोपकृतये ये तु पीड्यन्ते कृतिनो हि ते। सन्तस्त एव ये लोके परदु:खविदारणा:॥
आर्तानामार्तिनाशार्थं प्राणा येषां तृणोपमा:। तैरियं धार्यते भूमिर्नरै: परहितोद्यतै:॥
मनसो यत्सुखं नित्यं तत्स्वर्गो नरकोपम:। तस्मात्परसुखेनैव सुखिन: साधव: सदा॥
वरं निरयपातोऽत्र वरं प्राणवियोजनम्। न पुन: क्षणमार्तानामार्तिनाशमृते सुखम्॥ (पद्मपुराण, पातालखण्ड १०१।३३—३९)

दीन-दु:खीकी सेवा कीजिये। यह मत समझिये कि यह हमारा शत्रु है। यदि उपकारीके प्रति उपकार किया तो क्या किया। अपकारीके प्रति जो उपकार करता है वही साधु है।' साधुजन अपकारीमें भी अपना साधुभाव नहीं छोड़ते। चन्दनको देखो वह काटनेवालेको भी अपने शैत्यगुणसे सुख ही पहुँचाता है। ऐसे संतजन प्राण देकर भी शरणागतकी रक्षा करते हैं। इस प्रकारके साधुजनोंकी अनेक कथाएँ महाभारतमें आयी हैं।

एक कबूतर बाजके पंजेसे छूटकर भयभीत होकर जब राजा शिविकी शरणमें गया तो राजा शिविने उसे रक्षा करनेका आश्वासन दिया। इतनेमें बाज भी अपने शिकारको वापस माँगने लगा। उस समय शरण्य साधु शिविके ये उद्गार निकले—

गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा।
यन्न भूतहितार्थाय तत्पशोरिव जीवितम्॥

बाजने जब यह आग्रह किया कि 'राजन्! यदि कबूतर देना नहीं चाहते हो तो कबूतरके बराबर अपना मांस तौलकर दे दो।' बाजके ऐसा कहनेपर राजा शिविने कबूतरके बराबर अपना मांस तौलना प्रारम्भ कर दिया— '**प्रहृष्टस्तोलयामास कपोतेन सह प्रभुः।**' क्यों न हो, साधुजनोंकी प्रवृत्ति ही ऐसी होती है कि वे अपने सुखभोगकी इच्छा न करके सम्पूर्ण प्राणियोंके सुखकी इच्छा करते हैं। साधुजन सदा परदु:खसे दु:खित रहते हैं।

शिविकी इस अतिशय उदारवृत्तिको देखकर अन्तमें इन्द्रको भी राजा शिवि साधुके रूपमें दिखायी दिये। शिविकी प्रशंसा करते हुए इन्द्र बोले—'राजन्! अपने सुखको छोड़कर परोपकारबुद्धिवाले तुम्हारे-जैसे साधुजन जगत्-कल्याणके लिये ही पैदा होते हैं'—

परोपकारैकधियः स्वसुखाय गतस्पृहाः।
जगद्धिताय जायन्ते साधवस्त्वादृशा भुवि॥

ऐसे साधुजनोंको ही शास्त्रोंमें धर्मात्मा या धर्मज्ञ कहा गया है।

महाभारतमें तुलाधार जाजलिसे कहता है कि 'हे जाजले! जो मनुष्य मन, वचन, कर्मसे सब भूतोंपर दया करता है और सबका सुहृद् होता है, वही धर्मको जानता है'—

सर्वेषां यः सुहृन्नित्यं सर्वेषां च हिते रतः।
कर्मणा मनसा वाचा स धर्मं वेद जाजले॥

संतोंका तो परानुग्रहपरायण रहना ही व्रत है इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं—

किमत्र चित्रं यत्सन्तः परानुग्रहतत्पराः।

(महाभारत)

देवर्षि नारदजीके नामसे भला कौन अपरिचित है? उनका तो बस एक ही व्रत है। अपनी वीणाकी मधुर झंकारके साथ भगवान्के गुणोंका गान करते हुए सम्पूर्ण पृथ्वीपर घर-घर घूमकर जन-जनमें भगवान्की भक्तिकी स्थापना करना। जो भी मिल जाय चाहे जैसे हो उसे भगवान्के श्रीचरणोंतक पहुँचा दिया जाय। भला, इनसे बड़ा उपकारी संत और कौन हो सकता है? जो जैसा अधिकारी होता है नारदजी उसे वैसा मार्ग बताकर उसका परम कल्याण साध देते हैं। बालक ध्रुवको भगवन्नामका पाठ पढ़ा दिया, भक्त प्रह्लादको नाम-जपकी शिक्षा दे दीं, हिरण्यकशिपु और कंसको उनके अनुसार ही मार्ग बता दिया। भगवान् वेदव्यासको भगवत्तत्त्वका उपदेश देकर भागवत-जैसा ग्रन्थ हमें उपलब्ध करा दिया। इन्हींकी कृपासे रत्नाकर वाल्मीकि बन गये और हमें रामकथा मिली। इतने परोपकारी तथा सच्चे संतकी कृपा होना बड़े सौभाग्यकी बात है। भगवान्ने देवर्षि नारदजीकी स्तुति करते हुए कहा है—

न प्रीयते परार्थेन योऽसौ तं नौमि नारदम्॥

(स्कन्दपु०)

अर्थात् जो परोपकार करनेसे कभी अघाते नहीं, उन नारदजीको मैं नमस्कार करता हूँ। इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है? परोपकारी संतकी इतनी महिमा है कि भगवान् भी उनकी स्तुति करते हैं।

महर्षि दधीचि, ओह! आपने तो विश्वकी रक्षाके लिये सशरीर अपनी अस्थियोंका दान कर दिया। उन्हींकी अस्थियोंसे देवताओंने वज्र बनाया और वृत्रासुर तथा उसकी दानवी सेनाका संहार हुआ। इतना बड़ा त्याग, इतना महादान! ऐसा कठिन असिधाराव्रत! ऐसा तो संत दधीचि ही कर सकते हैं, इतना ही नहीं एक बार देवराज इन्द्रने प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'जो कोई अश्विनीकुमारोंको ब्रह्मविद्याका उपदेश करेगा, उसका मस्तक मैं काट दूँगा।'

अश्विनीकुमारोंने महर्षि दधीचिसे ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेकी प्रार्थना की। महर्षिने परिणाम ज्ञात होते हुए भी उपदेश देना स्वीकार कर लिया। अश्विनीकुमारोंने ऋषिका मस्तक काटकर औषधद्वारा सुरक्षित करके अलग रख दिया

उनके सिरपर घोड़ेका सिर लगा दिया। इसी घोड़ेके मुखसे उन्होंने अश्विनीकुमारोंको ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया। अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार इन्द्रने ऋषिका मस्तक काट दिया, किंतु देववैद्य अश्विनीकुमारोंने उनका पहला सिर उनके धड़से लगाकर उन्हें जीवित कर दिया। तभीसे उनका नाम अश्वशिरा भी पड़ गया।

जिस इन्द्रने उनका सिर काटा था, उन्हींके लिये संत दधीचिने सहर्ष सशरीर अपनी अस्थियाँ दे दीं, भला इससे बढ़कर संतत्व तथा परहितैषिता और क्या हो सकती है? महर्षि दधीचिके व्रतपालनकी निष्ठा सबके लिये अनुकरणीय है।

महर्षि च्यवन नामक एक बड़े परोपकारी संत हो गये हैं। जीवदया ही उनका मुख्य व्रत रहा है। एक बार जब मल्लाहोंने नदीमें जाल डालकर जाल बाहर खींचा तो मत्स्य आदि जल-जन्तुओंके साथ च्यवन भी जालके साथ बाहर आ गये। उस समय वे जलमें व्रतानुष्ठानमें लगे थे। मत्स्य जलसे बाहर आकर तड़पने लगे। महर्षिको भी जालमें फँसा देख मल्लाह घबरा गये, वे ऋषिसे जालसे बाहर निकलनेकी प्रार्थना करने लगे। पर परदु:खकातर च्यवन जो मछलियोंके तड़पनेको देख स्वयं भी तड़पने लगे थे, बोले—'अरे मल्लाहो! ये मत्स्य जीवित रहेंगे तो मैं भी जीवित रहूँगा अन्यथा इनके साथ मैं भी अपने प्राण दे दूँगा; क्योंकि मैं इनके दु:खको देख नहीं सकता।'

यह विलक्षण समाचार राजा नहुषके पास पहुँचा तो वे मन्त्रियोंके साथ शीघ्रतासे नदीतटपर पहुँचे और प्रार्थना करने लगे। तब महर्षिने कहा—राजन्! आज इन मल्लाहोंने बड़ा भारी श्रम किया है। आप इनको मेरा तथा मछलियोंका मूल्य चुका दीजिये।' राजा स्वर्णमुद्राएँ देने लगे, परंतु एक वनवासी महात्माने कहा—'महाराज! मुद्राओंसे संतोंका मूल्य नहीं चुकाया जाता, आप एक गौके बदले इन्हें प्रसन्न करें।' राजाने वैसा ही किया। मुनि प्रसन्न हो गये। च्यवनमुनिके प्रभावसे मल्लाहों तथा मत्स्योंने ऊर्ध्वलोकोंको प्राप्त किया। यह है सच्चे संतकी दयालुताका प्रभाव।

भारत-आर्यधरामें ऐसे सहस्रश: संतजन हो चुके हैं जिन्होंने परहितचिन्तनको ही अपने जीवनमें व्रतरूपमें प्रतिष्ठित किया और प्राण देकर भी इस व्रतका पालन किया। ऐसे ही परोपकारव्रती संतोंसे यह धरा टिकी हुई है। संतोंकी इस व्रतनिष्ठासे हमें भी यह शिक्षा लेनी चाहिये कि हम भी व्रतमें दीक्षित होकर उसका अनुपालन करें और हमें यह समझना चाहिये कि परोपकार करनेमें, परहितचिन्तनमें आनन्दकी प्रतीति हो, संतोष मिले तो साधुताका प्रवेश हो रहा है, सत्पुरुषोंके सद्गुण आ रहे हैं। इसके विपरीत यदि दूसरेको कष्ट पहुँचानेमें आनन्द मिलता हो तो समझना चाहिये कि आसुरीभावका प्रवेश हो रहा है और हम भगवत्प्राप्तिके व्रतसे दूर होते जा रहे हैं।

'बिनु हरि भगति कहा व्रत कीन्हें?'

बिनु हरि भगति कहा व्रत कीन्हें?
सोइ यम-नियम, सोइ व्रत पालन, जिन्हहिं तें हरि चीन्हें॥
नित्य नैमित्य काम्य कर्महिं सब, वेदन साधन दीन्हें।
धर्माचरण सोई पर्वोत्सव, प्रभु उन्मुख हम कीन्हें॥
सत्य, शौच, अस्तेय, अहिंसा, ब्रह्मचर्य व्रत लीन्हें।
सोइ उपवास, पर्व सोइ दिन, तिथि, भाव शुद्धि जे कीन्हें॥
सोइ उल्लास, अनंद, शान्ति, सौहार्द, सुभग सुख लीन्हें।
सोइ मज्जन, जप, दान, होम, तप, हरिहि भजै चित दीन्हें॥
अन्तर्मुख आसक्ति रहित जे, सत्त्व भावमय भीनें।
भगवत्प्रीति कर्म सब जिन्हके, व्रत-पर्वोत्सव कीन्हें॥
ग्याताग्यात पाप निन्दित सब, मानस व्रत तें छीनें।
'कृष्णगुपाल' आत्महित पालन, व्रत सम्यक् विधि कीन्हें॥

(पं० श्रीकृष्णगोपालाचार्यजी, एम०ए० (द्वय), साहित्याचार्य, संगीताचार्य)

श्रीभागीरथी (गङ्गा)-स्नान-व्रत

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

मनुष्योंके वे पद सफल हैं जो गङ्गातटाभिमुख रखे जाते हैं। वे श्रोत्र सफल हैं जो गङ्गाप्रवाहपातका श्रवण करते हैं। वह जिह्वा जो श्रीगङ्गाके स्वादु जलका पान करती है, वे नेत्र जो श्रीगङ्गाके चारुतरङ्गदर्शी हैं, सफल हैं। वह ललाट जिसपर श्रीगङ्गारज शोभित है, वे कर जिनसे श्रीगङ्गातटस्थ हो श्रीहरिका पूजन किया जाता है; वह शरीर जो निर्मल गङ्गाजलमें स्नान करता है, सफल है।

श्रीवेदव्यासजी अपने शिष्य जैमिनिके प्रति कहने लगे—'हे जैमिने! जिस समय कोई पुण्यात्मा श्रीगङ्गातटपर स्नानके लिये प्रस्तुत होता है तो उसके स्वर्गस्थ पितर प्रफुल्लितहृदय होकर प्रशंसा करते हुए श्लोक पढ़ते हैं, जिसका अर्थ है—'अहो! हमने पूर्वमें कोई सद्गति-प्राप्त्यर्थ ऐसा पुण्य किया है कि हमारे वंशमें ऐसा पुत्र हुआ जो श्रीगङ्गोदकसे हमको तृप्तकर सुदुर्लभ परमधामकी प्राप्ति करायेगा। यह मेरा बेटा जो द्रव्य हमको संकल्पपूर्वक प्रदान करेगा वह सब अक्षय फलप्रद होगा।'

नरकस्थ जो पितर सर्वदु:खसमन्वित हैं, वे श्रीगङ्गातटाभिमुख अपने वंशजको देखकर यह आशा करते हैं कि हमने नरकक्लेशप्रद जो पाप किये थे, वे इस पुत्रके प्रसादसे क्षय हो जायँगे। अहो, हम दु:सह नरकक्लेशसे आज मुक्त होकर परमगति लाभ करेंगे। जो हतभाग्य श्रीगङ्गाजीकी यात्राके निमित्त प्रयाण करके भी मोहवश गृहको लौट आता है, उसके पितर निराश होकर अतिखिन्न मनसे शाप देते हैं।

श्रीगङ्गादितीर्थयात्रामें आमिष, मैथुन, दोला, अश्व, गज, छाता, जूता, असद्भाषण, पाखण्ड, जनसंसर्ग, द्विर्भोजन, कलह, परनिन्दा, लोभ, गर्व, मत्सर, अतिहास्य और शोक त्याज्य हैं। मार्गजनित श्रमोत्पन्न दु:खको हृदयमें न लाये। गृहके शय्या-सुखका स्मरण न करे। भूमिशायी हुआ भी अपनेको पर्यङ्कशायी-सा अनुभव करे। मार्गमें सर्वपापक्षयकारक श्रीगङ्गाजीके दिव्य नाम तथा माहात्म्यका कथन करता हुआ गमन करे। यदि चलता हुआ श्रान्त हो तो यह प्रार्थना करे—

गङ्गे देवि जगन्मातर्देहि संदर्शनं मम।

यदि मार्गमें यह भावना न होगी तो पूर्ण फलका भागी नहीं हो सकता। त्याज्यभावना यह है कि 'हमारे पर्यङ्क, पत्नी, सुहृद्गण, गृह, धन-धान्यादि वस्तुकी क्या दशा होगी? हम गृहसुख त्यागकर किस संकटमें पड़ गये, न जाने कितने दिनोंमें घर पहुँचेंगे—ऐसी चिन्ताको त्यागकर श्रीहरिके भक्तमण्डलके साथ यात्रा करता हुआ प्रसन्नचित्तसे भावना करे—

गङ्गे गन्तुं मया तीरे यात्रेयं विहिता तव।
निर्विघ्नां सिद्धिमाप्नोमि त्वत्प्रसादात्सरिद्वरे॥

गमन न अति वेगसे और न अति मन्द हो। श्रीगङ्गा आदि तीर्थयात्रामें अन्य कामासक्त न हो, नहीं तो यात्राका आधा पुण्य नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार परम प्रेमनिमग्न हुआ जब श्रीगङ्गातटपर पहुँचे तब श्रीगङ्गाके दर्शनसे तृप्त होकर सहर्ष यह भाव प्रकट करे—

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।
साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपां त्वामपश्यमिति चक्षुषा॥
देवि त्वद्दर्शनादेव महापातकिनो मम।
विनष्टमभवत्पापं जन्मकोटिसमुद्भवम्॥

तदनन्तर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करे और प्रवाहके निकट स्थित हो श्रीगङ्गोदकको भक्तिभावसे मस्तकपर धारण करे। स्नानपूर्व प्रवाहके निकट ही श्रद्धाञ्जलिपुरस्सर प्रेमभावसे यह प्रार्थना करे—

गङ्गे देवि जगद्धात्रि पादाभ्यां सलिलं तव।
स्पृशामीत्यपराधं मे प्रसन्ना क्षन्तुमर्हसि॥
स्वर्गारोहणसोपानं त्वदीयमुदकं शुभे।
अत: स्पृशामि पादाभ्यां गङ्गे देवि नमो नम:॥

तब श्रीगङ्गे-श्रीगङ्गे नामामृतका उच्चारण करता हुआ, स्नानार्थ जलमें प्रवेश कर श्रीगङ्गाकर्दमका यह वाक्य कहता हुआ शरीरपर लेपन करे—

त्वत्कर्दमैरतिस्निग्धै: सर्वपापप्रणाशनै:।
मया संलिप्यते गात्रं मातर्मे हर पातकम्॥

तब वक्ष्यमाण मन्त्रसे गोता लगाकर स्नान करे—

विष्णुपादाब्जसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनी।
धर्मद्रवेति विख्याता पापं मे हर जाह्नवि॥
विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता।
त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥
श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमता रजसा च ते।
अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम्॥
त्रिभिः श्लोकवरैरेभिर्यैः स्नायाज्जाह्नवीजले।
जन्मकोटिकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥

यथेष्ट स्नानकर बाहर निकलकर धौतवस्त्र इतनी दूर उतारे कि निचोड़ा हुआ जल स्रोतमें न जाय, गङ्गाकी मिट्टीसे अङ्गोंपर तिलक धारण करे, सन्ध्या-वन्दन-गायत्रीजप कर शास्त्रोक्त विधिसे तर्पण करे।

गाङ्गेयैरुदकैर्यस्तु कुरुते पितृतर्पणम्।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति वर्षकोटिशतावधि॥
गङ्गायां कुरुते यस्तु पितृश्राद्धं द्विजोत्तम।
पितरस्तस्य तिष्ठन्ति सन्तुष्टास्त्रिदशालयम्॥

यथाशक्ति दान दे। निश्चिन्त मनसे श्रीगङ्गाजीका पूजन करे। श्रीसदाशिवोपदिष्ट श्रीगङ्गाजीका जप तथा षोडशोपचारविधिसे पूजनके लिये यह मूल मन्त्र है—

ॐ नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमो नमः।

श्रीगङ्गाजीका प्रेमपूर्वक पूजन तथा मूलमन्त्र जपकर दिव्यस्तोत्रद्वारा स्तुति करे। दिवस व्यतीत होनेपर गङ्गातटसे दूर स्थित होकर रात्रिमें सहर्ष जागरण करे। यदि निराहार रहनेकी शक्ति न हो तो एक समय पयोव्रत, फलाहार-सेवन करे। अन्नका और द्विर्भोजनका परित्याग तो अवश्य ही करे।

प्रातःकाल उसी प्रकार शौच, स्नान, सन्ध्या, तर्पण, पूजनसे निवृत्त होकर तीर्थपुरोहितको भोजन तथा दक्षिणासे संतुष्ट करके आशीर्वाद ग्रहण करे। श्रीगङ्गाजीसे बद्धाञ्जलि-पुरस्सर यह प्रार्थना करे—

अर्चनं जागरं चैव यत्कृतं पुरतस्तव।
अच्छिद्रमस्तु तत्सर्वं त्वत्प्रसादात्सरिद्वरे॥

इस प्रकार जो श्रद्धालु एक बार भी श्रीगङ्गाजीमें स्नान करता है, वह श्रीविष्णुलोकमें रहकर परम ज्ञान प्राप्तकर कैवल्यपदमें प्रवेश करता है।

तीर्थस्नायीके निमित्त विशेष वक्तव्य

तीर्थप्रवाहसे चार हस्त भूमिके अधिष्ठातृदेव नारायण हैं, अन्य कोई नहीं। अतः उनके साक्षित्वमें कण्ठगत प्राण होनेपर भी प्रतिग्रह न करे। भाद्रपदमासमें शुक्ल चतुर्दशीके दिन तीर्थका जल यावत्पर्यन्त भूमिको आवृत्त करता है, वह गर्भ माना जाता है। किसी आचार्यका यह भी मत है कि १५० हाथ भूमितक गर्भ है, उसके बाद तीर मानना चाहिये। तीरसे दो-दो कोस दोनों ओर क्षेत्र होता है, भूमि त्यागकर क्षेत्रमें वास करना चाहिये। अतः प्रवाहसे १५० हाथ भूमि त्याग कर क्षेत्रमें वास करे। कारण यह है कि जो मनुष्य १५० हाथ तीर्थभूमिके अन्तर्गत मल, मूत्र, कफ, थूक, नेत्रका मल, अश्रु और उच्छिष्ट वस्तु त्यागता है, वह निश्चय ही तीर्थके साक्षित्वमें पापयुक्त होकर परलोकमें नरकगामी होता है। श्रीगङ्गातटस्थ होकर जो मूढ़ पापाचरण करता है उसका पाप अक्षय हो अन्य तीर्थमें भी शान्त नहीं हो सकता। श्रीगङ्गागर्भमें दन्तधावन न करे, यदि मोहवश ऐसा करता है तो श्रीगङ्गास्नानजन्य पुण्य नहीं होता। अतः प्रभातमें उठकर दन्तधावन, शौचादि क्रिया गङ्गागर्भसे दूर अन्य स्थलमें करे।

श्रद्धालुजनके लिये उचित है कि श्रीगङ्गादि तीर्थपर पापाचरणको प्रयत्नपूर्वक त्यागकर मनोवाक्कर्मसे धर्मसंग्रह करे, जिससे ऐहिकामुष्मिक अभ्युदय हो।

[प्रेषक—प्रो० श्रीबिहारीलालजी टांटिया]

नित्योत्सव

नित्योत्सवो भवेत् तेषां नित्यं नित्यं च मङ्गलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं हरिः॥

(पाण्डवगीता ४५)

जिनके हृदयमें मङ्गलायतन भगवान् हरि विद्यमान हैं, उनके लिये सदा उत्सव है—नित्य मङ्गल है।

होलीका आध्यात्मिक रहस्य

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

जो सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक भगवान् हैं, वे रसरीतिसे अत्यन्त सुलभ साधारण-से हो जाते हैं। कहते हैं—प्रेमदेवता जिसको छू लेता है, वह कुछ-का-कुछ हो जाता है। अल्पज्ञ सर्वज्ञ हो जाता है और सर्वज्ञ अल्पज्ञ हो जाता है। अल्पशक्तिमान् सर्वशक्तिमान् हो जाता है, सर्वशक्तिमान् अल्पशक्तिमान् हो जाता है। परिच्छिन्न व्यापक हो जाता है, व्यापक परिच्छिन्न हो जाता है। इस प्रकार प्रेमदेवताके स्पर्शसे कुछ-का-कुछ हो जाता है। प्रेमरंगमें रँगे हुए प्रेमीके लिये सम्पूर्ण संसार ही प्रेमास्पद प्रियतम हो जाता है—

उड़त गुलाल लाल भये अम्बर।

यह जो होली होती है, इसमें रंग क्या है? जिसके द्वारा जगत् रँग जाता है—*'उड़त गुलाल लाल भये अम्बर'*—अम्बर माने आकाश, गुलालके उड़नेसे अम्बर लाल हो गया। आकाश इस सारे भौतिक प्रपञ्चका उपलक्षण है।

इस भौतिक जगत्की भौतिकता मिट जाती है। इसमें ब्रह्मात्मकताका आविर्भाव होता है। राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरीकी आराधना करनेवाले उनका ध्यान करते हैं—

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम्॥

(श्रीललितासहस्रनामस्तोत्र)

अतिमधुरचापहस्तामपरिमितामोदबाणसौभाग्याम् ।
अरुणामतिशयकरुणामभिनवकुलसुन्दरीं वन्दे॥

(श्रीललितात्रिशतीध्यानम्)

'सिन्दूरारुणविग्रहाम्'—सिन्दूरके समान अरुण विग्रह है भगवतीका। वह अरुणिमा क्या है? अतिशय करुणा। देवी आर्द्र हैं—'आर्द्राम्' (श्रीसूक्त ४)। कठोरता तो उनमें है ही नहीं। जीवोंपर असीम करुणा है। उसीसे हर समय आर्द्र हैं। 'तृप्तां तर्पयन्तीम्' (श्रीसूक्त ४) जो स्वयं तृप्त हैं और सबको तृप्त करती हैं। जो स्वयं तृप्त है वही अन्योंको तृप्त कर सकता है। जो परम तृप्त है, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक सर्वेश्वरका जिन्हें संनिधान प्राप्त है, जो अनन्तब्रह्माण्डजननी ऐश्वर्य-माधुर्यकी अधिष्ठात्री महालक्ष्मी भगवतीका भी सर्वोत्तम सारसर्वस्व हैं, वे ही श्रीराधारानी हैं। सर्वेश्वर भी जिनके पादारविन्द-रजकी आराधना करते हैं, उनसे बढ़कर किसकी तृप्ति हो सकती है; उनका तर्पण होनेपर सारे संसारका तर्पण हो जाता है।

'लोहित्यमस्य विमर्शः'—लोहित्य क्या है? विमर्श।

भगवान्‌का स्वरूप माना है—अखण्ड-बोध। ऐसा बोध जो निर्विशेष है, जिसमें कोई विशेषण नहीं है। घट-ज्ञान, पट-ज्ञान तो सविशेष ज्ञान है, विशेषणयुक्त है; निर्विशेष कहाँ है? अखण्ड-बोधमें लोहित्य है विमर्श।

सजातीय विजातीय स्वगत-भेदशून्य परमात्मा तो हैं—प्रकाशात्मक शिव; उनमें जो विमर्श आया वही है लोहित्य।

लोहित्य माने सविशेष ज्ञान, तत्तदवस्तु-ज्ञान—प्रपञ्चज्ञान।

भगवान् श्रीकृष्ण करुणावरुणालय हैं। उन्होंने जीवोंको संसारमें भेजा है। क्यों? कर्मोंके अनुसार फलोपभोगके लिये।

माँके हृदयमें करुणा रहती है, यद्यपि कभी-कभी वह बालकके हाथमें खिलौना पकड़ाकर खेलनेके लिये छोड़ देती है; दयार्द्र होकर उसका ध्यान फिर भी रखती है। समीप ही रहती है, ताकि बालकपर कभी अड़चन पड़े तो सीधे वह माँकी गोदीमें आ जाय। भगवान्‌ने जीवोंको कर्मफलोपभोगके लिये संसारमें भेजा अवश्य है, परंतु अपनेतक आनेका अमोघ सम्बल देकर भेजा है; वह है—'प्रेम'। प्रेम प्रत्येक प्राणीमें है। ऐसा कोई जीव नहीं, जिसमें प्रेम नहीं। बड़े-से-बड़े राक्षसमें भी प्रेम होता है; अन्यत्र न सही, किंतु अपनी पत्नीमें, अपने बच्चोंमें, अपने सुखमें। प्रेमविहीन संसारमें कोई है ही नहीं।

यदि जीव चाहे तो प्रभुमें प्रेम करके प्रभुतक पहुँच सकता है। जब यह सिद्ध है कि प्रेमविहीन कोई है नहीं, तब प्रेमको जगत्-कारण सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा मानना चाहिये; क्योंकि कारण ही कार्यमें अनुस्यूत होता है। है कोई स्वर्णभूषण, जिसमें स्वर्ण अनुस्यूत न हो? है कोई मृद्घट, जिसमें मृत्तिका अनुस्यूत न हो? है कोई जलतरंग, जिसमें जल अनुस्यूत न हो? है कोई कार्य, जिसमें कारण (उपादान) अनुस्यूत न हो? जो भी कार्य होगा, उसके भीतर, बाहर,

मध्यमें कारण अनुस्यूत होगा। 'प्रेम'—जगत्-कारण है; क्योंकि सच्चिदानन्दघन प्रभुमें प्रेमास्पदता है, प्रेमरूपता है; अत: कारण-विधया प्रत्येक कार्यमें वह अनुस्यूत है।

अणु-अणु, परमाणु-परमाणुमें प्रेम-तत्त्व विद्यमान है। एक परमाणु दूसरे परमाणुसे बिना स्नेह (प्रेम)-के कैसे मिले? एक परमाणु जब दूसरे परमाणुसे मिलता है, तब स्नेह या प्रेमसे ही मिलता है। पति-पत्नी, पिता-पुत्र—सभी स्नेहसे ही जुड़े हैं। विना स्नेह (प्रेम)-के कोई किसीसे जुड़ता है क्या? सारा सम्वन्ध स्नेहमूलक है। सारा विश्व-प्रपञ्च स्नेहके आधारपर जुड़ा है। सारा संसार स्नेहका ही परिणाम, उल्लास, विकास है। स्नेह (प्रेम) सबमें अनुस्यूत है।

'प्रेम' क्या है?—

महानुभावोंने कहा है—'जिसमें सभी रस, सभी भाव उन्मज्जित-निमज्जित हों, वह रससिन्धु ही प्रेम है'—

सर्वे रसाश्च भावाश्च तरङ्गा इव वारिधौ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र स प्रेमसंज्ञकः॥

(चैतन्यचन्द्रोदय)

इस तरह प्राणिमात्रके पास प्रेम है। जब प्राणीको घबराहट हो तो इसी प्रेमका सहारा पकड़कर भगवान्‌के मङ्गलमय अङ्कमें पहुँच जाना चाहिये। देखो! प्रेमका अद्भुत प्रभाव! आज 'होली' के दिन, जिनकी बड़ी-से-बड़ी आपसमें दुश्मनी होती है, वह मिट जाती है। रंग प्रेम ही है। आजके दिन जब व्यक्ति घरसे बाहर मिलने चलते हैं तो यह नहीं देखते कि यह गरीब है या अमीर, यह शत्रु है या मित्र? गरीब हो चाहे अमीर, शत्रु हो या मित्र सबसे बड़े प्रेमसे गले लगकर मिलते हैं। आज (होली)-का दिन शत्रुता खोनेका है। सबसे प्रेमपूर्वक मिलनेका है। सारी भावनाओंको दूर करके अखण्ड ब्रह्मात्मभावकी बात है।

राधाकृष्ण, प्रिया-प्रियतम अनन्तब्रह्माण्डनायक सर्वशक्तिमान्, सर्वाधिष्ठान आनन्दकन्द, श्रीकृष्णचन्द्र और उनकी आह्लादिनी शक्ति प्रेमात्मक हैं। वे ही सर्वरूपोंमें विलसित हो रहे हैं। प्रेमदेव ही भोक्ता-भोग्य और प्रेरयिताके रूपमें प्रकट हो करके लीला कर रहे हैं। श्रीकृष्णके साथ ग्वालबाल और राधारानीके साथ उनके सखीवृन्दके रूपमें प्रेम ही क्रीड़ा कर रहा है। श्यामसुन्दरके प्रेममें ही सारा अन्त:करण, अन्तरात्मा, रोम-रोम रँगा हुआ है।

प्रेम जहाँ होता है, वहाँ कोई अन्तर नहीं होता है। किसी प्रकारके भेदभावकी कल्पनातक नहीं रहती। अग्नि सब जगह है, कोई काष्ठ ऐसा नहीं जिसमें वह (अग्नि) नहीं है। हर एक काष्ठमें अग्नि है। काष्ठमें अग्नि प्रकट करनेके लिये उस काष्ठसे सम्बन्ध जोड़ दो, जिसमें वह प्रज्वलित (प्रकट) है। अव्यक्त अग्निवाले काष्ठका व्यक्त अग्निवाले काष्ठसे सम्बन्ध जुड़ते ही उसमें भी अग्निका प्राकट्य हो जाता है। श्यामसुन्दर और उनकी प्राणेश्वरी राधारानीमें प्रेम प्रकट है।

अन्यत्र प्रेम, प्रेमका आश्रय और उसके विषयमें भेद है; पर यहाँ नहीं। जो प्रेम है, वही उसका आश्रय है और वही उसका विषय है। ऐसी स्थितिमें इन्होंने (प्रेमात्मक-प्रियतम श्रीराधामाधवने) जिसे छू दिया, वही शुद्ध प्रेम हो गया। रंग, रोली, अबीर—ये सब वस्तुएँ इनके स्पर्शमात्रसे शुद्ध प्रेमरूप हो जाती हैं। ये सब सांसारिक पदार्थ भगवत्संस्पर्शमात्रसे भगवत्स्वरूप हो जाते हैं। गन्धकको पारदमें घोटें तो कुछ काल-पश्चात् गन्धक जैसे पारद (पारा)-रूप हो जाती है, वैसे ही पूर्णके सम्बन्धसे अपूर्ण वस्तु पूर्ण हो जाती है, प्राकृत वस्तु दिव्य—अप्राकृत हो जाती है।

आप जानते हैं, दुनियामें तृष्णा निन्दनीय है। कौन-सी तृष्णा? दुनियाकी तृष्णा। दुनियाकी तृष्णा निन्दनीय होती है, पर यदि आपको भगवत्सम्मिलनकी तृष्णा हो तो बड़ी उत्तम है, निन्दनीय नहीं है। भगवान्‌के मुखचन्द्रकी तृष्णा, पादारविन्द-नखमणिचन्द्र-चन्द्रिकाकी तृष्णा इतनी उत्तम है कि इसके ऊपर लाखों वैराग्य, लाखों ज्ञानको राई-नोनकी तरह झोंक दें। इसके सामने इनका कोई अर्थ, महत्त्व नहीं। इसलिये यह तृष्णा बड़ी कीमती चीज है; वड़े भाग्यसे मिलती है। इस तरह यहाँ तृष्णाके विषयका इतना अद्भुत चमत्कार है कि जिसके योगसे व्यक्तिको भवसागरमें डुबोनेवाली तृष्णा तारनेवाली बन जाती है। इसी प्रकार भगवत्संस्पृष्ट वस्तुकी महिमा बढ़ जाती है। इसी दृष्टिसे भगवद्धामकी अद्भुत महिमा है।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती लिखते हैं—'कोई चाहे पापी हो, पुण्यात्मा हो, देवता हो, राक्षस हो, वह वृन्दावनधाममें प्रविष्ट हो करके सद्यः (तत्काल) आनन्दघन हो जाता है, सद्घन हो जाता है, चिद्घन हो जाता है'—

यत्र प्रविष्टः सकलोऽपि जन्तुरानन्दसच्चिद्घनतामुपैति।

(श्रीवृन्दावनमहिमामृतशतक)

जैसे लवणकी खानमें जो भी वस्तु पड़ जाती है, थोड़े ही दिनोंमें वह लवण बन जाती है। वैसे ही भगवद्धाममें प्रविष्ट व्यक्ति तत्क्षण आनन्दघन हो जाता है। यह बात दूसरी है कि सभी व्यक्तियोंको उस आनन्दघनताकी अनुभूति तत्काल नहीं हो पाती। अपनेमें आनन्दघनताके प्राकट्यको व्यक्ति तत्काल अनुभव नहीं कर पाता, ठीक वैसे ही जैसे आनन्दघन श्रीकृष्णचन्द्रको यशोदारानी आनन्दघन नहीं समझ पाती थीं। जैसे लौकिक माता-पिता अपने लौकिक-प्राकृतिक बालकको बाँध देते हैं, वैसे ही माँ यशोदाने भगवान् श्रीकृष्णको ओखलीसे बाँधा—

'बबन्ध प्राकृतं यथा।'

(श्रीमद्भा० १०।९।१४)

यशोदारानीको यह नहीं मालूम पड़ा कि मैं अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायकको बाँध रही हूँ। ऐश्वर्याधिष्ठातृ महाशक्तिने भगवान्‌को बाँधनेके उपक्रमको देखकर सोचा—'अरे! हमारे देखते-देखते यह अज-अनन्त अपरिच्छिन्नको बाँधेगी, हमारे प्रभुको ही बाँधेगी?' इधर यशोदाने हठ कर लिया—'कहाँतक नहीं बँधेगा; आखिर हमारा लाला ही तो है। इसे बाँधकर रहूँगी।' दोनोंका टण्टा पड़ गया। दुनियाभरकी रस्सी बटोरते-बटोरते बाँधनेकी कोशिश की, पर दो अङ्गुल छोटी, दो अङ्गुल कम!—

'द्व्यङ्गुलोनमभूत्तेन', 'तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनम्।'

(श्रीमद्भा० १०।९।१५-१६)

दो अङ्गुल कम क्या? आचार्य लोग कहते हैं—'भक्तका परिश्रम पूरा हो जाय और भगवान्‌की अनुकम्पा उछल जाय तो दो अङ्गुलकी कमी पूरी हो जाय। भक्तजनका परिश्रम अभी पूरा नहीं हुआ और भगवदनुकम्पाका अभी आविर्भाव नहीं हुआ, यही बँधनेमें देरी है।'—

—तो बाँधते-बाँधते नन्दरानी थक गयीं। हाँफने लगीं, गरम-गरम श्वास श्यामसुन्दरके श्रीअङ्गमें लगा और मैयाके माथेकी पसीनेकी बूँद भी श्रीअङ्गपर पड़ी। भक्तजनका परिश्रम पूरा हो गया। भगवान्‌का ध्यान गया—'माँका परिश्रम पूरा हो गया, अनुकम्पा प्रकट हो गयी। दो अङ्गुलकी कमी पूरी हो गयी। जैसे साधारण बालकको उसकी माँ बाँध देती है, वैसे ही अनन्त अखण्ड अपरिच्छिन्न श्यामसुन्दरको माँ यशोदाने बाँध दिया'—

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने॥

(श्रीमद्भा० १०।९।१८)

इस तरह वृन्दावनकी दिव्यता, यहाँके निवासियोंकी दिव्यता मालूम नहीं पड़ती। सिद्धान्त यह है कि 'वृन्दावनधामके आकाश, वायु, सूर्य, चन्द्र, तारा—ये सब प्राकृत नहीं, अलग (विलक्षण) हैं। इसी तरह श्रीकृष्ण भी प्राकृतोंसे अलग हैं, जो वृन्दावनधाममें प्रविष्ट हो गये, वे भी प्राकृत नहीं रह गये, आनन्दघन हो गये। केवल प्राकट्यमें देर है। जब उसके सच्चिदानन्दरूपताका प्राकट्य होगा, तब आनन्द सत्-चित्-घनता जगमगा उठेगी।'

अवधूतगीतामें लिखा है—

न हि मोक्षपदं न हि बन्धपदं न हि पुण्यपदं न हि पापपदम्।
न हि पूर्णपदं न हि रिक्तपदं किमु रोदिषि मानस सर्वसमम्॥

(५।१९)

'मोक्षपद नहीं है और बन्धपद भी नहीं है। पुण्यपद भी नहीं है और पापपद भी नहीं है। पूर्णपद भी नहीं है और अपूर्णपद भी नहीं है। इसलिये हे मन! तू रुदन क्यों करता है, यह सब सम है।'

न बन्ध है, न मोक्ष है, न पुण्य है, न पाप है। एकमात्र अनन्त-अखण्ड-निर्विकार-पूर्णतम पुरुषोत्तम और उनका वह अखण्ड प्रेम है। इससे भिन्न कुछ भी नहीं है। जबतक उस (भगवत्तत्त्व)-का प्राकट्य नहीं होता, तबतक सब प्राकृत-जैसा है। उसीके प्राकट्यके लिये महायज्ञोंका अनुष्ठान, अङ्गन्यास, करन्यास, भूतशुद्धि, भूशुद्धि, नामजप, गङ्गास्नान, श्रीवृन्दावनधाममें निवास, रसिक संतोंका सम्पर्क और सत्संगादिका आलम्बन है। श्रीराधाकृष्ण आनन्दस्वरूप हैं। इनमें आनन्दका पूर्ण प्राकट्य है। इनके संस्पर्शकी देर है। इनके स्पर्शसे सब चिन्मय हो जाता है। चिन्मयके स्पर्शसे सबमें चिन्मयता आती है। ब्रह्मात्मकता आती है, सारा प्रपञ्च चिन्मय हो जाता है। उसकी लौकिकता, प्राकृतता, भौतिकता बाधित हो जाती है। उसमें अलौकिकताका आविर्भाव हो जाता है। अनन्तता, ब्रह्मात्मता, रसात्मकताका आविर्भाव होता है—यही होलीकी लीलाका आध्यात्मिक रहस्य है।
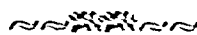
दीपावली

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

'असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमय।' (बृहदारण्यक १।३।२८) **'आविराविर्म एधि।'**

अर्थात् हमें असत्से मुक्त करके सत्का अनुभव दीजिये। अज्ञान—तमसे मुक्त करके परम ज्योतिस्वरूप ज्ञान दीजिये। हमें मृत्युसे मुक्त करके परमानन्दमय अमृतका अनुभव दीजिये। हमारे सम्मुख निरावरण प्रकट होकर सर्वत्र दर्शन दीजिये।

सना ज्योतिः सना स्वर्विश्वा च सोम सौभगा।
अथा नो वस्यसस्कृधि॥

(ऋक्० ९।४।२, साम० १०४८)

पवित्र, मधुर एवं प्रिय सोमरूप परमेश्वर! हमें सदा प्रकाश, ज्योतिका दान करो। सदा सुख दो। सदा सम्पूर्ण सौभाग्य दो और अन्ततः हमें श्रेय और निःश्रेयस प्रदान करो।

हृदय मन्दिर है, आत्मज्ञान दीपक है। उसके प्रकाशमें अन्तर्यामी परमात्माका दर्शन होता है। आत्माकी जगमग ज्योतिमें ही परमात्मा भरपूर है। ज्योति अनेक हैं, परमात्मा एक है। वही सबका आत्मा है। सबकी पूजा ही परमात्माकी पूजा है। आत्मज्ञानकी ज्योति सदा प्रकाशित रहे।

'मा' का अर्थ है—वस्तुका यथार्थ ज्ञान। 'अमा' का अर्थ है—अज्ञान अन्धकार। अज्ञानमयी प्रकृतिमें जगमगा रहे हैं—सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, तारे, इन्द्रिय, मन एवं जीव। ये अलग-अलग दीपक हैं। इनमें एक अद्वय प्रकाश है। वही सर्वावभासक एवं स्वप्रकाश है। वस्तुतः वही परमसत्य परमात्मा और आपका आत्मा है।

'तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः।'

(मु० २।२।९)

सम्पूर्ण व्यवहारका मूलाधार है—विश्वास। इसीमें स्नेह—प्रेमका निवास है। प्रेमसे किया हुआ काम अमृतमयी सेवा बन जाता है। इसीसे अन्तर्ज्योति, प्रकाश-दीपका आवरण भङ्ग होता है। ऐसा अनुभव होने लगता है, मानो स्वयं भगवान्की पूर्णता अनन्त ज्ञान-दीप लेकर प्रकट हो गयी है। परमानन्द अनुभवके लिये दृढ़ विश्वास ही मूल साधन है।

'दीप' का अर्थ है—दीप्ति या चमक देनेवाला—चमचम चमकनेवाला। मनमें, तनमें, भवनमें जगमग ज्योति झिलमिलाये। आन्तर एवं बाह्य शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके उत्साहसे उत्सव मनाइये। कृषिलक्ष्मी एवं स्वर्णलक्ष्मीका सत्कार कीजिये। मनकी मलिनता धो डालिये। इस प्रकारके पावन पर्वपर आत्मा एवं परमात्माके मध्यमें आये हुए मिथ्या आवरणको भङ्ग कर दीजिये। बाहर प्रकाश, भीतर प्रकाश।

जैसे पात्ररूप दीपक, घृत-तैलादिरूप स्नेह, वर्तिका और लौ—इन सबकी चमक अलग-अलग होती है, परंतु सबमें प्रकाश एक ही होता है, वैसे ही मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, वृक्ष आदिमें भी चमक अलग-अलग है। नाम, रूप, गुण और धर्म भी अलग-अलग हैं, परंतु सबमें एक ही महाप्रकाशरूप परमात्माका पृथक्-पृथक् प्रकाश जान पड़ता है। उसीके प्रकाशसे सब प्रकाशित होता है। वही सब ज्योतियोंमें एक ज्योति है। दीपावली उसीका दर्शन है।

सभी इन्द्रियोंमें—आँख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियों और वाणी, हाथ आदि कर्मेन्द्रियोंमें एक दिव्य ज्योति चमकती है तथा अपने-अपने विषयोंको प्रकाशित करती है। सभी मनोवृत्तियोंमें उनका रूप चाहे कुछ भी क्यों न हो, दिव्य मनोज्योति झिलमिलाती रहती है। सभी जीवोंमें, अवस्थाओंमें, मनोंमें और कर्मोंमें एक ही ब्रह्म-ज्योतिकी छटा झलक रही है। इस अनेकतामें एकता ही सच्ची आत्म-ज्योति, ब्रह्म-ज्योति है। इसीका अनुभव दीपावली देती है।

दीपक अनेक हैं। नेत्र भी अनेक हैं। रूप भी अनेक हैं। परंतु तेजस्-तत्त्व एक है। इसी प्रकार विषय, करण एवं जीवोंके अलग-अलग होनेपर भी एक ही ज्योतिस्तत्त्व जगमगा रहा है, झिलमिला रहा है। उसी एकको देखिये। आप सभी दुःखों, अनर्थोंसे मुक्त हो जायँगे।

लोक-परलोककी सभी सुख-सम्पदा दान कर देनेपर भी बलिका समर्पण पूर्ण नहीं हुआ। वह तब सम्पूर्ण हुआ, जब उन्होंने अपना अहं अर्थात् कर्ता-पुरुष परमात्माको समर्पित कर दिया। अहंकार समर्पित करते ही परमात्माका तुरीय-पद उनके सिरपर आ गया। 'शरणागतिबोध' ही

अवधि है, यही महा-बलिदानका बलिपर्व है। घर-घर दीपावली मनाइये।

दीपक अनेक हैं। उनमें अलग-अलग ज्योति जगमगा रही है। तेजस्-तत्त्वमें कोई भेद नहीं है। प्राणिमात्रका शरीर दीपक है। वासना घी-तेल है। वृत्ति बत्ती है। चेतन-ज्योति सबमें एक ही है—झिलमिल-झिलमिल झलक रही है। प्राणियोंके शरीर, जाति, सम्प्रदाय, राष्ट्र आदिकी सीमा अलग-अलग होनेपर भी परमात्मज्योति एक ही है। आप अलगाव मत देखिये, एकता देखिये, राग-द्वेष मिट जायँगे, आपका जीवन चमाचम चमक उठेगा।

गोसेवाव्रतसे ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति

(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च।
गावो मे सर्वतश्चैव गवां मध्ये वसाम्यहम्॥*

(महा० अनु० ८०। ३)

कर्‍यो श्याम जिनि नेह, लोक मातु अति बिमल शुचि।
जिनि तनु सब सुरगेह, तिनि सुरभिनि बन्दन करूँ॥
गैयनिमें अति प्रीति, गैयनिमें ईं नित बसूँ।
गाऊँ गैयनि गीति, गैयनिकूँ सरबसु गनूँ॥

उपनिषद्‌की एक कथा है। सत्यकाम नामक एक बालक था। घरमें उसकी अकेली माता ही थी। जब उसकी अवस्था बारह वर्षकी हो गयी, तब उसने जाकर अपनी जननीसे कहा—'माँ! अब मैं बारह वर्षका हो गया हूँ, अब मुझे गुरुके समीप गुरुकुलमें वास करके वेदाध्ययन करना चाहिये।'

माँने कहा—'अच्छा, बेटा! जाओ। तुम्हारा मङ्गल हो।'

सत्यकामने कहा—'किंतु माँ! गुरु मुझसे मेरा गोत्र पूछेंगे तो मैं क्या बताऊँगा। मुझे अपने गोत्रका तो ज्ञान ही नहीं, मुझे मेरा गोत्र बता दो।'

माताने कहा—'बेटा! गोत्रका तो मुझे भी पता नहीं, मैं सेवामें सदा तत्पर रहती थी। युवावस्थामें तू पैदा हुआ, संकोचवश मैं तेरे पितासे गोत्र न पूछ सकी।'

माँकी बात सुनकर सत्यकाम हारिद्रुमत ऋषिके समीप वेदाध्ययनके उद्देश्यसे गया। उन्हें प्रणाम करके वह विनम्रतापूर्वक उनकी आज्ञासे बैठ गया।

गुरुने पूछा—'बालक! तुम क्या चाहते हो?'

सत्यकामने कहा—'भगवन्! मैं आपके चरणोंमें रहकर वेदाध्ययन करना चाहता हूँ।'

गुरुने पूछा—'तुम्हारा गोत्र क्या है?'

सत्यकाम बोला—'भगवन्! मैंने अपनी माँसे अपने गोत्रके सम्बन्धमें पूछा था। उन्होंने कहा—मैं सदा-सर्वदा आगत अतिथि-अभ्यागतोंकी सेवामें संलग्न रहती थी। युवावस्थामें तू उत्पन्न हुआ, मैं कह नहीं सकती कि तेरे पिताका कौन गोत्र है। मैं इतना ही जानती हूँ, तेरा नाम सत्यकाम और तू मुझ जाबालाका पुत्र है।'

यह सुनकर महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—'बेटा! निश्चय ही तू ब्राह्मण है; क्योंकि ब्राह्मणके अतिरिक्त इतनी सत्य बात कोई कह नहीं सकता, तू समिधा ले आ मैं तेरा उपनयन करूँगा। तू आजसे सत्यकाम जाबालके

* मैं चलूँ, लेटूँ, बैठूँ या जो भी कार्य करूँ तभी मेरे आगे गैयाँ रहें, पीछे भी मेरे गैयाँ रहें। चारों ओरसे गैयोंसे घिरा रहूँ। यहाँतक कि मैं सदा गौओंके बीच ही निवास करूँ।

नामसे प्रसिद्ध होगा।'

गुरुने शिष्यका उपनयन किया। उन दिनों रुपये-पैसेको बड़ा धन नहीं माना जाता था। उन दिनों गौको ही धन माना जाता था, जिसके यहाँ जितना ही अधिक गोधन होता वह उतना ही बड़ा—श्रेष्ठ माना जाता।

दान, धर्म, पारितोषिक, शास्त्रार्थ, यज्ञ और सभी देव, पितृ तथा ऋषि-ऋणोंमें गौ ही दी जाती थी। उपनिषदोंमें ऐसी अनेक कथाएँ हैं, अमुक राजाने मुनियोंसे कोई प्रश्न पूछा—और उसमें यही पारितोषिक रखा कि जो इस प्रश्नका उत्तर दे वह इतनी लाख गौएँ पाये। अमुक ऋषि आये उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा—'इन गौओंको हाँक ले चलो।' सारांश यही कि सभी राजाओं, ऋषियों तथा कृषकोंके पास सहस्रों, लक्षों गौएँ रहती थीं।

ऋषियोंके समीप जो शिष्य शिक्षा प्राप्त करने आते थे, उन्हें सर्वप्रथम यही शिक्षा दी जाती थी कि वे गोसेवाका व्रत लें। गौओंकी सेवा-शुश्रूषासे स्वतः ही उन्हें सर्वशास्त्र आ जाते थे।

महर्षि हारिद्रुमतके यहाँ भी सहस्रों गौएँ थीं। सत्यकाम जाबालका जब उपनयन-संस्कार हो गया, तब वे उसे लेकर अपने गौओंके गोष्ठमें गये। सहस्रों सुन्दर दुधार गौओंमेंसे मुनिने चार सौ दुबली-पतली गौएँ छाँटीं और सत्यकामसे बोले—बेटा! तू इन गौओंके पीछे-पीछे जा और इन्हें चराकर पुष्ट कर ला।

बारह वर्षका सत्यकाम गुरुके भावको समझकर बोला—'भगवन्! मैं इन गौओंको लेकर जाता हूँ और जबतक ये एक सहस्र न हो जायँगी, तबतक मैं लौटकर न आऊँगा।'

गुरुने कहा—'तथास्तु।'

सत्यकाम उन गौओंको लेकर ऐसे वनमें गया जहाँ हरी-हरी दूब थी, जलका सुपास था और जंगली जीवोंका कोई भय न था। वह गौओंके ही बीचमें रहता, उनकी सेवा-शुश्रूषा करता, वनके सभी क्लेशोंको सहता, गौके दुग्धपर ही रहता, उसने अपने जीवनको गौओंके जीवनमें तदाकार कर दिया। वह गोसेवामें ऐसा तल्लीन हो गया कि उसे पता ही न चला कि गौएँ कितनी हो गयी हैं।

तब वायुदेवने वृषभरूप रखकर सत्यकामसे कहा—'ब्रह्मचारिन्! हम अब सहस्र हो गये हैं। तुम हमें आचार्यके घर ले चलो और तुम्हें मैं एकपाद ब्रह्मका उपदेश करूँगा।'

यह कहकर धर्मरूपी वृषभने सत्यकामको एकपाद ब्रह्मका उपदेश दिया। गुरुके गृहसे वन दूर था। चार दिनका मार्ग था। इसलिये मार्गमें जहाँ वह ठहरा, वहीं उसे ब्रह्मज्ञानका उपदेश मिला। इस प्रकार पहला पाद वृषभने, दूसरा पाद अग्निने, तीसरा पाद हंसने और चौथे पादका उपदेश मद्गु नामक जलचर पक्षीने किया। गौओंकी निष्काम सेवा-शुश्रूषासे वह परम तेजस्वी ब्रह्मज्ञानी हो गया था।

उसने एक सहस्र गौओंको ले जाकर गुरुके सम्मुख प्रस्तुत किया और उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। गुरुने उसके मुखको ब्राह्मीश्रीसे देदीप्यमान देखकर अत्यन्त ही प्रसन्नतासे कहा—'बेटा सत्यकाम! तेरे मुखमण्डलको देखकर तो मुझे ऐसा लगता है तुझे ब्रह्मज्ञान हो गया है, तू सत्य-सत्य बता तुझे ब्रह्मज्ञानका उपदेश किसने किया?'

सत्यकामने अत्यन्त विनीतभावसे कहा—'गुरुदेव! आपकी कृपासे सब कुछ हो सकता है। आप मुझे उपदेश करेंगे तभी मैं पूर्ण समझूँगा।'

वही ज्ञान गुरुने दुहरा दिया। सत्यकाम पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हो गये।

[प्रेषक—श्रीश्यामलालजी पाण्डेय, एम०ए०, बी०एड्०]

गोपद्म-व्रत

आषाढ़ शुक्ल एकादशीको प्रायः स्नानादिके पश्चात् गौके निवासस्थानको गोबरसे लीपकर उसमें तैंतीस पद्म (कमल) स्थापन करके उनका गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे और तैंतीस अपूप (पूए) भोग लगाकर उतने ही अर्घ्य, प्रदक्षिणा और प्रणाम अर्पण कर व्रत करे। इस प्रकार कार्तिक शुक्ल एकादशीपर्यन्त प्रतिदिन करनेके पश्चात् द्वादशीको पहले वर्षमें पूए, दूसरेमें खीर और पूए, तीसरेमें मण्डक, चौथेमें गुड़ और मण्डक तथा पाँचवेंमें घृतपाचित (घीमें पकाये हुए) मण्डकोंसे पारण करके उद्यापन करे तो जीवनपर्यन्त सुख-सम्पत्तिसे युक्त रहता है और परलोकमें स्वर्गीय सुख प्राप्त होते हैं। इस व्रतके आचरणसे इस लोकमें राज्य, सौभाग्य, सम्पत्ति तथा पुत्र-पौत्रादिक सुख भोगकर मनुष्य अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। (भविष्योत्तरपुराण)
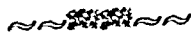
भगवान् श्रीरामका प्राकट्य—एक महोत्सव

(गोलोकवासी परम भागवत संत श्रीरामचन्द्रकेशव डोंगरेजी महाराज)

आज श्रीरामनवमीका प्रात:काल है। आज सुवर्णका सूर्य उदय हुआ है।

जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं॥

(रा०च०मा० १।३४।६)

अयोध्याजीमें सरयूजीके किनारे आज संतोंकी भीड़ हो गयी है। श्रीराम-दर्शनके लिये अब प्राण तरस रहे हैं। अनेक महात्मा, अनेक वैष्णव जब आतुर हो जाते हैं, तभी अवतार होता है।

प्रात:कालसे ही कौसल्या माता ध्यानमें बैठी हैं। कौसल्याजीने दासियों, नौकरोंको आज्ञा दी कि तुम सब बाहर जाओ। मैं जबतक न बुलाऊँ तबतक कोई भी अंदर आना नहीं। मुझे एकान्तमें बैठकर ध्यान करना है। एकान्तमें
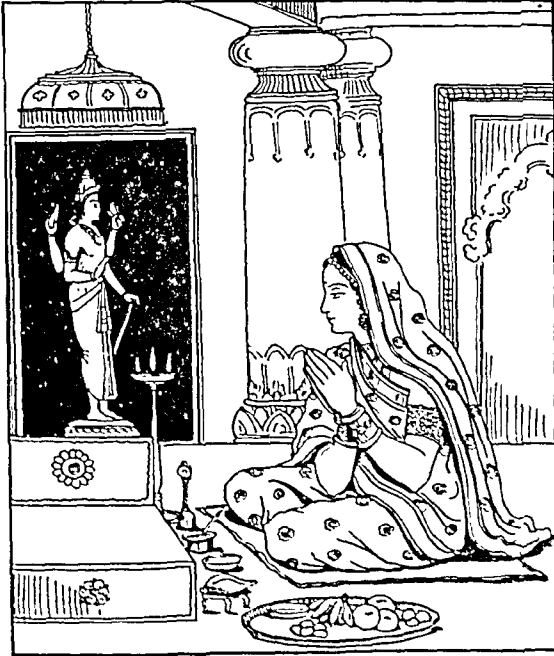
कौसल्याजी परमात्माका ध्यान करती हुई तन्मय हो गयीं। श्रीराम-दर्शनके लिये अब उनके प्राण तड़प रहे हैं।

भगवान् शङ्कर कैलासधाम छोड़कर आज अयोध्याजीमें आये हैं। इन्होंने वृद्ध ब्राह्मणका स्वरूप धारण किया है। चारों वेद इनके चार शिष्य बने हैं। 'श्रीराम-श्रीराम' जप करते हुए अयोध्याजीकी गलियोंमें फिर रहे हैं। शिवजीके इष्टदेव बालक श्रीराम हैं। शिवजी बालक रामका नित्य ध्यान करते हैं—

बंदउँ बालरूप सोइ रामू।

लोग पूछते हैं—महाराज! आपका नाम क्या है? शिवजी कहते हैं—मेरा नाम सदाशिव जोशी है। मैं ज्योतिष-शास्त्रमें पारंगत हूँ। शिवजीकी इच्छा है कि श्रीरघुनाथजी अब प्रकट होनेवाले हैं, इसलिये मैं कौसल्याजीके घरमें जाऊँ। कौसल्याजी रामललाको मेरी गोदमें देंगी। मैं रामके साथ रमूँगा, रामसे मिलूँगा। रामके साथ एक हो जाऊँगा। शिवजी महाराज राम-नामका जप करते-करते विचरण कर रहे हैं। साधु-महात्मा, संन्यासी—सभी सरयूके किनारे बैठे हैं। 'सीताराम, सीताराम, सीताराम' ऐसा जप करते-करते तन्मय हो रहे हैं। कब प्रकट होंगे, कब दर्शन देंगे? सभीको दर्शनकी आतुरता लगी हुई है।

परम पवित्र समयका आगमन हुआ। दसों दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं। शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु बहने लगी। आकाशमें देवता, गन्धर्व, ऋषि, अप्सरागण दुन्दुभी बजा रहे हैं। पुष्प-वृष्टि हो रही है। राम-नामका कीर्तन करते-करते सब तन्मय हो रहे हैं। अग्निहोत्री ब्राह्मणोंके घरोंमें अग्नि-कुण्डमें विराजे हुए अग्निदेव भी कुण्डमेंसे बाहर आ रहे हैं। श्रीरामललाके दर्शनोंकी आतुरता जगी हुई है। साधुओंका चित्त अतिशय शान्त हुआ है। परम पवित्र चैत्रमास, शुक्लपक्ष, परिपूर्ण नवमी तिथि, पुनर्वसु नक्षत्रका सुयोग, मध्याह्न कालमें माता कौसल्याजीके सम्मुख चतुर्भुज स्वरूपमें—

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥

परमात्माका स्वरूप अति सुन्दर है।

लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥

चारों ओर प्रकाश फैल गया है। उसी प्रकाशमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज नारायणके दर्शन कौसल्याजीको हुए। चतुर्भुजरूपमें प्रकट होकर वे बताते हैं कि मैं अपने भक्तोंकी चारों ओरसे रक्षा करता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—किसी भी जातिका हो, वह मेरी सेवा-पूजा

करता हुआ मुझमें तन्मय हो जाये तो उसके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको मैं सफल कर देता हूँ।

कौसल्याजीको दर्शनमें अति आनन्द हो रहा है। कौसल्या माँने परमात्माकी सुन्दर स्तुति की—

कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै॥

मेरा हित और कल्याण करनेके लिये आप प्रकट हुए हो। नाथ! आपका यह स्वरूप अति सुन्दर है, मङ्गलमय है, परंतु लोगोंको ऐसी शंका होगी कि चार हाथवाला ऐसा बड़ा लड़का कौसल्याके घर किस प्रकार आया? मेरी बहुत इच्छा है कि मैं आपको गोदमें खिलाऊँ, आपको मल्हराऊँ, आप माँ-माँ कहकर मुझे बुलाओ, मेरे पीछे फिरो। इसलिये आप यह स्वरूप छोड़कर बालस्वरूप धारण करो, बाललीलाका आनन्द दो।

····तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥

कौसल्याजीने जब प्रार्थना की, तब परमात्माने माताजीको आज्ञा की कि इस चतुर्भुजस्वरूपको भूलना नहीं। इस स्वरूपका नित्य ध्यान करना। माताजीको स्वरूपका दर्शन कराकर चतुर्भुजस्वरूप अन्तर्धान हो गया और दो भुजावाले बालक श्रीराम प्रकट हो गये।

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥
ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥
(रा०च०मा० १। दो० १९२, १९८)

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥

श्रीअङ्ग मेघके-जैसे श्याम हैं। श्रीरामललाके नेत्र बहुत ही सुन्दर हैं। रघुनाथजीके रेशम-जैसे केश, घुँघराली अलकें अति मनोहर लगती हैं। श्रीअङ्ग बहुत ही कोमल तथा देदीप्यमान है। कौसल्या माँने गोदमें ले रखा है। माताजी बालक श्रीरामको प्रेमसे निहार रही हैं। कौसल्याजी और श्रीरामजीकी चार आँखें ज्यों ही मिलीं, उसी समय श्रीरामजी कपोलोंमें स्मित हास्य करने लगे। माँको अत्यन्त आनन्द हुआ। माताजीके मनमें यह अनुभव हुआ कि मेरा राम कितना सुन्दर है। कितना सुन्दर दिखायी पड़ता है। किसीकी नजर न लग जाय। कौसल्या 'नारायण-नारायण' ऐसा कीर्तन करती हुई नजर उतारती हैं।

एक दासीको लगा कि अंदर कुछ गतिशीलता लगती है। बालक आ गया या अन्य कुछ है? दासी दौड़ती हुई अंदर गयी। वहाँ चारों ओर प्रकाश था। कौसल्या माँ विराजी हुई थीं। उनकी गोदमें बालक श्रीराम थे। बालक श्रीरामके दर्शन करते-करते दासीको बहुत आनन्द हुआ। वह दोनों हाथ जोड़कर चित्रवत् खड़ी रह गयी। उसकी आँखें स्थिर हो गयीं। ····शरीर स्थिर हो गया। दासी स्तब्ध रह गयी। श्रीरामललाके दर्शनमें शरीरकी सुध खो बैठी।

कौसल्याने दासीको आयी हुई देखा। माँके गलेमें नवरत्नका एक सुन्दर हार था। कौसल्याने वह हार गलेसे उतारा और दासीको देने लगीं, परंतु श्रीरामके दर्शनोंके अति आनन्दमें दासीको हार लेनेकी इच्छा नहीं हुई। कौसल्या माँने आग्रह किया—तुम्हारे सबके आशीर्वादसे यह बालक आया है। आज तो लेना ही पड़ेगा।

दासीने हाथ जोड़कर कहा—माँ! यह हार तो तुम्हारे गलेमें ही शोभा देता है। इसको लेकर मैं क्या करूँगी? इसको तुम अपने गलेमें ही रखो, मुझे यह शोभा नहीं देता, परंतु माँ! आज तो मेरे माँगनेका अवसर है। आज जो मैं माँगू वही मुझे दो।

कौसल्या माँने कहा—तू माँग! तू जो माँगेगी वही तुझे दूँगी।

दासीने कहा—माँ! रामजीका दर्शन होनेके पश्चात् मुझे ऐसी इच्छा होती है कि मैं रामजीको गोदमें लूँ, मुझे ऐसी भावना होती है कि मैं रामजीको खिलाऊँ, रामजीके साथ खेलूँ। रामजीके साथ एकाकार होऊँ। माँ! मैं हार लेने नहीं आयी, मैं तो रामजीको लेने आयी हूँ। रामजीको मुझे दो-पाँच क्षणके लिये गोदमें दो। मुझे अन्य कुछ दिखायी नहीं देता। मैं रामजीसे मिलने आयी हूँ।

कौसल्याजीने दासीको पास बैठाकर और उसकी

गोदीमें बालक श्रीरामको ····· सियावर रामचन्द्रकी जय········ हजारों जन्मसे यह जीव ईश्वरसे बिछुड़ा पड़ा है। परमात्मासे बिछुड़ा पड़ा जीव आज परमात्मासे मिलता है। आज दासीका ब्रह्म-सम्बन्ध हुआ है। दासी रामललाको छातीसे लगाती है, प्यार करती है। जीव-ईश्वरका मिलन हुआ है। अति आनन्दमें दासीको देहकी सुध-बुध न रही।

एक दासी दौड़ती-दौड़ती महाराज दशरथके पास गयी। महाराज दशरथ प्रभुका स्मरण कर रहे थे। दासीने महाराजसे कहा—महाराज! महाराज!! बधाई है। पुत्रका जन्म हुआ है। महाराज दशरथको अति आनन्द हुआ। गुरुजीने कहा ही था कि चौबीस घण्टेके अंदर आनन्दका समाचार सुननेको मिलेगा। राजाका आनन्द हृदयमें समाता नहीं था। वह आँखोंके रास्ते बाहर निकलने लगा।

राजा दशरथ विचार करने लगे कि स्वप्नमें मैंने देखा कि परमात्माने कौसल्याके पेटमें प्रवेश किया है। गुरुदेव भी कहते थे कि परमात्मा पुत्ररूपमें पधारेंगे। इसलिये दशरथ महाराजने दासीसे पूछा—बालक कैसा है।

दासीने कहा—महाराज! बालक कैसा है, यह कोई भी कह नहीं सकता। देवता भी श्रीरामका वर्णन नहीं कर सकते। जो मन-वाणीसे परे है, उसका वर्णन कौन कर सकता है?

यतो वाचो निवर्तन्ते।

महापुरुष बुद्धिसे इनका अनुभव करते हैं। इनका वर्णन कोई कर नहीं सकता। आँखको दिखायी देता है, परंतु उसको बोलना नहीं आता। इस जीभको बोलना आता है, परंतु यह देख नहीं सकती, अंधी है।

गिरा अनयन नयन बिनु बानी।

बड़े-बड़े ऋषि भी श्रीरामजीका वर्णन ठीक-ठीक नहीं कर सके तो मुझ दासीकी क्या गिनती! श्रीराम कैसे हैं, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकती। आप अब शीघ्र पधारो और प्रत्यक्ष दर्शन करो। आप स्नान करके आओ। आपकी गोदमें मैं बालक श्रीरामको पधराऊँगी।

महाराज दशरथको आनन्द हुआ। उनको विश्वास हुआ कि परमात्मा ही पधारे हैं। गुरुदेवने मुझसे कहा ही था। सेवकगण महाराज दशरथको सरयूजीके किनारे ले गये। सरयूजीको साष्टाङ्ग वन्दन करके महाराज दशरथने स्नान किया। वृद्धावस्थामें पुत्रजन्म-निमित्त श्रीसरयूजीमें स्नान करनेका यह सुयोग मिला।

आजतक महाराज दशरथ शृङ्गार नहीं करते थे। घरमें पुत्र न होनेसे वे दुःखी रहते थे। उनका नियम था कि द्वारपर कोई साधु, ब्राह्मण गरीब आये, उसको परमात्माका स्वरूप समझ सुन्दर वस्त्राभूषणोंका दान करते और इस प्रकार दूसरोंको शृङ्गार कराते थे, परंतु स्वयंके शरीरको शृङ्गार धारण नहीं कराते थे।

आज सेवकोंने कहा—राजन्! आज तो विशाल उत्सव करना है। महाराज दशरथ घरके सेवकोंका बहुत सम्मान करते थे। सेवकोंको पट्टेपर बैठाकर वस्त्र-आभूषण देते। उन सभीका आशीर्वाद मिला हुआ था। जिसको सर्वका आशीर्वाद मिलता है, उसीके घर सर्वेश्वर आते हैं।

सेवकोंने बहुत आग्रह करके महाराज दशरथका शृङ्गार किया। पीछे उन्हें सोनेकी चौकीपर बैठाया। वसिष्ठ आदि ऋषि वहाँ आये। उन्होंने महाराजसे भगवान् गणपतिका पूजन कराया। पूजा शेष होनेपर नान्दीश्राद्धमें पितृदेवोंकी पूजा की। महाराजने साधु, ब्राह्मण, गरीबोंको अतिशय दान दिया। सभीने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। इस समय तो दान लेनेवाला भी कोई नहीं रहा। आज तो महाराज दशरथके घर परमात्मा पधारे हैं। अति उदारतासे उन्होंने बहुत लुटाया।

सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू॥

सोनेके कटोरेमें मधु भरा गया। वसिष्ठ ऋषि वेद-मन्त्रका उच्चारण करके उस मधुको अभिमन्त्रित करने लगे—

अग्निरायुष्यमान्। वनस्पतिभिरायुष्मान्। तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। सोम आयुष्मान्।

ओषधीभिरायुष्मान्। तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि। समुद्र आयुष्मान्। तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि।

बालकका आयुष्य बढ़े, उसका बल बढ़े, उसका तेज बढ़े। बालकका जन्म होता है, उस समय जातकर्मसंस्कार करवाना होता है। जन्म होनेके पश्चात् मधु चटाना होता है। शास्त्रमें अन्नप्राशन, नामकरण, यज्ञोपवीत इत्यादि सोलह संस्कार बताये गये हैं। जीवको शुद्ध करनेके लिये संस्कारोंकी आवश्यकता होती है, परंतु आजकल तो सब संस्कार भुला दिये गये हैं। एक लग्न-संस्कार बाकी रह

गया है। उसमें भी धार्मिक विधिको महत्त्व नहीं दिया जाता। केवल लौकिक विधिका महत्त्व देखनेमें आता है। पण्डितजी महाराजसे कहा जाता है कि महाराज! पूजा संक्षेपमें कराना। हमारा वर-घोड़ा तीन घण्टे गाँवमें फिरना चाहता है। वर-घोड़ा लौकिक है। पूजा तो धार्मिक क्रिया हैं। धार्मिक विधि मुख्य है, परंतु धार्मिक विधि गौण बन जाती है, लौकिक मुख्य बन जाती है।

ऋग्वेद, यजुर्वेदके अनेक मन्त्र बोलकर अभिमन्त्रित किया हुआ मधुका कटोरा वसिष्ठ ऋषिने राजाके हाथमें दिया और समझाया—अब आप अंदर जाकर अपनी अनामिका अँगुली मधुमें डुबोकर बालककी जिह्वापर मधु चटाइये। मधुप्राशन-संस्कारके लिये गुरुदेवकी आज्ञा होनेपर महाराज दशरथ हाथमें मधुका कटोरा लेकर अंदर गये।

कौसल्याजीके महलमें आज अतिशय भीड़ हो गयी थी। देवता, ऋषि, महात्माजन गुप्तरूपसे श्रीरामललाके दर्शन करने आये हुए थे। जो अंदर प्रवेश पाता था, उसको श्रीरामजीके दर्शनमें इतना आनन्द मिलता था कि अति आनन्दमें बाहरके जगत्को भूल जाता। अति आनन्दमें किसीकी भी बाहर निकलनेकी इच्छा ही नहीं होती थी। देवता, ऋषि श्रीरामके दर्शन करते हुए तन्मय हो गये।

श्रीराम-जन्ममें सबको बहुत आनन्द हुआ, परंतु एक चन्द्रमा दुःखी रहे। चन्द्रमा श्रीरामजीके पास जाकर रोने लगे। प्रभुने पूछा—भाई! तुम क्यों रोते हो? चन्द्रने कहा—महाराज! तुम इस सूर्यको जरा समझाओ। बारह घण्टेसे यह एक ही जगह खड़ा हुआ है, आगे जाता ही नहीं।

आज तो सूर्यनारायणको बहुत आनन्द हुआ। सूर्यको ऐसा लगता है कि मेरे वंशमें आज परमात्मा प्रकट हुए हैं। सूर्यको श्रीरामदर्शनमें इतना आनन्द हुआ कि उस आनन्दके अतिरेकमें इनके घोड़े स्थिर हो गये। सूर्यके रथकी गति रुक गयी। सूर्य अस्त हो, उसके पश्चात् चन्द्रमा आ सकता है। परंतु सूर्य अस्त होता नहीं। चन्द्रको उतावली हुई। इसलिये उसने श्रीरामजीसे फरियाद की कि यह सूर्य मुझको आने नहीं देता।

रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥

(रा०च०मा० १।१९५)

श्रीरामजीने चन्द्रसे कहा—तू धीरज रख, इस अवतारमें मैंने सूर्यको लाभ दिया है, परंतु श्रीकृष्णावतारमें तेरे लिये रात्रिके बारह बजे पीछे आऊँगा। सूर्यवंशमें प्रकट होकर श्रीरामचन्द्रजीने इस जन्ममें सूर्यको लाभ पहुँचाया। कृष्णावतारमें चन्द्रवंशमें प्रकट होकर परमात्माने चन्द्रमाको लाभ पहुँचाया। चन्द्रमाको दिया गया श्रीरामावतारका यह वचन पूर्ण करनेहेतु श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उस समय सम्पूर्ण जगत् गाढ़ निद्रामें था। जगत्में दो ही जीव जगे हुए थे, वसुदेव-देवकी और आकाशमें जाग रहा था चन्द्रमा।

जो जागता है, उसे परमात्माके दर्शन होते हैं। जो सोया हुआ है उसे संसार मिलता है।

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥

इस मोहरूपी रात्रिमें सोते रहनेवाले अनेक प्रकारके स्वप्न देखते हैं, भोग भोगते हैं, वासना बढ़ाते हैं। इसमें ही रचे-पचे रहते हैं और इसलिये वे सदा ऊँघते ही रहते हैं परंतु जो योगी है, ज्ञानी है, परमार्थी है, भक्त है, जिसने माया-प्रपञ्चको दूर किया हुआ है, वह इस संसारमें जागता है।

न हि प्रबुद्धः प्रतिभासदेहे
देहोपयोगिन्यपि च प्रपञ्चे।
करोत्यहन्तां ममतामिदन्तां
किंतु स्वयं तिष्ठति जागरेण॥

विषय-भोगोंका जो त्याग करता है, जिसके हृदयमें संसारके प्रति कोई आसक्ति नहीं रहती, जिसने मैं, तू और मेरा त्याग दिया है, वही इस जगत्में जागता हुआ है। सोनेवाला संसार-सुख भोगता है और जागनेवाला परमात्माका आनन्द अनुभव करता है। जागनेवालेको ही ईश्वरके दर्शन होते हैं। जो कामके अधीन है, वह सोया हुआ है। जो किसी दिन भी कामके अधीन नहीं होता, वही जागा हुआ है। जिसका मोह छूट गया है; जिसमें विवेक-वैराग्य स्थिर हो गया है, वही जागा हुआ है। उसकी ही परमात्मामें प्रीति होती है। वही परमात्माकी भक्ति करता है। जो नहीं जागता, उसे परमात्माके दर्शन नहीं होते।

दशरथ महाराजने हाथमें कटोरा लेकर अंदर प्रवेश किया। प्रतिदिनका नियम था कि दशरथ महाराज जिस

समय राजमहलमें पधारते उस समय घरकी दासियाँ लज्जामें घूँघट काढ़कर खड़ी रहतीं, परंतु आज तो दासियाँ कौसल्याजीकी विशेष सेवामें थीं, कौसल्याजीको मना रही थीं। बालक श्रीरामको गोदमें ले रही थीं। रामललाके दर्शनमें सब दासियाँ इतनी तन्मय थीं कि न तो किसीको शरीरकी सुधि थी, न संसारकी। दशरथ महाराज अंदर आये परंतु दासियोंको जहाँ देहकी सुधि नहीं, वहाँ लज्जा किस प्रकार करतीं?

सेवक, छड़ीदार पुकारते थे, हटो! हटो! महाराज पधार रहे हैं! महाराज पधार रहे हैं!! रास्ता दो। परंतु कौन सुने, कौन रास्ता दे! अंदर अत्यन्त भीड़ थी।

महाराज दशरथ बहुत भोले थे। वे विचार करने लगे—इन सबके आशीर्वादसे तो पुत्र आया है। उन्होंने सेवकोंसे कहा—तुम हटो, हटो, बोलते हो तो कदाचित् किसीको बुरा लगेगा। तुम किसीको तनिक भी नाराज न करो। इन सभीके आशीर्वादसे पुत्र आया है। तुम अब हटो, हटो—ऐसा मत कहो। ये लोग आनन्दमें तन्मय हो रहे हैं। इनको आनन्द लेने दो। मैं बाहर खड़ा हूँ।

दशरथ महाराज बाहर खड़े, हाथमें कटोरा लिये प्रतीक्षा करते रहे। आज तो ऐसा हुआ कि घरके स्वामीको भी कोई अंदर घरमें जाने देता नहीं था। जो अंदर गया सो वहीं रह गया। राम-दर्शनके आनन्दमें कोई बाहर निकलनेका नाम ही नहीं लेता था। लोग जो बातें करते थे, उन्हें महाराज दशरथ सुनते जाते थे। लोगोंको विश्वास हो चुका था कि ऐसा पुत्र कहीं किसीने नहीं देखा है। यह साधारण बालक नहीं, यह तो साक्षात् परमात्मा हैं।

दशरथ महाराज यह सुनकर विचार करने लगे कि लोग भले ही रामको परमात्मा मानते हों, परंतु मेरा तो यह पुत्र ही है और मैं इसका पिता हूँ। ये सब लोग मेरे रामको देख रहे हैं, परंतु मैंने अभीतक अपने रामको देखा नहीं। अपने रामके मुझे दर्शन करने हैं। बालकको मुझे देखना है, खिलाना है परंतु ये लोग मुझे रास्ता तो देते ही नहीं, मैं किस प्रकार कहूँ कि मुझे अंदर जाना है? ये ही स्वयं समझकर मुझे मार्ग दे दें तो अच्छा रहेगा।

महाराजकी आतुरता अब बहुत ही बढ़ गयी थी। राम-दर्शनके लिये अब प्राण तड़पने लगे थे। महर्षि वसिष्ठके ध्यानमें यह सब आ गया। वे समझ गये कि अब राजा दशरथ रामजीका अधिक वियोग सहन नहीं कर सकेंगे, इसलिये वसिष्ठजीने राजासे कहा—मेरे पीछे-पीछे तुम चले आओ। राजमहलमें, राजदरबारमें, श्रीअयोध्याजीमें महर्षि वसिष्ठका बहुत ही सम्मान था। वसिष्ठजी महान् ज्ञानी, तपस्वी और ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। वे पधारे, उस समय सब हाथ जोड़कर खड़े होकर वन्दन करने लगे। वसिष्ठजीके पीछे-पीछे दशरथ महाराज अंदर गये।

कौसल्याजीकी गोदमें सर्वाङ्गसुन्दर श्रीरामका दर्शन करके राजा दशरथके आनन्दकी अवधि न रही।

रामं राजीवपत्राक्षं दृष्ट्वा हर्षाश्रुसम्प्लुतः।

शरीरमें रोमाञ्च हो गया। कण्ठ गद्गद हो गया। महाराजको लगा कि कैसा सुन्दर दीखता है। मेरा राम सुखी रहे। मेरे रामकी मार्कण्डेयके तुल्य आयु हो। श्रीराम और दशरथजीकी आँखें चार हुईं। जब परमात्मा दृष्टिपात करते हैं, जब चार आँखें मिलती हैं तो बहुत आनन्द होता है। जबतक यह जीव शुद्ध न हो, सब प्रकारसे अभिमान छोड़कर भगवान्‌की शरणमें न जाय, तबतक परमात्मा उसपर दृष्टिपात नहीं करते। जिसका कपड़ा मैला है उसको सम्मुख देखनेकी हमें भी इच्छा होती नहीं तो फिर भगवान् तो नजर डालें ही क्यों? जो स्वार्थके लिये ही प्रभुके दर्शन करने जाता है, उसके ऊपर प्रभु नजर डालते ही नहीं। केवल भगवान्‌के लिये ही जो मन्दिर जाता है, उसपर ही प्रभु नजर डालते हैं।

राजा दशरथ और रामजीकी चार आँखें जहाँ मिलीं कि राजाको अतिशय आनन्द हुआ। रामजीके कपोलोंमें स्मित हास्य आया। दशरथ महाराज विचार करने लगे—अभीतक तो यह हँसते नहीं थे। मुझे देखनेके बाद ही हँसे हैं। मैं इनका ठीक पिता और 'राम' ये मेरे बालक हैं। ये मुझे पहचानते हैं, इसलिये हँसते हैं।

बड़े आनन्दसे दशरथ महाराज रामजीको मधु चटाने लगे। दशरथजीने महर्षि वसिष्ठसे कहा—महाराज! अब कोई वेद-मन्त्र बोलिये, मैं मधु चटा रहा हूँ। वसिष्ठजी श्रीरामदर्शनमें इतने तन्मय हो गये थे कि उनको कोई मन्त्र याद ही नहीं आता था। परमात्माके दर्शनके पश्चात् वेद भुला दिये जाते हैं। वेद प्रभुके दर्शनोंका साधन हैं। परमात्माने

मिलनेके बाद सब कुछ भूल जाता है।

अत्र वेदा अवेदा भवन्ति। अत्र मर्त्योऽमर्त्यो भवति। अत्र ब्रह्मः समश्नुते।

ब्रह्म-साक्षात्कार होता है, तब सब कुछ भूल जाया जाता है। दशरथ महाराजने पुनः वसिष्ठजीसे कहा—गुरुदेव! कोई मन्त्र तो बोलो। वसिष्ठजीने कहा—मन्त्र क्या बोलूँ? तुम्हारे रामको देखनेके पश्चात् तो मुझे अपना नाम भी याद रहा नहीं। मैं कौन हूँ और क्या कहूँ, कुछ ध्यान नहीं।

वसिष्ठजी ब्रह्मनिष्ठ थे। ब्रह्म-साक्षात्कार होनेके बाद तो सबकी विस्मृति हो गयी थी। समाधि लग गयी थी। श्रीराम-दर्शनमें शरीरकी विस्मृति हो, तभी ब्रह्मके दर्शन होते हैं। अन्यान्य ब्राह्मण मन्त्र बोलने लगे और दशरथ महाराज मधु चटाने लगे।

अयोध्याजीकी नारियाँ बहुत ही भाग्यशालिनी थीं। वे अंदर जाती थीं, कौसल्याजीके साथ बातें करती थीं, कौसल्या माँको मनाती थीं। माँ! लल्लाको मेरी गोदमें दो। माँ! मेरी बहुत भावना है कि मैं लालाको गोदमें लूँ। कौसल्या बहुत उदार थीं सो एक-एककी गोदमें श्रीरामको पधरा देती थीं।

पूरा नगर उमड़ पड़ा था। अयोध्याजीकी समस्त स्त्रियाँ यूथ बनाकर एकत्र हुई थीं। पुरुष भी दर्शनोंके लिये आये थे, परंतु राजमहलमें सिपाहियोंका पहरा था। स्त्रियोंको अंदर प्रवेश मिलता था, पुरुषोंको कोई अंदर जाने नहीं देता था। स्त्रियाँ नम्रताकी, दीनताकी प्रतीक हैं और पुरुष अहंकार, अभिमानके प्रतीक हैं। अहंकारीको ईश्वरके दरबारमें प्रवेश मिलता नहीं। जहाँ 'मैं' है वहाँ परमात्मा आते नहीं। आज पुरुषोंको बहुत दुःख हुआ कि हम पुरुष हुए, इसलिये हमको कोई अंदर जाने देता नहीं, हम यदि स्त्री हुए होते तो हमको अंदर प्रवेश मिल जाता।

यह बात महाराज दशरथके कानोंमें गयी। सभी पुरुषोंने कहा—महाराज! हमको भी अंदर जाना है, परंतु ये सिपाही जाने देते नहीं। आज तो हमलोगोंको भी अंदर प्रवेश मिलना चाहिये। अपने मालिकके हमको दर्शन करने हैं। कौसल्याजी तो हमारी माँ हैं। कौसल्या माँकी गोदमें विराजे हुए बालक श्रीरामके दर्शन करनेके लिये हम सब आये हैं। हमको अंदर प्रवेश मिलना ही चाहिये। हमारी बहुत भावना है।

दशरथ महाराजको प्रजा आज प्राणोंसे भी प्यारी लगी। महाराजने बाहर नजर डाली तो आँगनमें बहुत भारी भीड़ लगी हुई थी। राजा दशरथने विचार किया कि इतने अधिक लोग अंदर कैसे आ सकेंगे और बाहर किस प्रकार निकलेंगे? ये सब बहुत प्रेमसे आये हैं, मेरे रामको आशीर्वाद देनेके लिये आये हैं। इन सबके आशीर्वादसे मेरा पुत्र सुखी होगा।

राजा दशरथने कौसल्याजीसे कहा—महारानी! मेरी ऐसी इच्छा है कि तुम ही इस समय बाहर आँगनमें बैठो। बालकको गोदमें लेकर तुम आँगनमें बैठोगी तो इन सबको शान्तिसे दर्शन हो जायँगे। इन सबका आशीर्वाद मिलेगा, हमारा पुत्र सुखी होगा।

कौसल्याजी आँगनमें आकर बैठीं। गोदमें बालक श्रीराम विराजे हुए थे। अयोध्याकी प्रजा कितनी अधिक भाग्यशाली है कि उसने प्रत्यक्ष परमात्माका दर्शन किया। दर्शनमें इतना आनन्द हुआ कि इस आनन्दमें किसीको भूख नहीं लगती थी, किसीको प्यास नहीं लगती थी, किसीको खाने-पीनेकी इच्छा नहीं होती थी। श्रीरामजीके दर्शनमें सबका मन और दृष्टि स्थिर हो गयी थी।

उत्सवके दिन परमात्माके दर्शन, स्मरणमें भूख और प्यास भूल जाय तभी उत्सव सफल होता है। उत्सव देहभान भूलनेके लिये ही होता है। उत्सव जगत्का सम्बन्ध छोड़कर परमात्माके स्वरूपमें तन्मय होनेके लिये है। उत्सव अर्थात् ईश्वरका प्राकट्य! देहमय होनेपर भी मनुष्यको जब देहभान न रहे, तभी ईश्वरका प्राकट्य होता है। जगत् भूल जाये और प्रभु-प्रेममें तन्मयता प्राप्त हो तो आनन्द मिलता है। संसारके सुख-दुःखका असर मनपर न हो, इसके लिये उत्सव किया जाता है। देहमय होनेपर भी देहातीत आनन्दका अनुभव करनेके लिये उत्सव होता है। परमात्माको हृदयमें धारण करनेपर तो जीव देहभान भूलता है, भूख-प्यास भूलता है।

उत्सवके दिन कितने ही लोग तो प्रभुमें तन्मय न होकर प्रसादमें ही तन्मय हो जाते हैं। प्रसादमें तन्मय होनेके लिये उत्सव है क्या? रसनाका लाड़ करनेके लिये उत्सव नहीं है, उत्सव तो परमात्माके साथ एक होनेके लिये है।

उत्सवके समयमें शक्ति, शरीर, मन और वाणीका सदुपयोग करो। उत्सवके समय भगवान्‌का खूब स्मरण करो। उत्सवमें तो ईश्वर-सेवामें देहभान भूले, आँखोंसे प्रेमके आँसू बहें तो किया हुआ उत्सव सार्थक होता है। रामनवमीके दिन श्रीरामदर्शन और श्रीरामनामका जप करते हुए अयोध्याकी प्रजाको इतना आनन्द हुआ कि सब हर्षपूरित हो गये। सबको ही देहभान भूल गया। नाचते-नाचते हरि-कीर्तन करने लगे।

राघवं करुणाकरं भवनाशनं दुरितापहम्।
माधवं खगगामिनं जलरूपिणं परमेश्वरम्॥
पालकं जनतारकं भवहारकं रिपुमारकम्।
त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
चिद्घनं घनरूपिणं शरधारिणं धरणीधरम्।
श्रीहरिं सुरपूजितं त्रिगुणात्मकं करुणार्णवम्॥
भुक्तिदं जनमुक्तिदं पुरुषोत्तमं परमेष्ठिनम्।
त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
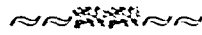
व्रतपर्वोत्सवपर स्वामी विवेकानन्दजीके विचार

(श्रीहरिकृष्णजी नीखरा, गुप्त)

महर्षि कणादके गुरुकुलमें प्रश्नोत्तर चल रहे थे। उस समय जिज्ञासु उपगुप्तने पूछा—देव! भारतीय संस्कृतिमें व्रतों तथा जयन्तियोंकी भरमार है, इसका क्या कारण है? महर्षि कणाद बोले—तात! व्रत व्यक्तिगत जीवनको अधिक पवित्र बनानेके लिये हैं और जयन्तियाँ महामानवोंसे प्रेरणा ग्रहण करनेके लिये हैं। उस दिन उपवास, ब्रह्मचर्य, एकान्तसेवन, मौन, आत्मनिरीक्षण आदिकी विद्या सम्पन्न की जाती है। दुर्गुण छोड़ने और सद्‌गुण अपनानेके लिये देवपूजन करते समय संकल्प किये जाते हैं एवं संकल्पके आधारपर व्यक्तित्व ढाला जाता है।

व्यक्तिको अध्यात्मका मर्म समझाने, गुण, कर्म और स्वभावका विकास करनेकी शिक्षा देने, सन्मार्गपर चलानेका ऋषिप्रणीत मार्ग है—धार्मिक कथाओंके कथन-श्रवणद्वारा सत्संग एवं पर्वविषयोंपर सोद्देश्य मनोरञ्जन। त्योहार और व्रतोत्सव यही प्रयोजन पूरा करते हैं।

स्वामी विवेकानन्दजीने अपने उद्‌बोधनमें एक बार भारतीय संस्कृतिकी पर्व-परम्पराकी महत्ता बताते हुए कहा था—वर्षमें प्रायः चालीस पर्व पड़ते हैं, युगधर्मके अनुरूप प्रचार-प्रसार।

३-वसन्तपञ्चमी—सदैव उल्लसित, हलकी मनःस्थिति बनाये रखना तथा साहित्य, संगीत एवं कलाको सही दिशाधारा देना।

४-महाशिवरात्रि—शिवके प्रतीक जिन सत्प्रवृत्तियोंकी प्रेरणाका समावेश है, उनका रहस्य समझना-समझाना।

५-होली—नवान्नका सामूहिक वार्षिक यज्ञ, प्रह्लाद-कथाका स्मरण। सत्प्रवृत्तिका संवर्धन और दुष्प्रवृत्तिका उन्मूलन।

६-गङ्गादशहरा—भगीरथके उच्च उद्देश्य एवं तपकी सफलतासे प्रेरणा। सद्‌बुद्धिहेतु दृढ़संकल्प और सत्प्रयास।

७-व्यासपूर्णिमा (गुरुपूर्णिमा)—स्वाध्याय एवं सत्संगकी व्यवस्था। गुरुतत्त्वकी महत्ता और गुरुके प्रति श्रद्धाभावनाकी अभिवृद्धि।

८-रक्षाबन्धन (श्रावणी)—भाईकी पवित्र दृष्टि—नारीरक्षा। पापोंके प्रायश्चित्तहेतु हेमाद्रिसंकल्प। यज्ञोपवीतधारण। ऋषिकल्पपुरोहितसे व्रतशीलतामें बँधना।

९-पितृविसर्जन—पूर्वजोंके प्रति कृतज्ञताकी अभिव्यक्तिके लिये श्राद्ध, तर्पण। अतीत महामानवोंको

दीपावलीका सच्चा आनन्द

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

दीपावली आ गयी है। इस अवसरपर हमलोग उत्सव मनाया करते हैं तथा श्रीलक्ष्मीनारायणजीका पूजन किया करते हैं। हमलोगोंके लिये यह एक बड़ा ही शुभ पर्व है; इसलिये शास्त्रविधिके अनुसार श्रद्धाप्रेमपूर्वक निष्कामभावसे बड़े ही आनन्द और उल्लासके साथ पूजनादि कृत्य सम्पादन करते हुए इस महोत्सवको मनाना चाहिये। परंतु यह महोत्सव पूर्णतया तो तभी सफल हो सकता है, जबकि हम अपने परमावश्यक आत्मकल्याणके महत् कार्यको सिद्ध कर लें। प्रतिवर्ष दीपावली आती है और हमारी सीमित आयुमेंसे एक वर्ष निकल जाता है। इसी तरह एक-एक करके हमारे जीवनके बहुत-से वर्ष बीत चुके हैं और कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि आगामी दीपावलीतक हम जीवित रहेंगे या नहीं। अत: इसी वर्षकी दीपावलीसे हमें बुद्धिमानीके साथ लाभ उठाना चाहिये। वह लाभ यही है कि जिस कामके लिये हमें यह मानव-देह प्राप्त हुआ है, उसे अतिशीघ्र ही सिद्ध कर लें। दीपावलीकी ज्योति हमें यह चेतावनी दे रही है कि जिस प्रकार बाहर दीपपंक्तिकी ज्योति फैल रही है, इसी प्रकार अन्त:करणमें ज्ञानरूपी ज्योतिकी आवश्यकता है। जैसे बाहरकी इस ज्योतिसे बाह्य अन्धकार दूर होता है, ऐसे ही अन्त:करणकी ज्योतिसे आन्तरिक अज्ञान नष्ट होकर परमात्माका ज्ञान हो जाता है। अत: हृदयस्थ अज्ञानके नाशके लिये भीतरकी ज्योति जगानी चाहिये। असलमें तो बाहर और भीतर दोनों ओरको प्रकाशित करनेवाली ऐसी ज्योति चाहिये—जो निर्मल हो, जलानेवाली न हो, बुझनेवाली न हो, नित्य प्रकाशरूप हो और वस्तुका असली स्वरूप दिखला दे। ऐसी ज्योति है—'भक्तिपूर्वक भगवान्‌का नित्य स्मरण।'

गोस्वामी तुलसीदासने कहा है—

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

(रा०च०मा० १। २१)

हमें अपनी अयोग्यता तथा दुर्बलताको देखकर कभी निराश नहीं होना चाहिये। इस कार्यमें दयामय भगवान् हमें पूर्ण सहायता देनेको तैयार हैं। वे हमें आश्वासन दे रहे हैं—

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(गीता १०। ११)

'हे अर्जुन! उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये उनके अन्त:करणमें स्थित हुआ मैं स्वयं ही उनके अज्ञानजनित अन्धकारको प्रकाशमय तत्त्वज्ञानरूप दीपकके द्वारा नष्ट कर देता हूँ।'

बस, हमें तो केवल भगवान्‌के इस अनुग्रहको प्राप्त करना है। इसे प्राप्त करनेका सर्वोत्तम और सबसे सरल उपाय है—भगवान्‌की अनन्य भक्ति; जिसका उल्लेख भगवान्‌ने स्वयं गीतामें कर दिया है। भगवान् कहते हैं—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(१०।९-१०)

'निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन सदा ही मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही संतुष्ट होते हैं तथा मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं। उन निरन्तर मेरे ध्यानमें लगे हुए प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त हो जाते हैं।' उपर्युक्त दोनों श्लोकोंमें भगवान्‌ने अपने परम बुद्धिमान् अनन्यप्रेमी भक्तोंके भजनका प्रकार बतलाकर अपनी प्राप्तिके लिये भक्तिरूप परम साधनके सरलतम उपायोंका दिग्दर्शन कराया है। इनका आशय यह है कि वे प्रेमी भक्त भगवान्‌को ही अपना परम प्रेमास्पद, परम सुहृद् और परम आत्मीय समझकर अपने चित्तको अनन्यभावसे उन्हींमें लगा देते हैं, भगवान्‌के सिवा किसी भी वस्तुमें उनकी प्रीति, आसक्ति या रमणीय बुद्धि नहीं रहती; वे सदा-सर्वदा भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाम और गुणप्रभावका चिन्तन करते रहते हैं—शास्त्रविधिके अनुसार समस्त कर्म करते हुए, उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-

तो पीछे अत्यन्त पश्चात्ताप करनेपर भी कोई काम सिद्ध नहीं होगा।

तुलसीदासजीने कहा है—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥

(रा०च०मा० ७। ४३)

अतः पहले ही सावधान हो जाना चाहिये। इन ऐश-आराम, स्वाद-शौकीनी, भोग-विलासके पदार्थोंमें फँसकर इनके सेवनमें अपनी बहुमूल्य आयुको बिताना तो जीवनको मिट्टीमें मिलाकर नष्ट करना है। इन विषयोंमें प्रतीत होनेवाला सुख वास्तवमें सुख नहीं है। हमें भ्रमके कारण दुःख ही सुखके रूपमें भास रहा है। इसलिये कल्याणकामी विवेकी मनुष्यको उचित है कि इन सबको धोखेकी टट्टी समझकर दूरसे ही त्याग दे। गीतामें भगवान् कहते हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(५। २२)

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं; इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।'

योगदर्शनमें कहा है—

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः। (साधनपाद १५)

'परिणामदुःख, तापदुःख, संस्कारदुःख—आदि अनेक दुःखोंसे मिश्रित होने तथा सात्त्विक, राजस, तामस वृत्तियोंमें विरोध होनेसे भी विवेकी पुरुषोंकी दृष्टिमें सम्पूर्ण विषयसुख दुःखरूप ही हैं।'

यदि कोई मनुष्य अज्ञानवश इस विषयसुखको सुख भी माने तो विचार करनेपर मालूम हो जायगा कि यह सुख कितना अस्थिर है। देश, काल और वस्तुसे परिच्छिन्न होनेके कारण यह सर्वथा क्षणभङ्गुर, विनाशशील और अत्यन्त अल्प ही है। इसीलिये तो बुद्धिमान् नचिकेताने यमराजके अनेक प्रलोभन देनेपर भी उनसे यही कहा—

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैत-
त्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥

(कठ० १। १। २६)

'हे यमराज! ये समस्त भोग 'कल रहेंगे या नहीं' इस प्रकारके सन्देहयुक्त एवं सम्पूर्ण इन्द्रियोंके तेजको जीर्ण करनेवाले हैं। यही क्या, यह सारा जीवन भी बहुत थोड़ा ही है। इसलिये ये आपके वाहन और नाच-गान आपके पास ही रहें, मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है।' यह तो इस जीवनकालमें इन भोगोंसे मिलनेवाले सुखकी बात है। मरनेके बाद तो इनमेंसे कोई भी पदार्थ किसी भी हालतमें किञ्चिन्मात्र भी किसीके साथ जा ही नहीं सकता।

किसी कविने कहा है—

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः।
गर्जन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः
सम्मीलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति॥

'जिसके अत्यन्त मनोहारिणी स्त्रियाँ हैं, अनुकूल मित्र हैं, बड़े ही सुयोग्य बन्धु-बान्धव हैं, प्रेमभरी मीठी वाणी बोलनेवाले सेवकगण हैं तथा जिसके घरमें अनेक हाथियोंके समूह चिग्घाड़ रहे हैं और तीव्र वेगवाले घोड़े हिनहिना रहे हैं, ऐसे पुरुषकी भी जब आँखें मुँद जाती हैं, तब न तो कोई भी उसका अपना ही रह जाता है और न कोई भी वस्तु उस समय उसके काम ही आ सकती है।'

इन धन-ऐश्वर्य आदि भोग्य पदार्थोंकी तो बात ही क्या, यह शरीर भी हमारे साथ नहीं जा सकता, यहीं भस्म हो जाता है। फिर कौन बुद्धिमान् मनुष्य संसारके इन नाशवान् पदार्थोंके संग्रह और इनके सेवनमें अपनी आयुको नष्ट करेगा। फिर हम देखते हैं कि ये धनैश्वर्य आदि पदार्थ तो इसी जन्ममें नष्ट हो जाते हैं। आजका धनी कल रास्तेका कंगाल हो जाता है। अतः इनके लिये परलोककी तो बात ही सोचना मूर्खता है। ऐसी अवस्थामें इनके संग्रह एवं सेवनमें मानव-जीवनका समय व्यय करना जीवनका भयानक दुरुपयोग ही है। धनको ही लीजिये। इसके उपार्जनमें कितना क्लेश है। झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी

और लूट खसोट करके अन्यायसे कमाया हुआ धन परिणाममें इस लोक और परलोकमें तो दुःखरूप है ही; सरकारी कानूनकी रक्षा करते हुए न्याय और धर्मके अनुसार धनका उपार्जन करनेमें भी कितना भारी परिश्रम है, इसपर भी ध्यान देना चाहिये। फिर, धनके सञ्चय और संरक्षणमें भी महान् क्लेश है तथा उसके वियोगमें तो अत्यन्त कष्ट होता है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्॥
(११।२३।१७)

'क्योंकि धूएँसे अग्निकी भाँति सभी कर्म किसी-न-किसी दोषसे युक्त हैं।' इसलिये थोड़े-से जीनेके लिये शरीरनिर्वाहके अतिरिक्त विशेष विषयोपभोगके लिये भोग्य पदार्थोंका संग्रह करना इस लोक और परलोकसे वञ्चित होकर अपने-आपको भयानक भवमें डालना है।

पूर्ण, यथार्थ और नित्य सुख तो परमात्माकी प्राप्तिमें है। उसीमें परम आनन्द और शाश्वती शान्ति है। वह सुख-शान्ति देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न होनेके कारण नित्य, असीम, अपार, सर्वोपरि और महान् है। उसकी महिमा कोई नहीं बतला सकता। भगवान् कहते हैं—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

श्रीअरविन्दके पूर्णयोगमें व्रत

व्रत अनेक हैं। व्रत शब्दका विस्तार भी व्यापक है। उपनिषद्, स्मृति, पुराण आदि आर्ष-ग्रन्थोंमें व्रतकी परिभाषा, व्याख्या तथा लक्षणादि-निरूपण भी अनेक पद्धतियोंके द्वारा किया गया है। इसका अर्थविस्तार असीम है तो अर्थसंकोचकी भी कोई सीमा नहीं है।

श्रीअरविन्दने व्रतकी अवधारणाका व्यवहार वैदिक अर्थमें किया है, जिसका आशय है—सत्यकी दिव्य क्रिया। स्थान, काल, पात्र आदिके अनुसार भी समझनेके लिये व्रतका वर्गीकरण नित्य और नैमित्तिक विभागोंमें किया जा सकता है। इसलिये पूर्णयोगकी साधनामें उन्हीं व्रतोंका समावेश होता है कि जो नित्य या अखण्ड व्रत हैं। जैसे योगकी साधनामें विरतिका स्थान नहीं है, वैसे ही पूर्णयोगके व्रत स्थान और कालसे निरपेक्षरूपसे साधनीय हैं।

पूर्णयोगके व्रत किसी सांसारिक कामनाके वशमें होकर नहीं किये जाते। भगवान्‌की प्राप्ति और जीवनमें उनकी अभिव्यक्ति ही व्रतका लक्ष्य है। व्रत अहंकारसे मुक्तिका साधन है। यह अनन्तकी अनन्तको पुनः प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा है। मनके विभाजन और अज्ञानको तादात्म्य तथा ज्ञानमें रूपान्तरित करनेकी प्रक्रिया है। श्रीअरविन्दने अपने श्रीअरविन्दोपज्ञा-उपनिषद्‌में कहा है—

अहंकार एव बीजमहंकारमोक्षादज्ञानमोक्षोऽज्ञानमोक्षाद् दुःखान्मुच्यते आनन्दमयोऽहं सोऽहमेकोऽहमनन्तोऽहं सर्वोऽहमिति विज्ञायानन्दमयो भवत्यानन्दो भवति।

अर्थात् इसका बीज अहंकार ही है। अहंकारसे छूटनेपर ही जीव दुःख-दर्दसे छूटता है। मैं आनन्दमय हूँ, मैं वही ब्रह्म हूँ, एक हूँ, अनन्त हूँ, सर्व हूँ—यह जानकर आनन्दमय हो जाता है जीव, अपने-आप आनन्द बन जाता है।

श्रीअरविन्दके योगके अधिष्ठानकी निर्मितिके लिये सप्तचतुष्टय अर्थात् कुल २८व्रतोंका विधान है। इनका स्वाभाविक आधार है ब्रह्मचर्यव्रत। ब्रह्मचर्यके लिये श्रीअरविन्द किसी वेश-भूषाका विधान न करके सभी स्तरोंका आधार आन्तरिक स्थितिको मानते हैं। इसके लिये पालनीय विधि-निषेध और करणीय साधनोंके कारण आन्तरिक उन्नतिको जो अधिष्ठान और दिशा मिलती है, उसीसे ब्रह्मचर्यव्रतका पालन सरल हो उठता है।

तत्पश्चात् साधन व्रतके प्रथम-चतुष्टयके रूपमें शान्तिचतुष्टयका सोपान प्रकट होता है। समताका प्रथम व्रताङ्ग तितिक्षा, उदासीनता और नतिसे संयुक्त है। नति अर्थात् परमात्माकी इच्छाके प्रति अन्तरात्माका समर्पण। समताका सक्रिय पक्ष रस, प्रीति और आनन्दमें अभिव्यक्त होता है।

शान्तिकी पूर्णता नतिपर आधारित आनन्दमय अचञ्चलतामें पर्यवसित है। इसीसे सुख अर्थात् सात्त्विक प्रकाशकी प्राप्ति होती है। इसका सक्रिय पक्ष है हास्य, जो समताकी सिद्धिपर भगवान्‌की मुहर है।

निम्नतर निकायकी अर्थात् मन, प्राण और शरीरके आन्तरिक त्रिलोककी सिद्धिके लिये श्रीअरविन्दने शक्तिचतुष्टयके व्रतोंका विधान किया है। यह तीन तत्त्वोंमें कार्यरत भागवत चेतनाकी सिद्धि है। यह आध्यात्मिक चातुर्वर्ण्यकी आधारशिला है। इसीमें ज्ञानलिप्सा, ज्ञानप्रकाश, ब्रह्मवर्चस् और स्थैर्यसे ब्रह्मतेजका विकास होता है। योगी विषयके अंदर प्रवेश करके ज्ञानको अंदरसे जानता है और फिर बाह्य जीवनमें उसका उपयोग करता है। वीर्यका अर्थ है भागवत स्वभावकी ऊर्जा। इसीके अन्तर्गत अभय, साहस आदि व्रताङ्ग हैं। दान, व्यय, कौशल, भोग, काम, प्रेम, दास्य, लिप्सा आदि परिपूरक व्रताङ्ग हैं, जिन्हें भगवान्‌की ओर मोड़ देनेसे व्रतके लक्ष्यके प्रति आगे बढ़नेमें सहायता मिलती है।

व्रत अर्थात् भगवान्‌की प्राप्ति और उनकी अभिव्यक्तिके लिये प्रतिज्ञाका आधार है श्रद्धा। यह पूर्ण हो या अपूर्ण, पर अपरिहार्य है। इसे पूर्ण बनानेके लिये भागवती शक्ति ही कार्यशील भी है और सहायक भी। इसीके अधिष्ठानपर देहके विविध सामर्थ्य, प्राणकी विविध शक्तियाँ और चित्तशक्तिके विभिन्न गुणोंके उपकरण साधकमें योगव्रती होनेकी योग्यताका सम्पादन भी करते हैं। उदाहरणस्वरूप देहकी स्वस्थता, प्राणकी परिपूर्णता और चित्तकी स्निग्धताके अभावमें पूर्णयोगके व्रतका साधन नहीं हो सकता।

विज्ञानचतुष्टयके व्रत साधकको सूक्ष्म लोकोंके नियमों

अर्थात् सिद्धियोंसे सम्पर्क कराते हैं, विज्ञानसिद्धि और शरीरसिद्धि दोनों ही अनुभूति तथा भागवतपूर्णताके उस क्षेत्रकी चीजें हैं, जो मानवजातिकी वर्तमान अवस्थाके लिये असाधारण हैं। वे अपनी असाधारणताके कारण व्रतकी सिद्धियाँ कही जाती हैं। इनमें ज्ञान, त्रिकालदृष्टि आदि व्रताङ्ग पारलौकिक उपलब्धियोंके कारण विवेक, सत्यधर्म आदि गुणोंके उद्‌गम हैं, जो मन और इन्द्रियोंके पूर्ण प्रकाशनकी सामान्य सीमाओंको भी लाँघ जाते हैं। विज्ञान-व्रतके कारण आधारमें प्रभुके प्रकाशका अनुभव होता है और यह अनुभव ही भगवत्प्राप्तिव्रतको वैज्ञानिक आधार देता तथा आधारकी व्याप्तिको बढ़ाता है।

शरीरचतुष्टयके व्रतोंमें श्रीअरविन्दने उन व्रतोंकी चर्चा की है, जो विवेकद्वारा आरोग्य तथा सात्त्विक स्वास्थ्यके लिये आवश्यक हैं। साधना केवल भौतिक उदासीनता अथवा कृच्छ्रव्रत या शरीरको पीडादायिनी प्रणाली नहीं है, बल्कि *शरीरको भागवतकार्यमें नियोग करनेकी विधि है।* इसके लिये इसे तैयार करनेवाले उपायों अर्थात् व्रतोंकी आवश्यकता है। आरोग्य इसका प्रथम चरण है और विविध प्रकारके आनन्दोंकी उपलब्धिको इसका निष्कर्ष माना जा सकता है।

ये चतुर्विधव्रत आधारशुद्धिके लिये हैं। व्रतोंकी उपादेयता आध्यात्मिक विकासके सोपानोंके लिये भी है, जिसे श्रीअरविन्दने लीलाचतुष्टय या कर्मचतुष्टय भी कहा है। इन व्रतोंका स्वरूप आन्तरिक है और ये चेतनाको व्रतशील बनाते हैं।

आन्तरिक व्रत बाह्य व्रतोंकी उच्चतर स्थिति और विकासके लक्षण हैं। इनका सम्बन्ध आत्माका ब्रह्मसे सम्बन्ध है। इसमें अनन्त ज्ञान, आनन्द—सभी ब्रह्ममें समाहित होता है। इसे श्रीअरविन्द स्वयंस्फूर्त क्रिया मानते हैं।

इन सभी व्रतोंकी परिपूर्ति है—संसिद्धिचतुष्टय अर्थात् व्रत आधारशुद्धिसे आरम्भ होते हैं और भुक्ति, मुक्ति एवं सिद्धिके सोपानोंसे होते हुए योगमें अपनी अखण्ड पूर्णताको प्राप्त होते हैं। इसकी परिणति श्रीअरविन्दप्रणीतगायत्री व्रतोपासनामें होती है—

तत्सवितुर्वरं रूपं ज्योतिः परस्य धीमहि।
यन्नः सत्येन दीपयेत्॥

(श्रीदेवदत्तजी)
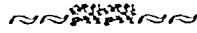
~~~

व्रतानुष्ठानकी महिमा

(पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय)
~~~

हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है। यथा—एकादशीव्रत। नैमित्तिकव्रत किसी निमित्त (कारण, अवसर)-को लेकर प्रवृत्त होता है। यथा—चान्द्रायणव्रत। काम्यव्रत किसी विशेष कामनाकी सिद्धिके लिये किया जाता है—जैसे भिन्न तिथियोंमें किये गये व्रत। वेदविहित कर्मोंका सम्पादन करना प्रत्येक हिंदूका प्रधान कर्तव्य है। इस विषयमें महाराज मनुका कथन ध्यान देनेयोग्य है—

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम्॥

(मनुस्मृति ४।१४)

व्रतका प्रधान उद्देश्य आत्मशुद्धि तथा परमात्म-चिन्तन है। संसारमें नाना प्रपञ्चोंमें फँसे रहनेके कारण हमें परमात्मचिन्तनका अवसर कम ही मिलता है। व्रतके दिन वह अवसर आप-से-आप सुलभ है। व्रतमें उपवासका विधान है। केवल अन्नपानके परित्यागसे ही उपवासकी पूर्ति नहीं होती। उपवासका शाब्दिक अर्थ है—'**उप समीपे वासः**।' समीपमें रहना अर्थात् अपने इष्टदेवके पास रहना। सच्चा उपवास तो परमात्माका चिन्तन करते हुए उनके साथ तन्मय होकर रहना है। इसके लिये अन्नपानका त्याग भी आवश्यक है। इस विषयमें गीताका कहना बिलकुल ही ठीक है—'**विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः**।' अर्थात् जो प्राणी निराहार रहता है उससे विषय आप-से-आप निवृत्त हो जाते हैं। इस प्रकार व्रतोंके विधिवत् अनुष्ठानसे पर्याप्त आत्मशुद्धि होती है। इनका ऐतिहासिक महत्त्व भी कम नहीं है। रामनवमी, जन्माष्टमी आदि अनेक व्रत भगवान्‌की किसी विभूति अथवा अवतारसे सम्बन्ध रखते हैं। उस दिन व्रत करनेसे हमारे सामने उस विशिष्ट अवतारकी अलौकिक लीलाएँ हृदयमें नवीन उत्साह, नयी स्फूर्ति तथा अनुपम गुणोंका उदय कराती हैं। अतः स्पष्ट है कि व्रतोंके अनुष्ठानका प्रभाव मानव-जीवनपर बड़ा गहरा पड़ता है। परंतु व्रतके अनुष्ठान विधिवत् होने चाहिये। सबसे पहला गुण जो व्रत करनेवालेमें होना चाहिये, वह है वैदिक कृत्योंमें गाढ़ श्रद्धा। श्रद्धाका प्रभाव चित्तपर बड़ा ही गहरा पड़ता है। '**गुरुवेदान्तवाक्येषु विश्वासः श्रद्धा**'—श्रद्धा है गुरु और शास्त्रके वाक्योंमें अटूट विश्वास। इस विश्वासके साथ आस्तिक्य-बुद्धिका होना भी नितान्त आवश्यक है। हमारे हृदयमें यह दृढ़ निश्चय होना चाहिये कि इस नाना रूप जगत्‌के मूलमें एक सर्वशक्तिमान् नियन्ता विद्यमान हैं। उन्हें ही परमकल्याणकारक होनेके कारण 'शिव' कहते हैं, वे ही समग्र मनुष्योंको शरण देनेके कारण 'नारायण' हैं, जगत्‌के समग्र प्राणियोंमें व्यापक होनेके कारण वे ही 'विष्णु' हैं। संसारके जितने पदार्थ हैं सब उन्हींकी शक्तिसे अनुस्यूत हैं। वे प्राणोंके प्राण हैं। समस्त देवता उन्हींके प्रतिनिधि हैं। जगत्‌में प्राणसंचार करनेवाला 'वायु' उनका श्वासरूप है। जबतक यह भावना दृढ़ नहीं होती, तबतक व्रतकी निष्ठा पूरी नहीं होती। आचरणकी सत्यता तीसरा सद्गुण है, जिसकी सत्ता सद्यः फल देनेवाली होती है। धार्मिक कृत्य जो कुछ किया जाय वह सचाईके साथ किया जाना चाहिये। उसका केवल प्रदर्शन नहीं होना चाहिये। यदि भगवान्‌में हार्दिक आस्था रखकर पूर्ण विश्वास तथा सचाईके साथ व्रतका अनुष्ठान किया जाय तो उसके सिद्ध होनेमें विशेष विलम्ब नहीं होता।

नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेन्नैनां मन्येत दुर्लभाम्॥
यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥

(मनुस्मृति ४।१३७, ११।२३८)

पहले (उद्योग करनेपर भी) समृद्धि न होनेपर ('मैं मन्दभाग्य या अभागा हूँ' इत्यादि प्रकारसे) अपना अपमान न करे, (किंतु) मरनेतक लक्ष्मीको चाहे (उन्नतिके लिये उद्योग करता ही रहे) और इसे (समृद्धि-सम्पत्तिको) दुर्लभ कभी न समझे। जो दुस्तर (कठिनतासे पार होने योग्य ग्रहबाधा आदि), जो दुर्लभ (कठिनतासे प्राप्त होनेयोग्य—यथा क्षत्रिय होकर भी विश्वामित्रका ब्राह्मण होना आदि) जो दुर्गम (कठिनतासे चलनेयोग्य सुमेरु-शिखर आदि) जो दुष्कर (कठिनतासे करनेयोग्य गौ, भूमि, धन आदिका अपरिमित मात्रामें दान करना आदि) है; वह सब तपसे ही सिद्ध हो सकता है; क्योंकि तप उल्लंघनके योग्य नहीं होता

पुरुषोत्तम-मासके व्रत-नियम

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

अधिमासको 'मलमास' और 'पुरुषोत्तम-मास' भी कहते हैं। इस मासकी मलमासकी दृष्टिसे जैसे निन्दा है, पुरुषोत्तम-मासकी दृष्टिसे इसकी बड़ी महिमा है। भगवान् पुरुषोत्तमने इसको अपना नाम देकर कहा है कि अब मैं इस मासका स्वामी हो गया हूँ और इसके नामसे सारा जगत् पवित्र होगा तथा मेरी सादृश्यताको प्राप्त करके यह मास अन्य सब मासोंका अधिपति होगा। यह जगत्पूज्य और जगत्का वन्दनीय होगा और यह पूजा करनेवाले सब लोगोंके दारिद्र्यका नाश करनेवाला होगा।*

इस पुरुषोत्तम-मासमें नियमसे रहकर भगवान्की विधिपूर्वक पूजा करनेसे भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और भक्तिपूर्वक उन भगवान्की पूजा करनेवाला यहाँ सब प्रकारके सुख भोगकर मृत्युके बाद भगवान्के दिव्य गोलोकमें निवास करता है।†

तीर्थोंमें, घरोंमें और मन्दिरोंमें जगह-जगह इस मासमें भगवान्की कथा होनी चाहिये। भगवान्का विशेष रूपसे पूजन होना चाहिये और भगवान्की कृपासे देश तथा विश्वका मङ्गल हो एवं गो-ब्राह्मण तथा धर्मकी रक्षा हो, इसके लिये व्रत-नियमादिका आचरण करते हुए दान, पुण्य और भगवान्का पूजन करना चाहिये। महर्षि वाल्मीकिने पुरुषोत्तम-मासके नियमोंके सम्बन्धमें कहा है कि इस मासमें गेहूँ, चावल, सफेद धान, मूँग, जौ, तिल, मटर, बथुआ, शहतूत, सामक, ककड़ी, केला, घी, कटहल, आम, हर्रे, पीपल, जीरा, सोंठ, इमली, सुपारी, आँवला, सेंधा नमक आदि हविष्यान्नका भोजन करना चाहिये।

सब प्रकारके अभक्ष्य, मांस, शहद, चावलका माँड़, चौलाई, उरद, राई, नशेकी चीजें, दाल, तिलका तेल और दूषित अन्नका त्याग करना चाहिये। किसी प्राणीसे द्रोह नहीं करना चाहिये। पर-स्त्रीका भूल करके भी सेवन नहीं करना चाहिये। देवता, वेद, ब्राह्मण, गुरु, गाय, साधु-संन्यासी, स्त्री और बड़े लोगोंकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। ताँबेके बर्तनमें गायका दूध, चमड़ेमें रखा हुआ पानी और केवल अपने लिये ही पकाया हुआ अन्न दूषित माना गया है। अतएव इनका त्याग करना चाहिये।

इस 'पुरुषोत्तम-मास' में जमीनपर सोना, पत्तलमें भोजन करना, शामको एक वक्त खाना, रजस्वला स्त्रीसे दूर रहना और धर्मभ्रष्ट संस्कारहीन लोगोंसे सम्पर्क नहीं रखना चाहिये। प्याज, लहसुन, नागरमोथा, छत्री, गाजर, मूली इत्यादिका त्याग करना चाहिये। चान्द्रायणादि व्रत-उपवास करना उत्तम है।

प्रात:काल सूर्योदयसे पूर्व उठकर शौच, स्नान, संध्या आदि अपने-अपने अधिकारके अनुसार नित्यकर्म करके भगवान्का स्मरण करना चाहिये और पुरुषोत्तम-मासके नियम ग्रहण करने चाहिये। पुरुषोत्तम-मासमें श्रीमद्भागवतका पाठ करना महान् पुण्यदायक है और एक लाख तुलसीपत्रसे शालग्राम भगवान्का पूजन करनेसे अनन्त पुण्य होता है।

विधिपूर्वक षोडशोपचारसे नित्य भगवान्का पूजन करना उचित है। इस पुरुषोत्तम-मासमें—

'गोवर्द्धनधरं वन्दे गोपालं गोपरूपिणम्।
गोकुलोत्सवमीशानं गोविन्दं गोपिकाप्रियम्॥'

—इस मन्त्रका एक महीनेतक भक्तिपूर्वक बार-बार जप करनेसे पुरुषोत्तम भगवान्की प्राप्ति होती है। प्राचीन कालमें श्रीकौण्डिन्य ऋषिने यह मन्त्र बताया था। मन्त्र जपते समय नवीन मेघश्याम द्विभुज मुरलीधर पीतवस्त्रधारी श्रीराधिकाजीके सहित श्रीपुरुषोत्तम भगवान्का ध्यान करना चाहिये।‡

वास्तवमें श्रद्धाभक्तिपूर्वक भगवान्का नामजप, स्थान-स्थानमें भगवन्नामकीर्तन, गोरक्षाके लिये दान, विधवा-अनाथ-असहाय लोगोंकी निष्काम सेवा, धार्मिक आचरणोंका पालन—इस मासमें विशेष रूपसे करना चाहिये।

---

* अहमेवास्य संजातः स्वामी च मधुसूदनः। एतन्नाम्ना जगत्सर्वं पवित्रं च भविष्यति॥
मत्सादृश्यमुपागम्य मासानामधिपो भवेत्। जगत्पूज्यो जगद्वन्द्यो मासोऽयं तु भविष्यति॥
पूजकानां च सर्वेषां दुःखदारिद्र्यखण्डनः॥

† येनाहमर्चितो भक्त्या मासेऽस्मिन् पुरुषोत्तमे। धनपुत्रसुखं भुक्त्वा पश्चाद् गोलोकवासभाक्॥

‡ कौण्डिन्येन पुरा प्रोक्तमिमं मन्त्रं पुनः पुनः। जपन्मासं नयेद् भक्त्या पुरुषोत्तममाप्नुयात्॥
ध्यायेन्नवघनश्यामं द्विभुजं मुरलीधरम्। लसत्पीतपटं रम्यं सराधं पुरुषोत्तमम्॥

'महामनाः स्यात्, तद् व्रतम्'

['बड़े मनवाले बनो', यह व्रत है]

(श्रीविनोबाजी भावे)

छान्दोग्योपनिषद्‌में सामव्रतानि नामसे एक अधिकरण है। सामवेद गानेवाले जो भक्त हैं, उनके ये व्रत हैं। प्राचीन कालमें यह मान्यता थी कि जिन्हें अध्ययन करना है, उनको कुछ-न-कुछ व्रत लेना चाहिये। सामवेद पढ़नेवालोंके यानी साम्यप्राप्तिकी साधना करनेवालोंके ये व्रत हैं। उसमें प्रारम्भमें कहा गया है—'**महामनाः स्यात्, तद् व्रतम्**'—बड़े मनवाले बनो, उदार हृदयवाले बनो—यह व्रत है।

अब प्रश्न है, बड़ा मन कैसे बनाया जाय? मन इतना छोटा-सा है कि 'मैं, मेरा शरीर, मेरा भाई, मेरी बहन, मेरी खेती'-में वह सीमित है और यहाँ कहते हैं—बड़ा मन बनाओ। उसे बड़ा कैसे बनाया जाय? हमारे यहाँ 'महात्मा' शब्द है। 'महात्मा' का अर्थ है जिसका मन बड़ा है वह। यहाँ आत्माका अर्थ मन है, क्योंकि आत्मा तो न छोटा है, न बड़ा है तो कैसे बनाया जाय बड़ा मन? बोले—व्रत ले लो कि आजसे मैं, अपना मन बड़ा बनाऊँगा, छोटा नहीं रखूँगा। जो वस्तु सहजसिद्ध है, उसके लिये व्रतकी जरूरत नहीं। जो प्रयत्नसाध्य वस्तु है, उसके लिये व्रत ले लो। मेरा छोटा मन है, इसका दुःख होना प्रारम्भ हो जाय तो व्रतका आरम्भ हो जायगा और धीरे-धीरे व्रतकी पूर्णतापर मन किंवा हृदय विशाल बन जायगा।

'**महामनाः स्यात्, तद् व्रतम्**' कहा और उसके साथमें व्रत और रख दिये—

तपन्तं न निन्देत्, तद् व्रतम्। गरमी बढ़ गयी, निन्दा मत करो। सूर्यनारायण तीव्र, ऊष्मायुक्त हैं, उनके साथ अपना मेल कैसे बैठेगा, यह सोचो। वैसे ही '**वर्षन्तं न निन्देत्, तद् व्रतम्**' बरसते हुए मेघकी भी निन्दा न करें। उसके अनुकूल जीवन बनाना पड़ेगा। '**ऋतून् न निन्देत्, तद् व्रतम्**' और भी ऋतुएँ आयेंगी, उनकी निन्दा न करे। आगे और मुश्किल मामला है। ऋषि कहते हैं—'**लोकान् न निन्देत्, तद् व्रतम्**' लोक यानी लोकन करनेवाले—जो हमारा अवलोकन करते हैं और हम जिनका अवलोकन करते हैं अर्थात् लोगोंकी निन्दा न करे। गीतामें कहा है—'**यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः**' (जो लोगोंसे ऊबता नहीं और लोग जिससे ऊबते नहीं)। फिर कहते हैं—'**पशून् न निन्देत्, तद् व्रतम्**' पशुओंकी निन्दा नहीं करनी चाहिये। गाय, बैल, गधा सब हमारे लिये कितना सुन्दर काम करते हैं, उनकी निन्दा न करे। फिर अन्य व्रत बताया कि '**मज्झो नाश्नीयात्, तद् व्रतम्**' अर्थात् मांस एवं मत्स्यादि न खाय— यह व्रत है और अन्तमें कहते हैं, 'मैं ही सब हूँ'—ऐसी उपासना करो—'**सर्वं अस्मि इति उपासीत**' सब मैं हूँ—ऐसा ज्ञान हो जाय तो कर्म समाप्त हो जाता है।

इसलिये ऐसी उपासना करो, ध्यानपूर्वक चिन्तन करो, जप करो, मनन करो। '**सर्वं अस्मि इति**' बड़ा कठिन मामला है। यह एकदम नहीं सधेगा, इसलिये दुहराते हैं—'**तद् व्रतम्, तद् व्रतम्।**'

प्रारम्भमें कहा 'महामनाः स्यात्' और अन्तमें कहा '**सर्वं अस्मि इति।**' इनके बीच सब कुछ आ जाता है।

[प्रेषक—श्रीसुशीलजी चौमाल]

'मुद मंगल हो जाय'

(पं० श्रीरामस्वरूपजी गौड़)

कार्तिक माघको स्नान, दे सुख सौभाग्य महान॥

पहरके तड़के उठकर न्हावें नदी बावड़ी जाय।
हरिको सुमिरण निरन्तर राखे, प्रभु लीला गुण गाय॥
मन्दिर दर्शन प्रभुके जावे, हरि भाव हिय माय।
गोपी चन्दन तिलक लगावे, अरु चरणामृत पाय॥
पुष्प चढ़ावे शृंगार बनावे, मनका मैल हटाय।
ठाकुरजीके भोग लगावे, सात्त्विक पाक बनाय॥
परिजन और अभ्यागत पावे, तब प्रसादी पाय।
उद्यापनपर उत्सव राखे, मुद मंगल हो जाय॥

व्रत एवं उपवास पूर्ण शास्त्रीय विधिसे सम्पन्न होने चाहिये

(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी)

धर्मप्राण भारत महोत्सवप्रधान देश रहा है। हमारे सभी अवतार, देवी-देवता और ऋषि-मुनि व्रत-महोत्सवोंको भारी महत्त्व देते थे। जीवनसे लेकर मृत्यु-संस्कारतक हमारे यहाँ महोत्सवके रूपमें मनाया जाता रहा है। सनातनधर्मी हिन्दूके घर जब बच्चा जन्म लेता है तो उसके उपलक्ष्यमें तरह-तरहके संस्कार उत्सवके रूपमें मनाये जाते हैं। नामकरण, यज्ञोपवीत, वाग्दान, विवाह और अन्तमें पूरी आयु प्राप्तकर मृत्युको प्राप्त होनेवालेकी मृत्यु भी उत्सवके रूपमें मनायी जाती रही है। प्रत्येक कार्य पूर्ण शास्त्रविधिसे सम्पन्न किया जाता रहा है।

गरुडपुराणमें व्रतधारीके लिये क्रोध, लोभ तथा मोहको सर्वथा त्याज्य बताया गया है। भविष्यपुराणमें कहा गया है—

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहवनं सन्तोषः स्तेयवर्जनम्॥

व्रताचरणके दौरान क्षमा, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्निहोत्र और संतोषका आचरण करनेसे ही व्रतका पुण्य प्राप्त होता है।

व्रतके दौरान दूसरेका अन्न-फल आदि ग्रहण न करने, अनर्गल वार्तालाप न कर प्रायः मौन रहकर प्रभुके नामका स्मरण करते रहने, ईश्वरका चिन्तन करने तथा सत्साहित्यका अध्ययन करनेका शास्त्रोंने आदेश दिया है।

व्रतके दौरान यदि भगवती भागीरथी गङ्गा, यमुना, नर्मदा या सरयूजीके अति पावन तटपर हो तो नदियोंकी पवित्रता बनाये रखनेका पूरा ध्यान रखना चाहिये। स्नान करते समय तेल-साबुनका भूलकर भी प्रयोग नहीं करना चाहिये। संत-महात्माओंका सत्संग, धर्मशास्त्रोंका अध्ययन व्रत-उपवासको और भी सार्थक बनानेवाला सिद्ध होता है।

पूज्यपाद संत उड़िया बाबाजी महाराज प्रायः कहा करते थे कि व्रत-उपवास करनेवालेको भौतिक सुख-सुविधाएँ बिलकुल त्याग देनी चाहिये। व्रत-उपवास करनेवाली महिलाओंको फैशनसे सर्वथा दूर रहकर सादगीसे व्रत पूरा करना चाहिये। तेल-साबुन आदिका शरीरसे स्पर्श भी नहीं कराना चाहिये। अनर्गल बातोंसे बचना चाहिये। निन्दा-स्तुतिसे सर्वथा दूर रहना चाहिये।

महान् वीतराग संत शंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज तो व्रत-उपवासके दौरान कठोर संयम बरतने, चौबीस घंटेमें केवल एक बार अल्पाहारके रूपमें फल-दूध ग्रहण करने तथा सांसारिक कार्योंसे सर्वथा निर्लिप्त रहनेकी प्रेरणा दिया करते थे।

पूज्य शंकराचार्यजी महाराज एकादशीके दिन स्वयं निराहार-व्रत रखा करते थे। वे प्रायः दर्शनके लिये आनेवाले श्रद्धालुजनोंको एकादशी तथा अन्य व्रतोंके दौरान चाय, तम्बाकू और अन्य नशीले पदार्थोंको हाथ भी न लगानेकी प्रेरणा दिया करते थे। वे कहा करते थे—इस घोर कलिकालमें एकादशीका व्रत करना, भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण अथवा महादेव शिवजीके पावन नामका जप करना, नित्यप्रति सूर्यार्घ्य देना, गङ्गा, यमुनामें स्नान करना, कथाश्रवण करना, सादगीपूर्ण सदाचारमय जीवन व्यतीत करना, गोसेवा करना आदि आत्मकल्याणके सीधे साधन हैं।

कुत्ते भी उपवास रखते हैं

हमारे धर्मप्राण भारतके मानव ही नहीं, पशु-पक्षी भी व्रत-उपवास रखा करते थे। वर्तमान समयमें भी अनेक पशु-पक्षियोंके व्रत-उपवास रखनेके आश्चर्यजनक वृत्तान्त सामने आते रहते हैं।

सुविख्यात आर्य संन्यासी तथा दैनिक मिलाप (लाहौर)-के संस्थापक, सम्पादक महात्मा आनन्दस्वामी सरस्वतीजी महाराजने एक बार पिलखुवामें हमारे निवासस्थानपर आयोजित सत्संग-समारोहमें अपने देहरादूनस्थित तपोवन-आश्रममें रहनेवाले एक ऐसे ही व्रताचरणधारी कुत्तेका प्रसंग सुनाया था, जो प्रत्येक एकादशीको उपवास रखता था।

उन्होंने बताया कि नालापानी गाँवके निवासी ठाकुर रामसिंहजीका पालतू कुत्ता एकादशीके दिन कुछ नहीं खाता था। वह तपोवन-आश्रममें ही रहने लगा था। हमने स्वयं एकादशीके दिन उसे रोटी खिलानी चाही, किंतु उसने उसे छुआतक नहीं। मैंने कई एकादशियोंको स्वयं इस भगवद्भक्त तथा पूर्वजन्मके संस्कारी कुत्तेकी परीक्षा ली, किंतु उसने दूध या रोटीको मुँह भी नहीं लगाया।

महात्मा आनन्दस्वामीजी महाराजने एक अन्य व्रतधारी कुत्तेका वर्णन सुनाते हुए बताया कि मैं वर्षोंतक आर्य संन्यासी स्वामी केवलानन्दजी महाराजके आश्रममें रहा। वहाँ भी एक ऐसा अनूठा भगवद्भक्त कुत्ता था जो प्रति सोमवारको उपवास रखता था। आश्रमके लोग प्रतिदिनकी तरह उसके सामने रोटी तथा दूध रखते थे, किंतु

सोमवारको न जाने कैसे उसे दिनका पता चल जाता था, उस दिन वह उन्हें मुँहसे छूनेको तैयार नहीं होता था।

मेरठमें आर्यसमाजके एक विद्वान् शिक्षासेवी थे सुखदेव शास्त्रकाव्यतीर्थजी। उन्होंने मुझे एक अनूठे हनुमद्भक्त कुत्तेका वृत्तान्त सुनाया था। उन्होंने बताया कि मेरी छोटी बहनका विवाह था। विवाहमें मेरे मामा भात भरने आये थे। उनके साथ ताँगेके पीछे-पीछे एक कुत्ता १२ कोस चलकर हमारे घर आया। हमारे मामाजीने बताया कि यह कुत्ता बड़ा धर्मात्मा है। कभी मांस नहीं खाता। यह हनुमान्‌जीका भक्त है। मंगलवारको व्रत-उपवास रखता है।

भारत सदैवसे धर्मप्राण अनूठा देश रहा है। यहाँके पशु-पक्षीतक धर्माचरण करते रहे हैं। अत: प्रत्येक मनुष्यको तो धर्माचरणका संकल्प लेना ही चाहिये। इस संकल्पका नाम ही 'व्रत-उत्सव' है।

परम्पराएँ न त्यागें

आधुनिकता तथा विज्ञानकी चकाचौंधमें फँसे हुए कुछ उपदेशक कहते सुने जाते हैं कि एकादशीका अर्थ उपवास नहीं, अपितु ग्यारह नियमोंका पालन करना ही एकादशी कहा गया है। किंतु हमें उनकी इस प्रकारकी बातोंपर ध्यान न देकर धर्मशास्त्रों तथा प्राचीन परम्पराके अनुसार ही व्रत-उपवास रखने चाहिये। यह ठीक है कि दुष्प्रवृत्तियाँ त्यागकर सद्गुणोंका पालन करना भी एक प्रकारका संकल्प—व्रत ही है। असत्य, हिंसा, निन्दा, चुगली आदि केवल एकादशी या व्रतके दिन ही वर्जित नहीं हैं, अपितु इनका तो जीवनमें सर्वथा-सर्वथा त्याग करना ही चाहिये। व्रत-उपवासोंके माध्यमसे लोक-परलोक दोनोंका कल्याण होता है।

हमारे यहाँ बच्चोंके जन्मदिवसपर उन्हें वृद्धजनोंसे आशीर्वाद, संत-महात्माओंके दर्शन कराकर उनके आशीर्वादकी परम्परा थी। किंतु अब पाश्चात्त्य देशोंका अनुकरण कर केक कटवायी जाने लगी है। मोमबत्तियाँ जलाकर उन्हें बच्चोंसे फूँक लगवाकर बुझवाया जाता है। दीपक जलानेके बजाय दीपक या मोमबत्ती बुझवाना स्पष्टरूपसे अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशोंका अन्धानुकरण ही है।

इसी प्रकार विवाह-समारोहोंका रूप भी बिगाड़ दिया गया है। पाणिग्रहण-संस्कार विधिवत् न कराकर उसकी जगह भोंडे और अश्लील नृत्य कराये जाते हैं। कुछ विवाह उत्सवोंमें तो काकटेल पार्टी अर्थात् खुलकर शराब परोसी जाने लगी है। यह सब हमारे सद्य:पतनका ज्वलन्त प्रमाण है।

प्रत्येक उत्सव, महोत्सवको सादगीके साथ शास्त्रानुसार मनानेमें ही हमारा कल्याण निहित है, हमें यह नहीं भूलना चाहिये।

गुरुडमसे बचें

हमारे कुछ नये-नये मत-मतान्तरोंके उपदेशक तथा गुरु उपर्युक्त कुरीतियोंका तो विरोध करनेका साहस नहीं दिखाते, अपितु पुरानी परम्पराओं, व्रत-उपवास, गङ्गास्नान, तीर्थयात्रा, श्राद्ध आदिको व्यर्थका कर्मकाण्ड और पाखण्ड बताकर उनका विरोध करते हैं। कुछ तो भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण, शिव, विष्णु, हनुमान्‌जी, दुर्गाजी तथा अन्य देवी-देवताओंकी पूजा-उपासना छुड़वाकर अपने चित्रोंकी पूजा कराना शुरू कर देते हैं। ऐसे शास्त्रविरोधी तथाकथित गुरुओंसे हमें सावधान रहनेकी आवश्यकता है। जो 'हनुमानचालीसा' या 'रामायण' की जगह अपने जीवनपर रचित दोहोंका पाठ करनेकी प्रेरणा दे, अपने नामका जप करनेमें कल्याण बताये, अपना उच्छिष्ट भोजन खिलानेका प्रयास करे, महिलाओंसे शरीरकी सेवा कराये और उनसे एकान्तमें बातें करे, उसे 'कलियुगी-पाखण्डी' मानकर अत्यन्त सावधान रहनेकी आवश्यकता है।

आज तो अनेक समारोहोंमें भगवान्‌की लीलाओंकी चर्चाकी जगह नये-नये कलियुगी अवतारोंके चमत्कारोंकी चर्चाएँ की जाती हैं। ऐसा प्रचार किया जाता है कि अमुक संतके नामका जप करनेसे कैंसरसे मुक्ति मिल गयी, आपदाओंसे छुटकारा मिल गया। किंतु हमें ऐसी निराधार बातोंके चक्करमें न पड़कर अपने प्राचीन सनातनधर्मके बताये मार्गपर चलना चाहिये तथा व्रत-उपवास एवं भगवन्नामका जप-संकीर्तन करते हुए मानव-जीवन सार्थक बनाना चाहिये।

हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि हमारे वास्तविक धर्माचार्य, संत-महात्मा तथा गुरु वे ही हो सकते हैं जो हमें धर्मशास्त्रानुसार चलनेकी प्रेरणा देकर हमारा जीवन सफल बनानेका मार्ग प्रशस्त करें। धर्मशास्त्रोंके विपरीत मनमाने ढंगसे स्वयं जीवन बितानेवाले तथा हमें मनमाने ढंगसे मर्यादाहीन जीवन जीनेकी प्रेरणा देनेवाले हमारे सच्चे धर्मगुरु या मार्गदर्शक कैसे हो सकते हैं?

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]
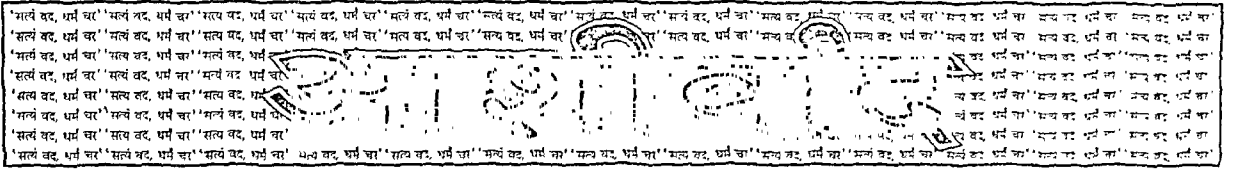
अनन्त सुखकी प्राप्ति

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृङ्गेरीशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

श्रुति-स्मृति, इतिहास-पुराणादि सभी धर्मग्रन्थ इस बातके प्रमाण हैं कि सर्वोत्कृष्ट मानव-जीवन एक व्यवस्था, क्रम, नियम-विधान और तपस्यायुत वैचारिकसरणि आदिके कारण अभिलषित लक्ष्यप्राप्तिकी ओर बढ़ते हुए सार्थकताका उद्घोष करता है। इस रहस्यको जानते हुए भी, साधना और तपस्याके अतिशय महत्त्वको स्वीकार करते हुए भी यदा-कदा आकर्षण-प्रत्याकर्षण, मोहसलिलजालमें फँसकर, चित्तस्थैर्यको खोकर मानव भ्रान्तिमान् हो जाता है, यह जीवनकी विडम्बना है। इस पुण्यभूमि भारतमें अवतरित महान् आत्माओंने कलुषित जलधारामें बहकर पथभ्रष्ट होनेवाले मानवोंके उद्धारके लिये उपाय निर्देश करते हुए अनेक श्लाघ्य प्रयत्न किये हैं, जिनके अवलम्बसे तमस् हट जाता है और स्वर्णमय रश्मियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

जीवनको सुन्दरसे सुन्दरतम बनाने और उसकी सर्वोच्चता सिद्ध करनेके नाना मार्ग हैं। अन्य जीवधारियोंके समान मानव आहार-निद्रा, भय-भ्रान्तिका ही पुजारी नहीं है; वह निज साधना—तपस्याद्वारा महान् श्रेयस् किंवा 'परम पद' प्राप्त कर सकता है। सही पथ-प्रदर्शनसे वह शीघ्रातिशीघ्र कृतकृत्य हो सकता है। इसीलिये हमारे यहाँ कल्पसूत्रोंकी अवतारणा हुई है, जिनके अन्यतम स्थानके मौन आदिका अनुष्ठान, तीर्थयात्रा और व्रताचरण।

सांसारिक बन्धनोंमें बँधा, ममत्वके घेरसे घिरा व्यक्ति अपना उल्लू सीधा करनेके लिये बहुत बार जो नहीं करना चाहिये, वह कर बैठता है; उसे अकरणीयताका परिज्ञान नहीं होता। कभी-कभी वह विहित-अविहितका ज्ञान होते हुए भी शास्त्रका अन्धा बनकर दूषित अथवा निन्द्यकर्म करता है। इससे उसको पाप लगता है। पापका जबतक प्रायश्चित्त नहीं होता, तबतक उसे दुःख—संकट सहने पड़ते हैं। ज्ञाताज्ञात त्रुटियाँ, दोष, न्यूनताएँ—इन सबका परिहार प्रायश्चित्तसे होता है। बहुत निन्द्यकर्म हो तो उसके लिये प्रायश्चित्त भी नहीं। इसलिये मनुष्यको जागरूक होकर स्ववर्णाश्रम-धर्मके अनुसार कर्माचरण करते हुए अपने जीवनको साफल्यकी ओर ले चलना चाहिये।

ईश्वरकी सृष्टिमें सब लोगोंकी भलाईके लिये ही वेदोंके अनुशासन हैं। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' का यही अभिप्राय समझना चाहिये कि वेदोंमें उक्त अनुशासनोंका पालन करनेसे सबके लिये श्रेयस्कर मार्ग प्रशस्त होता है। धर्मकी रक्षाका अर्थ धर्मका पालन अथवा यथोचित रीतिसे धर्मके अनुसार आचरण करना ही है। शास्त्रज्ञोंने यथासम्भव विधि-विधानोंको सुलभग्राह्य बनाया है। काल अर्थात् ऋतुओं और मासोंके समयचक्रकी स्थितिको दृष्टिमें रखकर,

ही है। उदाहरणके लिये हम सनातन-धर्मानुयायियोंमें प्रचलित सर्वत्र लोकप्रिय श्रीगणेशजीके व्रतको लीजिये। हमारे देशके प्रायः सभी प्रदेशोंमें यह व्रत मनाया जाता है; यह लक्ष्य करनेकी बात है कि प्रादेशिक विशेषताएँ विभिन्न स्थानोंमें बहनेवाली बरसातकी जलधाराकी भाँति उसमें सम्मिलित रहती हैं। ऐसे व्रत राष्ट्रियपर्वकी मान्यता प्राप्त कर लोगोंको एक सूत्रमें बाँधनेमें भी समर्थ होते हैं। विविधतामें एकताका संदेश देनेवाले ऐसे व्रत लोककल्याणकी भावनाको सुदृढ़ करते हैं। इसलिये ऐसे संदर्भमें कई जगहोंमें आध्यात्मिक जागरूकताके साथ-साथ सांस्कृतिक समुन्नयन भी देखा जाता है। आध्यात्मिक केन्द्रोंमें वेदवेदाङ्गोंकी चर्चा, दैनिक पारायण-जप और विभिन्न शास्त्रार्थोंके मन्थनके रूपमें होती है। देश-कालकी विशिष्ट स्मृतियोंके कारण उनमें ऐतिहासिकता एवं सार्वकालिकता, सार्वजनीनता और सर्वात्मकताका स्वरूप स्पष्टतया दृष्टिगोचर होने लगता है। लोगोंके मनमें ऐसे पर्वोंके प्रति निरन्तर आकर्षण होता है; आतुरतासे लोग उनके आगमनके समयकी प्रतीक्षा करते हैं।

कल्पोक्त सभी व्रतोंमें कुछ सामान्य विशेषताओंका आकलन किया जा सकता है। यथा—ध्यान, आवाहन आदि षोडशोपचार, विशिष्ट-विशिष्ट पत्र-पुष्पसमर्पण, नैवेद्य-रूप चढ़ानेयोग्य पदार्थ और उनकी संख्याका भी निर्देश आवश्यकतानुसार होता है। प्रत्येक व्रतसे सम्बन्धित कोई-न-कोई कथा होती है, जिसमें व्रतानुष्ठान करनेवाले व्यक्तिको व्रतकी साङ्गतासे प्राप्त होनेवाले फलका कथन होता है। ध्यान देनेकी बात है कि जो व्यक्ति व्रतका आचरण करता है, उसके लिये व्रतकथाका पठन या श्रवण परमावश्यक है। पूजाविधान संस्कृतमें होनेसे और व्रतकथाका विवरण भी संस्कृतमें ही होनेसे सामान्य जनता अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषाओंमें कथा पढ़ने या सुननेकी आकाङ्क्षा प्रकट करती है। कुछ स्थानोंमें तो प्रादेशिक भाषाओंका प्राधान्य होता है। व्रतोंकी कथाओंके अन्तमें प्रायः सभीमें एक वाक्य होता है—**'व्रतानामुत्तमं व्रतम्'** अर्थात् सभी व्रतोंमें यह श्रेष्ठ व्रत है। लोगोंके मनमें इस बातको लेकर संदेह होनेकी सम्भावना होती है। 'व्रतोंमें यही श्रेष्ठ है तो केवल इसका ही आचरण करें, अन्यका आचरण क्यों करें?' सच तो यह है कि जो व्यक्ति जिस व्रतका आचरण करता है, उसके मनमें स्थिरता लानेके लिये और अटूट विश्वास उत्पन्न करनेके लिये इसका उल्लेख हुआ है। इसका यह अर्थ नहीं कि अन्य किसी व्रतका आचरण अनावश्यक है।

पूजा—उपासनामें **'सोऽहं'** भावकी प्रधानता होनेसे व्रतानुष्ठानमें 'प्राणप्रतिष्ठा' प्रारम्भमें होनी चाहिये। प्रायः सभी व्रतोंमें इसकी अवस्थिति है। मौनव्रत, उपवासव्रत आदिमें तो उपास्यमें एकाग्रचित्तताकी अपेक्षा है। जिस देवताकी उपासना करते हैं, उसकी जबतक उपासना होती है तबतक उसका आवाहन होता है और पूजाके अन्तमें उसका विसर्जन हो जाता है। इसलिये प्राणप्रतिष्ठाके समय प्रार्थना की जाती है—

स्वामिन् सर्व जगन्नाथ यावत्पूजावसानकम्।
तावत्त्वं प्रीतिभावेन बिम्बेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

यह विधि-विधानकी बात है। अन्यत्र तो पूजाका स्वरूप भिन्न है। जप-पारायण आदिके समयका क्रम पृथक् ही है।

व्रतोंमें एक और सामान्य बात है उपवास और जागरण, लेकिन सभी व्रतोंमें इसका विधान नहीं है। शिवरात्रि, ऋषिपञ्चमी आदि व्रतोंके उद्यापनमें इनकी विशेष महत्ता है। उपवास और जागरणसे कायाकी और मनकी शुद्धि होती है। व्रताचरण करनेवालेका बाह्याभ्यन्तर शुद्ध होना चाहिये। जिस दिन जागरण किया जाता है, उस दिन व्रताचरणके पूर्व क्या-क्या क्रियाएँ करनी चाहिये, इनका उल्लेख ग्रन्थोंमें हुआ है। जागरणके दूसरे दिन आचरणीय विषयोंका भी उल्लेख हुआ है। होम-हवन, ब्राह्मणभोजन आदि बातोंका ध्यान व्रतोद्यापनमें विशेषरूपसे होना चाहिये।

जिन व्रतोंमें उपवास और जागरणका विधान नहीं है, उनमें भोजनके रूपमें किन-किन वस्तुओंका सेवन करना चाहिये, इसका उल्लेख होता है। कुछ व्रतोंमें लवणवर्जित भोजनका विधान है, जैसे कन्याओंद्वारा आचरित मङ्गलागौरीव्रत।

व्रतसाङ्गताके लिये ब्राह्मण या सुवासिनीको अथवा दोनोंको वायन—उपायनदानका भी विधान है, जिसके आचरणके बिना व्रत करनेवालेको यथोक्त फलकी प्राप्ति नहीं होती। वस्तुतः दानकी अपार महिमा है। मनुष्य स्वभावतः लोभी है, अनेक प्रलोभनमें पड़नेवाला है। त्यागकी भावना उसमें कम होती है। जबतक इस बातकी

अनुभूति नहीं होती, तबतक वह सच्चे सुखको प्राप्त नहीं कर सकता। कहा गया है—

तपः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानमेव च।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥

कलियुगमें दानकी सर्वाधिक प्रशंसा है। भगवान्ने कहा है—

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

दानसे परमेश्वर सम्प्रीत होते हैं, इस रहस्यको जो जानता है वह दान करनेमें संकुचित बुद्धिका प्रदर्शन नहीं करता। '**सति विभवे**'—वैभव होते हुए भी जो कंजूसी करता है, वह कभी प्रशंसाका पात्र नहीं होता। इसलिये व्रतोंके विधानमें यह बताया गया है—'**वित्तशाठ्यं न कारयेत्।**' स्कन्दपुराणान्तर्गत कौमारिकाखण्डमें बताया गया है कि दरिद्रताकी शंकासे मूर्ख ही दान नहीं देता, जबकि प्राज्ञ तो अनेक जन्मोंके सुखरूप फलप्राप्तिके लिये दान देनेमें हिचकता नहीं—

मूर्खो हि न ददात्यर्थानिह दारिद्र्यशङ्कया।
प्राज्ञस्तु विसृजत्यर्थान् तयैव ननु शङ्कया॥

धनवान् होकर भी जो दान नहीं देता और जो अतपस्वी दरिद्र है, उन दोनोंके विषयमें कहा गया है कि उन दोनोंके कण्ठमें महाशिला बाँधकर जलमें छोड़ देना चाहिये—

धनवन्तमदातारं दरिद्रं वाऽतपस्विनम्।
द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम्॥

इस पृथ्वीकी रक्षा करनेवाले कौन हैं? इसकी स्थितिके कारण हैं—गौएँ, विप्र, वेद, सती स्त्रियाँ, सत्यवादी मनुष्य, लोभहीन और दानशील व्यक्ति। ये सात पृथ्वीधारक हैं—

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

दानका फल शाश्वतकी ओर ले चलनेवाला है। महाकवि भासके शब्दोंमें—

शिक्षा क्षयं गच्छति कालपर्ययात्
सुबद्धमूला निपतन्ति पादपाः।
जलं जलस्थानगतं च शुष्यति
हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति॥

वस्तुतः धनार्जनका मूल उद्देश्य धर्माचरण है। धर्मसे धर्मके लिये धनका अर्जन करना चाहिये। श्रीभगवत्पादजीने कहा है कि '**त्यागाय वित्तम्**' अर्थात् दान करनेके लिये धनका अर्जन होना चाहिये। जिनके पास धन नहीं है, उनमें उसका वितरण होना चाहिये। तीर्थाटनोंमें, श्राद्धादि कर्मोंमें भी दानकी परम आवश्यकता और महत्त्व स्वीकार किया गया है। दक्षिणाके बिना यज्ञ-श्राद्धादि कर्म सम्पूर्ण नहीं होते। जिस कर्ममें ब्राह्मणोंको भूरिदक्षिणा दी जाती है, वह कर्म सार्थक माना जाता है।

मनुष्यके इह और परके अभ्युदयको, श्रेयको दृष्टिमें रखकर मनीषियोंने नाना व्रतोंके विधानोंका उल्लेख किया है। व्रतोंके अनुष्ठानमें जब लौकिकताका पलड़ा भारी हो जाता है, तब श्रेयस्कर फलका स्वरूप क्षीण हो जाता है।

व्रतोंके लौकिक, आध्यात्मिक आदि कई भेद होते हैं। पुराणोंमें भक्तिके भेद विविध रूपोंमें वर्णित हैं। उनके साथ व्रतोंका सम्बन्ध अपने-आप स्पष्ट है। उदाहरणके लिये स्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डमें वाचिकी, कायिकी, लौकिकी और वैदिकी भक्तिके स्वरूपका विवरण इस प्रकार मिलता है—

वेदमन्त्रसमुच्चारैरविश्रान्तं दिवानिशम्।
जप्यैश्चारण्यकैश्चैव वाचिकी भक्तिरुच्यते॥
व्रतोपवासनियमैः पञ्चेन्द्रियजयेन च।
कायिकी भक्तिरुद्दिष्टा सर्वसिद्धिविधायिनी॥
पाद्यार्घ्याद्युपचारैश्च नृत्यवादित्रगीतकैः।
बलिभिर्जागरार्चाभिर्लौकिकी भक्तिरीरिता॥
ऋग्यजुःसामजप्यैश्च संहिताऽध्ययनादिभिः।
हविर्होमक्रियाभिश्च या भक्तिः सा तु वैदिकी॥

वाचिकीमें वेदमन्त्रोच्चारणके साथ जपकी प्रधानता; कायिकीमें व्रत-उपवास, नियमका पालन तथा इन्द्रियसंयमकी प्रधानता; लौकिकीमें अर्घ्य, पाद्य, उपचार, संगीत-नृत्यादि और बलि-जागरणकी प्रधानता एवं वैदिकीमें ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद-संहिताओंका अध्ययन, जप तथा होम (हवन)-की प्रधानता होती है।

उसीमें उल्लिखित व्रतोंके तीन भेद अतिशय महत्त्वके हैं—मानसव्रत, कायिकव्रत और वाचिकव्रत। मानसव्रतका आचरण परमात्माकी तुष्टिके लिये है, जिसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और संयम मुख्य हैं—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्पता।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि हरितुष्टये॥

एक समय भोजन करना, नक्तव्रतका आचरण करना, उपवास करना और अयाचितव्रत—ये सब तो कायिकव्रतके अन्तर्गत हैं—

एकभुक्तं तथा नक्तमुपवासमयाचितम्।
इत्येवं कायिकं पुंसां व्रतमुक्तं नरेश्वर॥

वेदाध्ययन, हरि-संकीर्तन, सत्यभाषण और अपैशुन्य—ये वाचिकव्रतके स्वरूप हैं—

वेदस्याध्ययनं विष्णोः कीर्तनं सत्यभाषणम्।
अपैशुन्यमिदं राजन् वाचिकं व्रतमुच्यते॥

पुरुषों और स्त्रियोंके लिये ये सब समान नहीं हो सकते। इसलिये स्त्रियोंके आचरणयोग्य व्रतोंके सम्बन्धमें बताया गया है कि उनको मनोवाक्कायसंयमपूर्वक व्रतोंके द्वारा पतिरूप जगत्पति दयानिधि भगवान् वासुदेवकी आराधना करनी चाहिये—

पतिरूपो हिताचारैर्मनोवाक्कायसंयमैः।
व्रतैराराध्यते स्त्रीभिर्वासुदेवो दयानिधिः॥

चाहे जप-तप करनेवाले हों, चाहे उपवास-व्रतका आचरण करनेवाले हों या तीर्थाटन आदि करनेवाले हों, उन सबके लिये जो एक परमावश्यक आचरणीय बात बतायी गयी है, वह है कोप या क्रोधका त्याग—'**तपस्यद्भिः सदा कार्यः कोपत्यागः फलान्वितः।**' क्योंकि कोपसे धर्महानि होती है। धर्मकी हानि होनेसे फलकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? सच तो यह है कि चित्तकी चञ्चलताको दूर करनेके लिये, मानसिक बल बढ़ानेके लिये उपवास, व्रत, जप, तप, पूजा-पाठ आदिका विधान है। लौकिक कामनाओंके लिये और यशःप्राप्तिके लिये ही उनकी सीमाका निर्धारण नहीं करना चाहिये, उससे परम लक्ष्यकी प्राप्ति नहीं होती। परम लक्ष्यकी प्राप्ति उन्हीं लोगोंको होती है जो ज्ञानी या तत्त्ववित् हैं। भगवान्ने कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥

साधनाके पथपर चलनेवाले सहस्रों लोगोंमें लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करनेवाले बिरले ही हैं, जिनमें कोई एक ही 'तत्त्वतः' भगवान्को जाननेवाला होता है। भगवान्को ज्ञानी अत्यन्त प्रिय हैं। आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—इनमें ज्ञानी ही नित्ययुक्त और एकभक्ति है। वह समाहितचित्त और ब्रह्मवित् है तथा परमात्माको प्राप्त करनेवाला है।

कहा गया है कि कोई भी कर्म करते हैं तो उसका दृष्टादृष्ट फल होता है। फलके विषयमें महर्षियोंने कहा है कि वे तीन रूपमें हैं—'**भूमौ सुखं स्वर्गभोगः कैवल्यमिति भेदतः।**' अर्थात् मर्त्यलोकमें सुख, स्वर्गका भोग और कैवल्य। इनमें मनुष्य जो भी पुण्यका काम करता है, उसके परिणामस्वरूप प्रथम दो फल अर्थात् इहमें सुख और स्वर्गभोग प्राप्त होते हैं; कर्मजन्य होनेके कारण इनका क्षय हो जाता है जबकि तीसरा फल कैवल्य कर्मजन्य न होनेके कारण शाश्वत है—

पुण्यक्षयेण क्षीयेत प्रायः प्राथमिकं द्वयम्।
क्षीयते न तृतीयं तु कर्मणामेव नाश्रयात्॥

पुराणोंमें तीर्थ, व्रत आदिकी महिमान्वित गाथाओंका उल्लेख होते हुए भी यह स्वीकार किया गया है कि ज्ञान सर्वोपरि है, उससे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। तीर्थाटन करनेवाले तथा पुण्यतीर्थोंमें निवास करनेवाले लोगोंके पुनर्जन्मकी कथाएँ भी पुराणोंमें आयी हैं। तब तो तीर्थाटनादिकी प्रशंसा व्यर्थ ही है क्या? नहीं; क्योंकि इनसे मन संयमित होता है और ज्ञानका पथ प्रशस्त होता है। वाराणसी-जैसे क्षेत्रोंमें रहनेवाले लोग सन्मार्गगामी हों तो शरीरपातके बिना स्वयं भगवान् शिवसे ज्ञानका उपदेश पाकर भवसागरसे तर जाते हैं। जिसके हाथ-पैर और मन सुसंयत हैं तथा जिसकी सभी क्रियाएँ निर्विकार हैं, वही तीर्थोंका फल पानेवाला है—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
निर्विकाराः क्रियाः सर्वाः स तीर्थफलमश्नुते॥

और जो व्यक्ति ध्यानसे पवित्र होकर, ज्ञानजलमें राग-द्वेषरूपी मलको दूर कर मानसतीर्थमें स्नान करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है अर्थात् जो ज्ञानी है वही परमपदका अधिकारी है—

ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्।

चित्तमें इस रहस्यकी अवधारणा कर कल्याणपथपर चलते हुए सब लोगोंको अनन्त सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

रहा है, कर रहा है और करता रहेगा; क्योंकि इस तिथिकी यह विजययात्रा मात्र लङ्का या रावणपर की जानेवाली राजनीतिक जयमात्र नहीं है, प्रत्युत सनातनधर्म एवं मानवीय मूल्योंकी संरक्षणात्मक पद्धतिका मूलभित्यात्मक शिलान्यास है और है लोभ, हृदयहीनता, मोह, द्रोह, मद, मत्सर एवं निर्दयताका निकन्दन। इस विजयके पश्चात् प्राप्त किसी भी राज्यपर श्रीरामने कभी स्वयं आधिपत्य नहीं रखा प्रत्युत उन्होंने रावणका राज्य विभीषण एवं वालीका राज्य उनके भ्राता सुग्रीवको लौटा दिया। राजनीतिकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिये अपने शत्रु रावणके पास कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मणको भेजा। गुणग्राहकता, परोपकार, एकनारीव्रत, ब्रह्मचर्य, लोकविनाशक अवाञ्छित तत्त्वोंका विनाश, अरण्य, गिरि तथा गह्वरोंकी अनेक खर-दूषणोंसे रक्षा, सामान्य साधनोंसे भी महत्, महत्तर तथा असम्भव साध्योंकी सिद्धि—'**क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे**' को सार्थकता प्रदान करने, पीड़ित, त्रस्त, आर्त एवं उपेक्षित जड़-चेतनको सुख, संतोष एवं महत्त्व प्रदान करने, '**चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि**' की शिक्षा देने, दुःखमें धैर्य धारण करने, '**धैर्यधना हि साधवः**' की मिसाल खड़ी करने एवं सुखके समय कभी न इतरानेके उपदेशार्थ आरम्भ हुई थी यह यात्रा और इन सिद्धान्तोंके परिपालनार्थ प्रतिवर्ष मनाया जाता है यह विजयादशमीका पवित्र पर्व। यह स्वर्णिम कालबिन्दु अशरणशरण, अकारणकरुण, करुणावरुणालय, आनन्दकन्द, दशरथानन्दवर्धन, अवधविहारी, भवभयहारी, आजानुबाहु, सत्यसन्ध, महोरस्क, भगवान् जानकीनाथ श्रीरामके पदचिह्नोंपर चलनेहेतु दृढ़व्रत लेने, कृतसंकल्प और कृतप्रयत्न होनेका शुभ मुहूर्त है। दशहराके नामसे लोकप्रख्यात यह वेला अकारण तथा निरपराध लोगोंको सतत रुलानेवाले रावणके अहंकाररूपात्मक दस सिरों और पौरुषकी दुरुपयोगिनी बीस भुजाओंके विनाशकी प्रतीक है। *'बरषा बिगत सरद रितु आई'* की संसूचिका है, गगनमण्डलकी निर्मलता तथा नूतन शस्यके कृषिहेतु आरम्भकी सूचना देनेवाले पक्षिगणके मुखसमूह (बलाहकके मुखर शब्दसमुच्चय)-से आकाशको मुखरित करनेवाले कार्तिकमासकी पूर्वभूमिका है। अनेक मतों, देशों एवं जातियोंमें यह नूतन वर्षका मुखद्वार है, राजनीतिविशारद राजपुरुषोंके लिये सीमा-विस्तारनिमित्तक प्रेरणादायी उत्सवकाल है, जगत्के लिये जीवनदायी प्रावृट्कालखण्डकी पूर्णताका आह्लाददिवस है और है दुर्दिनों, भेकों, तमाच्छन्न निशाओं, मच्छरों एवं नानाविध कीट-पतंगोंसे त्राण पाकर चन्द्रिकाचर्चित यामिनीके शुभागमनकी शुभ वेला।

विजयादशमीकी पूर्वपीठिकाका आरम्भ परमपावनी जगज्जननी जगदम्बिकाकी आराधनात्मक आश्विन शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे ही हो जाता है, जिसे शारदीय-नवरात्र भी कहते हैं। नौ दिनोंतक आराधना, अर्चना तथा नियमित सेवादि व्रतोंसे जन्य शक्ति-संचयका मानो उद्देश्य ही यही होता है कि उस शक्तिकी समुचित, संचित राशिके द्वारा सुमतिसे कुमति, सत्से असत्, सदाचारसे अनाचार-अत्याचार, प्रेमसे ईर्ष्या-द्वेष, मृदुतासे परुषता तथा करुणा एवं मैत्रीद्वारा निर्दयता और रिपुता (वैरभाव)-को सरलतासे जीता जा सके। इस समय समूची प्रकृतिमें आशा, उत्साह एवं स्वाभिमानकी उत्ताल तरंगें सतत तरंगायित होती देखी जा सकती हैं तभी तो शक्तिका उपासक आज '**अस्माकं क्षेमलाभाय जागर्ति जगदम्बिका। रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी। तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्॥ पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च। सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्॥ नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः।**'—प्रभृति मन्त्रोंसे सम्पूर्ण अम्बरको गुञ्जायमान कर देता है।

यज्ञोंमें सोमरसके पात्रोच्छलनको उत्सव कहते हैं। आज भी मानवजातिके हृदय किंवा प्रकृतिके क्रोडसे हर्षातिरेकके कारण आनन्दोल्लासका उच्छलन, उत्सवन होने लगता है और सचमुच वर्षा तथा शरद्के सन्धिबिन्दुके इस स्वर्णिम अवसरपर 'उत्सव', 'पर्व', 'यज्ञ', 'व्रत', 'उपवास', 'अर्चना' और 'विजयादशमी'-जैसे शब्दोंकी अर्थवत्ताएँ सुमूर्त हो उठती हैं। एक ओर बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेशका जनसम्मर्द भगवतीकी सपर्यामें लीन होता है, नृत्यकी झंकार, मृदंगोंके ताल, भक्तोंके मन्त्रोच्चार एवं हवनका सुगन्धिपूर्ण धूम—ये परिवेशको सात्त्विकताके रंगमें रँग देते हैं, वहीं लोकहितहेतु विष पीकर अपने कण्ठको

नीला कर लेनेवाले भगवान् शिवके रूप नीलकण्ठका दशहरेके पर्वपर दर्शन करनेमें सभी लोग पुण्यकी अनुभूति करते हैं; क्योंकि लोकपरम्पराके अनुसार आज भगवान् नीलकण्ठ दर्शनार्थियोंको स्वस्थ, सुखी तथा यथावत् रहनेका आशीर्वाद देते हैं। यही कारण है कि लोग सज-धजकर, स्वस्थ-प्रसन्न मनसे उनका दर्शन करते हैं। पश्चिम भारतकी जनता नवरात्रके समय विजयादशमीके पूर्वसे ही असंख्य दाण्डिया रासोंका आयोजन करके भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, वृषभानुदुलारी राधिका और अन्य गोपियोंद्वारा वृन्दावनमें यमुनातटपर कृत रासरंगके साथ स्वयंका तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं और आज २१वीं सदीके भारतमें भी मध्य निशामें हजारों नर-नारियाँ एक साथ भक्तिरसकी भागीरथीमें तद्भावभावित होकर अवगाहन करते हैं। इस समय नृत्य-गीतमें आबाल-वृद्ध सभी सम्मिलित होते हैं और इसीके साथ विजयादशमीका पर्व पूर्णताको प्राप्त करता है।

इस पर्वके पूर्व बरसातके कारण राजाओंकी यात्राएँ और चातुर्मास्यके कारण संन्यासियोंके आवागमन स्थगित होते हैं, किंतु आश्विनमासके शुक्लपक्षके आते-आते मार्ग सुगम हो जाते हैं। स्वच्छ अम्बरमें पवन-संयोगके कारण मेघ बलाहक पक्षीकी भाँति इतस्तत: उड़ने लगते हैं, ऋतुचक्र सुहावना हो जाता है, शस्यश्यामला धरा फलीभूत हो कृषकके गृहको समृद्ध बना देती है, मानवताको परहितहेतु विषपानतक करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है, नारीजातिमें मृदुता, स्नेहशीलता एवं समर्पणशीलताके बावजूद आवश्यकता पड़नेपर उसके शुम्भ-निशुम्भविदारिणी, महिषासुरमर्दिनी, महाकाली, रणचण्डीतकके रूपका सभीको बोध होता है और ज्ञात होता है उस समय भारतके जनमानसको उन श्रीरामके स्वरूपका, जो लोकाभिराम होते कितनी सीताएँ प्रतिदिन अग्निकी भेंट चढ़ रही हैं, जीवनमूल्यों, पशु-पक्षी, वन-उपवनों, पर्वत-सागर, आचार-विचार सभीपर खतरे मँडरा रहे हैं। वस्तुत: फिर गोस्वामीजीकी वह पंक्ति अन्य अर्थोंको संगति प्रदान करती नजर आ रही है, जिसमें कहा गया है—

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥

(रा०च०मा० ४।१४)

मनु, अत्रि, जमदग्नि, गीता, रामायण एवं वेदोंके देशमें द्रौपदियोंकी लज्जा दावँपर है। अत: आजके परिवेशमें इनपर विजयकी आवश्यकता है और इन्हीं अर्थोंमें विजयादशमी सार्थक है।

इस अवसरपर मात्र खुशियाँ मना लेनेसे इसका लक्ष्य पूर्ण नहीं होगा। परमार्थतस्तु इसके इतिहाससे प्रेरणा लेकर हमें अनेकविध जागतिक भेदोंको मिटाकर असद्वृत्तियोंपर विजय प्राप्त करनी होगी। अन्याय, गरीबी, अशिक्षा, भेदोपभेद, वैषम्य, अनैतिकता, चोरी, लूट, शोषण एवं हिंसाको समूलत: उन्मूलित करना होगा। आज सबसे बड़ा संकट भारतीय सनातन संस्कृति, संस्कृत भाषा, धर्म, संस्कारों, शास्त्रों और मानवीय मूल्योंपर है। पश्चिमी सभ्यताका नशा जमानेके सिर चढ़कर बोल रहा है। यूरोपियनपद्धति धीरे-धीरे हमें निगीर्ण करती जा रही है। ऐसेमें सर्वतोभावेन यदि हम अपने धर्मकी रक्षा नहीं कर सके तो हम अस्तित्वहीन हो जायँगे; क्योंकि धर्म उसीकी रक्षा करता है जो धर्मकी रक्षा करता है—'धर्मो रक्षति रक्षित:।'

व्रत-मीमांसा

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

(१) **व्रतस्वरूप**—'अथातो व्रतमीमाꣳसा' (बृहदारण्यकोपनिषद् १।५।२१)। ऋग्वेदमें २२० बार 'व्रत' शब्दका प्रयोग हुआ है। 'व्रत' शब्दकी निष्पत्ति वरणार्थक 'वृ' धातुसे निष्पन्न होती है। इससे 'वर' शब्द भी सिद्ध होता है। वरणकी सिद्धि संकल्प या इच्छासे होती है। अतएव 'वृ' का अर्थ संकल्प या इच्छा करना भी है। यह तथ्य **'वृणीत जेन्या'** (ऋ० १।११९।५), **'सरजारो न योषणां वरः'** (ऋ० ९।१०१।१४), **'सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा'** (ऋ० १०।८५।९), **'प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् सूर्यां सावित्रीं तस्यै सर्वे देवा वरा आगच्छन्'** (ऐ०ब्रा० ४।७) आदि वचनोंके अनुशीलनसे सिद्ध है।

समर्थ अधिकारीके संकल्पको विधि, आज्ञा, अनुशासन माननेकी प्रथा लोक-वेदसम्मत है।

इस प्रकार समर्थ सर्वेश्वरद्वारा जीवका वरण और जीवद्वारा सर्वेश्वरका वरण, वरणके लिये समर्पणकी भावना तथा प्रतिज्ञा और सर्वज्ञ शिवस्वरूप सर्वेश्वर अथवा सर्वेश्वरकल्प महर्षियोंके द्वारा निर्दिष्ट मार्गका अभ्युदय और निःश्रेयसकी भावनासे अनुगमन 'व्रत' है।

'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳ स्वाम्' (कठोपनिषद् १।२।२३)—'यह परमात्मा वरणीय गुणोंसे सम्पन्न जिस साधकका स्वयंवरा राजकन्याके तुल्य स्वयं वरण करता है, वही उसे प्राप्त कर पाता है न कि कोई अन्य अथवा वरणीय गुणोंसे सम्पन्न वह साधक जब परमात्माको ही एकमात्र वरेण्य समझकर उनका स्वयं वरण करता है, तब परमात्मा अपने स्वरूपको उसके प्रति अभिव्यक्त करते हैं। परंतु जो दुश्चरितसे विरत नहीं है, जिसकी कर्मेन्द्रियाँ शान्त नहीं हैं, ज्ञानेन्द्रियाँ समाहित नहीं हैं और जिसका मन भी विक्षिप्त ही है, वह वरणीय परमात्माका वरण कर उसे प्राप्त नहीं कर पाता—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥
(कठोपनिषद् १।२।२४)

शरणागत भक्तका वरण श्रीहरिका व्रत है। यदि शरणमें आया हुआ व्यक्ति संरक्षण न पाकर उस रक्षकके देखते-देखते नष्ट हो जाय तो वह उसके सारे पुण्यको अपने साथ लेते जाता है। इस प्रकार शरणागतकी रक्षा न करनेमें महान् दोष है। *शरणागतका परित्याग स्वर्ग और सुयशको मिटा देता है, बल और वीर्यका नाश कर देता है*—

विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः।
आनाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः॥
एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे।
अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम्॥
(वा०रा०, युद्ध० १८।३०-३१)

'भगवान् श्रीरामभद्रके शब्दोंमें उनका सनातन-व्रत इस प्रकार है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा०रा०, युद्ध० १८।३३)

'जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ'—ऐसा कहकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा सदाके लिये व्रत है।'

(२) **व्रतसिद्धि**—ऋग्वेदमें 'वृ' धातुसे व्युत्पन्न व्रत शब्दका प्रयोग विधि, आदेश, आज्ञापालन, कर्तव्य, धार्मिक और नैतिक व्यवहार, आचरण, उपासना, पवित्र और गम्भीर संकल्प तथा संयमादि कतिपय अर्थोंमें हुआ है।

'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' (ऋ० १०।९०।१६, १।१६४।५०)-में यज्ञको प्रथम (आदिम, मुख्य) धर्मन् (धर्म) कहा गया है। इससे उसकी व्रतरूपता सिद्ध होती है। ऋग्वेदमें प्रकृतिकी गति और अखिल ब्रह्माण्डमें नियमित सामान्य विधाके अर्थमें 'ऋत' शब्दका प्रयोग भी व्रतको ध्वनित करता है।

'द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा' (ऋ० ६।७०।१)-के अनुसार द्यावा (स्वर्ग) और पृथिवीको वरुण अपने धर्मन् (धर्म)-रूप व्रतमें स्थित रखते हैं। इसी तथ्यकी परिपुष्टि 'इन्द्राग्नी युवं सु नः सहन्ता

व्रतकी पूर्णता अर्थात् अवधि है। ब्राह्मीतनुकी समुपलब्धिरूपा सिद्धि व्रतका फल है। संकल्प, सद्भाव, संयम और संस्कार व्रतका स्वरूप है। महत्त्वबुद्धिरूपा आस्था व्रतमें हेतु है। आस्थाका मूल स्वस्थ परम्परा या माहात्म्यज्ञान है—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

(मनुस्मृति २।२८)

अभ्युदय और निःश्रेयसकी समुपलब्धि व्रतकी सिद्धि है। देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणकी शुद्धिके अमोघ प्रभावसे दिव्य भोग्य पदार्थोंकी अभिव्यक्ति, उनके उपभोगकी शक्ति और सेवनसे सुलभ सुखानुभूति, उससे भी विरक्ति और परमेश्वरके परिमार्गणमें प्रगाढ़ अभिरुचिका नाम अभ्युदय है। परमेश्वरमें पराप्रीति और आत्मबुद्धिकी अभिव्यक्तिसे निर्द्वन्द्व आत्मस्थितिका नाम निःश्रेयस है।

'अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति।' (छान्दोग्य० ३।१४।१) निःसंदेह शास्त्रसम्मत सैद्धान्तिक निश्चय (अध्यवसाय)-के अनुरूप ही पुरुष इस देहमें या देहान्तरमें फल प्राप्त करता है।

इस प्रकार यज्ञ, दान और तप आदिका मूल अध्यवसाय (सुनिश्चय)-रूप व्रत ही है। अतः कर्मरूप ब्रह्मचर्यादि व्रत जहाँ व्रत हैं, वहाँ क्रतु (सुनिश्चय)-मूलक सभी कर्म व्रत ही हैं।

व्रतकी सुपुष्टता और प्रबलताके लिये विद्या, श्रद्धा और उपनिषत्-रूप योगसंज्ञक मनोयोग तथा उपासना अपेक्षित है—

'यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति॥' (छान्दोग्य० १।१।१०)

'तं यथा यथोपासते तथैव भवति।' (मुद्गलो०)

(४) सुखोपलब्धि—प्राणिमात्रकी प्रवृत्ति-निवृत्तिका नियामक सुखकी भावना और दुःखका भय है। अतएव व्रतादिके अनुष्ठानके मूलमें सन्निहित सुखोपलब्धिकी भावनाका रहस्य हृदयङ्गम करना आवश्यक है। यह जगत् आनन्दस्वरूप परमात्माका कार्य है। परमेश्वर ही इसके स्रष्टारूप निमित्तकारण हैं। अतएव विषय-सेवनसे आनन्दोपलब्धि स्वाभाविक है। यद्यपि निमित्तकारणकी कार्यमें अनुगति अमान्य है तथापि आनन्द-विभोर चित्रकार, मूर्तिकारके द्वारा निर्मित चित्र और मूर्तिमें आनन्दाभिव्यञ्जकता अनुभवसिद्ध है। आनन्दमयी माँके द्वारा निर्मित भोजनमें आनन्दप्रदता सर्वानुभवसिद्ध है। इसी प्रकार आनन्दस्वरूप परमात्माकी सृष्टिमें आनन्दप्रदता सिद्ध है। यही कारण है कि विषय आनन्दस्वरूप न होते हुए भी आनन्द-स्वरूप स्रष्टाके स्वरूप-वैभवके बलपर आनन्दप्रद सिद्ध होता है।

परमात्मा जगत्का न केवल निमित्त, अपितु उपादानकारण भी है, अतएव विषयोपभोगसे आनन्दोपलब्धि स्वाभाविक है।

आनन्दोपलब्धिमें वक्ष्यमाण तीसरा हेतु भी प्रबल है। भोक्ता जीव स्वयं भी आनन्दरूप ही है। शब्दादि विषयोंके भेदसे ज्ञानमें भेदकी प्रतीति ही होती है न कि सिद्धि। जाग्रदादि अवस्थाभेदसे भी ज्ञानमें केवल भेदकी प्रतीति होती है न कि प्राप्ति। अतएव ज्ञान एक है। ज्ञान घटादिके तुल्य ज्ञेय नहीं है तथा धर्मादिके तुल्य परोक्ष नहीं है अर्थात् अवेद्य होता हुआ अपरोक्ष है। अतएव स्वप्रकाश है। ज्ञान नित्य होता हुआ स्वप्रकाश अर्थात् सच्चित् होनेसे आत्मा है। अहङ्कारादि अनित्य और भास्य होनेसे अनात्मा हैं। मायासंज्ञक अज्ञान सुषुप्ति और प्रलयादिमें अवशिष्ट रहनेपर भी भास्य होनेसे अनात्मा है। ज्ञान आत्मा होनेसे परमप्रेमास्पद है। परमप्रेमास्पद होनेसे परमानन्दस्वरूप है अर्थात् परम सुखरूप है—**'सुखमस्यात्मनो रूपम्'** (श्रीमद्भा० ७।१३।२६)।

सुखरूप आत्माका किसी अन्यके लिये या अपने लिये भोग्य होना असम्भव है। बिना आनन्दानुभूतिके जीवन नीरस और कर्कश है। अतएव निजमुखदर्शनकी विधाके तुल्य निर्मल, निश्चल चित्तरूपी दर्पणमें आत्मसुखाभिव्यक्ति सम्भव है।

विषयोंमें सुखाभिव्यञ्जकताका चतुर्थ हेतु भोक्ताकी भोग्यके प्रति सुखप्रदताकी भावना भी है।

मनःशुद्धि और समाधिके लिये व्रतोपासना अपेक्षित है—

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः समाधिः॥

(श्रीमद्भा० ११।२३।४६)

व्यवहारदशामें भी मनःशुद्धि और समाधि अपेक्षित है। कारण यह है कि इनके बिना सुखोपलब्धि असम्भव है। जब इच्छित वस्तुकी निवृत्ति होती है, तब तद्विषयक

कामनाकी निवृत्ति हो जाती है। कामनाकी निवृत्तिसे चित्त निर्मल और निश्चल हो जाता है। निर्मल और निश्चल चित्तपर सुखरूप आत्माकी स्फूर्ति ही सुखानुभूतिका रहस्य है। इस रहस्यका अवबोध ही अभ्युदयकी सिद्धि है।

अब व्रतादिसुलभ वैराग्यसे निःश्रेयसके प्रकारका प्रतिपादन किया जाता है—

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते॥

(गीता ५। २१)

कर्मासक्ति, फलासक्ति और अहङ्कृतिको शिथिल कर, धृत्युत्साहपूर्वक भगवदर्थ स्वकर्मानुष्ठानरूप व्रतचर्यासे बाह्य विषयोंसे अनासक्तिरूप वैराग्यका उदय होता है। अनात्मवस्तुरूप बाह्य विषयोंसे विरक्ति (अनासक्ति) होनेपर विषयसंस्पर्शके बिना ही मनःशुद्धि और समाधिके बलपर सुखोपलब्धि सम्भव है। सुखरूप आत्माकी निर्मल और निश्चल चित्तपर अभिव्यक्ति ही सुखानुभूति है। सुखस्वरूप आत्माकी ब्रह्मरूपता और प्रकृति-प्रपञ्च निरपेक्ष अद्वितीयताके बोधसे प्रतिबन्धशून्य अक्षय सुखकी समुपलब्धि सम्भव है। बाह्य स्पर्शसे अनासक्ति स्थूलाध्यासकी निवृत्ति है। अन्तःकरणमें विषयालम्बनके बिना ही सुखोपलब्धि सूक्ष्माध्यासकी निवृत्ति है। **'अध्यासोऽविद्यया कृतः'** (श्रीमद्भा० ११। २६। १८)-के अनुसार अध्यास अविद्याकृत है। अद्वयात्मरूपसे स्थिति कारणाध्यास (अध्यासकारण अविद्यामें तादात्म्य संसर्ग)-की निवृत्ति है।

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात् तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥

(अष्टाङ्गहृदय, सूत्रस्थान २। २०)

अर्थात् सभी प्राणियोंकी सभी प्रवृत्तियाँ सुखके लिये होती हैं। सुख बिना धर्मके नहीं होता, अतः धर्मपरायण होना चाहिये।

व्रतोद्देश्य, व्रत-रक्षा और व्रतप्रकार

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्द सरस्वतीजी महाराज)

(१) व्रतोद्देश्य—देश, काल और वस्तुका तादात्म्य है। वैशेषिक पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, आत्मा, मन, दिक् और कालको द्रव्य मानते हैं। ऐसी स्थितिमें उक्त नौ द्रव्य वस्तु हैं। दिक् और कालको पृथक् कर देनेपर शेष पाँच भूत, मन और आत्मा—ये सात द्रव्य वस्तु सिद्ध होते हैं।

दिक् और कालके तथा अन्य वस्तुओंके योगसे पृथ्वी आदि पञ्चभूत, आत्मा और मनमें तथा पार्थिव, वारुण, तैजस और वायव्य पदार्थोंमें उत्कर्ष और अपकर्ष भी होता है।

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥

(रा०च०मा० १। ७ क)

देश और कालमें सत्त्व, रजस् और तमस्-भेदसे, सात्त्विक, राजस और तामस व्यक्तिके योगसे उत्कर्ष और अपकर्ष होता है। यही कारण है कि यज्ञ, दान, तप आदि कृत्योंके निर्वाहके लिये उत्कृष्ट देश और कालका चयन आवश्यक होता है। मलिन वस्तुके संसर्गसे देश और काल भी प्रभावित माना जाता है। इस प्रकार देश और कालकी दिव्यताका प्रभाव कर्म, वस्तु और व्यक्तिपर तथा कर्म, वस्तु और व्यक्तिका प्रभाव देश और कालपर पड़ता है। अभिप्राय यह है कि शुद्ध देश और दिव्य कालमें अनुष्ठित यज्ञादि कर्म प्रशस्त होता है। दिव्य देश और दिव्य कालमें उत्पन्न और स्थित वस्तु तथा व्यक्तिका उत्कर्ष माना जाता है। इसी प्रकार सात्त्विक कर्म, वस्तु और व्यक्तिके योगसे देश और कालका उत्कर्ष माना जाता है—

परिग्रहाच्च साधूनां पृथिव्याश्चैव तेजसा।
अतीव पुण्यभागास्ते सलिलस्य च तेजसा॥

(महा०, अनुशासनपर्व १०८। १८)

'पृथ्वीके कुछ भाग सत्पुरुषोंके निवाससे तथा स्वयं पृथ्वी और जलके तेजसे अत्यन्त पवित्र माने गये हैं।'

'अमुक क्षेत्रमें वर्षोंतक भगवन्नाम-संकीर्तन, ब्रह्मभोज तथा यज्ञ, दान और तप आदि सम्पन्न हुए हैं। अमुक क्षेत्र (उत्कलप्रदेश)-में श्रीहरि (जगन्नाथ महाप्रभु) प्रतिष्ठित हैं,

अमुक क्षेत्र (गया)-में प्रभु-पादचिह्न अङ्कित है। अमुक क्षेत्र (बंगाल)-में गङ्गाका सागरसे संगम है। भाद्र कृष्ण अष्टमीको मध्यरात्रिमें श्रीकृष्णचन्द्रका प्रादुर्भाव हुआ। एक कल्पके अनुसार कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी (नरक-चतुर्दशी)-में श्रीहनुमान्‌का अवतार हुआ।' ऐसा कहनेपर चर्चित (अप्रशस्त) देश और कालका भी उत्कर्ष सिद्ध होता है।

कालविशेष और देशविशेषके योगसे वस्तुविशेषका उत्कर्ष सुनिश्चित है। गङ्गाजी सर्वत्र दिव्य हैं। परंतु हरिद्वारस्थित ब्रह्मकुण्डरूप देश (क्षेत्र)-का तथा पूर्ण कुम्भरूप कालका योग सुलभ होनेपर उनमें स्नानादिका विशेष महत्त्व मान्य है।

उत्कर्ष गुण है। अपकर्ष दोष है। गुण-दोषकी मीमांसा अधिकारानुसार सुनिश्चित है। अपने अधिकारके अनुसार सन्ध्या, गायत्री आदि मन्त्र-जप, वेदादिपाठ, अग्निहोत्रादिरूप धर्ममें दृढ आस्थाका नाम गुण है। इसके विपरीत अनधिकार चेष्टा दोष है—

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः।
विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः॥

(श्रीमद्भा० ११।२१।२)

आत्मा निर्गुण, निर्दोष और सम है। ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त प्राणियोंके शरीर पाञ्चभौतिक हैं। ऐसी स्थितिमें शास्त्रसिद्ध शरीरगत वर्णविभाग, आश्रमविभाग, वस्तुगत शुद्धि और अशुद्धि तथा गुण-दोषके निरूपणका अभिप्राय प्रकृतिप्रवाह-प्राप्त अनन्त भेदोंका सदुपयोग, अपनी उच्छृङ्खल प्रवृत्तियोंका निरोध तथा समस्त भेदभूमियोंका धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थचतुष्टयके आलम्बनसे अतिक्रमण है—

भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्च धातवः।
आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः॥
वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि।
धातुषूद्धव कल्प्यन्त एतेषां स्वार्थसिद्धये॥
देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम।
गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम्॥

(श्रीमद्भा० ११।२१।५—७)

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशरूप पञ्चभूत ही ब्रह्मासे लेकर पर्वत, वृक्षपर्यन्त सभी प्राणियोंके शरीरोंके मूल कारण हैं। इस प्रकार वे सब शरीरकी दृष्टिसे समान हैं। सब शरीरोंमें आत्मा भी समान ही है। फिर भी वेदप्रतिष्ठित वर्ण, आश्रमादिगत नाम-रूप-विभागका अभिप्राय यह है कि प्राणी उच्छृङ्खल प्रवृत्तियोंको संयमित कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप स्वार्थकी सिद्धि कर सके अर्थात् कृतार्थ हो सके। देश, काल, फल, निमित्त, अधिकारी और धान्य आदि वस्तुओंमें गुण-दोषोंका विधान भी नियमबद्धताके अभिप्रायसे ही है।

शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु।
द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ॥
धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ।
दर्शितोऽयं मयाऽऽचारो धर्ममुद्वहतां धुरम्॥

(श्रीमद्भा० ११।२१।३-४)

वस्तुओंके समान होनेपर भी शुद्धि-अशुद्धि, गुण-दोष और शुभ-अशुभादिका जो विधान किया जाता है, उसका अभिप्राय यह है कि पदार्थका ठीक-ठीक निरीक्षण-परीक्षण हो सके और उनमें योग्य-अयोग्यविषयक संदेह उत्पन्न करके स्वाभाविक प्रवृत्तियोंको संयमित किया जा सके। व्यक्ति उनके द्वारा धर्मका सम्पादन कर सके, सामाजिक व्यवहारका समुचित रीतिसे सम्पादन कर सके और अपने व्यक्तिगत जीवनका निर्वाह भी व्यवस्थित ढंगसे कर सके। इससे यह लाभ है कि मनुष्य अपनी वासनात्मिका सहज प्रवृत्तियोंके द्वारा इनके जालमें न फँसकर शास्त्रानुसार अपने जीवनको नियमित और मनको वशीभूत कर लेता है। इस आचारका उपदेश सर्वेश्वरके द्वारा ही धर्मके रहस्यको न समझनेवाले कर्मजड बने हुए व्यक्तियोंके कल्याणके लिये मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें किया गया है।

ध्यान रहे, परमात्मासे अधिष्ठित प्रकृतिप्रदत्त कोटि-कोटि भेद व्यवहारके साधक ही हैं, न कि बाधक। उदाहरणार्थ पृथिवी, पानी, प्रकाश, पवन और आकाशरूप पञ्चभूतोंमें परस्पर भेद व्यवहारका साधक ही है, न कि बाधक। उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज, जरायुज, मनसिज और स्वयम्भू प्राणियोंमें परस्परभेद व्यवहारका साधक ही है, न कि बाधक। स्त्री-पुरुषकी स्वरलहरीमें तथा आकृति और प्रकृतिमें प्राप्त भेद भी व्यवहारका साधक ही है, न कि

बाधक। प्रत्येक व्यक्तिकी आकृति-प्रकृति और स्वरलहरीमें प्राप्त भेद भी व्यवहारका साधक ही है, न कि बाधक। शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें निसर्गसिद्ध भेद भी व्यवहारका साधक ही है, न कि बाधक। मार्गमें दायें या बायें चलने, सभामें बैठने और उठने तथा वय, बीमारी, बल आदिके अनुसार खान-पानमें भेद भी भूषण ही है, न कि दूषण। परिवार, प्रान्त, राष्ट्र और विश्वहितमें बनाये गये संविधान भी हितप्रद ही हैं, न कि अहितप्रद। अधिकार और कर्तव्यकी दृष्टिसे प्राप्त भेद भी सुखद ही हैं, न कि दुःखद। अविवेकमूलक अदूरदर्शिता और राग-द्वेषपूर्वक प्रदत्त भेद अवश्य ही विघातक हैं।

वेदादिशास्त्रमूलक व्रत, उपवासादिपरक विधि-विधानरूप भेदका आलम्बन लिये बिना भेदका सदुपयोग और समस्त भेदभूमियोंका अतिक्रमण सम्भव नहीं है। अतएव अप्रामाणिक अभेदवादियोंको यह जाननेकी आवश्यकता है—

पञ्चभूतशरीराणां सर्वेषां सदृशात्मनाम्॥
लोकधर्मे च धर्मे च विशेषकरणं कृतम्।
यथैकत्वं पुनर्यान्ति प्राणिनस्तत्र विस्तरः॥

(महा०, अनुशासन० १६४। ११-१२)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादिके शरीर पञ्चभूतोंसे ही विनिर्मित हैं। आत्मा भी सब शरीरोंमें एकरूप ही है। फिर भी उनके लोकधर्म और विशेषधर्ममें विभिन्नता है। इसका उद्देश्य यही है कि सभी अपने-अपने धर्मका पालन करते हुए पुनः एकत्वको प्राप्त हों। इसका वेदादिशास्त्रोंमें चाहिये कि तीर्थसेवन, व्रत और उपवासके द्वारा जीवनको निष्पाप बनाते हुए जीवनकालमें ही मोक्षलाभके लिये कृतसंकल्प हो।

बोधोपलब्धिमें प्रतिबन्धक पापक्षयके अनन्तर मुमुक्षा और तत्त्वज्ञानसे मोक्ष सम्भव है—

ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः।
यथाऽऽदर्शतले प्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि॥

(महा०, शान्ति० २०४। ८)

'पापकर्मोंका क्षय हो जानेपर ही पुरुषको ज्ञान होता है। जिस प्रकार दर्पणके स्वच्छ हो जानेपर उसमें मुख देखा जा सकता है, उसी प्रकार शुद्ध अन्तःकरणमें आत्माका साक्षात्कार होता है।'

(२) **व्रतरक्षा**—संकल्प, दृष्टि, न्यायोचितवचन, स्पर्श और संयोगसे व्रतकी रक्षा होती है। अतएव पापमय संकल्पादिका त्याग और पवित्र संकल्पादिके सेवनसे व्रतकी रक्षा आवश्यक है—

संकल्पाद् दर्शनाच्चैव तद्युक्तवचनादपि।
संस्पर्शादथ संयोगात् पञ्चधा रक्षितं व्रतम्॥

(महा०, अनुशा० अ० १४५)

(३) **व्रतप्रकार**—गुरुरूपी तीर्थसे परमात्माका ज्ञान प्राप्त होता है। अतः उससे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है। ज्ञानतीर्थ सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। ब्रह्मतीर्थ सनातन है—

धैर्यरूप कुण्ड और सत्यरूप अगाध, निर्मल तथा शुद्ध जलसे पूर्ण मानस-तीर्थमें परमात्माका आश्रय लेकर स्नान करना चाहिये। मानस-तीर्थमें स्नान करनेसे निष्कामता, सरलता, सत्य, मृदुता, अहिंसा, अक्रूरता, दम (इन्द्रियसंयम) और शम (मनोनिग्रह)-की समुपलब्धि सुनिश्चित है—

अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिह्रदे।
स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्त्वमालम्ब्य शाश्वतम्॥
तीर्थशौचमनर्थित्वमार्जवं सत्यमार्दवम्।
अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं दमः शमः॥

(महा०, अनुशासन० १०८। ३-४)

प्रज्ञान (विवेक), निष्कामता, मनकी प्रसन्नता—शरीरके शोधक भाव हैं—

प्रज्ञानं शौचमेवेह शरीरस्य विशेषतः।
तथा निष्किञ्चनत्वं च मनसश्च प्रसन्नता॥

(महा०, अनुशासन० १०८। ११)

शुचिता सर्वोत्तम व्रत है। यह चार प्रकारकी मानी गयी है—आचारशुद्धि, मनःशुद्धि, तीर्थशुद्धि और ज्ञानशुद्धि। इनमें ज्ञानसे प्राप्त होनेवाली शुद्धि सर्वोत्कृष्ट है—

वृत्तशौचं मनःशौचं तीर्थशौचमतः परम्।
ज्ञानोत्पन्नं च यच्छौचं तच्छौचं परमं स्मृतम्॥

(महा०, अनुशासन० १०८। १२)

ध्यान रहे, जैसे क्रियाहीन बल अथवा बलहीन क्रियासे इस जगत्‌में कार्यसिद्धि सम्भव नहीं है, बल और क्रिया दोनोंसे संयुक्त होनेपर ही कार्यसिद्धि सम्भव है, वैसे ही शरीरशुद्धि और तीर्थशुद्धिसे सम्पन्न पुरुष ही शुद्ध होकर परमात्मप्राप्तिरूप सिद्धिलाभ करता है—

यथा बलं क्रियाहीनं क्रिया वा बलवर्जिता।
नेह साधयते कार्यं समायुक्ता तु सिध्यति॥
एवं शरीरशौचेन तीर्थशौचेन चान्वितः।
शुचिः सिद्धिमवाप्नोति द्विविधं शौचमुत्तमम्॥

(महा०, अनुशासन० १०८। २०-२१)

जो लोग तीर्थव्रती होते हैं, वे तीर्थोंका नाम लेकर, तीर्थोंमें स्नानकर तथा उनमें पितरोंका तर्पण कर अपने पापोंको धो डालते हैं, वे बड़े सुखसे स्वर्गमें जाते हैं—

कीर्तनाच्चैव तीर्थस्य स्नानाच्च पितृतर्पणात्।
धुनन्ति पापं तीर्थेषु ते प्रयान्ति सुखं दिवम्॥

(महा०, अनुशासन० १०८। १७)

इस प्रकार पृथ्वीपर और मनमें भी अनेक पुण्यमय तीर्थ हैं। जो इन दोनों प्रकारके तीर्थोंमें स्नानका व्रत लेता है, वह शीघ्र ही परमात्मप्राप्तिरूप सिद्धि प्राप्त करता है—

मनसश्च पृथिव्याश्च पुण्यास्तीर्थास्तथापरे।
उभयोरेव यः स्नायात् स सिद्धिं शीघ्रमाप्नुयात्॥

(महा०, अनुशासन० १०८। १९)

श्रीहरिके भजनका व्रत सर्वोत्कृष्ट व्रत है। उसीसे जीवनकी सार्थकता है। श्रीहरिमें मनोयोगकी योग्यताके लिये अन्य सब व्रत हैं—

कृष्णव्रताः कृष्णमनुस्मरन्तो
रात्रौ च कृष्णं पुनरुत्थिता ये।
ते कृष्णदेहाः प्रविशन्ति कृष्ण-
माज्यं यथा मन्त्रहुतं हुताशे॥

(महा०, शान्ति० ४७। ९३)
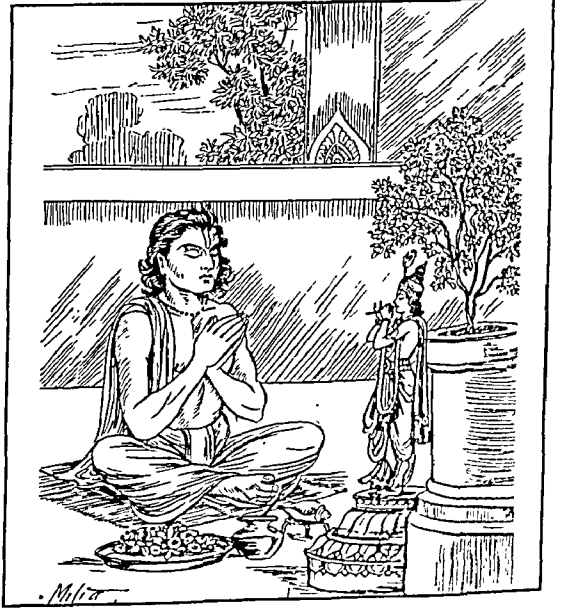
'जिन्होंने श्रीकृष्णभजनका ही व्रत ले रखा है, जो श्रीकृष्णका निरन्तर स्मरण करते हुए ही रातको सोते हैं और उन्हींका स्मरण करते हुए सवेरे उठते हैं, वे श्रीकृष्णरूप होकर उनमें इस तरह मिल जाते हैं, जैसे मन्त्र पढ़कर हवन किया हुआ घी अग्निमें मिल जाता है।'

श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायमें प्रतिपादित व्रतपर्वोत्सव

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज)

हमारे श्रुति-स्मृति-पुराण-तन्त्रादि संस्कृत वाङ्मय समग्र शास्त्रों एवं वाणीग्रन्थोंमें वर्षभर किंवा विशिष्ट अवसरोंपर आनेवाले व्रत, पर्व, उत्सव और महोत्सवोंका जो सुन्दरतम विवेचनपूर्ण वर्णन मिलता है वह हमारे अनादि वैदिक सनातन संस्कृतिका पावन स्वरूप है। व्रत, पर्व और उत्सवोंसे अतुलनीय पुण्यकी प्राप्ति एवं असीम परमानन्दानुभूति होती है तथा साधक, भगवज्जन भगवद्भावापत्तिरूप मोक्षकी उपलब्धि करते हैं, जो मानव-जीवनका सर्वान्तिम लक्ष्य है। संस्कृत वाङ्मय—शास्त्रोंमें व्रत-पर्वोत्सवोंका इतना विस्तृत परिवर्णन मिलता है कि धीरजन यावज्जीवन भी उसके पर्यवसानतक नहीं पहुँच पाते। वस्तुतः उनका लोकोत्तर दिव्य माहात्म्य है। उनकी अनिर्वचनीय महिमा प्रख्यापित है। केवल श्रीनारदपाञ्चरात्रका ही मनन करें जिसमें एक लक्षसे भी अधिक संस्कृतके छन्द समाहित हैं। इसी प्रकार सम्मोहनतन्त्र, बृहद् गौतमीय तन्त्र, वेद, पुराणादि समस्त धर्मग्रन्थोंमें व्रतोत्सवपर्वोंकी अपरिमित विवेचना वर्णित है। ऐसे ही पुरुषार्थचिन्तामणिके व्रतखण्ड आदि ग्रन्थ तो केवल व्रतोंका ही निरूपण करते हैं।

इसी प्रकार श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायके प्रवर्तक सुदर्शन-चक्रावतार आद्याचार्य जगद्गुरु श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यश्रीजीने एवं आपके परम्परानुवर्ती पूर्वाचार्योंने सम्प्रदायके मूर्द्धन्य शीर्षस्थ संतों, मनीषिप्रवरों एवं परम भागवत रसिकवरेण्य महापुरुषोंने उत्सव-महोत्सवोंका, विविध व्रतोंका, अनेकानेक पर्वो-महापर्वोका संस्कृतसाहित्य, व्रजसाहित्य, हिन्दीसाहित्य किंवा प्रान्तीय भाषामें जिस विधासे विश्लेषण किया है, वह वस्तुतः नितान्तया उत्तम पुरुषोंद्वारा हृदयमें अवधारणीय है। प्रस्तुत प्रसंगमें यहाँ श्रीनिम्बार्क-सिद्धान्तानुसार कतिपय उद्धरणोंके साथ संक्षेपतः विवेचन प्रस्तुत है, जिसका श्रद्धालु भगवज्जन अवश्य ही अनुशीलन कर व्रत-पर्वोत्सवोंके उच्चतम माहात्म्यसे अवगत होकर परम लाभान्वित होंगे।

श्रीनिम्बार्कभगवान्ने श्रीभगवज्जयन्तियाँ, आचार्य-पाटोत्सव, एकादशीव्रत आदिमें कपालवेध-सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है। यथा—

उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे।
निम्बार्को भगवानेष वाञ्छितार्थप्रदायकः॥

(भविष्यपुराण)

चतुर्विध वेधोंमें स्पर्श, सङ्ग, शल्य और वेध इनमें प्रथम स्पर्श-वेधको ही श्रीनिम्बार्कभगवान्ने मान्यता प्रदान की है। आपके सिद्धान्तमें शास्त्रसम्मत स्पर्शवेध ही प्रमुख है। आपने समस्त श्रीभगवज्जयन्तियों एवं सभी एकादशी-व्रतोंमें तिथिका उदयकाल अर्द्धरात्रि अर्थात् ४५ घटीके ऊपर ही स्वीकार किया है। आपश्रीके सिद्धान्तमें पलमात्र भी यदि अर्द्धरात्रि ४५ घटीके उपरान्त हो तो एकादशीका किया जानेवाला व्रत एकादशीमें न करके द्वादशीमें ही किया जाना चाहिये। यथा—

अर्द्धरात्रमतिक्रम्य दशमी दृश्यते यदि।
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्॥

(कूर्मपुराण)

अर्द्धरात्रिके अतिक्रमण अर्थात् उसके उल्लङ्घनके अनन्तर ४५ घटी पश्चात् यदि दशमी तिथि आ जाय तो ऐसी अवस्थामें एकादशीके द्वितीय दिवस द्वादशीमें व्रत करे, एकादशी तिथिके दिन व्रत न करे।

इसका निष्कर्ष यह है कि ४५ घटीके उपरान्त दशमी आ जाय तो अग्रिम तिथि एकादशीसे उसका स्पर्श हो जाता है अतएव उसे स्पर्शवेध नामसे निर्दिष्ट किया है। एकादशीके दो भेद हैं—विद्धा तथा शुद्धा। इनमें भी पूर्वविद्धा तथा परविद्धारूप व्यवहृत है। पूर्वविद्धा तिथिको एकादशीव्रत वर्जित है। परंतु परविद्धा अर्थात् आगामी द्वादशीविद्धा एकादशी शुद्धा है, अतः परविद्धा एकादशीव्रत करनेका शास्त्रीय विधान है—'पूर्वविद्धातिथिस्त्यागो वैष्णवस्य हि लक्षणम्।' श्रीनारदपाञ्चरात्रके वचनानुसार उक्त विधान सुस्पष्ट है। एवंविध श्रीभगवज्जयन्तियों एवं आचार्य-पाटोत्सवोंमें यही सिद्धान्त मान्य है।

एकादशी शुद्ध है और द्वादशी महाद्वादशीके रूपमें यदि आ जाय तो ऐसी अवस्थामें एकादशीव्रत एवं महाद्वादशीव्रत द्विदिवसीय व्रत करे। दो दिन व्रत करनेमें समर्थ न हो तो ऐसी स्थितिमें एकादशीव्रतका त्याग किया जा सकता है, किंतु महाद्वादशीव्रतको अवश्य ही करे, इसका त्याग कदापि न हो, यही शास्त्रीय विधान है। यथा—

एकादशी भवेत्पूर्णा परतो द्वादशी भवेत्।
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्॥
पर्वाच्युतजयावृद्धौ ईश दुर्गान्तकक्षये।
शुद्धाप्येकादशी त्याज्या द्वादश्यां समुपोषणम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

यदि एकादशी पूर्ण है, शुद्ध है, पूर्व तिथिसे विद्धा नहीं है किंतु यदि महाद्वादशीयोग आ जाय तब शुद्ध एकादशीको छोड़कर महाद्वादशीमें ही व्रत करे।

पर्व (पूर्णिमा-अमावास्या), अच्युत (द्वादशी), जया (त्रयोदशी)—इन तिथियोंकी जब वृद्धि हो जाय तथा ईश (अष्टमी), दुर्गा (नवमी), अन्तक (दशमी) इनमेंसे किसी भी तिथिका क्षय होनेपर शुद्ध एकादशीके व्रतका त्याग कर द्वादशीके व्रतका पालन करे।

अष्टविध महाद्वादशीका शास्त्रोंमें इस प्रकार वर्णन उपदिष्ट है—जया, विजया, जयन्ती, पापनाशिनी, उन्मीलिनी, वंजुलिनी, त्रिस्पृशा तथा पक्षवर्धिनी। द्वादश मासमें किसी भी मासकी शुक्लपक्षीय द्वादशी पुनर्वसु नक्षत्र-समन्वित होनेपर जया, रोहिणी नक्षत्रपर जयन्ती, पुष्य नक्षत्रके योगसे पापनाशिनी एवं श्रवण नक्षत्र यदि हो तब शुक्ल या कृष्णपक्षकी महाद्वादशी विजया कहलाती है। ऐसे ही एकादशी पूर्ण हो तथा अग्रिम दिवसकी घटियोंमें एकादशी यदि हो तब वह उन्मीलिनी महाद्वादशी कही जाती है। इसी प्रकार एकादशी एवं द्वादशी पूर्ण हो और यदि त्रयोदशी भी कुछ अंशोंमें शेष हो उसे वंजुलिनी महाद्वादशी कहते हैं। द्वादशीके क्षय होनेपर रात्रिके अन्तमें त्रयोदशी यदि हो तो वह त्रिस्पृशा महाद्वादशीके नामसे प्रसिद्ध है। ऐसे ही अमावास्या एवं पूर्णिमाकी वृद्धि हो जाय तो उसे पक्षवर्धिनी महाद्वादशी कहा जाता है। इन उपर्युक्त योगोंके आनेपर शुद्ध एकादशीका व्रत महाद्वादशीमें करे। यही शास्त्रीय विवेचन श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यश्रीजीद्वारा प्रतिपादित है।

पूर्वोक्त कपालवेधसिद्धान्त-विषयक जिसे श्रीनिम्बार्क-भगवान्ने प्रतिपादित किया तत्परक कतिपय अवधेय वचन अवधारणीय हैं—

यथा—अष्टाध्यायी सूत्रकार महर्षि पाणिनिने अपने अष्टाध्यायीके **'अनद्यतने लुट्'**—इस सूत्रमें गत रात्रिके द्वादश वादनकालसे आगामी रात्रिके द्वादश वादनकालको अद्यतन-काल (वर्तमानकाल) अर्थात् आजका दिवस निर्दिष्ट किया है। इससे पूर्व एवं पर कालको अनद्यतन बताया है।

अतः कपालवेधसिद्धान्त विविध दृष्टियोंसे नितान्तरूपेण परम ग्राह्य है। एतत्परक पुराणादि शास्त्रोंके बहुविध वचन हैं। यहाँ विस्तारभयसे अत्यन्त संक्षेपमें सारस्वरूप निर्दिष्ट किया गया है। श्रीभगवज्जयन्तियों, आचार्य-पाटोत्सवादिमें प्रस्तुत कपालवेधसिद्धान्त ही अभीष्ट है।

उत्सव-वर्णन

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यके सिद्धान्तानुसार शास्त्रीय विधि-प्रतिपादित वर्षभरके उत्सवोंका यहाँ संक्षेपमें दिग्दर्शनमात्र है। यथा—

श्रीहंसं सनत्कुमारं च देवर्षिं तदनुव्रतम्।
श्रीनिम्बार्कं नमस्कृत्य मासकृत्यं प्रतन्यते॥

श्रीहंसभगवान्, महर्षिवर्य श्रीसनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, देवर्षिप्रवर श्रीनारदजी, श्रीनिम्बार्कभगवान्को प्रणति समर्पण करके मासकृत्य अर्थात् प्रतिमासके द्वादशमासीय (एकवर्षीय) विभिन्न उत्सव-महोत्सवोंका निरूपण किया जा रहा है।

चैत्रमासीयोत्सव

(क) दोलोत्सव—चैत्रमासके प्रारम्भमें प्रतिपदाको किंवा चैत्रमासके कृष्णपक्षमें किसी भी तिथिको दोलोत्सवका शास्त्रीय विधान है। इसका सुन्दर विवरण मननीय है—**'दोलासंस्थं तु ये कृष्णं पश्यन्ति मधुमाधवे। प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ॥'** इस दोलोत्सवमें श्रीवृन्दावननिकुञ्जविहारी युगलकिशोर भगवान् श्रीराधामाधवको सुरभित विविध कुसुममाल्यसुशोभित मणिमुक्ताजटित कनकमय परम मनोज्ञ दोल (अर्थात् सुसज्जित झूला)-पर विराजित करके स्वर्ण छत्र, चँवर, मोर्छल, हेममण्डित

छड़ी आदि नानाविध उपकरणोंके साथ झुलाये। अबीर, गुलाल, पुष्पगुच्छों एवं सुगन्धित रंगभरी पिचकारी, फ़ौआरोंसे श्रीयुगलप्रियाप्रियतमको जय-जय-ध्वनिपूर्वक सराबोर करते हुए इस मङ्गल वासन्ती-दोलोत्सवका अनुपम रसास्वादन करे। मृदङ्ग-वीणा-मंजीरादि मङ्गल-मधुर वाद्योंके साथ लयपूर्वक कलकण्ठसे अपने आराध्यके इस दोलोत्सवका कमनीय दर्शन कर परमानन्दका अनुभव करना ही जीवनकी सार्थकता है।

(ख) प्रपादान—दोलोत्सवके सम्पन्नानन्तर चैत्र कृष्णपक्षसे ही प्रपादान अर्थात् पिपासुको जलदानका बड़ा महत्त्व है, इसी आशयका श्रीनिम्बार्कसिद्धान्त-पन्थानुयायी विद्वद्वर पं० श्रीशुकसुधीसंग्रहीत स्वधर्मामृतसिन्धुग्रन्थमें भविष्यपुराणका यह वचन उद्धृत है—

अतीते फाल्गुने मासि प्राप्ते चैत्रमहोत्सवे।
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते प्रपादानं समारभेत्॥

फाल्गुनमासके पूर्ण होनेपर और चैत्रमासीय महोत्सवके पवित्र अवसरपर शास्त्रवेत्ता उत्तमश्लोक धीरपुरुषोंने यह निर्णय दिया है कि इस समय प्रपादान अर्थात् प्याऊद्वारा आगन्तुकोंकी जलसे सेवा करे, जिसकी महिमा शास्त्रोंमें सम्यक्-रूपसे परिवर्णित हुई है।

(ग) श्रीरामप्राकट्योत्सव—चैत्रमासके शुक्लपक्षमें श्रीरामप्राकट्योत्सवका (श्रीरामनवमी महोत्सवका) सुन्दर वर्णन श्रीनिम्बार्कसिद्धान्तमें इस प्रकार प्रदर्शित है—

चैत्रमासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः।
पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा॥

(अगस्त्यसंहिता)

चैत्रशुक्लनवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः।
पुनर्वस्वृक्षयुक्तायां मध्याह्ने कौशले भृगौ॥

(महाभारत, वनपर्व)

चैत्र शुक्ल नवमी तिथिको स्वयं सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि ही श्रीरामरूपमें अवतरित हुए, अतएव पुनर्वसु नक्षत्रयुक्त यह तिथि समस्त अभिलषित पवित्र मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है।

चैत्र शुक्ल नवमी भृगुवारको अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक सर्वान्तरात्मा श्रीहरि ही भगवान् श्रीरामके दिव्य स्वरूपसे पुनर्वसु नक्षत्रपरिपूर्ण मध्याह्नकालके पावन अवसरपर कौशल क्षेत्रमें अवतीर्ण हुए।

भगवान् श्रीरामका प्राकट्यकाल मध्याह्नका है। श्रीरामजयन्ती-महोत्सवपर भगवान्का पञ्चामृताभिषेक, पीतपोशाकधारण, पुष्पहारार्पण, नवयवाङ्कुर-दूर्वाङ्कुरार्पण तथा तुलसीदलसमर्पण, पञ्जीरी एवं विशेष मधुर पदार्थसमर्पण, साष्टाङ्ग प्रणाम, पञ्चामृत-प्रसादवितरण, यथाविधि व्रतपालन आदि-आदि करके विधिपूर्वक इस महोत्सवको सोल्लास सम्पन्न करे।

(घ) पुष्पदोलोत्सव—चैत्र शुक्ल एकादशी तिथिको निम्बार्कसिद्धान्तानुसार सुगन्धित पुष्पोंद्वारा सुसज्जित दोला (झूला)-में युगलकिशोर श्यामाश्याम भगवान् श्रीराधाकृष्णको विराजित करके भावपूर्वक झुलाये। इसी आशयके ये शास्त्रीय वचन अवधेय हैं—

चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः।
आन्दोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः॥
सर्वपुण्यफलावाप्तिर्निमिषैकेन जायते।
दोलासंस्थं तु ये कृष्णं पश्यन्ति मधुमाधवे॥

चैत्रमासकी शुक्लपक्षीय एकादशीको सलक्ष्मी अर्थात् श्रीराधाप्रियाजीसहित सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको सुन्दर महोत्सवपूर्वक झुलाये। यह भगवदुपासक भक्तोंका परम कर्तव्य है। चैत्रमासकी पूर्वकथित तिथिके दिन दोला (झूला)-पर विराजमान भगवान् श्रीराधाकृष्णके जो मनोहर दर्शन करते हैं, उन्हें क्षणमात्रमें अनन्त पुण्योंकी—दिव्य फलकी प्राप्ति होती है।

वैशाखमासीय विविधोत्सव

वैशाखमासकी बड़ी महिमा है। इस मासको माधव-मास भी कहा जाता है। वैशाखमासमें अनेक उत्सव, भगवज्जयन्तियाँ एवं पुनीत पर्व आते हैं। वैशाखके प्रारम्भमें चैत्र पूर्णिमासे वैशाख पूर्णिमापर्यन्त विधिपूर्वक किसी पवित्र तीर्थस्थानपर किंवा पवित्र नदी, सरोवर या कूपपर ही नियमितरूपसे सूर्योदयसे पूर्व नक्षत्रमण्डलके साक्ष्यमें स्नान, आचमन तथा मार्जन करना अत्यन्त पुण्यप्रद है। वैशाखके पावन मासमें जलदान, अन्नदान, वस्त्रदान, छत्रदान, घटदान, व्यजनदान आदिका विशेष महत्त्व है।

(क) अक्षय तृतीया-महोत्सव—वैशाखमासमें अक्षय तृतीया-महोत्सव आता है, यह युगादि तिथि है। यह परम पर्वके रूपमें मान्य है। भगवान् परशुराम-जयन्तीका यह मङ्गल दिवस है। इस दिन देवमन्दिरोंमें श्रीप्रभुका शीतलोपचार कर उन्हें शीतल भोग, शीतल मधुर जल, सुगन्धित पुष्प, शीतल फल, सतुआ-समर्पित करना चाहिये। व्यजनसेवा कर खस-खस, केसर, केवड़ा, कर्पूरमिश्रित शीतल चन्दन श्रीहरिके सर्वाङ्गमें कलाकृतिपूर्ण ढंगसे चर्चित करना चाहिये। श्रीप्रभुके मुकुट, कुण्डल, कङ्कण, हारप्रभृति (सभी चन्दनहीके) समस्त आभूषण तथा विविध अलङ्कार समर्पित करके शीतल सुरभित सुन्दर मधुर पदार्थ, मधुर शीतल फल, सितायुक्त दधि-दुग्ध आदि पेय-द्रव्य निवेदित करे। भगवान्‌के सम्मुख हरित नव तरुपल्लवोंसे मण्डप-सिंहासनको सजाये, फ़ौआरोंकी मञ्जुल फुहारसे समस्त मन्दिरपरिसरको सुवासित कर महोत्सव मनाये।

(ख) श्रीनृसिंहजयन्ती-महोत्सव—वैशाख शुक्ल चतुर्दशीको श्रीनृसिंहजयन्ती-महोत्सवको बड़े ही उत्साह-उल्लासपूर्वक सम्पन्न करना चाहिये। इस दिन व्रतपालनका शास्त्रीय विधान भी है। मन्दिरमें श्रीभगवद्विग्रहस्वरूपका पञ्चामृताभिषेक कर एवं मधुर पदार्थ निवेदन करके मङ्गल-बधाई पदोंका गान करे। नृसिंहभक्त प्रह्लादके लीलाभिनय भी किये जानेकी प्राचीन परम्परा है।

वैशाख शुक्ल चतुर्दशीको भगवान् श्रीनृसिंहने अपने अनन्य भक्तराज श्रीप्रह्लादपर अनुग्रह करके अवतार धारण किया और दुर्दान्त दैत्यराज हिरण्यकशिपुका संहार किया। इसी चतुर्दशीको भगवान् श्रीनृसिंहजयन्तीका महोत्सव बड़े समारोहपूर्वक मनाया जाता है, श्रीनिम्बार्कसिद्धान्तानुसार इसके अनेक शास्त्रीय वचन प्रसिद्ध हैं, यहाँ केवल एक ही वचन समुद्धृत है—

श्रीनृसिंह महोग्रस्त्वं दयां कुरु ममोपरि।
अद्याहं ते विधास्यामि व्रतं निर्विघ्नतां नय॥

भगवान् श्रीनृसिंहसे भक्तप्रवर श्रीप्रह्लाद प्रार्थना करते हैं—हे नृसिंहभगवान्! आपका यह महान् उग्रस्वरूप है, आप मुझपर दया करें। मैं आजसे आपके प्राकट्यके मङ्गलव्रतका पालन करूँगा। आप कृपाकर इसे निर्विघ्न- रूपसे पूर्ण करें।

भगवान् श्रीनृसिंहके अवतारका वर्णन श्रीनृसिंहपुराणमें इस रूपमें मिलता है—

वैशाखस्य चतुर्दश्यां सोमवारेऽनिलर्क्षके।
अवतारो नृसिंहस्य प्रदोषसमये द्विजाः॥

हे विप्रो! वैशाख शुक्ल चतुर्दशी सोमवार स्वाती नक्षत्र एवं प्रदोषकालमें भगवान् श्रीनृसिंहका अवतार हुआ।

उपर्युक्त सभी महोत्सवोंमें मङ्गल मधुर सरस वाद्योंके साथ कलित कण्ठसे इन महोत्सवोंका सुभग वर्णन अति आह्लादकारी होता है। मेषराशिपर सूर्यके आनेपर सम्पूर्ण वैशाखमासमें प्रभातकालमें नियमपूर्वक नित्य स्नानका संकल्प करे और मधुसूदनभगवान् श्रीकृष्णके प्रसन्नार्थ प्रार्थना करे—

वैशाखं सकलं मासं मेषसङ्क्रमणे रवौ।
प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदन॥

(विष्णुस्मृति, पद्मपुराण)

संक्षेपतः वैशाखमासीय उत्सवोंके ये शास्त्रीय वचन मननीय हैं—

वैशाखे विधिना स्नानं दानं नद्यादिके बहिः।
हविष्यं ब्रह्मचर्यं च भूशय्यानियमस्थितिः॥
व्रतं दानं दमं देवमधुसूदनपूजनम्।
अपि जन्मसहस्रोत्थं पापं हरति दारुणम्॥
त्रिसन्ध्यं पूजयेदीशं भक्तितो मधुसूदनम्।
साक्षाद्विमलया लक्ष्म्या समुपेतं समाहितः॥
न माधवसमो मासो न माधवसमो विभुः।
पोतो विदुरिताम्भोधिमज्जमानजनस्य यः॥
दत्तं जप्तं हुतं स्नातं यद्भक्त्या मासि माधवे।
तदक्षयं भवेद्भूप पुण्यं माधववल्लभे॥

(पद्मपुराण)

वैशाखमासमें पवित्र पुण्यसलिला उत्तम नदियोंमें किंवा सरोवर, कूप आदि बहिर्भागमें विधिपूर्वक स्नान, दान, हवन और भूशयन तथा ब्रह्मचर्यव्रतादि नियमोंका परिपालन हो। व्रत, दान, इन्द्रियनिग्रहपूर्वक मधुसूदनभगवान् श्रीकृष्णका पूजन करे, जिससे सहस्रजन्मार्जित अति दारुण पापोंका भी इस मासमें परिशमन हो जाता है। इस मासमें त्रिसन्ध्य अर्थात् प्रातः, मध्याह्न एवं सायं वेलामें भक्तिपूर्वक लक्ष्मी अर्थात् श्रीराधासहित भगवान् मधुसूदन सर्वेश्वर श्रीकृष्णका ध्यानयुक्त होकर अर्चन-वन्दन करे। परम पवित्र वैशाखमास

जैसा अन्य मास नहीं—इसके जैसा कोई अन्य मास व्यापक नहीं। भवार्णव पार करनेके लिये यह मास नौकारूप है। हे राजन्! श्रीहरिके प्रिय वैशाखमासमें भक्तिके साथ किया हुआ दान, जप, हवन तथा स्नान अक्षय हो जाता है।

त्रेतायुगं तृतीयायां शुक्लायां मासि माधवे।
अक्षया सोच्यते लोके तृतीया हरिवल्लभा॥
वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ।
निशायां प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः॥
स्वोच्चगैः षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहुसंस्थिते।
रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो हरिः स्वयम्॥
वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयाऽक्षयसंज्ञका।
तत्र मां लेपयेद्भक्तो लेपनैरपि शोभनैः॥

वैशाख शुक्लपक्षकी तृतीया अक्षय तृतीया तथा त्रेतायुगादि नामसे सुप्रसिद्ध है, यह अक्षय तृतीया इस लोकमें सर्वेश्वर श्रीहरिको अत्यन्त प्रिय है। वैशाख शुक्लपक्षकी अक्षय तृतीयाको पुनर्वसु नक्षत्रमें रात्रिके समय प्रथम भागमें भगवान् श्रीपरशुरामका अवतार हुआ। जिनके छः ग्रह उच्चके एवं मिथुनराशिमें राहु स्थित है। माता श्रीरेणुकाके पवित्र गर्भसे साक्षात् श्रीहरिने ही श्रीपरशुरामरूपसे अवतार धारण किया। वैशाख शुक्ल तृतीया अक्षय तृतीया नामसे व्यवहृत है। इस महान् पर्वके दिन भावुक भक्त मुझ हरिके मङ्गल-विग्रहपर सुन्दर चन्दनका लेप करे।

वस्तुतः माधव अर्थात् यह वैशाखमास अतिशय पावन है। इस मासमें विविध उत्सव, पर्व, भगवद्भागवत-जयन्तियाँ आती हैं। इस पुण्य मासमें श्रीमद्भागवतके प्रथम प्रवक्ता श्रीशुकदेव मुनिकी पवित्र जयन्ती, श्रीगङ्गासप्तमी, श्रीजानकीनवमी, श्रीनृसिंहजयन्ती, वैशाखी अमावास्या, वैशाख पूर्णिमा आदि-आदि विशिष्ट उत्सव, जयन्तियाँ, पर्व भी बड़े उत्साहके साथ सम्पन्न होते हैं।

ज्येष्ठमासीय उत्सव-पर्व

ज्येष्ठमासमें सूर्यका तीव्र ताप रहता है, ऐसे अवसरपर भगवान्‌की शीतलोपचारपूर्वक अर्चनाका विधान श्रीनिम्बार्कमतानुसार यहाँ संक्षेपमें दिया जा रहा है—

ज्येष्ठे मासि तु सम्पूर्णे जलमध्ये हरिं श्रिया।
सेवयोपचरेन्नित्यमुपचारैरुपार्जितम् ॥

(श्रीसनत्कुमारसंहिता)

पूरे ज्येष्ठमासमें भगवान् श्रीराधाकृष्णको जलमें विराजित कर विविधोपचारपूर्वक उनकी नियमित रूपसे अर्चा करे।

स्वर्णपात्रेऽथवा रौप्ये ताम्रे वा मृण्मयेऽपि वा।
तोयस्थं योऽर्चयेद्देवं शालग्रामसमुद्भवम्॥
शुक्रशुचिगते काले येऽर्चयिष्यन्ति केशवम्।
जलस्थं विविधैः पुष्पैर्मुच्यन्ते यमयातनात्॥

(गरुडपुराण)

स्वर्णपात्रमें किंवा रजत (चाँदी)-के पात्रमें या ताम्रपात्रमें अथवा मृत्तिकाके पात्रमें जलमध्यस्थ भगवान्‌को जो शालग्राम-स्वरूपमें सुशोभित हैं, उनकी भावनाके साथ अर्चना करे। ज्येष्ठमासमें जो भक्त जलमध्यस्थ भगवान् श्रीकेशवकी विविध सुगन्धित पुष्पोंसे अर्चना करते हैं, वे यम-यातनासे सर्वथा मुक्ति पाते हैं।

(क) गङ्गादशमी—ज्येष्ठमासमें गङ्गादशमीका परम गरिमामय महान् पर्व होता है। इस पावन पर्वविषयक श्रीनिम्बार्कशास्त्रसम्मत वचन मननीय हैं—

दशम्यां शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठे मासि कुजेऽहनि।
अवतीर्णा ह्यधः स्वर्गाद्धस्तर्क्षे च सरिद्वरा॥

(वराहपुराण)

ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी पावन दशमी तिथिको पुण्यसलिला भगवती भागीरथी श्रीगङ्गाजीका हस्त नक्षत्रमें स्वर्गसे भारतकी इस पवित्र धरापर अवतार हुआ।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता।
हरते दश पापानि तस्माद् दशहरा स्मृता॥

(ब्रह्मपुराण)

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः।
व्यतीपाते गरानन्दे कन्याचन्द्रे वृषे रवौ॥
दशयोगे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(स्कन्दपुराण)

ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षमें हस्त नक्षत्रयुक्त दशमी दशविध पापोंका संहरण करती है, इसीलिये इसे गङ्गादशहराके नामसे सम्बोधित करते हैं। ज्येष्ठमासीय शुक्लपक्षकी दशमीको बुध, हस्त, व्यतीपात, गर (करण), आनन्द (योग), कन्यामें चन्द्र, वृषमें रवि—इस रूपमें दस प्रकारके योग वर्तमान हों तो ऐसे पवित्र कालमें श्रीगङ्गाजीमें स्नान करनेसे सम्पूर्ण पापराशिसे स्नानार्थी पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

(ख) निर्जला एकादशी—ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षमें ही निर्जला एकादशी पड़ती है जो भीमसेनी एकादशी नामसे परम विख्यात है, इस महनीय एकादशीके पुनीत अवसरपर विधिपूर्वक निर्जलव्रतके साथ इन शास्त्रीय वचनानुसार शर्करामिश्रित निर्मल पवित्र जलप्रपूरित सुन्दर घटका विप्रश्रेष्ठको दान करनेका परम पुण्य विहित है—

ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ या शुक्लैकादशी भवेत्।
निर्जलां तामुपोष्यात्र जलकुम्भान् सशर्करान्।
प्रदाय विप्रमुख्येभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ॥

(स्कन्दपुराण)

हे नृपश्रेष्ठ! ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी एकादशी जो निर्जला एकादशीके नामसे प्रसिद्ध है। इस तिथिको निर्जल व्रत करे एवं शर्करायुत मधुर शीतल जलसे भरे हुए सुन्दर कलश कर्मनिष्ठ उत्तम ब्राह्मणको दान करे। ऐसे दानको करनेसे भावुक भक्त भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य सन्निधिको प्राप्त कर परमानन्द-परिपूर्ण होता है।

आषाढ़मासके उत्सव-पर्व

(क) कदम्बपुष्पार्चना—आषाढ़मासके पवित्र अवसरपर प्रारम्भ कालमें कदम्बपुष्पार्चनाका बड़ा ही महत्त्व है। भगवान् श्रीराधाकृष्णकी सुरभि-परिपूर्ण कदम्बादि पुष्पोंद्वारा अर्चनाके अनुपम असीम फल-प्राप्तिका सुन्दरतम वर्णन श्रीभगवन्निम्बार्कसिद्धान्तमण्डित स्वधर्मामृतसिन्धु, औदुम्बरसंहिता तथा श्रीनिम्बार्कव्रत-निर्णय आदि ग्रन्थोंमें विस्तृतरूपसे हुआ है, जिसका यहाँ संक्षेपमें उद्धरण अवलोकनीय है—

कदम्बकुसुमैर्हृद्यैर्येऽर्चयन्ति जनार्दनम्।
तेषां यमालयो नैव न जायन्ते कुयोनिषु॥

(व्रतपञ्चक)

कदम्ब-तरुके मञ्जुल मधुर सुगन्धित पुष्पोंसे जो भावुक भक्त जनार्दन युगलकिशोर भगवान् श्रीराधाकृष्णका सुन्दर पूजन करते हैं, वे यमालय तथा कुत्सित योनियोंसे सर्वथा दूर रहते हैं अर्थात् श्रीहरिकी दिव्य कृपाके भाजन होते हैं।

(ख) रथयात्रा-महोत्सव—आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाके शुभ दिवसपर रथयात्रा-महोत्सवका परम आनन्दप्रद पर्व शास्त्रोंमें परिवर्णित हुआ है, जो सर्वदा अपने हृदयमें अवधारणीय है।

आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता।
तस्यां रथे समारोप्य रामं मां भद्रया सह।
यात्रोत्सवं प्रवर्त्याथ प्रीणयेत द्विजान् बहून्॥

(स्कन्दपुराण)

आषाढ़ शुक्लपक्षकी पुष्य नक्षत्रयुक्त द्वितीयाके दिन भगवान् श्रीहरिको सुन्दर सुसज्जित रथपर विराजमान करके रथयात्रा-महोत्सव सम्पन्न करे। इस अवसरपर विप्रोंको श्रीभगवत्प्रसाद, दक्षिणा आदिसे परितृप्त करना चाहिये।

एकादश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान् हरिः।
भुजङ्गशयने शेते क्षीरार्णवजले सदा॥

(ब्रह्मपुराण)

आषाढ़ शुक्ल एकादशीसे भगवान् श्रीहरि क्षीरसागरके अगाध जलमें शेषशायीके रूपमें सदा शयन करते हैं।

द्वादश्यामेव क्षीराब्धिशयनोत्सव ईर्यते।
राधाकृष्णौ तदा सम्यक् सम्पूज्याहूय वैष्णवान्॥

(वायुपुराण)

द्वादशीके दिनसे क्षीरसमुद्रमें सम्पूजित भगवान् श्रीराधाकृष्ण शयन करते हैं। यह शयनोत्सव वैष्णवजनोंको बुलाकर सम्यक्-रूपसे पूजन कर सम्पन्न करे।

श्रीभविष्योत्तरपुराणमें भगवान् व्यासकी उक्ति है—

मम जन्मदिने सम्यक् पूजनीयः प्रयत्नतः।
आषाढशुक्लपक्षे तु पूर्णिमायां गुरौ तथा॥
पूजनीयो विशेषेण वस्त्राभरणधेनुभिः।
फलपुष्पादिना सम्यग्रत्नकाञ्चनभोजनैः॥
दक्षिणाभिः सुपुष्टाभिर्मत्स्वरूपं प्रपूजयेत्।
एवं कृते त्वया विप्र मत्स्वरूपस्य दर्शनम्॥

आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमाको भगवान् वेदव्यासजीकी जन्मतिथि है, अतएव इसे व्यासपूर्णिमा एवं गुरुपूर्णिमा कहते हैं। उस परम पावन दिवसको अतीव श्रद्धाभावपूर्वक श्रीगुरुचरणाम्बुजोंकी अर्चना की जानी चाहिये। सुन्दर वस्त्र, आभूषण, गोदान, फल, पुष्प, विविध रत्न, स्वर्णमुद्रादि समर्पणपूर्वक श्रीगुरुपूजनका मङ्गल-विधान श्रीगुरुपूर्णिमा-पर्वपर करना शिष्यवर्गका परम धर्म है। भगवान् व्यास स्वयं संकेत कर रहे हैं कि श्रीगुरुपूर्णिमाको उत्तमोत्तम दक्षिणासे मेरे स्वरूपमें ही श्रीगुरुचरणोंका पूजन करना

अभीष्ट है, ऐसा करनेपर श्रीगुरुदेवमें मेरे ही स्वरूपका सुभग दर्शन समझो।

श्रावण तथा भाद्रपदमासके उत्सव

श्रावण-भाद्रपदमासीय पावस-ऋतुमें अनेक उत्सव, महोत्सव, व्रत तथा पर्व आ जाते हैं यथा—नागपञ्चमी, हरियाली अमावास्या, हरियाली तीज, पवित्रा एकादशी, रक्षाबन्धन, श्रावणी उपाकर्म, श्रीकृष्णजन्माष्टमी-महोत्सव, नन्द-महोत्सव, कुशाग्रहणी अमावास्या, श्रीगणेश-जयन्ती, ऋषिपञ्चमी, श्रीबलदेव-जयन्ती, श्रीराधाष्टमीमहोत्सव, श्रीमद्भागवत-जयन्ती, जलझूलनी, एकादशीव्रतमहोत्सव, श्रीवामन-जयन्ती, अनन्तचतुर्दशी, पूर्णिमाव्रतादि। इनमें श्रीकृष्णजन्माष्टमी, नन्द-महोत्सव, श्रीराधाष्टमीमहोत्सवकी सुन्दर छवि अन्त:करणमें विशेष अवधारणीय है—

य एव भगवान् विष्णुर्देवक्यां वसुदेवतः।
जातः कंसवधार्थं हि तद्दिनं मङ्गलायनम्॥
यस्यां सनातनः साक्षात्पुराणः पुरुषोत्तमः।
अवतीर्णः क्षितौ सैषा मुक्तदेति किमद्भुतम्॥
अष्टमी रोहिणीयुक्ता चार्धरात्रे यदा भवेत्।
उपोष्य तां तिथिं विद्वान् कोटियज्ञफलं लभेत्॥

(ब्रह्माण्डपुराण)

इसी पावन भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको जगन्नियन्ता, जगत्पालक भगवान् विष्णु ही श्रीकृष्णरूपसे श्रीवसुदेवके यहाँ कंसकारागृहमें माता श्रीदेवकीकी उदरदरीसे कंसादि असुरोंके संहारहेतु इस भूतलपर अवतीर्ण हुए। यह प्राकट्यदिवस परम मङ्गलस्वरूप है। अत: यह तिथि मुक्तिप्रदायक है। जब रोहिणीनक्षत्रयुक्त अष्टमी तिथि अर्धरात्रमें हो तो इस तिथिको शास्त्रविद् विद्वानोंको, भगवद्भक्तोंको व्रत अर्थात् उपवास अवश्य ही करना चाहिये। यह व्रत करोड़ों यज्ञोंके समान फलप्रदाता है।

जयन्त्यामुपवासश्च महापातकनाशनः।
सर्वैः कार्यो महाभक्त्या पूजनीयश्च केशवः॥

(भविष्यपुराण, विष्णुधर्मोत्तर०)

श्रीकृष्णजयन्ती-महोत्सवके दिन किया गया व्रत महापातकका विनाश कर देता है। अत: भक्ति और श्रद्धापूर्वक सभीको इस व्रतका पालन करते हुए भगवान् श्रीकृष्णका विविधोपचारपूर्वक पूजन करना चाहिये।

भाद्रे मासि सिते पक्षे या पवित्राऽष्टमी तिथिः।
राधाजन्मोत्सवं तत्र कारयेत्कृष्णसेवकः॥

(भविष्योत्तरपुराण)

भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी जो परम पवित्र तिथि अष्टमी है, उस तिथिको श्रीराधाजयन्ती-महोत्सव श्रीराधाकृष्णके अनन्य उपासक रसिक भगवज्जनोंको बड़े उल्लासपूर्वक सम्पन्न करना चाहिये। मध्याह्नके समय वृश्चिक लग्न, अभिजित् मुहूर्तमें हरिप्रिया श्रीराधासर्वेश्वरीका आविर्भाव हुआ।

आश्विनमासके पर्व

आश्विनमासके पूरे कृष्णपक्षमें श्राद्धकर्मका विधान है और शुक्लपक्षमें श्रीसरस्वतीशयन, विजयादशमी, शरत्पूर्णिमाको महारासोत्सव तथा इसी मासमें साँझी-महोत्सव होता है, जिसका उल्लेख वाणी-ग्रन्थोंमें विस्तृतरूपसे है।

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

परात्पर परब्रह्म रसब्रह्म वृन्दावनविहारी निकुञ्जेश्वर सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने कोटि-कोटि व्रजाङ्गनाओंके मङ्गल मनोरथोंको पूर्ण करनेहेतु शरदोत्फुल्लमल्लिका दिव्य रात्रिमें अपनी योगमाया अर्थात् परमाह्लादिनी सर्वेश्वरी श्रीराधाप्रियाका समाश्रय लेकर वेणुनिनादसे समस्त व्रजबालाओंका स्मरण करके उनके साथ महारासरसका उपक्रम किया, जिसका श्रीमद्भागवतादि शास्त्रोंमें विपुलरूपसे वर्णन हुआ है।

कार्तिकमासके उत्सव

कार्तिकमासके कृष्णपक्ष एवं शुक्लपक्षमें विविध रूपसे उत्सव, व्रत एवं पर्व आदिका अद्भुत संगम है। पूरे कार्तिकमासमें कार्तिक-स्नानकी बड़ी महिमा है। इस माहमें भगवान् श्रीधन्वन्तरिका जयन्ती-महोत्सव, दीपावलीके मङ्गलमय अवसरपर दीपदान (दीपज्योति), श्रीमहालक्ष्मी-पूजन, श्रीगोवर्धनपूजा, अन्नकूट-महोत्सव, श्रीगोपाष्टमी महापर्व, देवप्रबोधिनी एकादशी, श्रीतुलसी-विवाह, कार्तिकपूर्णिमाको पुष्करादि तीर्थोंमें स्नान, श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यजयन्ती-महोत्सव आदिका अनिर्वचनीय आनन्दोल्लास रहता है।

मार्गशीर्षमासके व्रतोत्सव

मार्गशीर्षमासका माहात्म्य भी विलक्षण है। **'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्'** इस श्रीमद्भगवद्गीतोक्त श्रीभगवद्वचनानुसार इस मासकी महत्ता स्पष्ट है। श्रीनिम्बार्कसिद्धान्तानुसार—

तत्रादौ मार्गशीर्षे तु प्रभातस्नानपूर्वकम्।
पूजयेद्राधिकाकृष्णौ भक्त्या परमया सुधीः॥

(वाराहपुराण)

मार्गशीर्षमासमें प्रभातकालमें स्नानादिपूर्वक शास्त्रज्ञ मनीषिजनोंका आवश्यक कर्तव्य है कि वे परम अनन्य भक्तिके साथ श्रीराधाकृष्णकी समर्चना करें।

इस अत्यन्त पवित्र मासमें अपने आराध्य भगवान् श्रीराधासर्वेश्वरका नाना उपचारपूर्वक उत्सव सम्पन्न करे।

इस मासमें श्रीरामजानकी-विवाहोत्सवका महान् पर्व है। इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता-जयन्ती-महोत्सवका महान् अवसर है। वस्तुतः समग्र दृष्ट्या इस मासकी अनुपम महिमा है।

पौषमासके उत्सव

त्रिकालं पूजयेत्कृष्णं त्यक्तभोगो जितेन्द्रियः।
पौषस्य द्वादशी शुक्ला यावत्पुण्यफलप्रदा॥

(श्रीनारदपाञ्चरात्र)

जागतिक भोग्य कर्मोंसे रहित होकर अपने समस्त इन्द्रियोंके दमनपूर्वक मुख्यतः पौषमासीय शुक्ल द्वादशीपर्यन्त जो परम पुण्यफलदायी है, उस अवसरपर भगवान् श्रीकृष्णका विधि-विधानके साथ अर्चन-वन्दन करना अत्यन्त अभीष्ट कर्तव्य है।

माघमासके उत्सव

माघमास अतीव श्रेष्ठ और परम पावनतम है। माघस्नानका माहात्म्य शास्त्रोंमें विस्तृतरूपसे वर्णित है। इस मासमें भी अनेक उत्सव-व्रत आते हैं। मकर-संक्रान्ति, वसन्तपञ्चमी, षट्तिला एकादशी आदि अनेकविध पर्वोत्सवोंका अनुपम आनन्द है। वसन्तपञ्चमीको अपने आराध्य वृन्दावननिकुञ्जविहारी युगलकिशोर श्यामाश्याम भगवान् श्रीराधामाधवको वासन्तीवस्त्रालङ्कार, वासन्ती नैवेद्य, वासन्ती अबीर-गुलाल आदिका समर्पण करे। इसी पावन अवसरपर श्रीसरस्वती-समर्चना, संस्कृतके रससिद्ध कवि श्रीजयदेवजयन्ती तथा श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यश्रीजीके पट्टशिष्य पाञ्चजन्य शङ्खावतार श्रीनिवासाचार्यजी महाराजका पाटोत्सव आदि नाना महोत्सवोंकी अनिर्वचनीय रसानुभूति होती है। वस्तुतः इस मासका स्वरूप ही ऐसा अनुपम है जिसका वर्णन ही अशक्य है। निम्न वचनोंसे माघमासका स्वरूप अपने अन्तःकरणमें अवधारणीय है। यथा—

स्नानं दानं जपो होमः समुद्दिश्य जनार्दनम्।
नरैर्यत्क्रियते माघे तदनन्तफलं लभेत्॥
सर्वपापविनाशाय कृष्णसन्तोषणाय च।
माघस्नानं सदा कार्यं वर्षे वर्षे च नारद॥

(स्कन्दपुराण)

भगवान् श्रीकृष्णका हृदयमें चिन्तन करते हुए माघमासमें जो मानव नित्य नियमितरूपसे स्नान, दान, जप, हवनादि सत्कर्मोंका सम्पादन करते हैं, वे निश्चय ही अनन्त सुखद फल प्राप्त करते हैं। हे देवर्षे! नारद! अनन्त कोटि-ब्रह्माण्डनायक सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके प्रसन्नार्थ और समस्त पापोंके परिहारहेतु प्रतिवर्ष माघस्नान सदा-सर्वदा करना चाहिये।

फाल्गुनमासके व्रत-पर्वोत्सव

फाल्गुन भी अनेक उत्तमोत्तम व्रतोत्सवपर्वोंका मास है। श्रीसीताष्टमी, श्रीमहाशिवरात्रि, श्रीशिवार्चना एवं होलिकोत्सव आदि इसके प्रमुख पर्वोत्सव हैं। श्रीशिवचतुर्दशीके सम्बन्धमें श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यवर्यके परम शिष्योंमें श्रीऔदुम्बराचार्यकृत श्रीऔदुम्बरसंहिता-ग्रन्थमें निरूपित निम्नाङ्कित वचनसे श्रीशिवाराधनाका भाव स्पष्ट है—

फाल्गुने शिवरात्रं तु कुर्वतस्त्वनुमोदयेत्।
कृष्णपक्षचतुर्दश्यां सशल्यश्चेत् स्वयं चरेत्॥

फाल्गुनमासकी कृष्णपक्षकी चतुर्दशी—महाशिवरात्रिको शिवार्चनाका निर्देश कर रहे हैं। यदि शल्यवेधका अवसर हो तो स्वयं ही उस तिथिको समर्चना करे।

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाको होलिकोत्सव-समारोह सम्पन्न होता है। वाणीसाहित्यमें श्रीभगवन्निम्बार्कके परवर्ती पूर्वाचार्योंने बड़े ही विस्तारपूर्वक होली-महोत्सव, फूलडोल-महोत्सवका अतिशय अनुपम अनिर्वचनीय परिवर्णन किया है—

फाल्गुनस्य तु राकायां मण्डयेद्दोलमण्डपम्।
पश्चात्सिंहासनं पुष्पैर्नूतनैर्वस्त्रचित्रकैः॥

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाकी रात्रिको सुरभित सुन्दर नवीन पुष्पोंसे तथा चित्रित मञ्जुल वस्त्रोंसे सुसज्जित मण्डपमें परम कमनीय झूलेके सिंहासनपर भगवान्‌को विराजमान करके उल्लासपूर्वक महोत्सव सम्पन्न करे।
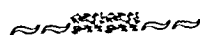
कुम्भमहापर्व

(स्वामी श्रीविज्ञानानन्द सरस्वतीजी महाराज)

'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा'—इस श्रुतिवचनके अनुसार धर्म ही सम्पूर्ण जगत्‌का आधार है। धर्मके आधारपर ही समस्त मानव-समाज प्रतिष्ठित है। धर्मका अपलाप कोई भी नहीं कर सकता है। धर्मने ही मानव-समाजको एकसूत्रमें बाँध रखा है। धर्मके बाह्यरूप भले ही भिन्न-भिन्न प्रकारके हों, परंतु सभी धर्मों-मज़हबोंका केन्द्रभूत मूलतत्त्व एकमात्र परमात्मतत्त्व ही है, जिसको केन्द्र मानकर समस्त धर्म प्रवृत्त हैं। सभी धर्मोंमें अपनी-अपनी विशेषता होती है और कुछ आदर्श भी होते हैं। ठीक इसी प्रकारसे हमारे हिन्दू-धर्ममें भी कुछ विशेषताएँ और आदर्श हैं। इनमें सभ्यता-संस्कृति, रीति-रिवाज, नियम-नीति, वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, व्रत-पर्व तथा त्योहार आदि विशेष उल्लेख्य हैं। इस संदर्भमें यहाँ केवल कुम्भमेला महापर्वके विषयमें ही किञ्चित् चर्चा की जा रही है।

कुम्भपर्व एक महत्त्वपूर्ण और सार्वभौम महापर्व माना जाता है, जिसमें विराट् मेलेका आयोजन होता है। कुम्भमेला भारतवर्षका सबसे बड़ा मेला है। केवल भारतमें ही नहीं, अपितु विश्वमें शायद ऐसे विराट् मेलेका आयोजन कहीं भी नहीं होता होगा, यही तो इसकी विशेषता है। 'कुम्भ' शब्दका अर्थ है घट या घड़ा और 'कुम्भ'का अर्थ विश्वब्रह्माण्ड भी है। जहाँपर विश्वभरके धर्म, जाति, भाषा तथा संस्कृति आदिका एकत्र समावेश हो वही कुम्भमेला है। कुम्भमेलाका प्रारम्भ कबसे हुआ है इसका ठीक-ठीक निर्णय करना कठिन है। परंतु कुम्भपर्वके विषयमें पुराणोंमें एक प्रसंग आया हुआ है, जिसके आधारपर कहा जा सकता है कि कुम्भमेलेका प्रारम्भ बहुत प्राचीन कालमें ही हो चुका था। आज केवल उसकी आवृत्तिमात्र होती है।

प्रसंग इस प्रकार है कि एक समय भगवान् विष्णुके निर्देशानुसार देवों तथा असुरोंने मिलकर संयुक्तरूपसे समुद्र-मन्थन किया। जब देवों तथा दैत्योंने मिलकर मन्दराचल पर्वतको मन्थनदण्ड और वासुकिको नेती—मन्थन-रज्जु बनाकर समुद्र-मन्थन किया तब समुद्रसे चौदह रत्न निकले थे। जो इस प्रकार हैं—

(१) ऐरावत, (२) कल्पवृक्ष, (३) कौस्तुभमणि, (४) अश्व (उच्चैःश्रवा), (५) चन्द्रमा, (६) धनुष, (७) धेनु (कामधेनु), (८) रम्भा, (९) लक्ष्मी, (१०) वारुणी, (११) विष, (१२) शङ्ख, (१३) धन्वन्तरि और (१४) अमृत।

धन्वन्तरि अमृतकुम्भको लेकर निकले ही थे कि देवोंके संकेतसे देवराज इन्द्रके पुत्र जयन्त अमृतकुम्भको लेकर वहाँसे भाग निकले। दैत्यगुरु शुक्राचार्यके आदेशानुसार दैत्योंने अमृतकलश छीननेके लिये जयन्तका पीछा किया। जयन्त और अमृतकलशकी रक्षाके लिये देवगण भी दौड़ पड़े। आकाशमार्गमें ही दैत्योंने जयन्तको जाकर घेर लिया। तबतक देवगण भी जयन्तकी रक्षाके लिये वहाँ पहुँच चुके थे। फिर क्या था, देवों और दैत्योंमें युद्ध ठन गया और बारह दिनतक युद्ध चलता रहा। दोनों दलोंके संघर्ष-कालमें अमृतकलशसे पृथ्वीपर चार स्थानोंमें अमृतकी बूँदें छलककर गिर गयी थीं। उस समय सूर्य आदि देवता जयन्त तथा अमृतकलशकी रक्षाके लिये सहायता कर रहे थे। देवों तथा असुरोंके कलहको शान्त करनेके लिये भगवान् विष्णु मोहिनीरूप धारणकर प्रकट हुए तो युद्ध तत्काल थम गया और दोनों पक्षोंने यही निश्चय किया कि अमृत पिलानेका भार इन्हींपर छोड़ दिया जाय। तब मोहिनीरूपधारी विष्णुने दैत्योंको अमृतका भाग न देकर देवताओंको पिला दिया। इसलिये देवगण अमर हो गये।

अमृतप्राप्तिके लिये बारह दिनोंतक देवों तथा दानवोंमें युद्ध हुआ था। देवोंके बारह दिन मनुष्योंके लिये बारह वर्षके बराबर होते हैं। इस कारण कुम्भमेला भी बारह वर्षके बाद एक स्थानपर होता आया है, इसे पूर्णकुम्भके नामसे कहते हैं। जिन चार स्थानोंमें अमृतकी बूँदें गिर गयी थीं वे चार स्थान हैं—हरिद्वार, प्रयागराज, नासिक और उज्जैन। इसीलिये इन चार स्थानोंमें बारह वर्षोंके बाद कुम्भमेला लगता है, जो लगभग ढाई महीनेतक चलता है। इसे पूर्णकुम्भके नामसे जाना जाता है। हरिद्वार तथा प्रयागमें छः सालके पश्चात् अर्धकुम्भका मेला भी आयोजित होता है। हरिद्वारके अर्धकुम्भके अवसरपर नासिकका कुम्भ मेला होता है और प्रयागके अर्धकुम्भके समय उज्जैनका कुम्भ होता है।

(१) हरिद्वार—कुम्भराशिपर बृहस्पतिका और मेष-राशिपर सूर्यका योग होनेपर हरिद्वारमें पूर्णकुम्भ

मेलेका आयोजन होता है।[1]

(२) प्रयाग—वृषराशिपर बृहस्पतिका योग होनेपर प्रयागराजमें पूर्णकुम्भ मेलेका आयोजन होता है। स्कन्दपुराणमें कहा भी है—

मकरे च दिवानाथे वृषगे च बृहस्पतौ।
कुम्भयोगो भवेत्तत्र प्रयागे ह्यतिदुर्लभः॥

अर्थात् वृषराशिमें बृहस्पति हों और जिस दिन सूर्यनारायण मकरराशिमें प्रवेश करते हों, उस योगको कुम्भयोग कहते हैं। ऐसा योग प्रयागके लिये अतिदुर्लभ होता है। अन्यत्र भी कहा है—

माघे वृषगते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ।
अमायां च ततो योगः कुम्भाख्यस्तीर्थनायके॥

उस माघमासमें अमावास्याके दिन बृहस्पति वृषराशिमें हों, सूर्य तथा चन्द्र मकरराशिमें हों, तब कुम्भयोग समस्त तीर्थोंके नायक (राजा) प्रयागराजमें होता है। प्रयागके कुम्भयोगके कालमें त्रिवेणीमें स्नानका भी महत्त्व बताया गया है। त्रिवेणी-स्नानका महत्त्व इस प्रकार बताया गया है—

प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नानस्य यद्भवेत्।
नाश्वमेधसहस्रेण तत्फलं लभते भुवि॥

प्रयागराजमें माघमासमें त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न और सायं)-में स्नान करनेसे जो फल मिलता है, वह फल पृथ्वीमें हजार अश्वमेधयज्ञ करनेपर भी नहीं प्राप्त होता।

(३) उज्जैन—सिंहराशिपर बृहस्पतिका और मेष राशिपर सूर्यका योग होनेपर उज्जैनमें पूर्णकुम्भ मेलेका आयोजन होता है।[2]

(४) नासिक—वृश्चिकराशिपर बृहस्पतिका योग होनेपर नासिकमें पूर्णकुम्भका योग होता है जहाँ कुम्भका मेला लगता है।

इस प्रकार चारों स्थानोंमें बारह वर्षके पश्चात् एक महाकुम्भपर्व होता है। कुम्भमेलोंका महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है—

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
लक्षं प्रदक्षिणा भूमेः कुम्भस्नाने तत्फलम्॥

हजार अश्वमेधयज्ञ करनेसे और लाख बार पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करनेसे जो फल मिलता है, वही फल कुम्भस्नानसे प्राप्त हो जाता है।

हमारे प्राचीन कालके ऋषि-मुनिजन नितान्त ही दूरदर्शी तथा कुशाग्रबुद्धिके थे। उन्होंने भारतवर्षके प्राचीन वैदिक सनातनधर्म, संस्कृति, सभ्यता, व्रत, पर्व, त्योहार, साधना तथा उपासना आदिकी रक्षाके लिये एवं इस आर्यावर्त देशकी एकता, अखण्डता और गौरव-गरिमाको बनाये रखनेके लिये इनकी स्थापना की थी। अतः श्रद्धा-विश्वासके साथ हमें इनका अनुष्ठान करना चाहिये; क्योंकि इसीमें हमारा कल्याण है।

यही कारण है कि उत्तर भारतके लोग दक्षिण भारतमें तिरुपति, रामेश्वरम् तथा कन्याकुमारी आदि तीर्थस्थानोंमें जाकर अपनेको कृतार्थ मानते हैं और दक्षिण भारतके लोग उत्तर भारतमें स्थित प्रसिद्ध तीर्थ बद्रीनाथ, केदारनाथ, गङ्गोत्री, यमुनोत्री, जगन्नाथपुरी, काशी तथा प्रयाग आदि तीर्थस्थानोंकी यात्रा करके अपनेको धन्य मानते हैं।

कुम्भपर्वमें जाति, धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, राज्य, संस्कृति, साहित्य, दर्शन, वेशभूषा अर्थात् पहनावा आदि सभी संदर्भोंमें अनेकतामें एकताका दर्शन होता है। साधु-संत, धनी-मानी, विद्वान्, कर्मकाण्डी, योगी, ज्ञानी, कथावाचक, तत्त्वदर्शी, सिद्ध महापुरुष, सेठ-साहूकार, भिखारी, व्यापारी, गृहस्थ, संन्यासी, ब्रह्मचारी, कल्पवासी, अधिकारी, बूढ़े, जवान, आबालवृद्धवनिता सभीका वहाँ समागम होता है। विभिन्न धर्म, संस्कृति तथा सम्प्रदायोंका संगम इन कुम्भमेलोंमें होता है जो एक सहज आकर्षण है।

सुना जाता है कि भारतके सम्राट् हर्षवर्द्धन अपने मन्त्रियों तथा अपने अधीन राजाओंके साथ तीर्थराज प्रयागमें जाते थे। उनके साथ बल्लभीके राजा तथा कामरूपके राजकुमार आदि भी प्रयागराजके कुम्भमें जाते थे। इनके साथ सेना होती थी और सेनाओंकी छावनी प्रयागके चारों ओर डाली जाती थी। आज भी बड़े समारोहके साथ कुम्भका पर्व मनाया जाता है, जो भारतवर्षके उस प्राचीनतम महान् गौरवको उजागर करता है।

१-पद्मिनीनायके मेषे कुम्भराशिगते गुरौ। गङ्गाद्वारे भवेद्योगः कुम्भनामा तदोत्तमः॥ (स्कन्दपुराण)

२-मेषराशिं गते सूर्ये सिंहराशौ बृहस्पतौ। उज्जयिन्यां भवेत् कुम्भः सदा मुक्तिप्रदायकः॥

तीन महाव्रत

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

शरीर-संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करना अर्थात् उनको मैं, मेरा और मेरे लिये न मानना मनुष्यमात्रका महाव्रत है। इस महाव्रतका पालन करते हुए परमात्मप्राप्ति करनेके लिये ही यह मनुष्यशरीर मिला है। इस महाव्रतकी सिद्धिके लिये भगवान्‌ने तीन योग बताये हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग। कर्मयोगीका महाव्रत है—किसीको बुरा नहीं समझना, किसीका बुरा नहीं चाहना तथा किसीका बुरा न करना। ज्ञानयोगीका महाव्रत है—किसी भी वस्तु-व्यक्तिका संग न करना। भक्तियोगीका महाव्रत है—एक भगवान्‌के सिवाय अन्य किसीको भी अपना न मानना। इन तीनोंमेंसे किसी एक भी महाव्रतका पालन करनेसे मनुष्य सदाके लिये कृतकृत्य, ज्ञात-ज्ञातव्य और प्राप्त-प्राप्तव्य हो जाता है।

कर्मयोगीका महाव्रत—परमात्माका अंश होनेसे प्राणिमात्र स्वरूपसे निर्दोष (बुराईरहित) है—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

(मानस, उत्तर० ११७। २)

इसलिये कोई भी मनुष्य सर्वथा, सर्वदा और सबके लिये बुरा नहीं होता। उसमें जो बुराई दीखती है, वह आगन्तुक है, स्वाभाविक नहीं है। आगन्तुक बुराईको देखकर किसीको बुरा समझना, किसीका बुरा चाहना तथा किसीका बुरा करना सर्वथा अनुचित है। बुरा समझनेवाला, बुरा चाहनेवाला और बुरा करनेवाला कभी सेवा नहीं कर सकता, जबकि कर्मयोगमें निष्कामभावसे दूसरोंकी सेवा करना मुख्य है।

दूसरेको बुरा समझनेसे हमारे भीतर क्रोध, वैर, विषमता, पक्षपात आदि बुराइयाँ आ ही जायँगी, भले ही दूसरा बुरा हो या न हो। दूसरेका बुरा चाहनेसे हमारे भावोंमें बुराई आ ही जायगी। अत: बुरा चाहनेसे दूसरेका बुरा तो होगा नहीं, पर हमारा बुरा हो ही जायगा। इसलिये कर्मयोगी इस महाव्रतका पालन करता है कि मैं किसीको बुरा नहीं समझूँगा, किसीका बुरा नहीं चाहूँगा तथा किसीका बुरा नहीं करूँगा।

ज्ञानयोगीका महाव्रत—प्राणिमात्रका स्वरूप असंग है—**'असङ्गो ह्ययं पुरुषः'** (बृहदा० ४। ३। १५)। परंतु मिलने तथा बिछुड़नेवाली वस्तुओंका संग करनेसे अर्थात् उनको अपनी और अपने लिये माननेसे मनुष्यको अपनी स्वत:सिद्ध असंगताका अनुभव नहीं होता। स्वरूपका विभाग अलग है और मिलने-बिछुड़नेवाली वस्तुओंका विभाग अलग है। ये दोनों विभाग सूर्य और अमावास्याकी रातके समान एक-दूसरेसे सर्वथा अलग-अलग हैं। मिलने-बिछुड़नेवाली वस्तुओंके विभागसे अपना सम्बन्ध मानना ही ऊँच-नीच योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है—**'कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु'** (गीता १३। २१)। इसलिये ज्ञानयोगी इस महाव्रतका पालन करता है कि मैं किसी भी कालमें शरीर नहीं हूँ; मेरा किसी भी वस्तु-व्यक्तिसे किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं है।

भक्तियोगीका महाव्रत—भगवान्‌को जान तो नहीं सकते, पर अपना अवश्य मान सकते हैं। जैसे, हम अपने माता-पिताको जान नहीं सकते, केवल अपना मान सकते हैं। माता-पिताको माने बिना रह सकते भी नहीं; क्योंकि शरीरकी सत्ता मानते हैं तो माता-पिताकी सत्ता माननी ही पड़ेगी। माता-पिताके बिना शरीर कहाँसे आया? ऐसे ही हम अपनी (स्वयंकी) सत्ता मानते हैं तो भगवान्‌की सत्ता माननी ही पड़ेगी। भगवान्‌को अपना माननेसे उनमें आत्मीयता होकर प्रेम हो जाता है। परमप्रेमकी जागृतिमें ही मानव-जीवनकी पूर्णता है।

कर्मयोगी और ज्ञानयोगी—दोनोंके महाव्रत लौकिक हैं। परंतु भक्तियोगीका महाव्रत अलौकिक है। लौकिक महाव्रतका पालन करनेसे मोक्षकी तथा अलौकिक महाव्रतका पालन करनेसे मोक्षके साथ-साथ परमप्रेमकी प्राप्ति भी हो जाती है, जो मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है।
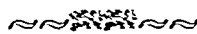
एकादशीव्रत एवं जागरण-माहात्म्य

(श्रीअलबेली माधुरीशरणजी महाराज)

सभी वैष्णवसम्प्रदायोंमें एकादशीव्रतका वर्णन मिलता हैं। यहाँतक कि जो वैष्णव नहीं हैं वे भी किसी-न-किसी रूपमें एकादशीव्रतकी मान्यता रखते हैं। इस संदर्भमें श्रीशुकसम्प्रदाय आचार्यपीठ श्रीसरसनिकुंज दरीबापान, जयपुरके पीठाधीश्वर श्रीसरसमाधुरीशरणजी महाराजने श्रीशुकसम्प्रदाय-सिद्धान्त-चन्द्रिकामें कई ग्रन्थोंसे संग्रह कर इस प्रकार लिखा है—

ग्यारस व्रत से ऐसे रहिये। जैसे धर्म नीक को चहिये॥
सांचा व्रत बताऊँ तोहीं। गुरू शुकदेव बताया मोहीं॥
नवमी नेम करे चित लाई। दशमी संयम युक्ति बताई॥
ग्यारस व्रत बताऊँ नीका। सबही व्रत शिरोमणि टीका॥
निर्जल करे नीर नहीं परसै। पोह फाटे जब सूर्य दरसै॥
एक पहर के तड़के जागै। जबही सुमरण करने लागै॥
करे विचार शुद्ध कर काया। जाकर बैठे भवन मझाया॥
कोठे के पट देकर राखै। नर नारी सों बचन न भाखै॥
कुँड़ काढ बैठे तिहीं माहीं। ताके बाहर निकसे नाहीं॥
कर आवाहन आसन मारे। व्रत करै वैराग्य ही धारे॥
जप गुरू मंत्र और हरि ध्यानां। जाको नेक नहीं विसरानां॥

जो तेरे गुरू ने कहा, जाका कर तु ध्यान।
बैठो अस्थिर नौ पहर, करो व्रत पहचान॥
व्रत करै त्योंहार सा, नाना रस के स्वाद।
भोग करे तप ना करे, सब करनी बरबाद॥

पांचों इन्द्री व्रत करीजै। पलक झांप नैनन पट दीजै॥
इत उत मनवा नांहि चलावे। आंखन को नहीं रूप दिखावे॥
श्रव्रण शब्द न खइये भाई। त्वचा स्पर्श न अंग लगाई॥
षटरस स्वाद न जिह्वा दीजै। नासा गंध सुगंध न लीजै॥
ऐसा व्रत करे सो वर्ता। मुक्त होय ग्यारसका कर्ता॥
ऐसा बरत उतारे पारा। छौनां तिरत लगे नहिं बारा॥
बहुर द्वादशी बाहर आवे। अपनी श्रद्धा द्विज भुगतावे॥

(षड्रूपमुक्तग्रन्थ श्रीचरणदासजीवाक्य)

संक्षेपमें भाव यह है कि नवमीको व्रतका नियम लेकर दशमीको संयमपूर्वक रहना चाहिये और एकादशीको निर्जलव्रत रखना चाहिये। यह एकादशीव्रत व्रतोंमें शिरोमणि-स्वरूप है। इस दिन प्रात:काल ही उठकर भगवान्का स्मरण करना चाहिये, विचारोंको शुद्ध रखना चाहिये। इस दिन संयम-नियम धारणकर वैराग्यपूर्वक रहे। किसीसे कोई सम्बन्ध न रखकर एकान्तमें निवासकर भगवान्का ध्यान करे। गुरुद्वारा उपदिष्ट मार्गका अनुसरण करे। भोग-विलाससे सर्वथा दूर रहे, इससे व्रत-भंग हो जाता है। अपनी पाँचों इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे दूर रखकर संयमपूर्वक रहे और द्वादशीको व्रतका पारण करे।

पूर्वकालमें राजा अम्बरीष महाभागवत हो चुके हैं। उनका एकादशीव्रतका अनुष्ठान प्रसिद्ध ही है। भागवतमें कहा गया है—

आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया।
युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम्॥

(श्रीमद्भा० ९।४।२९)

श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेकी इच्छासे राजा अम्बरीषने अपने समान शीलवती रानीके साथ वर्षपर्यन्त द्वादशीप्रधान एकादशीव्रत धारण किया।

एकादशीके दिन अन्न-ग्रहणका तथा श्राद्धका निषेध है, यहाँतक कि प्रसादमें भी अन्न ग्राह्य नहीं है।

श्रीनन्दरायने एकादशीके दिन निराहार रहकर जनार्दन-भगवान्का पूजन किया, फिर द्वादशीके दिन स्नान करनेके लिये कालिन्दीके जलमें प्रवेश किया—

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत्॥

(श्रीमद्भा० १०।२८।१)

एकादशीके दिन यदि नैमित्तिक श्राद्ध हो तो द्वादशीके दिन करे—

एकादश्यां यदा राम श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्।
तद्दिनं तु परित्यज्य द्वादश्यां श्राद्धमाचरेत्॥

(पद्मपुराण)

ब्रह्माण्डपुराणमें बताया गया है कि जो व्यक्ति एकादशीके दिन उपवासपूर्वक विविध उपचारोंसे भगवान् श्रीहरिका पूजन करता है, संयम-नियमसे रहता है। रात्रि-जागरण करता है और भगवान्की आरती उतारता है, वह व्यक्ति भगवान्का प्रिय पात्र बन जाता है। अत: एकादशीव्रतका यथाविधि अवश्य परिपालन करना चाहिये। इस दिन उपवास, रात्रिजागरण तथा हरिकीर्तनकी विशेष महिमा है।

'सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई'

(आचार्य श्रीकृपाशंकरजी महाराज रामायणी)

चक्रवर्ती नरेन्द्र महाराज श्रीदशरथजी अपने परम वात्सल्यभाजन लाड़लेलाल श्रीरामचन्द्रजीके स्वभाव, गुण, महिमा और प्रभावको भलीभाँति जानते हैं। उनके उदार चरित्रके वे मर्मज्ञ हैं। वे जानते हैं कि मेरे लालजी—श्रीरामचन्द्रजी सत्यसंकल्प, सत्यव्रत, सत्यसन्ध और दृढव्रत हैं।

महाराज श्रीदशरथजीने अपने अनुपम वात्सल्यके कारण भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको घरमें रखनेके लिये अनेक प्रकारके प्रयत्न किये—

रायँ राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किए छलु त्यागी॥

(रा०च०मा० २।७८।१)

श्रीदशरथजीने कहा—हे राघव! मैं तो कैकेयीके वरदानके कारण मोहग्रस्त हो गया हूँ। यह ठीक है कि मैं सूर्यकुलमें कलङ्क नहीं बनना चाहता, यह भी ठीक है कि मैं प्रतिज्ञा करके तुम्हें बलात् रोकना भी नहीं चाहता, यह भी ठीक है कि मैं सूर्यकुलकी पीत पताकाको ऊँचा ले जाना चाहता हूँ, उसको धूलधूसरित नहीं देखना चाहता, परंतु यह भी ठीक है कि हे रघुनन्दन! तुम मुझे बन्धनमें डालकर राज्यका उपभोग कर सकते हो। उस बन्धनमें मुझे सुख ही मिलेगा—

अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम्॥

(वा०रा० २।३४।२६)

श्रीरामजीने कहा—हे वत्सल पितः! मैं राज्य नहीं चाहता हूँ, मैं तो वनमें ही निवास करूँगा—

अहं त्वरण्ये वत्स्यामि न मे राज्यस्य काङ्क्षिता॥

(वा०रा० २।३४।२८)

हे नरश्रेष्ठ! मैं तो यह चाहता हूँ कि युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरमें लोग कहते रहें कि एक सत्यवादी राजा दशरथ थे, जिन्होंने अपने प्रियतम पुत्रको छोड़ दिया, परंतु सत्यको नहीं छोड़ा। '**त्वामहं सत्यमिच्छामि नानृतं पुरुषर्षभ**'। श्रीरामने बहुत प्रकारसे समझाया और यह कहा कि मैंने राष्ट्र, नगर सब कुछ छोड़ दिया। आप इसे भरतजीको दे दें '**मया विसृष्टा भरताय दीयताम्**'। हे पिताजी! अब मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ सुदीर्घ कालपर्यन्त वनमें निवास करनेके लिये यहाँसे प्रस्थान कर रहा हूँ—

अहं निदेशं भवतोऽनुपालयन्
वनं गमिष्यामि चिराय सेवितुम्॥

(वा०रा० २।३४।५५)

श्रीरामजीका निश्चय श्रवण करके उन्हें अपने हृदयसे लगाकर मूर्च्छित होकर श्रीदशरथजी भूमिपर गिर पड़े। उस

समय कैकेयीको छोड़कर सभी देवियाँ रुदन करने लगीं। महाराजके सहायक, सखा, मन्त्री, सारथि और स्वामीकी छायाकी तरह अनुसरण करनेवाले सुमन्त्रजी भी रोते-रोते मूर्च्छित हो गये। चारों ओर हाहाकार मच गया। अत्यन्त करुण दृश्य उपस्थित हो गया—

देव्यः समस्ता रुरुदुः समेता-
स्तां वर्जयित्वा नरदेवपत्नीम्।
रुदन् सुमन्त्रोऽपि जगाम मूर्च्छां
हाहाकृतं तत्र वभूव सर्वम्॥

(वा०रा० २।३४।६१)

लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने॥

(रा०च०मा० २।७८।२)

श्रीदशरथजीके यह कहनेपर 'मेरी बुद्धि मोहग्रस्त हो रही है, एतावता तुम मुझे बन्धनमें डालकर राज्यका उपभोग करो।' यह श्रवण करके दृढ़व्रत, सत्यसन्ध, रघुकुलशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें समझाया है। उस समय आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने प्रभुको **'धर्मभृतां वरः'** और **'वाक्यकोविदः'** विशेषण दिया है—

एवमुक्तो नृपतिना रामो धर्मभृतां वरः।
प्रत्युवाचाञ्जलिं कृत्वा पितरं वाक्यकोविदः॥

(वा०रा० २।३४।२७)

श्रीरामचन्द्रजीके सत्यव्रतके मर्मज्ञ श्रीदशरथजीने भी उन्हें **'सत्यात्मनः'** और **'धर्माभिमनसः'** विशेषण दिया है।

न हि सत्यात्मनस्तात धर्माभिमनसस्तव।
संनिवर्तयितुं बुद्धिः शक्यते रघुनन्दन॥
अद्य त्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा।
एकाहं दर्शनेनापि साधु तावच्चराम्यहम्॥

(वा०रा० २।३४।३२-३३)

श्रीचक्रवर्ती नरेन्द्र कहते हैं—'हे रघुनन्दन! हे रामचन्द्र! तुम सत्यस्वरूप हो किंवा सत्यस्वभाव हो और धर्माभिनिविष्ट मनवाले हो, एतावता तुम्हारी बुद्धिको परिवर्तित करना असम्भव है। परंतु हे पुत्र! मात्र एक रात्रि अयोध्यामें रह जाओ, केवल एक रात्रिके लिये अपनी यात्रा रोक दो, जिससे मैं मात्र एक दिन भी तो तुम्हारे दिव्य अनुपम मुखचन्द्रके दर्शनानन्दका आनन्द ले लूँ।'

धन्य है श्रीरघुनन्दनका सत्यसंकल्प। प्रभु अपने सत्यसे तनिक भी विचलित नहीं हुए।

दृढव्रत—भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने माता श्रीकैकेयीके सामने वन जानेकी प्रतिज्ञा कर ली है, अतः उस व्रतसे वे विचलित नहीं होंगे।

श्रीरामजी पिताकी दीन-दशा देखकर स्वयं भी दीनभावसे कैकेयी मातासे बोले—'हे मातः! मेरे पिताजी क्यों नहीं बोल रहे हैं? इनके मनमें कौन-सा दारुण दुःख है? क्या मुझसे कोई अक्षम्य अपराध हो गया है? किंवा आपने तो अभिमान और क्रोधके कारण कोई कठोर बात नहीं कही है, जिसके कारण इनका मन क्लेशाक्रान्त हो गया है। हे देवि! मेरे पिताजीके मनमें इतना संताप क्यों है? इन्हें इस प्रकार मैंने पहले कभी नहीं देखा है'—

एतदाचक्ष्व मे देवि तत्त्वेन परिपृच्छतः।
किंनिमित्तमपूर्वोऽयं विकारो मनुजाधिपे॥

(वा० रा० २।१८।१८)

कठोरताकी प्रतिमूर्ति कैकेयीने कहा—हे राम! यदि तुम प्रतिज्ञा करो कि राजा शुभ या अशुभ जो कुछ कहना चाहते हैं, उसे तुम पालन करोगे तो मैं सारी बात बता दूँगी—

यदि तद् वक्ष्यते राजा शुभं वा यदि वाशुभम्।
करिष्यसि ततः सर्वमाख्यास्यामि पुनस्त्वहम्॥

(वा०रा० २।१८।२५)

इस बातको सुनकर श्रीरघुनन्दनको महान् क्लेश हुआ। उन्होंने कहा—'अहो! धिक्कार है! हे मातः! आपको मेरे प्रति इस प्रकार अविश्वासपूर्वक वचन नहीं कहना चाहिये। मैं अपने पिताकी आज्ञासे जलती हुई आगमें कूद सकता हूँ, तीक्ष्ण विषका भी सद्यः भक्षण कर सकता हूँ और समुद्रमें भी गिर सकता हूँ। श्रीमहाराज दशरथजी मेरे गुरु, पिता और हितैषी हैं। मैं उनकी आज्ञासे सब कुछ कर सकता हूँ। हे देवि! इनके सन्तापका कारण कुछ भी हो किंवा इनके मनमें जो कुछ हो वह सब मुझे बताओ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, उसे पूरा करूँगा। आपको यह ज्ञात है— **'रामो द्विर्नाभिभाषते'** अर्थात् रामने जो कह दिया वह कह दिया। उसके विपरीत पुनः कुछ नहीं कहना है'—

अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः।
अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च॥
तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते॥

(वा०रा० २।१८।२८—३०)

कैकेयीजीने कठोरतापूर्वक अपने वरप्राप्तिकी कथा, दोनों वरदान माँगनेकी बात और राजाके दु:खी होनेका कारण सुना दिया तथा यह भी कहा—'हे राम! तुम नरेन्द्रकी आज्ञाका पालन करो और इनके सत्यकी रक्षा करके इनके संकटको दूर करो'—

एतत् कुरु नरेन्द्रस्य वचनं रघुनन्दन।
सत्येन महता राम तारयस्व नरेश्वरम्॥

(वा०रा० २।१८।४०)

सुनहु राम सबु कारन एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। मागेउँ जो कछु मोहि सोहाना॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥
सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु॥

(रा०च०मा० २।४०।६—८, दो० ४०)

श्रीरामजीने कहा—'हे मात:! मैं अपने पिताजीकी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये जटा और चीर धारण करके आपके इच्छानुसार वनमें रहनेके लिये श्रीअयोध्याजीसे अविलम्ब चला जाऊँगा'—

एवमस्तु गमिष्यामि वनं वस्तुमहं त्वितः।
जटाचीरधरो राज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन्॥

(वा०रा० २।१९।२)

श्रीरामजीने कहा—'हे मात:! मुझे दु:ख है कि पिताजीने स्वयं मुझसे क्यों नहीं कहा और हे जननि! आपकी गोदमें मैं सत्ताईस वर्षपर्यन्त रहा, परंतु आप अपने रामको नहीं समझ पायीं। आपने पिताजीको क्यों कष्ट दिया? यदि आप स्वयं कहतीं तो भी मैं अपने लाड़ले, दुलारे, भावते भाई भरतके लिये राज्यको, सीताको, अपने प्रिय प्राणोंको तथा अपने समस्त धनको हँसते-हँसते दे सकता था'—

अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः॥

(वा०रा० २।१९।७)

अब मैं पूज्य माता श्रीकौसल्याजीके चरणोंमें आज्ञा लेने जाता हूँ। उनसे आज्ञा लेकर सीताको आश्वस्त करके और पूज्य पिताजीको प्रणाम करके आज ही विशाल दण्डक काननकी यात्रा करूँगा—

यावन्मातरमापृच्छे सीतां चानुनयाम्यहम्।
ततोऽद्यैव गमिष्यामि दण्डकानां महद् वनम्॥

(वा०रा० २।१९।२५)

सत्यसन्ध रघुनन्दन श्रीरामजीके दृढ़व्रतका एक और अनुपम उदाहरण देकर समाप्त करता हूँ।

श्रीरामचन्द्रजीने अपने करकमलोंसे कमलदलनयन श्यामविग्रह भावमूर्ति भाग्यवान् श्रीभरतजीको उठाकर अपनी स्नेहमयी गोदमें बिठा लिया और मत्त हंसस्वरमें स्वयं यह कहा।

तमङ्के भ्रातरं कृत्वा रामो वचनमब्रवीत्।
श्यामं नलिनपत्राक्षं मत्तहंसस्वरः स्वयम्॥

(वा०रा० २।११२।१५)

हे तात! तुम श्रीअयोध्याजी लौट जाओ। तुम अपनी विनयशील बुद्धिके द्वारा समस्त भूमण्डलकी रक्षा करनेमें समर्थ हो। इसके बाद सत्यसङ्कल्प श्रीरामने कहा—हे तात! चन्द्रमाकी प्रभा चन्द्रमासे अलग हो सकती है, हिमालयमें बर्फ न मिले यह भी सम्भव है, समुद्र अपनी मर्यादाका अतिक्रमण कर दे यह भी सम्भव है, परंतु मैं पिताकी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता हूँ—

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद् वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः॥

(वा०रा० २।११२।१८)

अपने परमवात्सल्यभाजन पुत्र रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रके इन गुणोंका श्रीदशरथजीको पूर्ण ज्ञान था एतावता उन्होंने श्रीसुमन्त्रजीसे बड़े गम्भीर शब्दोंमें कहा—*'सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई।'*
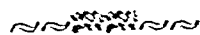
भक्त और भगवान्‌के पारस्परिक व्रत

(श्रीनारायणदासजी भक्तमाली 'मामाजी')

'व्रत' का तात्पर्य है—दृढ़ संकल्पपूर्वक मनसा-वाचा-कर्मणा किसी वचन, किसी भाव अथवा किसी क्रियाका सम्यक् प्रकारसे निर्वाह करना। यह पात्र-भेदसे विविध प्रकारका हो सकता है। प्रकृति-भेदसे पात्र-भेद होना स्वाभाविक है। प्रकृति सत्त्व, रज एवं तम-प्रधान होनेके कारण त्रिगुणात्मिका कही जाती है। इस गुण-भेदके कारण विश्वभरके समस्त प्राणी, पदार्थ, स्थान एवं क्रिया-कलाप प्रायः चार भागोंमें विभाजित किये जाते हैं—तमोगुणी, रजोगुणी, सत्त्वगुणी एवं त्रिगुणातीत। जिस व्यक्तिमें जिस प्रकारकी प्रकृतिकी प्रधानता होती है, वह उसी प्रकारके देवी-देवता आदिके आश्रित होकर तत्तत्प्रकारकी पद्धतिको अपनाकर व्रत-अनुष्ठान आदिको निभाता है। यथा—

रजस्तमःप्रकृतयः समशीला भजन्ति वै।
पितृभूतप्रजेशादीन् श्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः॥

(श्रीमद्भा० १। २। २७)

तमोगुणी प्रकृतिवालोंके व्रत एवं अनुष्ठान आदि निम्न स्तरके एवं व्यक्तिगत स्वार्थसे सने हुए होते हैं, जो औरोंके लिये उत्पीडक सिद्ध हो सकते हैं। रजोगुणी व्यक्तिके व्रत-उत्सव एवं पर्व-त्योहार आदि किसीके लिये उत्पीडक भले ही न हों, किंतु अपने लिये लौकिक स्वार्थपरक तो होते ही हैं, जो आगे चलकर बन्धनप्रद हो जाते हैं। सत्त्वगुणी प्रकृतिवाले लोग भव-बन्धनसे छुड़ानेवाले व्रतादिका पालन करके परमात्मासे मोक्षकी याचना करते हैं, किंतु इन तीनों गुणोंसे परेकी—त्रिगुणातीत निष्ठावाले वे हैं, जो प्रभुके श्रीचरणोंके प्रति सर्वतोभावेन समर्पित रहकर प्रभुकी सेवाका व्रत निभानेमें उत्साह रखते हैं। सभी स्तरके लोग अपने-अपने स्तरके अनुसार अपने-अपने ढंगके व्रतोंका निर्वाह करते हैं।

लौकिक फलानुसन्धानवालोंके व्रत वार, तिथि, ग्रह, नक्षत्र एवं देवी-देवताओंके आधारपर माने जाते हैं, जो तुच्छ एवं नश्वर पदार्थ देकर पिण्ड छुड़ा लिया करते हैं। वर्ण एवं आश्रमके आधारपर माने जानेवाले व्रत स्वर्गादि लोकोंका सीमित सुख देकर अन्तमें पतनोन्मुख बना देते हैं। मोक्षाकाङ्क्षी महानुभावोंके व्रतादि विचार-प्रधान होकर मुक्ति प्रदान करते हैं।

वैसे तो जीवको धर्म एवं परमात्माकी ओर मोड़नेकी दिशामें सामान्य स्तरके व्रत-उत्सव भी बहुत महत्त्व रखते हैं, तथापि सर्वोत्तम व्रत एवं महोत्सव तो वे ही हैं जो मानवमें मानवताका संचार करके प्रभुकी प्रियताकी दिशामें प्रोत्साहन प्रदान करें। यथा—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

(यजु० १९। ३०)

अर्थात् व्रतसे दीक्षाकी प्राप्ति होती है, दीक्षासे दाक्षिण्य अर्थात् व्रत-निर्वाहमें दक्षता, पात्रता (निपुणता)-की उपलब्धि होती है। दाक्षिण्यसे श्रद्धाकी पुष्टि और श्रद्धा (निष्ठा)-से सत्यको प्राप्त किया जाता है। यहाँ सत्यसे तात्पर्य परम सत्य-स्वरूप परमात्माकी प्राप्तिसे है। इस प्रकार व्रत आदिका चरम लक्ष्य परम प्रभु ही हो सकते हैं। यथा—

'सत्यं परं धीमहि॥' (श्रीमद्भा० १। १। १)

उपर्युक्त सभी प्रकारके व्रत-त्योहार एवं पर्वोत्सवोंसे विलक्षण होते हैं उनके व्रत-पर्व-त्योहार एवं उत्सव, जो प्रभुके प्रति सर्वथा समर्पित रहकर मात्र प्रभुके प्रसन्नतार्थ ही सब कुछ करते हैं। इनमें मैंपन एवं मेरापनका नितान्त अभाव रहता है। इनकी वाणीमें सत्यता, मधुरता एवं हितैषिताका व्रत रहता है। इनकी इन्द्रियोंमें दमका व्रत होता है तथा मनमें शम एवं अखण्ड भगवत्स्मृतिका व्रत सहज स्वभावसे निभता रहता है। इनके व्रतादिकोंके मूलमें फलानुसन्धान एवं फलाकाङ्क्षाका लेश नहीं होता। ये अपनी तरफसे कुछ भी नहीं करते, अपितु कुछ होता हुआ-सा दिखायी भी पड़े तो वह प्रभु-प्रेरित यन्त्रवत् सम्पादित हो रहा है, ऐसी भावनासे ओत-प्रोत होता है। इनके पास अखण्ड भूमण्डलका सार्वभौम साम्राज्य होते हुए भी ये अकिञ्चन कहे जाते हैं। ये भगवच्छरणागत, भगवत्सम्मुख एवं भगवत्प्रपन्न कहे जाते हैं। प्रभुके ऐसे

संकेतपर ही अपनी अनुकूलता एवं प्रतिकूलताका विचार छोड़कर कहीं भी आने-जाने, मरने-जीने, सम्पत्ति-विपत्ति, सम्मान-अपमान, आधि-व्याधि आदिको प्रसन्नतापूर्वक झेलनेके लिये तैयार रहते हैं। इनका एक ही व्रत है—'हरितोषण-व्रत', जो कैकेयीनन्दन श्रीभरतलालजीके इस निर्णयात्मक वचनमें स्पष्ट झलक रहा है—

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥

(रा०च०मा० २।२६९।२)

अथवा—

जो बनावो सो बन जायँगे, जहाँ भेजो वहीं जायँगे।
किसी देश में रहें, किसी वेष में रहें, पर तुम्हारे ही कहलायँगे॥
मेरी डोरी प्रभो! तेरे कर में, चाहे जंगल में रख लो या घर में।
हों ठिकाने पै अथवा डगर में, रखना बस नाथ! अपनी नजर में॥
नाम तेरा सुमर, तुमको ही याद कर, मन को तुमसे ही बहलायँगे।
॥ जहाँ भेजो०॥
कोई अर्जी न कोई उलहना, तेरी रुचि में मगन होके रहना।
तेरा निर्दिष्ट ही पन्थ गहना, कुछ भी अपनी तरफ से न चहना॥
लागे तुमको सही, हम करेंगे वही, जिससे मन को तेरे भायँगे।
॥ जहाँ भेजो०॥

इस प्रकार अनन्य प्रेम-भक्तिका 'हरितोषण-व्रत' निभानेवाले हैं—विष्वक्सेनजी, शेषजी, गरुडजी, जय-विजयजी, प्रह्लादजी, अम्बरीषजी, भरतलालजी, लक्ष्मणजी, शत्रुघ्नजी, हनुमान्‌जी, उद्धवजी, व्रजगोपीजन इत्यादि। इन सभी महानुभावोंके लिये इस व्रतकी मूल प्रेरणास्रोतके रूपमें आचार्या हैं—अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंकी अधीश्वरी, प्रभुकी प्राणवल्लभा, नित्यकिशोरी श्रीश्रीजी महारानी जो श्री-भू-लीला (नीला) आदि विविध नाम-रूपोंमें प्रकट रहकर अपने प्रभुको सतत रिझाती रहती हैं। विश्वरूपी रंगमञ्चपर अवतारकालमें इन्हींको श्रीलक्ष्मी, श्रीसीता, श्रीराधा, श्रीरुक्मिणी आदि नामोंसे जाना जाता है। ये सभी अपने प्रभुके प्रति अतिशय दृढ़तापूर्वक अपने व्रतका भलीभाँति निर्वाह करते हैं। इनका यह व्रत पतिव्रता माताओं-बहनोंके 'असिधारा-व्रत' की भाँति होता है। स्वामी श्रीयोगानन्दाचार्यजीका कथन है—

प्रीति कीजिये राम सों जिमि पतिबरता नारि।
जिमि पतिबरता नारि, न कछु मन में अभिलाषै।
तैसेइ भक्त अनन्य टेक चातक ज्यों राखै॥
राम रूप रस त्यागि विषय रस स्वाद न चाखै।
'जोगानन्द' सुजान आन को नाम न भाखै॥
नेकहि में ब्रत नासई आन की ओर निहारि।
प्रीत कीजिये राम सों जिमि पतिबरता नारि॥

(श्रीवैराग्यपचीसी)

यह तो रही हम जीवोंकी ओरसे निभाये जानेवाले व्रतकी बात। अब एक विशेष बात विचारनेवाली यह है कि इस प्रकारके व्रतनिर्वाहक प्रेमी भक्तजनोंके प्रति सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार एवं सर्वनियामक प्रभु भी सक्रिय होकर अपनी तरफसे कुछ व्रतोंका निर्वाह करनेवाले हो उठते हैं। जैसा कि हमारे आर्षग्रन्थोंके विभिन्न स्थलोंपर स्वयं प्रभुने विविध प्रकारसे आश्वासन भी दिया है तथा अनेकानेक भक्तोंके जीवनमें क्रियात्मकरूपसे निभाते हुए वे दृष्टिगोचर भी होते हैं।

प्रथमत: तो श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (युद्ध० १८।३३)-में अपने एकव्रतका उद्घोष करते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

अर्थात् जो प्राणी मेरे सम्मुख आकर एक बार भी मुझसे याचना करता है कि प्रभो! मैं आपहीका हूँ, आपकी शरणमें आया हूँ। आप कृपा करके मुझे अपने श्रीचरणोंमें ठिकाना दीजिये, फिर तो मैं उसे सर्वथा अपनाकर सकल प्रकारसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा दृढ़ संकल्प है, यह मेरा अटूट व्रत है, वह चाहे जिस किसी भी प्रकारका प्राणी क्यों न हो।

श्रीरामचरितमानस (५।४४।८)-में भी विभीषण-शरणागतिके प्रसंगमें प्रभु कहते हैं—

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

और लङ्काके युद्धके अन्तर्गत अपने इस व्रतको क्रियात्मकरूपमें करके भी दिखा दिया। विभीषणके ऊपर आनेवाली अमोघ शक्तिके प्रहारको अपनी छातीपर झेलकर शरणागत विभीषणकी रक्षा कर ली।

श्रीमद्भगवद्गीतामें भी प्रभु आश्वासन देते हुए

कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥
(९।२२)

अर्थात् जो शरणागत भक्त अनन्यभावसे निरन्तर मेरे चिन्तन-परायण रहकर मेरी उपासनामें संलग्न रहते हैं, मैं भी उन भक्तोंका योग-क्षेम वहन करता हूँ। अन्तिम समयके लिये भी आश्वासन देते हुए कहते हैं—

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥
(गीता १२।६-७)

अर्थात् जो भक्त अपने समस्त कर्मोंको मेरे प्रति समर्पित करके अनन्यभावसे सतत मेरा ध्यान करते हुए मेरी उपासनामें लगे रहते हैं, उनको संसाररूपी मृत्यु-सागरसे सम्यक् प्रकारसे शीघ्र ही मैं समुद्धृत कर लेता हूँ। यह भी मेरा व्रत है।

इस प्रकार भक्त भगवान्‌के प्रति एवं भगवान् भक्तके प्रति व्रती होकर अपना-अपना व्रत निभाते रहें तो यह भयावह भवसागर भी प्रेमसागर एवं परमानन्दसागरके रूपमें परिणत हो जाय।

इनके औपचारिक एवं संवैधानिक व्रतोंमें हरिवासर कहलानेवाली एकादशी, श्रीरामनवमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीवामनद्वादशी, श्रीनृसिंहचतुर्दशी, श्रीजानकीनवमी एवं श्रीराधाष्टमी आदि प्रधान हैं।

यह चर्चा तो रही व्रतकी दिशामें, अब आइये थोड़ी चर्चा पर्व-त्योहार एवं उत्सवोंकी दिशामें भी कर लें। इस संदर्भमें एक पुरानी ग्राम्य लोकोक्ति सुननेको मिलती रही है—

'ऐ बहुरिया! साँस लो, चरखा छोड़ो जाँत लो।'

कोई सासजी अपनी बहूसे कह रही हैं कि अरी बहू! चरखा चलाते हुए बहुत देर हो गयी। तुम थक गयी होगी अथवा ऊब गयी होगी, अतएव थोड़ी देरके लिये श्वास ले लो अर्थात् इस चरखा चलानेवाली क्रियासे अवकाश लेकर विश्राम भी तो कर लो, किंतु विश्रामका ढंग होगा कि चरखा छोड़कर अब चक्की चलाना प्रारम्भ कर दो। कोई सोच सकता है कि यह कैसा विश्राम! चरखासे भी कड़ा परिश्रम पड़ गया तो मेरे रामको इसमें जो भाव भाया है, वह यह है कि प्रत्येक आत्मकल्याणार्थी मानवको यही उचित और आवश्यक है कि अपने मन-चित्त-बुद्धि-देह एवं इन्द्रियरूपिणी बहुरियाको सतत किसी-न-किसी कल्याणप्रद साधन-साध्यकी दिशामें जोड़े रहे, ताकि निरर्थक—ठाले बैठे रहकर ये हमारे करण अपने किसी व्यवसायके अभावमें किन्हीं अनर्थकारी दिशामें मोड़ न ले लें। लोकोक्ति है—**'खाली मन शैतानका अड्डा बन जाता है।'** इस दिशामें हमारी संस्कृतिके ये सभी व्रत, पर्व, त्योहार एवं उत्सव आदि अपनेमें बाहुल्य लिये हुए अतिशय उपयोगी एवं सहयोगी सिद्ध होते हैं। प्रथम तो भगवदवतारपरक जयन्तियाँ, फिर तिथिपरक—एकादशी, प्रदोष, शिवरात्रि, गणेशचतुर्थी आदि। तत्पश्चात् वारपरक—सोमवार, मङ्गलवार एवं गुरुवार आदिके व्रतोत्सवोंके माध्यमसे हमलोग अपनेको धर्मकी ओर, ज्ञान-वैराग्यकी ओर, देवी-देवताओंकी ओर तथा अन्तमें परम प्रभुकी ओर मोड़नेमें और साधन-साध्य अर्थात् अपने आराध्यसे जोड़नेमें सफलता प्राप्त कर पाते हैं एवं प्रकारेण, क्रम-क्रमसे, ऋषि-मुनिनिर्दिष्ट मार्गपर चलते-चलते प्राणी पहले साधक, फिर सिद्ध होकर भगवत्प्राप्तिपूर्वक कृतकृत्य हो जाता है।

नेम जगावै प्रेम को, प्रेम जगावै जीव।
जीव जगावै सुरति को, सुरति मिलावै पीव॥

अतएव प्रत्येक आत्मकल्याणार्थी मानवके लिये इस वर्षका कल्याण पत्रिकाका यह 'व्रतपर्वोत्सव-अङ्क' बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा—

नारायण कल्याण को, व्रतपर्वोत्सव-अङ्क।
पढ़ि-सुनि-गुनि-अपनाय के, पाठक होयँ अपङ्क॥
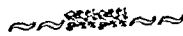
व्रतोंका शिरोमणि—'काशीवास'

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है, दुनियामें जितनी भी हलचलें होती हैं, सभी सुखप्राप्तिके प्रयासके लिये ही होती हैं। व्रतोंमें इतनी शक्ति है कि इनसे इहलोक तथा परलोक दोनोंमें अपरिमित सुख मिलता है। इसलिये लोग उपवास आदिके कष्टकर नियमोंका पालन करते हैं, किंतु व्रतोंसे अतीन्द्रिय आत्यन्तिक सुख जिसे मुक्ति कहा जाता है नहीं प्राप्त हो पाती। वह मुक्ति काशीवाससे सहज ही प्राप्त हो जाती है। इसी अभिप्रायको व्यक्त करनेके लिये काशीवासको व्रतोंका शिरोमणि कहा गया है।

सद्योमुक्तिका एकमात्र क्षेत्र—काशी

काशीकी सबसे बड़ी महत्ता यह है कि यहाँ मृत्यु होते ही मुक्ति मिल जाती है अर्थात् आत्मा परब्रह्म परमात्मा हो जाता है। यह सद्योमुक्ति विश्वमें अन्य कहीं सुलभ नहीं है।

संशय और उसका परिहार—इस तथ्यपर निम्नलिखित श्लोकसे संशय हो जाता है—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

अर्थात् अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका (उज्जयिनी) और द्वारावती (द्वारका)—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं। काशी भी इन सात पुरियोंमें ही है, फिर काशीमें ही सद्योमुक्ति होती है, अन्यमें नहीं—यह कैसे कहा जाता है? इसका उत्तर अगली अर्द्धालीसे प्राप्त हो जाता है—

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि च।

(स्क० पु०, काशीखण्ड ६।७१)

अर्थात् काशीके अतिरिक्त अन्य जो मुक्तिदायिनी पुरियाँ हैं, वे अपने क्षेत्रमें मरनेवालेको किसी-न-किसी तरह काशी पहुँचा देती हैं और काशीमें उनको सद्योमुक्ति मिल जाती है। इस तरह मोक्षदायिका तो सातों पुरियाँ हुईं, परंतु काशीके अतिरिक्त अन्य पुरियाँ सद्योमुक्ति नहीं देतीं।

इस सम्बन्धमें काशीखण्डमें विस्तारपूर्वक समझाया गया है—

काशी काञ्ची च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि।
मथुराऽवन्तिका चैताः सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदाः॥
श्रीशैलो मोक्षदः सर्वः केदारोऽपि ततोऽधिकः।
श्रीशैलाच्चापि केदारात् प्रयागं मोक्षदं परम्॥
प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादविमुक्तं विशिष्यते।
यथाऽविमुक्ते निर्वाणं न तथा क्वाप्यसंशयम्॥
अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तिकराणि च।
काशीं प्राप्याऽपि मुच्येत नान्यथा तीर्थकोटिभिः॥

(काशीखण्ड ६।६८—७१)

काशीखण्डने दो उदाहरण देकर इस तथ्यको और स्पष्ट कर दिया है—

१-शिवशर्माका आख्यान—मथुरामें शिवशर्मा नामक एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण रहते थे। वे वेदों, पुराणों, धर्मशास्त्रों और वेदाङ्गोंके अध्ययन करनेके बाद धनुर्वेद, आयुर्वेद, नाट्यशास्त्र तथा अनेक अर्थशास्त्रों (अर्थोपार्जन करानेवाली विद्याओं)-के भी निष्णात विद्वान् हो गये थे। धर्मके अनुसार कार्य करते हुए उन्होंने पर्याप्त मात्रामें धनार्जन किया और भोगोंमें लिप्त हो गये तथा बहुत-से गुणी पुत्रोंको भी उत्पन्न किया। इस तरह भोगासक्तिके कारण वे वेदकी उस चेतावनीको भूल गये थे, जिसमें यह कहा गया है कि इस मनुष्य-शरीरको पाकर यदि इसमें ईश्वरको जान गये तो बहुत बड़ा लाभ है, अन्यथा बहुत बड़ा विनाश है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

(केनोपनिषद् २।५)

एक दिन उन्होंने दर्पणमें देखा कि कानके समीप उनके बाल सफेद हो गये हैं, तब उन्हें वेदकी वह चेतावनी याद आ गयी और वे पश्चात्तापमें डूब गये। वे सोचने लगे कि अब मुझे किसी तरह ईश्वरका ज्ञान प्राप्तकर मुक्त होना है, अब मुझे दुनियासे सम्पर्क छोड़ देना चाहिये। किंतु ईश्वरका ज्ञान प्राप्त करना आसान काम तो है नहीं, अतः मोक्षदायिनी पुरियोंकी यात्रा करूँ, जहाँ मरते ही मुक्ति मिल जाय।

ऐसा विचार कर शिवशर्मा सबसे पहले अयोध्यापुरी

पहुँचे, वहाँ सरयूजीमें स्नान कर पितरोंका श्राद्ध कर तर्पण किया। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पाँच रात्रितक अयोध्यामें निवास किया और उसके बाद तीर्थराज प्रयाग पहुँचे। वे जानते थे कि प्रयागमें गङ्गा, यमुना और सरस्वतीके त्रिवेणीसंगममें स्नान करनेवाला व्यक्ति परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है—

सिताऽसिते सरिच्छ्रेष्ठे यत्रास्तां सुरदुर्लभे।
यत्राप्लुतो नरः पापः परं ब्रह्माधिगच्छति॥

(का०ख० ७।४६)

'पुनरावृत्तिर्न प्रयागार्द्रवर्ष्मणाम्॥'

प्रयागमें पूरे माघभर वास कर वे काशी आये। उन्होंने शास्त्रविधिके अनुसार काशीवास किया। अब उनके मनमें आया कि बहुत-सी मोक्षदायिनी पुरियाँ बच गयी हैं अब उनमें भी चलें। वे जानते थे कि काशी छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहिये। फिर भी प्रारब्धवश वे अवन्तिका (उज्जयिनी) पुरी पहुँच गये। कुछ दिन उज्जयिनीमें वास करके वे काञ्ची गये। सात राततक काञ्चीवास कर वे द्वारका पहुँचे। वहाँ कुछ दिन तीर्थवास कर मुक्तिक्षेत्र हरिद्वार चले गये। वहाँपर तीर्थोपवास, रात्रिजागरण, प्रात:काल गङ्गास्नान और पितरोंका तर्पण कर ज्यों ही पारण करना चाहा, त्यों ही शीतज्वरसे पीडित हो काँपने लगे। हजार बिच्छुओंके काटनेसे जो क्लेश होता है, उसी क्लेशमें वे पड़ गये और उनका देहान्त हो गया। उन्होंने देखा कि वैकुण्ठसे एक विशाल विमान आया है और विष्णुके दो गण बहुत ही आदरके साथ उनको पीताम्बर पहनाकर चतुर्भुजरूप देकर उस विमानमें बैठाकर आकाशमें ले जा रहे हैं। विष्णुदूतोंने उन्हें मीठी-मीठी बातोंसे तृप्त करते हुए पिशाचलोक और यमलोकसे प्रारम्भ कर सभी लोकोंमें घुमाया और अन्तमें वैकुण्ठलोक ले गये। वैकुण्ठलोकमें विष्णुदूतोंने उन्हें सब प्रकारके भोग प्रदान किये। उन दिव्य भोगोंमें डूबे रहनेपर भी वेदकी वह चेतावनी कि इसी मनुष्य-शरीरसे ईश्वरका ज्ञान प्राप्त कर लो नहीं तो बहुत बड़ा विनाश होगा, उन्हें सदैव याद रहती थी। उन्हें सदैव इस बातका पश्चात्ताप रहता कि जब मैं मनुष्य-शरीरमें था तो ईश्वरका ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये था। पर न प्राप्त कर सका और बिना ज्ञानके मुक्ति मिल नहीं सकती है, उससे अब मैं दूर हूँ, क्या करूँ? उनके हृदयमें उठते हुए विचारोंको भगवान् विष्णुके गणोंने जान लिया और उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—शिवशर्मा! तुम चिन्तित न हो; क्योंकि तुमने मोक्षदा पुरियोंकी यात्रा मोक्ष प्राप्त करनेके उद्देश्यसे की थी और मोक्षपुरी हरिद्वार (मायापुरी)-में तुम्हारी मृत्यु हो गयी थी, इसीके पुण्यप्रभावसे तुम ये दिव्य भोग भोग रहे हो। अब उस पुण्यके शेष अंशसे तुम पृथ्वीपर नन्दिवर्धन नगरके राजा होगे। वहाँ तुम्हारा शरीर हृष्ट-पुष्ट और बहुत ही सुन्दर होगा और तुम समृद्धवान् होगे। तुम्हारा कोई शत्रु नहीं रहेगा, सभी राजा तुम्हारे वशवर्ती होंगे। तुम प्रजाके लिये पृथ्वीपर सौ-सौ स्वर्ग उतार दोगे। उसके बाद पुत्रोंपर राज्यका भार सौंपकर तुम काशी जाओगे और वहाँ मुक्त हो जाओगे, किंतु अभी ब्रह्माके पूर्ण एक वर्षपर्यन्त वैकुण्ठलोकमें यहाँके भोगोंको भोगो। फिर एक वर्षपर्यन्त अप्सरागणके साथ तुम्हें दिव्य भोग भोगने होंगे।

यह सुनकर कि मैं मुक्त हो जाऊँगा, शिवशर्माकी प्रसन्नताकी सीमा न रही और जैसा कि विष्णुके गणोंने बताया था वैसे ही वे नन्दिवर्धन नगरके राजा हुए तथा राज्यभार पुत्रोंको सौंपकर काशीवासके लिये चले गये। शास्त्रविधिसे काशीवास करते हुए वहीं उनकी मृत्यु हुई और सद्योमुक्ति प्राप्त हो गयी।

इस इतिहासको महान् समर्थ तपस्वी अगस्त्य ऋषिने लोपामुद्राको सुनाया था। अगस्त्यजीने अपनी पतिव्रता पत्नी लोपामुद्राको काशीवासकी महिमाके संदर्भमें दूसरा—एक और आख्यान सुनाया—

२-ब्राह्मणकन्याका आख्यान—तुर्वसु नामक ब्राह्मणकी एक धर्मनिष्ठ सुन्दर कन्या थी। वह जितनी सौन्दर्यशालिनी थी उतनी ही सदाचारसम्पन्ना भी थी। वयस्क होनेपर तुर्वसुने अपनी कन्याका विवाह महात्मा वैध्रुवसे कर दिया। किंतु थोड़े दिनोंके बाद वैध्रुवकी मृत्यु हो गयी। तुर्वसुकी उस कन्याने *'जाही बिधि राखे राम ताहीं बिधि रहिये'* के सिद्धान्तके अनुसार वैधव्यको ही व्रत मानकर स्वीकार कर लिया। तीर्थयात्रा करते समय किसी अवसरपर उस ब्राह्मणकन्याका मोक्षदा पुरी अवन्ती (उज्जयिनी)-में देहान्त हो गया। मोक्षदा पुरीमें मरनेके पुण्यसे वह पाण्ड्य राजाकी पुत्री हुई और नन्दिवर्धनके

राजा बने हुए शिवशर्मासे उसका विवाह हो गया। अपने पतिके साथ वह भी काशी आयी और काशीवासके समय मृत्युको प्राप्त होनेसे उसकी भी सद्योमुक्ति हो गयी।

इस उदाहरणको सुनाकर महर्षि अगस्त्यने आवश्यक समझा कि उस तथ्यको दुहरा दिया जाय जिसका वे उदाहरण दे रहे हैं। उन्होंने लोपामुद्रासे कहा—

अयोध्यायामथाऽवन्त्यां मथुरायामथाऽपि वा।
द्वारवत्यां च काञ्च्यां वा मायापुर्यामथो नृप॥
अपि पातकिनो ये च कालेन निधनं गताः।
ते हि स्वर्गादिहागत्य काश्यां मोक्षमवाप्नुयुः॥

(काशीखण्ड २४।६३-६४)

पहले उपाख्यानसे पता चलता है कि मोक्षद क्षेत्र हरिद्वारने शिवशर्माको मोक्ष न देकर मुक्ति देनेके लिये उसे काशीकी प्राप्ति करा दी। इसी प्रकार दूसरे उपाख्यानमें दिखाया गया है कि मोक्षदा पुरी अवन्तीने भी अपने क्षेत्रमें मरनेवाली ब्राह्मणकन्याको मुक्तिके लिये काशी प्रदान करा दी।

काशीका स्वरूप

इन चर्मचक्षुओंसे काशीके स्वरूपको नहीं जाना जा सकता। अतः आइये शास्त्रोंकी आँखोंसे इसके वास्तविक स्वरूपका दर्शन करें—

'काशीरहस्य'से पता चलता है कि काशी प्राकृत न होकर ब्रह्मस्वरूप है—

सदाशिवो महादेवो लिङ्गरूपधरः प्रभुः।
मया स्मृतो लोकगुप्त्यै प्रादेशपरिमाणतः॥
लिङ्गरूपधरः शम्भुर्हृदयाद्बहिरागतः।
वृद्धिमासाद्य महतीं पञ्चक्रोशात्मकोऽभवत्॥

अर्थात् भगवान् विष्णु कहने हैं कि लोकको रक्षा करनेके लिये ज्योतिर्लिङ्गरूपधारी सदा कल्याण करने-वाले भगवान् विश्वनाथजीको जब मैंने स्मरण किया तब वे भगवान् शम्भु प्रादेशमात्र (अङ्गुष्ठ और तर्जनीके बीचकी दूरी)-के ज्योतिर्लिङ्गका रूप धारण कर प्रकट हो गये और लगे बढ़ने। बढ़ते-बढ़ते पाँच कोसतक फैल गये।

इस आशयको काशीखण्डने अपने शब्दोंसे स्पष्ट कर दिया है—

अविमुक्तं महाक्षेत्रं पञ्चक्रोशपरीमितम्।
ज्योतिर्लिङ्गं हि तत्क्षेत्रं परं विश्वेश्वराभिदम्॥

अर्थात् पाँच कोसतक फैला हुआ जो अविमुक्त क्षेत्र है, वह ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप स्वयं भगवान् विश्वनाथ हैं।

अविमुक्त क्षेत्रका काशी नाम क्यों पड़ा—अविमुक्त क्षेत्रका दूसरा नाम काशी है। 'काशी' शब्दकी व्युत्पत्ति करते हुए स्कन्दपुराणके काशीखण्डमें लिखा गया है—

काशतेऽत्र यतो ज्योतिस्तदनाख्येयमीश्वरः।
अतो नामापरं चास्तु काशीति प्रथितं प्रभो॥

(काशीखण्ड २६।६७)

स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर जिनके स्वरूपको शब्दसे नहीं समझा जा सकता, वे जिस अविमुक्त क्षेत्रमें सतत प्रकाशित होते रहते हैं, उस अविमुक्त क्षेत्रका दूसरा नाम काशी है।

काशी प्रलयमें भी विद्यमान रहती है—ज्योतिर्लिङ्ग विश्वनाथस्वरूप होनेके कारण काशी प्रलयमें भी विद्यमान रहती है। यह और इसके वासी भी विद्यमान रहते हैं। ब्रह्माके सौ वर्ष बीत जानेपर भी काशी और काशीवासी विद्यमान रहते हैं। प्रलयकालमें भगवान् विश्वनाथ काशीको अपने त्रिशूलके अग्रभागसे उठाते रहते हैं—

यथा यथा हि वर्द्धेत जलमेकार्णवस्य च।
तथा तथोन्नयेदीशस्तत्क्षेत्रं प्रलयादपि॥

(काशीखण्ड २२।८४)

प्रलयके एकार्णवका जल जैसे-जैसे बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे भगवान् विश्वनाथ अपने त्रिशूलके अग्रभागसे काशीको ऊपर उठाते जाते हैं। इस तरह काशी भगवान् विश्वनाथके त्रिशूलके अग्रभागपर स्थित है न अन्तरिक्षमें है, न पृथ्वीपर। लेकिन इस तथ्यको मन्दवुद्धि नहीं देख पाते—

क्षेत्रमेतत्त्रिशूलाग्रे शूलिनस्तिष्ठति द्विज।
अन्तरिक्षे न भूमिष्ठं नेक्षन्ते मूढबुद्धयः॥

(काशीखण्ड २२।८५)

भूर्लोके नैव संलग्नं तत्क्षेत्रं त्वन्तरिक्षगम्।
अयोगिनो न वीक्षन्ते पश्यन्त्येव च योगिनः॥

(काशीखण्ड २५।५८)

तीर्थयात्रा कैसे करें—काशी आनेके लिये जिस

दिन तीर्थयात्रा करनी हो, उसके एक दिन पहले उपवास करे। दूसरे दिन सवेरे नित्यकृत्य समाप्त कर गणेशपूजन, श्राद्ध करे और ब्राह्मणभोजन तथा साधुसेवन भी यथाशक्ति करे। फिर पारण कर नियम धारण कर प्रसन्नचित्तसे यात्रा प्रारम्भ करे।

तीर्थमें पहुँचकर उपवास और सिरका मुण्डन कराना चाहिये। सधवा महिलाओंको केवल दो अङ्गुल वेणीदान करना चाहिये, उन्हें सिर नहीं मुड़ाना चाहिये। नित्यकर्म कर श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। श्राद्धका काल विहित हो या अविहित हो तीर्थमें श्राद्ध अवश्य करे।

काशीवास-विधि

शास्त्रने बताया है कि काशीवास करनेवालेको प्रतिदिन कोई-न-कोई यात्रा अवश्य करनी चाहिये—

न वन्ध्यं दिवसं कुर्याद् विना यात्रां क्वचित् कृती।

काशीखण्डमें यह भी लिखा है कि एक दिन भी अगर यात्रा न की जाय तो इससे उनके पितरोंको बहुत निराशा मिलती है—

यस्य वन्ध्यं दिनं यातं काश्यां निवसतः सतः॥
निराशा पितरस्तस्य तस्मिन्नेव दिनेऽभवन्।

काशी यात्राओंका तीर्थ है, काशीखण्डके सौवें अध्यायमें उन यात्राओंका विस्तारसे वर्णन है। यहाँ प्रतिदिन करनेवाली कुछ यात्राओंका निर्देश किया जा रहा है—

१-दो तीर्थोंकी यात्रा—पहला तीर्थ है मणिकर्णिकाका स्नान और दूसरा है भगवान् विश्वेश्वरका दर्शन। मणिकर्णिकामें गङ्गाजीका हृदय और पार्वतीका मुख (गौरीमुख) माना जाता है। इसलिये यहाँके गङ्गास्नानका अधिक महत्त्व है—

स्नात्वा मुमुक्षुर्मणिकर्णिकायां
मृडानि गङ्गाहृदये त्वदास्ये।
विश्वेश्वरं पश्यति योऽपि कोऽपि
शिवत्वमायाति न पुनर्न जन्म॥

(सनत्कुमारसंहिता)

अर्थात् शंकरजी गौरीजीसे कह रहे हैं कि हे पार्वती! गङ्गाके हृदयस्वरूप और तुम्हारे मुख (गौरीमुख)-रूप श्रीमणिकर्णिकातीर्थमें स्नानकर जो भगवान् विश्वनाथका दर्शन करता है, वह शिवस्वरूप हो जाता है और फि उसका जन्म नहीं होता।

काशीरहस्यमें चक्रपुष्करिणीतीर्थमें स्नानका विधा किया गया है, इसलिये कुछ समर्थ काशीवासी पहल गङ्गामें स्नानकर उसी कपड़ेसे चक्रपुष्करिणीमें स्नान कर हैं। पुनः गङ्गामें स्नान करके भगवान् विश्वनाथका दर्श करते हैं।

२-तीन तीर्थोंकी यात्रा—लिङ्गपुराणमें बताय गया है—

काश्यां तीर्थत्रयी श्रेष्ठा नित्यं सेव्या प्रयत्नतः।
आदौ स्नात्वा प्रयागे तु पञ्चगङ्गा ततः परम्॥
ततः पुष्करिणीतीर्थे स्नात्वा मुच्येत बन्धनात्॥

पहला तीर्थ है दशाश्वमेधमें प्रयागघाट, दूसरा तीर्थ है पञ्चगङ्गा, तीसरा मणिकर्णिका—इन तीनों तीर्थोंमें स्नानकर विश्वनाथजीका दर्शन करना चाहिये।

३-चार तीर्थोंकी यात्रा—पहले पिप्पलीतीर्थमें स्नानकर, पञ्चगङ्गाघाटपर स्नान करे। उसके बाद मणिकर्णिकामें स्नान कर ज्ञानवापीमें स्नान करे (ज्ञानवापीके जलसे मार्जन करे) तथा विश्वनाथजीका पूजन करे।

४-पाँच तीर्थोंकी यात्रा—पहले असीसंगमपर तब दशाश्वमेध (प्रयागघाट)-पर स्नान करे। फिर वरुणासंगमके पास पादोदकतीर्थमें स्नानकर पञ्चगङ्गामें स्नान करे। तत्पश्चात् मणिकर्णिकामें स्नानकर भगवान् विश्वनाथका दर्शन-पूजन करना चाहिये।

इन चारों यात्राओंमेंसे किसी-न-किसी यात्राको काशीमें वास करनेवालोंको अवश्य करना चाहिये।

काशीवासके समय किसी तरहका दान नहीं लेना चाहिये। भोजन हलका करना चाहिये। प्रत्येक दशामें संतुष्ट रहना चाहिये। सभी संगतियोंको छोड़ देना चाहिये। मनको वशमें रखना चाहिये, स्वाध्याय और जप-तपमें लगे रहना चाहिये। क्रोध आदि मानस-विकारोंका बिलकुल त्याग कर देना चाहिये। सर्वदा समदर्शन करता रहे अर्थात् जड या चेतन जो भी दिखायी दे, उसमें अपने आराध्य—परमेश्वरको देखे। (का० ख० ६। ४७—५२)
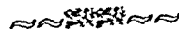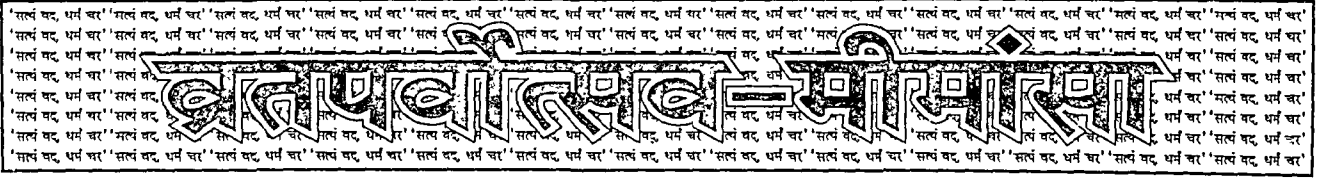
अथातो व्रतमीमांसा

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, व्याकरण-साहित्याचार्य, पूर्वकुलपति)

भारतीय धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परामें आदिकालसे व्रत एवं पर्वोंका अत्यधिक महत्त्व रहा है। व्रत-पर्वोंके सम्यक् अनुष्ठान तथा उनके नियमोंके सविधि अनुपालनसे शारीरिक और मानसिक सन्तुलन बना रहता है। शरीर, मन, बुद्धि, विचार आदि सभी स्वस्थ रहते हैं, जिससे ऐहलौकिक अभ्युदयके साथ पारलौकिक परम कल्याणकी प्राप्ति सुलभ होती है। इन्हीं कारणोंसे भारतीय सनातन सांस्कृतिक स्वस्थ-परम्परामें व्रत-पर्वोंके विधान और अनुष्ठानपर विस्तारसे विवेचन किया गया है।

(क) व्रत—व्रियते इति व्रतम्[1], जिसका वरण, ग्रहण, अनुपालन, आचरण, अनुष्ठान किया जाय उसे व्रत कहते हैं। **'वृञ् वरणे'** धातुसे कर्ममें **'अतच्'** प्रत्ययके द्वारा व्रत शब्द निष्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त **'वृञ् आवरणे', 'वृतु' वर्तने, 'वृतु' वरणे, 'वृतु' व्यवहारे** तथा **'व्रति' नियमने**—इन धातुओंसे भी व्रत[2] शब्द बनता है। फलतः व्रत शब्दके पुण्य-जनक उपवास, नियम, निष्ठा, अनुष्ठान, नियमन, निषिद्ध-वस्तु-वर्जन[3], संकल्प, संयम, नियामक, नियम-विधि, कर्तव्य-कर्म आदि अनेक अर्थ होते हैं।

अमरकोषमें व्रत और नियमको पर्यायवाचक माना गया है तथा उपवास, पुण्यक आदिको व्रतका प्रकार कहा गया है।[4]

महाभारत अनुशासनपर्वके १४९वें अध्यायमें भीष्मपितामहद्वारा निर्दिष्ट 'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र' में विष्णुके लिये दो बार 'सुव्रत' नाम आये हैं। जिनका अर्थ होता है—**'शोभनं व्रतं जगद्व्यवस्थादिनियमो यस्य स सुव्रतः।'** यहाँ 'व्रत' शब्द व्यवस्था-नियमके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है।

नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत्।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः॥

पानीसे दूधको पृथक् करनेकी प्रक्रियामें हंस ही यदि आलस्य करे तो संसारमें दूसरा कौन अपने कुल-धर्मका पालन करेगा? यहाँ कुलक्रमागत कर्तव्य धर्म-कर्मके अर्थमें 'व्रत' शब्द आया है।

भीष्मने आजीवन ब्रह्मचारी रहनेका व्रत लिया था। यहाँ 'व्रत' शब्द संकल्पके अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। इस तरह 'व्रत' शब्द अपने धात्वर्थोंकी विशेषताओंसे विभिन्न अर्थोंको प्रकाशित करता है, जिसका प्रसंग-विशेषसे अर्थ-विशेष ज्ञात होता है।

निष्कर्षतः **सत्कर्म** व्रत है। अभीष्ट कर्म करनेका **संकल्प** व्रत है। **धर्माचरण** व्रत है। पुण्य-प्राप्तिके लिये विहित तिथिमें **उपवास** करना व्रत है। शास्त्रविहित नियमोंका **पालन** करना व्रत है। ज्ञात या अज्ञात रूपसे किये गये पापके निवारणार्थ अथवा अभीष्ट फलप्राप्तिके लिये चान्द्रायण, प्राजापत्य आदि व्रत हैं। भारतीय सनातन हिन्दू-संस्कृतिमें व्रत इस प्रकार अनुस्यूत—मिला हुआ है कि वह अनेक रूपोंमें प्रकट होता है।

(ख) व्रतोंके मुख्य भेद—सामान्यतः व्रतके तीन प्रमुख भेद हैं—नित्य, नैमित्तिक और काम्य।

ध्यातव्य है कि नित्य और नैमित्तिक कर्मोंसे नित्य और नैमित्तिक व्रतोंमें थोड़ा-सा अन्तर है। नित्य कर्मके करनेमें कोई पुण्य नहीं होता, परंतु नहीं करनेसे पाप होता है। जैसे द्विजातिके लिये सन्ध्या-वन्दन। नैमित्तिक कर्म

१-वृञ् वरणे (वृणोति) स्वादिगणीय वृञ् धातुसे कर्ममें अतच्।

२-वृञ् आवरणे (वारयति/वरति) चुरादिगणीय वृञ् धातुसे अतच्। वृतु वर्तने (वर्तते) भ्वादिगणीय वृतु धातुसे कर्तरि अच्। वृतु वरणे (वृत्यते) दिवादिगणीय वृतु धातुसे कर्तरि अच्। वृतु व्यवहारे (वर्तयति/ वर्तति) चुरादिगणीय वृतु धातुसे अच्। व्रति नियमने सौत्र व्रति धातुसे भावे अच् प्रत्यय।

३-मृणु मिश्र श्लक्ष्ण, लवण-व्रत-वस्त्र-हल-कल-कृत-तूस्तेभ्यो णिच् पाणिनि सूत्र ३।१।२१ पर वार्तिक है 'व्रताद् भोजन तन्निवृत्त्योः' 'व्रत' शब्दसे भोजन और भोजनके वर्जन अर्थोंमें 'व्रत' शब्दसे णिच् होता है। यथा पयः शूद्रान्नं वा व्रतयति—अर्थात् पयो व्रतयति—पयो भुङ्क्ते। शूद्रान्नं व्रतयति—निषिद्धान्नं वर्जयति।

४-नियमो व्रतमस्त्री तच्चोपवासादि पुण्यकम्। (अमरकोष २।७।३७)

करनेसे पुण्य होता है और नहीं करनेसे पाप होता है। जैसे सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहणमें स्नानादि करनेसे पुण्य और स्नानादि न करनेसे पाप होता है। काम्य कर्म उसे कहते हैं, जिसके करनेसे पुण्य होता है और न करनेसे पाप भी नहीं होता है। किंतु नित्य, नैमित्तिक, काम्य सभी व्रतोंके करनेमें पुण्य-ही-पुण्य होता है। जैसे पुण्य-प्राप्तिके लिये अनुष्ठित एकादशी, चतुर्दशी आदि नित्य व्रत, पापक्षयपूर्वक पुण्यप्राप्ति-निमित्तक चान्द्रायण, प्राजापत्य आदि नैमित्तिक व्रत तथा सुख-सौभाग्य आदि विशिष्ट फलप्राप्तिकी कामनासे कृत अनन्तचतुर्दशी, वटसावित्री आदि काम्य व्रत—ये सभी पुण्य-फल देनेवाले होते हैं।

रामनवमी-व्रतके प्रसंगमें 'रामार्चन' में सूचित किया गया है कि नित्य, नैमित्तिक और काम्य व्रत निष्काम-भावनासे श्रद्धापूर्वक भगवत्प्राप्त्यर्थ करनेपर निष्काम व्रत हो जाते हैं।[१]

(ग) व्रतकी विधि—कौन-सा व्रत किस स्थितिमें, किस समय और किस प्रकारसे करना चाहिये इसका सविस्तार प्रतिपादन धर्मशास्त्र तथा पुराणोंमें किया गया है।

महर्षि देवलके अनुसार प्रातःकालीन उपाहार (भोजन) किये बिना स्नानादि नित्य कर्म कर स्वस्थ चित्तसे सूर्यादि पञ्चदेवता (सूर्य, विष्णु, गणेश, महेश और दुर्गा)-की पूजा कर उन्हें श्रद्धा निवेदन करते हुए व्रत करना चाहिये।[२] ब्रह्मचर्य, शौच, सत्य-भाषण और निरामिष भोजन सभी प्रकारके व्रतोंमें प्रशस्त माने गये हैं।[३] अतः व्रतीको इन निर्देशोंका सम्यक् अनुपालन करना चाहिये।

रामनवमी, कृष्णाष्टमी, शिवरात्रि, दुर्गाष्टमी, जानकी-नवमी, राधाष्टमी आदि तिथि-मूलक व्रतोंमें विहित तिथि और विहित कालका विशेष ध्यान रखना चाहिये। व्रतोंके काल-विशेषमें ही अनुष्ठित व्रत-विशेष अभीष्ट फल देता है। अतः विहित समयका विस्तारसे विचार किया गया है, जिसका विधिवत् अनुपालन परमावश्यक माना गया है।

(घ) कुछ प्रचलित प्रसिद्ध व्रत—भारतमें वर्षभर प्रतिदिन कोई-न-कोई व्रत होता ही रहता है। इनमें नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य ऐसे व्रत हैं, जिनका आज संस्कृत शिक्षाके ह्रासके कारण परिचय अपेक्षित हो गया है—

(१) एकभुक्तव्रत—इस व्रतमें व्रती अहोरात्रमें एक ही बार भोजन करता है। भोजनके समयके अनुसार एकभुक्त तीन प्रकारका होता है। दिनके आधे भाग बीतनेपर एकभुक्त (१) **'स्वतन्त्र'** एकभुक्त कहलाता है। मध्याह्नोत्तरके एकभुक्तको (२) **'अन्याङ्ग'** कहते हैं और अपराह्ण या सायाह्नसे पूर्वका एकभुक्त (३) **'प्रतिनिधि'** कहा जाता है।

(२) नक्तव्रत—नक्तका अर्थ है रात्रि। रातमें एक बार भोजन लेना 'नक्तव्रत' है। इसमें गृहस्थके लिये रातमें ही भोजन करनेका विधान है, पर विधवा तथा संन्यासीके लिये सूर्यास्तसे पहले नक्तव्रत विधेय है।

(३) अयाचितव्रत—बिना माँगे जो कुछ भोज्य-वस्तु मिले उसे निषिद्ध (सायं, प्रदोष आदि) समयको छोड़कर अहोरात्रमें केवल एक बार लेना 'अयाचितव्रत' कहलाता है।

(४) मितभुग्व्रत—प्रतिदिन अहोरात्रमें केवल दस ग्रास या एक निश्चित परिमाणमें एक बार भोजन 'मितभुग्व्रत' होता है।

(५) चान्द्रायणव्रत—चन्द्रमाकी विशेष आराधना करनेके कारण इसे 'चान्द्रायणव्रत' कहते हैं। चन्द्रकलाके वृद्धि-ह्रासके अनुसार चान्द्रायणमें भोजनके ग्रासमें वृद्धि और ह्रास होते हैं। शुक्लपक्षकी प्रतिपदामें १ ग्रास, द्वितीयामें २ ग्रास, इस तरह क्रमशः बढ़ाते हुए पूर्णिमामें १५ ग्रासोंका ग्रहण किया जाता है। उसके बाद कृष्ण प्रतिपदाको १४, द्वितीयाको १३ ग्रास, इस तरह अवरोह-क्रमसे घटाते हुए चतुर्दशीको १ ग्रास लिया जाता है। अमावास्याको निराहार रहना पड़ता है। इस प्रकार आरोहपूर्वक अवरोह-क्रमसे मासभर किया गया चान्द्रायणव्रत 'यवमध्य' कहलाता है।

चान्द्रायणका एक दूसरा प्रकार भी है, जिसमें अमावास्याके बाद शुक्ल प्रतिपदाको १४ ग्रास, द्वितीयाको १३ ग्रास, इस प्रकार अवरोह-क्रमसे घटाते हुए पूर्णिमाको १ ग्रास और उसके बादकी कृष्ण प्रतिपदाको १ ग्रास, द्वितीयाको २ ग्रास, इस तरह आरोह-क्रमसे बढ़ाते हुए चतुर्दशीको १४ ग्रास भोजन किया जाता है और अमावास्याको

१-नित्यं नैमित्तिकं काम्यं व्रतं वेति विचार्यते। निष्कामानां विधानात्तु तत्काम्यं तावदिष्यते॥ (रामार्चन)

२-अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वा चैव समाहितः। सूर्यादिदेवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत्॥

३-ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमामिषवर्जनम्। व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठानीति निश्चयः॥ (देवलस्मृति)

निराहार रहा जाता है। इस तरह अवरोहपूर्वक आरोह-क्रमसे अनुष्ठित चान्द्रायणव्रतको **'पिपीलिकातनु'** या **'पिपीलिकामध्य'** भी कहते हैं।

(६) प्राजापत्यव्रत—प्राजापत्यव्रत १२ दिनोंमें पूरा होता है। इसमें व्रतारम्भके प्रथम तीन दिनोंमें एक बार २२ ग्रासतक भोजन लिया जाता है। तदनन्तर लगातार तीन दिनोंतक प्रतिदिन एक बार २६ ग्रास भोजन लिया जाता है। उसके बादके तीन दिनोंमें अयाचित-पूर्णत: पक्वान्न २४ ग्रास एक बार लिया जाता है और बादके तीन दिनोंमें निराहार ही रहना पड़ता है। इस तरह बारह दिनोंका एक 'प्राजापत्यव्रत' होता है।

(७) पञ्चमहाव्रत—

(क) संवत्सरव्रत—भारतीय श्रुति-स्मृति-पुराणानुसार ब्रह्माजीने चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके प्रथम दिनमें ही सृष्टिका आरम्भ किया था,[1] अत: इसी प्रथम दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे संवत्सरका आरम्भ माना जाता है। विक्रम-संवत्का आरम्भ इसी दिनसे होता है।

चैत्र शुक्लकी उदय-व्यापिनी प्रतिपदामें संवत्सरव्रतका संकल्प किया जाता है। उसके बाद ब्रह्माजीकी षोडशोपचार पूजा की जाती है। तदनन्तर समस्त देवी-देवता त्रुटिसे लेकर कल्पपर्यन्तके सभी काल; अस्त्र, शस्त्र आदि आयुध; आदित्य, विश्वेदेव, वसु, रुद्र आदि समस्त गणदेवता; गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, पिशाच, गुह्यक आदि देव-योनिविशेष; मुनि, महर्षि, देवर्षि, ब्रह्मर्षि आदि सभीका आवाहन कर स्थापना और पूजा की जाती है। अन्तमें विश्वरूप परमपुरुष परमात्माका पूजन कर उनसे प्रार्थना की जाती है कि भगवन्! आपके प्रसादसे मेरा वर्ष मङ्गलमय हो। आपकी कृपासे वर्षभरके रोग, शोक, आधि, व्याधि, ग्रह-पीड़ादि—सभी उपसर्ग समूल नष्ट हो जायँ।[2]

(ख) श्रीरामनवमीव्रत—मध्याह्नव्यापिनी चैत्र शुक्ल नवमीको भगवान् श्रीरामकी जन्म-जयन्तीके उपलक्ष्यमें सकाम या निष्कामभावसे यह रामनवमीव्रत किया जाता है।

(ग) श्रीकृष्णाष्टमीव्रत—रोहिणी नक्षत्रयुक्त भाद्रपद कृष्ण अष्टमीकी निशीथ वेलामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके जन्म-जयन्ती-पुण्यकालमें यह श्रीकृष्णजन्म-जयन्तीव्रत और उसके दूसरे दिन श्रीकृष्णाष्टमीव्रत किया जाता है। यह व्रत भी सकाम-निष्कामभावसे गृहस्थ और वैष्णव सभीके द्वारा किया जाता है।

(घ) श्रीशिवरात्रिव्रत—फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीकी मध्यरात्रिमें भगवान् सदाशिव लिङ्गके रूपमें प्रकट हुए थे। इसलिये यह शिवरात्रिव्रतके नामसे प्रसिद्ध है। रामनवमी, कृष्णाष्टमीकी तरह इसमें भी उपवास किया जाता है। नियमत: प्रतिवर्ष करनेके कारण इन व्रतोंको नित्य-व्रत भी कहते हैं।

(ङ) दशावतारव्रत—भाद्रपद शुक्ल दशमीके दिन दशावतारव्रत किया जाता है। इसमें स्नानादि नित्यकर्म करनेके बाद मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, राम, बलराम-कृष्ण, परशुराम, बुद्ध और कल्कि—इन दशावतारोंकी सविधि पूजा कर अपूपका नैवेद्य समर्पित किया जाता है। विभिन्न अवतारोंके रूपमें भगवान् श्रीकृष्ण[3]की स्तुति की जाती है। अन्य महाव्रतोंकी तरह इस दशावतारव्रतका मिथिलामें अधिक प्रचलन नहीं है।

इन व्रतोंके विधि-विधानके अन्तर्गत अनेक विधिनिषेध भी शास्त्रों-पुराणोंमें निर्दिष्ट हैं, जो विभिन्न पूजा-पद्धतियोंमें प्रतिपादित हैं। इनका यथासम्भव अनुपालन कर्तव्य है।

(च) पर्व और उत्सव—व्रतकी ही श्रेणीमें उसीसे मिलते-जुलते पर्व और उत्सव वर्षभर अनेक रूपोंमें मनाये जाते हैं।

पर्व 'पूरणे' तथा पर्व 'गतौ' धातुसे 'कनिन्' प्रत्यय एवं पृ 'पूरणे' और 'पृ पालने 'पू रणयो:' धातुसे 'वनिप्' प्रत्ययके योगसे 'पर्व' शव्द निष्पन्न होता है। इस तरह विभिन्न धातुओंसे वना हुआ 'पर्व' भी 'व्रत' शव्दकी तरह अनेक अर्थोंको प्रकाशित करता है। कहीं तो 'पर्व' अमावास्या-प्रतिपदा तथा पूर्णिमा-प्रतिपदाके सन्धि-कालको अभिव्यक्त

१-चैत्रे मासि जगद्ब्रह्म ससर्ज प्रथमेऽहनि। (ब्रह्मपुराण)

२-भगवंस्त्वत् प्रसादेन वर्षं क्षेममिहास्तु मे। संवत्सरोपसर्गा मे विलयं यान्त्वशेषत:॥

३-रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन् नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु।
कृष्ण: स्वयं समभवत् परम: पुमान् यो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ (ब्रह्मसंहिता)

करता है, कहीं महाभारतके पर्वकी तरह खण्ड—भागरूप अर्थको द्योतित करता है, कहीं पूर्णताको निर्दिष्ट करता है और कहीं व्रतके अर्थको प्रतिपादित करता है।

व्रतमें उपवासका प्राधान्य होता है और पर्वमें पूजा, पाठादिकी प्रधानता रहती है। शारदीय एवं वासन्तिक आदि नवरात्र, कालीपूजा, सरस्वतीपूजा आदि पर्व हैं। इन्हींमें कुछ पर्वोंसे पितृकर्मका सम्बन्ध होनेपर उसे 'पार्वण' कहते हैं।

इसी शृङ्खलामें उत्सव और त्योहार भी आते हैं, जिनमें नृत्य, गीत, वाद्य आदिकी प्रमुखता पायी जाती है, जिसका स्पष्ट रूप होली, दीपावली आदि उत्सवोंमें देखा जाता है। पर्व और उत्सव दोनों आपसमें ऐसे मिले-जुले हैं कि दोनोंका साथ-साथ भी व्यवहार होता है।

सूक्ष्मेक्षिकया विचार करनेपर व्रत, पर्व और उत्सव—त्योहारमें कुछ मौलिक अन्तर दीखता है। प्राकृतिक जगत्के प्रत्येक कार्यमें सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंमें तारतम्य रहता है। जब तीनोंमें साम्य होता है तो प्रकृति अव्यक्त हो जाती है। सृष्टि-प्रक्रिया अवरुद्ध रहती है। त्रैगुण्यमें वैषम्य अर्थात् इन तीनोंमें न्यूनाधिकरूप विषमता होनेपर ही सृष्टि-प्रक्रिया चलती है।

व्रत, पर्व और उत्सवमें भी प्राकृतिक नियमानुसार सत्त्व, रज और तममें न्यूनाधिक भाव रहता है। इनमें 'व्रत' सत्त्वप्रधान होता है, जिसमें रजोगुण और तमोगुण न्यूनमात्रामें मिश्रित रहते हैं। 'पर्व' रजोगुण-प्रधान एवं सत्त्व-तमोगुणमिश्रित होता है। 'उत्सव' में तमोगुणकी प्रधानता रहती है और सत्त्व, रज गौणरूपसे मिश्रित रहते हैं। इनमें अपने-अपने प्रधान गुणका प्रभाव व्रत, पर्व और उत्सवमें स्पष्ट देखा जाता है। सत्त्वगुण-प्रधान होनेसे सात्त्विक व्रतमें व्रती उपवासानुकूल सात्त्विक आहार, सात्त्विक व्यवहार और तदनुकूल नियमोंके अनुपालनमें संलग्न रहता है। रजोगुण-प्रधान 'राजसपर्व' में गीत-वाद्य, शोभा-सजावट, भोग-राग, प्रसाद आदिमें राजस भाव प्रकट रहता है। तमोगुण-प्रधान 'तामस' उत्सवमें नृत्य, वाद्य, हास-परिहास आदिका प्राधान्य रहता है। इस तरह व्रत, पर्व और उत्सवमें अपना-अपना गुणात्मक परिणाम स्पष्ट प्रतीत होता है।

आज समाजमें व्रत-पर्वोत्सवका असली शास्त्रीय रूप बदलता जा रहा है और उसका दुष्परिणाम भी दीख रहा है। ऐसे समयमें व्रत-पर्वोत्सवके वास्तविक स्वरूप और उनके महत्त्वको जानने-समझने और अनुपालन करनेकी विशेष आवश्यकता है।

पर्व, उत्सव एवं व्रत-पदोंकी निरुक्ति और उनका अर्थ

(एकराट् पं० श्रीश्यामजी दुबे, आथर्वण)

पर्व

भ्वादिगणीय 'पर्व्' धातु पर्वति—पूरा करना, भरना, जोड़ना अर्थमें प्रयुक्त होती है, इसमें अच् प्रत्ययके योगसे 'पर्व' शब्द बनता है जिसका अर्थ है—पूर्ण, भरा हुआ, जुड़ा हुआ तथा गाँठयुक्त। उदाहरणद्वारा पर्वका अर्थ स्पष्ट किया जा रहा है। स्त्री अपूर्ण है, पुरुष अपूर्ण है। विवाहसंस्कारके अनन्तर दोनों मिलकर पूर्ण हो जाते हैं। इसी प्रकार अर्धनारीश्वरमें आधा नारी (स्त्री)+आधा ईश्वर (पुरुष)=पूर्णब्रह्म। इसलिये विवाहका दिन—तिथि गृहस्थके लिये पर्व है। '**द्वादश प्रधयश्चक्रमेकम्**' (अथर्व० १०।८।४) इस मन्त्रमें एक चक्रके बारह टुकड़े हैं। इन्हें परस्पर जोड़ा गया है। जोड़नेसे १२ गाँठें पड़ी हैं। इन १२ गाँठोंसे युक्त होनेसे यह चक्र पूर्ण अथवा ब्रह्म है। १२ प्रधियाँ (टुकड़े)=१२ राशियाँ—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन। सूर्य जब मेषराशिको लाँघकर वृषमें प्रवेश करता है तो एक पर्व होता है। इसे वृषसंक्रान्ति कहते हैं। जब सूर्य मीनराशिको लाँघकर मेषमें प्रवेश करता है तो भी एक पर्व घटित होता है। इसे मेषसंक्रान्ति कहते हैं। संक्रान्तिका अर्थ है—आगमन। एक वर्षमें सूर्यकी १२ संक्रान्तियाँ पर्वके नामसे जानी जाती हैं! एक राशि अपूर्ण है। एक-एक करके बारह राशियोंका जोड़ पूर्ण होता है। इसलिये मेषसंक्रान्ति—संवत्सरका प्रारम्भ एक विख्यात पर्व है। रात और दिनका जोड़ सूर्योदय एवं सूर्यास्त—ये दो दैनिक पर्व हैं। इन्हें

सूर्यकी दैनिक संक्रान्ति कहते हैं।

चन्द्रमामें पूर्ण प्रकाश अर्थात् पूर्णिमा तिथि—सूर्य और चन्द्रमाका आमने-सामने होना—१८० अंश दूर होना, एक पर्व है। चन्द्रमामें पूर्ण अन्धकार अर्थात् अमावास्या तिथि—सूर्य और चन्द्रमाका एक साथ होना—परस्पर शून्य अंश दूर होना, दूसरा पर्व है। चन्द्रमामें आधा प्रकाश एवं आधा अन्धकारका होना—अष्टमी तिथि—परस्पर ९० अंश शुक्लाष्टमी एवं २७० अंश कृष्णाष्टमी—ये दो पर्व हैं। ये चन्द्रमाके चार तिथिपर्व हुए। चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण—पूर्ण अन्धकारकी स्थितिका होना भी पर्व है। जातकका गर्भसे बाहर आना—जन्म—भूसंक्रान्ति एक पर्व है। जातकका इस लोकसे परलोक जाना—मृत्यु—ऊर्ध्वसंक्रान्ति दूसरा पर्व है। इस प्रकार प्रत्येक गृहस्थके जीवनमें २४ पर्व सुमान्य हैं, वे हैं—सूर्यकी १२ संक्रान्तियाँ, चन्द्रमाकी ४ तिथियाँ, प्रातः, सायं, महापुरुषोंका जन्म एवं मृत्यु (श्राद्धदिन), स्वजन्म, विवाह, सूर्य एवं चन्द्रग्रहण।

१-आत्मनेपदी तुदादिगणकी 'पृ' धातुका अर्थ है—व्यस्त होना, सक्रिय होना, सौंपना, नियत करना, अपनेको कामपर लगाना, निश्चित करना, रखना।

२-परस्मैपदी जुहोत्यादिगणकी 'पृ' धातुका अर्थ है—आगे ले जाना, प्रकाशित करना, रक्षा करना, जीवित रखना, उन्नति करना, प्रगतिकी ओर बढ़ना।

३-परस्मैपदी क्र्यादिगणकी 'पृ' धातुका अर्थ है—रक्षा करना, पालन-पोषण करना।

४-परस्मैपदी स्वादिगणकी 'पृ' धातुका अर्थ है—प्रसन्न करना, संतृप्त होना-करना।

५-उभयपदी चुरादिगणीय 'पृ' धातुका अर्थ है—पार ले जाना, किसी वस्तुके दूसरे छोरपर पहुँचना, अनुष्ठान करना, सम्पन्न करना, योग्य होना, समर्थ होना, बचाना, उद्धार करना, निस्तार करना, सौंपना, संकल्पको पूरा करना। इस अर्थमें 'पृ' धातुसे वनिप् प्रत्ययके योगसे (पृ+वनिप्=) पर्वन् शब्द निष्पन्न होता है। पर्वन्+सु=पर्व पद बनता है। इसका अर्थ है—व्यस्ति, नियति, हर्ष, उन्नति, रक्षा, पालन, तृप्ति, संतुष्टि, सामर्थ्य, उद्धार, निस्तार, भेंट, प्राप्ति, आनन्द, अनुष्ठान, पूर्ति, आह्लाद, विकास तथा यश। ग्रन्थि, पुस्तक, पीडा भी पर्वका अर्थ है।

जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त मनुष्यका जीवन एक पर्व है। अनन्त पर्वोंकी शृङ्खलामें जीवका वर्तमान जीवन दृश्य पर्व है। यह सुख एवं दुःखके सूत्रोंसे निर्मित एक गाँठ है। इस ग्रन्थिको खोलना, जानना तत्पश्चात् शान्तिको प्राप्त होना जीवनयात्राका लक्ष्य है। पर्वयुक्त होनेसे जीवन पर्वत है। पर्वत पूज्य है—'**पर्वताय नमः।**'

उत्सव

'सू' धातु अदादि, तुदादि तथा दिवादिगणोंमें पठित है, जिसका अर्थ है उत्पन्न करना, जन्म देना, उत्तेजित करना, उकसाना, प्रेरित करना, ऋणादिका परिशोधन करना आदि। इस अर्थमें उत् उपसर्ग एवं अप् प्रत्यय लगानेपर (उत्+सू+अप्=) उत्सव शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है—आमोद, प्रमोद, हर्ष, सुख, प्रसन्नता, आनन्द, सम्प्राप्ति, उन्नति, प्रकाश, त्योहार, चहल-पहल। जितने भी पर्व हैं, वे सब उत्सव हैं। सूर्यकी १२ संक्रान्तियाँ, १२ अमावास्याएँ, १२ पूर्णिमाएँ, १२ शुक्लाष्टमियाँ, १२ कृष्णाष्टमियाँ—ये ६० सार्वजनिक उत्सव हैं। राजसत्ताके लिये धर्म-युद्ध उत्सव है। यह बलका उत्सव है। मन्त्र है—

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय।

(ऋक् १।१००।८)

तम्=उसको। **अप्सन्त**=प्राप्त होते हैं। **शवस**=बलके। **उत्सवेषु**=उत्सवोंमें। **नरः**=मनुष्य। **नरम्**=मनुष्यको। **अवसे**=रक्षाके लिये। **तम्**=उसको। **धनाय**=धनार्थ।

समाजघ्नी दुष्टका वध उत्सव है। जैसे श्रीरामद्वारा रावणका वध आश्विनमें हुआ। इसलिये आश्विनमें विजयादशमी उत्सव होता है।

व्रत

'वृ' धातु भ्वादि, स्वादि, क्र्यादि और उभयपदी है, वरति-ते, वृणोति, वृणुते, वृणाति-वृणीते—ये रूप बनते हैं। इसका अर्थ है—छाँटना, चुनना, पसन्द करना, अपने लिये चुनना, विवाहहेतु वरण करना, प्रार्थना करना, निवेदन करना, याचना करना, ढकना, छिपाना, गोपनीय रखना, दूर करना, परे रहना, विघ्न करना, विरोध करना, रोकना, दबाना, नियन्त्रण करना, निरीक्षण करना, सेवा करना, परिचर्या करना, समर्पण करना, स्वीकार करना। इस अर्थमें 'वृ' धातुमें 'अतच्' प्रत्यय करनेपर (वृ+अतच्=) व्रत शब्द

बनता है। इसका अर्थ है—चयन, चुनाव, स्वीकृति, पसन्द, प्रार्थना, निवेदन, ढक्कन, अवरोध, निरोध, दमन, समर्पण, सेवा, गोपन, दूरी, अलगाव तथा परीक्षण। पुनः परस्मैपदी भ्वादिगणीय 'व्रज' गतौ अर्थमें **व्रजति+घ, जस्य तः** इस निष्पत्तिसे व्रत शब्द बनता है। व्रतका अर्थ है—अपने प्रियके समीप जाना, परमात्माके निकट आना, अपने स्वरूपको प्राप्त होना, भक्ति, साधना, प्रतिज्ञा, संकल्प तथा दृढ़ निश्चय। इसके अतिरिक्त संस्कार, आस्था, अनुष्ठान, अभ्यास, यज्ञ, उपवास, नियम, विधि, अध्यादेशको भी व्रत कहते हैं। शुभ वा अशुभ कर्म कर्ताको आवृत करता है। अतः वह कर्म ही व्रत है। **'व्रतमिति कर्मनाम'**—निघण्टु। संकल्पके साथ कर्मका आचरण करना व्रत है! नानाविध कर्म होनेसे व्रत भी नानाविध हैं। व्रतोंकी रक्षा करनेवाले अग्नि हैं। अग्निको 'व्रतपा' नाम मिला है। मन्त्र है—

'त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः॥'

(अथर्व० १९।५९।१)

त्वम् अग्ने=हे अग्ने! तुम, **व्रतपा असि**=व्रतोंके रक्षक हो, **देवः**=देवता हो, **आ मर्त्येषु आ**=सभी मनुष्योंमें, **त्वं यज्ञेषु**=तुम यज्ञोंमें, **ईड्यः**=स्तुतिके योग्य हो।

सूर्यको व्रतपा कहा गया है। मन्त्र है—

'ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।' (ऋक्० १।८३।५)

ततः सूर्यः=इसके बाद सूर्य, **व्रतपा**=व्रतरक्षक, **वेनः**=कान्तिमान्, **आजनि**=प्रकट हुआ।

निष्कर्ष यह निकला कि सूर्य अथवा अग्निके उपासकोंका व्रत पूरा होता है। श्रीरामने १४ वर्षतक वनमें रहनेका व्रत पूरा किया। पाण्डवोंने १२ वर्षतक वनमें रहने तथा एक वर्ष अज्ञातवास करनेका व्रत पूर्ण किया। महामना भीष्मने ब्रह्मचर्यव्रतको पूरा किया। सभी व्रतचारी आदरणीय हैं—**'व्रतचारिणे नमः।'**

रूढ अर्थमें व्रतको उपवास कहते हैं। उपवासमें उप—निकट, वास—बैठना। उपवास—अपनी आत्माके समीप होना—शान्तचित्तता। इसके लिये गरिष्ठ भोजन एवं लवण (स्वादिष्ठ) भोजनका त्याग किया जाता है। हर्ष एवं शोक दोनों ही अवसरों (पर्वों)-पर उपवास किया जाता है। यह स्वास्थ्य एवं दीर्घायुका सूत्र है। श्रीरामने राज्याभिषेकके अवसरपर उपवास किया था। विवाहके दिन कन्यादान देनेवाला उपवास रखता है। मरणके अवसरपर परिजन उपवास करते हैं। यह हमारी अक्षुण्ण सांस्कृतिक परम्परा है। प्राचीन समयमें तिथियों एवं संक्रान्तियोंका व्रत रखा जाता था, अब वारोंके भी व्रत किये जाते हैं। व्रत धर्मका एक अवयव है। व्रत करनेवालोंको धार्मिक समझा जाता है। व्रतका सम्बन्ध पर्वसे है। व्रत एवं पर्वके प्रकाशनको 'उत्सव' कहते हैं। इस प्रकार व्रत, पर्व एवं उत्सव धर्मपुरुषके त्रिपाद हैं। इस त्रिपादको नमन है।
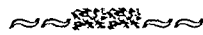
आचारशास्त्रकी नींव—व्रत

[अनुव्रतका सनातन आन्दोलन]

(प्रो० श्रीराजेन्द्रजी 'जिज्ञासु')

'व्रत' शब्द वैदिक धर्म, दर्शन एवं संस्कृतिकी एक अनूठी देन है। चारों वेदों, ब्राह्मण-ग्रन्थों, मनुस्मृति एवं साहित्यिक ग्रन्थोंमें 'व्रत' शब्द अनेक बार आया है। इस शब्दका ठीक-ठीक अनुवाद किसी भी भाषामें नहीं किया जा सकता। अन्य भाषाओंमें इसके गम्भीर भावोंको व्यक्त तो किया जा सकता है, परंतु इसका पर्याय किसी भाषामें नहीं मिलेगा। हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें व्रत प्रतिज्ञा-पालनके अर्थमें, दुर्गुणोंके परित्याग एवं सद्गुणोंके धारण करनेके लिये दृढ़ निश्चय एवं दृढ़ संकल्पके अर्थोंमें आया है।

आचारशास्त्रकी परम्परा—एक विचारकका कथन है—मधुमक्खीको छत्ता बनाने या बयाको घोंसला बनानेके लिये कहीं भी, कुछ भी सीखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, परंतु मनुष्यका बालक तो मुँह धोनेका नियम भी सीखता है। अतः स्पष्ट है कि मानव-जातिके लिये एक आचारशास्त्र चाहिये, जो परम्परासे चालू रहे। इसीका नाम 'व्रत' है।

व्रतकी परिभाषा क्या है? इसे वेदके शब्दोंमें रखना अधिक श्रेयस्कर एवं लाभप्रद होगा। यजुर्वेद (१।५)-में आता है—

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥

आचारशास्त्रका आधार—व्रतपति भगवान्‌से अपने व्रतके पालनके लिये सहायता माँगी गयी है। वह व्रत क्या है? अनृत—झूठका परित्याग एवं सत्यका ग्रहण। आचारशास्त्रका आधार वेदका यही मन्त्र है। सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ प्रभु व्रतोंके पालनमें हमारे रक्षक एवं सहायक हों, यही प्रार्थना उपर्युक्त मन्त्रमें की गयी है।

उत्थानका सोपान—यज्ञोपवीत-संस्कारके समय भी यह पवित्र मन्त्र बोला जाता है। हमारी संस्कृतिमें व्रतको जीवनमें उत्थानका सोपान माना गया है। धार्मिक होना, व्रती होना या चरित्रवान् होना हमारी सभ्यतामें एक ही बात है। हम राजेश्वर श्रीराम एवं योगेश्वर श्रीकृष्णका गुणगान क्यों करते हैं? इसलिये कि वे व्रती थे। सद्‌गुणोंके जो आदर्श उन्होंने हमारे सम्मुख रखे, वे आज भी मानव-जातिके लिये उतने ही हितकर एवं कल्याणकारी हैं। उपनयनका एक नाम 'व्रतसूत्र' भी है। श्रीराम सत्यव्रतधारी थे। एकपत्नीव्रत धर्मके आदर्श थे। पितृभक्तिका उनसे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है।

सनातन अनुव्रत आन्दोलन—वेदमें गृहस्थोंके लिये एक उपदेश—आदेश है—**अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः।**

अथर्ववेद (३।३०।२)-के इस मन्त्रमें पुत्र पिताका अनुव्रत अर्थात् उसके व्रतोंको पूर्ण करनेवाला हो—यह आदेश दिया गया है। गृहस्थीके लिये, पिताके लिये व्रती होना आवश्यक है अन्यथा पुत्र किस व्रतको पूरा करेगा? यम-नियम क्या हैं? ये सब व्रत ही तो हैं। एकको भी कोई धारण कर ले तो व्यक्ति एवं समाज—सबका बेड़ा पार हो जाय।

जो व्रती नहीं—वह नागरिक ही नहीं, जो व्रती नहीं। वह मनुष्यपनरूपी धर्मका क्या पालन करेगा? तभी तो वेदमें यह आज्ञा दी गयी है—'**व्रतं कृणुत**' (यजुर्वेद ४।११) 'हे मनुष्यो! व्रत धारण करो।'

ऋग्वेदके दसवें मण्डलके ६५वें सूक्तके ११वें मन्त्रमें कहा गया है कि व्रती लोग, श्रेष्ठजन संसारमें सदाचारको फैलाते हैं। व्रतहीन सदाचारकी क्या स्थापना करेंगे?

व्रत और आचरण—तैत्तिरीयोपनिषद्‌में दीक्षान्त उपदेशके सनातन आदर्श बड़े सूत्ररूपमें दिये गये हैं—**'सत्यं वद।' 'धर्मं चर।'**

सत्य बोलना। धर्मका आचरण करना। यही हमारे व्रत थे। यही हमारे आदर्श थे। स्मरण रखिये—आर्य संस्कृतिमें, श्रीरामकी परम्परामें व्रतका सम्बन्ध आचरणसे है। बुराईको छोड़ना और सचाई एवं भलाईको दृढ़तापूर्वक अपनानेका नाम व्रत है। उपनिषद्‌के ऋषिने बलपूर्वक शिष्यको शिक्षा देते हुए कहा—'**सुचरितानि**' अच्छे आचरणोंको करते जाना। इससे उलटे दुष्कर्म नहीं करना, यही व्रत है। यही धर्म है। यही धर्मका मर्म है।

व्रतहीन दीक्षा क्या?—यजुर्वेदके १९ वें अध्यायके ३० वें मन्त्रमें कहा गया है —'**व्रतेन दीक्षामाप्नोति।**' अर्थात् व्रतसे दीक्षा प्राप्त होती है। आज संसारमें बिना कर्मके फल पानेकी प्रवृत्तिके कारण सब दुःख भोग रहे हैं। व्रत कोई लेना नहीं चाहता, बस दीक्षित होना चाहता है। जिसका जीवन व्रतविहीन है उसका कोई ध्येय ही नहीं।

सद्‌गुणोंकी सेना—एक पूजनीय महात्मा कहा करते थे कि आप एक व्रत धारण कीजिये, एक सद्‌गुण अपना लें, फिर आप देखेंगे कि सद्‌गुणोंकी सेना दौड़ी-दौड़ी आपके पास चली आयेगी और इसके विपरीत आप एक दुर्गुण अपनाकर देख लें, एक व्रतके भङ्ग करनेपर बुराइयोंकी सेना एकदम आपपर चढ़ाई कर देगी। अथर्ववेदके ब्रह्मचर्य सूक्तके मन्त्रोंमें विद्यार्थियोंके चार भूषण गिनाये, बताये गये हैं—'**ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति।**' अर्थात् ब्रह्मचारी समिधा बनकर (बलिदानका निष्काम कर्मका व्रत धारण करके) मेखला (कटिबद्धता) कर्मण्यता, दृढ़तासे, श्रमसे, पुरुषार्थ-परमार्थ एवं तपसे संसारको पूरित करता है।

व्रत अवश्य लीजिये—हमारे देशमें पहले बालकोंको सत्यका व्रत, ब्रह्मचर्यका व्रत, मातृभूमिकी सेवाका व्रत, गो-सेवा, गो-रक्षाका व्रत और ईशोपासनाका व्रत लेनेकी प्रेरणा दी जाती थी। वे स्कूलोंमें गीत गाया करते थे—

मातृवेदी पर प्रथम रखा हमारा प्राण हो।

किंतु आज नयी पीढ़ीके सामने केवल भोग-

विलासके आदर्श हैं।

व्रत पापसे बचाता है—कुछ लोग समझते हैं कि जीवनमें अनाचार, भ्रष्टाचार एवं अत्याचार करते जाओ और साथ-साथ व्रतके नामसे कोई घोषणा कर दो। बस पाप कट जायँगे। ऐसे लोग ईश्वरके अटल नियम—कर्मफल-सिद्धान्तको, वेद, शास्त्र, उपनिषद् एवं गीताको चुनौती देते हैं। व्रत धारण करनेमात्रसे किया हुआ पाप कटता नहीं। दृढ़ प्रतिज्ञासे जब कोई बुराई छोड़ दोगे तो दुष्कर्म करनेकी प्रवृत्तिका सुधार होगा। आपका उद्धार होगा। डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्ने इसी प्रसंगमें लिखा है—'Every saint has a past and every sinner has a future.' अर्थात् प्रत्येक महात्मा—सज्जन पुरुषका एक अतीत है और प्रत्येक पापीका भी भविष्य है। कारण? जीव कर्म करनेमें स्वतन्त्र है। तभी तो एक विचारकने भारतीय आस्तिक दर्शनपर लिखते हुए कर्म करनेकी जीवकी स्वतन्त्रतापर एक महत्त्वपूर्ण वाक्य लिखा है—'The door of bliss is always open.'

ईशकृपाका द्वार—करुणासागर भगवान्की कृपाका द्वार सदा-सदा खुला रहता है, व्रती बनिये। व्रत धारण करते ही आप जीवन-निर्माणका नया युग आरम्भ होता हुआ देखेंगे। ईश्वरकी कल्याणी-वाणी सामवेद (१०२१)-के एक मन्त्रमें आती है—

'अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृञ्चन्।' अर्थात् मानव जब एक बार व्रतोंके पालन करनेके लिये पग उठा लेता है तो उनके पालन करनेसे वह जीवनको पवित्र करनेके स्वभाववाला बन जाता है। मानव दिव्य गुणयुक्त होकर जीवनको सरस बना लेता है। उसके जीवनसे रस, माधुर्य टपकने लगता है।

व्रत सार्वभौमिक हैं—हमें यह सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं कि आर्ष-परम्पराके ये सब व्रत सार्वभौमिक एवं सनातन हैं। इनको देश-कालकी सीमासे नहीं बाँधा जा सकता। यथा—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह—ये जो पाँच यम हैं, इनपर कोई साम्प्रदायिकताका ठप्पा लगानेका दुःसाहस कैसे करेगा? हमारे जैन भाई तो इन्हें 'व्रत' ही नहीं, अपितु 'महाव्रत' कहते हैं। ऋचाओंकी छायामें व्रतका मर्म जानना चाहिये।

व्रत और अनुशासन—इसी प्रकार पाँच नियमोंका योगदर्शनमें विधान किया गया है। यमोंको हम सार्वजनिक अनुशासन कहेंगे और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय एवं प्रणिधानको व्यक्तिगत जीवनका अनुशासन कहा जायगा। हैं ये भी आवश्यक। इनमेंसे किसीका भी कुछ विकल्प नहीं है। इनमेंसे एकका उल्लंघन करने या एकके भी पालन न करनेसे संसारमें क्लेश, द्वेष, पाप, ताप एवं पतनकी बाढ़को आनेसे कौन रोक सकता है? इसीलिये ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके इकतीसवें सूक्तके दूसरे मन्त्रमें बड़े सारगर्भित शब्दोंमें परमात्मासे कहा गया है—

देवानां परि भूषसि व्रतम्।

प्रभो! आप देवोंको देवोंकी वृत्तिवाले गुणियोंको व्रतोंसे अलंकृत करनेवाले हैं।

प्रभु भी व्रती हैं—परमदेव प्रभु भी व्रती हैं। ऐसा वेद बताता है। व्रत शब्द पुण्यकर्मोंका भी पर्याय है। प्रभु इस जगत्की रचना करता है। पालन और संहार करता है। वह प्रभु जीवोंके कर्मभोगकी सारी व्यवस्था करता है। उसके किसी भी काममें कोई ढील एवं न्यूनता नहीं होती। ऋग्वेदके बाईसवें सूक्तके छठे मन्त्रमें आता है—

'तस्य व्रतान्युश्मसि' अर्थात् हम भी परमात्माकी आज्ञाओंका पालन करते हुए सदा पुण्यकर्म ही करें। लोक-कल्याण ही करें। हम दृढ़ व्रती बनें। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके इक्यानबेवें सूक्तके तीसरे मन्त्रमें भी मानवको प्रबल प्रेरणा देते हुए कहा गया है—

'राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि' जैसे प्रभुके सब कार्य लोकहितकारी एवं कल्याणकारी हैं, हे मनुष्य! तेरे व्रत, तेरे सत्कर्म भी सर्वहितकारी हों। प्रभुने अपने लिये तो यह जगत् रचा नहीं। वह प्रभु पूर्ण है। उसे कुछ चाहिये नहीं। अन्न, जल, अग्नि तथा वायु—ये भोग जीवोंको उनके कर्मानुसार वह परमपिता देता है। हम भी उस प्रभुकी संतान हैं, वेदने जो **'अनुव्रतः पितुः पुत्रो०'** का गृहस्थोंको उपदेश दिया है, वही उपदेश परमपिताके सम्बन्धमें उसकी संतान (मनुष्य-जाति)-पर भी चरितार्थ होता है। प्रभु व्रती हैं, हम भी व्रती बनें।
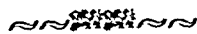
व्रतोपवासके अनुष्ठानके लिये कालज्ञानकी आवश्यकता

(श्रीगोविन्द राजारामजी जोशी)

व्रतपालन धर्माचरणका अभिन्न अङ्ग है। व्रत शब्दका प्रयोग वेदमें आता है—'**अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥**' (शु०यजु० १।५)

व्रतस्थका अर्थ नियमस्थ है। व्रताचरण करनेसे मनुष्यको पुण्य मिलता है। पुण्यका फल सुख है। व्रताचरणमें कष्ट होता है, नियम पालन करनेमें कठिनाइयाँ भी होती हैं, इसलिये बहुत लोग व्रतसे पराङ्मुख होते हैं। जैसा कि कहा गया है—

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

अर्थात् लोग पुण्यफलकी इच्छा करते हैं, किंतु पुण्यजनक कार्योंको करना नहीं चाहते। इसके विपरीत पापफलको तो चाहते नहीं और पापकर्म करते हैं। ऐसी स्थितिमें कैसे कल्याण होगा?

पापका फल दुःख है; पुण्यका फल सुख है, हमें सुख चाहिये लेकिन कष्टरहित। वह कैसे शक्य है? सुख दिखता है, पुण्य दिखता नहीं, दुःख दिखता है किंतु पाप नहीं दिखता। यदि मानवको हरिका सांनिध्य चाहिये तो व्रत-नियमका पालन अनिवार्य है। व्रतके पालनसे हरिकी प्रसन्नता होती है।

राजसभामें दुर्योधनसे अपमानित विदुरजी जब हस्तिनापुरसे बाहर तीर्थयात्राके लिये निकलते हैं, उस समयके प्रसंगको व्यासजी इस प्रकार लिखते हैं—

गां पर्यटन् मेध्यविविक्तवृत्तिः
सदाऽऽप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः ।
अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो
व्रतानि चेरे हरितोषणानि॥

(श्रीमद्भा० ३।१।१९)

अर्थात् वे अवधूत-वेषमें स्वच्छन्दतापूर्वक पृथ्वीपर विचरते थे, जिससे आत्मीय-जन उन्हें पहचान न सकें। वे शरीरको सजाते न थे, पवित्र और साधारण भोजन करते, शुद्धवृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते, प्रत्येक तीर्थमें स्नान करते, जमीनपर सोते और भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले व्रतोंका पालन करते रहते थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्रत-पालनसे भगवत्प्रीति होती है और हरिकी प्रसन्नतासे सुख-समृद्धिकी प्राप्ति होती है।

पयोव्रत करनेके बाद भगवान्‌ने अदितिको दर्शन देकर कहा—देवि! मैं तुम्हारे इस व्रतानुष्ठानसे बहुत प्रसन्न हूँ। मेरी आराधना व्यर्थ नहीं होती, व्रतीको श्रद्धाके अनुसार अवश्य फल मिलता है—

अथाप्युपायो मम देवि चिन्त्यः
संतोषितस्य व्रतचर्यया ते।
ममार्चनं नार्हति गन्तुमन्यथा
श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात्॥

(श्रीमद्भा० ८।१७।१७)

व्रत अनेक हैं और इन व्रतोंका विधान प्रायः सभी पुराणोंमें मिलता है। व्रतकौमुदी, व्रतराज, धर्मसिन्धु आदिमें '**महानाम्नीव्रत**' का विधान पाया जाता है और स्मृति-ग्रन्थोंमें भी व्रतके उल्लेख हैं। व्रत ग्रहण करते समय विधियुक्त व्रत ग्रहण करना पड़ता है। उस समय शास्त्रके आज्ञानुसार पवित्र होकर आचमन, प्राणायामके साथ ही संकल्पमें देश और कालका उच्चारण करना पड़ता है, जिसका संक्षिप्त स्वरूप यहाँ दिया जा रहा है—

देश—जैसे—जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते''' इत्यादि। भारतमें पुण्यमय अरण्य हैं, जैसे—नैमिषारण्य, बदरिकारण्य, कामिकारण्य, दण्डकारण्य, अर्बुदारण्य, धर्मारण्य, पद्मारण्य तथा जम्बुकारण्य आदि। अभीष्ट अरण्यका भी उल्लेख संकल्पमें करते हैं।

इस तरह देशका उच्चारण होता है। कर्मकी सिद्धि संकल्पके बिना नहीं होती। मार्कण्डेयपुराणमें कहा गया है—'**संकल्प्य विधिवत् कुर्यात् स्नानदानव्रतादिकम्।**' संकल्पका अर्थ है—अमुक देश-कालमें अमुक कर्म भगवत्प्रीत्यर्थ अथवा इस फलप्राप्तिकी कामनासे करता हूँ। यह मानसिक क्रिया है। यही भाव इस श्लोकमें व्यक्त किया गया है—

मासपक्षतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः।
उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत्॥

(देवल)

अर्थात् मास, पक्ष, तिथि आदिका उल्लेख न करनेसे फलमें प्रतिबन्ध होता है। इसलिये व्रतका नियम ग्रहण करनेसे पूर्व संकल्पका उच्चारण आवश्यक है।

काल—संकल्पमें देशका उच्चारण करनेके अनन्तर कालका उच्चारण होता है। सर्वप्रथम ब्रह्माजीके परार्ध उच्चारणके अनन्तर कल्पका उच्चारण होता है। ब्रह्माजीके एक दिनको कल्प कहते हैं—१-श्वेतकल्प, २- नीललोहित, ३-वामदेव, ४-रथन्तर, ५-रौरव, ६-देव, ७-बृहत्, ८-कन्दर्प, ९-सद्य, १०-ईशान, ११-तम, १२-सारस्वत, १३-उदान, १४-गरुड, १५-कौर्म, १६-नारसिंह, १७-समान, १८-आग्नेय, १९-सोम, २०-मानव, २१-तत्पुरुष, २२-वैकुण्ठ, २३-लक्ष्मी, २४-सावित्री, २५-घोर, २६-वाराह, २७-वैराज, २८-गौरी, २९-माहेश्वर तथा ३०-पितृ—ये तीस कल्प जो ब्रह्माजीका एक महीना होता है, उसीमें कौर्मकल्प पूर्णिमा होती है और पितृकल्प अमावास्या होती है। कल्पके प्रारम्भमें जो अवतार होता है, वह उसी कल्पका नाम होता है। साम्प्रत श्वेतवाराहकल्प है।

कल्पके बाद मन्वन्तरका उल्लेख किया जाता है। ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं। ये मनु चौदह होते हैं—१-स्वायम्भुव, २-स्वारोचिष, ३-उत्तम, ४-तामस, ५-रैवत, ६-चाक्षुष, ७-वैवस्वत, ८-सावर्णि, ९-दक्षसावर्णि, १०-ब्रह्मसावर्णि, ११-धर्मसावर्णि, १२-रुद्र-सावर्णि, १३-देवसावर्णि, १४-इन्द्रसावर्णि। वर्तमान कालमें सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर है।

युग चार हैं—कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। चारोंको चतुर्युग या महायुग कहा जाता है। वर्तमान कालमें २८वें महायुगके सत्य, त्रेता, द्वापर बीतकर २८वाँ कलियुग चल रहा है।

संकल्पमें इसके बाद संवत्सर आता है। संवत्सरके चान्द्र, सौर और सावन, नाक्षत्र तथा बार्हस्पत्य इस प्रकारके भेद हैं। प्रभव, विभव आदि नामवाले संवत्सर ६० हैं*। वर्तमानमें दुर्मुख नामका संवत्सर चल रहा है। एक मास ३० दिनका होता है। १२ महीनोंका १ वर्ष अथवा संवत्सर होता है।

अयन—छः मासका एक अयन होता है। वर्षमें दो अयन होते हैं—उत्तरायण और दक्षिणायन।

भानोर्मकरसंक्रान्तेः षण्मासा उत्तरायणम्।
कर्कादेस्तु तथैव स्यात् षण्मासा दक्षिणायनम्॥

अयनका अर्थ है—गमन। सूर्य जब मकरराशिमें प्रवेश करता है तो मकर-संक्रान्ति होती है। तबसे छः महीनेतक 'उत्तरायण' होता है। मकर-संक्रान्तिका पर्वकाल प्रवेशके अनन्तर ४० घटी अर्थात् १६ घण्टेका होता है और सूर्य जब कर्कराशिमें प्रवेश करता है तो कर्क-संक्रान्ति होती है तबसे छः महीनेतक 'दक्षिणायन' होता है। 'कर्क' संक्रान्तिका पर्वकाल ३० घटी अर्थात् १२ घण्टे पहले होता है। **'कर्के पूर्वास्त्रिंशत्, मकरे पराश्चत्वारिंशत्'** (धर्मसिन्धु)।

ऋतु—धार्मिक कार्य चान्द्र-ऋतुसे प्रारम्भ किये जाते हैं। एक ऋतु दो महीनेकी होती है। चैत्र-वैशाखमें वसन्त-ऋतु, ज्येष्ठ-आषाढ़में ग्रीष्म-ऋतु, श्रावण-भाद्रपदमें वर्षा-ऋतु, आश्विन-कार्तिकमें शरद्-ऋतु, मार्गशीर्ष-पौषमें हेमन्त-ऋतु और माघ-फाल्गुनमें शिशिर-ऋतु होती है।

मासके नाम नक्षत्रोंके आधारपर निश्चित हुए हैं। उस मासकी पूर्णिमाके दिन वही नक्षत्र आनेसे नाम निश्चित किये गये हैं—

चैत्र—चित्रा, वैशाख—विशाखा। वेदमें मास नाम इस प्रकार आये हैं। १-चैत्र—मधु, २-वैशाख—माधव, ३-ज्येष्ठ—शुक्र, ४-आषाढ़—शुचि, ५-श्रावण—नभ, ६-भाद्रपद—नभस्य, ७-आश्विन—ईश, ८-कार्तिक—ऊर्ज, ९-मार्गशीर्ष—सह, १०-पौष—सहस्य, ११-माघ—तप, १२-फाल्गुन—तपस्य, १३-अधिकमासको पुरुपोत्तम एवं मलिम्लुच कहते हैं। सावन, सौर, चान्द्र तथा नाक्षत्र—इस प्रकार चार प्रकारके मास होते हैं।

---

* प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः। अङ्गिरा श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च॥
ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो वृषः। चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवोऽव्ययः॥
सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतः खरः। नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ॥
हेमलम्बो विलम्बोऽथ विकारी शार्वरी प्लवः। शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसुपराभवौ॥
प्लवंगः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत्। परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः॥
पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थी रौद्रदुर्मती। दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः॥

पक्ष—चान्द्रमासके दो पक्ष किये जाते हैं। उन्हें शुक्लपक्षको सित—अपूर्यमाण कहते हैं एवं कृष्णपक्षको असित—पूर्यमाण कहते हैं।

तिथि—गतिसे सूर्य और चन्द्रमें १२ अंशका अन्तर तिथि कहलाता है। प्रतिपदा, द्वितीया, अमावास्या तथा पूर्णिमा आदि—इस प्रकार तिथियाँ ३० हैं। ग्रह-गतिसे तिथिमें क्षय वृद्धि होती है।

वार—सूर्यके पूर्वमें उगनेके बाद पश्चिममें जाकर फिर पूर्वमें उगनेतक एक ही वार कहा गया है। वार सात हैं, क्रमशः ग्रहोंके नामपर वार हैं। संकल्पमें क्रमशः इसका उच्चारण—भानुवासरे, इन्दुवासरे, भौमवासरे, सौम्यवासरे, गुरुवासरे, भृगुवासरे, मन्दवासरे—इस तरह किया जाता है। वारोंका शुभाशुभत्व और कार्याकार्य-विचार शास्त्रोंमें मिलता है।

नक्षत्र—नक्षत्र देवताओंका गृह है। ये अपनी जगह स्थिर रहते हैं, इसीलिये इन्हें नक्षत्र कहते हैं। अश्विनी, भरणी आदि नामसे नक्षत्र २७ होते हैं। २८ वाँ नक्षत्र अभिजित् है। इसमें भी शुभाशुभ नक्षत्र होते हैं। योग और करणका उल्लेख संकल्पमें प्रायः कम किया जाता है।

मुहूर्त—दिनमानके १५वें भागको मुहूर्त कहते हैं। शुभ कर्मके योग्य कालको मुहूर्त कहते हैं। मुहूर्त २ घटीका अर्थात् ४८ मिनटका होता है।

घटी—ढाई पलका १ मिनट, २४ मिनटकी १ घटी, ढाई घटीका १ घण्टा, ३० घटीका दिन और ६० घटी, २४ घण्टेका एक अहोरात्र होता है।

दिनके पाँच भाग—सूर्योदयसे ३ मुहूर्त (२ घण्टा २४ मिनट) प्रातःकाल, उसके बाद २ घण्टा २४ मिनट संगवकाल, इसके बाद २ घण्टा २४ मिनट मध्याह्नकाल, फिर २ घण्टा २४ मिनटके बाद अपराह्णकाल और २ घण्टा २४ मिनटका सायाह्नकाल होता है। प्रातःकाल देवकार्य, मध्याह्नमें ब्रह्मयज्ञ, तर्पण आदि तथा अपराह्णकालमें श्राद्ध-पितृकर्म आदि करना चाहिये।

लग्न—इष्ट समय सूर्यका क्रान्तिवृत्त भ्रमणमार्गका जो बिन्दु पूर्व क्षितिजपर उदित होता है उसे लग्न कहते हैं। २४ घण्टे=दिन-रातमें मेष, वृष इस प्रकार सामान्यतः दो-दो घण्टेके बारह लग्न होते हैं।

ब्राह्ममुहूर्त—सूर्योदयसे चार घड़ी (लगभग डेढ़ घण्टे) पूर्व ब्राह्ममुहूर्त होता है। सूर्योदयसे पहले ढाई घण्टेसे सूर्योदयतक अभ्यास करनेसे विद्या कण्ठस्थ होती है। ब्राह्ममुहूर्तमें धर्मार्थ तथा वेदतत्त्वार्थका चिन्तन करनेको कहा गया है। ब्राह्ममुहूर्तकी निद्रा पुण्यका नाश करती है। उससे मुक्त होनेके लिये पादकृच्छ्रप्रायश्चित्तव्रत करनेका विधान है। यह शुभ कार्यके लिये योग्य समय होता है।

उषःकालादि—रात्रि व्यतीत होते समय ५५ घड़ीपर उषःकाल, ५७ पर अरुणोदय, ५८ पर प्रातःकाल और ६० पर सूर्योदय होता है—

पञ्च पञ्च उषःकालः सप्तपञ्चारुणोदयः।
अष्ट पञ्च भवेत् प्रातस्ततः सूर्योदयः स्मृतः॥

(विष्णु०)

प्रदोषकाल—

त्रिमुहूर्तप्रदोषः स्याद्भानावस्तं गते सति।
प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकात्रयमिष्यते॥
प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमुच्यते॥

सूर्यास्तके बाद २ घण्टे और २४ मिनटतक प्रदोषकाल होता है। कोई १ घण्टा १२ मिनट मानते हैं और कोई ४८ मिनटका मानते हैं। विशेषकालका प्राधान्य बतानेके लिये ऐसा मतान्तर सम्भव है। प्रदोषव्रतमें सूर्यास्तके बाद शिवपूजन तथा भोजनका विधान है, किंतु यति और विधवाको रात्रि—नक्तभोजनका निषेध है। उनको दिवसके आठवें भागमें पूजन करके भोजन कर लेना चाहिये।

निशीथकाल—निशीथकालका महत्त्व शिवरात्रिके दिन तथा जन्माष्टमीको होता है। '**निशीथस्तु रात्रेरष्टममुहूर्तः**' रात्रिके कुल समयको १५ बराबर भागोंमें विभाजित करके आठवें भागको निशीथ कहते हैं। यह समय लगभग अर्धरात्रिका माना जाता है।

इसी तरह व्रतोपवासोंके अनुष्ठान करनेके अवसरपर संकल्प, तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रान्ति और देश-कालका उच्चारण करके जो कर्म एवं व्रताचरण शुरू होता है उससे सफलत्व प्राप्त होकर सुख-समृद्धि और भगवत्कृपा प्राप्त होती है। इसीलिये गीतामें भगवान् कहते हैं—

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

(गीता १६।२४)

व्रतोंके अधिकारी एवं उनके धर्म

(श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री, एम्०ए०, साहित्य-ज्योतिषाचार्य)

व्रतके अधिकारी कौन हो सकते हैं, इसका निरूपण करते हुए वेदव्यासजी स्कन्दपुराणमें लिखते हैं—

निजवर्णाश्रमाचारनिरतः शुद्धमानसः।
अलुब्धः सत्यवादी च सर्वभूतहिते रतः॥
व्रतेष्वधिकृतो राजन्नन्यथा विफलः श्रमः।
श्रद्धावान्पापभीरुश्च मदद‌म्भविवर्जितः॥
पूर्वं निश्चयमाश्रित्य यथावत्कर्मकारकः।
अवेदनिन्दको धीमानधिकारी व्रतादिषु॥

तात्पर्य यह है कि जो वर्णाश्रमधर्मका पालन करता हो, जिसका मन शुद्ध हो, लोभी न हो, सत्यवादी हो, सब प्राणियोंके कल्याणमें संलग्न रहता हो, जिस व्रतका पालन करना चाहता है उसके लिये श्रद्धावान् हो, पापसे डरता हो, घमण्ड एवं दम्भसे रहित हो और जिस व्रतको करनेका उसने पूर्वमें निश्चय किया है; उस व्रतके नियमादिका यथावत् पालन करनेवाला हो, वेदोंकी निन्दा करनेवाला न हो, ऐसा बुद्धिमान् व्यक्ति व्रत करनेका अधिकारी है। अर्थात् व्रत करनेके इच्छुक व्यक्तिको पूर्वोक्त नियमोंका पालन करना चाहिये।

कूर्मपुराणमें व्रतोपवासकी महत्ताका निरूपण करते हुए लिखा गया है—

व्रतोपवासनियमैर्होमस्वाध्यायतर्पणैः ।
तेषां वै रुद्रसायुज्यं सामीप्यं चातिदुर्लभम्।
सालोक्यता च सारूप्यं जायते तत्प्रसादतः॥

अर्थात् व्रत-उपवास, नियमादिके पालनसे, होम, स्वाध्यायसे एवं देव, ऋषि तथा पितरोंको तृप्त करनेसे रुद्र देवताके प्रसादसे दुर्लभ सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य एवं सारूप्य मुक्तिकी प्राप्ति होती है।

व्रतके सामान्य धर्म—

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाऽग्निहवनं संतोषोऽस्तेयमेव च॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्थितः।

समस्त व्रतोंमें सामान्यतः क्षमा करना, सत्य बोलना, दया करना, दान देना, पाखण्डियों आदिके संसर्गसे दूर रहकर स्नान-आचमन आदि करके शौचाचारका पालन करना, मनमें विकारोंकी उत्पत्ति ही न हो, एतदर्थ इन्द्रियोंका निग्रह करना, देवताओंकी पूजा करना, अग्निमें हवन करना, संतोष रखना तथा चोरी न करना—ये दस धर्म आवश्यक रूपसे पालनीय हैं।

व्रतोपवासमें वर्ज्यकर्म—व्रतोपवासमें वर्जनीय कार्योंपर भी प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

'उपवासव्रती दन्तधावनं हिंसनमनृतं द्यूतं चौर्यमसकृज्जलपानं सकृत्ताम्बूलभक्षणं स्त्रीसंयोगं दिवास्वापं मांसं च वर्जयेत्।' इस वचनके अनुसार व्रत-उपवास करनेवालेको व्रतके दिन दातुन नहीं करना चाहिये। किसी भी प्रकारकी हिंसा नहीं करनी चाहिये। व्रतमें असत्य भाषण, जुआ खेलना त्याज्य है। व्रतके दिन एक बारसे अधिक अर्थात् बार-बार जल नहीं पीना चाहिये। ताम्बूल तो व्रतमें एक बार भी नहीं खाना चाहिये। स्त्रीसंयोगसे दूर रहना अर्थात् ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिये। व्रतके दिन दिनमें नहीं सोना चाहिये तथा मांस भी नहीं खाना चाहिये।

व्रतकी परिभाषा—व्रतकी परिभाषा एवं अधिकारपर प्रकाश डालते हुए निर्णयसिन्धुमें भविष्यपुराणका उद्धरण देते हुए लिखा है—

अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयो विधीयते।
व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा नृप॥

'अनग्निग्रहणमुपवासविषयम्' अर्थात् जो ब्राह्मण अग्निहोत्री नहीं हैं उनका कल्याण व्रत, उपवास, नियम और दानसे होता है। इस वचनसे अनग्निका ग्रहण उपवासके लिये है। व्रत-उपवासके नियम चारों वर्णों, चारों आश्रमों एवं स्त्रियों आदि सभीके लिये हैं। स्त्रियोंके लिये पातिव्रत्यधर्म ही सर्वोपरि है। स्कन्दपुराणके अनुसार—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
भर्तुः शुश्रूषयैवैता लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि॥

स्त्रियोंको अपने-अपने पतिकी सेवासे ही यज्ञ, व्रत और उपवासका फल प्राप्त हो जाता है, पतिसेवासे ही वे इष्टलोकको प्राप्त कर लेती हैं। देवताओं एवं पितरोंका पूजनरूपी कर्म, जो पतिदेव करते हैं उसका आधा फल पतिकी सेवा करनेवाली स्त्रीको स्वयं ही प्राप्त हो जाता है।

आदित्यपुराणका वचन है कि स्त्रीको अपने पति या पुत्रकी आज्ञासे व्रतोपवासद्वारा पुण्यकी प्राप्ति होती है। पतिके देवलोकवासी होनेपर पुत्रकी आज्ञासे व्रतोपवास करना चाहिये, अन्यथा वह कर्म निष्फल हो जाता है—

नारी खल्वननुज्ञाता भर्त्रा वापि सुतेन वा।
विफलं तद्भवेत्तस्या यत्करोत्यौर्ध्वदैहिकम्॥

व्रती जीवन ही मानव-जीवन है

(सुश्रीअर्पिताजी—मानव-सेवा-संघ)

मानव सृष्टिका सिरमौर है और उस अनन्तका कृपा-प्रसाद है। मानवका आविर्भाव एवं प्राकट्य उस परम करुणासागर, अनन्त आनन्दसिन्धुने अपनेमेंसे और अपने लिये किया है। अपनी ही विभूतियोंसे भरपूर करके उस रचयिताने हमारी-आपकी रचना की है ताकि हम उसे रस प्रदान करके उसके लिये उपयोगी सिद्ध हों। मानव और प्यारे प्रभुका बड़ा ही अटूट एवं अविभाज्य सम्बन्ध है। हमारे बिना उनकी लीला अधूरी और उनके बिना हमारा अस्तित्व अधूरा है। जबतक जीवन उनके प्रेमसे ओत-प्रोत नहीं होता, तबतक जीवनका सूनापन मिटता नहीं है।

हम मानव होनेके नाते जन्मजात साधक हैं। साधकके जीवनकी सार्थकता इसी बातमें है कि शरीर छूटनेके पूर्व सिद्धि मिल जाय अर्थात् दु:खकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाय, जीवन-मुक्ति और भगवद्भक्ति मिल जाय। आज हमारी दशा क्या है—हम रोते-रोते जनमे हैं और यदि हमने व्यक्तित्वके मोहका नाश नहीं किया, अभिमानका त्याग नहीं किया, प्राप्त सामर्थ्यसे माता-पिताकी, समाजकी सेवा नहीं की, विवेकके प्रकाशमें शरीर और संसारसे असंग नहीं हुए तथा हृदयकी समग्र भावनाके आधारपर प्रभुके प्रेमी नहीं हुए तो मरनेके समय पुन: रोना ही पड़ेगा।

संतोंका इस धराधामपर आगमन यही दिशा-बोध करानेके लिये होता है कि तुम शान्ति, मुक्ति और भक्तिके अधिकारी हो, क्यों भटक रहे हो। सृष्टिमें कोई भी व्यक्ति जिसने ममता-कामनाका त्याग किया, उसको शान्ति स्वत: प्राप्त हो गयी। जिसने शरीर और संसारके स्वरूपकी वास्तविकता जानकर अपने लिये शरीर और संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद किया, उसे मुक्ति मिल गयी अर्थात् जन्म-मरणका बन्धन सदा-सदाके लिये कट गया। जिसने सहज विश्वासके आधारपर प्रभुको अपना माना, उसे भक्तिकी प्राप्ति हो गयी। यह पुरुषार्थ हम सबको करना ही होगा। जिसने मरना सँभाल लिया उसका जीना स्वत: सँभल जाता है और जो जीना सँभाल लेता है उसे अमर जीवन, प्रेममय जीवन स्वत: प्राप्त हो जाता है। श्रीमहाराजजीकी अनुभूत वाणी है—

जीते जी मर जाय अमर हो जावे।
दिल देवे सो दिलवर को पावे॥

मानव-जीवनकी सफलताके लिये सभी ऋषि-मुनि, पीर-पैगम्बर एक स्वरसे यही संदेश प्रसारित करते रहे हैं कि जैसे भी जितनी जल्दी बन पड़े हमें भगवान्‌की ओर उन्मुख हो जाना चाहिये। उनसे अपना सम्बन्ध जोड़ लेना चाहिये। इसके लिये आदिकालसे विभिन्न प्रकारकी साधनाएँ प्रचलित रही हैं। व्रत, उपवास, अनुष्ठान आदि साधनोंके द्वारा जीवन-प्राप्तिकी चर्चा होती रही है।

शान्ति, मुक्ति, भक्तिकी जो हमारी जन्मजात माँग है, उसे पूरा करनेके लिये हमें व्रत धारण करना होगा। परमपूज्य श्रीस्वामीजी महाराज (श्रीशरणानन्दजी महाराज)-के पास जब भी कोई साधक दीक्षाहेतु आता और प्रार्थना करता कि 'महाराज! मुझे दीक्षा दे दीजिये' तो श्रीमहाराजजी कहते—'भैया! हम कोई कनफूँकी दीक्षा नहीं देते, हम तो व्रत दिलाते हैं। विना व्रत धारण किये दीक्षा जीवनका अङ्ग

नहीं बनती। व्रत आन्तरिक जीवनकी प्राप्तिका अचूक उपाय है। व्रत ही तो जीवन है। जो साधक सम्पूर्ण जीवनको व्रतमय बना लेता है, उसे सहजमें ही परम तत्त्व एवं भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है। व्रतका उद्देश्य क्या है? अभीष्टकी प्राप्ति। अभीष्ट क्या है? जिसे पाकर कुछ और पाना शेष न रह जाय अर्थात् अभावका अभाव हो जाय। दूसरे शब्दोंमें अपनेमें अपना जीवन-धन प्राप्त हो जाय।'

आज हम जितनी तत्परतासे बाह्य व्रत धारण करते हैं, उतनी तत्परता आन्तरिक व्रत धारण करनेकी नहीं रहती। हमें शरीर-धर्ममें जितना विश्वास है, उतना स्वधर्ममें नहीं। यही कारण है कि जीवन और साधनमें एकता नहीं हो पाती। यद्यपि व्रतोंका जीवनमें बहुत योगदान है—शरीर स्वस्थ रहता है, मनको भी हम कुछ समयके लिये संयमित कर लेते हैं, चित्तवृत्ति भी कुछ समय शान्त होती दिखती है, पर जीवन पूर्णतः नहीं बदलता।

करते हैं साधन और होता रहता है असाधन अर्थात् दो घण्टे अथवा तिथि-वार विशेष समय साधनमें और बादमें असाधनका प्रवेश होता रहता है। करने बैठते हैं सच्चिन्तन और होने लगता है असच्चिन्तन। करते हैं सत्कर्म किंतु साथ-ही-साथ विवेकविरोधी कर्म भी होता रहता है। यही कारण है जीवनमें शान्ति, मुक्ति तथा भक्तिकी माँग रहते हुए भी पूरी नहीं होती।

अध्यात्म-जगत्‌के अनुभवी संत, प्रेमनिधि परम प्रेमास्पदके नित्य सखा श्रीस्वामी शरणानन्दजी महाराजने जीवनकी खोज की और उन्होंने जीवनकी सफलताके लिये मूलतः तीन व्रतोंका उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि शरीरके द्वारा व्रत धारण करना भी सहयोगी है, पर जीवनमें साधनकी अभिव्यक्ति नहीं हो पाती और करनेका अभिमान भी रहता है। साथ ही यदि आशाके अनुरूप प्राप्ति नहीं होती तो अश्रद्धा भी पैदा होती है।

जीवन-व्रत—श्रीमहाराजजीने शान्ति, मुक्ति तथा भक्तिकी प्राप्तिका आधार तीन व्रतोंको बताया—१-मिले हुए बलका दुरुपयोग न करना, २-विवेकका अनादर न करना और ३-आस्था, श्रद्धा तथा विश्वासमें विकल्प न करना। जिनके फलस्वरूप शरीर विश्वके काम आ जाय, अहं अभिमानशून्य हो जाय और हृदय प्रभु-प्रेमसे भर जाय।

यह जीवनका सत्य है कि मिली हुई वस्तु, योग्यता तथा सामर्थ्य अपनी नहीं है, अपने लिये नहीं है। मिला हुआ सब कुछ संसारका है और संसारके लिये है। अतः हमें इनके दुरुपयोगका अधिकार नहीं है। जब मिले हुएका दुरुपयोग न करनेका व्रत जीवनमें सुदृढ़ होता है तो उसका स्वतः सदुपयोग होने लगता है, जिससे सुन्दर समाजका निर्माण स्वतः होता है। स्वतः होनेवाली भलाईका अभिमान नहीं होता। अतः मिले हुएके द्वारा दूसरोंकी सेवा करना—यह व्रत है। सेवाके व्रतमें यह अनिवार्य है कि जिन वस्तुओंके द्वारा हम सेवा कर रहे हैं वे वस्तुएँ उन्हींकी हैं अथवा जिनकी हम सेवा कर रहे हैं वे अपने ही हैं। सेवामें अपना करके अपना कुछ नहीं है। सेवाके बिना न तो हम परिवारके लिये उपयोगी हो पाते हैं और न समाज तथा संसारके लिये। सेवाका व्रती होनेपर सेवकको अपने लिये संसारकी आवश्यकता नहीं रहती, अपितु संसार उसकी आवश्यकता अनुभव करता है।

दूसरा है विवेकका अनादर न करनेका व्रत। हमारा विवेक प्रतिक्षण शरीर और संसारकी नश्वरताका बोध कराता है। मिला हुआ मेरा नहीं है और मेरे लिये नहीं है। अगर अपना होता तो सदैव अपने साथ रहता और अपना स्वतन्त्र अधिकार भी उसपर होता। पर किसी भाई-बहनका अनुभव नहीं है कि इस सृष्टिमें अपना करके कुछ भी हो। हमारा विवेक निर्मम होनेकी प्रेरणा दे रहा है। निर्मम हुए बिना क्या कोई भाई-बहन विकाररहित हो सकता है। है कोई शरीरके द्वारा किया जानेवाला व्रत, जो हमें निर्विकार बना दे। बिना निर्विकार हुए भगवान्‌के भक्त हो सकते हैं क्या? जब तुम्हारा कुछ भी अपना रहेगा, क्या भगवान् अपने हो सकेंगे? नहीं हो सकते। अतः ज्ञानके आदरके द्वारा ही साधक निर्मम होता है। निर्मम होते ही निष्कामताकी प्राप्ति होती है। जब अपना कुछ व्यक्तिगत है ही नहीं तो अपनेको चाहिये क्या? अतः अचाह व्रत धारण करना अनिवार्य है शान्तिकी प्राप्तिके लिये। बन्धन-मुक्ति अथवा जीवनमुक्तिकी प्राप्तिका साधन है असंगता अर्थात्

निर्ममता, निष्कामता। असंगताके लिये विवेकके अनादर न करनेका व्रत धारण करना अनिवार्य है।

तीसरा व्रत है—सुने हुए प्रभुमें आस्था अर्थात् श्रद्धा-विश्वासपूर्वक प्रभुका प्रेमी होना। इस माँगकी पूर्तिके लिये विश्वासमें विकल्प न करना ही आवश्यक व्रत है। मानव-जीवन मिला ही है प्रभु-प्रेमकी प्राप्तिहेतु। परमात्माकी प्राप्तिमें कोई अभ्यास, श्रम तथा पराश्रय अपेक्षित नहीं है।

करणके माध्यमसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती—न बाह्यकरणकी सहायतासे और न अन्तःकरणकी सहायतासे परमात्मा प्राप्त होता है। परमात्मप्राप्तिका एकमात्र साधन है—उनका अस्तित्व, महत्त्व और अपनत्व स्वीकार करना।

प्रभु हैं उनकी महिमाका पारावार नहीं है तथा उनका प्रेम ही मेरा जीवन है—यही व्रत परमात्मासे मिला देता है। श्रीमहाराजजीने परमात्माके मिलनका सहज उपाय बताया कि प्रभु सभीके होनेसे अपने हैं और अपने होनेसे स्वतः प्यारे लगने चाहिये; क्योंकि अपना अपनेको स्वतः प्यारा लगता ही है। जो प्यारा लगता है उसकी याद स्वतः आती है, करनी नहीं पड़ती। दूसरी बात सर्वत्र होनेसे परमात्मा अपनेमें भी है। जो अपनेमें मौजूद होता है उससे दूरी नहीं रहती। बाहरकी तलाश समाप्त। अपनेमें ही उससे मिलन होता है। भक्तिमती मीराजीका उद्घोष है—

'मेरा पिया मेरे हीय बसत हैं ना कहुँ आती जाती॥'

तीसरी बात—परमात्मा होनेसे अभी भी हैं। भविष्यकी खोज समाप्त अर्थात् प्रभु वर्तमानमें हैं। चौथी बात प्रभु सर्वसमर्थ हैं और पाँचवीं बात परमात्मा अद्वितीय हैं। उन्हींसे साधकका नित्य, जातीय और आत्मीय सम्बन्ध है। आज हम वाणीके द्वारा, अभ्यासके द्वारा, आसन-मुद्रा, व्रत-उपवासके द्वारा उन्हें पकड़ना चाहते हैं, पर क्या सफल हो पाते हैं, क्योंकि कोई भी क्रिया निरन्तर नहीं हो पाती। उन्हें अपना माननेका व्रत ही उनकी प्राप्ति करा देता है। अपनेका सब कुछ प्यारा लगता है। उनका नाम, रूप, लीला और धाम—सब प्यारा लगता है। श्रीमहाराजजीने उन्हें पाया—

दर दिवार दरपन भयो जित देखूँ तित तोय।
कंकड़ पत्थर ठीकरी भई आरसी मोय॥

उपर्युक्त तीन व्रतोंको जीवनमें उतारनेहेतु, कसौटीपर कसनेहेतु श्रीमहाराजजीने ग्यारह नियमों या उपव्रतोंका निरूपण किया है—

(१) आत्म-निरीक्षण अर्थात् प्राप्त विवेकके प्रकाशमें अपने दोषोंको देखना।

(२) की हुई भूलको पुनः न दोहरानेका व्रत लेकर सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थना करना।

(३) विचारका प्रयोग अपनेपर और विश्वासका दूसरोंपर अर्थात् न्याय अपनेपर और प्रेम तथा क्षमा अन्यपर।

(४) जितेन्द्रियता, सेवा, भगवच्चिन्तन तथा सत्यकी खोजद्वारा अपना निर्माण।

(५) दूसरोंके कर्तव्यको अपना अधिकार, दूसरोंकी उदारताको अपना गुण और दूसरोंकी निर्बलताको अपना बल न मानना।

(६) पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी, पारिवारिक भावनाके अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन एवं सद्भाव अर्थात् कर्मकी भिन्नता होनेपर भी स्नेहकी एकता।

(७) निकटवर्ती जन-समाजकी यथाशक्ति क्रियात्मक-रूपसे सेवा करना।

(८) शारीरिक हितकी दृष्टिसे आहार-विहारमें संयम तथा दैनिक कार्योंमें स्वावलम्बन।

(९) शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहंको अभिमानशून्य करके अपनेको सुन्दर बनाना।

(१०) सिक्केसे वस्तु, वस्तुसे व्यक्ति, व्यक्तिसे विवेक तथा विवेकसे सत्यको अधिक महत्त्व देना।

(११) व्यर्थ चिन्तन-त्याग तथा वर्तमानके सदुपयोगद्वारा भविष्यको उज्ज्वल बनाना।

जीवनके ये व्रत साधकको शरीरके रहते-रहते चिरशान्ति, जीवनमुक्ति तथा भगवद्भक्ति प्राप्त करानेमें सक्षम सिद्ध होते हैं। हम सभी साधक इन व्रतों तथा नियमोंका पालन करके अपने जीवनको सफल बना लें, इसी सद्भावनाके साथ।
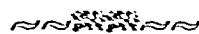
मानव-जीवनके तीन महोत्सव—जन्म, विवाह और मृत्यु

(आचार्य पं० श्रीचन्द्रभूषणजी ओझा, एम्०ए० (संस्कृत, हिन्दी), साहित्याचार्य, बी० एड्०)

मानव-जीवन तथा उत्सवका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। मानव-जीवनके तीन महोत्सव हैं—जन्म, विवाह और मृत्यु। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि पार्थिव यश, सम्मान तथा ऐश्वर्यकी आकाङ्क्षासे अभिभूत सांसारिक मानव जन्म तथा विवाहको तो महोत्सव मानता है, परंतु अपूर्व ज्ञानालोकसे आलोकोज्ज्वल तरंगमालाके नृत्य-कौशलके आनन्दमें निमग्न अलौकिक प्रतिभासम्पन्न, जीवन्मुक्त महापुरुष, जड़-देहके अनिष्टकी आशङ्कासे सत्यका परित्याग नहीं करता, बल्कि आत्माकी सम्पूर्ण शक्तिको केन्द्रीभूत करके लोकमें विपत्ति शब्दसे अभिहित मृत्यु, देहत्याग या निर्वाणको वास्तविक महोत्सव मानता है। ज्ञानामृतसे परितृप्त मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंका उद्घोष है—

शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा
आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥

× × ×

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् २।५, ३।८)

अर्थात् हे विश्ववासी! अमृत पुत्रोंके पुत्रगण, हे दिव्यधामनिवासी देवतागण! सुनो—मैंने आदित्यके समान देदीप्यमान उस महान् पुरुषको जान लिया है, जो समस्त अज्ञानान्धकारसे परे है। केवल उसे जानकर ही मानव मृत्युपर विजय प्राप्त कर सकता है, इसके अतिरिक्त मृत्युञ्जय होनेका अन्य कोई मार्ग नहीं है।

मृत्यु या निर्वाण एक ऐसा शुभ अवसर एवं आनन्दका क्षण है, जिसके माध्यमसे स्थूल शरीरके बन्धनमें आबद्ध जीवात्मा पुनः अपने मूल स्रोत परमात्मासे मिलने-हेतु अर्थात् व्यष्टिसे समष्टि-स्वरूप होनेके लिये सन्नद्ध रहता है। एतदर्थ मृत्यु एक असाधारण महोत्सव है।

आदान-प्रदान जगत्का शाश्वत नियम है। जीवन और मृत्यु भी आदान-प्रदान ही है। सम्प्रसारण ही जीवन है और संकोच ही मृत्यु, प्रेम ही जीवन है, घृणा ही मृत्यु।

आनन्द, उल्लास या महोत्सव मानवके अन्तस्की एक अनुभूति है। भारतवर्षमें जो भी व्रत, पर्व और उत्सव मनाये जाते हैं, उनका उद्देश्य आध्यात्मिकताको लिये होता है।

मानव-जन्म महोत्सव है; क्योंकि '**एकोऽहं बहु स्याम**' अर्थात् मायापति भगवान्ने एकसे बहुत होनेकी इच्छा की, परिणामतः श्रीभगवान्द्वारा सृष्टिका विस्तार हुआ। जो 'विराट् पुरुष' नामवाले हैं, वे ही भगवान् सर्वलोकमय हैं। जिनसे सभी ब्रह्माण्ड मूल प्रकृतियाँ, चर-अचर, पञ्चमहाभूत, सभी वर्ण, चौदहों भुवन, त्रिलोक, सप्तद्वीप, नवखण्ड, औषधियाँ, अन्न, जीवनी शक्ति, समस्त रस आदि जगत्की सृष्टि हुई। **'रसो वै सः', 'आनन्दो वै सः'** अर्थात् वह विराट् पुरुष ही स्वयं रसस्वरूप है, वह आनन्दस्वरूप है। इस प्रकार विराट् पुरुष भगवान्द्वारा रची सृष्टि भी आनन्दस्वरूप ही है।

सुरदुर्लभ मानव-योनिमें जन्म वास्तवमें 'महोत्सव' है। जन्मकी सार्थकता, इन्द्रिय प्रत्यक्ष तथा द्वैतप्रपञ्चका अप्रत्याशितरूपसे महाशून्यमें लीन होनेमें है। अच्छे कार्य करनेवाले संसारमें बहुत-से लोग हैं, परंतु जो स्वयंमें अच्छे हैं तथा देश, काल, परिस्थिति एवं नियतिसे परे अवस्थित निजबोधस्वरूप आत्मामें स्थित हैं, जिनका सांनिध्य प्राप्त कर सामान्य जीव भी सदैव सच्चिदानन्द-सागरमें डूबे रहते हैं, ऐसे 'ज्योतिपुत्र', 'तत्त्वजिज्ञासु' अतिमानवका जन्म वास्तवमें महोत्सव है।

'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥' होनेसे जीवका वास्तविक स्वभाव सच्चिदानन्द, परमानन्द ही है। परंतु वह मायासे लिपटकर अपने स्वरूपको भूल गया है, इसीलिये दीन-दुःखी हो गया है—

भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥

जिस अनाग्रहशील, ब्रह्मविद्, ज्योतिपुत्र तथा तत्त्वजिज्ञासुने अपने स्वरूपको विवेकद्वारा जागकर जाना है उसने अपने अन्तस्में जितना अधिक सद्गुणोंका विकास कर लिया है, उसी स्तरतक महामानव, जीवन्मुक्त तथा उसका जन्म अवतारतक कहलाने लगता है। अभावमें भावका अवतरण ही जन्म या उत्पत्ति कहलाता है—

'अव्यक्ताद्व्यक्तय: सर्वा: प्रभवन्त्यहरागमे।'

(गीता ८।१८)

उस निराकाररूप ब्रह्मके सूक्ष्मशरीरसे ही सभी स्थूल सृष्टि उत्पन्न होती है। इसी प्रकार वह सच्चिदानन्द परमात्मा स्वयं ही निराकाररूपसे साकाररूपको धारण करता है। इसीका नाम अवतार लेना है।

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥

त्रेतामें श्रीरामजीने जो कलियुगकी विषम परिस्थितियाँ थीं, उन्हें पलटकर सत्ययुग उपस्थित कर दिया—*'त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी।'* यही अवतारका प्रयोजन है। भगवान्‌का शरीर पाञ्चभौतिक नहीं है परञ्च चिदानन्दमय-नित्य-दिव्य तथा देह-देही-विभागरहित है—

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥

जीव कर्मोंके वश गर्भमें आता है। भगवान् कर्मके अधीन नहीं हैं—*'करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा'* वे अपनी इच्छासे अवतार लेते हैं। विप्र, धेनु, सुर और संतोंकी भलाईके लिये मायातीत, गुणातीत भगवान् अपनी इच्छासे नर-तन धारण करते हैं—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

यही कारण है कि—

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना॥
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा॥

ज्ञानीको ब्रह्मानन्द और भक्तको परमानन्द होता है। महाराज दशरथजीको क्रमसे दोनों हुए। यही नहीं, भगवान् शिव और काकभुशुण्डिजी भी श्रीरामका जन्म-महोत्सव देखकर *'बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले'* की स्थितिमें आनन्दित हैं—

जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई॥

इस प्रकार काकभुशुण्डिजी श्रीरामजीका जन्म-महोत्सव देखकर अपने नेत्रोंको सफल करते हैं—*'लोचन सुफल करउँ उरगारी॥'*

मानव-जीवनका दूसरा महोत्सव विवाह है। विवाह मङ्गलमय उत्सव है। विवाहके लिये 'प्रणय' शब्दका प्रयोग किया जाता है जो प्रीतिके आठ अङ्गोंमेंसे एक है—मैं तुम्हारा हूँ, तुम हमारे हो, मेरा तुम्हारा है, तुम्हारा मेरा है—यही प्रणय है। **'स्वसुखे सुखित्वम्'** की क्षुद्रवासनाके स्थानपर **'तत्सुखे सुखित्वम्'** की भावना प्रणयमें होनी चाहिये।

पति-पत्नीकी आत्माओंकी एकता शक्ति और शक्तिमान्‌के एकीकरणकी भाँति है। दो शरीर, दो मन, दो बुद्धि, दो हृदय, दो प्राण एवं दो आत्माओंके एकत्र समन्वयसे सफल दाम्पत्य-जीवनका श्रीगणेश होता है। सफल दाम्पत्य-जीवनसे ही गार्हस्थ-जीवन सुखी तथा आनन्दित होता है जिससे लौकिक तथा पारलौकिक उद्देश्योंकी पूर्ति होती है।

मानव-जीवनकी मन्दाकिनी विवाहोत्सवसे ही प्रवाहित होती है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामजी तथा सीताजीका विवाह भारतीय ही नहीं, वैश्विक संस्कृतिके लिये भी अनुकरणीय ही नहीं अनुपालनीय है। यह आदर्श विवाह है। श्रीसीतारामजीका विवाह तो सच्चे अर्थोंमें तत्त्वकी अभिव्यक्ति करता है। तत्त्वज्ञ जनकके मण्डपकी तुलना जीवके अन्त:करणसे की गयी है—

सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥

अर्थात् सब सुन्दरी दुलहिनें सुन्दर दुलहोंके साथ एक ही मण्डपमें ऐसी सुशोभित हो रही हैं मानो जीवके हृदयमें चारों अवस्थाएँ अपने-अपने स्वामियोंसहित विराजमान हैं। चारों बहिनें चार अवस्थाएँ तथा चारों भाई चारों विभु हैं।

मानव-जीवनका सर्वोत्कृष्ट परंतु अन्तिम महोत्सव मृत्यु है। मृत्युका एकमात्र कारण अज्ञान है। जिस व्यक्तिने शरीरसे अलग अपने भीतर किसी तत्त्वको नहीं जाना, वही अज्ञानी है। अज्ञानीका यही अनुभव है कि मैं शरीर हूँ। जीवात्मा मूलत: और तत्त्वत: परमतत्त्व परमात्मासे अभिन्न है। केवल अज्ञानके कारण ही अपनेको परमात्मासे भिन्न मानता है। यही कारण है कि अज्ञानमें ही मृत्यु है।

जीवन मिटकर ही मिलता है। जो कच्चे नारियलकी तरह संसारसे, शरीरसे एवं भोगोंसे चिपके रहते हैं वे खो देते हैं, परंतु जो खो जाता है, अपनेको मिटा देता है, वह शून्य हो जाता है और शून्य होकर पूर्णताको प्राप्त कर लेना

है। व्यष्टि या बूँद, बूँद रहकर समष्टि या सागर नहीं हो सकती। बूँद रहनेका आग्रह ही तो सागर होनेमें बाधा है। 'मैं' की बूँद जब मिटती है तब आत्मा, परमात्माका सागर उपलब्ध होता है। यही ब्रह्मानन्द, यही परमानन्द है। इसी स्थितिका वर्णन कबीरदासजी करते हैं—

मरनेसे तो जग डरे मेरे मन आनन्द।
मरनेपर ही पायेंगे पूरन परमानन्द॥

भोगी अज्ञानी ही होता है, भोगीका विषय भोग होता है। उसका भविष्य तो सर्वथा अन्धकारमय होता है। मरणधर्मा भोगी वृद्धावस्थामें रोगोंसे घिरकर दुःख पाता है। एक ओर तो शारीरिक पीडाका कष्ट होता है और दूसरी ओर भोगोंके प्रति आसक्तिसे स्मृति एवं उन्हें न भोग पानेकी असमर्थतासे उसका मन महान् दुःखका अनुभव करता है। कठोपनिषद् (१।२।६)-में नचिकेताने यमराजसे यही प्रश्न किया था कि मरनेपर आत्मा रहता है या नहीं? यमराजजीने यही उत्तर दिया था कि अवश्य रहता है—

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥

अर्थात् जो धनके मोहसे मोहित हो रहा है ऐसे (भोगी) प्रमादी, मूढ़, अज्ञानी, अविवेकी पुरुषकी परलोकमें श्रद्धा नहीं होती। यह लोक ही है, परलोक नहीं है—इस प्रकार माननेवाला वह मूढ़ मुझ मृत्युके वशमें बार-बार पड़ता है अर्थात् पुनः-पुनः जन्म-मृत्युको प्राप्त होता है।

मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसको वैसा ही फल भी मिलता है। कर्मके अनुसार संस्कार तथा संस्कारके अनुसार अन्तःकरणमें वृत्ति बनती है। वृत्तिके अनुसार अन्तकालमें स्मृति होती है और उसीके अनुसार भावी जन्म होता है। इसीलिये कहा गया है—*'अन्त मति सो गति।'* भगवान् श्रीकृष्णने गीता (१३।२१)-में कहा है—

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

अर्थात् प्रकृतिमें स्थित पुरुष ही प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और गुणोंका सङ्ग ही इस जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है। भरत मुनिको मृत्युके समय मृग-शावकमें मोहासक्तिके कारण ही मृगयोनिमें जन्म लेना पड़ा था।

अज्ञानरूपी आवरणका नाश करना जीवके वशमें नहीं है। जैसे कोशकीट (बेरकी झाड़पर कोश बनानेवाला कीड़ा) स्वयं ही उस कोशरूपी आवरणको बनाकर अपनी ही करनीसे उस कोशमें बंद होकर मर जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा अपने द्वारा बनाया हुआ अज्ञानावरण स्वयं नहीं हटा सकता। संत, भक्त, सद्गुरु तथा भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे ही अज्ञान दूर होता है। भक्ति और कृपा, साधन-साध्य नहीं है अपितु कृपासाध्य है—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥
(रा०च०मा० २। १२७। ३-४)

मानव-जीवनका वास्तविक महनीय महोत्सव मृत्यु है। इसी स्थितिको लक्ष्य करके किसी जीवन्मुक्त ब्रह्मज्ञानी नित्यलीलारसरसिक संत भक्तने कहा—

मरते मरते जग मुआ मरनि न जाना कोय।
ऐसी मरनी मर चलो बहुरि न मरना होय॥

बालकके जन्मपर उत्सव होता है। इसका तात्पर्य है कि बालक जन्मके समय रोता है संसार उत्सव मनाता है, इसका लाक्षणिक एवं तात्त्विक तात्पर्य यह है कि निर्वाण (मृत्यु)-के समय बालक (जीवात्मा) हँसे और संसार रोये—

जब हम जग पैदा हुए जग हँसा हम रोए।
ऐसी करनी कर चलो हम हँसे जग रोए॥

× × × ×

करो कृत्य जीवन में कुछ ऐसा भैया।
कि अन्तिम में हँसते हुए प्राण जाए॥

जन्म धराधामपर जीवात्माका आगमन है, विवाह दो आत्माओंका मिलन है, परंतु निर्वाण (मृत्यु) आत्मा-परमात्माका महामिलन है, परिनिर्वाण है महासमाधि है। जन्म गङ्गाका अवतरण है, विवाह यमुना (कर्म)-का संगम है तथा मृत्यु (अदृश्य) सरस्वती-त्रिवेणीका महासंगम है। तात्त्विक विवेचन यह है कि जन्म, विवाह तथा मृत्यु (निर्वाण) यथार्थतः मानव-जीवनके आनन्दोत्सवपूर्ण महोत्सव हैं।

जन्म और मृत्यु जीवन-नदीके दो कूल हैं। विपर्य

संसारी व्यक्ति निरुपाय-सा प्रवाहमें बहता रहता है। चतुर तैराक ब्रह्मयोगयुक्तात्मा, आत्मज्ञानी, भक्त '**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**' के वास्तविक रहस्यको हृदयङ्गम करके आत्मानन्दकी मस्तीमें डुबकी लगाता हुआ दोनों कगारोंको तैरकर पार कर लेता है। संयोगसे किसी तरह रोते-बिलखते जीना और निरुद्देश्य मर जाना जीवनकी सार्थकता नहीं है। विषयोंसे अनासक्त रहते हुए ज्ञान प्राप्तकर नित्यसुखकी प्राप्ति, शान्ति एवं अक्षय आनन्दकी उपलब्धियोंको प्राप्तकर देहत्यागरूपी मृत्युको महोत्सवके रूपमें वरण करना मानव-जीवनकी सार्थकता है।

जिसने जीवनको ठीक ढंगसे जिया नहीं है, वह ठीक ढंगसे मर भी नहीं सकता। मृत्युके क्षणमें व्यक्ति अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो जाता है। उस समय उसके व्यवहारका आधार बाह्य चेतना नहीं होती है। ऐसी स्थितिमें प्रभुके नामका स्मरण उसके हृदयस्थ ईश्वरप्रेमको प्रकट करता है। आसक्तियोंके ऊपर उठ जाना ही तो मुक्ति है। मृत्यु मुक्तिका साधन है। भगवान् श्रीकृष्णने गीता (८।५)-में कहा है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

अर्थात् अन्तकालमें जो मेरा स्मरण करता हुआ देह त्याग करता है, वह मेरे स्वरूपमें निःसंदेह मिल जाता है। छान्दोग्योपनिषद् (३।१४।१)-में कहा गया है—'**यथा क्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति**' अर्थात् मनुष्यका जैसा संकल्प होता है, मरनेपर उसे वैसी ही गति मिलती है।

निष्कर्षतः मानव-जीवनका सत्य स्वरूपका ज्ञान ही है। ज्ञान और अर्थकी श्रेष्ठता उनके सदुपयोगमें ही निहित है। सदुपयोगकी स्थितिमें भ्रमके निराकरणसे जीवनके तीन महोत्सव—जन्म, विवाह तथा मृत्यु स्वयंसिद्ध हैं। अतः संसारमें चाहे मन जाय पर मनमें संसार न आने पाये, इस परमव्रतका दृढ़तासे पालन करना चाहिये।
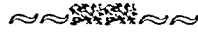
व्रतोपवाससे अनन्त पुण्य और आरोग्यकी प्राप्ति

(श्रीसीतारामजी शर्मा)

ऐसा कहा जाता है कि अकेला एक उपवास अनेक रोगोंका नाश करता है। नियमतः व्रत-उपवासोंसे उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। हमारे देशके अनपढ़ ग्रामीण भी इस बातको जानते हैं कि अरुचि, अजीर्ण, उदरशूल, मलावरोध, सिरदर्द एवं ज्वर-जैसे साधारण रोगोंसे लेकर असाध्य महाव्याधियाँ भी व्रतोपवासोंसे निर्मूल हो जाती हैं। उससे अपूर्व एवं स्थायी आरोग्यताकी प्राप्ति हो जाती है। सभी देशों तथा धर्मोंमें व्रत-उपवासका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा मनुष्यकी अन्तरात्मा शुद्ध होती है। ज्ञानशक्ति, विचारशक्ति, बुद्धि, श्रद्धा, मेधा, भक्ति तथा पवित्रताकी बढ़ोत्तरी भी होती है।

आजकी तुलनामें पिछली सदियोंके लोगोंका स्वास्थ्य अच्छा हुआ करता था और वे नीरोग होते थे। आजके अनेक भयंकर रोगोंसे वे कोसों दूर थे। रोगोंका उनपर आक्रमण नहीं हुआ करता था, ऐसी बात तो नहीं, परंतु वे लोग शास्त्रानुसार आचरण करके स्वस्थ रहनेका प्रयास करते थे। इन प्रयासोंमें वे सफल भी होते थे। हमारे पूर्व मनीषियोंद्वारा आयुर्वेदके आधारपर धार्मिक व्रत-अनुष्ठानोंका अनुपालन करनेका उपाय प्रस्तुत किया गया है। इन व्रतोंके पालनद्वारा सामान्य रोगोंसे मानव मुक्ति प्राप्तकर स्वस्थ जीवनका अनुभव कर मानसिक तनावोंसे भी छुटकारा पाकर ईश-प्राप्तिका सहज सुलभ साधन भी पा लेता था—ऐसा विश्वास किया जाता है।

हमारे देशमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे संवत्सरपर्यन्त सभी तिथियोंमें व्रतोंका विधान है। तिथि-व्रत, वार-व्रत, मास-व्रत, नक्षत्र-व्रत आदि तो प्रसिद्ध हैं ही। यह सम्भव नहीं कि प्रत्येक दिन व्रत किया जाय तथापि हर माह एक या दो व्रत किये जा सकते हैं। चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे एक सप्ताह प्रतिदिन स्नानादिसे निवृत्त होकर सर्वप्रथम कड़वे नीमकी नयी कोपलोंके सेवनको रक्त-शुद्धि और चर्मरोगोंसे मुक्त

होनेका साधन बताया गया है।

वैशाखमासकी अक्षय तृतीया एक शुभ मुहूर्त है। इस दिन उपवासपूर्वक जलसे भरा घड़ा, मटकी, फल एवं पंखा दान देनेका विधान बताया गया है। मिट्टीके सम्पर्कसे जल शुद्ध होता है—पाँच तत्त्वोंमेंसे दो तत्त्व जल और पृथिवी शरीरके लिये पोषक हैं। सर्दीके दिनोंका बना हुआ अग्निमें पकाया गया मिट्टीका घड़ा उपयोगी माना गया है। ऐसे घड़ेका पानी पीना अधिक लाभकारी है न कि फ्रिजकी बोतलका पानी। वैशाखमासमें मिट्टीका घड़ा दान करना परोपकारी बात मानी जाती है तथा यह पुण्यजनकताका हेतु भी है।

कहते हैं चन्द्र-किरणोंसे अमृतकी वर्षा होती है। मानवकी सम्पूर्ण क्रिया मनसे संचालित होती है। चन्द्रमा मनका प्रतिनिधिकारक तत्त्व है। चन्द्रमा और श्रीगणेशका अद्वितीय सम्बन्ध है। इसी दृष्टिसे मनःशान्तिहेतु, बुद्धि-प्राप्तिहेतु श्रीगणेशचतुर्थीका व्रत रखते हैं। दिनभर उपवास करके शामको श्रीगणेशका पूजन कर चन्द्रोदयके उपरान्त चन्द्रदर्शन कर भोजन करना उपयुक्त बताया गया है। ऐसा करनेसे अन्नमें उत्पन्न चन्द्रमाका अमृत-प्रभाव तथा उसकी शीतलता मनको शान्ति प्रदान करती है।

धार्मिक व्रतोंमें एकादशी, प्रदोष और शिवरात्रि, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी आदिका भी बड़ा महत्त्व है। वर्षकी सभी एकादशियोंमें विष्णुशयनी एवं प्रबोधिनी एकादशियाँ तथा महाशिवरात्रि-व्रतका अपने-आपमें बड़ा महत्त्व है। चातुर्मास-व्रतोंके पालनका आरोग्य-प्राप्तिकी दृष्टिसे अनोखा एवं अद्वितीय महत्त्व माना गया है। यदि हम चातुर्मासमें व्रतोंका सही पालन करें तो आरोग्य-प्राप्तिके साथ-साथ आध्यात्मिक शान्ति भी पा सकते हैं। चातुर्मासोंमें वात-पित्तका प्रकोप अधिक रहता है, इसलिये साग-सब्जियोंका त्याग करना श्रेयस्कर होता है। इन दिनों एक समय हलका भोजन करना चाहिये।

'**वैद्यानां शारदी माता पिता च कुसुमाकरः**' अर्थात् चिकित्सकोंके लिये शरद्-ऋतु लाभकारी है। यह माताकी भाँति वैद्य लोगोंकी परवरिश करती है तो वसन्त-ऋतु पिताकी तरह उनका पालन-पोषण करता है। दोनों ऋतुएँ अपना प्रभाव स्वास्थ्यपर डालती हैं। इन ऋतुओंके साथ ज्वर, मलेरिया, पीलिया आदि रोगोंका प्रकोप होता है। इनसे बचनेका घरेलू उपाय धार्मिक व्रतोंका पालन कर खान-पानपर ध्यान देना एवं ईश-उपासना करना है। इससे शारीरिक लाभके अतिरिक्त आध्यात्मिक लाभ भी होता है। वर्षा-ऋतुमें सब्जियाँ दूषित हो जाती हैं। सरोवरोंका जल भी मलिन रहता है। मच्छर एवं अन्य कीट-पतंग उत्पन्न हो जाते हैं। इनसे मुक्ति पानेहेतु धार्मिक व्रतोंका विशेष आयोजन रहता है। जिसमें शारीरिक पवित्रता एवं मिताहारी रहनेके कारण रोग नहीं हो पाते।

आरोग्यकी दृष्टिसे सप्ताहमें एक दिनका उपवास एवं उस दिनके देवताकी पूजा-अर्चा पुण्यदायक है। सोमवारको भगवान् शंकरहेतु, गुरुवारको भगवान् दत्तात्रेयहेतु, शुक्रवार एवं मंगलवारको माता भवानीहेतु, शनिवारको हनुमान् एवं शनिदेवकी आराधनाके लिये व्रत किया जा सकता है। रविवार और बुधवारको मध्याह्नके पश्चात् भोजन करना चाहिये। सामान्यतः दूध, फल, साबूदाना, सिंघाड़ा, मखाना आदि सात्त्विक और सुपाच्य हलके पदार्थोंका सेवन व्रतोंमें लाभकारी है। सम्भव हो तो पूर्णरूपसे निराहार एवं निर्जल-व्रत करना चाहिये।

अधिकांशरूपसे व्रत-त्योहारोंपर दान करनेकी परम्परा रही है। इससे दीनोंपर उपकार किया जा सकता है। दान देना व्यक्तिके मानसिक विकासकी दृष्टिसे एवं सामाजिक दृष्टिसे आवश्यक भी है। चातुर्मासके उपवास और नियम धर्मकी दृष्टिसे उपयोगी होते हैं। उपवास और नियम-धर्मोंका पालन करनेवाले व्यक्तियोंका स्वास्थ्य तो उत्तम रहता ही है, साथ ही उनके व्यक्तित्वका भी विकास होता है।

धार्मिक व्रतोंका उचित पालन शरीर-शुद्धि, आत्मिक और आध्यात्मिक शान्तिकी प्राप्तिमें सहायक है। इन व्रतोंके माध्यमसे मनुष्य ईश्वर या अपने इष्टदेवकी आराधना और भक्ति भी कर सकते हैं। व्रत हिन्दू संस्कृति एवं धर्मके प्राण बताये गये हैं। नियमतः व्रत-उपवासोंके पालनसे स्वस्थ एवं दीर्घ जीवनकी प्राप्ति होती है।
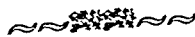
सांस्कृतिक इकाईके मूल सूत्र—पर्व एवं त्योहार

(डॉ० श्रीरामप्रसादजी दाधीच)

किसी मानव-समूह अथवा देशकी सांस्कृतिक एकताका निर्माण वहाँके मूल्यों, आदर्शों, प्रेरक सिद्धान्तों एवं प्रेरक मान्यताओंसे होता है। ये जितने सुदृढ़, व्यापक, उदार एवं चैतन्य होंगे, उस देश अथवा मानव-समूहकी सांस्कृतिक एकता भी उतनी ही सुदृढ़, स्थिर एवं अविचल होगी।

इस दृष्टिसे उत्सव, त्योहार एवं व्रत संस्कृतिके आवश्यक अङ्ग-उपाङ्ग हैं। ये तत्त्व मनुष्यके जीवन-व्यवहारके केन्द्र-बिन्दुमें रहते हैं। इन्हीं केन्द्र-बिन्दुओंके चारों ओर भावनाओं, विश्वासों, विचारों एवं धार्मिक व्यवहारोंका विस्तार होता है और मनुष्य समूहरूपमें स्वत: ही मन एवं आत्माकी एकताके सूत्रमें बँधने लगता है। यह संस्कृति ही मनुष्यको व्यष्टि इकाईकी सीमित परिधिसे हटाकर सामूहिक अथवा समष्टिसम्पन्न बनाती है।

भारतीय संस्कृतिका मुख्य तत्त्व उसकी धार्मिक परम्परा है। इस परम्पराका इतिहास बहुत पुराना है। ऋग्वेदके पृथ्वीसूक्तके अनुसार यह हमारी मातृभूमि अनेक प्रकारके जनको धारण करती है। ये जन अनेक प्रकारकी भाषाएँ बोलते हैं और नाना प्रकारके धर्मोंको मानते हैं, किंतु भारतवर्षकी अन्तरात्मा लोककी इस विविधतासे कभी आक्रान्त नहीं हुई। यहाँके मनीषियोंने विविधताके मूलमें छिपी एकताके इन तत्त्वोंको खोजा जो हमारे देशकी सांस्कृतिक एकताको आज भी थामे हुए हैं। समन्वयात्मक दृष्टिकोण एक ऐसा ही तत्त्व है, जो भारतीय संस्कृतिकी आत्मा है।

धार्मिक परम्परामें हमारे व्रत और त्योहार अनुस्यूत हैं। हिमाचलसे लेकर दक्षिण प्रदेशतक और बंगालसे लेकर गुजराततक व्रतों और त्योहारोंकी एक अविच्छिन्न परम्परा आज भी देशमें विद्यमान है जो पूरे वर्ष चलती रहती है। देवी-देवताओंमें अटूट विश्वास चाहे वे वैदिक देवता हों अथवा लौकिक, भारतीय लोककी विशेषता रही है। भारतके किसी भी प्रदेशमें चले जायँ वहाँ प्रतिवर्ष समय-समयपर किसी-न-किसी देवी-देवताके मेले जुड़ते हैं और उत्सव होता है। लोकदेवताओंके प्रति जनका जो अटूट विश्वास है, उसे व्रत या आस्था कहा गया है। जब देवी-देवताओंके प्रति इस प्रकारकी भक्तिभावनाका प्रदर्शन उत्कण्ठा, उमङ्ग एवं उत्साहके साथ होता है तो इसे त्योहार अथवा उत्सव कहते हैं। इस प्रकारके सैकड़ों व्रत एवं त्योहार हमारे देशमें मनाये जाते हैं।

विक्रम संवत्‌के प्रथम मास चैत्रसे प्रारम्भ कीजिये—गणगौरव्रत, शीतलामाताका त्योहार, नवरात्र, दुर्गापूजा, रामनवमी, गङ्गादशहरा, नागपञ्चमी, रक्षाबन्धन, कृष्ण-जन्माष्टमी, अनन्त चतुर्दशी, श्राद्धपक्ष, विजयादशमी अथवा दशहरा, शरत्पूर्णिमा, करवाचौथ, धनतेरस, दीपावली, अन्नकूट, यमद्वितीया, गोपाष्टमी, कार्तिक-पूर्णिमा, संकटचौथ, मकर-संक्रान्ति, वसन्तपञ्चमी, महाशिवरात्रि व्रत एवं वर्षके अन्तिम मास फाल्गुनमें होलिकोत्सवतक भारतीय व्रत और त्योहारोंका यह सिलसिला फैला हुआ है। ये सब तो बड़े-बड़े व्रत और त्योहार हैं, जिन्हें गाँव-गाँव एवं नगर-नगरमें सामूहिकरूपसे मनाया जाता है। इनके अतिरिक्त एकादशी, अमावास्या, पूर्णिमा, अष्टमी आदिके व्रत होते हैं, जो किसी-न-किसी धार्मिक आस्थासे जुड़े रहते हैं। इसी प्रकार सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, रवि आदि वारोंसे जुड़े व्रत एवं उपवास होते हैं। संक्षेपमें यह कह सकते हैं कि भारतीय पञ्चाङ्गमें ऐसा कोई सप्ताह, पखवाड़ा अथवा महीना नहीं होता जिसमें कोई व्रत या त्योहार नहीं होता। इन्हें अत्यन्त आस्था, उमङ्ग एवं आनन्दमय मनसे मनाया जाता है। भारतीय संस्कृति जीवनके आशा एवं आनन्दमय पक्षको महत्त्व देती है। हमारे वैदिक ऋषियों एवं जीवनदर्शनके निष्णात मनीषियोंने एक ऐसी मानव-संस्कृति हमें दी, एक ऐसा जीवनदर्शन हमें दिया जो जीवनके आस्थामय एवं आनन्दमय पक्षको ही महत्त्व देता है।

भारतीय संस्कृतिकी एकता इन व्रतों और त्योहारोंमें अनुस्यूत दिखायी देती है। इन पर्वों एवं त्योहारोंके अवसरपर मन्दिरों, तीर्थस्थलों एवं धार्मिक प्रतिष्ठानोंमें अपनी-अपनी भाषा, वेश-भूषा, खान-पान, रंग और प्रदेशकी विविधताओंको विस्मृत कर जनसमूह एकत्र होते

हैं और अपनी आस्थामय भक्तिभावना अत्यन्त उत्साह तथा उमङ्गके साथ अपने आराध्यके प्रति निवेदित करते हैं। यह सिलसिला अनन्तकालसे चला आ रहा है। भारत केवल भौगोलिक इकाई नहीं है। उत्तर तथा दक्षिण, पूर्व तथा पश्चिम दिशाएँ यहाँ तब अपना कोई अर्थ नहीं रखतीं जब तमिल प्रदेशका व्यक्ति कुम्भपर्वके स्नानके लिये हरिद्वारकी हरिकी पैड़ीपर आता है और उत्तरका व्यक्ति रामेश्वरम् अथवा तिरुपति बालाजीके दर्शनके लिये जाता है। वास्तवमें भारत एक सांस्कृतिक इकाई है और ये व्रत-त्योहार इस सांस्कृतिक एकताके ताने-बानेके मूल सूत्र हैं।

व्रतोंकी महत्ता और भारतीय संस्कृति

(डॉ० श्रीचन्द्रभूषणलालजी वर्मा, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

व्रत यों तो आत्मिक होते हैं, पर 'व्रत' शब्दसे तात्पर्य है आत्मशोधनके निमित्त किये गये विधिसम्मत उपायोंको दृढ़तापूर्वक अपनाये रहना। व्रतोंका प्रयोजन दुर्गुणों, कषाय-कल्मषोंका निष्कासन एवं संस्कारोंका उदात्तीकरण है। अध्यात्मके मार्गपर आगे कदम बढ़ानेके लिये व्रत सहायक होते हैं। व्रतोंसे संकल्पशक्तिका विकास होता है। किसी सत्कार्यको पूरा करनेका संकल्प भी व्रतका ही स्वरूप है। उच्चस्तरीय नियमोंका प्रतिज्ञापूर्वक पालन भी इसमें आता है। शास्त्रकारोंने व्रतको तप एवं तितिक्षा (सहनशीलता)-के एक महत्त्वपूर्ण अङ्गके रूपमें निरूपित किया है।

उपवास, अस्वाद, मौन आदि व्रत भी अनेक दिशाओंमें बिखरी हुई शक्तिको एकत्र करके अभीष्ट दिशामें लगानेके लिये किये जाते हैं। महर्षि रमणका मौनव्रत विख्यात है, महाव्रती भीष्म, जगद्गुरु शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस आदिके ब्रह्मचर्य-व्रत तथा कणाद, पिप्पलाद आदि ऋषियोंके आहारसम्बन्धी व्रत इतिहास-प्रसिद्ध हैं।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये महाव्रत कहलाते हैं। शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान—इन पाँचोंको नियमरूपी व्रतकी संज्ञा दी गयी है। अहिंसाका अर्थ है—मन, वचन और कर्मसे किसी भी प्राणीको किसी भी प्रकारका कष्ट न देना, ईश्वर-प्रणिधानसे तात्पर्य है समस्त कार्योंको परमात्मामें अर्पित कर देना। ये बन्ध या व्रत जीवनमें आध्यात्मिक अनुशासनके रूपमें हैं। सभीका उद्देश्य संकल्पशक्तिका विकास और आध्यात्मिक शक्तियोंका निखार है।

व्रतमें आचार, श्रद्धा, उपवास और प्रार्थनाका विशेष महत्त्व है। उत्तम आचार ही सबसे पहला धर्म है। मनुस्मृति कहती है—'**आचारः प्रथमो धर्मो नृणां श्रेयस्करो महान्**' और ये मनुष्यके लिये महान् कल्याणकारी हैं। स्नान, पूजन, जप, हवन आदि ये जो व्रतके पूरक हैं, बाह्यवृत्तियोंको अन्तर्मुख बनाते हैं और सात्त्विकभावकी प्रतिष्ठा कर त्याग और अनासक्तिकी ओर प्रेरित करते हैं।

उपवास विषय-विकारोंसे निवृत्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन है। उपवासोंसे विकारों और वृत्तियोंका नाश होता है। अपनी संस्कृति और धर्ममें इसका विशिष्ट महत्त्व है। व्रत, अनुष्ठान, साधना, तपश्चर्या आदि धार्मिक कृत्य इसके बिना अधूरे माने जाते हैं।

हमारा देश धर्मप्राण देश रहा है। आध्यात्मिक ऊर्जा यहाँके कण-कणमें समाविष्ट है। यहाँके व्रत-नियमोंका सम्बन्ध अध्यात्मदर्शन, देवदर्शन और निरामयतासे जुड़ा हुआ है। इसीलिये हमारे यहाँ व्रत-उपवासोंकी सुदीर्घ परम्परा सदासे चली आ रही है।

वर्षमें कोई भी दिन ऐसा नहीं रहता जिस दिन कोई व्रत, उपवास, पूजन, हवन या पर्व न हो। हमारी संस्कृतिकी नींव इसीके आधारपर टिकी है।

यही कारण है कि जहाँ रोम, ग्रीक, मिस्र और बेबीलोन आदि जैसी प्राचीन सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ कालके प्रवाहमें विलुप्त होती चली गयीं, वहीं भारतकी संस्कृति अक्षुण्ण रही। यहाँ अनेक विदेशी आक्रमण हुए, शक, हूण, यवन आये, पठान और मुगल भी आये, पर वे सब यहाँकी मानवताके पारावारमें घुल-मिलकर अपना अस्तित्व खो बैठे, भारतीय संस्कृतिके महासागरमें विलीन हो गये।

भारतीय संस्कृति सदासे सन्नियमों, देवव्रतोंका पालन करती आयी है। मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंकी जीवनचर्या व्रतोंमें

प्रतिष्ठित थी, उनका पूरा जीवन सदाचारव्रत एवं अपरिग्रहव्रतमें निरत था। तत्त्वदर्शनमें परायण रहना उनका उद्देश्य रहा है। परोपकारव्रत एवं तपरूप व्रतके प्रभावसे उन्होंने जगत्‌का महान् कल्याण किया।

प्राचीन आचार्योंने शब्दोंसे नहीं, वाणीसे नहीं अपितु अपने आचरणोंसे जन-जनको व्रतचर्याके सूत्र बताये। विश्वामित्र, वसिष्ठ, वाल्मीकि, व्यास, वामदेव आदि सभी ऋषियोंने इस सत्यकी अनुभूति की और उसे जीवन-विद्याका पर्याय माना। शास्त्रोंमें इन ऋषियोंके उपदेश भरे पड़े हैं।

वाल्मीकिरामायण और महाभारत हमारे केवल धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं हैं, वरन् वे मानवमात्रके लिये महान् उपकारी हैं। उनमें सत् तत्त्वकी प्रतिष्ठा है और जीवनको व्रतमय बनानेका परामर्श है। महात्मा तुलसीदासका 'रामचरितमानस' तो भक्तिव्रतका अक्षय भण्डार है। व्रतों और संकल्पोंके अनेक अनुकरणीय आदर्श इन सबमें भरे पड़े हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—इनमें बताया गया है कि भगवान्‌का अकारणकारुण्य-व्रत सर्वोपरि है। भक्तोंके कल्याणके लिये तथा धर्मसंरक्षणके लिये सदा ही प्रकट होते रहना भगवान्‌का प्राकट्य-व्रत है।

शान्तनु-पुत्र देवव्रतने अनुपम त्यागद्वारा ऐसा भीषण अखण्ड ब्रह्मचर्यका व्रत ले लिया कि उनका नाम ही 'भीष्म' पड़ गया।

जगज्जननी माता पार्वती तो तपोव्रत और एकनिष्ठव्रतकी

मूर्तिमान् विग्रह ही हैं। उनके तपोव्रतका मानसमें बड़ा ही सुन्दर वर्णन है—

रिषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी। मूरतिमंत तपस्या जैसी॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी॥

पार्वतीके एकनिष्ठ-व्रतको डिगाने आये सप्तर्षियोंको शैलपुत्रीने स्पष्ट कर दिया *'जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥'* पातिव्रत्य धर्मका मर्म समझनेवाली ये देवी पार्वती जनक-सुता सीताको *'मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु'* जैसा आशीर्वाद क्यों न देतीं? यमके द्वारसे पतिको लौटा ले आनेवाली सावित्रीको आज भी भारतकी सुहागिनें 'वटसावित्रीव्रत' के रूपमें पूजती हैं।

व्रतलोप या व्रतभंगमें प्रायश्चित्तका विधान है। बौद्ध-धर्ममें जीवनपर्यन्त आस्था रखनेकी शपथ लेकर वैदिक धर्मके प्रचार-प्रसारमें जुटे कुमारिल भट्ट अपनी प्रतिज्ञाका उल्लंघन करने तथा गुरुसे घोर विश्वासघातके कारण आत्मग्लानिसे भर गये और उन्होंने प्रायश्चित्त करनेकी ठानी। गुरुसे विश्वासघातका प्रायश्चित्त था—स्वयंको अग्निमें जीवित समर्पित कर देना और वह भी ऐसी अग्निमें जो धानके छिलकोंके साथ शनैः-शनैः सुलगती हो। उनके शिष्योंने, यहाँतक कि आदिशंकराचार्यने भी उन्हें समझानेका प्रयत्न किया कि लोकहितके कार्यके लिये प्रायश्चित्त आवश्यक नहीं, पर कुमारिल भट्टका तर्क था—'शुभ-साध्यके लिये साधनका शुभ होना भी आवश्यक है। मेरी स्थितिसे अनभिज्ञ मेरे कार्यको परम्परा मानकर लोग इसका अनुकरण करने लगे तो धर्म और सदाचार दोनों ही नष्ट हो जायँगे।' वे अपने निर्णयपर अटल रहे। धानके छिलकोंसे धीरे-धीरे सुलगनेवाली अग्निमें भयंकर पीड़ा और असह्य वेदनाके बीच उन्हें असहाय जन-समुदाय अश्रुपूरित नेत्रोंसे देखता रहा—देखता रहा और कुमारिल भट्टका प्रायश्चित्त अमर हो गया। इस प्रकार भारतीय संस्कृतिके मूलमें व्रत-पर्वोंकी सुदृढ़ भित्तिका विशेष महत्त्व है।

भारतीय संस्कृतिमें व्रतपर्वोत्सवका स्वरूप और महत्त्व

(श्रीशशिनाथजी झा, वेदाचार्य)

दैनिकचर्याके नित्य-नैमित्तिक एवं काम्य कर्मोंमें प्रभुकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये जीवनका व्रत-पर्वोत्सवोंसे सम्पन्न होना अत्यावश्यक है।

'व्रत' शब्दका अर्थ भोजन और भोजननिवृत्ति होता है। महर्षि कात्यायनने व्रत शब्दका अर्थ '**व्रताद्भोजनं तन्निवृत्योः**' कहा है। जैसे पयोव्रत, पानीयव्रत आदिमें केवल दूध, जल आदिका आहारमात्र विहित है। एकादशीव्रत, जीवत्पुत्रिकाव्रत, सावित्रीव्रत, प्राजापत्यव्रत, चान्द्रायणव्रत, कृच्छ्रव्रत आदिमें व्रत शब्दका अर्थ भोजन-निषेध कहा गया है। मीमांसक व्रतको मानसिक क्रियाकलाप कहते हैं—'**व्रतमिति च मानसं कर्म उच्यते।**' व्रत इहलोक तथा परलोकका उपकारी कहा गया है। शारीरिक आरोग्यलाभ तो व्रतका प्रत्यक्ष फल है। व्रतके द्वारा सर्वप्रथम अन्तःशुद्धि और विचारमें शालीनता तथा सदाचारमें शुद्धताके साथ ईश्वर-भक्ति, श्रद्धा आदिके सद्भावका अभ्युदय देखा जाता है।

व्रत तीन प्रकारके होते हैं—'कायिक', 'वाचिक' और 'मानसिक'। कायिक व्रतमें शास्त्रवर्जित हिंसा, कदाचार एवं कुत्सित दर्शन आदिका त्याग करना पड़ता है। वाचिक व्रतमें कुवचन, निन्दा आदिका परित्याग करना पड़ता है। मानसिक व्रतमें विषय-वासनाओंसे दूर रहकर मनको सात्त्विक भावापन्न करना पड़ता है।

पुनः 'नित्य', 'नैमित्तिक' और 'काम्य' के भेदसे व्रतके तीन भेद हैं। नित्यव्रत वह है जिसमें किसी प्रकारकी कामना नहीं रहती। जैसे पतिव्रता नारीके लिये पातिव्रत्य-व्रत। नैमित्तिकव्रत वह है जो किसी निमित्तके लिये किया जाता है। जैसे सुख-सौभाग्य, नैरुज्य आदिके लिये शिवरात्रिव्रत, सूर्यव्रत आदि। काम्यव्रत वह है जिसमें किसी वस्तुकी कामना संनिहित होती है, पति, पुत्रादिके लिये सौभाग्य, चिरजीवित्व आदिकी भावना होती है। जैसे—वटसावित्रीव्रत, जीवत्पुत्रिकाव्रत आदि।

'एकभुक्त' वह व्रत है जिसमें सूर्यके ढल जानेपर अपनी बिगड़ी छाया दीख पड़े अर्थात् दिनके चौथे प्रहरके आदिमें पवित्र अरवा अन्न, दूध, घृत, तुलसी आदिके साथ एक बार भोजन कर सूर्यादि देवताकी आराधनामें आसक्त रहे। 'नक्तव्रत' वह व्रत है जिसमें दिनभर उपवास कर सायं प्रदोषादि पूजापूर्वक रातमें पवित्रान्न भोजन कर संयत-चित्तसे रहे। जैसे प्रदोषव्रत आदि। अयाचित-व्रत वह कहलाता है जिसमें बिना माँगे जो कुछ मिल जाय उस अन्नका भोजन कर कालयापन करे।

चान्द्रायण-व्रत एक कठिन व्रत होता है। इसके आचरणसे महापातक और उपपातक नष्ट होते हैं। ब्रह्महत्या, मदिरापान, स्वर्णकी चोरी, गुरुपत्नी-गमन तथा इनका संसर्ग महापातक कहलाता है और गोहत्या, चोरी, डकैती आदि उपपातक कहे जाते हैं। चान्द्रायण-व्रतमें अन्नग्रासका परिमाण चन्द्रकलाके समान बढ़ता और घटता है। जैसे अमावास्याके बाद शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको एक, द्वितीयाको दो, तृतीयाको तीन इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर पूर्णिमाको पंद्रह फिर कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको चौदह, द्वितीयाको तेरह, तृतीयाको बारह इत्यादि उत्क्रमसे घटाकर चतुर्दशीको एक और अमावास्याको निराहार रहनेसे एक चान्द्रायण पूरा होता है। यह यवमध्य चान्द्रायण कहलाता है। दूसरे प्रकारका चान्द्रायण पिपीलिकातनु कहलाता है। इसमें अमावास्याके बाद प्रतिपदाको चौदहके उत्क्रमसे घटाकर पूर्णिमाको एक, कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको दोके क्रमसे बढ़ाकर चतुर्दशीको चौदह ग्रास भोजन करे और अमावास्याको निराहार रहे। चान्द्रायण-व्रतके और भी प्रकार हैं।

प्राजापत्य-व्रत बारह दिनोंका होता है। इसमें व्रतारम्भके पहले तीन दिनोंमें प्रतिदिन छब्बीस ग्रास भोजन करना होता है। उसके बाद तीन दिन बाईस ग्रास भोजन रातमें करना होता है। फिर तीन दिन बिना माँगे अन्न चौबीस ग्रास और अन्तिम तीन दिनोंतक सर्वथा निराहार रहना पड़ता है। ग्रासका प्रमाण जितना मुँहमें समा सके उतना होता है। '**प्राजापत्येन चैकेन सर्वपापक्षयो भवेत्**' के अनुसार प्राजापत्यव्रत सर्वविध संचित पापका क्षयकारक होता है। ज्ञात हो कि व्रतमें सत्त्वगुणकी प्रधानता रहती है। अतएव व्रतादिमें मानसिक शान्ति, सांसारिक कार्योंसे विरक्ति, भक्ति, ज्ञानकी ओर अनुरक्ति तथा भजन-

पूजनादिमें स्वभावत: आसक्ति पायी जाती है।

व्रतारम्भमें गुरु एवं शुक्रका उदय शुभ होता है। दोनोंके अस्त रहनेपर एवं बालत्व (उदय होनेके पीछेके तीन दिन), वृद्धत्व (अस्त होनेके पहलेके तीन दिन) वर्जित हैं। सोम, बुध, बृहस्पति एवं शुक्र दिन उत्तम होते हैं। अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, तीनों उत्तरा, अनुराधा और रेवती नक्षत्र विहित हैं। व्रतारम्भके पहले दिन मुण्डन, संयम एवं नित्य-नियमादिके साथ पवित्र अरवा अन्नका सेवन करना चाहिये।

पर्व शब्दका अर्थ उत्सव होता है। आदिपर्व, वनपर्व आदिमें पर्व शब्दका अर्थ ग्रन्थका अंश होता है। उसी तरह पर्व शब्द अमा, पूर्णिमा, ग्रहण, ग्रन्थि आदि अनेक अर्थोंमें भी प्रयुक्त होता है। प्रकरणवश यहाँ हमें उत्सव अर्थमें विचार करना है। व्रत और पर्वमें भेद यह है कि व्रत अकेले या कुछ व्यक्तियोंके साथ सम्पन्न किया जाता है, परंतु पर्वके अवसरपर सैकड़ों, हजारों या लाखोंकी संख्यामें जनसंकुल होता है। व्रत एवं पर्व दोनोंमें शारीरिक शुद्धिके साथ इहलोक और परलोककी सिद्धि अपेक्षित होती है। व्रतकी अपेक्षा पर्वका स्वरूप भव्य और व्यापक होता है।

कुम्भपर्व, संक्रान्तिपर्व, ग्रहणपर्व, सोमवती अमावास्या, कार्तिकी पूर्णिमा, माघी पूर्णिमा आदि पर्वोंमें लाखों-लाख श्रद्धालु कुरुक्षेत्र, प्रयाग, हरिद्वार, काशी आदिमें सोल्लास उपस्थित होकर स्नान, दान, पूजा-पाठ आदि पुण्यकर्म सम्पादित करते हैं। गङ्गा, यमुना एवं संगम-स्थानपर तथा गङ्गासागर संगमपर्वका रमणीय दृश्य देखते ही बनता है। आश्विनमास पितृपक्षमें पितृश्राद्धके निमित्त आगत श्रद्धालुओंकी भीड़ गयामें एक अभूतपूर्व उल्लास पैदा करती है। गयामें पितृश्राद्धपर्वके अवसरपर देश-विदेशसे आगत हिन्दुओंका जनसंकुल एक अनिर्वचनीय शोभा एवं श्रद्धा उत्पन्न करता है। श्रद्धालुओंद्वारा गयामें अपने पितरोंके निमित्त किये गये सविधि पिण्डदानसे पितरोंकी मुक्ति शास्त्रसम्मत स्वत: स्फूर्त है।

पर्वोंमें सूर्यपर्व भी एक महान् पर्व माना जाता है। आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि (शारीरिक व्यथा)-के विनाशके लिये तथा उत्तमगति एवं सद्बुद्धिके लिये यह पर्व किया जाता है। श्रीकृष्णभगवान्‌के पुत्र साम्बके कुष्ठरोगसे ग्रस्त हो जानेपर तथा सभी प्रकारके औषध निष्फल हो जानेपर उन्होंने एकान्तचित्तसे भगवान् सूर्यकी तपस्या प्रारम्भ की तो उन्हें कुष्ठरोगसे मुक्ति मिली तथा कनकवर्णाभ तनुकान्तिका लाभ हुआ।

इसके साथ ही भगवान् श्रीराम, श्रीकृष्ण, हनुमान्‌जी, परशुरामजी आदिकी जयन्तियोंपर पर्वसमारोहके आयोजनसे जनमानसपटलपर एक अपूर्व आनन्दोल्लासका संचारीभाव छा जाता है। यह पर्वकी महत्ताको प्रतिपादित करता है। भारतीय संस्कृतिमें उपर्युक्त पर्वसमूह जो प्रत्येक महीनेमें मनाये जाते हैं, वे ऐहिक और पारलौकिक अक्षय सुखके मूल कारण कहे गये हैं। कुछ पर्व तो स्थानीय होते हैं और कुछ प्रयाग, हरिद्वार आदि स्थानोंमें मनाये जानेके कारण नानाविध प्राकृतिक सुषमाओंके अवलोकनके आनन्दके रूपमें नितरां मानसिक शान्तिके निकेतन बन जाते हैं।

व्रतमें उपवासादिके साथ आत्मसंयमकी प्रधानता होती है। पर्वमें तीर्थस्थान, मठ-मन्दिरके अतिरिक्त स्नान, दान, पूजा, पाठ, हवन, भजन आदि क्रिया-कलाप किये जाते हैं। त्योहारमें पूजनादिके साथ उत्सव-समारोह अधिक होते हैं। जप, पूजा, उत्सव कुछ न्यूनाधिक भावसे तीनोंमें देखे जाते हैं। व्रतकी अपेक्षा त्योहारमें और त्योहारकी अपेक्षा पर्वमें अधिक जनसंकुल देखा जाता है। व्रत घरका, त्योहार घर-बाहरका और पर्व तीर्थादिका अनुष्ठान होता है।

हमारे व्रत, पर्व एवं त्योहार सुख-सौभाग्यके जनक, आयु, आरोग्यके संरक्षक तथा परमात्माकी प्रसन्नताके प्रतीक हैं। यही कारण है कि प्राय: सभी मनुष्य व्रत-पर्वोत्सवसे सम्बद्ध होते हैं। मनुष्यकी मनुष्यता भी तभी सिद्ध होती है; क्योंकि योगवासिष्ठके स्थितिप्रकरणमें कहा गया है कि जिन्हें शम, दम, दया, दान आदि गुणोंके विषयमें संतोष नहीं है अर्थात् जो इनको बढ़ाना चाहते हैं, जिनका शास्त्रके प्रति अनुराग है अर्थात् व्रत-पर्वोत्सवमें जिनका विश्वास है तथा जिनको सत्यके आचरणका ही व्यसन है, वे ही वास्तवमें मनुष्य हैं—

येषां गुणेष्वसंतोषो रागो येषां श्रुतं प्रति।
सत्यव्यसनिनो ये च ते नराः पशवोऽपरे॥

अतएव सच्चे कल्याणकामी पुरुषोंको इन शास्त्रानुमोदित व्रतादि करणीय कर्म करते हुए पुण्य-पथका पथिक बनना चाहिये।
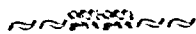
व्रत, त्योहार और आहार—एक समीक्षा

(डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता)

हमारा देश आनन्दलोक है—मंगलमयलोक है। यहाँ हर दिन त्योहार है, उत्सव है और वाराणसी तो छोटा भारत ही है। यहाँ 'सात वार नौ त्योहार'का चलन है। व्रत तो नित्य ही होते हैं। व्रतमें खास बात यह है कि विशेष आहारका प्रावधान होता है और वाराणसीमें जितनी फरारी (फलाहारी) मिलती है शायद उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। व्रतमें क्या खाते हैं, क्या नहीं—इस विषयमें पाकशास्त्र उतना मुखर नहीं है। अत: सोचा कि आओ इसकी खोज की जाय।

व्रत और महाव्रतमें सबसे बड़ी चीज है 'उपवास' और स्वास्थ्यके लिये उपवास बड़ी अच्छी चीज है, बशर्ते कि समझ-बूझकर किया जाय। उदाहरणके लिये मधुमेहके रोगीको कतई उपवास नहीं करना चाहिये। उपवासके भी रूप हैं, एक तो है निर्जल उपवास जो बड़ा कठिन है। हमारे यहाँ औरतें डालाछठका व्रत रखती हैं तो थूक भी नहीं घोंटतीं। यहाँ इसलामकी चर्चा कर लें। वे एकमात्र रमजानमासमें रोजा रखते हैं और सूर्योदयसे पूर्व खा-पी लेते हैं, पर दिनमें कुछ भी नहीं खाते-पीते, थूक भी नहीं घोंटते। फिर शामको खजूर खाकर रोजा तोड़ते हैं। रातमें खाने-पीनेकी छूट है। यह प्रथा मूलत: अरब देशकी है जहाँ रेगिस्तान है और इस व्रतद्वारा लोगोंको अभ्यास कराते हैं कि कभी मरुस्थलमें भटक गये तो जल-बिना कई दिनोंतक जीवित रह सकें।

दूसरा चरण है 'निराहारव्रत'। कुछ भी नहीं खाना केवल जल पीना। अगले दिन व्रतका पारण होता है तब जलेबी-जैसा मिष्टान्न खाकर जल पीते हैं। एक मजेदार बात है 'तीज'-जैसे व्रतमें, जिसमें सायंकाल पूजाके बाद मिठाई-फल खाते हैं नमक एकदम नहीं, पर व्रतकी पूर्वसंध्यामें 'डाटा' होता है अर्थात् डटकर गरिष्ठ भोजन करना। रबड़ी, मलाई, कचौड़ी आदि पेटभर खाते हैं।

व्रतका एक और रूप है—प्रदोष। दिनभर उपवास करके सायंकाल एक बार भोजन करते हैं। कुछ लोग हविष्यान्न खाते हैं अर्थात् बिना हल्दीका भोजन। एक और प्रथा है अलोना खानेकी अर्थात् बिना नमकका भोजन। व्रत भी एक तपस्या है। नवरात्रमें देवीव्रत करनेवाले नौ दिन एकान्न खानेका व्रत लेते हैं, एक फल खाते हैं, केवल दूध ग्रहण करते हैं। नौ दिनोंका कठोर व्रत सहन करना बड़ी हिम्मतका काम है।

सबसे बढ़िया और मजेदार कार्य व्रत है; क्योंकि इसमें रोजकी दाल-रोटीसे छुट्टी मिलती है। नया स्वाद और नये पक्वान्न—फलाहार या फरारी खानेको मिलते हैं। नाम भले फलाहार हो, पर कचरकूट जमकर होती है। इसकी चर्चा रोचक है पर यहाँ बता दें कि एक बार भोजन—प्रदोष करनेवाले बहुधा दिनमें फलाहार ले लेते हैं। दूसरी ओर श्राद्ध-जैसे अवसरपर दोपहरको भोजन तो कर लेते हैं पर शामको कुछ नहीं खाते या फिर दूध, फल, आलू खा लेते हैं। हाँ, हमारे यहाँ चाय-कॉफीका चलन नहीं था। दूध-मट्ठा चलता था। पर अब इन नये पेयोंकी लत पड़ गयी।

अब आयें फलाहारव्रतकी ओर। इसकी लम्बी फ़ेहरिस्त है—इनमें कुछ अन्न हैं, फल हैं, मेवे हैं, मिठाइयाँ हैं। इनकी चर्चा भी स्वादिष्ठ है। उपान्नोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण है 'कूटू'। इसका चावल बनता है। इसके आटेके पराठे बनते हैं, कढ़ी और पकौड़े बनते हैं। दूसरा है साँवाँ। इसकी खीर बड़ी मस्त होती है। साबूदानाकी खिचड़ी, खीर (मीठी) और नमकीन साबूदाना भी अच्छा होता है। साबूदानेके पापड़ तो बड़े ही लोकप्रिय हैं। एक बढ़िया उपान्न है 'रामदाना'। सबसे सस्ते लड्डू इसीके बनते हैं। व्रतमें रामदाना और दूधका संयोग अच्छा बनता है।

एक जलीय फल है सिंघाड़ा। इसे कच्चा खायें चाहे छौंकके खायें अच्छा लगेगा। सूखे सिंघाड़ेके आटेसे जलेबी, पकौड़ी, हलवा आदि बनाते हैं। एक और जलीय उत्पाद है 'कमलगट्टा'। इसका हलवा सभी अन्य फरारी हलवासे ऊपर होता है। ऐसे ही मखाना तलकर खायें या खीर बनायें, मजा आ जायगा। उपान्नोंमें त्रिकुट, तिन्नी आदिकी भी खीर, हलवा, जलेबी आदि बनते हैं।

खानेके साथ चटनी-अचार तो चाहिये ही। एक महत्त्वपूर्ण निर्णय है कि व्रतमें समुद्रीनमक नहीं खाते, सेंधा नमक (साँभर झीलका) या 'राकसॉल्ट' का ही प्रयोग करते हैं। सलादमें छुहारा, किशमिश, अदरकका मिश्रण, कमरख, खीरेके लच्छे, फलोंका सलाद चलता है। धनिया नहीं खाते। मसाले वर्जित हैं अत: हल्दी,जीरा आदि नहीं लेते हैं। हरी मिर्च और अदरक चलता है। चटनी बनाना

हो तो मकोयकी चटनी (मौसम हो तो) बनायें, नहीं तो फरारी नीबूका अचार बढ़िया होता है। नीबूके रसमें नीबूके टुकड़े, अदरक और सेंधा नमक मिलाकर चाहें तो हरी मिर्चके टुकड़े डालकर धूपमें रखें, जब नीबूका छिलका गल जाय तो इस्तेमाल करें। यह अचार बरसों चलता है और रोगीको भी दिया जा सकता है। यह सड़े नहीं इसलिये नमक अधिक डालना चाहिये।

अब आयें भूमिसे प्राप्त होनेवाले कंद-मूलपर। आलू है तो परदेसी, पर अब हरदिलअजीज हो गया है। बनारसके आलूके पापड़ तो सर्वत्र विख्यात हैं। व्रतके दिन नाश्तेमें आलूके पापड़ ले सकते हैं, पर ध्यान रहे चिप्स नहीं चलेगी। हाँ, आलूकी सेव, जालीदार पापड़ मिलते हैं। आलू उबालकर, तलकर, भूनकर खा सकते हैं। आलूके पराठे बढ़िया बनते हैं (चिल्लेकी तरह)। एक और फरारी कंद है—कन्दा या शकरकन्द। भूनके खाइये, भूल न पायेंगे इसका स्वाद। अन्य कन्द जैसे—सूरन, रसालू आदि भी खाते हैं। अरवी (अरुई) भी खूब खायी जाती है।

अत्यन्त लोकप्रिय है मूँगफली। मूँगफली आप घण्टों टूँग सकते हैं। एक बात याद रहे कि मूँगफली बहुत गरिष्ठ होती है।

मिठाईमें ध्यान रखें—फरारी और अनाजी दोनों तरहकी बनती हैं। तिन्नी, त्रिकुट और सिंघाड़ेकी जलेबी, खोएकी बरफी-पेड़ा चलेगा। गुलाबजामुन, रसगुल्ला भी फरारी हो रहे हैं। एक मिठाई है फेनी, जो तीजके अगले दिन सेंवई-जैसी ही लोकप्रिय है। मेवोंमें किशमिश, काजू, बादाम, मुनक्का, छुहारा, खजूर, गरी, अखरोट आदि आते हैं। मुनक्का भूनकर तो रोगीको भी देते हैं।

फलोंको प्रमुखता मिलती है। इनका राजा है आम और दीर्घकालिक फल है केला। इसका तो जवाब ही नहीं। यदि दूध-केला खा लें तो पेट भर जायगा। केलेकी चिप्स भी बना सकते हैं। प्रसादमें केला मुख्य है। अन्य फल हैं—सेब, नाशपाती, नीबू, संतरा, मुसम्बी, अंगूर, अमरूद आदि।

सब्जीमें कुम्हड़ा, ककड़ी, मूली, कद्दू आदि खा सकते हैं। कुम्हड़ेका पाक बढ़िया मिठाई है। हरा चना, मटर आदि दाल हैं अस्तु, नहीं लेते और प्याज, लहसुन, टमाटर आदि तो यों ही वर्जित हैं।

सर्वोत्तम है पञ्चामृत—दूध, घी, शहद, चीनी और दहीका मिश्रित पेय। संसारका कोई भी पेय इसकी बराबरी नहीं कर सकता। व्रतमें सर्वाधिक प्रशस्त आहार गायका दूध है। दही, मट्ठा और छाछका अपना मजा है। सफेद चीनीके बदले मिस्री अधिक फरारी है। सच्चे अर्थोंमें व्रतमें यदि खाना ही है तो कन्द-मूल, फल और दूध सर्वोत्तम हैं।

एक विशेष बात है और इसपर वैज्ञानिकोंको अनुसंधान करना चाहिये कि हमारे यहाँ व्रतों, त्योहारों और उत्सवोंमें विशेष आहारका विधान है। आज कुम्हड़ा खाना चाहिये, आज दूध-बताशा लें, आज खिचड़ी संक्रान्ति है—तो तिल, गुड़ खायें, सत्तू खायें, सिलोटा लें (नागपञ्चमी), शीतलापूजन है तो बासी खायें, गुड़के गुलगुले आरोगें। आज आँवलेका दिन है, बेलका शरबत या मुरब्बा लें। अमरूद, बड़हल, लीची, फालसा, खिरनी, सहजनकी फली, अगस्तके फूल, कचनार, करेला, नीम, मीठी नीम आदि खानेकी परम्परा है। हमारे देशमें इतने फल-फूल, कंदमूल और मसाले होते हैं कि लिखने बैठें तो एक पूरा शब्दकोश बन जाय। अरे भाई! केसर, कस्तूरी, गुलाब और केवड़ेका देश है यह।

हाँ, तो अनुसन्धान यह करना है कि यदि कोई आस्थासहित सभी व्रत-त्योहार विधि-विधानसे करता है तो क्या उसके शरीरमें विटामिन 'सी' या ख़निजकी कमी हो सकती है? क्योंकि इस देशमें आहार भरपेट नहीं मिलता फिर भी आहारके तत्त्वोंकी कमीके रोग बहुत कम होते हैं। विदेशमें सूक्ष्म खनिजोंकी कमीसे उत्पन्न रोगोंकी काफी चर्चा है, पर यहाँ ये कम ही होते हैं।

आज जिन ऋषियोंने इन व्रतोंमें आहारका यह विधान बताया उन्हें नमस्कार करके नेत्रपर तुलसीयुक्त चरणामृत लगाकर धन्य होते हैं।

हमारी रायमें व्रत करना ही है तो निराहार करना चाहिये, इससे तन-मन शुद्ध होता है। पाचनतन्त्रको विश्राम मिलता है। यदि यह सम्भव न हो तो अल्पाहारमें मिर्च-मसालारहित, अधिक घी-तेलके विना, सादा भोजन वह भी सीमित मात्रामें लें। इसे सात्त्विक भोजन कह सकते हैं। व्रत और राजसिक (गरिष्ठ) या तामसिक भोजनका कोई तुक नहीं बैठता। व्रतके समय ब्राह्मणको 'सीधा' देते हैं। वह भी सादा होना चाहिये।

तप और करुणासे भरे हैं महिलाओंके व्रत-त्योहार

(सुश्रीमाधुरीजी गुप्ता)

यदि भारतीय नारीके समूचे व्यक्तित्वको केवल दो शब्दोंमें मापना हो तो ये दो शब्द होंगे—तप एवं करुणा। भारतीय नारीके जीवनमें ये दोनों ही अन्योन्याश्रित हैं। उसके तपका प्रेरणास्रोत है करुणा और करुणाकी अभिवृद्धि होती है दिन-पर-दिन बढ़नेवाले तपकी प्रखरतासे।

उसका यह तप ही उसके द्वारा अनुष्ठित व्रत-उपवासोंमें दिखायी देता है। महिलाओंके द्वारा किया जानेवाला प्रत्येक व्रत किसी-न-किसी विशेष प्रयोजनसे सम्बद्ध है। ये व्रत उसकी कोरी भावुकता नहीं हैं, अपितु इनके पीछे ऋषिप्रणीत विज्ञान है। उत्तरायण-दक्षिणायनकी गोलार्द्ध-स्थिति, चन्द्रमाकी घटती-बढ़ती कलाओं, नक्षत्रोंका भूमिपर आनेवाला प्रभाव, सूर्यकी किरणोंका मार्ग—इन सबका महिलाओंके शरीरगत ऋतु-परिवर्तन एवं अग्नियोंके साथ सम्बन्ध होनेसे विशिष्ट परिणामको ध्यानमें रखकर ही व्रतोपवासोंका निर्धारण किया गया है। महिलाओंके हर व्रतकी अपनी विशेषता है, जो संवत्सरके प्रारम्भसे ही शुरू हो जाते हैं। चैत्रके नवरात्रके बाद महिलाएँ वैशाख कृष्णपक्षकी अष्टमीको शीतलादेवीका पूजन करती हैं, पवित्र मनसे शीतलाष्टमीका व्रत करके शीतलादेवीको प्रसन्न करती हैं। ज्येष्ठ कृष्णपक्षकी अमावास्याको सावित्री-पूजन किया जाता है। महिलाएँ अपने अखण्ड सुहागके लिये यह व्रत किया करती हैं।

कोकिलाव्रत आषाढ़मासकी पूर्णिमाको दक्षिण भारतमें मनाया जाता है। लड़कियाँ सुयोग्य वरके प्राप्तिहेतु इस व्रतको किया करती हैं। श्रावणमासका प्रत्येक मंगलवार मङ्गला-गौरी-पूजनके नामसे जाना जाता है। इसी तरह इस मासके सोमवारका व्रत कुँआरी लड़कियाँ अपने लिये उत्तम वरके प्राप्ति हेतु करती हैं। लड़कियों एवं महिलाओंके लिये श्रावणमासकी पूर्णिमाका विशेष महत्त्व है। इस दिन रक्षाबन्धनके रूपमें भाईकी कलाईमें राखी बाँधकर बहनें अपने भाईके सुखद जीवनकी मङ्गलकामना करती हैं।

भाद्रपद तृतीयाको कजरी तीज विशेष उत्सवके रूपमें मनायी जाती है। ग्रामीण बालाएँ वर्षा-ऋतुमें इस दिन अपने पतिके सुखद जीवनके लिये गीत गाती हैं। इस महीनेकी कृष्णपक्ष चतुर्थीको माताएँ पुत्रोंके रक्षाहेतु बहुलाचौथका व्रत करती हैं। इसीके दो दिन बाद हलषष्ठीका व्रत होता है जो पुत्र और सुहागके रक्षार्थ किया जाता है। हरतालिका तीज इस महीनेका सुप्रसिद्ध व्रत है। यह व्रत इस महीनेकी शुक्ल पक्षकी तृतीयाको किया जाता है। इसे कुँआरी और विवाहिता—दोनों ही करती हैं। शिव-पार्वतीके पूजनके साथ इसे उत्तम वरकी प्राप्ति एवं सुखद दाम्पत्यके लिये सम्पन्न किया जाता है। भाद्रपद कृष्णपक्ष अष्टमीको राधा-लक्ष्मी एवं महाष्टमीव्रत किये जाते हैं। इन्हें करनेपर महिलाओंकी अपनी छोटी-मोटी भूलका प्रायश्चित्त हो जाता है।

साँझीका त्योहार आश्विन लगते ही पूर्णिमासे अमावास्यातक मनाया जाता है। कुँआरी लड़कियाँ अपनी मनोकामना पूर्ण करनेके लिये इसे अपनाती हैं। आशा-मनौतीका व्रत श्राद्धोंके दिन ही आश्विन कृष्णपक्षकी अष्टमीसे प्रारम्भ कर लगातार आठ दिनोंतक किया जाता है। इस व्रतको कुँआरी लड़कियाँ ही करती हैं।

आश्विन कृष्ण नवमीको मातृनवमी कहा जाता है। जिस प्रकार पुत्र अपने पिता-पितामह आदि पूर्वजोंके निमित्त पितृपक्षमें श्राद्ध, तर्पण आदि करते हैं, उसी प्रकार सुगृहिणियाँ भी अपनी दिवंगत सास, माता आदिके निमित्त इस दिन ब्राह्मण-भोजन आदि कराती हैं। कार्तिक कृष्णपक्षकी चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थीको करवाचौथव्रत किया जाता है, यह भी स्त्रियोंका मुख्य व्रत है। इस दिनका उपवास दाम्पत्य-प्रेमको बढ़ानेवाला होता है; क्योंकि इस दिनकी गोलार्द्ध स्थिति, चन्द्रकलाएँ, नक्षत्र-प्रभाव एवं सूर्यमार्गका सम्मिश्रण शरीरगत अग्निके साथ समन्वित होकर शरीर एवं मनकी स्थितिको ऐसा उपयुक्त बना देता है जो दाम्पत्य-सुखको सुदृढ़ और चिरस्थायी बनानेमें बड़ा सहायक होता है।

इसी महीने शुक्लपक्षकी द्वितीयाको भइयादूज मनायी जाती है, इसमें बहनें भाईके अभ्युदयके लिये मङ्गलकामना करती हैं। कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी षष्ठीको

महिलाएँ सूर्यषष्ठीव्रत सूर्योपासनाके साथ सम्पन्न करती हैं। इस व्रतका धन-धान्य एवं पति-पुत्रकी समृद्धिके लिये विशेष महत्त्व है।

इस महीनेके शुक्लपक्षकी एकादशीका महत्त्व कार्तिक-स्नान करनेवाली महिलाओंके लिये विशिष्ट है। शीतलाषष्ठीव्रत माघ कृष्णपक्षकी षष्ठीको महिलाएँ करती हैं। इसे करनेसे आयु तथा संतानकी कामना फलवती होती है। इसका महत्त्व अधिकतर बंगालमें है। यहाँ इसका महत्त्व ठीक उसी तरहसे है जैसे बिहारमें सूर्यषष्ठीका। इन व्रतोंके अतिरिक्त जिस अमावास्याको सोमवार हो उसी दिन सोमवती अमावास्याका व्रत-विधान होता है। यह भी नारियोंका प्रमुख व्रत है। प्रत्येक पक्षकी त्रयोदशीको महिलाएँ संतान-कामनाके लिये प्रदोषव्रतका भी पालन करती हैं। इन सारे व्रतोंमें प्राय: अधिकांशको भारतीय नारियोंद्वारा पूजा करते देखा जा सकता है—कठोर तप एवं छलकती संवेदनासे भरे हृदय लिये हुए ये नारियाँ स्वयंको तिल-तिल करके गलाती रहती हैं और अपने तप-व्रतके द्वारा घरकी समस्त आपदाओं-विपदाओं, संकटोंका शमन करती रहती हैं। ऐसी व्रतपरायणा सदाचारसम्पन्ना नारियोंने भारतीय मातृत्वके गौरवको बढ़ाया है। इसीलिये इन देवियोंको मातृरूप देकर नमन किया गया है—

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

व्रत-पर्वोत्सवोंका महत्त्व

(श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु)

भारतीय सनातन वैदिक संस्कृतिमें व्रत-पर्वोत्सवोंका विशेष महत्त्व है। व्रती होकर अनवरतभावसे भगवान्‌की आराधनामें लगे हुए सत्पुरुष सहज ही भगवद्दर्शनलाभ करते हैं।

जो स्त्री जाति और गुणोंकी दृष्टिसे परम उत्तम है, सदा व्रत तथा उपवासमें ही तत्पर रहती है, वह भी यदि अपने पतिकी सेवा नहीं करती है तो उसे पापियोंकी गति मिलती है—

व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा॥
भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत्।

(वा०रा० २।२४।२५-२६)

ज्येष्ठ कृष्ण अमावास्याको सावित्री-व्रतकी अनिर्वचनीय महिमा है। मृत्युविजयिनी पतिव्रता सावित्रीकी कथा हृदयको पवित्र करनेवाली है। यमराज और सावित्रीका वार्तालाप ध्यानसे पढ़ना चाहिये। पतिव्रता सावित्रीका यह आख्यान महाभारत वनपर्वके २९३ वेंसे २९९ वें अध्यायतक विस्तारसे कहा गया है।

शिवसंकल्प, व्रतदीक्षा, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह तथा शम-दमादि नियमोंका पालन अपरिहार्य है। ये व्रतके ही आभ्यन्तर स्वरूप हैं।

व्रत-पर्वोत्सवके अनुपालनद्वारा ईश्वरत्व-प्रकटीकरण ही आदर्श मानव-जीवनकी श्रेष्ठ नीति है। व्रत-पर्वोत्सवोंके स्नान, पूजा, जप, तपस्या, दान और हवन आदि मुख्य कृत्य हैं। गीता (१८।५)-में यथार्थ ही कहा गया है—

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

यज्ञ, दान और तप—ये तीनों ही पुरुषोंको पवित्र करनेवाले हैं।

वर्षभरके छब्बीस एकादशीव्रतोंका विशेष महत्त्व है। एकादशीव्रतको पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय तथा मन—इन ग्यारह इन्द्रियोंके संयमके रूपमें भी देखा जा सकता है—

पञ्चज्ञानेन्द्रियाण्येव पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च।
मनः संयम्य धर्मार्थी चरेदेकादशीव्रतम्॥

यजुर्वेदके प्रथम अध्यायके ५वें मन्त्रमें परमेष्ठी प्रजापति ऋषिने अग्निकी प्रार्थना करते हुए कहा है—

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥

अर्थात् हे व्रतपते! अग्ने! व्रतरक्षक ज्ञानमय परमेश्वर! परमात्मदेव! मैं व्रतपालनपूर्वक सत्यव्रती रहूँगा। व्रतोंके पालनसे सत्याचरणमें समर्थ होऊँगा। मेरा यह व्रत सिद्ध तथा सफल हो, जिससे असत्यको छोड़कर मैं सत्यको प्राप्त कर सकूँ।

व्रतके द्वारा दीक्षा प्राप्त होती है तथा दीक्षासे ही दक्षिणालाभ होता है। दक्षिणा श्रद्धाको प्राप्त कराती है तथा श्रद्धासे ही सत्यलाभ होता है—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

(यजु० १९।३०)

इसलिये व्रतीको सर्वप्रथम परम सत्यके सन्धानका व्रत ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। सत्यकी आराधनाके निमित्त सत्यव्रत-पालन अपरिहार्य है। सत्य, तपस्या, सम्यक् ज्ञान एवं ब्रह्मचर्यके बलसे ही सत्यात्माको परमात्मा सुलभ होते हैं। बलहीन व्यक्ति कदापि सत्योपासक एवं सत्यदर्शी नहीं हो सकता है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

(मुण्डक० ३।२।४)

शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक—ये त्रिविध बल ही समर्जनीय, संरक्षणीय एवं परिपूर्णरूपसे परिपालनीय हैं।

सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, संयम, नियम, अस्तेय तथा अपरिग्रहको मानसव्रत कहा जाता है, जिनमेंसे ब्रह्मचर्यका पालन विशेष बात है। धर्मप्राण भारतका अध्यात्मदर्शन संयम-नियम, ब्रह्मचर्यव्रत-पालन तथा सतत स्वधर्माचरणपर ही आश्रित है—

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।

(अथर्व० ११।५।१७)

श्रीभीष्मपितामहका अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत प्रसिद्ध है। ब्रह्मचर्यव्रत तथा मौनव्रत (वाक्-संयम)-में अजेय शक्ति होती है। मौनव्रतसे परम कल्याणकी प्राप्ति सुगम हो जाती है।

इस प्रकार उत्सव और पर्वोंकी अनन्त महिमा है।

व्रतोत्सव एवं पर्वमहोत्सव

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

धन्य है वह देश, धन्य है वह प्रदेश, धन्य है वह धरती और धन्य है वह भारतीय संस्कृति जहाँ मानवको उच्च, उदात्त और भगवद्भक्त बनानेमें सहायक व्रत, पर्व और उत्सवोंको अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है।

चाहे कोई आस्तिक हो अथवा नास्तिक, ईश्वरवादी हो या अनीश्वरवादी, विद्वान् हो या हो अतिशय अकोविद—मतिमन्द, चाहे कोई अनेक प्रकारके अर्थ और अधिकारोंसे सम्पन्न व्यक्ति हो अथवा हो अत्यन्त दीन-हीन, धनहीन, साधनहीन—सब प्रकारसे विपन्न; किसी भी मत, पन्थमें आस्था-निष्ठा रखनेवाला हो—प्रायः सभी लोग किसी-न-किसी आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक अथवा ऐतिहासिक घटनाओं और परम्पराओंसे जुड़े हुए व्रत, पर्व और उत्सवमें अपनी श्रद्धा एवं निष्ठाके अनुसार उसकी गरिमा-महिमा, सत्ता-महत्ता, उपयोगिता तथा आवश्यकताको स्वीकार करते हैं।

सनातनधर्ममें किसी भी धार्मिक कृत्यके लिये संकल्प लेनेका विधान है। संकल्पमें कल्पसे लेकर संवत्, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार, ग्रह, नक्षत्रादि सबका उच्चारण आवश्यक माना गया है। यह परम्परा सूचित करती है कि भारतमें अनादि कालसे व्रत (संकल्प), पर्व और उत्सवोंकी अक्षुण्ण परम्परा चली आ रही है।

व्रतोंका पर्वों और उत्सवोंसे अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। व्रत (संकल्प) सभी पर्वों एवं महोत्सवोंमें प्राणशक्तिका प्रादुर्भाव करते हैं, जबकि सभी पर्व और उत्सव, उत्तम व्रतोंको व्यावहारिक मूर्तस्वरूप प्रदान करते हैं।

'व्रत' शब्द *'गागरमें सागर'*-की भाँति बहुत व्यापक भावोंको अपनेमें सँजोये हुए है। ज्योतिर्विज्ञानकी दृष्टिसे योगयुक्त भिन्न-भिन्न लग्नों और मुहूर्तोंमें सम्पादित होनेवाले सभी पर्वों और उत्सवोंके अवसरपर किये जानेवाले व्रतों (संकल्पों)-का विशेष महत्त्व माना गया है।

पुण्यार्जक, पापनाशक, ऐहिक और आमुष्मिक उन्नतिके साधक, स्वास्थ्यवर्धक विभिन्न प्रकारके सकाम-निष्काम भावोंको लेकर किये जानेवाले इन व्रतोंकी एक विस्तृत सूची है।

किंतु इतना तो निश्चित है कि **'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'** अर्थात् इन व्रतोंके स्वल्प मात्रामें भी पालन करनेसे व्यष्टि-समष्टि सबको बहुत लाभ होता है और महान् भयसे रक्षा होती है।

'आपस्तम्बस्मृति' में कहा गया है—

एकान्तशीलस्य दृढव्रतस्य मोक्षो भवेत्।

अर्थात् जो एकान्तसेवी है तथा अपने व्रतका—नियमोंका पक्का है, उसीको मोक्ष प्राप्त होता है, उसीकी कष्टोंसे, दु:खोंसे आत्यन्तिक निवृत्ति होती है।

अन्यत्र और भी कहा गया है कि—

शिवसंकल्परूपेण अनेन व्रतेन वाञ्छितं फलं प्राप्यते।

इस शिवसंकल्परूप व्रत और उनसे सम्बन्धित पर्व तथा उत्सवोंके बार-बार क्रियान्वयन अर्थात् आवृत्तिको 'वेदान्तदर्शन' ने भी अनुमोदित किया है। यथा—**'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्'** (४।१।१)।

'सर्वभूतहिते रतः' हिन्दूधर्म और भारतीय संस्कृतिमें व्रत (शिवसंकल्प)-को इतना अधिक महत्त्व दिया गया है कि वैदिक-मन्त्रोंमें बार-बार—पुनः-पुनः **'तन्मे मनः शिव-सङ्कल्पमस्तु'** की आवृत्ति पायी जाती है।

वेदोंकी ऋचाओं, परम्परासे प्राप्त गाथाओं, उपनिषदोंके मन्त्रों, वेदान्तके सूत्रों, इतिहास-पुराणोंके आख्यानों तथा काव्यग्रन्थोंमें वर्णित सुमधुर व्याख्यानोंद्वारा उत्तम व्रतपालन और पर्वमहोत्सवोंके संचालनके अनेक उद्धरण, प्रमाण एवं परिणामोंका विस्तृत विवरण पाया जाता है।

वेद प्रभुसम्मित भाषामें, तथा पुराण सुहृत्-सम्मित सरस सुझावके रूपमें उत्तम व्रतपालन एवं पर्व और उत्सव-सञ्चालनकी प्रेरणा देते हैं।

इन व्रतोंका क्षेत्र बहुत व्यापक है। उत्तम रहन-सहन, आचार-विचार, संयम-साधना, भाषा-भाव, सभ्यता-संस्कृति, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, शौच, संतोष, स्वाध्याय, तप, ईश्वरप्रणिधान, कल्पवास, उपवास आदि अनेक विषयोंका समावेश व्रतपालन और यम-नियम धारणके अन्तर्गत माना जाता है।

ध्यान रहे **'छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्'** की रीतिके अनुसार व्रतपर्वोत्सवोंकी उपेक्षा करके न तो समाजमें समरसता उत्पन्न की जा सकती है और न भक्ति, मुक्ति, शक्ति और शान्तिके क्षेत्रमें विशेष क्रान्ति ही लायी जा सकती है।

यही कारण है कि उत्तम व्रत धारण और पर्वोत्सवोंके सविधि पालनका उच्च आदर्श प्रस्तुत करनेके लिये औरोंकी कौन कहे, वे **कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं** सक्षम—समर्थ, जगन्नियन्ता, जगदाधार, सर्वाधिष्ठान, सर्वशक्तिमान्, स्वयंप्रकाशमान, प्रभु, परमात्मा स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामरूप और लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णरूप धारण करके स्वयं व्रतोत्सवोंको अपने जीवनमें प्रतिष्ठित कर पर्व एवं महोत्सवोंके अनुपालनकी शिक्षा हमको प्रदान करते हैं।

चाहे प्रवृत्तिमार्ग हो अथवा निवृत्तिमार्ग, चाहे लौकिक उन्नतिकी बात हो या पारलौकिक उन्नतिकी, चाहे ज्ञाननिष्ठाका क्षेत्र हो अथवा हो कर्मनिष्ठाका—सभी प्रकारकी साधना, आराधना और उपासनाकी सफलतामें तथा श्रवण, मनन एवं निदिध्यासनमें गतिशीलता लानेके लिये व्रतोंका दृढ़तापूर्वक धारण और परिपालन आधार-स्तम्भ माना जाता है।

जैसे वस्त्रसे सूत्र (धागा) और घटसे मृत्तिका अलग कर लेनेपर ये सभी वस्तुएँ व्यवहारहीन हो जाती हैं। जैसे खटाईसे खटास, मिठाईसे मिठास, गन्नेसे रस और दुग्धसे घृत निकाल लेनेपर वे सभी पदार्थ सारतत्त्वसे तेजोहीन हो जाते हैं, उसी प्रकार वैयक्तिक और सामाजिक जीवनमें व्रतोत्सवों एवं पर्वोत्सवोंके नकारनेसे जीवनमें नीरसता आ जाती है।

उत्तम धार्मिक व्रतोंकी उपेक्षा करनेके कारण महान् पण्डित हो करके भी रावण राक्षस कहा गया और प्रजापति-जैसे महत्त्वपूर्ण पदको प्राप्त करके भी दक्ष दम्भी कहे गये। इन उत्तम व्रतोंके नकारनेके कारण ही कंस आततायी हो गया और धृतराष्ट्रपुत्र सुयोधनसे दुर्योधन हो गया।

इसीलिये पुरातन योगारूढ ऋषि-महर्षियोंने अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा सत्-असत्, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य, बन्ध-मोक्षकारक सूक्ष्म तत्त्वोंके परिणामोंका अवलोकन कर जीवोंके कल्याणार्थ एवं उद्धारणार्थ इन विभिन्न प्रकारके व्रतों, पर्वों एवं उत्सवोंकी उपयोगिताका कहीं संक्षिप्त और कहीं विस्तृत निरूपण किया है।

महर्षि पतञ्जलिके 'योगदर्शन' में सत्य-अहिंसादि व्रतोंके पालनसे, इनमें संयम करनेसे अनेक प्रकारकी सिद्धियोंका वर्णन मिलता है। यथा—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।

(योगदर्शन २। ३५)

अर्थात् अहिंसाव्रतकी दृढ़ स्थिति हो जानेपर उसके निकट सब प्राणियोंका वैर छूट जाता है।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। (योगदर्शन २। ३६)

सत्यमें दृढ़ स्थिति हो जानेपर क्रिया फलका आश्रय बनती है।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्। (योगदर्शन २। ३७)

अस्तेय-व्रतकी प्रतिष्ठा हो जानेपर सब रत्नोंकी प्राप्ति होती है।

महर्षि वेदव्यासकृत 'वेदान्तदर्शन'-में शम-दमादि व्रतोंके पालनकी अनिवार्यता बतायी गयी है। यथा—

शमदमाद्युपेतः.........तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात्। (३। ४। २७)

जैसे गङ्गोत्रीका स्वल्प जल ही उत्तरोत्तर गति, प्रगति और उन्नति करता हुआ विशाल गङ्गासागरके रूपमें परिणत हो जाता है। जैसे एकका अङ्क शून्यके महत्त्वको क्रमशः बढ़ाता हुआ करोड़ोंकी संख्यामें गिना जाने लगता है। वैसे ही भक्ति, ज्ञान और सत्कर्मोंके क्षेत्रमें उत्तम व्रत, पर्व एवं इनसे सम्बन्धित महोत्सवोंके सम्यक् क्रियान्वयनसे व्यष्टि-समष्टि सबका चतुर्मुखी उत्थान होता है।

ये दिव्य व्रत, पर्व एवं उत्सव नास्तिकको आस्तिक, भोगीको योगी, स्वार्थीको परमार्थी, कृपणको उदार और नीरस जीवनको सरस बनाकर मानवको उसके चरम लक्ष्यकी ओर अग्रसारित करते हैं।

शास्त्रोंमें भक्ति, मुक्ति, शक्ति, शान्ति, रति और विरति (निर्वेद) इन सबके स्फुरण और जागरणका मूल कारण उत्तम व्रतोंका पालन और विशेष-विशेष पर्वोंके अवसरोंपर इनसे सम्बन्धित महोत्सवोंका संचालन बताया गया है।

सभी ज्ञानोंका विज्ञान तथा सभी धर्मोंका यथार्थ मर्म यही है कि उत्तम व्रतोंको धारण करनेवाले व्यक्तिको सम्पत्तिका प्रलोभन लक्ष्यच्युत नहीं कर पाता, विपत्ति उसकी मुखमुद्राको म्लान नहीं कर पाती। उच्च आदर्शोंकी रक्षा ही उसके जीवनका दृढ़ व्रत बन जाता है।

यदि हम स्वस्थ, सशक्त, सदाचार, सद्विचार, समता और मानवताके पथपर उत्तरोत्तर गतिशील होना चाहते हैं, यदि हम समस्त पाप, ताप और संतापोंसे सदाके लिये छुटकारा पाना चाहते हैं, यदि इसी जीवनमें हम रामको भी पा लेना चाहते हैं तो हमको अपने वैचारिक और व्यावहारिक जीवनमें इन उत्तम व्रत, पर्व और महोत्सवोंको अत्यधिक गरिमामय स्थान देना ही चाहिये। तभी त्राण, तभी कल्याण, तभी अभ्युदय, तभी उत्थान तथा व्यष्टि और समष्टि सबका सर्वतोमुखी हित हो सकेगा एवं हम सबको प्रेयके साथ श्रेयकी उपलब्धि हो सकेगी। इसी भावको लेकर उपनिषदोंने घोषणा की है कि '**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**' (श्वेताश्वतर० ३। ८) अर्थात् इसके अतिरिक्त सुख-शान्तिकी प्राप्तिका और कोई मार्ग नहीं है।
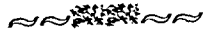
व्रतोंके सामान्य नियम एवं व्रत-भङ्ग होनेपर प्रायश्चित्त

(डॉ० श्रीचन्द्रभूषणजी झा)

वैदिक सनातन धर्ममें धर्मके तीन प्रधान अङ्ग माने गये हैं—यज्ञ, तप और दान। व्रतोंमें इन तीनों अङ्गोंका समावेश रहता है। तपोधर्मकी प्रधानताके कारण व्रत तपोमूलक ही हैं, तथापि व्रतोंमें उपासना, यज्ञ और दान तथा ब्राह्मण-भोजनादिका सम्बन्ध भी होनेसे इन्हें सर्वयज्ञमय भी कहा गया है। इतना ही नहीं देवलका कथन है कि व्रत और उपवासके नियमपालनसे शरीरको अतिशय तपाना ही तप है। जैसा कि कहा गया है—

वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।
शरीरशोषणं यत् तत् तप इत्युच्यते बुधैः॥

(देवल)

निरुक्तमें व्रतको कर्म सूचित किया गया है और धर्मशास्त्रकार श्रीदत्तने अभीष्ट कर्ममें प्रवृत्त होनेके संकल्पको ही व्रत बतलाया है। अन्य धर्माचार्योंने भी पुण्य-प्राप्तिके लिये किसी पुण्य तिथिमें उपवास करने या किसी उपवासके कर्मानुष्ठानद्वारा पुण्य-संचय करनेके संकल्पको

व्रतकी संज्ञा दी है।

व्रतोंके सामान्य नियम—नित्य-नैमित्तिक अथवा काम्य व्रतोंमें क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, संतोष एवं चोरी न करना, देवपूजा तथा हवन इत्यादि व्रतोंके सामान्य नियम कहे गये हैं—

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाऽग्निहवनं संतोषोऽस्तेयमेव च॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः॥

(अग्निपुराण १७५। १०-११)

जिस देवताके निमित्त उपवास या व्रत करते हों, उस देवताके मन्त्रका जप, उनका ही ध्यान, उन्हींकी कथा सुनना, पूजन करना तथा उनके ही नामोंका श्रवण एवं कीर्तन करना चाहिये। काम्य व्रतोंमें व्रती व्रतारम्भके पहले दिन मुण्डन कराये और शौच, स्नानादि नित्यकृत्यसे निवृत्त होकर मध्याह्नमें एकभुक्तव्रत करके रात्रिमें सोत्साह ब्रह्मचर्यपूर्वक शयन करे। व्रतके दिन सूर्योदयसे दो मुहूर्त पहले शय्यासे उठकर शौचादिसे निवृत्त हो, बिना कुछ खाये-पीये सूर्य एवं व्रतके देवताको प्रणाम कर अपनी अभिलाषा-निवेदन करके व्रतारम्भ करे।

व्रत ग्रहण करके जब कभी ज्वरादिके कारण व्रत करनेमें असमर्थता हो, ऐसी अवस्थामें व्रती अपने पुत्र, बहन, भाई अथवा पुरोहित या मित्रके द्वारा उस व्रतको पूर्ण कराये। पति-पत्नी एक-दूसरेके प्रतिनिधिके रूपमें व्रत कर सकते हैं—

पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा।
एषामभावे एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत्॥

(स्कन्दपुराण)

भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम्।
असामर्थ्येऽपरस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते॥

(निर्णयामृत)

नित्य और नैमित्तिक व्रतमें यदि सूतक या अशौच हो जाय तो प्रतिनिधिके द्वारा व्रत करवाना चाहिये। स्त्रियोंको यदि सूतक प्राप्त हो जाय अथवा वे रजस्वला हो जायँ तो उपवास स्वयं करें एवं पूजन, दानादिका कार्य प्रतिनिधिके द्वारा पूर्ण करवायें। इस सम्बन्धमें हेमाद्रिका वचन है—

गर्भिणी सूतिकादिश्च कुमारी वाऽथ रोगिणी।
यदाऽशुद्धा तदाऽन्येन कारयेत् प्रयता स्वयम्॥

किंतु काम्य व्रतोंको प्रतिनिधिद्वारा न करायें। कुछ लोगोंने काम्य व्रतों (कर्मों)-के प्रारम्भके अनन्तर प्रतिनिधिकी व्यवस्था दी है। इसके विषयमें कूर्मपुराणमें वर्णन है—

काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरामृतसूतके।
तत्र काम्यव्रतं कुर्याद् दानार्चनविवर्जनम्॥

कई व्रतोंके एक साथ पड़नेपर दान, होम आदि अविरुद्ध क्रमसे करे। जो विरोधी नक्त-व्रत उपवास आदि हैं, उनमेंसे एक स्वयं करे। दूसरे व्रतोंको पुत्रादिके द्वारा पूर्ण कराये। जिन व्रतों जैसे चतुर्दशी, अष्टमी आदिमें दिनमें भोजनका निषेध है तथा उसी समय व्रतान्तरकी पारणा भी प्रस्तुत है, ऐसे स्थलोंमें भोजन ही करे। इसी प्रकार संकष्टचतुर्थी आदि व्रतोंमें रात्रि-भोजन ही प्रशस्त है। जहाँ अष्टमी आदिमें दिवा-भोजन वर्जित है, वहीं रविवारको रात्रि-भोजन वर्जित है। ऐसे स्थलोंमें तो उपवास करना ही उचित है। किंतु पुत्रवान् गृहस्थके लिये संक्रान्ति आदिमें उपवास वर्जित है, वहीं अष्टमी आदिमें प्रयुक्त भोजनका भी निषेध है। ऐसे अवसरोंमें कुछ भक्ष्यकी कल्पना करके उपवास ही करना चाहिये। चान्द्रायण आदि व्रतोंमें तो एकादशी प्राप्त होनेपर ग्रास-संख्याके नियमसे भोजन ही इष्ट है। इसी तरह कृच्छ्रादि व्रतोंमें भी। एकादशी एवं द्वादशीमें, महीनेभरके उपवासमें, श्राद्धादिमें प्रदोष आदिकी पारणाकी रुकावट होनेपर जलसे ही पारणा कर ले। एकादशी आदि व्रतोंमें संक्रान्ति हो तो पुत्रवाले गृहस्थोंके लिये उपवासका निषेध होनेके कारण, ऐसे अवसरोंमें किञ्चित् जल, फल, मूल और दूधसे उपवासके निषेध एवं एकादशी आदि व्रतोंका पालन करे। नित्य एवं काम्य व्रतोंका साथ होनेपर काम्य व्रतका पालन ही श्रेयस्कर है, क्योंकि काम्य नित्यका बाधक होता है।

व्रतभङ्गके कारण—उपवासमें वार-वार जल पीनेसे, एक बार भी ताम्बूल (पान) चबानेसे, दिनमें शयन करनेसे, अष्टविध मैथुन करने आदिसे व्रत-भङ्ग हो जाता है—

असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलभक्षणात्।
उपवासः प्रणश्येत्तु दिवास्वापाच्च मैथुनात्॥

किंतु धर्मसिन्धुकारका मत है कि एकसे अधिक वार जल न पीनेसे यदि प्राण संकटमें हो तो दुबारा जल पीनेमें कोई दोष नहीं है। लेकिन क्रोध करनेसे, असत्य भाषण करनेसे, चोरी करनेसे, प्रतिग्रहसे, इन्द्रियोंके वशीभूत होनेसे,

हिंसा करनेसे, दिनमें सोनेसे, अशुचि आचरण करनेसे, सुगन्धित उबटन लगानेसे, तैलमर्दनसे, गायसे भिन्न पशुओंका दूध ग्रहण करनेसे, मसूरान्न भक्षणसे, सीपका चूना, जँबीरी नीबू ग्रहण करनेसे, व्रत-नियमोंके विरुद्ध आचरण होनेसे व्रत-भङ्ग हो जाता है। साथ ही व्रत करके परान्न, कृसरान्न, श्राद्धान्न आदि भक्षण करनेसे एवं क्षौरकर्म करानेसे व्रत-भङ्ग हो जाता है। भूलसे व्रत न करनेपर व्रतका लोप होता है।

सौभाग्यवती स्त्रियोंके लिये सौभाग्य-व्रतमें उबटन, तेल लगाना, शृङ्गार, पान, पुष्पमाला, अञ्जन, दतुअन एवं मञ्जन आदि वर्जित नहीं है।

गरुडपुराणमें भी कहा गया है—

गन्धालङ्कारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम् ।
उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्॥

साथ ही जल, मूल, फल, गायका दूध, हविष्य, ब्राह्मणकी इच्छा, गुरुका वचन और औषध—इन आठोंसे व्रत-भङ्ग नहीं होता है—

अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥

(धर्मसिन्धु)

भविष्यपुराणके अनुसार क्रोध करनेसे एवं आँसू गिरानेसे भी व्रतका नाश होता है। व्रतके नष्ट होनेपर एवं मोहवश व्रतके त्याग करनेपर व्रती चाण्डाल-तुल्य हो जाता है।

व्रत-भङ्ग होनेपर प्रायश्चित्त-विधान—किसी प्रकारसे किये गये पापसे अन्तःकरणमें ग्लानि होने एवं अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये शास्त्रसम्मत कर्म करनेका नाम प्रायश्चित्त है। मोहवश अथवा भूलसे व्रत-भङ्ग होनेपर व्रतीको मुण्डनोपरान्त तीन दिनका उपवास करके पुनः उस व्रतको करना चाहिये। तीन दिनके उपवासमें असमर्थ व्यक्तिको एक ब्राह्मणका भोजन या उसका मूल्य अथवा सहस्र गायत्री-जप करना या बारह प्राणायाम करके व्रत-भङ्गका प्रायश्चित्त करना चाहिये। यह धर्मसिन्धुकारका मत है। वायुपुराणके अनुसार क्रोध, लोभ, मोह अथवा आलस्यवश व्रत-भङ्ग होनेपर व्रतीको चाहिये कि तीन दिनतक अन्नका त्याग करके फिर उस व्रतका आरम्भ करे—

क्रोधात् प्रमादाल्लोभाद् वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि।
दिनत्रयं न भुञ्जीत पुनरेव व्रती भवेत्॥

निर्णयसिन्धुमें भी कहा गया है कि दिनमें शयन करनेसे, बार-बार जल पीनेसे, पान खानेसे, झूठ बोलनेसे, चोरी करनेसे, हिंसा आदि करनेसे, व्रतके नियमोंका भङ्ग होनेपर '**ॐ नमो नारायणाय**' इस अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करे।

निर्णयामृत-संग्रहके अनुसार व्रत करके चोर एवं हिंसक लोगोंसे मैत्री करनेपर, चोरी एवं हिंसा करनेपर तथा झूठ बोलनेपर प्रायश्चित्तस्वरूप भगवान्‌के नामका जप करे। माधवीयमें कात्यायनने कहा है कि रविव्रतमें, पूर्णिमा और अमावास्यामें एवं चतुर्दशी तथा अष्टमीव्रतमें दिनमें, एकादशीव्रतमें दिन तथा रात कभी भी भोजन करनेपर प्रायश्चित्तस्वरूप चान्द्रायण-व्रतका आचरण करना चाहिये।

धर्मसिन्धुके अनुसार एकादशी आदि व्रतमें भूलसे व्रत नहीं करनेपर द्वादशीमें भी व्रत किया जा सकता है। द्वादशीमें भी व्रत नहीं करनेपर प्रायश्चित्तस्वरूप यवमध्य चान्द्रायण करना चाहिये। नास्तिक्यके कारण एकादशीव्रत नहीं करनेपर पिपीलिकामध्य चान्द्रायण प्रायश्चित्तरूपमें कहा गया है। एवञ्च—

अग्निकार्यं ब्रह्मयज्ञं देवर्षिपितृतर्पणम्।
त्यक्त्वा व्रती यदा भुङ्क्ते ज्ञानाच्चान्द्रायणं चरेत्॥

(गौतम)

व्रत पापके नाशके लिये किया जाता है। विधिपूर्वक व्रतोंके आचरणसे जीवनमें अपूर्व परिवर्तन दिखायी देता है। व्रत-भङ्गका कारण भी पाप ही है। प्रमाद, आलस्य, रोग एवं अशक्तता भी पापका ही फल है। ऐसे पापोंका प्रायश्चित्त कर लेनेसे पापों और रोगों (कायिक, वाचिक और मानसिक)-से मुक्त होकर, व्रतोंके पुण्यके प्रभावसे सद्गति प्राप्त होती है। कदाचित् कुसंगवश, आलस्यवश अथवा प्रमादवश व्रत-भङ्ग हो जाय तो यथोचित प्रायश्चित्त करना ही श्रेयस्कर है।
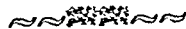
व्रतोपवासमें जप-तपकी आवश्यकता

(स्वामी श्रीब्रह्मवेदान्ताचार्यजी महाराज)

मानव-शरीरके नियमन और संयमनके लिये तपका अपना एक विशिष्ट स्थान है! सभी दूषित धातुओंको भीषण अग्निमें तपाकर ही शुद्ध किया जाता है। तपका सहज अर्थ है—तपाकर निर्मल बनाना। शरीरके बाह्य अङ्गोंका शोधन शुद्ध जल, स्वच्छ सुगन्धित लेप, चन्दन, इत्र-फुलेल आदिके यथोचित प्रयोगसे किया जा सकता है, किंतु आन्तरिक अङ्ग—मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकारकी शुद्धिहेतु सत्यरूपी शीतल जल चाहिये, जिससे मनुष्यके भाव, विचार, वचन तथा सभी आचरण निर्मल और विशुद्ध हो जायँ। इस व्यवहार-शुद्धिके अपनानेसे विवेककी जागृति हो जाती है जिससे उसके मन और बुद्धिकी शुद्धि हो जाती है। सत्यभाषण वाणीकी शुद्धता तथा वाक्संयमका मूल आश्रय है और यही जपका मूल आधार है, इसीसे जपकी सार्थकता सिद्ध होती है।

जपरूपी आत्मसाधक सोपानमें भगवन्नाम-स्मरण अबाध गतिसे चलता रहता है। हरिनाम-स्मरण सदा ही अभीष्ट फलप्रदायक तथा मङ्गलकारी है। यथा—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

भगवन्नाम-जप सर्वोपरि व्रत है, सर्वोपरि उपासना है। सच्चे भावसे किया गया जप सभी परिस्थितियोंमें, सभी जगह और सभी समयमें कल्याणप्रद है। तप शरीरकी साधना है तो जप वाणीकी उपासना है। जैसे शरीरके संयमन और नियमनके अनेक प्रकार हैं, उसी प्रकार जपके भी अनेक भेद एवं उपभेद हैं। ध्वनिके विचारसे भगवान्के नामका जपरूपी भेद कीर्तन है, जिसमें व्यक्तिगतरूपमें अथवा सामूहिकरूपमें राग-लय तथा तालसमन्वित वाद्यस्वरोंसे स्वर मिलाकर नामका कीर्तन किया जाता है। भगवान् कहते हैं—'हे नारद! जहाँ मेरे भक्त मेरा गान करते हैं, वहाँ ही मैं उपस्थित रहता हूँ।' अस्तु, जपमें इष्टदेवको अपने मध्य बुलानेकी अद्भुत शक्तिका समावेश रहता है।

युगलदम्पति मनु-शतरूपाकी साधनामें तप और जपका मणिकाञ्चनसंयोग है। एक पैरपर खड़े एवं समीर-आहार लेते हुए उनके रोम-रोमसे प्रति श्वास-प्रश्वासपर श्रीहरिका नाम निकल रहा था। वे शरीरसे पूर्णरूपसे स्थिर, निश्चल तथा दण्डवत् खड़े हुए थे। उनके मौन, एकाग्र एवं अविरल जपने परमप्रभुको निज दर्शन देनेके लिये विवश कर दिया था। श्रीहरिकी अमृतमयी वाणीने ज्यों-ही उनके श्रवणरन्ध्रसे हृदयमें प्रवेश किया त्यों-ही दोनों तत्काल हृष्ट-पुष्ट, पूर्ववत् शरीर-सौष्ठवयुक्त एवं आभा-प्रभासे आलोकित हो उठे। जपके इस स्वरूपने ब्रह्म-दर्शनको सुलभ बना दिया। वरदानके उपलक्ष्यमें भगवान्ने प्रसन्न होकर उनका पुत्र बनना स्वीकार कर लिया। यह जप-तपरूपी व्रतोपासनाका ही प्रतिफल था।

पञ्चवर्षीय बालक ध्रुवने निर्जन वनमें प्रभुके नामका निरन्तर जपकर उनका पावन साक्षात्कार प्राप्त किया और

आकाशीय नक्षत्रोंके मध्य अटल स्थान पाया। भक्त प्रह्लादने श्रीहरिके नामका स्वयं जप किया और विश्वमें उसका प्रचार-प्रसार भी किया। इस सच्चे नाम-जपने प्रह्लादको सभी कष्टों, प्रताड़नाओं एवं दमनोंसे बचाया। अन्तमें उसके श्रद्धा-भक्तिपूर्ण नाम-जपसे भगवान्को नृसिंहरूप धारणकर प्रकट होना पड़ा। इस जपकी साधनासे प्रह्लादको प्रभुकी स्नेहमयी वात्सल्यमयी गोदमें बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जपका उद्गम स्थान मन, बुद्धि एवं मस्तिष्कके परे हृदयके भावों और अनुभूतियोंके मध्य है। जपमें भक्त निरन्तर अभीष्ट इष्टके नाम-जप और ध्यानमें इतना तल्लीन रहता है कि उसे अपना सब कुछ भूल जाता है तथा सब कुछ

भगवान्‌का ही दृष्टिगोचर होने लगता है। इस प्रकारकी भगवन्नामकी निरन्तर रटसे उसके हृदयकपाट खुल जाते हैं। बीचके सभी अहंकारपूर्ण अवरोध सदाके लिये तिरोहित हो जाते हैं। वह जपके माध्यमसे सतत ही परब्रह्मका ध्यान करते हुए कालान्तरमें स्वयं भी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। यही स्वरूप, जपका उच्चतम शुद्ध सात्त्विक स्वरूप है। वह इस प्रकारके जपद्वारा अद्वैत अवस्थाको प्राप्त कर लेता है। विरोधकी सभी श्रेणियाँ विनष्ट हो आत्म-जगत्‌की एकताके अप्रतिम सुखका भान उसे होने लगता है। *'निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध'* के अनुसार सभी द्वैतभाव छिन्न-भिन्न हो विश्वात्माके साथ एकात्मका साक्षात्कार उसे अनिवार्यरूपसे मिल जाता है। जपका वास्तविक कार्यक्षेत्र भावना है। यथा—

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

जपके द्वारा जापकको भावनानुकूल ही अपने अभीष्ट इष्टदेवके दर्शनका आत्मिक आनन्द मिलने लग जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हुए कहते हैं कि समस्त यज्ञोंमें मैं जपयज्ञ हूँ। एतदर्थ जपको भगवान्‌का ही स्वरूप मानकर जप करना चाहिये। इसका एक सीधा और सरल अर्थ यह भी हुआ कि सच्चे जपके द्वारा भक्त अन्तमें भगवन्मय ही बन जाता है।

भगवन्नामका वह जप जो प्राणिमात्र, मानवमात्र एवं जीवमात्रके कल्याणके लिये निष्कामभावसे किया जाता है अथवा कराया जाता है, सर्वश्रेष्ठ जप है। मानवमात्रकी सेवा ही ईश्वरकी सच्ची भक्तिपूर्ण सेवा-अर्चा है। जिस जपमें केवल ओष्ठ चलते हैं और ध्वनि इतनी मन्द रहती है कि पासवाला भी न सुन पाये एक अच्छे प्रकारका जप है। इसे जपका व्यष्टिरूप भी कहा जाता है। जिस जपमें ओष्ठ भी नहीं चलते हैं, मुखके भीतर केवल जिह्वा चलती है, उसे श्रेष्ठ जप कहा जाता है। जिस जपमें ओष्ठ, जिह्वा आदि कुछ नहीं चलते हैं, किंतु जपका क्रम अविरल गतिसे श्वास-प्रश्वास, पद-संचालन तथा नित्यक्रियाओंके मध्य उनके साथ चलता हुआ रोम-रोमसे प्रस्फुटित होता रहता है—उसे ही श्रेष्ठतम जपकी संज्ञासे जगत्‌में अभिहित किया जाता है।

जपका क्रम, हृदयभावसे उद्वेलित हो जापकके चित्तकी पृष्ठभूमिको विशुद्ध बनाता है। ईश्वरके नामका जप जब अनन्य शरणागतिके समर्पणभावसे किया जाता है तो उसका अहंभाव स्वत: ही शून्य हो जाता है। अत: सच्चे जपसे भक्तका चित्त अहंके परे आत्मतत्त्व-योजित हो उसमें ही समाविष्ट हो जाता है। ज्ञानीके लिये अहंरूपी बाधा सर्वाधिकरूपमें अवरोध उत्पन्न करती रहती है, जबकि सच्चे जपके सम्मुख यह अहं स्वयमेव निष्क्रिय, निश्चेष्ट तथा पूर्णरूपसे निष्प्रभ हो जाता है।

रामभक्त श्रीहनुमान्‌जीके नाम-जप, मनन और ध्यानमें देखने-समझनेको मिलता है कि उनके जीवनका एकमात्र लक्ष्य श्रीरामजीकी सेवा, उनका ध्यान और उनका ही नाम-स्मरण है। उनके इस जपने उनके अहंका सदाके लिये हनन कर उन्हें हनुमान् बना दिया। जब श्रीरामजीकी प्रत्यक्ष सेवासे उन्हें किंचित् भी अवकाश मिलता तो उस समय वे सोते-जागते, खाते-पीते, चलते-फिरते, उठते-बैठते आदि अन्य सभी क्रियाओंके मध्य अपने अन्तरतम—हृदयमें राम-नामका जप, उनका ध्यान एवं मनन करते रहते हैं जिसके फलस्वरूप उनके रोमच्छिद्रोंसे राम-रामकी ध्वनि नि:सृत होती रहती है और समस्त वातावरणको दूर-दूरतक राममय बना देती है।

जपका एक बहुत गोपनीय स्वरूप भी है। काशीधाममें अन्तकालमें भगवान् सदाशिव, विश्वनाथरूपसे डमरु और शृंगीनादसे प्राणकण्ठगत जीवको सचेत करते हैं और उससे राम-रामका जप कराकर परमधाम भेज देते हैं।

श्रीनिजानन्द-सम्प्रदायमें भी जपके स्वरूपका एक श्रेष्ठ विधान प्रतिष्ठित है, जिसका मूलाधार श्रीमत्तारतम निज-नाममहातारक मन्त्र है।

महाप्रभु स्वामी श्रीप्राणनाथजीने श्रीमुखवाणीस्वरूप श्रीतारतमसागरको आद्योपान्त गेय बनाकर भजन-कीर्तनरूपी जपको साकारकर भक्तोंका महान् कल्याण किया है। अष्टप्रहर-सेवा-पूजाके माध्यमसे गायनरूपी जपमें भक्तको सराबोरकर श्रीकृष्णरसका दिव्य एवं अलौकिक आनन्द प्राप्त होता रहता है, जिसमें प्रेमलक्षणा भक्तिका प्रेमरस प्रवाहित होता रहता है। इस प्रकार जप-तपका साधन प्रेमी प्रभुसे मिलनेका एक रसमय जीवनव्रत है।

भारतीय संस्कृतिके मुख्य पर्व, उत्सव एवं व्रत
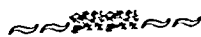
[भारतीय संस्कृतिमें पर्व, उत्सव एवं व्रतोंकी एक सुदीर्घ शास्त्रीय परम्परा है, जिसमें मुख्य रूपसे आनन्द एवं उल्लासका समावेश है। इन पर्वोंसे अज्ञान, दुःख, शोक और मोहकी निवृत्ति होती है तथा अखण्ड आनन्दकी प्राप्ति होती है। इसीलिये भारतमें पर्वोत्सव तथा व्रतोंकी विशेष प्रतिष्ठा है। यहाँ जीवनका प्रत्येक क्षण व्रत, उत्सव एवं पर्वोंसे परिपूर्ण है। इसीलिये प्रत्येक मासमें व्रत-पर्वोत्सवके विधि-विधान हमें प्राप्त होते हैं, जो हिन्दू संस्कृतिके मूलाधार हैं। इस दृष्टिसे इस स्तम्भमें भारतीय सनातन संस्कृतिके प्रमुख व्रतों, पर्वों तथा उत्सवोंका समावेश किया गया है, साथ ही प्रत्येक मासमें होनेवाले पर्वोत्सव और व्रत, उनकी विधि, महिमा एवं कथाको प्रस्तुत किया गया है। दैवी गुणोंको प्राप्त करनेकी दृष्टिसे सदाचार, शौचाचार, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, यम-नियम आदि आध्यात्मिक व्रतोंका भी यथासाध्य संकलन प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है—सं०]

'व्रतानां सत्यमुत्तमम्'

(श्रीहरिहरजी उपाध्याय)

किसी लक्ष्यको ध्यानमें रखकर विशेष संकल्पके साथ किये जानेवाले उपवास आदि क्रियाविशेषका नाम व्रत है—'**व्रतं च सम्यक्संकल्पजनितानुष्ठेयक्रियाविशेषरूपम्।**' लक्ष्यभेदसे व्रत तीन प्रकारके होते हैं। यथा—नित्य, नैमित्तिक और काम्यव्रत। एकादशी आदि व्रत, जिनके न करनेसे प्रत्यवाय (दोष) होता है, उन्हें 'नित्यव्रत' कहते हैं। पापक्षय आदि निमित्तको लेकर अनुष्ठित चान्द्रायण आदि व्रत 'नैमित्तिकव्रत' हैं। किसी विशेष तिथिसे विशेष कामनाके साथ अनुष्ठित व्रत 'काम्यव्रत' की श्रेणीमें आते हैं। यथा—अवैधव्यकामनासे ज्येष्ठमासके कृष्णपक्षमें चतुर्दशी तिथिको अनुष्ठित सावित्रीव्रत। इसके अतिरिक्त अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि कुछ मानसिक व्रत भी हैं—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्मषम्।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि व्रतधारिणि॥

(हेमाद्रिव्रतखण्डमें वाराहपुराणका वचन)

कायिक व्रतोंमें पूर्ण अथवा आंशिकरूपसे उपवास आदि क्रियाओंकी प्रधानता होती है, किंतु मानसिक व्रतोंमें मनकी प्रवृत्तियोंको नियन्त्रित कर अन्तःकरणचतुष्टयका परिष्कार अभीष्ट होता है।

व्रत एक प्रकारका धार्मिक अनुष्ठान और शारीरिक अथवा मानसिक तप है। अतः सभी व्रतोंमें अनुशासन एवं संयम अनिवार्य होता है। किसी व्रतमें दीक्षित व्यक्तिके मनमें श्रद्धाका भाव जाग्रत् होता है और अविचल श्रद्धासे सत्यस्वरूप परमेश्वरकी प्राप्ति होती है—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

(यजु० १९।३०)

ईश्वर सत्यस्वरूप हैं और सत्य ईश्वरका भाव-विग्रह है। अतः मन, वाणी और कर्ममें सत्यको प्रतिष्ठित करना, विचार-आचरणमें सत्यको धारण करना सर्वोपरि व्रत है।

ब्राह्मणोऽस्ति मनुष्याणामादित्यश्चैव तेजसाम्।
शिरोऽपि सर्वगात्राणां व्रतानां सत्यमुत्तमम्॥

अर्थात् मनुष्योंमें ब्राह्मण, प्रकाशमान नक्षत्रोंमें सूर्य, शरीरमें सिर और व्रतोंमें सत्यव्रत सर्वोत्तम है।

श्रीमद्भागवत (१०।२।२६)-में एक प्रसंग आया है। कंसके कारागारमें बंद देवकीके गर्भमें जब भगवान्ने प्रवेश किया तो भगवान् शंकर और ब्रह्माजी कंसके कारागारमें आये। उनके साथ समस्त देवता और नारदादि ऋषिगण भी थे। उन लोगोंने भगवान् श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति की—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।

सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

प्रभो! आप सत्यसंकल्प हैं। सत्य ही आपकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है। सृष्टिके पूर्व, प्रलयके पश्चात् और संसारकी स्थितिके समय—इन तीनों अवस्थाओंमें आप सत्य हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच दृश्यमान सत्योंके आप ही कारण हैं और उनमें आप अन्तर्यामी रूपसे विराजमान भी हैं। आप ही मधुर वाणी और समदर्शनके प्रवर्तक हैं। भगवन्! आप तो बस, सत्यस्वरूप ही हैं। हम सब आपके शरणागत हैं।

भगवान्के इसी सत्यस्वरूपको जनमानसमें प्रतिष्ठित करनेके उद्देश्यसे 'श्रीसत्यनारायणव्रत-कथा' का उल्लेख पुराणोंमें हुआ है। यह कथा यद्यपि पूजापरक है, किंतु कथाके माध्यमसे यह संदेश दिया गया है कि सत्य ही नारायणका रूप है और सत्यव्रतका पालन करनेसे हम नारायणको प्राप्त कर सकते हैं। कथामें साधु वणिक्, शतानन्द ब्राह्मण तथा उल्कामुख और तुङ्गध्वज राजाओंका दृष्टान्त देकर हमें सत्यव्रतके पालनकी प्रेरणा दी गयी है।

सत्यव्रतका एक रूप सत्याग्रह है। श्रीभगवान्को धार्मिक सत्याग्रह अत्यन्त प्रिय है। अनीति और अत्याचारके विरुद्ध सत्याग्रह कर कई भक्तोंने भगवान्की सहायता और कृपा प्राप्त की। अपने पिता, भाई अथवा राजाके विरुद्ध कोई सत्यनिष्ठ व्यक्ति यदि सत्याग्रह करता है तो भगवान् उसकी रक्षा करते हैं। ऐसे सत्यपथारूढ व्यक्तिकी हानि कोई नहीं कर सकता है।

भक्तप्रवर प्रह्लादने अपने पिताके अत्याचारका विरोध सत्याग्रहद्वारा ही किया। उसी प्रकार वसुदेव-देवकीने कंसके कारागारमें रहकर सत्यव्रतका पालन करते हुए अनेक कष्ट सहे। फलस्वरूप उन्हें भगवान्की प्राप्ति हुई।

अन्य व्रतोंकी भाँति सत्यव्रतके सम्बन्धमें भी कुछ विधि-निषेध शास्त्रोंद्वारा निर्धारित हैं, जिनका पालन आवश्यक है। सामान्यतः सत्यव्रतका अर्थ सत्यभाषण माना जाता है, किंतु सत्य बोलना सत्यव्रतका एक प्रधान अङ्ग है। वस्तुतः मनसा, वाचा, कर्मणा सत्यको अपने विचार एवं आचरणमें धारण करना पूर्ण सत्यव्रत है। सत्य बोलना चाहिये, प्रिय बोलना चाहिये, किंतु अप्रिय सत्य बोलना वर्जित है—**'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।'** श्रीमद्भगवद्गीता (१७।१५)-में वाङ्मय तपका वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—**'अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।'** अर्थात् जो किसीको भी उद्विग्न न करनेवाला, सत्य, प्रिय तथा हितकारक भाषण है, वही वाङ्मय तप है। अप्रिय सत्य बोलनेसे किसीके मनमें उद्वेग (क्षोभ) हो सकता है—उसे मनोव्यथा हो सकती है। अतः अप्रिय सत्य बोलनेका निषेध किया गया है।

इसके अतिरिक्त वाक्चातुर्यद्वारा असत्य बातको इस प्रकार बोलना कि वह सत्यभाषण-जैसा प्रतीत हो, सत्यव्रतका उल्लंघन है। तात्पर्य यह है कि संकटकालमें अथवा किसी भी प्रतिकूल परिस्थितिमें लोभवश या भयवश असत्य बोलना सत्यव्रतका उल्लंघन है।

अपने मनमें सत्यस्वरूप परमात्माको धारण करना—**'सत्यं परं धीमहि'** (श्रीमद्भा० १।१।१) मानसरूप है। मनसे किसीकी अहितकामना न करना, मनमें सदा ईश्वरका चिन्तन-स्मरण करते रहना भावसंशुद्धि है।

मनमें सत्यको धारण करनेका अर्थ है—कुविचार और कुवासनाओंको हटाकर मनमें सत्संकल्प और सद्विचारोंको प्रतिष्ठित करना। मन बड़ा चञ्चल है। उसका निग्रह करनेका उपाय श्रीमद्भगवद्गीता (६।२६)-में इस प्रकार बताया गया है—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

अर्थात् यह अस्थिर और चञ्चल मन जहाँ-जहाँ (विषयोंमें) विचरण करता है, वहाँ-वहाँसे हटाकर इसको एक परमात्मामें ही लगाये। तात्पर्य यह है कि हम सत्यस्वरूप परमात्माको अपने मनमें धारण करें।

हमारे सभी कर्मोंका समारम्भ मनमें ही संकल्पके रूपमें होता है—**'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'** (शाट्यायनीयोपनिषद् १) अर्थात् हमारे सभी शुभाशुभ कर्मोंका कारण मन है। मनके परिष्कृत और शुद्ध हो जानेसे, मनमें सत्यको प्रतिष्ठित करनेसे हमारे सभी कर्मोंमें सत्यनिष्ठा प्रकट होगी। हमारे कर्मोंमें दया, उदारता और परोपकार-जैसे सद्गुणोंका स्वतः समावेश हो जायगा। हमारे सभी कर्म ईश्वरप्रीत्यर्थ होंगे।

सत्यनिष्ठा सम्पूर्ण धर्म है। इसके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है। श्रीरामचरितमानस (२।९५।५)-में गोस्वामीजीने लिखा है—

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥

इस धर्मनिष्ठारूप सत्यव्रतके पालनसे सत्यस्वरूप भगवान्की प्राप्ति सहज ही हो जाती है। अतः सत्यव्रतको जीवनमें प्रतिष्ठित करनेका प्राणपणसे प्रयत्न करना चाहिये।

श्रीसत्यनारायणव्रत और कथाका रहस्य

(शास्त्रार्थपञ्चानन पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री)

हिन्दूजातिके अजर-अमर होनेमें अनेक कारण हैं, उनमें प्रमुख कारण है—उसका व्रत-पर्व एवं त्योहारप्रिय होना। प्रतिवर्ष, प्रतिमास किंवा प्रतिदिन व्रतों, पर्वों और त्योहारोंके मनानेकी जैसी ललक, जैसा उत्साह हिन्दुओंमें पाया जाता है, वैसा किसी भी अन्य जातिमें नहीं। यहाँ तो दशा यह है कि एक त्योहार अभी मनाया ही जा रहा है और तभी दूसरेको मनानेकी तैयारी प्रारम्भ हो जाती है, किंतु उत्साह, उल्लास और चावमें रञ्चभर भी कमी आनेका प्रश्न ही नहीं है। 'आनन्दाद्ध्येव इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि श्रुतिवचनके अनुसार प्राणिमात्र आनन्दरूप परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं, आनन्दमें रहते हैं और अन्ततः आनन्दमें ही विलीन भी हो जाते हैं। इस सूक्तिकी चरितार्थता एवं दर्शन हमें व्रतों, त्योहारों एवं पर्वोंके उल्लासमें डूबी रहनेवाली हिन्दूजातिको देखकर अनायास ही हो जाता है।

यूँ तो वर्षभरमें मनाये जानेवाले व्रतों, पर्वों तथा त्योहारोंकी लम्बी शृङ्खला है; क्योंकि हमारा कोई भी मास, कोई भी तिथि अथवा कोई भी वार ऐसा नहीं है जिस दिन किसी व्रत, किसी पर्व या किसी त्योहारको मनानेका विधान न हो। पूर्णिमा, अमावास्या-जैसी कई तिथियाँ तो ऐसी हैं जिस दिन अनेक व्रतों, पर्वो एवं त्योहारोंका संगम हो जाता है। पूर्णिमाको सौभाग्यवती महिलाएँ अपने सौभाग्यकी अभिवृद्धिके लिये व्रत रखती हैं और सायंकाल पूर्ण चन्द्रको अर्घ्य समर्पित करके व्रतकी पारणा करती हैं। इसके अतिरिक्त व्यासपूर्णिमा, उपाकर्म एवं रक्षाबन्धन, महालयारम्भ, शरत्पूर्णिमा, बुद्धपूर्णिमा और होली-जैसे त्योहारोंका सम्बन्ध भी इस तिथिके साथ है।

परंतु एक कार्य ऐसा है जो इस दिन, सारे विश्वमें जहाँ-जहाँ हिन्दू-सनातनधर्मी निवास करते हैं, वहाँ-वहाँ पूरी निष्ठा एवं सम्मानके साथ सम्पन्न किया जाता है, वह है—श्रीसत्यनारायणव्रत-कथाका अनुष्ठान। इस सम्बन्धमें यदि सर्वेक्षण कराया जाय तो आँकड़े देखकर हमें सुखद आश्चर्य होगा कि लगभग पचासी प्रतिशतसे भी अधिक हिन्दूपरिवार प्रायः पूर्णिमाके दिन श्रीसत्यनारायणव्रत-कथाका श्रद्धापूर्वक श्रवण करते हैं और इस अनुष्ठानको बन्धु-बान्धवोंसहित उत्सवकी भाँति मनाकर स्वयंको गौरवान्वित अनुभव करते हैं।

क्या है श्रीसत्यनारायणव्रत और क्या है उसकी कथाका तात्पर्य? इसी विषयपर संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत निबन्धमें किया जा रहा है।

वेदादि शास्त्रोंमें सत्यकी महिमाका गान करनेवाले अगणित वचन उपलब्ध हैं। मन्वादि धर्मशास्त्रकारोंने यद्यपि मनुष्यमात्रके लिये आचरणीय सामान्य धर्मोंमें सत्यको सुप्रतिष्ठित किया है। यथा—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्॥

(याज्ञवल्क्य० १।१२२)

—तथापि उपनिषदोंमें 'धर्मं चर' इतना ही कहकर ऋषि सन्तुष्ट नहीं हुए, उन्होंने 'सत्यं वद' कहकर व्यवहारमें सत्यकी अनिवार्य उपयोगिताके अभिप्रायसे सत्यका पृथक् निर्देश करना आवश्यक समझा। महर्षि वेदव्यासने विभिन्न पुराणोंमें 'सत्यान्नास्ति परो धर्मः', 'सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्', 'सत्येन लोकाञ्जयति', 'नास्ति सत्यात् परं तपः' इत्यादि वचनोंद्वारा पदे-पदे सत्यकी महिमाका प्रख्यापन किया है। स्थावर-जंगमात्मक इस नानाविध भूतसृष्टिमें भगवान् श्रीमन्नारायण ही एकमात्र सत्य हैं, शेष समस्त प्रपञ्च नामरूपात्मक होनेसे मिथ्याकल्प है। सकल शास्त्रानुमोदित

इस सिद्धान्तके अनुसार ही ब्रह्मादि देवता गर्भस्तुतिके समय भगवान् श्रीकृष्णकी सत्यरूपमें वन्दना करते हैं—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

(श्रीमद्भा० १०।२।२६)

अर्थात् हे प्रभो! आप सत्यसंकल्प हैं। सत्य ही आपकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है। सृष्टिके पूर्व, प्रलयके पश्चात् और संसारकी स्थितिके समय—इन असत्य अवस्थाओंमें भी आप सत्य हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच दृश्यमान सत्योंके आप ही कारण हैं और उनमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान भी हैं। आप ही मधुर वाणी और समदर्शनके प्रतीक हैं। आप इस दृश्यमान जगत्के परमार्थरूप हैं। हे भगवन्! आप तो साक्षात् सत्यस्वरूप ही हैं। हम सब आपकी शरणमें हैं।

'नारायण' शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी तो इसी रहस्यकी ओर संकेत करनेवाला है—नार अर्थात् पञ्चमहाभूत, उनमें अयन अर्थात् सत्यरूपसे अवस्थित रहनेवाले भगवान् नारायण। अतएव सत्य और नारायण परस्पर अभिन्न हैं। दोनोंमें ऐकात्म्य सम्बन्ध होनेके कारण **'सत्यश्चासौ नारायणः सत्यनारायणः'** इस प्रकार कर्मधारय समास करनेपर अथवा **'सत्ये नारायणः सत्यनारायणः'** इस प्रकार तत्पुरुष समासद्वारा भी सत्य एवं नारायणमें सर्वथा अपृथग्भाव ही सिद्ध होता है। इसका फलितार्थ यह है कि मनुष्य अपने जीवन-व्यवहारमें यदि सत्यको सुप्रतिष्ठित करता है तो वह अर्थान्तरसे अपने भीतर भगवद्गुणोंका आधान करता है। इसके विपरीत सत्यसे दूर रहनेवाला व्यक्ति भगवदीय गुणोंसे हीन होनेके कारण तामस स्वभाववाला हो जाता है, पापकर्मोंमें उसकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है और जिनके परिणामस्वरूप वह यावज्जीवन नाना प्रकारके क्लेशोंसे घिरा हुआ रहता है। मृत्युलोकके प्राणियोंकी यही दुर्दशा देखकर देवर्षि नारद द्रवित हो उठे थे। श्रीसत्यनारायणव्रत-कथाकी भूमिकाके निम्नाङ्कित शब्द कितने मर्मस्पर्शी हैं और आजके संदर्भमें भी कितने यथार्थ प्रतीत हो रहे हैं—

एकदा नारदो योगी परानुग्रहकाङ्क्षया।
पर्यटन् विविधान् लोकान् मर्त्यलोकमुपागतः॥
ततो दृष्ट्वा जनान् सर्वान् नानाक्लेशसमन्वितान्।
नानायोनिसमुत्पन्नान् क्लिश्यमानान् स्वकर्मभिः॥

(१।४-५)

यहाँ **'जनान् सर्वान्'** तथा आगेके श्लोकमें भी **'मर्त्यलोके जनाः सर्वे नानाक्लेशसमन्विताः'** (१।११) **'सर्वे जनाः'** कहना महत्त्वपूर्ण है, जिसका अभिप्राय है कि इस मृत्युलोकमें देवर्षि नारदको एक भी प्राणी ऐसा दृष्टिगोचर नहीं हुआ जो सर्वथा क्लेशमुक्त हो।

फिर, सांसारिक प्राणियोंके क्लेशोंकी आत्यन्तिक निवृत्तिका उपाय क्या है? उपाय बहुत ही सरल और सभीके द्वारा आचरणमें लाया जा सकता है। अन्धकारको दूर भगानेके लिये जैसे प्रकाश ही एकमात्र उपाय है, उसी प्रकार क्लेशोंसे मुक्ति पानेके लिये सत्यनारायणका आश्रय ही अमोघ उपाय है—**'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।'**

यह उपाय भी किसी सामान्य जनने नहीं, अपितु स्वयं श्रीविष्णुभगवान्ने अपने श्रीमुखसे देवर्षि नारदजीको बताया है—

व्रतमस्ति महत्पुण्यं स्वर्गे मर्त्ये च दुर्लभम्।
तव स्नेहान्मया वत्स प्रकाशः क्रियतेऽधुना॥
सत्यनारायणस्यैव व्रतं सम्यग् विधानतः।
कृत्वा सद्यः सुखं भुक्त्वा परत्र मोक्षमाप्नुयात्॥

(१।१४-१५)

जीवनमें सत्यको अपनानेका व्रत लीजिये और सद्यः सुख प्राप्त कीजिये। सद्यःका तात्पर्य है—तुरंत, अविलम्ब किंवा हाथोंहाथ। ज्योंही आपने सत्यको अपने जीवनका अङ्ग बनाया त्योंही, उसी क्षणसे, आपको सुख मिलना प्रारम्भ हुआ। ऐसा चमत्कारी है 'सत्यव्रत'। नारायण जैसे बिना किसी भेदभावके प्राणिमात्रपर समानरूपसे अपनी करुणाकी वृष्टि किया करते हैं, उसी प्रकार सत्य भी तद्रूप होनेके कारण सभीको क्लेशोंसे मुक्त करके उन्हें शाश्वत सुख प्रदान करनेवाला है। इसीलिये श्रीसत्यनारायणव्रत-कथामें ऐसे उन सभी व्यक्तियोंकी कथाएँ संगृहीत की गयी हैं जिन्होंने अपने कार्य-व्यवहारमें सत्यको समाविष्ट करनेका व्रत धारण किया था। फिर चाहे वे समाजके किसी भी वर्गसे थे। यहाँ काशीपुरमें रहनेवाला दरिद्र ब्राह्मण है तो उल्कामुख और तुङ्गध्वज-जैसे राजा भी हैं। इसी प्रकार गरीब लकड़हारा है तो चतुर चालाक साधु नामक बनिया

भी यहाँ है। गोचारण करनेवाले साधारण ग्वालोंकी कथा भी यहाँ है। सत्यको अपनानेसे जैसे ये सभी सब प्रकारसे सुखी एवं सम्पन्न हो गये, उसी प्रकार जो भी सुखी एवं समृद्ध होना चाहे वह इन्हींकी भाँति सत्यको अपने जीवनका अभिन्न अङ्ग बनानेका व्रत धारण कर ले। यहाँ किसीके लिये द्वार बंद नहीं है।

यही कारण है कि श्रीसत्यनारायणव्रत-कथामें जिनकी कथाएँ संकलित हैं, उन सभीने सत्यव्रत धारण करनेका संकल्प किया था, यही बारम्बार कहा गया है। यथा—

ततः प्रातः समुत्थाय सत्यनारायणव्रतम्।
करिष्य इति संकल्प्य भिक्षार्थमगमद् द्विजः॥
सत्यपूजां करिष्यामि यथाविभवविस्तरैः।
काष्ठं विक्रयतो ग्रामे प्राप्यते चाद्य यद्धनम्॥
तेनैव सत्यदेवस्य करिष्ये व्रतमुत्तमम्।

(२।९, ४।३५, २।२२-२३)

सत्यव्रतका अलौकिक प्रभाव

श्रीसत्यनारायणव्रत-कथाके अन्तिम अध्यायमें फलश्रुतिके अन्तर्गत यह बताया गया है कि सत्यका आश्रय लेनेवालोंको क्या लोकोत्तर लाभ हुए। उन सभीको सत्यलोक (वैकुण्ठ) तो प्राप्त हुआ ही दिव्य स्मरणीय शरीर भी अगले जन्मोंमें प्राप्त हुए।

वाल्मीकिरामायणमें सत्यके अलौकिक प्रभावको दर्शानेवाला एक प्रकरण, यहाँ प्रस्तुत संदर्भमें अत्यन्त प्रासंगिक होनेसे नितान्त मननीय है।

जानकीजीको बचानेके प्रयासमें रावणके भीषण प्रहारोंसे क्षत-विक्षत एवं मरणासन्न जटायुको देखकर श्रीराम करुणार्द्र हो उठते हैं और नया शरीर लेकर प्राणधारण करनेकी उससे अभ्यर्थना करते हैं। परंतु जीवनके प्रति उसकी अरुचि देखकर अन्ततः उसे दिव्यगतिके साथ उत्तम लोक प्रदान करते हैं—

या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः।
अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम्॥
मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान्।*

(वा०रा० ३।६८।२९-३०)

यहाँ यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि मोक्ष प्रदान करनेकी सामर्थ्य तो केवल विष्णुभगवान्में ही है, फिर मनुष्यरूपमें विराजमान श्रीरामने जटायुको मोक्ष (उत्तम लोक) किस प्रकार दे दिया? यह तो मानवलीलासे बाहरका विषय है।

इस जिज्ञासाका समाधान पूर्वाचार्य इस प्रकार करते हैं कि श्रीरामके मानवीय गुणोंमें सत्य सर्वोपरि था और सत्यव्रतका पालन करनेवाले व्यक्तिके लिये समस्त लोकोंपर विजय पा लेना अतीव सहज हो जाता है। इसलिये श्रीरामने विष्णु होनेके कारणसे नहीं, अपितु मनुष्यको देवोपम बना देनेवाले अपने सत्यरूपी सद्गुणके आधारपर जटायुको मोक्ष प्रदान किया। श्रीरामके मनुष्योचित गुणोंका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

सत्येन लोकाञ्जयति द्विजान् दानेन राघवः।
गुरूञ्छुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान्॥
सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम्।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे॥

(वा०रा० २।१२।२९-३०)

इस प्रकार सत्यको नारायण मानकर अपने सांसारिक व्यवहारोंमें उसे सुप्रतिष्ठित करनेका व्रत लेनेवालोंकी कथा है—श्रीसत्यनारायणव्रत-कथा। सत्यको अपनानेके लिये किसी मुहूर्तशोधनकी भी आवश्यकता नहीं है। कभी भी, किसी भी दिनसे यह शुभ कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है—'यस्मिन् कस्मिन् दिने मर्त्यो भक्तिश्रद्धासमन्वितः' (१।१८)।

बस, आवश्यकता है केवल व्यक्तिके दृढ़ निश्चयकी और उसके परिपालनके लिये सम्पूर्ण समर्पणभावकी। इधर आपने सत्यको अङ्गीकार किया और उधर उसी पलसे सुख एवं समृद्धिकी वर्षा आपपर प्रारम्भ हुई—

दुःखशोकादिशमनं धनधान्यप्रवर्धनम्॥
सौभाग्यसन्ततिकरं सर्वत्र विजयप्रदम्।
व्रतमस्य यदा विप्र पृथिव्यां संकरिष्यन्ति।
तदैव सर्वदुःखं तु मनुजस्य विनश्यति॥

(१।१७-१८, २।३३)

---

* यज्ञ करनेवाले, अग्निहोत्री, युद्धमें पीठ न दिखानेवाले और भूमिदान करनेवाले पुरुषोंको जिन गतियों—जिन उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है, मेरी आज्ञासे उन्हीं सर्वोत्तम लोकोंमें तुम भी जाओ।

व्रतोत्सव-महिमामें एकादशीव्रत

(डॉ० श्रीशिवप्रसादजी शर्मा)

व्रतोपवासनियमैः शरीरोत्तापनैस्तथा।
वर्णाः सर्वेऽपि मुच्यन्ते पातकेभ्यो न संशयः॥

व्रत, उपवास, नियम तथा शारीरिक तपके द्वारा सभी वर्णके मनुष्य पापमुक्त होकर पुण्य-प्रभावसे उत्तम गति प्राप्त करते हैं।

पुण्यजनक उपवासादि नियमोंका नाम 'व्रत' है। अनर्गल सभी प्रवृत्तियाँ नियमोंके द्वारा ही क्रमशः नष्ट हो जाती हैं। इसलिये व्रतमें नियम ही मुख्य साधन हैं। हेमाद्रि-व्रतखण्डमें व्रतके लक्षणके विषयमें लिखा है—'**व्रतं च सम्यक् सङ्कल्पजनितानुष्ठेयक्रियाविशेषरूपम्**' अर्थात् किसी लक्ष्यको सामने रखकर विशेष संकल्पके साथ लक्ष्य-सिद्धिहेतु किये जानेवाले क्रियाविशेषका नाम 'व्रत' है।

व्रत प्रवृत्ति-निवृत्तिके भेदसे दो प्रकारके होते हैं। द्रव्य-विशेषके भोजन तथा पूजादिके द्वारा साध्य व्रत प्रवृत्तिमूलक हैं। केवल उपवासादिद्वारा साध्य व्रत निवृत्तिमूलक हैं। ये दोनों प्रकारके व्रत पुनः लक्ष्य-भेदसे तीन प्रकारके होते हैं—नित्यव्रत, नैमित्तिकव्रत और काम्यव्रत।

एकादशी आदि व्रत जिनके न करनेसे प्रत्यवाय होता है वे सब '**नित्यव्रत**' कहलाते हैं। पापक्षय आदि निमित्तको लेकर अनुष्ठित चान्द्रायण आदि 'नैमित्तिकव्रत' हैं और किसी विशेष तिथिमें विशेष कामनाके साथ अनुष्ठित व्रत 'काम्यव्रत' हैं; जैसे—अवैधव्यकी कामनासे ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीसे अमावास्यातक अनुष्ठित वटसावित्रीव्रत।

व्रतके पुनः दो भेद दिये गये हैं—कायिक व्रत और मानसिक व्रत। हेमाद्रि-व्रतखण्डके अनुसार मानसिक और कायिक व्रतके लक्षण इस प्रकार हैं—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्मषम्।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि व्रतधारिणि॥
एकभक्तं तथानक्तमुपवासादिकं च यत्।
तत्सर्वं कायिकं पुंसां व्रतं भवति नान्यथा॥

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और पापशून्यता—ये सब 'मानसव्रत' हैं। दिवा-रात्रि उपवास या अशक्त रहनेपर रात्रिमें भोजन, अयाचितरूपसे रहना इत्यादि 'कायिकव्रत' हैं।

व्रतके विषयमें यजुर्वेद-संहितामें कहा गया है—'**वयं सोम व्रते तव**' (३।५६) '**अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि**' (यजु० १।५)। '**सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि**' (यजु० १।२ शतपथब्राह्मणमें भी व्रतविषयक चर्चा आयी है—'व्रतमुपैष्यन्' (१।१।१।१)। उपर्युक्त वेदमन्त्रोंमें व्रतकी आज्ञा दी गयी है

मत्स्य, कूर्म, ब्रह्माण्ड, वराह, स्कन्द तथा भविष्य आदि प्रायः सभी पुराणोंमें अनेक व्रतोंकी विधियाँ तथा विवरण देखनेमें आते हैं। व्रतके बाद व्रत-कथा सुननेकी विधिका भी वर्णन पुराणोंमें यत्र-तत्र-सर्वत्र सुलभ है हेमाद्रि-व्रतखण्डमें व्रत करनेके अधिकारके विषयमें लिखा गया है—'**चतुर्णामपि वर्णानां स्त्रीपुंसाधारण्येन व्रतेष्वधिकारः**' अर्थात् चारों वर्णोंके स्त्री-पुरुषोंका व्रतमें अधिकार है। किंतु व्रती होनेके लिये व्रतकालमें निर्दिष्ट गुणोंकी नितान्त आवश्यकता है; जैसे—अपने वर्ण तथा आश्रमानुसार आचारनिष्ठ, पवित्रचित्त, निर्लोभ, सत्यवादी एवं सकल जीवोंके हितमें रत पुरुषका ही व्रतमें अधिकार है। जो शास्त्रका मर्म जानकर कर्म करता है और वेदनिन्दक नहीं है, उसीका व्रतमें अधिकार है।

स्त्रियोंके लिये शास्त्राज्ञा है कि कुमारीको पिताकी आज्ञा, सौभाग्यवतीको पतिकी आज्ञा और विधवाको पुत्रकी आज्ञा या सम्मति लेकर ही व्रत करना चाहिये, अन्यथा व्रत निष्फल हो जायगा—

नारी च खल्वनुज्ञाता पित्रा भर्त्रा सुतेन वा।
विफलं तद् भवेत्तस्या यत्करोत्यौर्ध्वदैहिकम्॥

(हेमाद्रि-व्रतखण्ड)

व्रतारम्भ—व्रतारम्भके विषयमें वृद्ध वसिष्ठका वचन है कि—

उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यभाक्।
सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भे च समापने॥

अर्थात् जिस तिथिमें सूर्योदय होता है, वह तिथि यदि मध्याह्नतक न रहे तो वह खण्डा तिथि कहलाती है, उसमें व्रतारम्भ नहीं करना चाहिये। इसके विपरीत अखण्डा तिथिमें व्रतारम्भ करना उचित है। व्रतके पूर्व दिन संयमसे रहकर व्रतारम्भके दिन संकल्पपूर्वक व्रत आरम्भ करना होता है।

व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा और पुरश्चरण आदिमें आरम्भसे पहले सूतक लगता है, आरम्भ होनेके

बाद नहीं लगता—

व्रतं यज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमार्चने जपे।
आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥

रजोदर्शन आदि दोषोंमें स्त्रियाँ स्वयं उपवास कर ब्राह्मणको प्रतिनिधि बनाकर जप-पूजादि करा सकती हैं। पतिके व्रतमें स्त्री तथा स्त्रीके व्रतमें पति प्रतिनिधि हो सकता है अथवा पुत्र, माता, भगिनी भी प्रतिनिधि हो सकते हैं। चान्द्रायण आदि व्रतमें केशमुण्डन अवश्य कराना होता है। यदि किसी कारणसे मुण्डन असम्भव हो तो मुण्डनके बदलेमें द्विगुण प्रायश्चित्त करना चाहिये। स्त्रियोंके लिये आदेश है कि समस्त केश उठाकर दो अंगुल काट देना चाहिये। यथा—

सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलिद्वयम्।
एवमेव तु नारीणां मुण्डमुण्डनमादिशत्॥
(हेमाद्रि-व्रतखण्ड)

व्रतसमाप्तिके पूर्व ही यदि किसी व्रतीकी मृत्यु हो जाय तो आगामी जन्ममें उसे उस व्रतका फल प्राप्त होता है। यथा—

यो यदर्थं चरेद् धर्मं न समाप्य मृतो भवेत्।
स तत्पुण्यफलं प्रेत्य प्राप्नुयान्मनुरब्रवीत्॥

अब नित्य-नैमित्य व्रतोंका संक्षिप्त वर्णन करते हैं—एकादशी, पौर्णमासी, अमावास्या आदि 'नित्यव्रत' कहलाते हैं। नित्य कर्मकी तरह इनका भी यही लक्षण है कि **'अकरणात् प्रत्यवायः'** अर्थात् न करनेसे पाप लगता है, क्योंकि जीवको अपनी स्थितिमें कायम रखनेके लिये ये सभी नित्यव्रत किये जाते हैं। इनके न करनेसे जीव अपनी स्थितिसे गिर जाया करता है। इसीलिये नित्यकर्मकी तरह नित्यव्रतका भी लक्षण किया गया। एकादशीव्रतके विषयमें कहा गया है कि—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति सम्प्राप्ते हरिवासरे॥
अघं स केवलं भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते हरिवासरे।
तद्दिने सर्वपापानि वसन्त्यन्नाश्रितानि च॥

अर्थात् ब्रह्महत्या आदि समस्त पाप एकादशीके दिन अन्नमें रहते हैं। अतः एकादशीके दिन जो भोजन करता है वह पाप-भोजन करता है।

ज्योतिष-विज्ञानके अनुसार शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिको चन्द्रमाकी एकादश कलाओंका प्रभाव जीवोंपर पड़ता है तथा कृष्णपक्षकी एकादशी तिथिको सूर्यमण्डलद्वारा ग्यारह कलाओंका प्रभाव जीवोंपर पड़ा करता है। चन्द्रमाका प्रभाव शरीर, मन सभीपर रहनेसे इस तिथिमें शरीरकी अस्वस्थता और मनकी चञ्चलता स्वाभाविक रूपसे बढ़ सकती है। इसी कारण उपवासद्वारा शरीरको सँभालना और इष्ट-पूजनद्वारा मनको सँभालना एकादशीव्रत-विधानका मुख्य रहस्य है।

अष्टमी तिथिके बाद रसवृद्धिकर पूर्णिमा तथा अमावास्या तिथिके लिये रससञ्चारका विशेष प्रारम्भ एकादशी तिथिसे ही होता है, जिसका आघात शरीर एवं मनपर होना निश्चित है। इसी कारण स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये इस एकादशीव्रतको अवश्य पालनीय व्रत बताया गया है। दूसरी बात यह है कि चन्द्रमा धूर्जटि (शिव)-के ललाटमें है। इस कारण उसके प्रभावनाशके लिये एकादशीमें विष्णुपूजनका उपदेश किया गया है। अतएव एकादशीको हरिवासर कहा गया है। भविष्यपुराणका वचन है—

शुक्ले वा यदि वा कृष्णे विष्णुपूजनतत्परः।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥

अर्थात् विष्णुपूजा-परायण होकर शुक्ल-कृष्ण दोनों पक्षोंकी ही एकादशीमें उपवास करना चाहिये। अन्य सम्प्रदायके उपासकगण अपने-अपने इष्टदेवमें विष्णु-भावना करके पूजा कर सकते हैं। लिङ्गपुराणमें भी यही नियम दिखाया गया है—

गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तथैव च।
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि॥

अर्थात् गृहस्थ, ब्रह्मचारी, सात्त्विक किसीको भी एकादशीके दिन भोजन नहीं करना चाहिये। यह नियम शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष दोनोंमें लागू रहेगा। असमर्थ रहनेपर ब्राह्मणद्वारा अथवा पुत्रद्वारा उपवास करानेका विधान वायुपुराणमें है। मार्कण्डेयस्मृतिके अनुसार बाल-वृद्ध-रोगी भी फलका आहार करके एकादशीका व्रत करें। वसिष्ठस्मृतिके अनुसार दशमीयुक्त (विद्धा) एकादशीमें उपवास नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेसे संतानका नाश होता है और ऊर्ध्वगति रुकती है। यथा—

दशम्येकादशी यत्र तत्र नोपवसेद्बुधः।
अपत्यानि विनश्यन्ति विष्णुलोकं न गच्छति॥

कण्वस्मृतिके अनुसार अरुणोदयके समय दशमी तथा एकादशीका योग हो तो द्वादशीको उपवास करके त्रयोदशीको पारण करना चाहिये। यथा—

अरुणोदयवेलायां दशमीसंयुता यदि।
तत्रोपोष्या द्वादशी स्यात् त्रयोदश्यां तु पारणम्॥

कात्यायनस्मृतिके अनुसार प्रातःकाल स्नान तथा हरिपूजनके अनन्तर हरिको उपवास-समर्पण करना होता है। उसके बाद हाथमें जल लेकर पारण-मन्त्र पढ़ते हुए व्रतकी पारणा करनी चाहिये। यही एकादशीका पारण कहलाता है। यथा—

प्रातः स्नात्वा हरिं पूज्य उपवासं समर्पयेत्।
पारणं तु ततः कुर्याद् व्रतसिद्ध्यै हरिं स्मरन्॥

पारण-मन्त्र इस प्रकार है—

अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥

इस प्रकार एकादशीरूप नित्यव्रतका अनुष्ठान होता है। बारह मासमें चौबीस तथा अधिकमासमें दो—कुल छब्बीस एकादशियाँ होती हैं। सभीके भिन्न-भिन्न नाम हैं—

एकादशीका आरम्भ मार्गशीर्ष (अगहन)-मासके कृष्णपक्षसे किया गया है। यह मास भगवान्‌का विग्रह माना जाता है। भगवद्वचनामृतसे सिद्ध है—**'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्'** इस मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षमें उत्पन्ना नामकी एकादशी होती है। इसी क्रमसे शुक्लपक्षमें मोक्षदा होती है। इसी प्रकार पौषमासमें सफला और पुत्रदा नामकी, माघमें षट्तिला और जया नामकी एकादशी होती है। फाल्गुनमासमें क्रमशः कृष्णपक्षमें विजया और शुक्लपक्षमें आमलकी नामकी एकादशी होती है। चैत्रमें पापमोचनिका और कामदा एकादशी, वैशाखमें वरूथिनी और मोहिनी एकादशी होती है। ज्येष्ठ कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम अपरा तथा शुक्लपक्षमें निर्जला या भीमसेनी नामकी एकादशी होती है।

आषाढ़ कृष्णपक्षकी एकादशी योगिनी नामकी होती है तथा शुक्लपक्षकी हरिशयनी। इसी दिन चार मासके लिये भगवान् सागरमें शयन करते हैं। श्रावणमासके कृष्णपक्षकी एकादशी कामिका और शुक्लपक्षकी पुत्रदा तथा भाद्रपदमें अजा और पद्मा एकादशी होती है। आश्विनमासमें इन्दिरा और पापाङ्कुशा तथा कार्तिकमें रम्भा और देवोत्थानी नामकी एकादशी होती है। इन बारह मासोंकी चौबीस एकादशियोंके अलावा पुरुषोत्तममास अर्थात् अधिक मासमें क्रमशः कमला तथा कामदा नामकी एकादशी होती है।

एकादशीव्रतके दिन भोजनका निषेध माना गया है तथापि फल-जल-दुग्धादिका आहार करके भी उपवास हो सकता है। नित्यव्रतके अन्तर्गत होनेसे एकादशीका व्रत सर्वसाधारण जनताके लिये अपरिहार्य सिद्ध होता है। प्रथम एकादशीका नाम उत्पन्ना है। नाम सुनते ही जिज्ञासा बनती है कि उत्पन्ना है तो इनकी उत्पत्ति अवश्य होगी। प्रसङ्गवश उत्पन्नाके सम्बन्धमें श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-संवादके अन्तर्गत एकादशीकी उत्पत्ति इस प्रकार वर्णित है—

प्राचीन कृतयुगमें तालजङ्घ दैत्यका पुत्र 'मुर' नामका बलशाली दानव था। देव-दानव-युद्धमें उसने इन्द्रादि देवताओंको परास्त कर स्वर्ग और मर्त्य—सर्वत्र अपना अधिकार जमा लिया तो भगवान् वैकुण्ठपति विष्णुसे भी वह वैर कर बैठा। बहुत दिनोंतक युद्ध चला, पर वह दैत्य परास्त न हुआ।

भगवान्‌ने विश्राम करनेके विचारसे बदरीवनके पास सिंहावती नामक महागुफामें प्रवेश किया। उसमें प्रवेश कर भगवान् विष्णु योगनिद्रामें विश्राम करने लगे।

इधर चन्द्रावती नगरीमें रहकर मुर दानव सर्वजीवलोकको अपने अधीन कर सर्वलोकका शासन करने लगा तो उस गुफाका द्वार भी पता लगाकर वह दुष्ट मुर भगवान्‌के समीप युद्ध करने पहुँच गया। प्रभु योगनिद्रामें लीन हैं—यह देखकर वह शयनावस्थामें ही आक्रमण करनेका विचार बना ही रहा

था कि भगवान्‌के विग्रहसे एक दिव्य शक्ति कन्याके रूपमें सहसा प्रकट हुई और उसने मुर दानवको युद्धके लिये ललकारा। दानवेन्द्र कन्याके साथ युद्ध करने लगा।

उस कन्याने भी शीघ्र ही मुरके सभी शस्त्रास्त्र काटकर उसे विरथ कर दिया तथा उसके वक्षस्थलमें एक मुक्का जमाया इससे वह धराशायी तो हुआ लेकिन पुनः उठकर भगवतीकी ओर दौड़ा तब महाशक्तिने हुंकारमात्रसे

उसको भस्म कर दिया। उसके प्राण-पखेरू उड़ चले और वह यमलोक चला गया। उसके सहयोगी शेष दानव पाताल चले गये।

इसके बाद जब भगवान् जगे तो अपने समक्ष उपस्थित अपनेसे ही उत्पन्न महाशक्तिको दिव्य कन्याके रूपमें देखकर पूछने लगे—कन्यके! तुम कौन हो? इस दुष्ट दानवका वध किसने किया? कन्या बोली—इस दुष्ट दानवने इन्द्रादि देवता और लोकपालोंको पदच्युत कर अपना साम्राज्य सर्वत्र जमा लिया फिर आपको मारनेके लिये शयनावस्थामें ही युद्ध करनेके लिये ललकारा तो आपके ही शरीरसे निकलकर मैंने इससे युद्ध किया। आपकी कृपासे इसका वधकर इन्द्रादि देवताओंको उनका स्थान दिलाया। यह सुनकर भगवान् विष्णु प्रसन्न हो बोले—हे कन्यके! इस दानवके हननसे सभी देवताओंने आनन्दकी साँस ली, अतः मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम अपना मनचाहा वरदान माँग लो। कन्यारूप महाशक्ति बोली—हे परमेश्वर! यदि आप मुझसे संतुष्ट हैं और मुझे वरदान देना चाहते हैं तो ऐसा वर दें कि व्रत-उपवास करनेवाले भक्तजनोंका उद्धार कर सकूँ तथा ऐसे भक्तोंको जो किसी प्रकारका भी व्रत करते हैं, आप उन्हें धर्म, ऐश्वर्य (धन), भक्ति और मुक्ति प्रदान करें। तब भगवान् प्रसन्न होकर बोले—हे देवि! जो तुम कहोगी सब कुछ होगा। तुम्हारे जो भक्तजन हैं वे मेरे भी भक्त कहलायेंगे। साथ ही तुम एकादशी तिथिके दिन मेरे विग्रहाङ्गसे समुत्पन्न हो, अतः तुम्हारा नाम उत्पन्ना एकादशी लोक-परलोकमें प्रसिद्ध होगा। हे देवि! तृतीया, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी तथा एकादशी—ये तिथियाँ मेरे लिये विशेष प्रिय हैं, परंतु एकादशीव्रत करनेवालोंको सर्वाधिक पुण्य प्राप्त होता है। सभी व्रत, सभी दानसे अधिक फल एकादशीव्रत करनेसे होता है।

एकादशीकी तरह अमावास्या और पूर्णिमाको भी 'नित्यव्रत' कहा जाता है। इन दोनों तिथियोंमें पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य तीनों समसूत्रमें होते हैं। अमावास्यामें चन्द्र पृथ्वी और सूर्यके बीचमें होता है। इस प्रकार जो चन्द्रका अंश पृथिवीकी ओर होता है, उसमें सूर्य-किरणका स्पर्श न होनेसे उस दिन चन्द्र दिखता नहीं। पूर्णिमा तिथिको पृथिवी चन्द्र और सूर्यके बीचमें होती है, इस कारण सम्पूर्ण मण्डलके साथ चन्द्रमाका प्रकाश पृथिवीपर हो जाता है। अतः सिद्ध हुआ कि समसूत्रमें रहनेके कारण पूर्णिमा और अमावास्या दोनों तिथियोंमें चन्द्रका विशेष प्रभाव पृथिवीपर हो जाता है, जिससे पृथिवीमें रहनेवाले जीवोंके शरीर और मन दोनों ही अस्वस्थ तथा चञ्चल हो सकते हैं। जब दोषोंके निवारणार्थ दश कलायुक्त एकादशीमें व्रत करनेकी आवश्यकता है तो पूर्ण कलायुक्त पौर्णमासी और अमावास्यामें भी अवश्य ही व्रत करना चाहिये, यही शास्त्रका सिद्धान्त है। इन व्रतोंके न करनेसे ही विशेष प्रत्यवाय और वात आदि कितनी ही व्याधियोंका आक्रमण हो सकता है। अतः एकादशीव्रत सभीके लिये परमावश्यक है।

एकादशीव्रतका विधान

(श्रीश्यामलालजी सिंहवाल)

'व्रत' शब्द संकल्पका पर्याय है। मनको निश्चित दिशा देनेके लिये दृढ़ता लानेका जो विधि-विधान है, वही शुभसंकल्प व्रत है। भारतीय संस्कृतिमें व्रतोंकी लम्बी शृङ्खला है। हमारे ऋषि-मुनियोंने धार्मिक व्रतोंके अनुपालनका आदेश दिया है ताकि मानवमात्र व्रतोंके पालनसे अनेक प्रकारके रोगोंसे मुक्त होकर स्वस्थ जीवन-यापन करते हुए भगवत्प्राप्तिका सहज सुलभ साधन कर सके। सभी व्रतोंका विधान अलग होते हुए भी ध्येय सबका समान ही है। मनपर नियन्त्रण और शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्यकी प्राप्ति व्रतका प्रतिफल है। मन सभी क्रियाकलापोंका आधार है, संकल्प-विकल्पका उद्गम स्थान है।

व्रतके विधानके अनुसार लंघन या स्वल्पाहारसे आँतोंका अवशिष्ट मल निष्कासित होता है। फलस्वरूप आँतें अधिक सक्रिय हो जाती हैं जो स्वास्थ्यका आधार है। व्रतके परिणाममें जीवात्मामें पारमात्मिक ऐश्वर्य प्रकट होने लगते हैं। आत्मा परमात्माकी निकटताकी ओर आगे बढ़ती है। व्रतमें शुद्ध-सात्त्विक आहार लिया जाता है जिससे मन शुद्ध होता है, सत्त्वकी शुद्धि होती है। सत्त्वकी शुद्धिसे अखण्ड भगवत्स्मृति बनी रहती है और यही ध्रुवास्मृति सभी ग्रन्थियोंके विमोचनमें हेतु बनती है—

'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।'

(छान्दोग्योपनिषद् ७।२६।२)

व्रत इस शुद्धिक्रमकी पहली सीढ़ी है। आत्मशुद्धिके लिये व्रतोंकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। ऋषि-मुनियोंके विचार हैं कि यदि महीनेमें मात्र दोनों एकादशियोंका व्रत विधि-विधानसे किया जाय तो मनुष्यकी प्रकृति पूर्णतया शुद्ध एवं सात्त्विक हो जाती है।

काम्पिल्यनगरके राजा वीरबाहुके पूछनेपर महर्षि भारद्वाजने एकादशीव्रतका विधान उन्हें बतलाया था। संक्षेपमें वह यहाँ प्रस्तुत है—

(१) जो मनुष्य एकादशीव्रत करना चाहे तो वह दशमीको शुद्धचित्त हो दिनके आठवें भागमें सूर्यका प्रकाश रहनेपर भोजन करे। रात्रिमें भोजन न करे।

(२) दशमीको काँस्यके बर्तनमें भोजन, उड़द, मसूर, चना, कोदो, साग, शहद, दूसरेका अन्न, दो बार भोजन और मैथुन— इनको त्याग दे। मार्गशीर्ष शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको मन और इन्द्रियोंको वशमें करते हुए देवपूजनके बाद जलसे अर्घ्य देते हुए प्रार्थना करे—'कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् अच्युत! मैं एकादशीको निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा, मेरे आप ही रक्षक हैं।' ऐसी प्रार्थना कर रात्रिमें '**ॐ नमो नारायणाय**' मन्त्रका जप करे।

(३) एकादशीके दिन बार-बार जलपान, हिंसा, अपवित्रता, असत्य-भाषण, पान चबाना, दातुन करना, दिनमें सोना, मैथुन, जुआ खेलना, रातमें सोना और पतित मनुष्योंसे वार्तालाप-जैसी ग्यारह क्रियाओंको त्याग दे।

(४) स्नान-पूजन आदि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर भगवान्से प्रार्थना करे—'हे केशव! आज आपकी प्रसन्नताके लिये दिन और रातमें संयम-नियमका मेरे द्वारा पालन हो। मेरी सोयी हुई इन्द्रियोंके द्वारा कोई विकलता, भोजन या मैथुनकी क्रिया हो जाय या मेरे दाँतोंमें पहलेसे अन्न सटा हुआ हो तो हे पुरुषोत्तम! आप इन सब बातोंको क्षमा करें।'

(५) एकादशीकी रात्रिमें जागरण कर एकादशी-कथाका श्रवण करना चाहिये। आलस्य त्यागकर प्रसन्नतापूर्वक उत्साहसहित षोडशोपचारसे भगवान्का पूजन, प्रदक्षिणा, नमस्कार करे। प्रत्येक पहरमें आरती करे। गीत, वाद्य तथा नृत्यके साथ जागरण कर 'गीता' और 'विष्णुसहस्रनाम'का पाठ करे।

(६) दशमी और एकादशीको त्यागी हुई क्रियाओंसहित द्वादशीको शरीरमें तेल भी न मले।

(७) द्वादशीको शुद्धचित्त होकर भगवान्से प्रार्थना करे—'हे गरुडध्वज! आज सब पापोंका नाश करनेवाली पुण्यमयी पवित्र द्वादशी तिथि मेरे लिये प्राप्त हुई है, इसमें मैं पारण करूँगा। आप प्रसन्न होइये।'

(८) तदनन्तर ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन कराकर स्वयं भोजन करे।
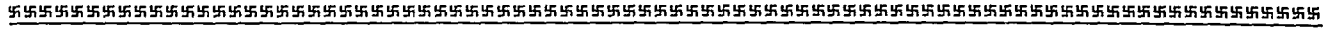
(९) इस प्रकार वर्षपर्यन्त एकादशीका व्रत करता रहे। वर्षकी चौबीस एकादशियोंके नाम और विधानमें थोड़ा अन्तर अवश्य है। जैसे आमला एकादशीको आँवलेकी पूजा होती है और देवशयनीको जलशायी विष्णुभगवान्‌की। परंतु सामान्य विधि समान है।

उद्यापन

(१) वर्ष पूरा होनेपर एकादशीव्रतका उद्यापन करे। मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षमें इसका उद्यापन किया जाता है।

(२) उद्यापनमें बारह विद्वान् ब्राह्मणों और पत्नीसहित आचार्यको आमन्त्रित करना चाहिये।

(३) यजमान स्नान आदिसे शुद्ध होकर श्रद्धा एवं इन्द्रियसंयमसहित आचार्य आदिका पूजन करे।

(४) आचार्यको चाहिये कि उत्तम रंगोंसे चक्र-कमलसंयुक्त सर्वतोभद्रमण्डल बनाये। जिसे श्वेत वस्त्रसे आवेष्टित करे। फिर पञ्चपल्लव एवं पञ्चरत्नसे युक्त कर्पूर और अगरुकी सुगन्धसे वासित जलपूर्ण कलशको लाल कपड़ेसे वेष्टित करके उसके ऊपर ताँबेका पूर्णपात्र रखे। उस कलशको पुष्पमालाओंसे भी वेष्टित करे।

(५) इस कलशको सर्वतोभद्रमण्डलके ऊपर स्थापित करके कलशपर श्रीलक्ष्मीनारायणकी मूर्तिकी स्थापना करे।

(६) सर्वतोभद्रमण्डलमें बारह महीनोंके अधिपतियोंकी स्थापना करके उनका पूजन करना चाहिये।

(७) मण्डलके पूर्वभागमें शुभ शङ्खकी स्थापना करे और कहे—'हे पाञ्चजन्य! आप पहले समुद्रसे उत्पन्न हुए, फिर भगवान् विष्णुने अपने हाथोंमें आपको धारण किया, सम्पूर्ण देवताओंने आपके रूपको सँवारा है। आपको नमस्कार है।'

(८) सर्वतोभद्रमण्डलके उत्तरमें हवनके लिये वेदी बनाये और संकल्पपूर्वक वेदोक्त मन्त्रोंसे हवन करे।

(९) फिर भगवान् विष्णुकी प्रतिमाका स्थापन, पूजन और परिक्रमा करे। ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर नमस्कार करे।

(१०) तदुपरान्त ब्राह्मणों और आचार्यको वैदिक मन्त्रोंका जप करना चाहिये।

(११) जपके अन्तमें कलशके ऊपर भगवान् विष्णुकी स्थापना करनी चाहिये और विधिपूर्वक पूजा तथा स्तुति करे।

(१२) घृतयुक्त पायसकी आहुति देनेके बाद एक सौ पलाशकी समिधाएँ घीमें डुबोकर हवन करे जो अँगूठेके सिरेसे तर्जनीके सिरेतक लम्बाईकी हों।

(१३) इसके बाद तिलकी आहुतियाँ दी जानी चाहिये।

(१४) इस वैष्णव होमके बाद ग्रहयज्ञ करे, इसमें भी समिधाहोम, चरुहोम और तिलहोम होना चाहिये।

(१५) फिर ब्राह्मणों एवं आचार्यसे स्वस्तिवाचन कराकर दक्षिणा और दान दे। जिसमें अन्न, वस्त्र, गाय, धन, कलश एवं स्वर्णका यथाशक्ति दान किया जाय।

इस प्रकार एकादशीव्रतका विधान है। इस अखण्ड एकादशीव्रतको करनेसे मनुष्यकी सौ पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है। जागरणकी रात्रिमें जागरण करते समय नृत्य करनेसे भगवान् स्वयं भक्तके साथ नृत्य करते हैं।

छब्बीस एकादशियोंके नाम

चैत्र		वैशाख		ज्येष्ठ		आषाढ़		श्रावण		भाद्रपद		आश्विन		कार्तिक		मार्गशीर्ष		पौष		माघ		फाल्गुन		पुरुषोत्तममास	
पापमोचनी	कामदा	वरूथिनी	मोहिनी	अपरा	निर्जला	योगिनी	विष्णुशयनी	कामिका	पुत्रदा	अजा	पद्मा	इन्दिरा	पापांकुशा	रमा	प्रबोधिनी	उत्पन्ना	मोक्षदा	सफला	पुत्रदा	षट्तिला	जया	विजया	आमलकी	कमला	कामदा
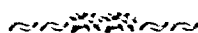
सर्वारिष्टविनाशक प्रदोषव्रत

(डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी 'रत्नमालीय')

इस अपार, असार संसारमें शिवस्मरण ही सार-स्वरूप है। संसार-चक्रमें भोगी जानेवाली बहुविध व्यथाओं और अन्तकके कठोरतम प्रहारोंको नष्ट कर देनेका एकमात्र साधन यही है। अतः सर्वप्रथम मैं उन प्रभुके चरणोंमें अपना सिर झुकाता हूँ—

नमामि शम्भुं पुरुषं पुराणं नमामि सर्वज्ञमपारभावम्।
नमामि रुद्रं प्रभुमक्षयं तं नमामि शर्वं शिरसा नमामि॥
नमामि गौरीप्रियमव्ययं तं नमामि नित्यं क्षरमक्षरं तम्।
नमामि चिद्रूपममेयभावं त्रिलोचनं तं शिरसा नमामि॥

दान एवं रणमें अप्रतिम, मङ्गलमूर्ति, आशुतोष, अभयङ्कर शङ्करके प्रीतिविधायक व्रतोंमें महाशिवरात्रि और प्रदोषव्रतकी महिमा वर्णनातीत है। रामनवमी, कृष्ण-जन्माष्टमी और एकादशीव्रतोंकी तरह सम्पूर्ण भारतवर्षमें इनका व्यापक प्रचार है। शिवाराधनके क्रममें प्रदोषकाल परम पवित्र माना गया है। दिवसावसान और रात्रि-समागमके मध्यका समय ही प्रदोषकाल है। **'प्रदोषो वै रजनीमुखम्।'** प्रदोषकालिक व्रतानुष्ठान होनेके कारण इस व्रतका नाम है—'प्रदोषव्रत'। इसका अनुष्ठान त्रयोदशी तिथिको होता है। इस व्रतका निष्ठापूर्वक आचरण करनेसे निर्धन धनवान्, मूर्ख विद्वान्, पुत्रहीन पुत्रवान् और म्रियमाण आयुष्मान् हो जाते हैं। भाग्यहीना बालिकाएँ सुलक्षणवती, विधवाएँ धर्मवती और सुहागिनें अखण्ड सौभाग्यवती हो जाती हैं। शास्त्रोंमें इस व्रतकी बड़ी महिमा गायी गयी है तथा लोक-मानसमें इसके प्रति दृढ़ आस्था बद्धमूल है। स्कन्दपुराणके अनुसार जो लोग प्रदोषकालमें अनन्य भक्तिपूर्वक भगवान् सदाशिवकी पूजा करते हैं, उन्हें धन-धान्य, पुत्र-कलत्र, सुख-सौभाग्यकी प्राप्ति और नित्य वृद्धि होती है—

ये वै प्रदोषसमये परमेश्वरस्य
कुर्वन्त्यनन्यमनसोऽङ्घ्रिसरोजपूजाम्।
नित्यं प्रवृद्धधनधान्यकलत्रपुत्र-
सौभाग्यसम्पदधिकास्त इहैव लोके॥

(प्रदोषस्तोत्र ३)

ऐसी मान्यता है कि समस्त देवगण इस कालमें भगवान् शङ्करके पूजनके निमित्त नित्य कैलास-शिखरपर पधारते हैं। भगवती सरस्वती वीणा बजाकर, इन्द्र वंशी धारणकर, ब्रह्मा ताल देकर, महालक्ष्मी सुन्दर गाना गाकर, भगवान् विष्णु गम्भीर मृदङ्ग बजाकर, देवगणसहित नित्य अवस्थित रहते हैं और भगवान् सदाशिवकी सेवा करते रहते हैं तथा गन्धर्व, सूर्य, यक्ष, नाग, सिद्ध, साध्य, विद्याधर, अप्सरासमूह और भक्तगण प्रदोषकालमें भगवान् शिवके पास चले आते हैं।

अनुष्ठान-विधि—प्रदोषव्रतका अनुष्ठान करनेवाले साधकको त्रयोदशीको दिनभर भोजन नहीं करना चाहिये। सायंकाल सूर्यास्तसे तीन घड़ी पूर्व स्नानादिसे निवृत्त होकर श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिये। पूजन-स्थलको स्वच्छ जल एवं गोबरसे लीपकर वहाँ मण्डप बना लेना चाहिये। उस स्थानपर पाँच रंगोंके मिश्रणसे पद्मपुष्पकी आकृति बनाकर कुशका आसन बिछाकर उसपर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठना चाहिये। पुनः भगवान् शङ्करकी दिव्य मूर्तिका ध्यान करना चाहिये। ध्यानकालमें एकाग्रचित्त होकर संकल्प करके भगवान् शङ्करसे निवेदन करना चाहिये कि 'हे भगवन्! आप सम्पूर्ण पापोंके नाशहेतु प्रसन्न हों। शोकरूपी अग्निमें दग्ध, संसारके भयसे भयभीत एवं अनेक रोगोंसे

आक्रान्त इस अनाथकी रक्षा कीजिये। हे स्वामिन्! आप पार्वतीजीके साथ पधारकर मेरी पूजा ग्रहण कीजिये।' '**ॐ उमामहेश्वराभ्यां नमः**' इस मन्त्रसे भगवान् शिव और पार्वतीका आवाहन करना चाहिये। अर्घ्य, पाद्य-दानादिके पश्चात् पञ्चामृत और शुद्ध जलसे स्नान कराना चाहिये। तत्पश्चात् वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, द्रव्य और आभूषण आदि अर्पित करना चाहिये। पुष्पोंमें मन्दार, कमल, कनेर, धतूरा और बिल्वपत्र समर्पित किये जाने चाहिये। तत्पश्चात् धूप, दीप, नैवेद्य निवेदित कर ताम्बूल चढ़ाकर आरती करनी चाहिये। अन्तमें पञ्चाक्षर मन्त्र—'**नमः शिवाय**' का जप करना चाहिये। पूजाकी समाप्तिके बाद ब्राह्मणभोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये।

प्रदोषव्रत-सम्बन्धित कथाएँ—इस पुण्यव्रतका अनुष्ठान कर कोटि-कोटि आर्तजन अथाह भवसागरके दुःख—बड़वानलको निष्प्रभ बनानेमें कृतकृत्य हो चुके हैं। फिर भी इसका माहात्म्य-वर्णन करनेवाली दो-एक घटनाएँ अति प्रसिद्ध हैं। एक आख्यान यहाँ प्रस्तुत है—

शुचिव्रत-उपाख्यान

प्राचीन कालमें शुभ संस्कारसम्पन्ना एक दरिद्र ब्राह्मणी किसी ग्राममें निवास करती थी। संत एवं अतिथि-सेवामें उसका मन स्वाभाविक रूपमें प्रमोद प्राप्त करता था। उसके दो पुत्र थे, जिनका परिपालन वह अत्यन्त प्रीतिपूर्वक करती थी। पूर्वकृत पुण्योदयसे एक दिन भक्तशिरोमणि शाण्डिल्य घूमते-घामते उस ग्राममें आ पहुँचे। कोमलचित्त कृपालु गन्तव्य-स्थलकी ओर प्रस्थान कर गये। कुछ ही क्षणोंका यह संयोग स्वातीनक्षत्रकी बूँदोंकी तरह पुण्यफलप्रद हुआ। '**क्षणमपि सज्जनसङ्गतिरेका, भवति भवार्णवतारिणि नौका।**' गुरुवरकी भावमूर्ति और उनके श्रीचरणोंका अहर्निश ध्यान करते हुए वे तीनों एक मन्दिरमें जाकर शिवार्चनका सात्त्विक आनन्द प्राप्त करने लगे। गुरुके उपदेशसे उनके ज्ञानचक्षु खुल गये थे। पूजा-अनुष्ठान करते हुए उनके चार मास व्यतीत हो गये। एक दिन शुचिव्रत अकेले ही गङ्गातटपर स्नान करने गया और नदीकी चञ्चल लहरोंमें जलक्रीड़ा करने लगा। उसी समय नदीकी धारामें बहता हुआ एक स्वर्ण-कलश उसे दिखायी पड़ा। तैरकर शुचिव्रतने उस कलशको उठा लिया और आनन्दमग्न होता हुआ अपनी माँके पास आया। भावविह्वल स्वरमें उसने अपनी माँसे कहा—'देखो माँ! आज मैं क्या लाया हूँ? अब हमलोगोंके कष्ट मिट जायँगे। देवाधिदेव शङ्करजीकी करुणा अपार है।' उस रत्नभरे कलशको देखकर ब्राह्मणीके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। उसने शुचिव्रतसे कहा—'देखो पुत्र! इस दिव्य धनराशिको तुम दोनों आपसमें बाँट लो।' शुचिव्रतने सहर्ष माताके आदेशको मान लिया, किंतु राजसुतने मातासे आग्रह किया—'हे दयामयी माँ! भाई शुचिव्रतको यह धन उसके पुण्य-परिपाकवश प्राप्त हुआ है, इसलिये इस धनपर उसका ही अधिकार है। मैं अपनी निर्धनतामें ही संतुष्ट हूँ। शिवचरणानुरागसे बढ़कर कोई सम्पत्ति नहीं है।' माताने भी 'जैसी तुम्हारी इच्छा'—कहकर उसके निश्चयमें कोई बाधा

उठी। उसने अपनी सहेलियोंको आगे बढ़कर वनसे शिव-पूजनार्थ दिव्य फूल तोड़ लानेको कहा। उनके चले जानेके बाद उसने राजकुमारकी अभ्यर्थना कर उसे आसन प्रदानकर उससे परिचय-विषयक प्रश्न किये। राजकुमारने गन्धर्व-कन्याको अपनी स्थितिसे अवगत कराते हुए कहा—'हे कल्याणि! मैं विदर्भनरेशका पुत्र हूँ। मेरे माता-पिता दिवंगत हो चुके हैं। अवसर पाकर शत्रुओंने मुझे राज्यच्युत कर दिया है। मैं जंगलमें अपनी धर्ममाताके साथ जीवन-यापन कर रहा हूँ।' सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर गन्धर्व-राजकन्या प्रसन्न हो उठी और उसने उससे विवाह-विषयक अपनी मनोऽभिलाषा प्रकट करते हुए कहा—'हे राजपुत्र! मैं विद्रविक नामक गन्धर्वकी पुत्री अंशुमती हूँ। मेरे चित्तमें आपकी छवि बस गयी है, अतः मैं आपकी चिरसङ्गिनी बनना चाहती हूँ।' राजकुमार उसका प्रेम-प्रस्ताव सुनकर प्रसन्न तो हुआ, किंतु उसने गन्धर्व-कन्यासे कहा—'देवि! आपका प्रस्ताव मनोरम तो है, किंतु कहाँ तो आप एक गन्धर्व-कन्या और कहाँ मैं एक निर्वासित राजकुमार! तथा दूसरा वैवाहिक सम्बन्ध माता-पिताकी सहमतिसे ही सम्पन्न होना चाहिये।' उसका विवेकसंगत उत्तर सुनकर कन्याने उसकी धर्मबुद्धिकी सराहना की तथा कहा कि वह गन्धर्वराजकी अनुमति लेकर ही ऐसा करेगी। वे उसके चयनको सहर्ष स्वीकार कर लेंगे। उसने अपने गलेका हार राजकुमारको पहनाते हुए कहा—'हे पुरुषप्रवर! कल आप इसी समय यहाँ उपस्थित हों। मैं पिताजीके साथ चली आऊँगी।'

दूसरे दिन शुचिव्रत, उसकी माँ तथा राजकुमारके वहाँ पहुँचनेपर गन्धर्वराजने अपनी कन्याका पाणिग्रहण कराते हुए राजकुमारसे कहा—'हे पुत्र! चिन्ता मत करो। भगवान् शङ्करने मुझे तुम्हारी सहायता करनेका आदेश देते हुए तुम्हारे बारेमें सब कुछ बता दिया है। मैं सब प्रकारसे तुम्हारी सहायता करूँगा।' हर्ष-गद्गद राजकुमार और उसकी ब्राह्मणी माताने गन्धर्वराजका आभार माना और शिवकृपासे राजकुमारने अपना नष्ट वैभव पुनः प्राप्त कर लिया। उसने शुचिव्रतको अपना मन्त्री बना लिया तथा अपनी पालिका माताको राजमाताके पदपर प्रतिष्ठित किया। उन लोगोंके दिन सानन्द बीतने लगे।

शिवकृपासे अभ्युदय-प्राप्तिविषयक ऐसी अनेक घटनाएँ हमारे धार्मिक वाङ्मय एवं लोक-मानसमें लिखित-अलिखित रूपमें भरी पड़ी हुई हैं। यहाँ एक घटनामात्रका उल्लेख किया गया।

अस्तु, प्रदोषव्रत प्राणिमात्रके लिये अभीष्टप्रद एवं भुक्ति-मुक्ति-विधायक है। जो लोग इस व्रतका आचरण नहीं करते, वे ही दुःख-दारिद्र्य-महाजालमें फँसे रहते हैं—

ये नार्चयन्ति गिरिशं समये प्रदोषे
ये नाऽर्चितं शिवमपि प्रणमन्ति चान्ये।
एतत् कथां श्रुतिपुटैर्न पिबन्ति मूढा-
स्ते जन्मजन्मसु भवन्ति नरा दरिद्राः॥

(प्रदोषस्तोत्र)

अर्थात् जो लोग प्रदोषकालमें भगवान् शङ्करकी सेवा नहीं करते और जो लोग पूजा किये गये शिवको प्रणामतक नहीं करते, इतना ही नहीं, शिवकथाका भी अपने कर्णपुटोंसे पान नहीं करते, वे लोग जन्म-जन्मान्तरमें दरिद्र होते हैं। व्रतान्तर्गतपूजन-समाप्ति-क्रममें अग्राङ्कित स्तोत्र-पाठद्वारा भगवान् शिवका जयकार करना चाहिये—

जय देव जगन्नाथ जय शङ्कर शाश्वत।
जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित॥
जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद।
जय नित्यनिराधार जय विश्वम्भराव्यय॥
जय विश्वैकवन्द्येश जय नागेन्द्रभूषण।
जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर॥
जय कोट्यर्कसंकाश जयानन्तगुणाश्रय।
जय भद्र विरूपाक्ष जयाचिन्त्य निरञ्जन॥
जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभञ्जन।
जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारण प्रभो॥
प्रसीद मे महादेव संसारार्तस्य खिद्यतः।
सर्वपापक्षयं कृत्वा रक्ष मां परमेश्वर॥

(प्रदोषस्तोत्र)

हे जगन्नाथ (समस्त जगत्के स्वामिन्)! हे देव! आपकी जय हो। हे शाश्वत शङ्कर (सर्वदा कल्याण करनेवाले)! आपकी जय हो। हे सर्वसुराध्यक्ष (समस्त देवताओंके अध्यक्ष)! आपकी जय हो। हे सर्वसुरार्चित (समस्त देवताओंसे अर्चित)! आपकी जय हो। हे सर्वगुणातीत (सभी गुणोंसे अतीत)! आपकी जय हो। हे सर्ववरप्रद

(सबको वर प्रदान करनेवाले)! आपकी जय हो। हे नित्य-निराधार (नित्य निराधार रहनेवाले)! आपकी जय हो। हे अविनाशी विश्वम्भर! आपकी जय हो। हे विश्वैकवन्द्येश (समस्त विश्वके एकमात्र वन्दनीय परमात्मन्)! आपकी जय हो। हे नागेन्द्रभूषण (नागेन्द्रको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले)! आपकी जय हो। हे गौरीपते! आपकी जय हो। हे चन्द्रार्धशेखर (अपने भालदेशमें अर्धचन्द्रको धारण करनेवाले) शम्भो! आपकी जय हो। हे कोट्यर्कसंकाश (करोड़ों सूर्यके समान दीप्तिवाले)! आपकी जय हो। हे अनन्त गुणाश्रय (अनन्त गुणोंके आश्रय परमात्मन्)! आपकी जय हो। हे विरूपाक्ष (तीन नेत्रोंवाले कल्याणकारी भगवान् शिव)! आपकी जय हो। हे अचिन्त्य! हे निरञ्जन! आपकी जय हो। हे नाथ! आपकी जय हो। हे भक्तोंकी पीडाको विनष्ट करनेवाले कृपासिन्धो! आपकी जय हो। हे दुस्तर संसार-सागरसे पार लगानेवाले प्रभो! आपकी जय हो। हे महादेव! मैं संसारमें बहुत दुःखी हूँ। मुझे बड़ी चिन्ता है, मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाइये। हे परमेश्वर! मेरे सारे पापोंका नाश करके मेरी रक्षा कीजिये।

व्रतोद्यापन-क्रममें गणेश-पूजनसहित उमा-महेश्वरका विधिवत् पूजन सम्पन्न कर शिव-पार्वतीके उद्देश्यसे १०८ बार मन्त्रोच्चारपूर्वक अग्निमें खीरसे हवन करना चाहिये। हवनोपरान्त ब्राह्मण-भोजन कराकर यथाशक्ति दान-दक्षिणादिसे विप्रोंको संतुष्ट करना चाहिये और ब्राह्मणोंको 'व्रत' पूर्ण हो, इस उद्देश्यसे आशीर्वाद देना चाहिये।
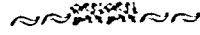
रविवार और उसके व्रत-नियमादि

'रवि'का पर्यायवाचक शब्द 'सूर्य' है। अतः रविवारका
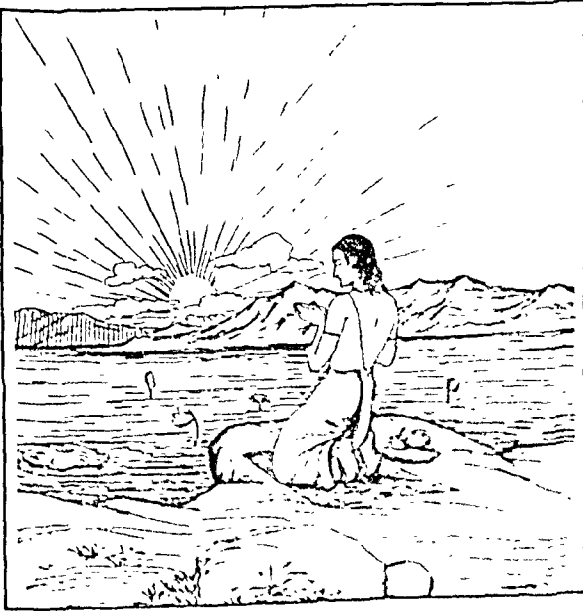
उपयोग किया जाना उत्तम है।

७-संकटापन्न परिस्थितिमें निर्जलरूपमें व्रत किया जाता है। व्रतमें संयमका विशेष महत्त्व है।

इस प्रकार उक्त नियमों, अपनी परिस्थिति और शारीरिक शक्तिका ध्यान रखते हुए संयत होकर सभी लोगोंको भगवान् सूर्यका व्रत करना चाहिये। साथ ही प्रतिदिन अथवा रविवारको तो अवश्य ही स्नानादिसे निवृत्त होकर 'आदित्यहृदयस्तोत्र'का पाठ करना चाहिये। इस व्रतसे मनुष्य रोगरहित तथा दीर्घजीवी होता है। सभी प्रकारके रक्तविकार-सम्बन्धी रोग—फोड़ा, फुंसी, दाद, खाज, उकवत, कुष्ठ आदि रविवार व्रतसे दूर होते हैं। इस व्रतसे रोगोंका उन्मूलन ही नहीं, अपितु मनुष्यके शत्रुओंका भी नाश होता है। आदित्यहृदयके निम्नाङ्कित श्लोकमें भगवान् सूर्यको 'शत्रुघ्न' कहा गया है। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि वे शत्रुओंका भी नाश करते हैं—

तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने।
कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः॥

(वा०रा० ६।१०५।२०)

अर्थात् अन्धकार, शीत, शत्रु एवं कृतघ्नके नाशक, विशाल आत्मावाले और ज्योतियोंके पति—प्रकाशाधीश्वर देवके लिये नमस्कार है। इस सम्बन्धमें यह भी कहा गया है कि रावणके साथ युद्ध करते हुए भगवान् रामको महर्षि अगस्त्यने उपदेश दिया और कहा कि श्रीराम! आप सम्पूर्ण शत्रुओंका नाश करनेवाले भगवान् सूर्यकी पूजा, जप, आदित्यहृदयस्तोत्रका पाठ और उन्हींका ध्यान करें। ये ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव और प्रजापति हैं। ये ही सर्वशोकनिवारक एवं समग्र चिन्ता-विनाशक हैं। सूर्यनारायणकी पूजा करनेसे आप शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेंगे। भगवान् श्रीरामने इस उपदेशको ग्रहण किया और वैसा ही आचरण किया। फल जो हुआ सभी जानते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी विजयी हुए। इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि भगवान् सूर्यकी पूजा, उनका व्रत रोगोंके साथ-ही-साथ शत्रुओंका भी नाश करता है। इसलिये सभीको यह व्रत करना चाहिये।

यह बात अवश्य है कि कुछ दिनोंतक व्रतके दूसरे दिन कुछ दुर्बलता प्रतीत होती है अथवा कुछ लोगोंको लवणहीन भोजन स्वादिष्ट नहीं प्रतीत होता है। कुछ लोग दो-चार बार व्रत करनेके पश्चात् उसे छोड़ देते हैं, परंतु यह उचित नहीं है। अच्छे कार्योंमें कठिनाइयोंका उपस्थित होना स्वाभाविक होता है। विघ्न-बाधाओंके आनेपर भी आरम्भ किया हुआ व्रत चालू रखना चाहिये। इस व्रतका फल व्रत करनेवालेको अवश्य मिलता है। यह शतशोऽनुभूत एवं प्रत्यक्षतः दृष्ट है। सभी देवी-देवता हैं, पर भगवान् सूर्य साक्षात् देव हैं। कितने रोग ऐसे हैं, जो इनकी किरणोंके सेवनसे दूर हो जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सामें सूर्यकी किरणोंका बहुत ही आश्रय लिया जाता है। कुष्ठादि रोगोंके कारणोंमें पापकर्म भी कारण गिनाया गया है। कुष्ठरोगकी निवृत्तिके लिये सूर्यव्रत, गङ्गास्नान आदि चिकित्सा-विधान हैं। कुष्ठरोग रक्तदोषसे होता है। रक्तदोषमें भगवान् सूर्यका व्रत और लवणपरिवर्जन बहुत ही लाभप्रद है। सूर्य-पूजन और सूर्य-व्रतकी शास्त्रकारोंने बड़ी महिमा गायी है। सूर्यका दिवस रविवार ही है। अतः सूर्यसम्बन्धित व्रत, पूजन आदि सब रविवारको सम्पन्न किया जाना चाहिये। रविवासर और सूर्यका बहुत बड़ा सम्बन्ध है।

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥

भगवान् नारायण तपे हुए स्वर्ण-जैसा कान्तिमान् शरीर धारण किये हुए हैं। उनके गलेमें हार एवं सिरपर किरीट विराजमान है। उनके कान मकरकुण्डलसे सुशोभित हैं। वे कंगनसे अलंकृत अपने दोनों हाथोंमें भक्तभयनिवारणके लिये शङ्ख-चक्र धारण किये हुए हैं। वे सूर्यमण्डलमें कमलासनपर बैठे हैं। उनका सदा ध्यान करना चाहिये।

सात वारोंके व्रतोत्सवका अध्यात्म-विज्ञान

(डॉ० श्रीसुरेशनन्दनप्रसाद सिंहजी 'नीलकंठ')

निजवर्णाश्रमाचारनिरतः शुद्धमानसः।
अलुब्धः सत्यवादी च सर्वभूतहिते रतः॥
पूर्वं निश्चयमाश्रित्य यथावत् कर्मकारकः।
अवेदनिन्दको धीमानधिकारी व्रतादिषु॥

(स्कन्दपुराण)

व्रतके अधिकारी कौन हैं? इसका उत्तर देते हुए धर्मशास्त्रोंकी आज्ञा है कि जो वर्णाश्रमके आचार-विचार (अर्थात् धर्म-कर्म)-में रत रहते हैं, निष्कपट, निर्लोभ, सत्यवादी, सम्पूर्ण प्राणियोंका हित चाहनेवाले, वेदके अनुयायी, बुद्धिमान् तथा पहलेसे संकल्प करके यथावत् कर्म करनेवाले हों, ऐसे मनुष्य व्रतके अधिकारी होते हैं।

वैदिक ऋषियोंने व्रतोंके गूढ़ गुण-गुम्फित लाभप्रद तत्त्वोंको अनुभवजन्य कसौटीपर निरख-परखकर देखा था। उन तत्त्वोंसे अनभिज्ञ व्यक्तियोंको परिचित करवाया था। तत्त्वदर्शी महर्षियोंने इनमें विज्ञानके सैकड़ों अंश संयुक्त कर दिये हैं, जो आजतक सर्वसाधारणमें लोकोक्तियोंके रूपमें प्रचलित हैं। लोकव्यापक कथन है—

'मनुष्योंके कल्याणके लिये व्रत स्वर्गके सोपान अथवा संसार-सागरसे तार देनेवाली नौकाएँ हैं। इनसे संकल्प-शक्ति बढ़ती है, अन्तःकरण शुद्ध होता है, बुद्धि, विचार, ज्ञानतन्तु विकसित होते हैं और अन्तस्तलमें सच्चिदानन्द परमात्माके प्रति भक्ति, श्रद्धा और तल्लीनताका संचार होता है।'

लोकप्रसिद्धिमें 'व्रत' और 'उपवास' दो हैं और ये कायिक, वाचिक, मानसिक, नित्य, नैमित्तिक, काम्य, एकभुक्त, अयाचित, मितभुक्, चान्द्रायण और प्राजापत्यके रूपमें अनुष्ठित होते हैं। सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो व्रत, पर्व और त्योहारमें भेद भी है। इन तीनोंमें तीन गुण परस्पर ओत-प्रोत हैं। विशेषता यह है कि प्रत्येकमें एक गुण प्रधान है और दो आंशिक रूपसे मिश्रित हैं। यथा—

व्रतमें सत्त्वगुण प्रधान है और रज तथा तम अंशतः मिश्रित हैं। पर्वमें रजोगुण प्रधान है और सत्त्व तथा तम अंशतः मिश्रित हैं। त्योहारमें तम प्रधान गुण है और रज तथा सत्त्व अंशतः मिश्रित हैं। ये किस प्रकार मिश्रित हैं, यह इनके स्वरूपज्ञानके द्वारा जाना जा सकता है।

धर्मशास्त्रमें सात वारोंके स्वरूप वर्णित हैं। स्वरूपके अनुरूप ही उनके व्रत-विधान हैं। ये सर्वथा वैज्ञानिक हैं। वस्तुतः सात वारोंका उद्भव, स्वरूप, नाम और गुण पूर्णरूपेण वैज्ञानिक है। उपहारमयी वैदिक संस्कृतिका यह मौलिक उपहार तत्त्वदर्शी महर्षियोंकी एकान्त साधना और नक्षत्र-लोक अवलोकनका प्रथम ज्ञान-पुष्प है और विश्व-समुदायके लिये अनुपम भेंट है। संस्कृत भाषाके प्रकाण्ड पंडित मैक्समूलर-जैसे पाश्चात्त्य विद्वानोंने मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा करते हुए स्वीकार किया है कि 'दिनोंके नाम और उनके क्रमका जनक भारत है और भारतसे ही सम्पूर्ण विश्वमें इसका प्रचार-प्रसार हुआ है, चाहे जब भी हुआ हो। इसी कारण सम्पूर्ण विश्वमें ये नाम और क्रम एक-जैसे हैं।'

वैदिक 'नक्षत्र विज्ञान' (Astronomy) अत्यन्त विकसित है। वैदिक ऋषियोंने सर्वप्रथम सूर्य और चन्द्रकी स्थिति एवं गतिका ही निरीक्षण नहीं किया, अपितु बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि नामक अन्य पाँच ग्रहोंकी गति एवं स्थितिका भी निरीक्षण किया। उन्हींके आधारपर सात वारोंका नामाङ्कन किया। रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि—ये ही नाम समस्त विश्वमें अपनी-अपनी भाषामें प्रचलित हैं।

वार (दिन)

सूर्योदयसे ही वार-प्रवेश माना जाता है। कालमाधव, ब्रह्मस्फुट-सिद्धान्त, ज्योतिर्विदाभरण प्रभृति ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थोंमें स्पष्ट कहा गया है कि 'विश्वकी उत्पत्ति सूर्यसे ही हुई है, अतः वारप्रवेश भी सूर्योदयसे ही होता है।' सिद्धान्त-शिरोमणि, पुलस्तिसिद्धान्त तथा वसिष्ठसंहिताका असंदिग्ध मत है कि 'सूर्यके दर्शनका नाम दिन और अदर्शनका नाम रात्रि है। अतः दिनका आरम्भ सूर्योदयसे होता है।'

चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको जब सब ग्रह मेषराशिके आदिमें थे, उसी दिन इस कल्पका सर्वप्रथम 'सूर्योदय' देखा गया। एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतकका काल

अहोरात्र कहा जाता है। इसका प्रथम भाग दिन और द्वितीय भाग रात्रि कहलाती है। कालकी सूक्ष्म गणनाके लिये दिन और रात्रिको छ:-छ: भागोंमें गणितीय प्रणालीके द्वारा विभाजित किया गया है। प्रत्येक भागको लग्न कहते हैं। इस प्रकार १२ लग्नोंका एक अहोरात्र होता है। लग्नके आधे भागको होरा कहते हैं। इस प्रकार एक अहोरात्र २४ होराका होता है। इसे पाश्चात्त्य विद्वानोंने 'आवर' (HOUR)-का नाम दिया है जो वास्तवमें 'होरा'का विकृत रूप है।

ज्योतिष-शास्त्रका कहना है—'ब्रह्माण्डके मध्य आकाश है। उसमें सबसे ऊपर नक्षत्र-कक्षा है। अपने तेजोमय रूपके कारण सृष्टिके प्रथम होराके स्वामी सूर्य हैं। इसके पश्चात् अपनी कक्षाके अनुसार प्रत्येक ग्रह अपने-अपने क्षेत्रमें होराके स्वामी हैं।'

वारोंके नाम कैसे निर्धारित हुए, इस विषयमें आगे कहा गया है—'जब प्रथम होराके स्वामी सूर्य हुए, तब क्रमश: शुक्र, बुध, चन्द्रमा, शनि, बृहस्पति तथा मंगल—ये छ: अगली छ: होराओंके स्वामी होते गये। इस क्रमसे चौबीसवीं होराका स्वामी बुध होता है और यहीं प्रथम अहोरात्र समाप्त हो जाता है। पचीसवीं होराका स्वामी क्रमके अनुसार चन्द्रमा है। यह पचीसवीं होरा दूसरे अहोरात्रके दिनकी प्रथम होरा है, अत: इस अहोरात्रके प्रथम अधिष्ठाता चन्द्रमा ग्रहके नामपर दिनका नाम चन्द्रवार—सोमवार है। इसी क्रमसे अहोरात्रकी प्रथम होराके अधिष्ठाता ग्रहके नामपर अहोरात्र अर्थात् दिन या दिवसके नाम पड़ते गये। यही क्रम सृष्टिके आरम्भसे आजतक चला आ रहा है जिसे सम्पूर्ण विश्वने अपना लिया है।'

सात वारके सात व्रत

सात ग्रहोंकी पूजा-उपासना वैदिक ऋषि भी किया करते थे। कालान्तरमें इन ग्रहोंके स्वरूप और व्रत-विधान भी निर्धारित कर दिये गये।

सूर्यव्रत दीर्घायु स्वास्थ्यकी प्राप्ति, चर्मरोग, कुष्ठरोग, मधुमेह आदिसे निवृत्तिके लिये किया जाता है। इसका प्रारम्भ कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ और वैशाखमासमें करना चाहिये। नमक और तेलरहित भोजन करनेका संकल्प लेकर नित्य-प्रति सूर्यभगवान्‌को अर्घ्य देना चाहिये। सूर्यव्रत बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेशमें कार्तिक शुक्ल षष्ठीको किया जाता है। निराहार और निर्जल रहकर संध्या और प्रात: सूर्य-अर्घ्यके पश्चात् ही पारण किया जाता है। यह व्रत छठव्रतके नामसे जाना जाता है। नित्यकर्म—सन्ध्योपासनामें मुख्य रूपसे सवितादेवकी आराधना ही होती है।

सौरसिद्धान्तमें भगवान् सूर्यको अपने रथपर आसीन अविश्रान्तभावसे मेरुकी प्रदक्षिणा करते हुए वर्णित किया गया है। उनके रथमें सात उज्ज्वल घोड़े जुते रहते हैं। यह रथ अहर्निश पूर्णवेगसे चलता रहता है। सूर्य-उपासना बारह महीनोंमें बारह नामसे की जाती है। ये ही द्वादश आदित्य कहलाते हैं।

दाम्पत्य-सुख तथा पुत्रादिकी प्राप्तिके लिये सोमवार-व्रतके द्वारा शंकर-पार्वतीकी पूजा-आराधना की जाती है। श्रावणमासमें सोमवार-व्रत करनेका प्रचलन सम्पूर्ण भारतवर्षमें है।

'प्रतिमामयूख'में चन्द्ररथ और चन्द्रस्वरूपका भी वर्णन है—

श्वेत: श्वेताम्बरधरो दशाश्व: श्वेतभूषण:।
द्विभुजश्च गदापाणि: कर्तव्यो वरद: शशी॥

श्वेतवर्ण, श्वेतवस्त्र और दस घोड़ोंके रथपर विराजमान, श्वेत आभूषणयुक्त, दो भुजाएँ और गदा हाथमें लिये चन्द्र-भगवान्‌की पूजा करनेसे तथा चान्द्रायण-व्रतका पालन करनेसे पापोंकी निवृत्ति एवं चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार मंगलवारके व्रत-देवता हनुमान्‌जी हैं जो बल, ज्ञान और ओज प्रदान करनेवाले हैं तथा सभी रोगों और पीड़ाको हरनेवाले हैं साथ ही प्रसन्न होनेपर रामजीसे मिला देनेवाले हैं। अत: व्रतोपासनाद्वारा उनकी आराधना करनी चाहिये। बुधवारके बुद्धिप्रदाता एवं वाणीके अधिष्ठाता बुध हैं, बृहस्पतिवारके आराध्य गुरु हैं। इस दिन विद्या-बुद्धि, ऋद्धि-सिद्धिदात्री श्रीलक्ष्मी का भी पूजन होता है। शुक्रवारका व्रत सुख-सम्पदाके लिये किया जाता है। इस दिन संतोषी माताकी भी पूजा की जाती है तथा संतोषी-व्रतका संकल्प लिया जाता है। शनिवारका व्रत शनि, राहु और केतु ग्रहोंकी कोप-शान्तिके लिये किया जाता है। महर्षि याज्ञवल्क्यने इन तीनों ग्रहोंके स्वरूपोंका भी वर्णन किया है।

सप्तदिवसव्रत और नक्षत्रव्रतमें तदधिष्ठाता देवताका पूजन करके व्रत-संकल्प लिया जाता है। स्मरण रहे कि नक्षत्रके उपवासमें जो तिथि हो, वही उस नक्षत्रके एकभुक्त या

नक्तव्रतमें लेनी चाहिये। नक्षत्रादिके व्रत अनिष्टकारी प्रभावकी शान्ति अथवा अभीष्टदाता ग्रहकी प्रसन्नताके लिये किये जाते हैं। सनातन संस्कृतिके पालन करनेवाले समस्त अध्यात्मवादी परिवारोंमें प्राय: नित्य-पूजा, नैमित्तिक पूजा, काम्य पूजा आदि व्रत, पर्व और त्योहारके रूपमें होती रहती है। पूजन-विधानमें सर्वत्र नवग्रह-शान्ति-पूजन करनेकी प्रथा है। ऐसा विश्वके किसी भी धर्म या सम्प्रदायमें विधि-विधानसे पूजन करनेका उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। वैदिक ऋषियोंने सप्त-दिवसोंके अनुसन्धान ही नहीं किये, अपितु नक्षत्रोंके साथ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षके पुरुषार्थ भी समाहित कर दिये हैं। तभी तो गृह-गृहमें हर व्रत-पूजन-विधानमें इस नवग्रह-शान्ति-मन्त्रका मङ्गलोच्चार अवश्य होता है—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु॥

श्रीगणेशचतुर्थीव्रत—माहात्म्य एवं व्रत-विधि

[चतुर्थीतिथिकी श्रेष्ठता]

शिवपुराणकी कथा है—श्वेतकल्पमें जब भगवान् शंकरके अमोघ त्रिशूलसे पार्वतीनन्दन दण्डपाणिका मस्तक कट गया, तब पुत्रवत्सला जगज्जननी शिवा अत्यन्त दु:खी हुईं। उन्होंने बहुत-सी शक्तियोंको उत्पन्न किया और उन्हें प्रलय मचानेकी आज्ञा दे दी। उन परम तेजस्विनी शक्तियोंने सर्वत्र संहार करना प्रारम्भ किया। सर्वत्र प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया। देवगण हाहाकार करने लगे। तब समस्त भयनाशिनी जगदम्बाको प्रसन्न करनेके लिये देवताओंने उत्तर दिशासे हाथीका सिर लाकर शिवा-पुत्रके धड़से जोड़ दिया। महेश्वरके तेजसे पार्वतीका प्रिय पुत्र जीवित हो गया।

अपने पुत्र गजमुखको जीवित देखकर त्रैलोक्यजननी शिवा अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उस समय दयामयी पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवताओंने वहीं गणेशको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया।

उसी समय अत्यन्त प्रसन्न देवाधिदेव महादेवने अपने वीर पुत्र गजाननको अनेक वर प्रदान करते हुए कहा—'विघ्ननाशके कार्यमें तेरा नाम सर्वश्रेष्ठ होगा। तू सबका पूज्य है, अत: अब मेरे सम्पूर्ण गणोंका अध्यक्ष हो जा।'

तदनन्तर परम प्रसन्न भक्तवत्सल आशुतोषने गणपतिको पुन: वर प्रदान करते हुए कहा—'गणेश्वर! तू भाद्रपदमासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको चन्द्रमाका शुभोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है। जिस समय गिरिजाके सुन्दर चित्तसे तेरा रूप प्रकट हुआ, उस समय रात्रिका प्रथम प्रहर बीत रहा था। इसलिये उसी दिनसे आरम्भ करके उसी तिथिमें प्रसन्नताके

पूजा अवश्य करनी चाहिये तथा अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह व्रत अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय ही वह वस्तु प्राप्त हो जाती है; अत: जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, उसे तेरी सेवा अवश्य करनी चाहिये।'

'गणेशपुराण' में भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीको मध्याह्नकालमें भी आदिदेव गणेशके पूजनका माहात्म्य बताया गया है। कथा इस प्रकार है—गणेश-दर्शनकी तीव्र लालसासे शिवप्रिया लेखनाद्रिके एक रमणीय स्थानपर गणेशका ध्यान करते हुए उनके एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगीं। इस प्रकार बारह वर्षोंतक कठोर तप करनेपर गुणवल्लभ गुणेश संतुष्ट हुए और पार्वतीके सम्मुख प्रकट होकर उन्होंने उनके पुत्रके रूपमें अवतरित होनेका वचन दिया।

भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीका मध्याह्नकाल था। उस दिन चन्द्रवार, स्वातिनक्षत्र एवं सिंहलग्नका योग था। पाँच शुभ ग्रह एकत्र थे। जगज्जननी शिवाने गणेशजीकी षोडशोपचारसे पूजा की और उसी समय उनके सम्मुख अमित महिमामय, कुन्दधवल, षड्भुज, त्रिनयन भगवान् गुणेश पुत्ररूपमें प्रकट हो गये।

भक्तसुखदायक परमप्रभु गुणेशकी प्राकट्य तिथि होनेके कारण भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी दयाधाम गुणेशकी वरदा तिथि प्रख्यात हुई। उस दिन मध्याह्नकालमें भगवान् गणेशकी मृण्मयी मूर्तिकी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण पूजा एवं मङ्गलमूर्ति प्रभुके स्मरण, चिन्तन एवं नाम-जपका अमित माहात्म्य है। वह पुण्यमय तिथि अत्यन्त फलप्रदायिनी कही गयी है। चतुर्मुख ब्रह्माने अपने मुखारविन्दसे कहा है—'इस चतुर्थी-व्रतका निरूपण एवं माहात्म्य-गान शक्य नहीं।'

'मुद्गलपुराण' में भी आता है कि परम पराक्रमी लोभासुरसे त्रस्त होकर देवताओंने परम प्रभु गजाननसे उसके विनाशकी प्रार्थना की। दयाधाम गजमुख उस महान् असुरके विनाशके लिये परम पावनी चतुर्थीको मध्याह्न-कालमें अवतरित हुए, इस कारण उक्त तिथि उन्हें अत्यन्त प्रीतिप्रदायिनी हुई।

तिथियोंकी माता चतुर्थीकी उत्पत्ति, उनका तप और वर-प्राप्ति

श्रीगणेशको अत्यन्त प्रिय परम पुण्यमयी 'वरदा चतुर्थी' की उत्पत्तिकी पवित्रतम कथा 'मुद्गलपुराण' में प्राप्य है। वह अत्यन्त संक्षेपमें इस प्रकार है—

लोकपितामह ब्रह्माने सृष्टि-रचनाके अनन्तर अनेक कार्योंकी सिद्धिके लिये अपने हृदयमें श्रीगणेशका ध्यान किया। उसी समय उनके शरीरसे परा प्रकृति, महामाया, तिथियोंकी जननी कामरूपिणीदेवी प्रकट हुईं। उन परम लावण्यवती देवीके चार पैर, चार हाथ और चार सुन्दर मुख थे। उन्हें देखकर विधाता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

उन महादेवीने स्रष्टाके चरण-कमलोंमें प्रणाम कर अनेक स्तोत्रोंसे उनका स्तवन करनेके अनन्तर निवेदन किया—'ब्रह्माण्डनायक! मैं आपके शुभ अङ्गसे उत्पन्न हुई हूँ। आप मेरे पिता हैं। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें, मैं क्या करूँ? प्रभो! आपके पावन पद-पद्मोंमें मेरा बारम्बार प्रणाम है। आप मुझे कृपापूर्वक रहनेके लिये स्थान और विविध प्रकारके भोग्यपदार्थ प्रदान करें।'

लोकस्रष्टाने श्रीगणेशका स्मरण कर उत्तर दिया—'तुम अद्भुत सृष्टि करो।' और फिर प्रसन्नमन पिता ब्रह्माने उन्हें श्रीगणेशका '**वक्रतुण्डाय हुम्**'—यह षडक्षर-मन्त्र दे दिया।'

महिमामयी देवीने भगवान् वेदगर्भके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और फिर वे वनमें जाकर श्रीगणेशका ध्यान करते हुए उग्र तप करने लगीं। वे अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दिव्य सहस्र वर्षतक तप करती रहीं।

उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवदेव गजानन प्रकट हुए और कहा—'महाभागे! मैं तुम्हारे निराहार तपश्चरणसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँगो।'

परम प्रभुकी सुखद वाणी सुनकर महिमामयी माताने हर्षगद्गद कण्ठसे उनका स्तवन किया।

इससे अतिशय संतुष्ट हुए मूषकवाहनने पुनः कहा—'देवि! मैं तुम्हारे तप एवं स्तवनसे अत्यन्त संतुष्ट हूँ। तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो।'

साश्रुनयना देवीने परम प्रभु गजाननके पावनतम चरणोंमें प्रणाम कर निवेदन किया—'करुणानिधे! आप मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें। मुझे सृष्टि-सर्जनकी सामर्थ्य प्राप्त हो। मैं आपको सदा प्रिय रहूँ और मुझसे आपका कभी वियोग न हो।'

स्वीकृतिसूचक 'ओम्' का उच्चारण कर परम प्रभुने

वर प्रदान किया—'चतुर्विध फल-प्रदायिनी देवि! तुम मुझे सदा प्रिय रहोगी! तुम समस्त तिथियोंकी माता होओगी और तुम्हारा नाम 'चतुर्थी' होगा। तुम्हारा वामभाग 'कृष्ण' एवं दक्षिणभाग 'शुक्ल' होगा। निस्सन्देह तुम मेरी जन्मतिथि होओगी। तुम्हारेमें व्रत करनेवालेका मैं विशेषरूपसे पालन करूँगा और इस व्रतके समान अन्य कोई व्रत नहीं होगा।'

यह कहकर भगवान् गजमुख अन्तर्धान हो गये। तिथियोंकी माता चतुर्थी गणपतिका ध्यान करते हुए सृष्टि-रचना करने लगीं। सहसा उनका वामभाग कृष्ण और दक्षिणभाग शुक्ल हो गया। महाभाग्यवती शुक्लवर्णा अत्यन्त विस्मित हुईं। उन्होंने पुनः गणाध्यक्षका ध्यान करते हुए सृष्टि-रचनाका उपक्रम किया ही था कि उनके मुखारविन्दसे प्रतिपदा तिथि उत्पन्न हो गयी। इसी प्रकार नासिकासे द्वितीया, वक्षसे तृतीया, अंगुलीसे पञ्चमी, हृदयसे षष्ठी, नेत्रसे सप्तमी, बाहुसे अष्टमी, उदरसे नवमी, कानसे दशमी, कण्ठसे एकादशी, पैरसे द्वादशी, स्तनसे त्रयोदशी, अहंकारसे चतुर्दशी, मनसे पूर्णिमा और जिह्वासे अमावास्या तिथि प्रकट हुई।

सभी तिथियोंसहित दोनों चतुर्थियोंने भगवान् गजमुखके ध्यान और नाम-जपके साथ तपश्चरण प्रारम्भ किया। इस प्रकार उनके एक वर्षतक तप करनेपर भक्तवत्सल प्रभु विघ्नेश्वर प्रकट हुए। वे मध्याह्नमें शुक्ल-चतुर्थीके समीप पहुँचकर बोले—'वर माँगो'।

शुक्ल-चतुर्थीने आदिदेव गजमुखके चरणोंमें प्रणाम कर उनकी पूजा और स्तुति की। तदनन्तर उन्होंने कहा—'परमप्रभ गजमुख! मैं आपका वासस्थान होऊँ और आप श्रीगणेशको अत्यन्त प्रिय हुईं। उस दिन व्रतके साथ श्रीगणेशकी उपासना कर पञ्चमीको सविधि पारण करनेसे निश्चय ही मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं। व्रतीकी प्रत्येक कामना पूरी होती है और अन्तमें वह अतिशय सुखदायक गणेश-धामको प्राप्त होता है।

इसके अनन्तर भगवान् गणपतिने रात्रिके प्रथम प्रहरमें चन्द्रमाके उदित होनेपर कृष्ण-चतुर्थीके समीप पहुँचकर कहा—'महाभाग्यवती! तुम वर माँगो। मैं तुम्हारी अभिलाषा पूरी करूँगा।'

विघ्ननिघ्न प्रभुके दर्शन एवं उनके वचनसे प्रसन्न होकर भगवती कृष्ण-चतुर्थीने उनके मङ्गलमय चरणोंमें प्रणाम कर उनकी विधिपूर्वक पूजा की। फिर उनका स्तवन कर निवेदन किया—'मङ्गलमय लम्बोदर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें। मैं आपको सदा प्रिय रहूँ और मुझसे आपका वियोग कभी न हो। आप मुझे सर्वमान्य कर दें।'

कृष्ण-चतुर्थीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्ण वाणीसे प्रसन्न हो महोदरने वर प्रदान करते हुए कहा—'महातिथे! तुम मुझे सदा प्रिय रहोगी और तुमसे मेरा कभी वियोग नहीं होगा। चन्द्रोदय होनेपर तुमने मुझे प्राप्त किया है; अतएव चन्द्रोदयव्यापिनी होनेपर तुम मुझे अत्यधिक प्रिय होओगी। मेरे प्रसादसे तुम उस समय अन्न-जल त्यागकर उपासना करनेवालोंका संकट हरण करो। उस दिन व्रतोपवास करनेवालोंको तुम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ प्रदान करोगी। उनकी समस्त कर्मराशि ध्वस्त हो जायगी

लेना चाहिये। माघमें श्वेत तिल, फाल्गुनमें शर्करा, चैत्रमें पञ्चगव्य, वैशाखमें पद्मबीज (कमलगट्टा), ज्येष्ठमें गोघृत और आषाढ़में मधुका भोजन करना चाहिये।'

महिमामयी चतुर्थी व्रत करनेवालोंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। इस व्रतके प्रभावसे धन-धान्य और आरोग्यकी प्राप्ति होती है, समस्त आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं तथा भगवान् गणेशकी कृपासे परमार्थकी भी सिद्धि होती है। अतएव यदि सम्भव हो तो प्रत्येक मासकी दोनों चतुर्थी तिथियोंको व्रत और उपवाससहित श्रीगणेशजीका पूजन करे और यदि यह सम्भव न हो तो भाद्रपद-कृष्ण-चतुर्थी 'बहुला', कार्तिक-कृष्ण-चतुर्थी 'करका' (करवा) और माघ-कृष्ण-चतुर्थी 'तिलका' का व्रत कर ले। रविवार या मङ्गलवारसे युक्त चतुर्थी तिथिका अमित माहात्म्य है। इस प्रकारकी एक चतुर्थी-व्रतका सविधि पालन करनेसे वर्षभरके चतुर्थीव्रतोंका फल प्राप्त हो जाता है।

कृष्णपक्षकी प्राय: सभी चतुर्थी तिथियाँ कष्ट-निवारण करनेवाली हैं और उनमें चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थीमें व्रतकी पूजाका विधान किया गया है। यदि दोनों ही दिन चतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो तृतीयासे विद्धा पूर्वाका ही ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि **'मातृविद्धा गणेश्वरे'**—गणेश्वरके व्रतमें मातृतिथि (तृतीया)-से विद्धा चतुर्थी ग्रहण की जाती है—यह वचन मिलता है। यदि दोनों ही दिन चन्द्रोदयव्यापिनी न हो तो परा चतुर्थी लेनी चाहिये। (व्रतराज)

वर्षभरके चतुर्थी-व्रतोंकी संक्षिप्त विधि और उनका माहात्म्य

(१) चैत्रमासकी चतुर्थीको वासुदेवस्वरूप गणेशजीकी विधिपूर्वक पूजा कर ब्राह्मणको सुवर्णकी दक्षिणा देनेपर मनुष्य सम्पूर्ण देवताओंसे वन्दित हो क्षीराब्धिशायी श्रीविष्णुके सुखद लोकमें जाता है।*

(२) वैशाखमासकी चतुर्थीको संकर्षण गणेशकी पूजा कर ब्राह्मणोंको शङ्खका दान करना चाहिये। इसके प्रभावसे मनुष्य संकर्षण-लोकमें कल्पोंतक सुख प्राप्त करता है।

(३) ज्येष्ठमासकी चतुर्थीको प्रद्युम्नरूपी श्रीगणेशकी पूजा कर ब्राह्मणोंको फल-मूलका दान करनेसे व्रती स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है।

ज्येष्ठकी चतुर्थीको 'सतीव्रत' नामक एक दूसरा श्रेष्ठ व्रत होता है। इस व्रतका विधिपूर्वक पालन करनेसे स्त्री गजमुख-जननी शिवाके लोकमें जाकर उन्हींके समान आनन्द प्राप्त करती है।

(४) आषाढ़मासकी चतुर्थीको अनिरुद्धस्वरूप श्रीगणेशकी प्रीतिपूर्वक पूजा करके संन्यासियोंको तूँबीका पात्र दान करना चाहिये। इस व्रतको करनेवाला मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है।

रथन्तर-कल्पका प्रथम दिन होनेसे आषाढ़की चतुर्थीको एक दूसरा उत्तम व्रत होता है। उस दिन मनुष्य श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मङ्गलमूर्ति श्रीगणेशकी सविधि पूजा कर वह फल प्राप्त कर लेता है, जो देव-समुदायके लिये भी दुर्लभ है।

(५) श्रावणमासकी चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर मङ्गलमय श्रीगणेशजीके स्वरूपका ध्यान करते हुए उन्हें अर्घ्य प्रदान करे। फिर आवाहन आदि सम्पूर्ण उपचारोंसे उनकी भक्तिपूर्वक पूजा कर लड्डूका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। व्रत पूरा होनेपर व्रती स्वयं भी प्रसादस्वरूप लड्डू खाये और फिर रात्रिमें गणेशजीका पूजन कर पृथ्वीपर ही शयन करे। इस व्रतको करनेवाले मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी होती हैं और अन्तमें उसे गणेशजीका पद प्राप्त हो जाता है। त्रैलोक्यमें इसके समान अन्य कोई व्रत नहीं है।

श्रावण-शुक्ल-चतुर्थीको 'दूर्वागणपति' (सौरपुराण)-का व्रत बताया गया है। उस दिन प्रात:स्नानादिसे निवृत्त होकर सिंहासनस्थ चतुर्भुज, एकदन्त गजमुखकी स्वर्णमयी मूर्तिका निर्माण कराये और सोनेकी दूर्वा बनवाये। तदनन्तर सर्वतोभद्रमण्डलपर कलश-स्थापन करके उसमें सोनेकी दूर्वा लगाकर उसपर गणेशजीकी प्रतिमाको स्थापित करना चाहिये। मङ्गलमूर्ति गणेशजीको अरुण वस्त्रसे विभूषितकर सुगन्धित पत्र-पुष्पादिसे उनकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। आरती, स्तवन, प्रणाम और परिक्रमा कर अपराधोंके लिये क्षमा-याचना करे। इस प्रकार तीन या पाँच वर्षोंतक व्रतपालनसे समस्त कामनाएँ पूरी हो जाती हैं।

(६) भाद्रपद-कृष्ण-चतुर्थीको बहुलासहित गणेशकी

* चैत्रमासकी चतुर्थीको 'दमनक'-पत्रों (दौनाके पत्तों)-से गणेशजीका पूजन करके मनुष्य सुख-भोग प्राप्त करता है। (अग्निपुराण)

गन्ध, पुष्प, माला और दूर्वा आदिके द्वारा यत्नपूर्वक पूजा कर परिक्रमा करनी चाहिये। सामर्थ्यके अनुसार दान करे। दान करनेकी स्थिति न हो तो इस बहुला गौको प्रणाम कर उसका विसर्जन कर दे। इस प्रकार पाँच, दस या सोलह वर्षोंतक इस व्रतका पालन करके उद्यापन करे। उस समय दूध देनेवाली स्वस्थ गायका दान करना चाहिये। इस व्रतको करनेवाले स्त्री-पुरुषोंको सुखद भोगोंकी उपलब्धि होती है। देवता उनका सम्मान करते हैं और अन्तमें वे गोलोकधामकी प्राप्ति करते हैं।

भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको सिद्धिविनायक-व्रतका पालन करना चाहिये। इस दिन गणेशजीका मध्याह्नमें प्राकट्य हुआ था, अतः इसमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि ही ली जाती है।

सर्वप्रथम एकाग्र चित्तसे सर्वानन्दप्रदाता सिद्धिविनायकका ध्यान करे। फिर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक उनके इक्कीस नाम लेकर इक्कीस प्रकारके पत्ते समर्पित करे। उनके प्रत्येक नामके साथ 'नमः' जुड़ा हो। वे इक्कीस नाम और पत्ते इस प्रकार हैं—

'**सुमुखाय नमः**' कहकर शमीपत्र, '**गणाधीशाय नमः**' कहकर भँगरैयाका पत्ता, '**उमापुत्राय नमः**' कहकर बिल्वपत्र, '**गजमुखाय नमः**' कहकर दूर्वादल, '**लम्बोदराय नमः**' कहकर बेरका पत्ता, '**हरसूनवे नमः**' कहकर धतूरेका पत्ता, '**शूर्पकर्णाय नमः**' कहकर तुलसी-दल,' '**वक्रतुण्डाय नमः**' कहकर सेमका पत्ता, '**गुहाग्रजाय नमः**' कहकर अपामार्गका पत्ता, '**एकदन्ताय नमः**' कहकर वनभंटा या कहकर मरुआका पत्ता, '**सुराग्रजाय नमः**' कहकर गान्धारी-पत्र और '**सिद्धिविनायकाय नमः**' कहकर केतकी-पत्र प्रीतिपूर्वक समर्पित करे।

इससे श्रीगणेशजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसके अनन्तर दो दूर्वादल लेकर गन्ध, पुष्प और अक्षतके साथ गणेशजीपर चढ़ाना चाहिये। फिर नैवेद्यके रूपमें पाँच लड्डू उन दयासिन्धु प्रभु गजमुखको अत्यन्त प्रेमपूर्वक अर्पण करे। तदनन्तर आचमन कराकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनके चरणोंमें बार-बार प्रणाम और प्रार्थना करते हुए विसर्जन करना चाहिये। समस्त सामग्रियोंसहित गणेशजीकी स्वर्णमयी प्रतिमा आचार्यको अर्पित करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार पाँच वर्षतक व्रत एवं गणेश-पूजन करनेवालोंको लौकिक एवं पारलौकिक समस्त सुख प्राप्त होते हैं।[२] इस तिथिकी रात्रिमें चन्द्र-दर्शनका निषेध है। चन्द्रदर्शन करनेवाले मिथ्या कलङ्कके भागी होते हैं।[३]

(७) आश्विन-शुक्ल-चतुर्थीको 'पुरुषसूक्त' द्वारा षोडशोपचारसे कपर्दीश विनायककी भक्तिपूर्वक पूजाका माहात्म्य है।

(८) कार्तिक-कृष्ण-चतुर्थीको 'करकचतुर्थी' (करवा-चौथ)-का व्रत कहा जाता है। यह व्रत स्त्रियाँ विशेषरूपसे करती हैं। इस दिन व्रतीके लिये प्रातःकाल स्नानादिसे निवृत्त होकर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो गणेशजीका भक्तिपूर्वक पूजा करनेका विधान है। पवित्र चित्तसे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पकवानसे भरे हुए दस करवे परमप्रभु गजाननके सम्मुख

करे। व्रतपूर्तिके लिये स्वयं मिष्टान्न भोजन करना चाहिये।

इस व्रतको बारह या सोलह वर्षोंतक करना चाहिये। तदनन्तर इसका उद्यापन करे। इसके बाद स्त्री चाहे तो इसे छोड़ सकती है; अन्यथा सुख-सौभाग्यके लिये स्त्री इसे जीवनपर्यन्त कर सकती है। स्त्रियोंके लिये इसके समान सौभाग्य प्रदान करनेवाला अन्य व्रत नहीं है।

(९) मार्गशीर्ष-शुक्ल-चतुर्थीकी 'कृच्छ्र-चतुर्थी' संज्ञा है। (स्कन्दपु०) इससे लेकर एक वर्षतक प्रत्येक चतुर्थीका व्रत रखकर देवदेव गजमुखका प्रीतिपूर्वक पूजन करे। उस दिन एकभुक्त (दिनमें एक समय भोजन) करे और दूसरे वर्ष प्रत्येक चतुर्थीको केवल रात्रिमें एक बार भोजन करे। तीसरे वर्ष प्रत्येक चतुर्थीको अयाचित (बिना माँगे मिला हुआ) अन्न एक बार खाकर रहे और फिर चौथे वर्षमें प्रत्येक चतुर्थीको सर्वथा निराहार रहकर गणेशजीका स्मरण, चिन्तन, भजन एवं अत्यन्त प्रीतिपूर्वक पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार विधिपूर्वक व्रत करते हुए चार वर्ष पूरे होनेपर अन्तमें व्रत-स्नान करे। उस समय व्रत करनेवाला मनुष्य गणेशजीकी सुवर्णकी प्रतिमा बनवाये। यदि सुवर्ण-मूर्ति बनवानेकी क्षमता न हो तो वर्णक (हल्दी-चूर्ण)-से ही गणपतिकी प्रतिमा बना ले।

फिर विविध रंगोंसे भूमिपर पद्मपत्र बनाकर उसपर कलश स्थापित करे। कलशके ऊपर चावलसे भरा ताँबेका पात्र रखे। उस चावलोंसे भरे पात्रपर दो वस्त्र रखकर उसपर गणेशजीको विराजमान करे। इसके बाद गन्धादि उपचारोंसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उन दयामय देवकी पूजा करनी चाहिये। फिर मोदकप्रिय मङ्गलविग्रह गणेशजीको संतुष्ट करनेके लिये उन्हें नैवेद्यके रूपमें लड्डू समर्पित करे। प्रणाम, परिक्रमा एवं प्रार्थनाके अनन्तर सम्पूर्ण रात्रि गीत, वाद्य, पुराण-कथा एवं गणेशजीके स्तवन और नाम-जपके साथ जागरण करनेका विधान है।

अरुणोदय होनेपर स्नानादि दैनिक कृत्यसे निवृत्त हो शुद्ध वस्त्र धारणकर श्रद्धापूर्वक तिल, चावल, जौ, पीली सरसों, घी और खाँड़से मिली हवन-सामग्रीका विधिपूर्वक होम करे। गण, गणाधिप, कूष्माण्ड, त्रिपुरान्तक, लम्बोदर, एकदन्त, रुक्मदंष्ट्र, विघ्नप, ब्रह्मा, यम, वरुण, सोम, सूर्य, हुताशन, गन्धमादी तथा परमेष्ठी—इन सोलह नामोंद्वारा प्रत्येकके आदिमें प्रणव और अन्तमें चतुर्थी विभक्ति तथा उसमें '**नमः**' पद लगाकर अग्निमें एक-एक आहुति दे।

इसके बाद '**वक्रतुण्डाय हुम्**'—इस मन्त्रसे एक-सौ आठ आहुतियाँ दे। तदनन्तर व्याहृतियों* द्वारा यथाशक्ति होम करके पूर्णाहुति देनी चाहिये। फिर दिक्पालोंकी पूजा करके चौबीस ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक लड्डू और खीर भोजन कराये। आचार्यको दक्षिणाके साथ सवत्सा गौका दान कर दूसरे ब्राह्मणोंको अपनी शक्तिके अनुसार भूयसी दक्षिणा दे। इसके बाद उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर उनकी परिक्रमा करे। तदुपरान्त उन्हें आदरपूर्वक विदा करना चाहिये। फिर स्वजन-बन्धुओंके साथ स्वयं प्रसन्नतापूर्वक भोजन करे।

इस महिमामय व्रतका पालन करनेवाले मनुष्य दयासिन्धु गणेशजीके प्रसादसे इस लोकमें उत्तम भोग भोगते और परलोकमें भगवान् विष्णुके सायुज्यके अधिकारी होते हैं।

(१०) पौषमासकी चतुर्थीको भक्तिपूर्वक विघ्नेश्वर गणेशकी पूजा और प्रार्थना कर एक ब्राह्मणको लड्डूका भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इस व्रतको विधिपूर्वक करनेवाले पुरुषके यहाँ धन-सम्पत्तिका अभाव नहीं हो

(११) माघ-कृष्ण-चतुर्थीको 'संकष्टव्रत' कहा ग है। उस दिन प्रातःकाल स्नानके अनन्तर देवदेव गजमुख प्रसन्नताके लिये व्रतोपवासका संकल्प करके दिन संयमित रहकर श्रीगणेशका स्मरण, चिन्तन एवं भजन क रहना चाहिये। चन्द्रोदय होनेपर मिट्टीकी गणेशमूर्ति बनाव उसे पीढ़ेपर स्थापित करे। गणेशजीके साथ उनके आयु और वाहन भी होने चाहिये। पहले उक्त मृण्मयी मूर्ति गणेशजीकी प्रतिष्ठा करे; तदनन्तर षोडशोपचारसे उनव भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। फिर मोदक तथा गुड़ बने हुए तिलके लड्डूका नैवेद्य अर्पित करे। आचम कराकर प्रदक्षिणा और नमस्कार करके पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी चाहिये।

अर्घ्य-प्रदान

तदनन्तर शान्तचित्तसे भक्तिपूर्वक गणेशमन्त्रका इक्कीस बार जप करे और फिर भगवान् गणेशको अर्घ्य प्रदान करे।

* 'ॐ भूः स्वाहा'—इदमग्नये न मम। 'ॐ भुवः स्वाहा'—इदं वायवे न मम। 'ॐ स्वः स्वाहा'— इदं सूर्याय न मम—ये व्याहृतिहोमके मन्त्र हैं।

अर्घ्य प्रदान करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

गणेशाय नमस्तुभ्यं सर्वसिद्धिप्रदायक।
संकष्टहर मे देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥
कृष्णपक्षे चतुर्थ्यां तु सम्पूजित विधूदये।
क्षिप्रं प्रसीद देवेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'समस्त सिद्धियोंके दाता गणेश! आपको नमस्कार है। संकटोंको हरण करनेवाले देव! आप अर्घ्य ग्रहण कीजिये; आपको नमस्कार है। कृष्णपक्षकी चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर पूजित देवेश! आप अर्घ्य ग्रहण कीजिये; आपको नमस्कार है।'

इन दोनों श्लोकोंके साथ **'संकष्टहरणगणपतये नमः'** (संकष्टहरणगणपतिके लिये नमस्कार है) दो बार बोलकर दो अर्घ्य देने चाहिये।

इसके अनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्रसे चतुर्थी तिथिकी अधिष्ठात्री देवीको अर्घ्य प्रदान करे—

तिथीनामुत्तमे देवि गणेशप्रियवल्लभे।
सर्वसङ्कटनाशाय गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥
'चतुर्थ्यै नमः' इदमर्घ्यं समर्पयामि।

'तिथियोंमें उत्तम गणेशजीकी प्यारी देवि! आपके लिये नमस्कार है। आप मेरे समस्त संकटोंको नष्ट करनेके लिये अर्घ्य ग्रहण करें। चतुर्थी तिथिकी अधिष्ठात्री देवीके लिये नमस्कार है। मैं उन्हें यह अर्घ्य प्रदान करता हूँ।' [व्रतराज]

तत्पश्चात् चन्द्रमाका गन्ध-पुष्पादिसे विधिवत् पूजन करके ताँबेके पात्रमें लाल चन्दन, कुश, दूर्वा, फूल, अक्षत, शमीपत्र, दधि और जल एकत्र करके निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करते हुए उन्हें अर्घ्य दे—

गगनार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणीपते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गणेशप्रतिरूपक॥

उनकी अनुमतिसे स्वयं प्रसन्नतापूर्वक भोजन करे।

इस परम कल्याणकारी 'संकष्टव्रत' के प्रभावसे व्रती धन-धान्यसे सम्पन्न हो जाता है और उसके सम्मुख कभी कष्ट उपस्थित नहीं होता।

इस व्रतको 'वक्रतुण्ड-चतुर्थी' भी कहते हैं। इस व्रतको माघमाससे आरम्भ करके हर महीनेमें करे तो संकटका नाश हो जाता है। (भविष्योत्तर)

माघमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीको उपवास करके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करे और पञ्चमीको तिलका भोजन करे। इस प्रकार व्रत करनेपर मनुष्य निर्विघ्न सुखी जीवन व्यतीत करता है।

'आगच्छोल्काय' कहकर गणेशका आवाहन और **'गच्छोल्काय'** कहकर विसर्जन करे। गन्धादि उपचारोंसे सविधि गणपतिका पूजन कर उन्हें नैवेद्यरूपमें लड्डू अर्पण करे; फिर आचमन, प्रणाम और परिक्रमा आदि करे। इस व्रतकी बड़ी महिमा है।

(१२) फाल्गुनमासकी चतुर्थीको मङ्गलमय 'ढुण्ढिराज-व्रत' बताया गया है। उस दिन व्रतोपवासके साथ गणेशजीकी सोनेकी मूर्ति बनवाकर उसकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा करे। तदनन्तर वह मूर्ति ब्राह्मणको दान कर दे। गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये तिलोंसे ही दान, होम और पूजन आदि करे। उस दिन तिलके पीठेसे ब्राह्मणोंको भोजन कराकर व्रती स्वयं भी भोजन करे। इस व्रतके प्रभावसे समस्त सम्पदाओंकी वृद्धि होती है और मनुष्य गणेशजीकी कृपासे सहज ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

अमित महिमामयी चतुर्थी-व्रतमें पूजाके अन्तमें चतुर्थी-व्रतकथा-श्रवणकी बड़ी महिमा गायी गयी है। पौराणिक कथाओंके अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्तमें परम्परागत कुछ लोक

पृथ्वीदेवीने महामुनि भारद्वाजके जपापुष्प-तुल्य अरुण पुत्रका पालन किया। सात वर्षके बाद उन्होंने उसे महर्षिके पास पहुँचा दिया। महर्षिने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने पुत्रका आलिङ्गन किया और उसका सविधि उपनयन कराकर उसे वेद-शास्त्रादिका अध्ययन कराया। फिर उन्होंने अपने प्रिय पुत्रको गणपति-मन्त्र देकर उसे गणेशजीको प्रसन्न करनेके लिये आराधना करनेकी आज्ञा दी।

मुनि-पुत्रने अपने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर पुण्यसलिला गङ्गाजीके तटपर जाकर वह परम प्रभु गणेशजीका ध्यान करते हुए भक्तिपूर्वक उनके मन्त्रका जप करने लगा। वह बालक निराहार रहकर एक सहस्र वर्षतक गणेशजीके ध्यानके साथ उनका मन्त्र जपता रहा।

माघ-कृष्ण-चतुर्थीको चन्द्रोदय होनेपर दिव्य वस्त्रधारी अष्टभुज चन्द्रभाल प्रसन्न होकर प्रकट हुए। उन्होंने अनेक शस्त्र धारण कर रखे थे। वे विविध अलंकारोंसे विभूषित अनेक सूर्योंसे भी अधिक दीप्तिमान् थे। भगवान् गणेशके मङ्गलमय अद्भुत स्वरूपका दर्शन कर तपस्वी मुनिपुत्रने प्रेमगद्गद कण्ठसे उनका स्तवन किया।

वरद प्रभु बोले—'मुनिकुमार! मैं तुम्हारे धैर्यपूर्ण कठोर तप एवं स्तवनसे पूर्ण प्रसन्न हूँ। तुम इच्छित वर माँगो। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।'

प्रसन्न पृथ्वीपुत्रने अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया—'प्रभो! आज आपके दुर्लभ दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया। मेरी माता पर्वतमालिनी पृथ्वी, मेरे पिता, मेरा तप, मेरे नेत्र, मेरी वाणी, मेरा जीवन और जन्म सभी सफल हुए। दयामय! मैं स्वर्गमें निवासकर देवताओंके साथ अमृत-पान करना चाहता हूँ। मेरा नाम तीनों लोकोंमें कल्याण करनेवाला 'मङ्गल' प्रख्यात हो।'

पृथ्वीनन्दनने आगे कहा—'करुणामूर्ति प्रभो! मुझे आपका भुवनपावन दर्शन आज माघ-कृष्ण-चतुर्थीको हुआ है। अतएव यह चतुर्थी नित्य पुण्य देनेवाली एवं संकटहारिणी हो। सुरेश्वर! इस दिन जो भी व्रत करे, आपकी कृपासे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाया करें।'

सद्यःसिद्धिप्रदाता देवदेव गजमुखने वर प्रदान कर दिया—'मेदिनीनन्दन! तुम देवताओंके साथ सुधा-पान करोगे। तुम्हारा 'मङ्गल' नाम सर्वत्र विख्यात होगा। तुम धरणीके पुत्र हो और तुम्हारा रंग लाल है, अतः तुम्हारा एक नाम 'अङ्गारक' भी प्रसिद्ध होगा और यह तिथि 'अङ्गारक-चतुर्थी' के नामसे प्रख्यात होगी। पृथ्वीपर जो मनुष्य इस दिन मेरा व्रत करेंगे, उन्हें एक वर्षपर्यन्त चतुर्थी-व्रत करनेका फल प्राप्त होगा। निश्चय ही उनके किसी कार्यमें कभी विघ्न उपस्थित नहीं होगा।'

परम प्रभु गणेशने मङ्गलको वर देते हुए आगे कहा—'तुमने सर्वोत्तम व्रत किया है, इस कारण तुम अवन्तीनगरमें परन्तप नामक नरपाल होकर सुख प्राप्त करोगे। इस व्रतकी अद्भुत महिमा है। इसके कीर्तनमात्रसे मनुष्यकी समस्त कामनाओंकी पूर्ति होगी।' गजमुख अन्तर्धान हो गये।

मङ्गलने एक भव्य मन्दिर बनवाकर उसमें दशभुज गणेशकी प्रतिमा स्थापित करायी। उसका नामकरण किया—'मङ्गलमूर्ति'। वह श्रीगणेश-विग्रह समस्त कामनाओंके पूर्ण करनेवाला, अनुष्ठान, पूजन और दर्शन करनेसे सबके लिये मोक्षप्रद होगा।

पृथ्वीपुत्रने मङ्गलवारी चतुर्थीके दिन व्रत करके श्रीगणेशजीकी आराधना की। उसका एक अत्यन्त आश्चर्यजनक फल यह हुआ कि वे सशरीर स्वर्ग चले गये। उन्होंने सुर-समुदायके साथ अमृत-पान किया और वह परमपावनी तिथि 'अङ्गारक-चतुर्थी' के नामसे प्रख्यात हुई। यह पुत्र-पौत्रादि एवं समृद्धि प्रदान कर समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है।

परम कारुणिक गणेशजीको अन्तर्हृदयकी विशुद्ध प्रीति अभीष्ट है। श्रद्धा और भक्तिपूर्वक त्रयतापनिवारक दयानिधान मोदकप्रिय सर्वेश्वर गजमुख कपित्थ, जम्बू और वन्यफलोंसे ही नहीं, दूर्वाके दो दलोंसे भी प्रसन्न हो जाते हैं और मुदित होकर समस्त कामनाओंकी पूर्ति तो करते ही हैं, जन्म-जरा-मृत्युका सुदृढ़ पाश नष्ट कर अपना दुर्लभतम परमानन्दपूरित दिव्य धाम भी प्रदान कर देते हैं।

बारह महीनोंके व्रतपर्वोत्सव

चैत्र शुक्लपक्षके व्रतपर्वोत्सव—

नवसंवत्सरका प्रारम्भ

[चैत्र शुक्ल प्रतिपदा]

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

नवसंवत्सरके प्रारम्भमें समस्त पुरुषार्थ-सिद्धिके लिये दुर्गापूजनका क्रम आता है। उसके पश्चात् ही रामनवमीको श्रीरामचन्द्रजीके जन्मका प्रसंग उपस्थित होता है।

भिन्न-भिन्न देशों एवं कालोंके वैचित्र्यसे भावों एवं कर्मोंका भी वैचित्र्य होता है। किन्हींमें हठात् वैराग्य, विवेक एवं शान्तिका, किन्हींमें बलात् काम, क्रोध, मद, मात्सर्यका प्राखर्य होता है। यही स्थिति कालोंकी भी है। शिशिर, वसन्तादि ऋतुओंमें धरणी, अनिल और जलसे संयोग होनेपर भी धानमें अङ्कुरादिकी उत्पत्ति नहीं होती। वर्षा-ऋतुमें वही बीज अङ्कुरित हो उठता है। आम तथा नानाविध तरुलताओंका मुकुलित एवं पुष्पित होना कालविशेषकी ही अपेक्षा रखता है। किम्बहुना प्रत्येक पदार्थकी उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाशादिमें भी कालकी अवश्य ही हेतुता है।

आधिदैविक भावनाओंमें भी भिन्न-भिन्न तिथियोंमें भिन्न-भिन्न शक्तियोंका प्रादुर्भाव होता है। किन्हीं कालोंमें आसुरी शक्तियोंका और किन्हींमें दैवी शक्तियोंका प्राकट्य होता है। एकादशी प्रभृति तिथियाँ वैष्णवी, शिवरात्रि शैवी, नवरात्रोंमें दुर्गा और रामनवमीको श्रीराम-शक्तियोंका प्राकट्य होता है।

पाशविक काम, कर्म, ज्ञानोंसे प्राणियोंकी शक्तियोंका क्षय होता है। पवित्र तिथियों एवं तीर्थोंमें तप, त्याग, उपवास, स्नानादिसे अशुद्धियोंका मार्जन एवं दिव्य उत्पन्न होने लगते हैं। इसी तरह दुराचार तथा दुर्विचारशील प्रमादी पुरुषोंके मनमें कुत्सित भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। अच्छे और बुरे विचारों एवं कर्मोंके समाप्त हो जानेपर भी उनके संस्कार बने रहते हैं। यह बात आजकलके मनोवैज्ञानिकोंने भी स्वीकार कर ली है कि विचारोंका प्रभाव पर्याप्तरूपसे देश-काल तथा व्यक्तियोंपर पड़ता है। इन विचारों, संकल्पोंका आदान-प्रदान भी हुआ करता है। असत्पुरुषों, अशास्त्रों तथा असत्कर्मोंको भुला देनेसे असद्विचारोंका प्रवाह रुक जाता है और बार-बार स्मरण करनेसे यह प्रचालित हो उठता है। सद्विचारों, शास्त्रों, पुरुषों एवं कर्मोंको बार-बार स्मरण करना उनका स्वागत करना है, उनको भूलना ही उनका बहिष्कार है।

'योगदर्शन' (१।३७)-में वीतराग शुकादिके ध्यानको भी चित्त-निरोधका साधन कहा गया है—

'वीतरागविषयं वा चित्तम्॥'

वीतरागकी आकृतिसे साधकके मनमें उनके अन्तर्भावों एवं रागादि दोषरहित भगवदाकारित चित्तका स्फुरण होता है। संसारमें अनन्त कर्म एवं विचारोंके संस्कार फैले होते हैं। बुद्धिमानोंका कर्तव्य है कि सद्विचारोंके आगमनका द्वार खुला तथा असद्विचारोंका बंद रखें। सत्पुरुषों, शास्त्रों एवं सत्कर्मोंका स्मरण या सेवन ही उनका द्वार खोलना और विपरीतोंका परिवर्जन, विस्मरण ही उनके संस्कारोंका द्वार बंद रखना है। सात्त्विक भावोंके स्मरण [illegible]

किसी तत्त्वके संचारसे बलात् मनमें चाञ्चल्यकी सृष्टि होती है और किसी तत्त्वके संचारसे शान्ति, एकाग्रता आदिकी प्राप्ति होती है। इसलिये भजन, ध्यान आदिके लिये आकाश या जलतत्त्व तथा सुषुम्णाका संचार अनुकूल समझा जाता है। इसी कारण भिन्न-भिन्न मासों और तिथियोंका माहात्म्य पुराणादि शास्त्रोंमें मिलता है। श्रुतार्थापत्ति प्रमाणद्वारा यह स्पष्ट होता है कि शिवरात्रि, रामनवमी आदि दिव्य तिथियोंमें विशेषरूपसे शिव, विष्णु आदि शक्तियोंका प्राकट्य होता है। भजन, ध्यान, उपवास आदिद्वारा शक्तियोंका ही संग्रह किया जाता है। अन्नपानादिद्वारा जबतक पुरुषकी शक्ति क्षीण रहती है, तबतक बाह्य शक्तियोंका आकर्षण नहीं होता।

किसी कालविशेषमें किसी शक्तिविशेषका प्राकट्य होता है। जैसे अमावास्याको पितर-प्राणोंकी व्याप्ति होती है, वैसे ही एकादशी, शिवरात्रि, रामनवमी आदिमें भी भिन्न-भिन्न शक्तियोंका संचय किया जा सकता है। व्रतों और त्योहारोंका यह भी एक रहस्य है।

चैत्र शुक्लपक्ष बड़े महत्त्वका है। इसमें नौ दिनोंतक आद्याशक्ति भगवतीका व्रत और श्रीदुर्गासप्तशतीका पाठ करनेसे आध्यात्मिक, आधिभौतिक दोषोंपर विजय प्राप्त करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। निखिल ब्रह्माण्डाधीश्वरी माँका पूजन होते ही विश्वपति भगवान् श्रीरामकी जन्मोत्सव-नवमी आ जाती है। सदा ही रामनवमीको श्रीरामचन्द्रजीका दिव्य भर्ग भूमण्डलमें अवतीर्ण होकर विघ्नों एवं दानवी शक्तियोंका मर्दन करके सत्पुरुषोंका संरक्षण करता है। रामनवमीका व्रत और रामजन्मोत्सव, भगवान्‌का पूजन प्राणियोंमें सचमुच दिव्य शक्ति प्रदान करता है।

संवत्सर प्रतिपदा (नवसंवत्सर)

चैत्रमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे नवसंवत्सरका आरम्भ होता है, यह अत्यन्त पवित्र तिथि है। इसी तिथिसे पितामह ब्रह्माने सृष्टिनिर्माण प्रारम्भ किया था—

'चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रे तु तदा सूर्योदये सति॥'

इस तिथिको रेवती नक्षत्रमें, विष्कुम्भ योगमें दिनके समय भगवान्‌के आदि अवतार मत्स्यरूपका प्रादुर्भाव भी माना जाता है—

कृते च प्रभवे चैत्रे प्रतिपच्छुक्लपक्षगा।
रेवत्यां योगविष्कुम्भे दिवा द्वादशनाडिकाः॥
मत्स्यरूपकुमार्यां च अवतीर्णो हरिः स्वयम्।

(स्मृतिकौस्तुभ)

युगोंमें प्रथम सत्ययुगका प्रारम्भ भी इस तिथिको हुआ था। यह तिथि ऐतिहासिक महत्त्वकी भी है, इसी दिन सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने शकोंपर विजय प्राप्त की थी और उसे चिरस्थायी बनानेके लिये विक्रम-संवत्‌का प्रारम्भ किया था।

संवत्सर-पूजन—इस दिन प्रातः नित्यकर्म करके तेलका उबटन लगाकर स्नान आदिसे शुद्ध एवं पवित्र होकर हाथमें गन्ध, अक्षत, पुष्प और जल लेकर देश-कालके उच्चारणके साथ निम्नलिखित संकल्प करना चाहिये—

'मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य स्वजनपरिजनसहितस्य वा आयुरारोग्यैश्वर्यादिसकलशुभफलोत्तरोत्तराभिवृद्ध्यर्थं ब्रह्मादिसंवत्सरदेवतानां पूजनमहं करिष्ये।'

—ऐसा संकल्प कर नयी बनी हुई चौरस चौकी या बालूकी वेदीपर स्वच्छ श्वेतवस्त्र बिछाकर उसपर हल्दी या केसरसे रँगे अक्षतसे अष्टदलकमल बनाकर उसपर ब्रह्माजीकी सुवर्णमूर्ति स्थापित करे। गणेशाम्बिका-पूजनके पश्चात् **'ॐ ब्रह्मणे नमः'** मन्त्रसे ब्रह्माजीका आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करे।

पूजनके अनन्तर विघ्नोंके नाश और वर्षके कल्याणकारक तथा शुभ होनेके लिये ब्रह्माजीसे निम्न प्रार्थना की जाती है—

भगवंस्त्वत्प्रसादेन वर्षं क्षेममिहास्तु मे।
संवत्सरोपसर्गा मे विलयं यान्त्वशेषतः॥

पूजनके पश्चात् विविध प्रकारके उत्तम और सात्त्विक पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको भोजन करानेके बाद ही स्वयं भोजन करना चाहिये।

इस दिन पञ्चाङ्ग-श्रवण किया जाता है। नवीन पञ्चाङ्गसे उस वर्षके राजा, मन्त्री, सेनाध्यक्ष आदिका तथा वर्षका फल श्रवण करना चाहिये। सामर्थ्यानुसार पञ्चाङ्ग-दान करना चाहिये तथा प्याऊ (पौसला)-की स्थापना करनी चाहिये। आजके दिन नया वस्त्र धारण करना चाहिये तथा घरको ध्वज, पताका, वन्दनवार आदिसे सजाना चाहिये। आजके दिन निम्बके कोमल पत्तों, पुष्पोंका चूर्ण बनाकर उसमें काली मिर्च, नमक, हींग, जीरा, मिस्री और अजवाइन डालकर खाना चाहिये, इससे रुधिर-विकार नहीं होता और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इस दिन नवरात्रके लिये घट-स्थापन और तिलकव्रत भी किया जाता है। इस व्रतमें यथासम्भव नदी, सरोवर अथवा घरपर स्नान करके संवत्सरकी मूर्ति बनाकर उसका 'चैत्राय नमः', 'वसन्ताय नमः' आदि नाम-मन्त्रोंसे पूजन करना चाहिये। इसके बाद विद्वान् ब्राह्मणका पूजन-अर्चन करना चाहिये।
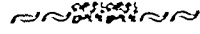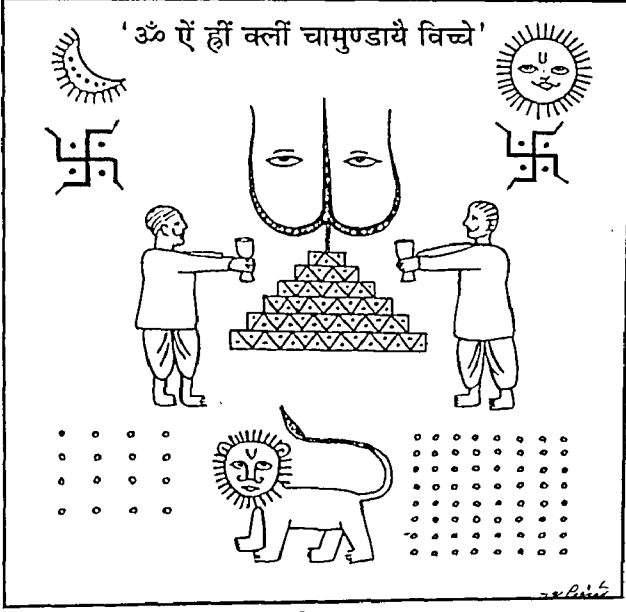
कुमारी-पूजन

कुमारी-पूजन नवरात्रव्रतका अनिवार्य अङ्ग है। कुमारिकाएँ जगज्जननी जगदम्बाका प्रत्यक्ष विग्रह हैं। सामर्थ्य हो तो नौ दिनतक नौ, अन्यथा सात, पाँच, तीन या एक कन्याको देवी मानकर पूजा करके भोजन कराना चाहिये। इसमें ब्राह्मणकन्याको प्रशस्त माना गया है। आसन बिछाकर गणेश, वटुक तथा कुमारियोंको एक पंक्तिमें बिठाकर पहले '**ॐ गं गणपतये नमः**' से गणेशजीका पञ्चोपचार-पूजन करे, फिर '**ॐ वं वटुकाय नमः**' से वटुकका तथा '**ॐ कुमार्यै नमः**' से कुमारियोंका पञ्चोपचार-पूजन करे। इसके बाद हाथमें पुष्प लेकर अधोलिखित मन्त्रसे कुमारियोंकी प्रार्थना करे—

मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातॄणां रूपधारिणीम्।
नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यामावाहयाम्यहम्॥
जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते॥

कहीं-कहीं अष्टमी या नवमीके दिन कड़ाही-पूजाकी परम्परा भी है। कड़ाहीमें हलवा बनाकर उसे देवीजीकी प्रतिमाके सम्मुख रखा जाता है। तत्पश्चात् चमचे और कड़ाहीमें मौली बाँधकर '**ॐ अन्नपूर्णायै नमः**' इस नाम-मन्त्रसे कड़ाहीका पञ्चोपचार-पूजन भी किया जाता है। तदनन्तर थोड़ा-सा हलवा कड़ाहीसे निकालकर देवी माँको नैवेद्य लगाया जाता है। उसके बाद कुमारी बालिकाओंको भोजन कराकर उन्हें यथाशक्ति वस्त्राभूषण, दक्षिणादि देनेका विधान है।

विसर्जन

नौ रात्रि व्यतीत होनेपर दसवें दिन विसर्जन करना चाहिये। विसर्जनसे पूर्व भगवती दुर्गाका गन्ध, अक्षत, पुष्प आदिसे उत्तर-पूजनकर निम्न प्रार्थना करनी चाहिये—

रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवति देहि मे।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे॥
महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥

इस प्रकार प्रार्थना करनेके बाद हाथमें अक्षत एवं पुष्प लेकर भगवतीका निम्न मन्त्रसे विसर्जन करना चाहिये—

गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठे स्वस्थानं परमेश्वरि।
पूजाराधनकाले च पुनरागमनाय च॥

शक्तिधरकी उपासना—चैत्र नवरात्रमें शक्तिके साथ शक्तिधरकी भी उपासना की जाती है। एक ओर जहाँ देवीभागवत, कालिकापुराण और मार्कण्डेयपुराणका पाठ होता है, वहीं दूसरी ओर श्रीरामचरितमानस, श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण एवं अध्यात्मरामायणका भी पाठ होता है। इसलिये यह नवरात्र देवी-नवरात्रके साथ-साथ राम-नवरात्रके नामसे भी प्रसिद्ध है।

श्रीरामनवमी

[चैत्र शुक्ल नवमी]

श्रीरामनवमी सारे जगत्के लिये सौभाग्यका दिन है; क्योंकि अखिल विश्वपति सच्चिदानन्दघन श्रीभगवान् इसी दिन दुर्दान्त रावणके अत्याचारसे पीडित पृथ्वीको सुखी करने और सनातन धर्मकी मर्यादाकी स्थापना करनेके लिये मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें प्रकट हुए थे। श्रीराम केवल हिन्दुओंके ही 'राम' नहीं हैं, वे अखिल विश्वके प्राणाराम हैं। भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णको केवल हिन्दूजातिकी सम्पत्ति मानना उनके गुणोंको घटाना है, असीमको सीमाबद्ध करना है। विश्व-चराचरमें आत्मरूपसे नित्य रमण करनेवाले और स्वयं ही विश्व-चराचरके रूपमें प्रतिभासित सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामीस्वरूप नारायण किसी एक देश या व्यक्तिकी ही वस्तु कैसे हो सकते हैं? वे

सबके हैं, सबमें हैं, सबके साथ सदा संयुक्त हैं और सर्वमय हैं। जो कोई भी जीव उनकी आदर्श मर्यादा-लीला—उनके पुण्यचरित्रका श्रद्धापूर्वक गान, श्रवण और अनुकरण करता है, वह पवित्रहृदय होकर परम सुखको प्राप्त कर सकता है। श्रीरामके समान आदर्श पुरुष, आदर्श धर्मात्मा, आदर्श नरपति, आदर्श मित्र, आदर्श भाई, आदर्श पुत्र, आदर्श गुरु, आदर्श शिष्य, आदर्श पति, आदर्श स्वामी, आदर्श सेवक, आदर्श वीर, आदर्श दयालु, आदर्श शरणागत-वत्सल, आदर्श तपस्वी, आदर्श सत्यवादी, आदर्श दृढ़प्रतिज्ञ तथा आदर्श संयमी और कौन हुआ? जगत्‌के इतिहासमें श्रीरामकी तुलनामें एक श्रीराम ही हैं। साक्षात् परमपुरुष परमात्मा होनेपर भी श्रीरामने जीवोंको सत्पथपर आरूढ़ करानेके लिये ऐसी आदर्श लीलाएँ कीं, जिनका अनुकरण सभी लोग सुखपूर्वक कर सकते हैं। उन्हीं हमारे श्रीरामका पुण्य जन्मदिवस चैत्र शुक्ल नवमी है। इस सुअवसरपर सभी लोगोंको, खासकर उनको, जो श्रीरामको साक्षात् भगवान् और अपने आदर्श पूर्वपुरुषके रूपमें अवतरित मानते हैं, श्रीराम-जन्मका पुण्योत्सव मनाना चाहिये। इस उत्सवका प्रधान उद्देश्य होना चाहिये श्रीरामको प्रसन्न करना और श्रीरामके आदर्श गुणोंका अपनेमें विकास कर श्रीराम-कृपा प्राप्त करनेका अधिकारी बनना। अतएव विशेष ध्यान श्रीरामके आदर्श चरित्रके अनुकरणपर ही रखना चाहिये। श्रीरामजन्मोत्सवकी विधि इस प्रकार की जा सकती है—

१-चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे चैत्र शुक्ल नवमीतक नौ दिन उत्सव मनाया जाय।

२-प्रत्येक मनुष्य (स्त्री, पुरुष, बालक) प्रतिदिन अपनी रुचिके अनुसार श्रीरामके दो अक्षर, पञ्चाक्षर या चार अक्षर* मन्त्रका नियमपूर्वक जप करे। पहले दिन नियम कर ले, उसीके अनुसार नौ दिनतक करते रहना चाहिये। कम-से-कम १०८ मन्त्रका जप रोज होना चाहिये। उत्साह और समय मिले तो नौ दिनोंमें नौ लाख नाम-जप कर सकते हैं।

३-रोज सुबह या शामको कुछ समयतक नियमित-रूपसे श्रीराम-नामका कीर्तन हो।

४-श्रीरामायणका नौ दिनोंमें पूरा पाठ किया जाय। वाल्मीकि, अध्यात्म या श्रीगोसाईंजीकृत श्रीरामचरितमानस—इनमेंसे अपनी रुचिके अनुसार किसी भी रामायणका पाठ कर सकते हैं। जो ऐसा न कर सकें वे कुछ समयतक रोज रामायण पढ़ें या सुनें।

५-माता-पिताके चरणोंमें रोज प्रातः प्रणाम करें।

६-यथासाध्य खूब सावधानीसे सत्यभाषण करें (सच बोलें)।

७-घरमें माता, पिता, भाई, भौजाई, स्वामी, स्त्री, नौकर, मालिक सभी आपसमें प्रेम रखें, अपने अच्छे बर्तावसे सबको प्रसन्न रखें, किसीसे झगड़ा न करें।

८-ब्रह्मचर्यका पालन करें।

९-श्रीरामनवमीका व्रत करें।

१०-रामनवमीके दिन श्रीरामजन्मोत्सव मनाया जाय, सभाएँ की जायँ, जिनमें रामायणका प्रवचन और रामायण-सम्बन्धी शिक्षाप्रद व्याख्यान हों। कहने और सुननेवाले अपने अंदर श्रीरामके-से गुण आयें—इसके लिये दृढ़ निश्चय करें और श्रीरामसे प्रार्थना करें।

११-आपसके मेलमें बाधा न आती हो तो श्रीरामकी सवारीका जुलूस नगर-कीर्तनके साथ निकाला जाय।

इन ग्यारह बातोंमेंसे जिनसे जितनी बातोंका पालन हो सके, उतना करनेकी चेष्टा करें। श्रीराम-नामका जप, कीर्तन, माता-पिता आदि गुरुजनोंके चरणोंमें प्रणाम, सबसे प्रेम, ब्रह्मचर्यका अधिक-से-अधिक पालन, सत्य-भाषण आदि बातें तो जीवनभर पालन करने योग्य हैं। इनका अभ्यास अधिक-से-अधिक बढ़ाना चाहिये। श्रीरामकी भक्तिके लिये इन्हीं व्रतोंकी आवश्यकता है।
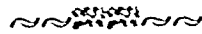
श्रीरामनवमीव्रत एवं पूजन-विधि

चैत्र शुक्ल नवमीको 'श्रीरामनवमी' का व्रत होता है। यह व्रत मध्याह्नव्यापिनी दशमीविद्धा नवमीको करना चाहिये। अगस्त्यसंहितामें कहा गया है कि यदि चैत्र शुक्ल नवमी पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो और वही मध्याह्नके समय रहे तो महान् पुण्यदायिनी होती है। अष्टमीविद्धा नवमी विष्णुभक्तोंको छोड़ देनी चाहिये। वे नवमीमें व्रत तथा दशमीमें पारणा करें। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमीके दिन स्वयं श्रीहरिका रामावतार हुआ। पुनर्वसु नक्षत्रसे संयुक्त

* 'राम', 'रामाय नमः' या 'सीताराम'

नवमी तिथि सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। जो रामनवमीका व्रत करता है, उसके अनेक जन्मार्जित पापोंकी राशि भस्मीभूत हो जाती है और उसे भगवान् विष्णुका परमपद प्राप्त होता है। श्रीरामनवमीव्रतसे भुक्ति एवं मुक्ति दोनोंकी ही सिद्धि होती है। इस उत्तम व्रतको करके वह सर्वत्र पूज्य होता है।

श्रीरामनवमीके दिन प्रात:काल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर अपने घरके उत्तर भागमें एक सुन्दर मण्डप बना ले। मण्डपके पूर्वद्वारपर शङ्ख, चक्र तथा श्रीहनुमान्‌जीकी स्थापना करे; दक्षिणद्वारपर बाण, शार्ङ्गधनुष तथा श्रीगरुडजीकी, पश्चिमद्वारपर गदा, खड्ग और श्रीअङ्गदजीकी एवं उत्तरद्वारपर पद्म, स्वस्तिक और श्रीनीलजीकी स्थापना करे। बीचमें चार हाथके विस्तारकी वेदिका होनी चाहिये, जिसमें सुन्दर वितान एवं सुन्दर तोरण लगे हों।

इस प्रकार तैयार किये गये मण्डपके मध्यमें परिकरोंसहित भगवान् श्रीसीतारामको प्रतिष्ठित कर विविध उपचारोंसे यथाविधि पूजन करे।

तदनन्तर निम्न मन्त्रसे भगवान्‌की आरती करनी चाहिये—

मङ्गलार्थं महीपाल नीराजनमिदं हरे।
संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय कर्पूरारार्तिक्यं समर्पयामि।

हे पृथिवीपालक भगवान् श्रीरामचन्द्र! आपके सर्वविध मङ्गलके लिये यह आरती है। हे जगन्नाथ! इसे आप स्वीकार करें। आपको प्रणाम है।

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर किसी शुद्ध पात्रमें कपूर तथा (एक या पाँच अथवा ग्यारह) घीकी बत्ती जलाकर परिकरसहित भगवान् श्रीसीतारामजीकी आरती उतारनी चाहिये और समवेतस्वरमें निम्नलिखित आरतीका गायन करना चाहिये—

आरती कीजै श्रीरघुबरकी, सत चित आनँद शिव सुंदरकी॥
दशरथ-तनय कौसिला-नन्दन, सुर-मुनि-रक्षक दैत्य-निकन्दन,
अनुगत-भक्त भक्त-उर-चन्दन, मर्यादा-पुरुषोत्तम वरकी॥
निर्गुन सगुन, अरूप-रूपनिधि, सकल लोक-वन्दित विभिन्न विधि,
हरण शोक-भय, दायक सब सिधि, मायारहित दिव्य नर-वरकी॥
जानकिपति सुराधिपति जगपति, अखिल लोक पालक त्रिलोक-गति,
विश्ववन्द्य अनवद्य अमित-मति, एकमात्र गति सचराचरकी॥
शरणागत-वत्सलव्रतधारी, भक्त-कल्पतरु-वर असुरारी,
नाम लेत जग पावनकारी, वानर-सखा दीन-दुख-हरकी॥

पुष्पाञ्जलि, प्रदक्षिणा एवं प्रणाम—अञ्जलिमें पुष्प लेकर निम्न श्लोक पढ़ना चाहिये—

नमो देवाधिदेवाय रघुनाथाय शार्ङ्गिणे।
चिन्मयानन्तरूपाय सीतायाः पतये नमः॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।

'देवोंके देव, शार्ङ्गधनुर्धर, चिन्मय, अनन्त रूप धारण करनेवाले, सीतापति भगवान् श्रीरघुनाथजीको बारम्बार प्रणाम है।'

पुष्पार्पण करके निम्नलिखित श्लोक पढ़ते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिये—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे॥

'ब्रह्महत्या आदि जितने भी पाप हैं, वे सभी प्रदक्षिणाके पद-पदपर नि:शेष हो जाते हैं।'

प्रदक्षिणा करके भगवान् श्रीसीतारामको प्रणाम करना चाहिये एवं उनकी प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये कातर-याचना करनी चाहिये।

मन्दिरोंमें भी भगवान्‌को पञ्चामृतस्नान, यथाविधि पूजन तथा पँजीरी और फलका भोग लगाकर मध्याह्नकालमें (बारह बजे) विशेष आरती एवं पुष्पाञ्जलि आदि करनेकी परम्परा है। आरतीके अनन्तर भक्तोंको पञ्चामृत, पँजीरीका प्रसाद दिया जाता है।

मुमुक्षुजनोंको चाहिये कि आत्मकल्याणके लिये सदा श्रीरामनवमी व्रत करें। श्रीरामनवमीव्रत करनेवाला सभी पापोंसे मुक्त होकर सनातन ब्रह्म भगवान् श्रीसीतारामजीको प्राप्त कर लेता है।

श्रीरामनवमीके दिन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके प्रतिमा-दानका अत्यधिक माहात्म्य श्रीअगस्त्यसंहितामें कहा गया है। प्रतिमा स्वर्ण या पाषाण अथवा काष्ठकी भी हो सकती है। स्वर्णपत्रपर भगवान् श्रीसीतारामजीका चित्र या रेखाचित्र अङ्कित करके भी उस चित्रपत्रका दान किया जा सकता है।

श्रीरामनवमीव्रतकी महिमा

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीरंजनसूरिदेवजी)

भारतवर्ष संस्कृति-प्रधान देश है। अतएव, इसके सभी धार्मिक-सामाजिक कृत्यों; जैसे—व्रत-उपासना, पर्व-त्योहार आदिका कोई-न-कोई सांस्कृतिक आधार अवश्य होता है। विशेषतया व्रतोंमें तो सांस्कृतिक उन्नयनका एक-न-एक शुभ संदेश निश्चय ही निहित रहता है। यों तो भारतीय ज्योतिषके अनुसार चान्द्रमासके शुक्ल और कृष्णपक्षकी जो पंद्रह-पंद्रह तिथियाँ हैं, उनमें प्रत्येक तिथि व्रतकी तिथि है अर्थात् प्रत्येक तिथिको व्रत रखनेका नियम है। तथापि श्रीरामनवमीव्रतका विधान अन्य व्रतोंसे कुछ विशिष्ट है। इसका सांस्कृतिक मूल्य तो है ही, वैज्ञानिक महत्त्व भी है। साथ ही यह भगवान् श्रीराम और रामभक्त श्रीहनुमान् दोनोंसे सम्बद्ध व्रतके रूपमें लोकप्रसिद्ध है।

'अगस्त्यसंहिता' में लिखा है कि चैत्र शुक्लपक्षकी मध्याह्नसे शुरू होनेवाली दशमीयुक्त नवमी व्रतके लिये शुभ है। यदि उस दिन पुनर्वसु नक्षत्रका योग हो जाय, तब तो वह अतिशय पुण्यदायिनी होती है। नवमीको व्रत-उपवास करके दशमीके दिन पारण करनेकी शास्त्राज्ञा है। अगस्त्यसंहिताके अनुसार चैत्र शुक्ल नवमीके दिन पुनर्वसु नक्षत्र, कर्कलग्नमें जब सूर्य अन्यान्य पाँच ग्रहोंकी शुभ दृष्टिके साथ मेषराशिपर विराजमान थे, तभी साक्षात् भगवान् श्रीरामका माता कौसल्याके गर्भसे जन्म हुआ। इसलिये उस दिन जो कोई व्यक्ति दिनभर उपवास और रातभर जागरणका व्रत रखकर भगवान् रामकी पूजा करता है तथा अपनी आर्थिक स्थितिके अनुसार दान-पुण्य करता है, वह अनेक जन्मोंके पापोंको भस्म करनेमें समर्थ होता है।

शास्त्रोंने बताया है कि कोई भी व्रत हो उसके लिये श्रद्धा-भक्ति और नियम-निष्ठा अवश्य होनी चाहिये। विना इनके मनकी अशुद्धता और अपवित्रता कदापि दूर नहीं हो सकती। जब भौतिकता प्रबल-प्रचण्ड होकर संस्कृतिको निगलनेपर उतारू हो जाय, तब श्रद्धा-भक्तिपूर्ण व्रत-उपासना ही आवश्यक होती है। रामनवमीके दिन भगवान् रामने जन्म लिया था, अतएव उस दिन उपवास और जागरणके द्वारा उन महापुरुषके कल्याणकारी चरित्रका अनुचिन्तन और अनुशीलन होना चाहिये।

'व्रतार्क' के अनुसार रामनवमीका दिन सांस्कृतिक पावनताके एकच्छत्र रामराज्यका दिन है। व्रतके एक दिन पूर्व अष्टमीको इन्द्रिय-संयमका पालन करते हुए उषा-वेलामें उठना चाहिये। शान्तचित्तसे नित्यकृत्यकी समाप्तिके बाद नदी या झरनेमें स्नान करना अधिक उत्तम है। उस दिन किसी वेदवेदाङ्गनिष्णात रामभक्त विद्वान् ब्राह्मणका पूजाके निमित्त आचार्यके रूपमें वरण करना चाहिये। उनकी पूजा करनी चाहिये। व्रती हविष्यान्नका भक्षण करे तथा आचार्यसे रामकथाका श्रवण करता हुआ रात्रिमें भूमिपर शयन करे। नवमीके दिन स्वस्थचित्त होकर आचार्यके निर्देशानुसार घरके उत्तरकी ओर एक सुन्दर और सुसज्जित मण्डप बनवाकर, उसमें रामपूजाका उत्सव करना चाहिये। दिनमें आठों पहर रामकी कथा और उनका कीर्तन तथा स्तोत्र-प्रार्थना आदिके साथ गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, कपूर, अगरु, कस्तूरी आदि पूजा-द्रव्योंसे भगवान् रामकी प्रतिमाकी विधिवत् प्रतिष्ठा तथा अर्चना करनी चाहिये। साथ ही माता कौसल्या तथा आर्यश्रेष्ठ श्रीदशरथ, हनुमान् आदिकी पूजा करनी चाहिये। हवन और वेदपाठ भी कराना चाहिये। इस पूजन और वेदपाठरूप सांस्कृतिक उत्सवसे वातावरणकी शुद्धि हो जाती है, जिससे महामारी आदि जनपदध्वंसी या देशव्यापी रोगोंका प्रकोप शान्त होता है।

जबतक हम तन, मन और वचनसे शुद्ध नहीं होते, तबतक न हमारा सांस्कृतिक उत्थान ही सम्भव है और न हमें कोई आध्यात्मिक लाभ ही प्राप्त हो सकता है। इसीलिये आजके दिन यह संकल्प किया जाता है—'सकलपापक्षयकामोऽहं श्रीरामप्रीतये श्रीरामनवमीव्रतं करिष्ये।' अर्थात् 'सब पापोंके क्षयकी कामनासे मैं श्रीरामकी प्रसन्नताके लिये श्रीरामनवमीव्रत करूँगा।' श्रीराम तो भगवान् हैं, अतएव उनकी प्रसन्नताके लिये हृदयकी पूर्ण पवित्रता अपेक्षित है।

रामनवमीके दिन स्वयं भगवान्ने नरलीला करनेके लिये रामके रूपमें अवतार लिया था—जबकि रावण और उसके दुर्दान्त सहायक राक्षसोंका अत्याचार बढ़ा हुआ था और सज्जनोंका अस्तित्व संकटमें था, वे हर पल

असुरक्षाके बोधसे ग्रस्त थे। रामावतारका कारण बताते हुए 'व्रतराज' कहता है—

दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च।
दानवानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च॥
परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः।

अर्थात् रावणके वध, दानवोंके विनाश, दैत्योंको मारने तथा धर्मकी प्रतिष्ठा एवं सज्जनोंके परित्राणके लिये स्वयं श्रीहरि रामके रूपमें अवतीर्ण हुए।

रामनवमीके दिन हमें जन-जनमें व्याप्त उनके ज्ञानगम्य रूपके दर्शनके लिये अपने हृदयको संकीर्णतासे मुक्तकर ज्ञानकी सीमाको विस्तृत करना होगा। तभी हमारी यह राम-प्रार्थना—'**विश्वमूर्तये नमः, ज्ञानगम्याय नमः, सर्वात्मने नमः**' सफल होगी। श्रीराम विश्वमूर्ति हैं, ज्ञानगम्य हैं, सर्वात्मा हैं। उन्होंने बहुतोंको साथ लेकर चलनेमें ही अपने जीवनकी सार्थकता मानी है। उनका जीवन-मन्त्र था—'**भूमा वै सुखं नाल्पे सुखमस्ति**' अर्थात् 'बहुतोंके साथ चलनेमें ही सच्चा सुख है, अल्पमें नहीं।'
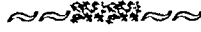
श्रीरामनवमी तो हमें यही सांस्कृतिक संदेश देती है—अपनेको शुद्ध करो, ज्ञानकी सीमाका विस्तार करो, आत्माके साथ ही विश्वात्माको पहचानो तथा सद्भाव, समभाव और सहभावसे अपने जीवनको सफल और सार्थक बनाओ, रामभक्तिमें लीन होकर राम बन जाओ। '**श्रीरामार्पणमस्तु**'। स्वयं आनन्दित रहकर दूसरोंको आनन्दित करना ही रामका रामत्व है।

श्रीराम-जन्मोत्सव एवं छठी-महोत्सव

(श्रीरामचरणजी चंचरीक)

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके अनुसार भगवान् श्रीरामका जन्म-महोत्सव अयोध्यामें बहुत ही उत्साहसे मनाया गया।

जन्मके समय गन्धर्वोंने मधुर गीत गाये। अप्सराओंने नृत्य किया। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं तथा आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। अयोध्यापुरीमें बहुत बड़ा उत्सव हुआ। मनुष्योंकी भारी भीड़ एकत्र हुई। गलियाँ और सड़कें लोगोंसे खचाखच भरी थीं। बहुत-से नट और नर्तक वहाँ अपनी कलाएँ दिखा रहे थे—

जगुः कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात् पतत्॥
उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलः।
रथ्याश्च जनसम्बाधा नटनर्तकसंकुलाः॥

(वा०रा० १।१८।१७-१८)

जन्मोत्सव सभी उत्सवोंमें महत्त्वपूर्ण है, विशेष आनन्दप्रद है, भगवान्का जन्म तो श्रीमद्भगवद्गीताके अनुसार '**जन्म कर्म च मे दिव्यम्**' दिव्य है। इसीलिये श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णके प्राकट्यको परब्रह्म परात्पर परमात्माका प्राकट्य बताकर नन्दोत्सवके रूपमें वर्णित किया गया है और इन दोनों उत्सवोंको आज भी व्यापक रूपमें मनानेकी परम्परा स्थापित है।

भारतीय संस्कृतिमें जन्मको उत्सवके रूपमें लिया गया है। समग्र सृष्टि प्रकट होनेके साथ ही उत्सवका उत्साह देती है। महाकवि कालिदासने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटकमें वर्णन किया है कि शकुन्तलाके द्वारा लगाये गये पौधोंमें प्रथम बार पुष्प लगनेपर उत्सव मनाया गया—

'आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः'

तात्पर्य यह है कि हमारी संस्कृतिमें जन्म चाहे वह पशु-पक्षी अथवा वनस्पतिका ही क्यों न हो, विशेष आनन्दकी अनुभूति करा देता है। भगवान्का जन्म होना तो परमानन्ददायक होगा ही। भारतवर्षमें अवतारोंकी जयन्तियाँ उत्सवके रूपमें मनायी जाती हैं।

अयोध्या, जनकपुर, जयपुर और अन्य छोटे-बड़े नगरों-ग्रामोंमें राम-जन्मोत्सवके छठें दिन छठी-उत्सव मनाया जाता है। श्रीमद्देवीभागवतके नवम स्कन्धमें नारद-नारायण-संवादके रूपमें षष्ठीदेवीका स्तोत्र मिलता है—

बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु।
देवरक्षणकारिण्यै षष्ठी देव्यै नमो नमः॥

रैवासापीठ सीकर (राजस्थान)-के संस्थापक श्रीअग्रदेवाचार्यजी (विक्रम सं० १५७०)-की वाणीमें छठी-प्रकरण वंशावलीके रूपमें मिलता है। आगे चलकर श्रीझांझूदासजी (हरसोली) जयपुरके वंशज संत कवि

श्रीसियासखीजीने इसे व्यापक रूप प्रदान किया। श्रीसियासखीजीका स्थितिकाल वि०सं० १८८९ के पूर्व है। हरसोली ग्रामके श्रीरघुनाथमन्दिरमें इनका छठी-प्रकरण संग्रहके रूपमें प्राप्त है।

महात्मा अग्रदासजी और गोस्वामी तुलसीदासजीकी वाणियोंके अतिरिक्त सियासखीजीके पदोंका समन्वय छठी-उत्सवको सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान करता है। राजस्थान, उत्तर प्रदेश और बिहारके अनेक मन्दिरोंमें छठी-उत्सवके सहस्रों पद मिलते हैं, पर श्रीसियासखीजीने इन्हें उत्सव-क्रमसे स्वरचित पदोंके साथ अपने छठी-उत्सव प्रकरणमें संग्रहीत किया है। उनमेंसे कुछ पद यहाँ दिये गये हैं—

(१)

बंदउँ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥
देव दनुज गंधर्ब सुहाये। मुनिजन नाग बिमल जस गाये॥
राक्षस भूत प्रेत बेताला। उरग पिसाच और दिग्पाला॥
साकनि डाकनि जे भव चरहीं। गुन अवगुन सब जग में कहहीं॥
रामलला के परम उछाहू। विघन न करें बदूँ सब काहू॥
'सियासखी' सबहिन सिरनाई। देहुँ राम पद भगति सुहाई॥

(२)

राम पियारे की छटियाँ।
रानी कौशल्या वारी गोद लियाँ हैं, जिन देखी सोई थकियाँ।
राजा दशरथ बैठ्या दान देत हैं, मंगल गावत सखियाँ।
'सन्तसखी' ऋषिराज कृपा तें, खास खवासी में रखियाँ॥

(३)

सुन लीज्योजी महाराज बधाई भूप धरां।
सहनाई सरसाई सम सुर नोबत बाज झड़ां-झड़ां॥
साज सिंगार चलोरी सजनी कर विच मंगल थाल धरां।
'सियासखी' मुख काजर लपटो रावल राई लोन करां॥

(४)

दाई पीरो लै पहराई।
मनि गन भूपन वसन सोहने ले सिरताज कराई॥
नेग न्यौछावर पाय ललाकी उमँगी अङ्गन माई।
चिरञ्जीवो कौशल्यानन्दन देत असीस सुहाई॥
आनन्द भरी खरी रावल में बोलत हिय हुलसाई।
कराँु अजाचिक बहुरि न जाचूँ यह दरबार बिहाई॥

रामलला कूँ नैना निरखूँ अपनी गोद खिलाई।
'सियासखी' के यह अभिलाषा माँगत मोद बधाई॥

(५)

झूलत च्यार कुँवर इक ठौर।
अवध अजिर मन्दिर मंडप बिच मनमथ को चितचोर॥
मोद भरी सखियाँ सब उमँगी मधुरे देत हिलोर।
'सियासखी' लखि स्याम मनोहर भई सारद मति भोर॥

(६)

रघुवंशी जजमान तिहारो ढाढ़ी आयो।
राम जनम सुनके हूँ आयो राख हमारो मान॥
ऐक बेर हौ पहलै आयो जब कौशल्या ब्याही।
दै गहनों ढाढ़नि पहनायो बहुत बधाई पायो॥
जनमें भरत शत्रुघ्न लछमन रघुपति परम उदारा।
च्यारों मेरा नेग नबेरो दशरथ जू दातारा॥
बड़े ही बयस सुत दिये विधाता तबही आय हूँ गायो।
अस्व गज रथ सोनो मोती दे जस बितान जग छायो॥
करहा वाजि दिये कर जोरी कनक रतन भरि नाग।
बहुत दूध की महषी दीनी फले हमार भाग॥
मेर आस तिहारा घर की ओरन सों नहिं काज।
फलो असीस हमारे मुख की बढ़ो वंस कुल राज॥
करहा की गति नाचन लाग्यो ढाढ़नि हुरक वजाई।
कौसल्या कैकेयी सुमित्रा माणिक मुठी उठाई॥
वारि-वारि कर दान देत हैं लेहैं जिनको लाग।
दियो दुसाला किये निहाला ओर गूंदी के वाग॥
रतनजटित ढोटा पहनायो ठोड़ी कुण्डल कान।
महाराजा दशरथ तेही अवसर हाटक दीनूं दान॥
गाय भैंस घोड़ी मुकलाई मेली गूँदी में हांस।
रतन दान ओर हेम जराऊ दै खोली मन गांस॥
तव ढाढ़ी प्रफुलित होय बोल्यो सुनो नृपति मोरी बात।
पोरि बसावो रावरी जी फूल्यो अंगन न मात॥
येक मनोरथ मेर मन को द्वार पड्यो जस गाऊँ।
कौसल्या सुत नैया निरखूँ अपनी गोद खिलाऊँ॥
जनम बधाई दशरथ सुत की गाऊँ सुनै और गाव।
अरथ धरम और काम मोख फल भक्ति पदारथ पाव॥
बहुत भाँति ढाढ़ी पहनायो ज्यों माँग्यो सोई दीनूं।
'अग्रदास' को दान अभय पद बहुरि अयाचक कीनूं॥

अनङ्गत्रयोदशी

[चैत्र शुक्ल त्रयोदशी]

चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी 'अनङ्गत्रयोदशी' कहलाती है। इस दिन व्रत करनेसे दाम्पत्य-प्रेममें वृद्धि होती है तथा पति-पुत्रादिका अखण्ड सुख प्राप्त होता है। भविष्यपुराणके अनुसार चैत्र शुक्ल त्रयोदशीको कामदेव, रति और वसन्तकी पूजा करके दम्पति सुख-सौभाग्य तथा पुत्रकी प्राप्ति करते हैं—

चैत्रोत्सवे सकललोकमनोनिवासे
कामं त्रयोदशतिथौ च वसन्तयुक्तम्।
पत्न्या सहार्च्य पुरुषप्रवरोऽथ योषि-
त्सौभाग्यरूपसुतसौख्ययुतः सदा स्यात्॥

यह व्रत इस तिथिको आरम्भ कर वर्षभर प्रत्येक त्रयोदशीको किया जाता है। इस व्रतको स्त्री-पुरुष दोनों ही करते हैं। त्रयोदशी भगवान् शंकरजीकी भी प्रिय तिथि है और भगवान् शंकर दाम्पत्य-प्रेमके आदर्श माने जाते हैं। अतः इस दिन व्रत करनेसे दाम्पत्य-प्रेमकी अभिवृद्धि होती है। इस दिन प्रातःकाल अशोकको दातौन कर स्नान करना चाहिये तथा व्रतका संकल्प लेना चाहिये।

एक उत्तम कपड़ेपर मदनदेवकी मोहक मूर्ति अङ्कित करके गन्ध-पुष्पादिसे उसका पूजन करना चाहिये। पूजनमें अशोकके पत्र और पुष्प चढ़ानेका विशेष विधान है। उसके बाद घीसे बनाये हुए मोदकोंका नैवेद्य निम्नलिखित मन्त्रसे लगाना चाहिये—

नमो रामाय कामाय कामदेवस्य मूर्तये।
ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्राणां नमः क्षेमकराय वै॥

इसके बाद फलाहार या उपवास करके रात्रि-जागरण करना चाहिये तथा दूसरे दिन पारण करना चाहिये। ब्राह्मण-भोजन कराकर अनङ्ग-प्रतिमा या चित्रका पूजासामग्रीसहित दान करना चाहिये। महाराष्ट्र तथा बंगालमें इस व्रतका विशेष प्रचलन है।

श्रीहनुमज्जयन्ती

[चैत्र शुक्ल पूर्णिमा]

श्रीहनुमान्‌जीकी जयन्तीकी तिथिके विषयमें दो मत प्रचलित हैं—१-चैत्र शुक्ल पूर्णिमा और २-कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी। हनुमज्जयन्तीके दिन श्रीहनुमान्‌जीकी भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये।

व्रत-विधि—व्रतीको चाहिये कि वह व्रतकी पूर्वरात्रिको ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक पृथ्वीपर शयन करे। प्रातः ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर श्रीराम-जानकी तथा हनुमान्‌जीका स्मरण कर नित्यक्रियासे निवृत्त हो स्नान करे।

हनुमान्‌जीकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कर सविधि षोडशोपचार पूजन—'**ॐ हनुमते नमः**' मन्त्रसे करे। इस दिन वाल्मीकीय रामायण अथवा तुलसीकृत श्रीरामचरितमानसके सुन्दरकाण्डका या श्रीहनुमानचालीसाके अखण्ड पाठका आयोजन करना चाहिये। हनुमान्‌जीका गुणगान, भजन एवं कीर्तन करना चाहिये। श्रीहनुमान्‌जीके विग्रहका सिन्दूरसे शृङ्गार करना चाहिये। नैवेद्यमें गुड़, भीगा चना या भुना चना तथा बेसनका लड्डू रखना चाहिये।

पूजनके पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराकर प्रसाद ग्रहण करना चाहिये।

कथा—श्रीरामावतारके समय ब्रह्माजीने देवताओंको वानर और भालुओंके रूपमें पृथ्वीपर प्रकट होकर श्रीरामजीकी सेवा करनेका आदेश दिया था। इससे उस समय सभी देवता अपने-अपने अंशोंसे वानर और भालुओंके रूपमें उत्पन्न हुए। इनमें वायुके अंशसे स्वयं रुद्रावतार महावीर हनुमान्‌जीने जन्म लिया था। इनके पिता वानरराज केसरी और माता अञ्जनादेवी थीं। जन्मके समय इन्हें क्षुधापीडित देखकर माता अञ्जना वनसे फल लाने चली गयीं, उधर सूर्योदयके अरुण बिम्बको फल समझकर बालक हनुमानने छलाँग लगायी और पवन-वेगसे जा पहुँचे सूर्यमण्डल। उस

दिन राहु भी सूर्यको ग्रसनेके लिये सूर्यके समीप पहुँचा था। हनुमान्‌जीने फलप्राप्तिमें अवरोध समझकर उसे धक्का दिया तो वह घबराकर इन्द्रके पास पहुँचा। इन्द्रने सृष्टिकी व्यवस्थामें विघ्न समझकर बालक हनुमान्‌पर वज्रका प्रहार किया, जिससे हनुमान्‌जीकी बायीं ओरकी ठुड्डी (हनु) टूट गयी। अपने पुत्रपर वज्रके प्रहारसे वायुदेव अत्यन्त क्षुब्ध हो गये और उन्होंने अपना संचार बंद कर दिया। वायु ही प्राणका आधार है, वायुके संचरणके अभावमें समस्त प्रजा व्याकुल हो उठी। समस्त प्रजाको व्याकुल देख प्रजापति पितामह ब्रह्मा सभी देवताओंको लेकर वहाँ गये, जहाँ अपने मूर्च्छित शिशु हनुमान्‌को लिये वायुदेव बैठे थे। ब्रह्माजीने अपने हाथके स्पर्शसे शिशु हनुमान्‌को सचेत कर दिया। सभी देवताओंने उन्हें अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे अवध्य कर दिया। पितामहने वरदान देते हुए कहा—मारुत! तुम्हारा यह पुत्र शत्रुओंके लिये भयंकर होगा। युद्धमें इसे कोई जीत नहीं सकेगा। रावणके साथ युद्धमें अद्भुत पराक्रम दिखाकर यह श्रीरामजीकी प्रसन्नताका सम्पादन करेगा।

हनुमान्‌जीकी कृपाप्राप्तिके लिये निम्न श्लोकोंका पाठ करना चाहिये—

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥

(वा०रा० ५।४२।३३—३६)

सौभाग्यशयन-व्रत

[चैत्र शुक्ल तृतीया]

(श्रीआञ्जनेयजी एन०डी०)

सौभाग्यशयनव्रतकी महिमाके सम्बन्धमें मत्स्यपुराणमें वर्णन आया है कि पूर्वकालमें जब सम्पूर्ण लोक दग्ध हो गये थे तब समस्त प्राणियोंका सौभाग्य एकत्र हो गया। वह सौभाग्यतत्त्व वैकुण्ठलोकमें जाकर भगवान् श्रीविष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित हो गया। तदनन्तर दीर्घकालके बाद जब पुनः सृष्टिरचनाका समय आया, तब प्रकृति और पुरुषसे युक्त सम्पूर्ण लोकोंके अहंकारसे आवृत हो जानेपर श्रीब्रह्माजी तथा श्रीविष्णुजीमें स्पर्धा जाग्रत् हुई। उस समय पीले रंगकी (अथवा शिवलिङ्गके आकारकी) अत्यन्त भयंकर अग्निज्वाला प्रकट हुई। उससे भगवान्‌का वक्षःस्थल तप उठा, जिससे वह सौभाग्यपुञ्ज वहाँसे गलित हो गया। श्रीविष्णुके वक्षःस्थलका आश्रय लेकर स्थित वह सौभाग्य अभी रसरूप होकर धरतीपर गिरने रसराज (पारा) आदि सात सौभाग्यदायिनी औषधियाँ उत्पन्न हुईं तथा आठवाँ पदार्थ नमक हुआ—इन आठोंको 'सौभाग्याष्टक' कहते हैं।

ब्रह्माजीके पुत्र दक्षने पूर्वकालमें जिस सौभाग्यरसका पान किया था, उसके अंशसे उन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई जो सती नामसे प्रसिद्ध हुईं। अपने अद्भुत सौन्दर्य, माधुर्य तथा लालित्यके कारण ललिता भी इनका नाम है। ये देवी सती तीनों लोकोंकी सौभाग्यरूपा हैं। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको विश्वात्मा भगवान् शंकरके साथ इनका विवाह हुआ था। अतः इस दिन उत्तम सौभाग्य तथा भगवान् शंकरकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये सौभाग्यशयन नामक व्रत किया जाता है। यह व्रत सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है।

नैवेद्य तथा नाना प्रकारके फलोंद्वारा उनकी पूजा करनी

चाहिये। सर्वप्रथम दोनोंके नाममन्त्रोंसे उनके विविध अङ्गोंकी पूजा करे—'**पाटलायै नमोऽस्तु, शिवाय नमः**'—इन मन्त्रोंसे क्रमशः पार्वती और शिवके चरणोंका, '**जयायै नमः, शिवाय नमः**' से दोनोंकी घुट्टियोंका, '**त्रिगुणाय रुद्राय नमः, भवान्यै नमः**' से पिण्डलियोंका, '**भद्रेश्वराय नमः, विजयायै नमः**' से घुटनोंका, '**हरिकेशाय नमः, वरदायै नमः**' से ऊरुओंका, '**शंकराय नमः, ईशायै नमः**' से दोनोंके कटिभागका, '**कोटव्यै नमः, शूलिने नमः**' से कुक्षिभागका, '**शूलपाणये नमः, मङ्गलायै नमः**' से उदरका, '**सर्वात्मने नमः, ईशान्यै नमः**' से दोनों स्तनोंका, '**वेदात्मने नमः, रुद्राण्यै नमः**' से कण्ठका, '**त्रिपुरघ्नाय नमः, अनन्तायै नमः**' से दोनों हाथोंका, '**त्रिलोचनाय नमः, कालानलप्रियायै नमः**' से बाँहोंका, '**सौभाग्यभवनाय नमः**' से आभूषणोंका, '**स्वाहा स्वधायै नमः, ईश्वराय नमः**' से दोनोंके मुखमण्डलका, '**अशोकमधुवासिन्यै नमः**'—इस मन्त्रसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले ओठोंका, '**स्थाणवे नमः, चन्द्रमुखप्रियायै नमः**' से मुँहका, '**अर्द्धनारीश्वराय नमः, असिताङ्ग्यै नमः**' से नासिकाका, '**उग्राय नमः, ललितायै नमः**' से दोनों भौंहोंका, '**शर्वाय नमः, वासव्यै नमः**' से केशोंका, '**श्रीकण्ठनाथाय नमः**' से केवल शिवके बालोंका तथा '**भीमोग्ररूपिण्यै नमः, सर्वात्मने नमः**' से दोनोंके मस्तकोंका पूजन करे।

इस प्रकार शिव और पार्वतीकी विधिवत् पूजा करके उनके आगे सौभाग्याष्टक रखे। ईख, रसराज (पारा), निष्पाव (सेम), राजधान्य (शालि या अगहनी), गोक्षीर (क्षीरजीरक), कुसुम्भ (कुसुम नामक) पुष्प, कुंकुम (केसर) तथा नमक—इन आठ वस्तुओंको देनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है; इसलिये इनकी '**सौभाग्याष्टक**' संज्ञा है।*

इस प्रकार शिव-पार्वतीके आगे सब सामग्री निवेदित करके रातमें सिंघाड़ा खाकर भूमिपर शयन करे। फिर प्रातः उठकर स्नान और जप करके पवित्र होकर माला, वस्त्र और आभूषणोंके द्वारा ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। इसके बाद सौभाग्याष्टकसहित शिव और पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमाओंको ललितादेवीकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको निवेदन करे। दानके समय इस प्रकार बोले—

ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, सती और उमा—ये प्रसन्न [illegible]

इस प्रकार सौभाग्यकी अभिलाषावाले मनुष्योंको [illegible] वर्षतक प्रत्येक तृतीयाको भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजन क[illegible] चाहिये। एक वर्षतक इस व्रतका विधिपूर्वक अनुष्ठ[illegible] करके पुरुष, स्त्री या कुमारी भक्तिके साथ शिवजीकी पू[illegible] करे। व्रतकी समाप्तिके समय सम्पूर्ण सामग्रियोंसे यु[illegible] शय्या, शिव-पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमा, बैल और गौ[illegible] दान करे। कृपणता छोड़कर दृढ़ निश्चयके साथ भगवान्[illegible] पूजन करे। जो स्त्री इस प्रकार उत्तम '**सौभाग्यशयन**' नाम[illegible] व्रतका अनुष्ठान करती है, उसकी कामनाएँ पूर्ण होती [illegible] अथवा यदि वह निष्कामभावसे इस व्रतको करती है त[illegible] उसे नित्यपदकी प्राप्ति होती है। प्रतिमास इसका आचरण करनेवाला पुरुष यश और कीर्तिको प्राप्त करता है। ज[illegible] बारह, आठ या सात वर्षोंतक सौभाग्यशयनव्रतका अनुष्ठान करता है, वह शिवलोक प्राप्त करता है।

---

* इक्षवो रसराजश्च निष्पावा राजधान्यकम्॥
विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुङ्कुमं तथा। लवणं चाष्टमं तद्वत् सौभाग्याष्टकमुच्यते॥ (मत्स्य० ६०।८-९)

राजस्थानका अनूठा महोत्सव—'गणगौर'

[चैत्र कृष्ण प्रतिपदासे चैत्र शुक्ल तृतीयातक]

(श्रीमती उषाजी शर्मा)

देवाधिदेव भगवान् शंकरकी अर्धाङ्गिनी भगवती पार्वतीकी पति-भक्तिकी कोई समता नहीं। दाम्पत्यजीवनमें विशुद्ध प्रेमका स्रोत शंकर-पार्वतीमें पूर्णरूपमें अनुस्यूत है। अहंकारी दक्षप्रजापतिद्वारा सम्पादित यज्ञानुष्ठानमें अपने पति सदाशिवका अपमान सतीसे सहन नहीं हुआ। उन्होंने यज्ञस्थलमें ही सभी उपस्थित देवगणों एवं ऋषिगणोंके समक्ष योगाग्निद्वारा अपने शरीरका दाह कर लिया। पौराणिक आख्यान बताते हैं कि सतीने पुनः पर्वतराज हिमालयके घर जन्म धारण किया तथा वे पार्वती—इस नामसे जानी गयीं। देवर्षि नारदद्वारा प्रोत्साहित अपने पूर्वजन्मके पति शिवको आराधना और कठिन तपस्याद्वारा पुनः पतिरूपमें प्राप्त करनेका निश्चय कर उन्होंने सभीको आश्चर्यचकित कर डाला। माताद्वारा तपस्याका निषेध किये जानेपर उन्हें उमा नामसे भी जग जानता है। उनकी घोर तपस्यासे प्रसन्न हो आशुतोष शंकरने उन्हें अर्धाङ्गिनीरूपमें स्वीकार किया।

दाम्पत्यप्रेमके उच्चादर्शकी शिक्षा देनेहेतु शिव-पार्वतीके रूपमें ईसरगौर (ईश्वर-गौरी)-की पूजाका विधान विशेषरूपसे राजस्थानमें ईसर-गणगौरके महोत्सवरूपमें बड़ी ही श्रद्धासे सम्पन्न होता आया है। यह गौरपूजा सौभाग्यवती स्त्रियों और कन्याओंका विशेष त्योहार है। राजस्थानमें कन्याओंके लिये विवाहके उपरान्त प्रथम चैत्र शुक्ल तृतीयातक गणगौरका पूजन करना आवश्यक कर्तव्य समझा जाता है। वे होलिकादहनकी भस्म और तालाबकी मिट्टीसे ईसर-गौरकी प्रतिमाएँ बनाती हैं। उन्हें वस्त्रालंकरणोंसे सुसज्जित कर घरके चौकमें स्थापित करके श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा करती हैं। सौभाग्यवती स्त्रियोंके साथ कुमारी कन्याएँ भी श्रेष्ठ वरकी प्राप्तिके लिये इस पूजनमें भाग लेती हैं। इन दिनों पूजाके लिये हरी दूर्वा, पुष्प और जल लानेहेतु ये अपनी टोलियाँ बनाकर प्रतिदिन प्रातः सुमधुर गीत गाती हुई घरसे निकलती हैं। पासके उद्यानों एवं तालाबों-सरोवरोंसे कलशोंमें जल भरकर दूर्वा-फल-फूलसहित लौटती हैं और पवित्र स्थानपर गणगौरकी पूजा करती हैं। इस समय गाये जानेवाले गीतोंमें एक सुमधुर गीत इस प्रकार है—

बाड़ीवाला बाड़ी खोल
बाड़ी की किवाड़ी खोल, छोरिया आई दूकान।
ये कुणजी की बेटी छो
कुणारी जी भैण छो कै तुम्हार नाम छ।
म्हे ब्रह्माजी री बेटी छा।
ईसरदास की भैण छा सेवा म्हारो नाम छ
बाड़ीवाला बाड़ी खोल बाड़ी की किवाड़ी खोल।

गौरीकी प्रार्थनाके साथ उन कन्याओंके गीतमें वासन्तिक प्रेमानुराग भी देखनेमें आता है। जैसे—

गौर ए गनगौर माता! खोल किंवाड़ी।
बाहर ऊबी रौवां, पूजण वाली॥
पूजौ ए पुजावो बाई, क्या फल माँगो!
अन्न माँगाँ धन माँगाँ लाछ माँगाँ लक्ष्मी॥
जलहर जानी काकल माँगाँ राता देई माई।
कान कँवर सी वीरो माँगाँ, राई-सी भोजाई॥
ऊँट चढ्यो बहणेई माँगाँ चुड़लावाली भहणा।

एक दूसरे गीतमें वे गाती हैं—

गौरी तिहारेड़ा देस में जी, चोखी सी मेहंदी होय।
सो म्हे लाइ थी पूजंता जी, सोम्हरि अविचल होय।
गौरी तिहारेड़ा देस में जो चोखी सो काजल होय।
चोखो सो गहणाँ होय चोखो सो कापड़ होय।
सोम्हे पहरयो थो पूजंता जी, सो म्हारे अविचल होय।

गणगौरकी पूजाके अनेक अवसरोंके गीतोंकी प्रमुख पंक्तियाँ जिनमें कुमारी कन्याएँ परिवारके प्रति अपने कोमल भावोंको इस प्रकार व्यक्त करती हैं—

ईसरदास ल्यावा ए गनगौर।
प्याला पीनी आव ए गनगौर।
मुजरा करता आव ए गढोर।

तथा—

म्हारी गौर [illegible] औ राज [illegible] मुकट करो।
म्हारी गौरां न [illegible] औ राज, [illegible] मुकट करो।
ईसरदास [illegible] को [illegible] औ राज।
[illegible] [illegible] औ राज।

प्रत्येक बहनकी कामना होती है कि विवाहके समय उसका भाई उसे चुनरी ओढ़ाये, अतः वह गाती है—

बड़े से बड़ो मेरो ईसरदास बीर,
बँस छोटो कानीराम बीर।
भाय मिला व मेरो ईसरदास बीर,
चूनड़ी ऊढ़ा व मेरो कानीराम बीर।

इसी प्रकार वह गाती है—

ईसरदासजी औ माँडल्यो गनगौर।
कानीरामजी औ माँडल्यो गनगौर॥
रोवाँ की भाभी पूजल्यो गनगौर।
सुहागन रानी पूजल्यो गनगौर॥
थारो ईसर म्हारी गनगौर॥
गौर मचा व रमझौल।
सुहागन रानी पूजल्यो गनगौर॥

व्यावल वर्ष (विवाहवाले वर्ष)-की गणगौरको प्रत्येक विवाहिता अपनी छः, आठ, दस संख्यक अन्य अविवाहिताओंके वरणपूर्वक साथ लेकर ईसरगौरकी पूजा करती है। उस सौभाग्यवती विवाहिताको मिलाकर कुल लड़कियोंकी संख्या सात, नौ या ग्यारहतक हो सकती है। यह पूजाक्रम चैत्र कृष्ण प्रतिपदासे आरम्भ होकर चैत्र शुक्ल तृतीयातक रहता है। पूजाके समयके कुछेक गीत इस प्रकार भी गाये जाते हैं—

गौर गौर गोमती ईसर पूजै पारबती।
पारबती का आला गोला लागै छ सोनाका टीका॥

और अपने पीहरसे आये हुए भाइयोंके प्रति वे कैसे भाव प्रदर्शित करती हैं—

म्हारो भाई हेमल्यो खेमल्यो लाडू ल्यायो पेड़ा ल्यायो
सिंघाड़ा की सेवा ल्यायो
झरझरती जलेबी ल्यायो ओढ़ावाने चूनड़ी ल्यायो।
म्हारो भाई हेमल्यो खेमल्यो।

चैत्र शुक्ल तृतीयाको प्रातःकालकी पूजाके बाद तालाब, सरोवर, बावड़ी या कुएँपर जाकर मङ्गलगानसहित गणगौरकी प्रतिमाओंका विसर्जन किया जाता है। गणगौरकी विदाई अथवा विसर्जनका दृश्य देखने योग्य होता है। उस समय कन्याएँ एवं विवाहिताएँ वस्त्राभूषणोंको धारण कर सुसज्जित हो उसमें भाग लेती हैं। ईसर-गणगौरकी प्रतिमाओंको जलमें विसर्जित किया जाता है।

राजस्थानके राजघरानोंकी ओरसे इसी चैत्र शुक्ल तृतीयाको ईसर और गौरीकी विशाल काष्ठप्रतिमाओंको वस्त्राभूषणोंद्वारा सुसज्जित कर उनकी सवारी निकाली जाती है। यथास्थान सरोवर या तालाबके किनारे महोत्सव मनानेके बाद उन्हें गीत गाते हुए पुनः राजप्रासादोंमें स्थापित किया जाता है। गौरीको सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित किया जाता है। ईसरको ढाल-तलवार धारण कराकर वीरवेशयुक्त बनाया जाता है। गणगौरकी सवारीमें राजघरानोंके सरदार अपने दरबारियों, राजकीय अधिकारियों और पूरे लवाज़िमसहित सम्मिलित होते हैं। गाजे-बाजोंके साथ इन राजघरानोंकी राजधानियों—जयपुर, उदयपुर, जोधपुर, कोटा, बूँदी, झालावाड़ आदिके सवारियोंके दृश्य विशेष दर्शनीय बन जाते हैं। स्थानीय लोगोंके साथ आस-पासकी ग्रामीण जनता भी इसमें बड़ी संख्यामें एकत्र होकर भाग लेती है। ऐसे समयमें अच्छे-खासे मेलों-जैसा वातावरण वहाँ बन जाता है। कहीं-कहीं यह उत्सव तीन-चार दिनोंतक चलता रहता है। लोकसंस्कृति मुखर हो उठती है। वहाँके बाँके कुँवर आँखोंमें तीखा काजल लगाकर हाथोंमें चिकनी लाठियाँ लेकर धोती-कुर्ता पहने माथेपर चन्दनलेप लगाकर बाजारोंमें नर्तक बने घूमते दिखायी देते हैं। नगाड़े-ढोलकी गूँजसे सारे वातावरणमें अलौकिक उत्साह छा जाता है। जनसमूहमें सभी ओर विशेष आनन्द-सा छा जाता है।

यूँ तो यह राजस्थानका प्रमुख लौकिक त्योहार है और बड़े ही समारोहसे इसे यहाँ मनाया जाता है, किंतु ईश्वर-गौरी-पूजनके रूपमें दोलोत्सव नामसे यह अन्यत्र भी अनुष्ठित होता है। इस संदर्भमें 'निर्णयसिन्धु'में लिखा है—

चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुताम्।
सम्पूज्य.......... दोलोत्सवं कुर्यात्.............॥

देवीपुराणमें भी बताया गया है—

तृतीयायां यजेद्देवीं शङ्करेण समन्विताम्।
कुंकुमागरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगन्धकैः ॥
स्रग्गन्धधूपदीपैश्च नमनेन विशेषतः।
आन्दोलयेत् ततो वस्त्रं शिवोमातुष्टये सदा॥

इस प्रकार चैत्र शुक्ल तृतीया 'गणगौर' पूजनका एक विशिष्ट दिवस है। यह सौभाग्य तृतीयाके रूपमें भी प्रसिद्ध है।

वैशाखमासके व्रतपर्वोत्सव—

वैशाखमास-माहात्म्य

न माधवसमो मासो न कृतेन युगं समम्।
न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्॥

(स्कन्दपुराण, वै० वै० मा० २।१)

वैशाखके समान कोई मास नहीं है, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं है, वेदके समान कोई शास्त्र नहीं है और गङ्गाजीके समान कोई तीर्थ नहीं है। वैशाखमास अपने कतिपय वैशिष्ट्यके कारण उत्तम मास है।

[नारदजीने अम्बरीषसे कहा—] वैशाखमासको ब्रह्माजीने सब मासोंमें उत्तम सिद्ध किया है। वह माताकी भाँति सब जीवोंको सदा अभीष्ट वस्तु प्रदान करनेवाला है। धर्म, यज्ञ, क्रिया और तपस्याका सार है। सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित है। जैसे विद्याओंमें वेद-विद्या, मन्त्रोंमें प्रणव, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, धेनुओंमें कामधेनु, देवताओंमें विष्णु, वर्णोंमें ब्राह्मण, प्रिय वस्तुओंमें प्राण, नदियोंमें गङ्गाजी, तेजोंमें सूर्य, अस्त्र-शस्त्रोंमें चक्र, धातुओंमें सुवर्ण, वैष्णवोंमें शिव तथा रत्नोंमें कौस्तुभमणि उत्तम है, उसी प्रकार धर्मके साधनभूत महीनोंमें वैशाखमास सबसे उत्तम है। भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाला इसके समान दूसरा कोई मास नहीं है। जो वैशाखमासमें सूर्योदयसे पहले स्नान करता है, उससे भगवान् विष्णु निरन्तर प्रीति करते हैं। पाप तभीतक गर्जते हैं, जबतक जीव वैशाखमासमें प्रात:काल जलमें स्नान नहीं करता। राजन्! वैशाखके महीनेमें सब तीर्थ, देवता आदि (तीर्थके अतिरिक्त) बाहरके जलमें भी सदैव स्थित रहते हैं। भगवान् विष्णुकी आज्ञासे मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये वे सूर्योदयसे लेकर छ: दण्डके भीतर वहाँ उपस्थित रहते हैं।

वैशाख सर्वश्रेष्ठ मास है और शेषशायी भगवान् विष्णुको सदा प्रिय है। सब दानोंसे जो पुण्य होता है और सब तीर्थोंमें जो फल होता है, उसीको मनुष्य वैशाखमासमें केवल जलदान करके प्राप्त कर लेता है। जो जलदानमें है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। नृपश्रेष्ठ! प्रपादान (पौसला या प्याऊ) देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंको अत्यन्त प्रीति देनेवाला है। जिसने प्याऊ लगाकर रास्तेके थके-माँदे मनुष्योंको संतुष्ट किया है, उसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंको संतुष्ट कर लिया है। राजन्! वैशाखमासमें जलकी इच्छा रखनेवालेको जल, छाया चाहनेवालेको छाता और पंखेकी इच्छा रखनेवालेको पंखा देना चाहिये। राजेन्द्र! जो प्याससे पीड़ित महात्मा पुरुषके लिये शीतल जल प्रदान करता है, वह उतने ही मात्रसे दस हजार राजसूय यज्ञोंका फल पाता है। धूप और परिश्रमसे पीड़ित ब्राह्मणके लिये जो पंखा डुलाकर हवा करता है, वह उतने ही मात्रसे निष्पाप होकर भगवान्‌का पार्षद हो जाता है। जो मार्गसे थके हुए श्रेष्ठ द्विजको वस्त्रसे भी हवा करता है, वह उतनेसे ही मुक्त हो भगवान् विष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो शुद्ध चित्तसे ताड़का पंखा देता है, वह सब पापोंका नाश करके ब्रह्मलोकको जाता है। जो विष्णुप्रिय वैशाखमासमें पादुकादान करता है, वह यमदूतोंका तिरस्कार करके विष्णुलोकमें जाता है। जो मार्गमें अनाथोंके ठहरनेके लिये विश्रामशाला बनवाता है, उसके पुण्य-फलका वर्णन नहीं किया जा सकता। मध्याह्नमें आये हुए ब्राह्मण अतिथिको यदि कोई भोजन दे तो उसके फलका अन्त नहीं है।

वैशाखमें तेल लगाना, दिनमें सोना, कांस्यपात्रमें भोजन करना, खाटपर सोना, घरमें नहाना, निषिद्ध पदार्थ खाना, दुबारा भोजन करना तथा रातमें खाना—ये आठ बातें त्याग देनी चाहिये—

तैलाभ्यङ्गं दिवास्वापं तथा वै कांस्यभोजनम्।
खट्वानिद्रां गृहे स्नानं निषिद्धस्य च भक्षणम्॥
वैशाखे वर्जयेदष्टौ द्विभुक्तं नक्तभोजनम्॥

(स्कन्दपु० वै० वै० मा० ४।१-२)

मुक्त हो जाता है। जो सूर्योदयके समय किसी समुद्रगामिनी नदीमें वैशाख-स्नान करता है, वह सात जन्मोंके पापोंसे तत्काल छूट जाता है। सूर्यदेवके मेषराशिमें आनेपर भगवान् विष्णुके उद्देश्यसे वैशाखमास-स्नानका व्रत लेना चाहिये। स्नानके अनन्तर भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। स्कन्दपुराणमें आया है कि महीरथ नामक एक राजा था, जो कामनाओंमें आसक्त तथा अजितेन्द्रिय था, वह केवल वैशाख-स्नानके सुयोगसे वैकुण्ठधामको प्राप्त हुआ। वैशाखमासके देवता भगवान् मधुसूदन हैं। उनसे इस प्रकारकी प्रार्थना करनी चाहिये—

मधुसूदन देवेश वैशाखे मेषगे रवौ।
प्रातःस्नानं करिष्यामि निर्विघ्नं कुरु माधव॥

'हे मधुसूदन! हे देवेश्वर माधव! मैं मेषराशिमें सूर्यके स्थित होनेपर वैशाखमासमें प्रातःस्नान करूँगा, आप इसे निर्विघ्न पूर्ण कीजिये।'

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे—

वैशाखे मेषगे भानौ प्रातःस्नानपरायणः।
अर्घ्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण मधुसूदन॥

मेष-संक्रान्ति

जब सूर्य मीनराशिसे मेषराशिमें संक्रमण करते हैं तब यह काल मेष-संक्रान्ति कहलाता है और तबसे सौर वैशाखमासकी प्रवृत्ति होती है। इसी संक्रान्तिको भगवान् सूर्य उत्तरायणकी आधी यात्रा पूर्ण करते हैं। बंगालवासी इसे नववर्षके रूपमें मनाते हैं। इस संक्रान्तिको धर्मघटका दान, स्नान, तिलोंद्वारा पितरोंका तर्पण तथा मधुसूदन भगवान्‌के पूजनका विशेष महत्त्व है। पद्मपुराणके अनुसार—

तीर्थे चानुदिनं स्नानं तिलैश्च पितृतर्पणम्।
दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनम्॥
माधवे मासि कुर्वीत मधुसूदनतुष्टिदम्।

मेषकी संक्रान्तिमें दस घड़ी (चार घंटे) पहलेसे दस घड़ी (चार घंटे) बादतक आठ घंटोंका पुण्यकाल रहता है—

मेषसंक्रमे प्रागपरा दशघटिकाः पुण्यकालः।

पंद्रह घड़ी पूर्व तथा पंद्रह घड़ी बादका पुण्यकाल भी बताया गया है।

यदि रात्रिमें सूर्यकी संक्रान्ति हो तो दिनके आधेमें स्नान और दान कहा गया है—

रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्धं स्नानदानयोः॥
(नि०सि०)

वसिष्ठजीके वचनसे रातमें सूर्यकी संक्रान्ति होनेपर दिनमें उसकी क्रिया करे—

रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिवा कुर्यात्तु तत्क्रियाम्॥
(नि०सि०)

विष्णुस्मृतिमें मेष-संक्रान्तिपर प्रातःस्नान महापातकका नाश करनेवाला बताया गया है—

तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते।
हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम्॥

इस दिन सत्तूदानकी भी विधि है।

आखातीज—अक्षयतृतीयाका अध्यात्मदर्शन

[वैशाख शुक्ल तृतीया]

(श्रीजगदीशचन्द्रजी मेहता, एम्० ए०, बी०एड्०)

भारतवर्ष संस्कृतिप्रधान देश है। हिन्दूसंस्कृतिमें व्रत और त्योहारोंका विशेष महत्त्व है। व्रत और त्योहार नयी प्रेरणा एवं स्फूर्तिका संवहन करते हैं। इससे मानवीय मूल्योंकी वृद्धि बनी रहती है और संस्कृतिका निरन्तर परिपोषण तथा संरक्षण होता रहता है। भारतीय मनीषियोंने व्रत-पर्वोंका आयोजन कर व्यक्ति और समाजको पथभ्रष्ट होनेसे बचाया है। भारतीय कालगणनाके अनुसार चार स्वयंसिद्ध अभिजित् मुहूर्त हैं—चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (गुडीपडवा), आखातीज (अक्षयतृतीया),

दशहरा और दीपावलीके पूर्वकी प्रदोष-तिथि।

वैशाखमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको अक्षयतृतीया या आखातृतीया अथवा आखातीज भी कहते हैं।

'अक्षय'का शाब्दिक अर्थ है—जिसका कभी नाश (क्षय) न हो अथवा जो स्थायी रहे। स्थायी वही रह सकता है जो सर्वदा सत्य है। सत्य केवल परमात्मा (ईश्वर) ही है जो अक्षय, अखण्ड और सर्वव्यापक है। यह अक्षयतृतीया तिथि ईश्वरतिथि है। यह अक्षयतिथि परशुरामजीका जन्मदिन होनेके कारण 'परशुराम-तिथि' भी कही जाती है। परशुरामजीकी गिनती चिरञ्जीवी महात्माओंमें की जाती है।* अत: यह तिथि चिरञ्जीवी तिथि भी कहलाती है। चारों युगों (सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग)-मेंसे त्रेतायुगका आरम्भ इसी आखातीजसे हुआ है। जिससे इस तिथिको युगके आरम्भकी तिथि—युगादितिथि भी कहते हैं।

आखातीज, बद्रीनारायण-दर्शनतिथि—इसी तिथिको चारों धामोंमेंसे उल्लेखनीय एक धाम भगवान् श्रीबद्रीनारायणके

प्रेमसे ग्रहण करते हैं।

अक्षयतृतीयाको ही वृन्दावनमें श्रीविहारीजीके चरणोंके दर्शन वर्षमें एक बार होते हैं। देशके कोने-कोनेसे श्रद्धालु भक्तजन चरण-दर्शनके लिये वृन्दावन पधारते हैं।

आत्मविश्लेषण तथा आत्मनिरीक्षणतिथि—यह दिन हमें स्वयंको टटोलनेके लिये, आत्मान्वेषण, आत्मविवेचन और अवलोकनकी प्रेरणा देनेवाला है। यह दिन— *'निज मनु मुकुरु सुधारि'* का दिन है। क्षयके कार्योंके स्थानपर अक्षयकार्य करनेका दिन है। इस दिन हमें देखना-समझना होगा कि भौतिक रूपसे दिखायी देनेवाला यह स्थूल शरीर, संसार और संसारकी समस्त वस्तुएँ क्षयधर्मा हैं, अक्षयधर्मा नहीं हैं। क्षयधर्मा वस्तुएँ—असद्भावना, असद्विचार, अहंकार, स्वार्थ, काम, क्रोध तथा लोभ पैदा करती हैं जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णने गीता (१६।१८)-में आसुरीवृत्ति कहा है। जबकि अक्षयधर्मा सकारात्मक चिन्तन-मनन हमें दैवीसम्पदाकी ओर ले जाता है (गीता १६।१—३)। इससे हम त्याग, परोपकार, मैत्री, करुणा और प्रेम पाकर परम शान्ति पाते हैं, अर्थात् हमें दिव्य गुणोंकी प्राप्ति होती है। इस दृष्टिसे यह तिथि हमें जीवनमूल्योंका वरण करनेका संदेश देती है— **'सत्यमेव जयते'** की ओर अग्रसर करती है।

सामाजिक पर्व—आखातीजका दिन सामाजिक पर्वका दिन है। इस दिन कोई दूसरा मुहूर्त न देखकर स्वयंसिद्ध अभिजित् शुभ मुहूर्तके कारण विवाहोत्सव आदि माङ्गलिक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

नवान्नका पर्व है—अक्षयतृतीया

(डॉ० श्रीविद्याविन्दु सिंहजी)

भारतीय लोक-मानस सदैवसे ऋतु-पर्व मनाता रहा है। हर ऋतुके परिवर्तनको मङ्गलभावके साथ मनानेके लिये व्रत, पर्व और त्योहारोंकी एक शृंखला लोकजीवनको निरन्तर आबद्ध किये हुए है। इसी शृंखलामें अक्षयतृतीयाका पर्व वसन्त और ग्रीष्मके सन्धिकालका महोत्सव है।

वैशाख शुक्ल तृतीयाको मनाया जानेवाला यह व्रत-पर्व लोकमें बहुश्रुत और बहुमान्य है। विष्णुधर्मसूत्र, मत्स्य-पुराण, नारदीय पुराण तथा भविष्यादि पुराणोंमें इसका विस्तृत उल्लेख है तथा इस व्रतकी कई कथाएँ भी हैं। सनातन-धर्मी गृहस्थजन इसे बड़े उत्साहसे मनाते हैं। अक्षय-तृतीयाको दिये गये दान और किये गये स्नान, जप, तप, हवन आदि कर्मोंका शुभ और अनन्त फल मिलता है—

'स्नात्वा हुत्वा च दत्त्वा च जप्त्वानन्तफलं लभेत्।'

भविष्यपुराणके अनुसार सभी कर्मोंका फल अक्षय हो जाता है, इसलिये इसका नाम 'अक्षय' पड़ा है।

यदि यह तृतीया कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त हो तो विशेष फलदायिनी होती है। भविष्यपुराण यह भी कहता है कि इस तिथिकी युगादि तिथियोंमें गणना होती है; क्योंकि कृतयुग (सत्ययुग)-का (कल्पभेदसे त्रेतायुगका) प्रारम्भ इसी तिथिसे हुआ है। इसमें जलसे भरे कलश, पंखे, चरणपादुकाएँ (खड़ाऊँ), पादत्राण (जूता), छाता, गौ, भूमि, स्वर्णपात्र आदिका दान पुण्यकारी माना गया है। इस दानके पीछे यह लोकविश्वास है कि इस दिन जिन-जिन वस्तुओंका दान किया जायगा वे समस्त वस्तुएँ स्वर्गमें गरमीकी ऋतुमें प्राप्त होंगी। इस व्रतमें घड़ा, कुल्हड़, सकोरा आदि रखकर पूजा की जाती है।

बुन्देलखण्डमें यह व्रत अक्षयतृतीयासे प्रारम्भ होकर पूर्णिमातक बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है। कुमारी कन्याएँ अपने भाई, पिता, बाबा तथा गाँव-घरके, कुटुम्बके लोगोंको सगुन बाँटती हैं और गीत गाती हैं, जिसमें एक दिन पीहर न जा पानेकी कचोट व्यक्त होती है। अक्षयतृतीयाको राजस्थानमें वर्षाके लिये शकुन निकाला जाता है और वर्षाकी कामना की जाती है तथा लड़कियाँ झुण्ड बनाकर घर-घर जाकर शकुन गीत गाती हैं। लड़के पतंग उड़ाते हैं। 'सतनजा' (सात अन्न)-से पूजा की जाती है।

मालवामें नये घड़ेके ऊपर खरबूजा और आम्रपत्र रखकर पूजा होती है। किसानोंके लिये यह नववर्षके प्रारम्भका शुभ दिन माना जाता है। इस दिन कृषिकार्यका प्रारम्भ शुभ और समृद्धि देगा—ऐसा विश्वास किया जाता है। इसी दिन बदरिकाश्रममें भगवान् बद्रीनाथके पट खुलते हैं। इसीलिये इस तिथिको श्रीबद्रीनाथजीकी प्रतिमा स्थापित कर पूजा की जाती है और लक्ष्मीनारायणके दर्शन किये जाते हैं। इस तिथिमें गङ्गास्नानको अति पुण्यकारी माना गया है। मृत पितरोंका तिलसे तर्पण, जलसे तर्पण और पिण्डदान भी इस दिन इस विश्वाससे किया जाता है कि इसका फल अक्षय होगा।

इसी दिन नर-नारायण, परशुराम और हयग्रीवका
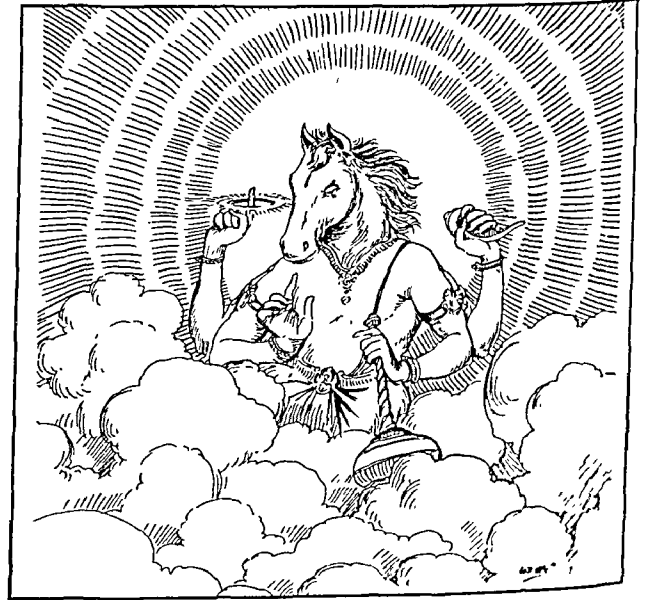
अवतार हुआ था, इसीलिये इनकी जयन्तियाँ भी अक्षय-तृतीयाको मनायी जाती हैं। श्रीपरशुरामजी प्रदोषकालमें प्रकट हुए थे इसलिये यदि द्वितीयाको मध्याह्नसे पहले तृतीया आ जाय तो उस दिन अक्षयतृतीया, नर-नारायण-जयन्ती, हयग्रीव-जयन्ती—सभी सम्पन्न की जाती हैं। इसे परशुरामतीज भी कहते हैं, अक्षयतृतीया बड़ी पवित्र और सुख-सौभाग्य देनेवाली तिथि है।

इसी दिन गौरीकी पूजा भी होती है। सधवा स्त्रियाँ और कन्याएँ गौरी-पूजा करके मिठाई, फल और भीगे हुए चने बाँटती हैं, गौरी—पार्वतीकी पूजा करके धातु या मिट्टीके कलशमें जल, फल, फूल, तिल, अन्न आदि भरकर दान करती हैं। गौरी-विनायकोपेताके अनुसार गौरीपुत्र गणेशकी तिथि चतुर्थीका संयोग यदि तृतीयामें होता है तो वह अधिक शुभ फलदायिनी होती है। इस तिथिको सुख-समृद्धि और सफलताकी कामनासे व्रतोत्सवके साथ ही अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र-आभूषण आदि बनवाये, खरीदे और धारण किये जाते हैं। नयी भूमिका क्रय, भवन, संस्था आदिका प्रवेश इस तिथिको शुभ फलदायी माना जाता है।

अक्षयतृतीयामें तृतीया तिथि, सोमवार और रोहिणी नक्षत्र तीनोंका सुयोग बहुत श्रेष्ठ माना जाता है। किसानोंमें यह लोकविश्वास है कि यदि इस तिथिको चन्द्रमाके अस्त होते समय रोहिणी आगे होगी तो फसलके लिये अच्छा होगा और यदि पीछे होगी तो उपज अच्छी नहीं होगी।

इस सम्बन्धमें भड्डरीकी कहावतें भी लोकमें प्रचलित हैं—

अखै तीज रोहिणी न होई। पौष अमावस मूल न जोई॥
राखी श्रवणो हीन बिचारो। कातिक पूनो कृतिका टारो॥
महि माहीं खल बलहिं प्रकासै। कहत भड्डरी सालि बिनासै॥

अर्थात् वैशाखकी अक्षयतृतीयाको यदि रोहिणी न हो, पौषकी अमावास्याको मूल न हो, रक्षाबन्धनके दिन श्रवण और कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिका न हो, तो पृथ्वीपर दुष्टोंका बल बढ़ेगा और उस साल धानकी उपज न होगी।

इस तिथिपर ईखके रससे बने पदार्थ, दही, चावल, दूधसे बने व्यञ्जन, खरबूज, तरबूज और लड्डूका भोग लगाकर दान करनेका भी विधान है।

स्कन्दपुराण और भविष्यपुराणमें उल्लेख है कि वैशाख शुक्लपक्षकी तृतीयाको रेणुकाके गर्भसे भगवान् विष्णुने परशुरामरूपमें जन्म लिया। कोंकण और चिप्लूनके परशुराम-मन्दिरोंमें इस तिथिको परशुराम-जयन्ती बड़ी धूमधामसे मनायी जाती है। दक्षिण भारतमें परशुराम-जयन्तीको विशेष महत्त्व दिया जाता है। परशुराम-जयन्ती होनेके कारण इस तिथिमें भगवान् परशुरामके आविर्भावकी कथा भी कही-सुनी जाती है।

परशुराम-जयन्ती

[वैशाख शुक्ल तृतीया]

भगवान् परशुराम स्वयं भगवान् विष्णुके अंशावतार हैं। इनकी गणना दशावतारोंमें होती है। वैशाखमासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको पुनर्वसुनक्षत्रमें रात्रिके प्रथम प्रहरमें उच्चके छः ग्रहोंसे युक्त मिथुनराशिपर राहुके स्थित रहते माता रेणुकाके गर्भसे भगवान् परशुरामका प्रादुर्भाव हुआ—

वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ।
निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः॥
स्वोच्चगैः षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहुसंस्थिते।
रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो विभुः स्वयम्॥

इस प्रकार अक्षयतृतीयाको भगवान् परशुरामका जन्म माना जाता है। इस तिथिको प्रदोषव्यापिनीरूपमें ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि भगवान् परशुरामका प्राकट्यकाल प्रदोषकाल ही है।

भगवान् परशुराम महर्षि जमदग्निके पुत्र थे। पुत्रोत्पत्तिके निमित्त इनकी माता तथा विश्वामित्रजीकी माताको प्रसाद मिला था, जो दैववशात् आपसमें बदल गया था। इससे रेणुकापुत्र परशुरामजी ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय स्वभावके थे, जबकि विश्वामित्रजी क्षत्रियकुलोत्पन्न होकर भी ब्रह्मर्षि हो गये।

जिस समय इनका अवतार हुआ था, उस समय पृथ्वीपर दुष्ट क्षत्रिय राजाओंका बाहुल्य हो गया था। उन्हींमेंसे एक सहस्रार्जुनने इनके पिता जमदग्निका वध कर दिया था, जिससे क्रुद्ध होकर इन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको दुष्ट क्षत्रिय राजाओंसे मुक्त किया। भगवान् शिवके दिये अमोघ परशु (फरसे)-को धारण करनेके कारण इनका नाम परशुराम पड़ा।

व्रत-विधान—व्रतके दिन व्रती नित्यकर्मसे निवृत्त हो प्रातः स्नान करके सूर्यास्ततक मौन रहे और सायंकालमें पुनः स्नान करके भगवान् परशुरामकी मूर्तिका षोडशोपचार पूजन करे तथा निम्न मन्त्रसे अर्घ्य दे—

जमदग्निसुतो वीर क्षत्रियान्तकर प्रभो।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया परमेश्वर॥

रात्रि-जागरण कर इस व्रतमें श्रीराम-मन्त्रका जप करना चाहिये।
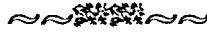
श्रीसीतानवमी-व्रत एवं पूजन-विधि

[वैशाख शुक्ल नवमी]

हिन्दू-समाजमें जिस प्रकार श्रीरामनवमीका माहात्म्य है, उसी प्रकार जानकीनवमीका भी है। जिस प्रकार अष्टमी तिथि भगवती राधा तथा भगवान् श्रीकृष्णके आविर्भावसे सम्बद्ध है, उसी प्रकार नवमी तिथि भगवती सीता तथा भगवान् श्रीरामके आविर्भावकी तिथि होनेसे परमादरणीया है। भगवती राधाका आविर्भाव भाद्रपद शुक्ल अष्टमी और भगवान् श्रीकृष्णका आविर्भाव भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको अर्थात् दो विभिन्न अष्टमी तिथियोंमें हुआ। उसी प्रकार भगवती सीताका आविर्भाव वैशाख शुक्ल नवमी और भगवान् श्रीरामका आविर्भाव चैत्र शुक्ल नवमीको अर्थात् दो विभिन्न नवमी तिथियोंमें हुआ। हिन्दूमात्रके परमाराध्य श्रीसीताराम तथा श्रीराधाकृष्णसे सम्बद्ध आविर्भावके ये दिवस अति पावन एवं महत्त्वपूर्ण हैं। इन आविर्भाव-दिवसोंपर संयमपूर्वक व्रत करनेवालेको भुक्ति-मुक्तिकी सहज ही प्राप्ति हो जाती है। श्रीजानकीनवमीके पावन पर्वपर जो व्रत रखता है तथा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसहित भगवती श्रीसीताका अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिभावपूर्वक विधि-विधानसे सोत्साह पूजन-वन्दन करता है, उसे पृथ्वी-दानका फल, महाषोडश-दानका फल, अखिलतीर्थ-भ्रमणका फल और सर्वभूत-दयाका फल अनायास ही मिल जाता है। भगवती सीताकी प्रसन्नता समस्त मङ्गलोंका मूल है। अतः श्रीसीतानवमी-व्रत आत्मकल्याणार्थीके लिये सर्वथा आचरणीय है।

वैशाखमासकी शुक्ल नवमीको, जबकि पुष्य नक्षत्र था, मङ्गलके दिन संतान-प्राप्तिकी कामनासे यज्ञकी भूमि तैयार करनेके लिये राजा जनक हलसे भूमि जोत रहे थे, उसी समय पृथ्वीसे उक्त देवीका प्राकट्य हुआ। जोती हुई
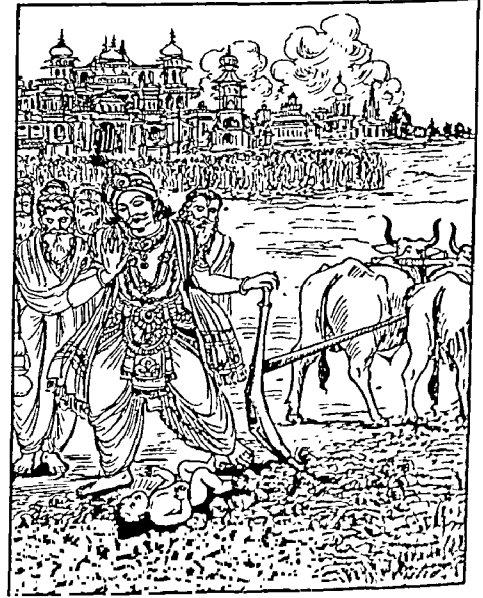
भूमिको तथा हलकी नोकको भी 'सीता' कहते हैं। अतः प्रादुर्भूता भगवती विश्वमें सीताके नामसे विख्यात हुईं। इसी नवमीकी पावन तिथिको भगवती सीताका प्राकट्योत्सव मनाया जाता है। अष्टमी तिथिको ही नित्यकर्मोंसे निवृत्त

होकर शुद्ध भूमिपर सुन्दर मण्डप बनाये, जो तोरणादिसे समलंकृत हो। मण्डपके मध्यमें सुन्दर चौकोर वेदिकापर परिकरोंसहित भगवती सीता एवं भगवान् श्रीरामकी स्थापना करनी चाहिये। पूजनके लिये स्वर्ण, रजत, ताम्र, पीतल, काठ एवं मिट्टी—इनमेंसे यथासामर्थ्य किसी एक वस्तुसे बनी हुई प्रतिमाकी स्थापना की जा सकती है। मूर्तिके अभावमें चित्रपटसे भी काम लिया जा सकता है। जो भक्त मानसिक पूजा करते हैं, उनकी तो पूजन-सामग्री एवं आराध्य—सभी भावमय ही होते हैं।

भगवती सीता एवं भगवान् श्रीरामकी प्रतिमाके साथ-साथ पूजनके लिये राजा जनक, माता सुनयना, कुलपुरोहित शतानन्दजी, हल और माता पृथ्वीकी भी प्रतिमाएँ स्थापित करनी चाहिये।

नवमीके दिन नित्यकर्मसे निवृत्त होकर श्रीजानकी-रामका संकल्पपूर्वक पूजन करना चाहिये।

सर्वप्रथम पञ्चोपचार (गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य)-से श्रीगणेशजी और भगवती पार्वतीका पूजन करना चाहिये। फिर मण्डपके पास ही अष्टदल कमलपर विधिपूर्वक कलशकी स्थापना करनी चाहिये। यदि मण्डपमें प्राणप्रतिष्ठित विग्रह न हो तो मण्डपमें प्रस्थापित प्रतिमा या चित्रमें प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। एतदर्थ उपासकको प्रतिमाके कपोलोंका स्पर्श करना चाहिये तथा—'**परिकरसहितश्रीजानकीरामाभ्यां नमः**' इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। तदनन्तर करन्यास तथा षडङ्गन्यास करके हाथमें पुष्प लेकर भगवती सीताका निम्नलिखित श्लोकके अनुसार ध्यान करना चाहिये—

ताटङ्कमण्डलविभूषितगण्डभागां
चूडामणिप्रभृतिमण्डनमण्डिताङ्गीम् ।
कौशेयवस्त्रमणिमौक्तिकहारयुक्तां
ध्यायेद् विदेहतनयां शशिगौरवर्णाम्॥

'मण्डलाकार कर्णाभूषणोंसे जिनके कपोल अति सुन्दर लग रहे हैं, चूडामणि आदि अनेकविध आभूषणोंसे जिनके विभिन्न अङ्ग अलंकृत हैं, जो रेशमी वस्त्र तथा मणि एवं मोतीके हारोंसे विभूषित हैं और जिनका चन्द्रमाके समान गौरवर्ण है, उन जनकात्मजा भगवती सीताका ध्यान करना चाहिये।' तदनन्तर उपचारके विविध मन्त्रों अथवा '**श्रीजानकीरामाभ्यां नमः**'—इस नाम-मन्त्रसे आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, पञ्चामृतस्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, सिन्दूर तथा धूप-दीप एवं नैवेद्य आदि उपचारोंद्वारा श्रीरामजानकीका पूजन करे। आरती एवं मन्त्रपुष्पाञ्जलिके पूर्व मण्डपमें प्रतिष्ठित अन्य आराध्योंका भी निम्न रीतिसे पूजन कर लेना चाहिये।

(क) श्रीजनकजीका पूजन—

देवी पद्मालया साक्षादवतीर्णा यदालये।
मिथिलापतये तस्मै जनकाय नमो नमः॥

'जिनके गृहमें साक्षात् लक्ष्मीदेवी ही उत्पन्न हुई थीं, उन मिथिलापति श्रीजनकजीके लिये बारम्बार नमस्कार है।'

उपर्युक्त मन्त्रसे श्रीजनकजीकी वन्दना करके '**श्रीजनकाय नमः**' मन्त्रसे पञ्चोपचार-पूजन करना चाहिये।

(ख) श्रीसुनयनाम्बाजीका पूजन—

सीताया जननी मातर्महिषी जनकस्य च।
पूजां गृहाण मद्दत्तां महाबुद्धे नमोऽस्तु ते॥

'अम्बा! आप श्रीसीताजीकी माता तथा महाराज जनककी पटरानी हैं, मेरे द्वारा की हुई इस पूजाको ग्रहण करें। महामति! आपको प्रणाम है।'

उपर्युक्त मन्त्रसे श्रीसुनयनाजीकी वन्दना करके '**श्रीसुनयनाम्बायै नमः**' मन्त्रसे पञ्चोपचार-पूजन करना चाहिये।

(ग) श्रीशतानन्दजीका पूजन—

निधानं सर्वविद्यानां विद्वत्कुलविभूषणम्।
जनकस्य पुरोधास्त्वं शतानन्दाय ते नमः॥

'शतानन्दजी! आप सभी विद्याओंके आगार, विद्वत्- शिरोमणि एवं श्रीजनकजीके पुरोहित हैं। आपको नमस्कार है।'

उपर्युक्त मन्त्रसे श्रीशतानन्दजीकी वन्दना करके '**श्रीशतानन्दाय नमः**' मन्त्रसे पञ्चोपचार-पूजन करे।

(घ) श्रीहलका पूजन—

जीवयस्यखिलं विश्वं चालयन् वसुधातलम्।
प्रादुर्भावयसे सीतां सीर तुभ्यं नमोऽस्तु ते॥

'हे हल! पृथ्वीको जोतते समय तुमने सीताको प्रकट किया है एवं सम्पूर्ण विश्वका तुम्हारे द्वारा पोषण होता है। तुम्हें नमस्कार है।'

उपर्युक्त मन्त्रसे श्रीहलकी वन्दना करके '**श्रीहलाय नमः**' मन्त्रसे पञ्चोपचार-पूजन करे।

(ङ) श्रीपृथ्वीदेवीका पूजन—

त्वयैवोत्पादितं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।

त्वमेवासि महामाया मुनीनामपि मोहिनी॥
त्वदायत्ता इमे लोकाः श्रीसीतावल्लभा परा।
वन्दनीयासि देवानां सुभगे त्वां नमाम्यहम्॥

'पृथ्वीमातः! यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है। आप ही मुनियोंको भी मोहित करनेवाली महामाया हैं। ये सभी लोक आपके अधीन हैं। आप पराशक्ति हैं एवं श्रीसीताजी आपको परमप्रिय हैं। आप देवोंके लिये भी वन्दनीया हैं। सुभगे! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।'

उपर्युक्त मन्त्रसे श्रीपृथ्वीदेवीकी वन्दना करके '**श्रीसुभगायै नमः**' मन्त्रसे पञ्चोपचार-पूजन करना चाहिये।

आरती—

कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं च प्रदीपितम्।
आरार्तिक्यमहं कुर्वे पश्य मे वरदा भव॥

परिकरसहितश्रीजानकीरामाभ्यां नमः, कर्पूरारार्तिक्यं समर्पयामि।

'हे देवि! कदलीके गर्भसे उत्पन्न हुए कर्पूरको प्रज्वलित करके मैं आपकी आरती कर रहा हूँ। आप इसे देखें तथा मुझे वर प्रदान करें।'

घीकी बत्ती तथा कर्पूरको प्रज्वलित करके नीचे लिखी आरतीको गाते और वाद्य आदि बजाते हुए परिकरसहित श्रीजानकी-रामजीकी सोत्साह भक्तिपूर्वक आरती करनी चाहिये—

आरति श्रीजनक-दुलारीकी। सीताजी रघुबर-प्यारीकी॥
जगत-जननि जगकी विस्तारिणि, नित्य सत्य साकेत विहारिणि।
परम दयामयि दीनोद्धारिणि, मैया भक्तन- हितकारीकी॥
सतीशिरोमणि पति-हित-कारिणि, पति-सेवा-हित वन-वन चारिणि।
पति-हित पति-वियोग-स्वीकारिणि, त्याग-धर्म-मूरति-धारीकी॥
विमल-कीर्ति सब लोकन छाई, नाम लेत पावन मति आई।
सुमिरत कटत कष्ट दुखदाई, शरणागत-जन-भय-हारीकी॥

पुष्पाञ्जलि, प्रणाम एवं प्रदक्षिणा—

नानासुगन्धिकुसुमैर्यथाकालसमुद्भवैः ।
पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं गृहाण परमेश्वरि॥

परिकरसहितश्रीजानकीरामाभ्यां नमः, पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।

'हे परमेश्वरि! ऋतुके अनुसार उत्पन्न हुए नाना प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे युक्त मेरे द्वारा दी जानेवाली इस पुष्पाञ्जलिको स्वीकार करें।'

दशाननविनाशाय माता धरणिसम्भवा।
मैथिली शीलसम्पन्ना पातु नः पतिदेवता॥

'जो रावणके विनाशके लिये पृथ्वी माताके गर्भसे उत्पन्न हुई हैं, पतिको ही देवता माननेवाली तथा शीलसम्पन्ना हैं, वे मिथिलेशकुमारी हमारी रक्षा करें।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर भगवती सीताकी कृपाकी प्राप्तिहेतु निम्नलिखित 'जानकी-स्तोत्र' का सस्वर पाठ करना चाहिये—

नीलनीरजदलायतेक्षणां लक्ष्मणाग्रजभुजावलम्बिनीम्।
शुद्धिमिद्धदहने प्रदित्सतीं भावये मनसि रामवल्लभाम्॥
रामपादविनिवेशितेक्षणामङ्गकान्तिपरिभूतहाटकाम् ।
ताटकारिपरुषोक्तिविक्लवां भावये मनसि रामवल्लभाम्॥
कुन्तलाकुलकपोलमाननं राहुवक्त्रगसुधाकरद्युतिम्।
वाससा पिदधतीं हियाकुलां भावये मनसि रामवल्लभाम्॥
कायवाङ्मनसगं यदि व्यधां स्वप्नजागृतिषु राघवेतरम्।
तद्दहाङ्गमिति पावकं यतीं भावये मनसि रामवल्लभाम्॥
इन्द्ररुद्रधनदाम्बुपालकैः सद्विमानगणमास्थितैर्दिवि।
पुष्पवर्षमनुसंस्तुताङ्घ्रिकां भावये मनसि रामवल्लभाम्॥
संचयैर्दिविषदां विमानगैर्विस्मयाकुलमनोऽभिवीक्षिताम्।
तेजसा पिदधतीं सदा दिशो भावये मनसि रामवल्लभाम्॥

'नील कमल-दलके सदृश जिनके नेत्र हैं, जिन्हें श्रीरामकी भुजाका ही अवलम्बन है, जो प्रज्वलित अग्निमें अपनी पवित्रताकी परीक्षा देना चाहती हैं, उन रामप्रिया श्रीसीताकी मैं मन-ही-मनमें भावना (ध्यान) करता हूँ। जिनके नेत्र श्रीरामजीके चरणोंकी ओर निश्चलरूपसे लगे हुए हैं, जिन्होंने अपनी अङ्गकान्तिसे सुवर्णको मात कर दिया है तथा ताटकाके वैरी श्रीरामके कटुवचनोंसे जो घबरायी हुई हैं, उन रामकी प्रेयसी श्रीसीताकी मैं मनमें भावना करता हूँ। जो लज्जासे हतप्रभ हुई अपने उस मुखको—जिनके कपोल उनके बिथुरे हुए बालोंसे उसी प्रकार आवृत हैं, जैसे—चन्द्रमा राहुके द्वारा ग्रसे जानेपर अन्धकारसे आवृत हो जाता है—वस्त्रसे ढक रही हैं, उन राम-पत्नी सीताकी मैं मनमें भावना करता हूँ। जो मन-ही-मन यह कहती हुई कि 'यदि मैंने श्रीरघुनाथके अतिरिक्त किसी औरको अपने शरीर, वाणी अथवा मनमें कभी स्थान दिया हो तो हे अग्ने! मेरे शरीरको जला दो, अग्निमें प्रवेश कर गयीं, उन रामकी प्राणप्रिया सीताकी मैं मनमें भावना करता हूँ। उत्तम विमानोंमें बैठे हुए

अवधमें श्रीकनकविहारीजीके नित्योत्सवकी दिव्य झाँकी

त्वमेवासि महामाया मुनीनामपि मोहिनी॥
त्वदायत्ता इमे लोकाः श्रीसीतावल्लभा परा।
वन्दनीयासि देवानां सुभगे त्वां नमाम्यहम्॥

'पृथ्वीमातः! यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है। आप ही मुनियोंको भी मोहित करनेवाली महामाया हैं। ये सभी लोक आपके अधीन हैं। आप पराशक्ति हैं एवं श्रीसीताजी आपको परमप्रिय हैं। आप देवोंके लिये भी वन्दनीया हैं। सुभगे! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।'

उपर्युक्त मन्त्रसे श्रीपृथ्वीदेवीकी वन्दना करके '**श्रीसुभगायै नमः**' मन्त्रसे पञ्चोपचार-पूजन करना चाहिये।

आरती—

कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं च प्रदीपितम्।
आरार्तिक्यमहं कुर्वे पश्य मे वरदा भव॥

परिकरसहितश्रीजानकीरामाभ्यां नमः, कर्पूरारार्तिक्यं समर्पयामि।

'हे देवि! कदलीके गर्भसे उत्पन्न हुए कर्पूरको प्रज्वलित करके मैं आपकी आरती कर रहा हूँ। आप इसे देखें तथा मुझे वर प्रदान करें।'

घीकी बत्ती तथा कर्पूरको प्रज्वलित करके नीचे लिखी आरतीको गाते और वाद्य आदि बजाते हुए परिकरसहित श्रीजानकी-रामजीकी सोत्साह भक्तिपूर्वक आरती करनी चाहिये—

आरति श्रीजनक-दुलारीकी। सीताजी रघुबर-प्यारीकी॥
जगत-जननि जगकी विस्तारिणि, नित्य सत्य साकेत विहारिणि।
परम दयामयि दीनोद्धारिणि, मैया भक्तन- हितकारीकी॥
सतीशिरोमणि पति-हित-कारिणि, पति-सेवा-हित वन-वन चारिणि।
पति-हित पति-वियोग-स्वीकारिणि, त्याग-धर्म-मूरति-धारीकी॥
विमल-कीर्ति सब लोकन छाई, नाम लेत पावन मति आई।
सुमिरत कटत कष्ट दुखदाई, शरणागत-जन-भय-हारीकी॥

पुष्पाञ्जलि, प्रणाम एवं प्रदक्षिणा—

नानासुगन्धिकुसुमैर्यथाकालसमुद्भवैः।
पुष्पाञ्जलिं मया दत्तं गृहाण परमेश्वरि॥

परिकरसहितश्रीजानकीरामाभ्यां नमः, पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।

'हे परमेश्वरि! ऋतुके अनुसार उत्पन्न हुए नाना प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे युक्त मेरे द्वारा दी जानेवाली इस पुष्पाञ्जलिको स्वीकार करें।'

दशाननविनाशाय माता धरणिसम्भवा।
मैथिली शीलसम्पन्ना पातु नः पतिदेवता॥

'जो रावणके विनाशके लिये पृथ्वी माताके गर्भसे उत्पन्न हुई हैं, पतिको ही देवता माननेवाली तथा शीलसम्पन्ना हैं, वे मिथिलेशकुमारी हमारी रक्षा करें।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर भगवती सीताकी कृपाकी प्राप्तिहेतु निम्नलिखित 'जानकी-स्तोत्र' का सस्वर पाठ करना चाहिये—

नीलनीरजदलायतेक्षणां लक्ष्मणाग्रजभुजावलम्बिनीम्।
शुद्धिमिद्धदहने प्रदित्सतीं भावये मनसि रामवल्लभाम्॥
रामपादविनिवेशितेक्षणामङ्गकान्तिपरिभूतहाटकाम्।
ताटकारिपरुषोक्तिविक्लवां भावये मनसि रामवल्लभाम्॥
कुन्तलाकुलकपोलमाननं राहुवक्त्रगसुधाकरद्युतिम्।
वाससा पिदधतीं हियाकुलां भावये मनसि रामवल्लभाम्॥
कायवाङ्मनसगं यदि व्यधां स्वप्नजागृतिषु राघवेतरम्।
तद्दहाङ्गमिति पावकं यतीं भावये मनसि रामवल्लभाम्॥
इन्द्ररुद्रधनदाम्बुपालकैः सद्विमानगणमास्थितैर्दिवि।
पुष्पवर्षमनुसंस्तुताङ्घ्रिकां भावये मनसि रामवल्लभाम्॥
संचयैर्दिविषदां विमानगैर्विस्मयाकुलमनोऽभिवीक्षिताम्।
तेजसा पिदधतीं सदा दिशो भावये मनसि रामवल्लभाम्॥

'नील कमल-दलके सदृश जिनके नेत्र हैं, जिन्हें श्रीरामकी भुजाका ही अवलम्बन है, जो प्रज्वलित अग्निमें अपनी पवित्रताकी परीक्षा देना चाहती हैं, उन रामप्रिया श्रीसीताकी मैं मन-ही-मनमें भावना (ध्यान) करता हूँ। जिनके नेत्र श्रीरामजीके चरणोंकी ओर निश्चलरूपसे लगे हुए हैं, जिन्होंने अपनी अङ्गकान्तिसे सुवर्णको मात कर दिया है तथा ताटकाके वैरी श्रीरामके कटुवचनोंसे जो घबरायी हुई हैं, उन रामकी प्रेयसी श्रीसीताकी मैं मनमें भावना करता हूँ। जो लज्जासे हतप्रभ हुई अपने उस मुखको—जिनके कपोल उनके बिथुरे हुए बालोंसे उसी प्रकार आवृत हैं, जैसे—चन्द्रमा राहुके द्वारा ग्रसे जानेपर अन्धकारसे आवृत हो जाता है—वस्त्रसे ढक रही हैं, उन राम-पत्नी सीताकी मैं मनमें भावना करता हूँ। जो मन-ही-मन यह कहती हुई कि 'यदि मैंने श्रीरघुनाथके अतिरिक्त किसी औरको अपने शरीर, वाणी अथवा मनमें कभी स्थान दिया हो तो हे अग्ने! मेरे शरीरको जला दो, अग्निमें प्रवेश कर गयीं, उन रामकी प्राणप्रिया सीताकी मैं मनमें भावना करता हूँ। उत्तम विमानोंमें बैठे हुए

अवधमें श्रीकनकविहारीजीके नित्योत्सवकी दिव्य झाँकी

प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥

पराम्बा भगवती पार्वतीका तपोव्रत

व्रतोत्सवोंके अधिष्ठाता नटराज भगवान् शङ्करका प्रदोषकालीन नृत्योत्सव

इन्द्र, रुद्र, कुबेर और वरुणद्वारा पुष्पवृष्टिके अनन्तर जिनके चरणोंकी भलीभाँति स्तुति की गयी है, उन श्रीरामकी प्यारी पत्नी श्रीसीताकी मैं मनमें भावना करता हूँ। (अग्नि-शुद्धिके समय) विमानोंमें बैठे हुए देवगण विस्मयाविष्ट चित्तसे जिनकी ओर देख रहे थे और जो अपने तेजसे दसों दिशाओंको आच्छादित कर रही थीं, उन रामवल्लभा सीताकी मैं मनमें भावना करता हूँ।'

उपर्युक्त स्तोत्र पढ़कर भगवती सीता एवं अन्य उपास्य देवी-देवताओंकी प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम करना चाहिये तथा भक्ति प्रदान करनेके लिये उनसे प्रार्थना करनी चाहिये। तदुपरान्त प्रसादका वितरण करना चाहिये।

दशमीके दिन पारण करके व्रतकी सम्पन्नता करनी चाहिये। जो श्रद्धालु भक्त इस पुण्य-व्रतके अवसरपर भगवान् श्रीसीतारामकी स्वर्ण, रजत या कांस्यकी बनी प्रतिमा अथवा अङ्कित-पत्रका दान करता है या भूमिदान, गोदान, अन्नदान आदि करता है, उसे परम पुण्यकी प्राप्ति होती है। दशमीके दिन व्रतकी पूर्णाहुति करके मण्डपका विसर्जन करना चाहिये। इस प्रकार व्रतोत्सव करनेवालेपर भगवती सीता तथा भगवान् श्रीराम सदा प्रसन्न रहते हैं।
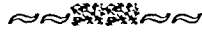
श्रीजानकीनवमी-व्रतोत्सव

[वैशाख शुक्ल नवमी]

(पं० श्रीबृजेशकुमारजी पयासी)

परम पुनीत श्रीमाधवमास—वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी नवमी तिथि, पुष्यनक्षत्र, मंगलवारको मध्याह्नकालमें शुभ माङ्गलिक वेलामें विदेहवंशवैजयन्ती जानकीजूका दिव्य प्राकट्य हुआ। अत: इस योगमें किया गया व्रत अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाला होता है।

व्रतके विशेष पालनीय नियम—किसी भी व्रतकी पूर्णता उस व्रतमें किये गये संयम अर्थात् नियमसे होती है। अत: व्रतमें विहित नियमोंका नियमत: पालन करना चाहिये।

व्रतकर्ताको चाहिये कि वह अष्टमीको ही प्रात: उठकर आलस्यका त्याग कर शौचादिसे निवृत्त होकर नदी या सरोवरमें स्नानकर, प्रात: सन्ध्या-वन्दनादि करके देव, पितरोंका तर्पणकर एक बार स्वल्प हविष्यान्नका भोजन कर ब्रह्मचर्यका पालन करता हुआ संयमित रहे। रात्रिमें भूमिपर शयन करे। नवमीको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर श्रीविदेहराजनन्दिनीजूका स्मरण करे।

नित्यकर्मसे निवृत्त हो सोलह या आठ अथवा चार स्तम्भोंका एक सुन्दर मण्डप बनाये। ध्वजा-पताका आदिसे मण्डपको सुशोभित करे। उसमें सुन्दर आसन रखकर किशोरीजीकी प्रतिमा रखे। वेद तथा शास्त्रमें पारंगत निर्मल आचार-व्यवहारसम्पन्न पवित्र ब्राह्मणका आचार्यरूपमें वरण करे।

फिर 'श्रीसीतायै नम:' इस मूलमन्त्रसे प्राणायाम करे। प्राणायामके पश्चात् संकल्प एवं ऋषिन्यास तथा अङ्गन्यासादि करके जानकीजूके बालस्वरूपका इस प्रकार ध्यान करे—

वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं
कैशोरसौरभसमाहृतयोगिचित्तम्।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंससेव्यं
सन्मानसालिपरिपीतपरागपुञ्जम्॥
(जानकीस्तवराज १४)

हे श्रीकिशोरीजू! आप समस्त संसारके प्राणियोंको अपने नित्य कैशोरसौरभद्वारा यों ही तापत्रयसे मुक्त करनेवाली हैं, योगिजनोंके चित्तको सहसा अपहृत करनेवाली हैं, आप परमहंस पदप्राप्त मुनियोंसे संसेव्य हैं, मैं भक्तजनमानस-भ्रमरावलिद्वारा पीत परागवाले श्रीविदेहवंशवैजयन्ती जानकीजूके पादपद्मोंकी वन्दना करता हूँ।

ध्यानके पश्चात् प्रतिमाकी पूजा करके शय्याधिवास, धान्याधिवास, जलाधिवास, पुष्पाधिवास आदि करे।

नैमित्तिक महापूजा विशेषरूपसे करे। गीत, वाद्य, कीर्तन, नृत्य, आनन्द आदि महामाधुर्यरसभरे भावसे महामहोत्सव ऐसा करे कि उसमें एकाग्रचित्तसे तल्लीन हो जाय।

महामहोत्सवं दिव्यं महामाधुर्यभूषितम्।
(भविष्यपुराण)

पूर्वाह्णकृत्य—मण्डपमें प्रवेश कर स्वस्तिवाचन,

मङ्गलपाठ करके श्रीगणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव-पार्वती एवं भक्तशिरोमणि श्रीहनुमान्‌जीका पञ्चोपचारसे पूजन कर कलशस्थापन करे।

तत्पश्चात् श्रीकिशोरीजूका **'श्रीसीतायै नमः'** मन्त्रसे आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, भूषण, चन्दन, सौभाग्यद्रव्य, पुष्प आदि उपचारोंसे प्रणाम-प्रदक्षिणापर्यन्त पूजन करे। तदुपरान्त अष्टदलकमलमें अष्ट दिव्य सखियोंका पूजन करे।

सखियोंके पूजनोपरान्त परम ज्ञानशिरोमणि विज्ञानविभानिधान श्रीयाज्ञवल्क्यजीका आवाहन एवं पूजन करे। पुनः श्रीगौतमपुत्र श्रीशतानन्दजीका पुण्यावाहन करे। तत्पश्चात् श्रीनिमिवंशोदार श्रीजनकजी महाराजका पुण्यावाहन करे। तदनन्तर श्रीलक्ष्मीनिधिजी महाराजसहित मैथिलोंका पूजन करे।

अब अनन्यभावसे श्रीविदेहराजनन्दिनीजूके परम पावन दिव्य जन्मोत्सवको गीत-वाद्यादिसे पुरजन-परिजनोंसहित मनाये।

सर्वप्रथम यह मङ्गलगीत समवेत स्वरसे गाये—

मंगल मिथिलाधाम मंगल मंगल हो।
प्रकटीं सिय सुकुमारि आजु सखि मंगल हो॥
मंगल बजत निशान गान सुख मंगल हो।
विप्र सुमन्त्र उचारहिं देव सुख मंगल हो॥
मंगल पुरी सोहात द्वार प्रति मंगल हो।
मंगल जनक लली प्यारी सियकर मंगल हो॥
मंगल सकल समाज, लखि नृप मंगल हो।
जय जय करत महान, प्रजा मुद मंगल हो॥
इतर अरगजा चंदन बरसत, पुर नभ मंगल हो।
देत याचकहिं दान, चाह विधि मंगल हो॥
आस 'बृजेश्वरदास' सदा तव मंगल हो।
चिर जीवे लली हमार, निशदिन मंगल हो॥

माङ्गल्यगीतोपरान्त देवीजूके पवित्र माहात्म्यकी कथा सुननी चाहिये।

श्रीविदेहवंशवैजयन्ती जानकीजूकी महिमाको मण्डित करनेवाली एक पावन कथा यहाँ प्रस्तुत है—

मारवाड़क्षेत्रमें एक वेदवादी श्रेष्ठ धर्मधुरीण ब्राह्मण निवास करते थे। उनका नाम देवदत्त था। उन ब्राह्मणकी बड़ी सुन्दर रूपगर्विता पत्नी थी, उसका नाम शोभना था। ब्राह्मणदेवता जीविकाके लिये अपने ग्रामसे अन्य किसी ग्राममें भिक्षाटनके लिये गये हुए थे। इधर ब्राह्मणी कुसंगतमें फँसकर व्यभिचारमें प्रवृत्त हो गयी। अब तो पूरे गाँवमें उसके इस निन्दित कर्मकी चर्चाएँ होने लगीं। परंतु उस दुष्टाने गाँव ही जलवा दिया। दुष्कर्मोंमें रत रहनेवाली वह दुर्बुद्धि मरी तो उसका अगला जन्म चाण्डालके घरमें हुआ। पतित्याग करनेसे वह चाण्डालिनी बनी, ग्राम जलानेसे उसे भीषण कुष्ठ हो गया तथा व्यभिचार-कर्मसे वह अन्धी भी हो गयी। अपने कर्मका फल उसे भोगना ही था।

इस प्रकार वह अपने कर्मके योगसे दिनोदिन दारुण दुःख प्राप्त करती हुई देश-देशान्तरमें भटकने लगी। एक बार दैवयोगसे वह भटकती हुई कौशलपुरीमें आयी। संयोगवश उस दिन वैशाखमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथि थी, जो समस्त पापोंका नाश करनेमें समर्थ है। जानकीनवमीके पावन उत्सवपर भूख-प्याससे व्याकुल वह दुखियारी इस प्रकार प्रार्थना करने लगी—हे सज्जनो! मुझपर कृपाकर कुछ भोज्यसामग्री प्रदान करो। मैं भूखसे मर रही हूँ—

दुःखिताऽहं दुर्भगाऽहं भोज्यं देहि कृपालवः।
(भु०सं० १३।१३)

ऐसा कहती हुई वह स्त्री श्रीकनकभवनके सामने बने एक हजार पुष्पमण्डित स्तम्भोंसे होकर उसमें प्रविष्ट हुई। उसने पुनः पुकार लगायी—भैया! कोई तो मेरी मदद करो—कुछ भोजन दे दो। इतनेमें एक भक्तने उससे कहा—'देवि! आज तो जानकीनवमी है, भोजनमें अन्न देनेवालेको पाप लगता है, इसीलिये आज तो अन्न नहीं मिलेगा। कल पारणाके समय आना, भरपेट ठाकुरजीका प्रसाद मिलेगा।' परंतु वह नहीं मानी। अधिक कहनेपर भक्तने तुलसी एवं जल उस (चाण्डालिनी)-को प्रदान किया।

वह पापिनी भूखसे मर गयी। इसी बहाने अनजानेमें उससे श्रीजानकीनवमीका व्रत पूरा हो गया। अब तो परम कृपालिनी दयास्वरूपिणी श्रीजानकीजू प्रसन्न हो गयीं तथा कृपासे परिपुष्ट कृपारूपिणीने समस्त पापोंसे उसे मुक्त कर दिया। व्रतके प्रभावसे वह पापिनी निर्मल होकर स्वर्गमें आनन्दसे अनन्त वर्षोंतक रही। तत्पश्चात् वह कामरूप देशके महाराज जयसिंहकी महारानी कामकलाके नामसे विख्यात हुई। जातिस्मरा उस महान् साध्वीने अपने राज्यमें अनेक देवालय बनवाये, जिनमें श्रीजानकी-रघुनाथकी प्रतिष्ठा करवायी।

श्रीजानकीनवमीपर श्रीजानकीजीकी पूजा, व्रत, उत्सव, कीर्तन करनेसे उन परम दयामयी श्रीसीताजीकी कृपा हमें अवश्य प्राप्त होती है।

अस्तु, हमें चाहिये कि हम नियमपूर्वक दृढ़संकल्प होकर श्रीजानकीनवमी-व्रतोत्सवका लाभ लें—

चार्वङ्गि ते चरणचारणवन्दिसङ्गं
मह्यं विदेहतनये परिदेहि नान्यम्।
याचे वरं वरविदां वरदे भवत्या
येनामुना तव धवे मम रञ्जना स्यात्॥

(जानकीस्तवराज ५२)

श्रीनृसिंहचतुर्दशीव्रत

[वैशाख शुक्ल चतुर्दशी]

स्वयंप्रकाश परमात्मा जब भक्तोंको सुख देनेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं, तब वह तिथि और मास भी पुण्यके कारण बन जाते हैं। जिनके नामका उच्चारण करनेवाला पुरुष सनातन मोक्षको प्राप्त होता है, वे परमात्मा कारणोंके भी कारण हैं। वे सम्पूर्ण विश्वके आत्मा, विश्वस्वरूप और सबके प्रभु हैं। वे ही भगवान् भक्त प्रह्लादका अभीष्ट सिद्ध करनेके लिये नृसिंहरूपमें प्रकट हुए थे और जिस तिथिको भगवान् नृसिंहका प्राकट्य हुआ था, वह तिथि महोत्सव बन गयी।

जब हिरण्यकशिपु नामक दैत्यका वध करके देवाधिदेव जगद्गुरु भगवान् नृसिंह सुखपूर्वक विराजमान हुए, तब उनकी गोदमें बैठे हुए ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ प्रह्लादजीने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया—'सर्वव्यापी भगवान् नारायण! नृसिंहका अद्भुत रूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सुरश्रेष्ठ! मैं आपका भक्त हूँ, अत: यथार्थ बात जाननेके लिये आपसे पूछता हूँ। स्वामिन्! आपके प्रति मेरी अभेद-भक्ति अनेक प्रकारसे स्थिर हुई है। प्रभो! मैं आपको इतना प्रिय कैसे हुआ? इसका कारण बताइये।'

भगवान् नृसिंह बोले—वत्स! तुम पूर्वजन्ममें ब्राह्मणके पुत्र थे। फिर भी तुमने वेदोंका अध्ययन नहीं किया। उस समय तुम्हारा नाम वसुदेव था। उस जन्ममें तुमसे कुछ भी पुण्य नहीं बन सका। केवल मेरे व्रतके प्रभावसे मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति हुई। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सृष्टि-रचनाके लिये इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया था। मेरे व्रतके प्रभावसे ही उन्होंने चराचर जगत्की रचना की है और भी बहुत-से देवताओं, प्राचीन ऋषियों तथा परम बुद्धिमान् राजाओंने मेरे उत्तम व्रतका पालन किया है और उस व्रतके प्रभावसे उन्हें सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं। स्त्री या पुरुष जो कोई भी इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें मैं सौख्य, भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करता हूँ।

प्रह्लादने पूछा—देव! मैं आपकी प्रीति और भक्ति प्रदान करनेवाले नृसिंहचतुर्दशी नामक उत्तम व्रतकी विधिको सुनना चाहता हूँ। प्रभो! किस महीनेमें और किस दिनको यह व्रत आता है? आप बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नृसिंह बोले—बेटा प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो। एकाग्रचित्त होकर इस व्रतको श्रवण करो। यह व्रत मेरे प्रादुर्भावसे सम्बन्ध रखता है, अत: वैशाखके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिको इसका अनुष्ठान करना चाहिये। इससे मुझे बड़ा संतोष होता है। पुत्र! भक्तोंको सुख देनेके लिये जिस प्रकार मेरा आविर्भाव हुआ, वह प्रसंग सुनो। पश्चिम दिशामें एक विशेष कारणसे मैं प्रकट हुआ था। वह स्थान अब मूलस्थान (मुलतान)-क्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध है, जो परम

पवित्र और समस्त पापोंका नाशक है। उस क्षेत्रमें हारीत नामक एक प्रसिद्ध ब्राह्मण रहते थे, जो वेदोंके पारगामी विद्वान् और ज्ञान-ध्यानमें सदा तत्पर रहनेवाले थे। उनकी स्त्रीका नाम लीलावती था। वह भी परम पुण्यमयी, सतीरूपा तथा स्वामीके अधीन रहनेवाली थी। उन दोनोंने बहुत समयतक बड़ी भारी तपस्या की। तपस्यामें ही उनके इक्कीस युग बीत गये। तब उस क्षेत्रमें प्रकट होकर मैंने उन दोनोंको प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस समय उन्होंने मुझसे कहा—'भगवन्! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो इसी समय आपके समान पुत्र मुझे प्राप्त हो।' बेटा प्रह्लाद! उनकी बात सुनकर मैंने उत्तर दिया—'ब्रह्मन्! निस्संदेह मैं आप दोनोंका पुत्र हूँ, किंतु मैं सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेवाला साक्षात् परात्पर परमात्मा हूँ, सदा रहनेवाला सनातन पुरुष हूँ; अतः गर्भमें नहीं निवास करूँगा।' तब हारीतने कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो।' तबसे मैं भक्तके कारण उस क्षेत्रमें निवास करता हूँ। मेरे श्रेष्ठ भक्तको चाहिये कि उस तीर्थमें आकर मेरा दर्शन करे। इससे उसकी सारी बाधाओंका मैं निरन्तर नाश करता रहता हूँ। जो हारीत और लीलावतीके साथ मेरे बालरूपका ध्यान करके रात्रिमें मेरा पूजन करता है, वह नरसे नारायण हो जाता है।

बेटा! मेरे व्रतका दिन आनेपर भक्त पुरुष प्रातःकाल दन्तधावन करके इन्द्रियोंको काबूमें रखते हुए मेरे सामने व्रतका इस प्रकार संकल्प करे—'भगवन्! आज मैं आपका व्रत करूँगा। इसे निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण कराइये।' व्रतमें स्थित होकर दुष्ट पुरुषोंसे वार्तालाप आदि नहीं करना चाहिये। फिर मध्याह्नकालमें नदी आदिके निर्मल जलमें, घरपर, देवसम्बन्धी कुण्डमें अथवा किसी सुन्दर तालाबके भीतर वैदिक मन्त्रोंसे स्नान करे। मिट्टी, गोबर, आँवलेका फल और तिल लेकर उनसे सब पापोंकी शान्तिके लिये विधिपूर्वक स्नान करे। तत्पश्चात् दो सुन्दर वस्त्र धारण करके सन्ध्या-तर्पण आदि नित्यकर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। उसके बाद पूजा-स्थल लीपकर उसमें सुन्दर अष्टदल कमल बनाये। कमलके ऊपर पञ्चरत्नसहित ताँबेका कलश स्थापित करे। कलशके ऊपर चावलोंसे भरा हुआ पात्र रखे और पात्रमें अपनी शक्तिके अनुसार सोनेकी लक्ष्मीसहित मेरी प्रतिमा बनवाकर स्थापित करे। तत्पश्चात् उसे पञ्चामृतसे स्नान कराये। इसके बाद शास्त्रज्ञ और लोभहीन ब्राह्मणको बुलाकर आचार्य बनाये तथा उसे आगे रखकर भगवान्‌की अर्चना करे! पूजाके स्थानपर एक मण्डप बनवाकर उसे फूलके गुच्छोंसे सजा दे। फिर उस ऋतुमें सुलभ होनेवाले फूलोंसे और षोडशोपचारकी सामग्रियोंसे विधिपूर्वक मेरा पूजन करे। पूजामें नियमपूर्वक रहकर मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले पौराणिक मन्त्रोंका उपयोग करे। जो चन्दन, कपूर, रोली, सामयिक पुष्प तथा तुलसीदल मुझे अर्पण करता है, वह निश्चय ही मुक्त हो जाता है। समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये जगद्‌गुरु श्रीहरिको सदा कृष्णागरुका बना हुआ धूप निवेदन करना चाहिये; क्योंकि वह उन्हें बहुत प्रिय है। एक बड़ा दीप जलाकर रखना चाहिये, जो अज्ञानरूपी अन्धकारका नाश करनेवाला है। फिर घण्टेकी आवाजके साथ आरती उतारनी चाहिये। तदनन्तर नैवेद्य निवेदन करे, जिसका मन्त्र इस प्रकार है—

नैवेद्यं शर्करां चापि भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्।
ददामि ते रमाकान्त सर्वपापक्षयं कुरु॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड १७०।६२)

अर्थात् हे लक्ष्मीकान्त! मैं आपके लिये भक्ष्य-भोज्यसहित नैवेद्य तथा शर्करा निवेदन करता हूँ। आप मेरे सब पापोंका नाश कीजिये।

तत्पश्चात् भगवान्‌से इस प्रकार प्रार्थना करे—'नृसिंह! अच्युत! देवेश्वर! आपके शुभ जन्मदिनको मैं सब भोगोंका परित्याग करके उपवास करूँगा। स्वामिन्! आप इससे प्रसन्न हों तथा मेरे पाप और जन्मके बन्धनको दूर करें।' यों कहकर व्रतका पालन करे। रातमें गीत और वाद्योंकी ध्वनिके साथ जागरण करना चाहिये। भगवान् नृसिंहकी कथासे सम्बन्ध रखनेवाले पौराणिक प्रसंगका पाठ भी करना उचित है। फिर प्रातःकाल होनेपर स्नानके अनन्तर पूर्वोक्त विधिसे यत्नपूर्वक मेरी पूजा करे। उसके बाद स्वस्थचित्त होकर मेरे आगे वैष्णव श्राद्ध करे। तदनन्तर इस लोक और परलोक दोनोंपर विजय पानेकी इच्छासे सुपात्र ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, ओढ़ने-बिछौने आदिके सहित चारपाई, सप्तधान्य तथा अन्यान्य वस्तुएँ भी अपनी शक्तिके अनुसार दान करनी चाहिये। शास्त्रोक्त फल पानेकी इच्छा हो तो धनकी कृपणता नहीं करनी चाहिये। अन्तमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये और उन्हें उत्तम दक्षिणा दे। धनहीन व्यक्तियोंको भी चाहिये कि वे इस व्रतका अनुष्ठान

करें और शक्तिके अनुसार दान दें। मेरे व्रतमें सभी वर्णके मनुष्योंका अधिकार है। मेरी शरणमें आये हुए भक्तोंको विशेषरूपसे इसका अनुष्ठान करना चाहिये।[१]

इसके बाद व्रत करनेवाले पुरुषोंको इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—विशाल रूप धारण करनेवाले भगवान् नृसिंह! करोड़ों कालोंके लिये भी आपको परास्त करना कठिन है। बालरूपधारी प्रभो! आपको नमस्कार है। बालावस्था तथा बालकरूप धारण करनेवाले श्रीनृसिंहभगवान्को नमस्कार है। जो सर्वत्र व्यापक, सबको आनन्दित करनेवाले, स्वतः प्रकट होनेवाले, सर्वजीवस्वरूप, विश्वके स्वामी, देवस्वरूप और सूर्यमण्डलमें स्थित रहनेवाले हैं, उन भगवान्को प्रणाम है। दयासिन्धो! आपको नमस्कार है। आप तेईस तत्त्वोंके साक्षी चौबीसवें तत्त्वरूप हैं। काल, रुद्र और अग्नि आपके ही स्वरूप हैं। यह जगत् भी आपसे भिन्न नहीं है। नर और सिंहका रूप धारण करनेवाले आप भगवान्को नमस्कार है।

देवेश! मेरे वंशमें जो मनुष्य उत्पन्न हो चुके हैं और जो उत्पन्न होनेवाले हैं, उन सबका दुःखदायी भवसागरसे उद्धार कीजिये। जगत्पते! मैं पातकके समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। नाना प्रकारकी व्याधियाँ ही इस समुद्रकी जलराशि हैं। इसमें रहनेवाले जीव मेरा तिरस्कार करते हैं। इस कारण मैं महान् दुःखमें पड़ गया हूँ। शेषशायी देवेश्वर! मुझे अपने हाथोंका सहारा दीजिये और इस व्रतसे प्रसन्न हो मुझे भोग और मोक्ष प्रदान कीजिये।

इस प्रकार प्रार्थना करके विधिपूर्वक देवताओंका विसर्जन करे। उपहार आदिकी सभी वस्तुएँ आचार्यको निवेदन करे। ब्राह्मणोंको दक्षिणासे संतुष्ट करके विदा करे। फिर भगवान्का चिन्तन करते हुए भाई-बन्धुओंके साथ भोजन करे। जो मध्याह्नकालमें यथाशक्ति इस व्रतका अनुष्ठान करता है और लीलावतीदेवीके साथ हारीतमुनि एवं भगवान् नृसिंहका पूजन करता है, वह श्रीनृसिंहके प्रसादसे सदा मनोवाञ्छित वस्तुओंको प्राप्त करता रहता है। इतना ही नहीं, उसे सनातन मोक्षकी प्राप्ति होती है।

[प्रेषक—श्रीअशोककुमारजी सैनी]

ज्येष्ठमासके व्रतपर्वोत्सव—

वटसावित्री-व्रत

[ज्येष्ठ कृष्ण अमावास्या]

(श्रीगोपीनाथ पारीक 'गोपेश', भिषगाचार्य, साहित्यरत्न)

वट देववृक्ष है। वटवृक्षके मूलमें भगवान् ब्रह्मा, मध्यमें जनार्दन विष्णु तथा अग्रभागमें देवाधिदेव शिव स्थित रहते हैं। देवी सावित्री भी वटवृक्षमें प्रतिष्ठित रहती हैं।[२] इसी अक्षयवटके पत्रपुटकपर प्रलयके अन्तिम चरणमें भगवान् श्रीकृष्णने बालरूपमें मार्कण्डेय ऋषिको प्रथम दर्शन दिया था।[३] प्रयागराजमें गङ्गाके तटपर वेणीमाधवके निकट अक्षयवट प्रतिष्ठित है। भक्तशिरोमणि तुलसीदासने सङ्गम-स्थित इस अक्षयवटको तीर्थराजका छत्र कहा है—

संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा॥
(रा०च०मा० २। १०५। ७)

इसी प्रकार तीर्थोंमें पञ्चवटीका भी विशेष महत्त्व है। पाँच वटोंसे युक्त स्थानको पञ्चवटी कहा गया है। कुम्भजमुनिके परामर्शसे भगवान् श्रीरामने सीता एवं लक्ष्मणके साथ

१ सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते। मद्भक्तैस्तु विशेषेण कर्तव्यं मत्परायणैः॥ (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड १७०। ७३)
२-वटमूले स्थितो ब्रह्मा वटमध्ये जनार्दनः। वटाग्रे तु शिवो देवः सावित्री वटसंश्रिता॥
३-वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि॥

वनवास कालमें यहाँ निवास किया था। हानिकारक गैसोंको नष्ट कर वातावरणको शुद्ध करनेमें वटवृक्षका विशेष महत्त्व है। वटवृक्षकी औषधिके रूपमें उपयोगितासे सभी परिचित हैं। जैसे वटवृक्ष दीर्घकालतक अक्षय बना रहता है, उसी प्रकार दीर्घ आयु, अक्षय सौभाग्य तथा निरन्तर अभ्युदयकी प्राप्तिके लिये वटवृक्षकी आराधना की जाती है।

इसी वटवृक्षके नीचे सावित्रीने अपने पतिव्रतसे मृत पतिको पुनः जीवित किया था। तबसे यह व्रत वट-सावित्रीके नामसे किया जाता है। ज्येष्ठमासके व्रतोंमें 'वटसावित्री-व्रत' एक प्रभावी व्रत है। इसमें वटवृक्षकी पूजा की जाती है। महिलाएँ अपने अखण्ड सौभाग्य एवं कल्याणके लिये यह व्रत करती हैं। सौभाग्यवती महिलाएँ श्रद्धाके साथ ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशीसे अमावास्यातक तीन दिनोंका उपवास रखती हैं। त्रयोदशीके दिन वटवृक्षके नीचे व्रतका इस प्रकार संकल्प लेना चाहिये—'**मम वैधव्यादिसकलदोषपरिहारार्थं ब्रह्मसावित्रीप्रीत्यर्थं सत्यवत्सावित्रीप्रीत्यर्थं च वटसावित्रीव्रतमहं करिष्ये।**' इस प्रकार संकल्प कर यदि तीन दिन उपवास करनेकी सामर्थ्य न हो तो त्रयोदशीको रात्रिभोजन, चतुर्दशीको अयाचित तथा अमावास्याको उपवास करके प्रतिपदाको पारण करना चाहिये। अमावास्याको एक बाँसकी टोकरीमें सप्तधान्यके ऊपर ब्रह्मा और ब्रह्मसावित्री तथा दूसरी टोकरीमें सत्यवान् एवं सावित्रीकी प्रतिमा स्थापित कर वटके समीप यथाविधि पूजन करना चाहिये। साथ ही यमका भी पूजन करना चाहिये। पूजनके अनन्तर स्त्रियाँ वटकी पूजा करती हैं तथा उसके मूलको जलसे सींचती हैं। वटकी परिक्रमा करते समय एक सौ आठ बार या यथाशक्ति सूत लपेटा जाता है। '**नमो वैवस्वताय**' इस मन्त्रसे वटवृक्षकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। '**अवैधव्यं च सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते। पुत्रान् पौत्रांश्च सौख्यं च गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥**' इस मन्त्रसे सावित्रीको अर्घ्य देना चाहिये और वटवृक्षका सिंचन करते हुए निम्न प्रार्थना करनी चाहिये—

वट सिञ्चामि ते मूलं सलिलैरमृतोपमैः।
यथा शाखाप्रशाखाभिर्वृद्धोऽसि त्वं महीतले॥
तथा पुत्रैश्च पौत्रैश्च सम्पन्नं कुरु मां सदा॥

चनेपर रुपया रखकर बायनेके रूपमें अपनी सासको देकर आशीर्वाद लिया जाता है। सौभाग्य-पिटारी और पूजा-सामग्री किसी योग्य ब्राह्मणको दी जाती है। सिन्दूर, दर्पण, मौली (नाल), काजल, मेहँदी, चूड़ी, माथेकी बिन्दी, हिंगुल, साड़ी, स्वर्णाभूषण इत्यादि वस्तुएँ एक बाँसकी टोकरीमें रखकर दी जाती हैं—यही सौभाग्य-पिटारीके नामसे जानी जाती है। सौभाग्यवती स्त्रियोंका भी पूजन होता है। कुछ महिलाएँ केवल अमावास्याको एक दिनका ही व्रत रखती हैं।* इस व्रतमें सावित्री-सत्यवान्की पुण्य कथाका श्रवण करती हैं।

कथा—एक समयकी बात है कि मद्रदेशमें अश्वपति नामके महान् प्रतापी और धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। उनके कोई संतान न थी। पण्डितोंके कथनानुसार राजाने संतानहेतु यज्ञ करवाया। उसीके प्रतापसे कुछ समय बाद उन्हें कन्याकी प्राप्ति हुई, जिसका नाम उन्होंने सावित्री रखा। समय बीतता गया। कन्या बड़ी होने लगी। जब सावित्रीको वर खोजनेके लिये कहा गया तो उसने द्युमत्सेनके पुत्र सत्यवान्को पतिरूपमें वरण कर लिया।

इधर यह बात जब नारदजीको मालूम हुई तो वे राजा अश्वपतिके पास आकर बोले कि आपकी कन्याने वर खोजनेमें बड़ी भारी भूल की है। सत्यवान् गुणवान् तथा धर्मात्मा अवश्य है, परंतु वह अल्पायु है। एक वर्ष बाद ही उसकी मृत्यु हो जायगी।

नारदजीकी बात सुनकर राजा उदास हो गये। उन्होंने अपनी पुत्रीको समझाया—'पुत्रि! ऐसे अल्पायु व्यक्तिसे विवाह करना उचित नहीं है, इसलिये तुम कोई और वर चुन लो।' इसपर सावित्री बोली—'तात! आर्य कन्याएँ अपने पतिका वरण एक ही बार करती हैं, अतः अब चाहे जो हो, मैं सत्यवान्को ही वररूपमें स्वीकार करूँगी।'

सावित्रीके दृढ़ रहनेपर आखिर राजा अश्वपति विवाहका सारा सामान और कन्याको लेकर वृद्ध सचिवसहित उस वनमें गये जहाँ राजश्रीसे नष्ट, अपनी रानी और राजकुमारसहित एक वृक्षके नीचे द्युमत्सेन रहते थे। विधि-विधानपूर्वक सावित्री और सत्यवान्का विवाह कर दिया गया।

वनमें रहते हुए सावित्री सास-ससुर और पतिकी सेवामें लगी रही। नारदजीके बतलाये अनुसार पतिके मरणकालका समय पास आया तो वह उपवास करने लगी।

* देशभेद, कालभेद एवं उपचारभेदसे वटसावित्री-व्रतके अनेक रूप हैं।

नारदजीने जो पतिकी मृत्युका दिन बतलाया था, उस दिन जब सत्यवान् कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी काटनेके लिये वनमें जानेको तैयार हुआ, तब सावित्री भी अपने सास-ससुरसे आज्ञा लेकर उसके साथ वनको चली गयी।

वनमें सत्यवान् ज्योंही पेड़पर चढ़ने लगा उसके सिरमें असह्य पीडा होने लगी। वह सावित्रीकी गोदमें अपना सिर रखकर लेट गया। थोड़ी देर बाद सावित्रीने देखा कि अनेक दूतोंके साथ हाथमें पाश लिये यमराज खड़े हैं। यमराज सत्यवान्के अङ्गुष्ठप्रमाण जीवको लेकर दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये। सावित्री भी यमराजके पीछे-पीछे चल दी। सावित्रीको आते देख यमराजने कहा—'हे पतिपरायणे! जहाँतक मनुष्य मनुष्यका साथ दे सकता है, वहाँतक तुमने अपने पतिका साथ दे दिया। अब तुम वापस लौट जाओ।'

यह सुनकर सावित्री बोली—'जहाँतक मेरे पति जायँगे, वहाँतक मुझे जाना चाहिये। यही सनातन सत्य है।'

यमराजने सावित्रीकी धर्मपरायण वाणी सुनकर वर माँगनेको कहा। सावित्रीने कहा—'मेरे सास-ससुर अन्धे हैं, उन्हें नेत्र-ज्योति दें।' यमराजने 'तथास्तु' कहकर उसे लौट जानेको कहा, किंतु सावित्री उसी प्रकार यमके पीछे-पीछे चलती रही। यमराजने उससे पुनः वर माँगनेको कहा। सावित्रीने वर माँगा—'मेरे ससुरका खोया हुआ राज्य उन्हें वापस मिल जाय।' यमराजने 'तथास्तु' कहकर उसे लौट जानेको कहा, परंतु सावित्री अडिग रही।

सावित्रीकी पति-भक्ति और निष्ठा देखकर यमराज अत्यन्त द्रवीभूत हो गये। उन्होंने सावित्रीसे एक और वर माँगनेके लिये कहा। तब सावित्रीने यह वर माँगा कि 'मैं सत्यवान्के सौ पुत्रोंकी माँ बनना चाहती हूँ। कृपाकर आप मुझे यह वरदान दें।' सावित्रीकी पति-भक्ति आदिसे प्रसन्न हो इस अन्तिम वरदानको देते हुए यमराजने सत्यवान्को अपने पाशसे मुक्त कर दिया और वे अदृश्य हो गये। सावित्री अब उसी वटवृक्षके पास आयी। वटवृक्षके नीचे पड़े सत्यवान्के मृत शरीरमें जीवका संचार हुआ और वह उठकर बैठ गया।

सत्यवान्के माता-पिताकी आँखें ठीक हो गयीं और उनका खोया हुआ राज्य वापस मिल गया। इससे सावित्रीके अनुपम व्रतकी कीर्ति सारे देशमें फैल गयी।

इस प्रकार यह मान्यता स्थापित हुई कि सावित्रीकी इस पुण्य कथाको सुननेपर तथा पति-भक्ति रखनेपर महिलाओंके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे और सारी विपत्तियाँ दूर होंगी। प्रत्येक सौभाग्यवती नारीको वटसावित्रीका व्रत रखकर यह कथा सुननी चाहिये।

गङ्गादशहरा

[ज्येष्ठ शुक्ल दशमी]

नमामि गङ्गे तव पादपङ्कजं सुरासुरैर्वन्दितदिव्यरूपम्।
भुक्तिं च मुक्तिं च ददासि नित्यं भावानुसारेण सदा नराणाम्॥

हे मातु गङ्गे! देवताओं और राक्षसोंसे वन्दित आपके दिव्य चरणकमलोंमें नमस्कार करता हूँ, जो मनुष्योंको नित्य ही उनके भावानुसार भुक्ति और मुक्ति प्रदान करते हैं।

गङ्गाजी देवनदी हैं, वे मनुष्यमात्रके कल्याणके लिये धरतीपर आयीं, धरतीपर उनका अवतरण ज्येष्ठ शुक्लपक्षकी दशमीको हुआ। अतः यह तिथि उनके नामपर गङ्गा-दशहराके नामसे प्रसिद्ध हुई—

दशमी शुक्लपक्षे तु ज्येष्ठमासे बुधेऽहनि।
अवतीर्णा यतः स्वर्गाद्धस्तर्क्षे च सरिद्वरा॥

इस तिथिको यदि सोमवार और हस्तनक्षत्र हो तो यह तिथि सब पापोंका हरण करनेवाली होती है—

ज्येष्ठशुक्लदशम्यां तु भवेत्सौम्यदिनं यदि।
ज्ञेया हस्तर्क्षसंयुक्ता सर्वपापहरा तिथिः॥

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी संवत्सरका मुख कही जाती है। इस दिन स्नान और दानका विशेष महत्त्व है—

ज्येष्ठस्य शुक्लादशमी संवत्सरमुखा स्मृता।
तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानं चैव विशेषतः॥

इस तिथिको गङ्गास्नान एवं श्रीगङ्गाजीके पूजनसे दस प्रकारके पापों* (तीन कायिक, चार वाचिक तथा तीन मानसिक)-का नाश होता है। इसीलिये इसे दशहरा कहा गया है—

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता।
हरते दश पापानि तस्माद् दशहरा स्मृता॥

(ब्रह्मपुराण)

इस दिन गङ्गाजीमें अथवा सामर्थ्य न हो तो समीपकी किसी पवित्र नदी या सरोवरके जलमें स्नानकर अभयमुद्रायुक्त मकरवाहिनी गङ्गाजीका ध्यान करे और निम्न मन्त्रसे आवाहनादि षोडशोपचार पूजन करे—

'ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै नमः।'

उक्त मन्त्रमें **'नमः'** के स्थानपर **'स्वाहा'** शब्दका प्रयोग करके हवन भी करना चाहिये। तत्पश्चात् **'ॐ नमो भगवति ऐं ह्रीं श्रीं (वाक्-काम-मायामयि) हिलि हिलि मिलि मिलि गङ्गे मां पावय पावय स्वाहा'**—इस मन्त्रसे पाँच पुष्पाञ्जलि अर्पित करके गङ्गाके उत्पत्तिस्थान हिमालय एवं उन्हें पृथ्वीपर लानेवाले राजा भगीरथका नाममन्त्रसे पूजन करना चाहिये। पूजामें दस प्रकारके पुष्प, दशाङ्ग धूप, दस दीपक, दस प्रकारके नैवेद्य, दस ताम्बूल एवं दस फल होने चाहिये। दक्षिणा भी दस ब्राह्मणोंको देनी चाहिये, किंतु उन्हें दानमें दिये जानेवाले यव (जौ) और तिल सोलह-सोलह मुट्ठी होने चाहिये।

भगवती गङ्गाजी सर्वपापहारिणी हैं। अतः दस प्रकारके पापोंकी निवृत्तिके लिये सभी वस्तुएँ दसकी संख्यामें ही निवेदित की जाती हैं। स्नान करते समय गोते भी दस बार लगाये जाते हैं। इस दिन सत्तूका भी दान किया जाता है।

इस दिन गङ्गावतरणकी कथा सुननेका विधान है। वह कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

भगवान् श्रीरामका जन्म अयोध्याके सूर्यवंशमें हुआ था। उनके एक पूर्वज थे महाराज सगर। महाराज सगर चक्रवर्ती सम्राट् थे। उनकी केशिनी और सुमति नामकी दो रानियाँ थीं। केशिनीके पुत्रका नाम असमञ्जस था और सुमतिके साठ हजार पुत्र थे। असमञ्जसके पुत्रका नाम अंशुमान् था। राजा सगरके असमञ्जससहित सभी पुत्र अत्यन्त उद्दण्ड और दुष्ट प्रकृतिके थे, परंतु पौत्र अंशुमान् धार्मिक और देव-गुरुपूजक था। पुत्रोंसे दुःखी होकर महाराज सगरने असमञ्जसको देशसे निकाल दिया और अंशुमान्को अपना उत्तराधिकारी बनाया। सगरके अन्य साठ हजार पुत्रोंसे देवता भी दुःखी रहते थे।

एक बार महाराज सगरने अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान किया और उसके लिये घोड़ा छोड़ा। इन्द्रने अश्वमेधयज्ञके उस घोड़ेको चुराकर पातालमें ले जाकर कपिलमुनिके आश्रममें बाँध दिया, परंतु ध्यानावस्थित मुनि इस बातको जान न सके। सगरके साठ हजार अहंकारी पुत्रोंने पृथ्वीका कोना-कोना छान मारा, परंतु वे घोड़ेको न पा सके। अन्तमें उन लोगोंने पृथ्वीसे पातालतक मार्ग खोद डाला और कपिलमुनिके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ घोड़ा बँधा देखकर वे क्रोधित हो शस्त्र उठाकर कपिलमुनिको मारने दौड़े। तपस्यामें बाधा पड़नेपर मुनिने अपनी आँखें खोलीं। उनके तेजसे सगरके साठ हजार उद्दण्ड पुत्र तत्काल भस्म हो गये।

गरुडके द्वारा इस घटनाकी जानकारी मिलनेपर अंशुमान् कपिलमुनिके आश्रममें आये तथा उनकी स्तुति की। कपिलमुनि उनके विनयसे प्रसन्न होकर बोले—अंशुमन्! घोड़ा ले जाओ और अपने पितामहका यज्ञ पूरा

---

* अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः। असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम्॥

(मनु० १२।७, ६, ५)

अर्थात् बिना दिये हुए दूसरेकी वस्तु लेना, शास्त्रवर्जित हिंसा करना तथा परस्त्रीगमन करना—तीन प्रकारके शारीरिक (कायिक) पाप हैं। कटु बोलना, झूठ बोलना, परोक्षमें किसीका दोष कहना तथा निष्प्रयोजन बातें करना वाचिक पाप हैं और दूसरेके द्रव्यको अन्यायसे लेनेका विचार करना, मनसे दूसरेका अनिष्ट चिन्तन करना तथा नास्तिक बुद्धि रखना मानसिक पाप हैं।

कराओ। ये सगरपुत्र उद्दण्ड, अहंकारी और अधार्मिक थे, इनकी मुक्ति तभी हो सकती है जब गङ्गाजलसे इनकी राखका स्पर्श हो।

अंशुमान्‌ने घोड़ा ले जाकर अपने पितामह महाराज सगरका यज्ञ पूरा कराया। महाराज सगरके बाद अंशुमान् राजा बने, परंतु उन्हें अपने चाचाओंकी मुक्तिकी चिन्ता बनी रही। कुछ समय बाद अपने पुत्र दिलीपको राज्यका कार्यभार सौंपकर वे वनमें चले गये तथा गङ्गाजीको स्वर्गसे पृथ्वीपर लानेके लिये तपस्या करने लगे और तपस्यामें ही उनका शरीरान्त भी हो गया। महाराज दिलीपने भी अपने पुत्र भगीरथको राज्यभार देकर स्वयं पिताके मार्गका अनुसरण किया। उनका भी तपस्यामें ही शरीरान्त हुआ, परंतु वे भी गङ्गाजीको पृथ्वीपर न ला सके। महाराज दिलीपके बाद भगीरथने ब्रह्माजीकी घोर तपस्या की। अन्तमें तीन पीढ़ियोंकी इस तपस्यासे प्रसन्न हो पितामह ब्रह्माने भगीरथको दर्शन देकर वर माँगनेको कहा। भगीरथने कहा—हे पितामह! मेरे साठ हजार पूर्वज कपिलमुनिके शापसे भस्म हो गये हैं, उनकी मुक्तिके लिये आप गङ्गाजीको पृथ्वीपर भेजनेकी कृपा करें। ब्रह्माजीने कहा—मैं गङ्गाजीको पृथ्वीलोकपर भेज तो अवश्य दूँगा, परंतु उनके वेगको कौन रोकेगा, इसके लिये तुम्हें देवाधिदेव भगवान् शंकरकी आराधना करनी चाहिये। भगीरथने एक पैरपर खड़े होकर भगवान् शंकरकी आराधना शुरू कर दी। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने गङ्गाजीको अपनी जटाओंमें रोक लिया और उसमेंसे एक जटाको पृथ्वीकी ओर छोड़ दिया। इस प्रकार गङ्गाजी पृथ्वीकी ओर चलीं। अब आगे-आगे राजा भगीरथका रथ और पीछे-पीछे गङ्गाजी थीं। मार्गमें जह्नुऋषिका आश्रम पड़ा, गङ्गाजी उनके कमण्डलु, दण्ड आदि बहाते हुए जाने लगीं। यह देख ऋषिने उन्हें पी लिया। कुछ दूर जानेपर भगीरथने पीछे मुड़कर देखा तो गङ्गाजीको न देख वे ऋषिके आश्रमपर आकर उनकी वन्दना करने लगे। प्रसन्न हो ऋषिने अपनी पुत्री बनाकर गङ्गाजीको दाहिने कानसे निकाल दिया। इसलिये देवी गङ्गा 'जाह्नवी' नामसे भी जानी जाती हैं। भगीरथकी तपस्यासे अवतरित होनेके कारण उन्हें 'भागीरथी' भी कहा जाता है।

इसके बाद भगवती भागीरथी गङ्गाजी मार्गको हरा-भरा शस्य-श्यामल करते हुए कपिलमुनिके आश्रममें पहुँचीं, जहाँ महाराज भगीरथके साठ हजार पूर्वज भस्मकी ढेरी बने पड़े थे। गङ्गाजलके स्पर्शमात्रसे वे सभी दिव्यरूपधारी हो दिव्य लोकोंको चले गये।

निर्जला एकादशी

[ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी]

ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी एकादशी 'निर्जला एकादशी' कहलाती है। अन्य महीनोंकी एकादशीको फलाहार किया जाता है, परंतु इस एकादशीको फल तो क्या जल भी ग्रहण नहीं किया जाता। यह एकादशी ग्रीष्म-ऋतुमें बड़े कष्ट और तपस्यासे की जाती है। अत: अन्य एकादशियोंसे इसका महत्त्व सर्वोपरि है। इस एकादशीके करनेसे आयु और आरोग्यकी वृद्धि तथा उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है। महाभारतके अनुसार अधिमाससहित एक वर्षकी छब्बीसों एकादशियाँ न की जा सकें तो केवल निर्जला एकादशीका ही व्रत कर लेनेसे पूरा फल प्राप्त हो जाता है—

वृषस्थे मिथुनस्थेऽर्के शुक्ला ह्येकादशी भवेत्।
ज्येष्ठे मासि प्रयत्नेन सोपोष्या जलवर्जिता॥
स्नाने चाचमने चैव वर्जयेन्नोदकं बुधः।
संवत्सरस्य या मध्ये एकादश्यो भवन्त्युत॥
तासां फलमवाप्नोति अत्र मे नास्ति संशयः।

निर्जला-व्रत करनेवालेको अपवित्र अवस्थामें आचमनके सिवा बिन्दुमात्र भी जल ग्रहण नहीं करना चाहिये। यदि किसी प्रकार जल उपयोगमें ले लिया जाय तो व्रत भंग हो जाता है।

निर्जला एकादशीको सम्पूर्ण दिन-रात निर्जल-व्रत रहकर द्वादशीको प्रात: स्नान करना चाहिये तथा सामर्थ्यके अनुसार सुवर्ण और जलयुक्त कलशका दान करना चाहिये। इसके अनन्तर व्रतका पारायण कर प्रसाद ग्रहण करना चाहिये।

कथा—पाण्डवोंमें भीमसेन शारीरिक शक्तिमें सबसे बढ़-चढ़कर थे, उनके उदरमें वृक नामकी अग्नि थी इसीलिये उन्हें वृकोदर भी कहा जाता है। वे जन्मजात

शक्तिशाली तो थे ही, नागलोकमें जाकर वहाँके दस कुण्डोंका रस पी लेनेसे उनमें दस हजार हाथियोंके समान शक्ति हो गयी थी। इस रसपानके प्रभावसे उनकी भोजन पचानेकी क्षमता और भूख भी बढ़ गयी थी। सभी पाण्डव तथा द्रौपदी एकादशियोंका व्रत करते थे, परंतु भीमके लिये एकादशीव्रत दुष्कर थे। अत: व्यासजीने उनसे ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी एकादशीका व्रत निर्जल रहते हुए करनेको कहा तथा बताया कि इसके प्रभावसे तुम्हें वर्षभरकी एकादशियोंके बराबर फल प्राप्त होगा। व्यासजीके आदेशानुसार भीमसेनने इस एकादशीका व्रत किया। इसलिये यह एकादशी 'भीमसेनी एकादशी' के नामसे भी जानी जाती है।

आषाढ़मासके व्रतपर्वोत्सव—

श्रीजगन्नाथभगवान्‌की रथयात्रा

(गुण्डिचा-महोत्सव)

[आषाढ़ शुक्ल द्वितीया]

भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी द्वादश यात्राओंमें गुण्डिचा-यात्रा मुख्य है। इसी गुण्डिचा-मन्दिरमें विश्वकर्माने भगवान् जगन्नाथजी, बलभद्रजी तथा सुभद्राजीकी दारुप्रतिमाएँ बनायी थीं। महाराज इन्द्रद्युम्नने इन्हीं मूर्तियोंको प्रतिष्ठित किया। अत: गुण्डिचा-मन्दिरको ब्रह्मलोक या जनकपुर भी कहते हैं। गुण्डिचा-मन्दिरमें यात्राके समय श्रीजगन्नाथजी विराजमान होते हैं। उस समय यहाँ जो महोत्सव होता है, वह गुण्डिचा-महोत्सव कहलाता है।

स्कन्दपुराणमें वर्णन आया है कि ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षमें जो पूर्णिमा आती है, उसमें ज्येष्ठानक्षत्रके एक ही अंशमें चन्द्रमा और बृहस्पति हों, बृहस्पतिका ही दिन हो और शुभ योग भी हो तो वह महाज्येष्ठी पूर्णिमा कहलाती है, जो सब पापोंका नाश करनेवाली, महापुण्यमयी तथा भगवान्‌की प्रीतिको बढ़ानेवाली है। उसमें करुणासिन्धु देवेश्वर जगन्नाथजीके स्नानाभिषेक और पूजनका दर्शन करके मनुष्य पापराशिसे मुक्त हो जाता है।

वैशाखके शुक्लपक्षमें जो पापनाशिनी तीज आती है, उसमें रोहिणीनक्षत्रका योग होनेपर पवित्रभावसे संकल्पपूर्वक एक आचार्यका वरण करे। फिर एक या तीन बढ़ईसे श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राजीके लिये तीन रथ तैयार कराये, जिनमें बैठनेके लिये सुन्दर आसन हों और जो सुन्दर कलापूर्ण ढंगसे बनाये गये हों। रथोंका निर्माण हो जानेपर शास्त्रोक्त विधिसे मन्त्रके अनुसार पूर्ववत् उनकी प्रतिष्ठा करे। मार्गका भलीभाँति संस्कार कराये। मार्गके दोनों ओर फूलोंके गुच्छे, माल्य, सुन्दर वस्त्र, चँवर, गुल्मलता और फूलों आदिके द्वारा मण्डल बनाये।

रास्तेकी भूमि बराबर कर देनी चाहिये। वहाँ कीचड़ नहीं रहना चाहिये, जिससे भगवान्‌का रथ सुखपूर्वक चल सके। पग-पगपर रास्तेके दोनों पार्श्वोंमें दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले धूपपात्र रखे जायँ। सड़कपर चन्दनके जलका छिड़काव हो। नगाड़ा और ढक्का आदि बाजे बजाये जायँ। सोने-चाँदीके ध्वज—जिनके बीच चित्रकारी की गयी हो, लगाये जायँ और उनपर पताकाएँ फहराती रहें। भूमिपर बहुत-सी वैजयन्ती मालाएँ बिछी हों। अनेक कसे-कसाये हाथी-घोड़े प्रस्तुत किये जायँ, जिनका भलीभाँति शृङ्गार किया गया हो। इस प्रकार सामग्री एकत्र करके उत्तम भक्तिसे युक्त हो महान् उत्सव करे।

आषाढ़के शुक्लपक्षमें पुष्यनक्षत्रसे युक्त द्वितीया तिथि आनेपर उसमें अरुणोदयके समय भगवान्‌की पूजा करे। ब्राह्मणों, वैष्णवों, तपस्वियों और यतियोंके साथ स्वयं भी

हाथ जोड़कर देवाधिदेव भगवान्से यात्राके लिये निवेदन करे—'प्रभो! आपने पूर्वकालमें राजा इन्द्रद्युम्नको जैसी आज्ञा दी है, उसके अनुसार रथसे गुण्डिचा-मण्डपके प्रति विजय-यात्रा कीजिये। आपकी कृपा-कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे दसों दिशाएँ पवित्र हों तथा स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणी कल्याणको प्राप्त हों। आपने यह अवतार लोगोंके ऊपर दयाकी इच्छासे ग्रहण किया है। इसलिये भगवन्! आप प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीपर चरण रखकर पधारिये।'

इसके बाद लोग मङ्गलगीत गायें, जय-जयकार करें और '**जितं ते पुण्डरीकाक्ष**' इत्यादि मन्त्रका उच्च स्वरसे जप करें। सूत, मागध आदि हर्षमें भरकर भगवान्के पवित्र यशका गान करें। भगवान्के दोनों पार्श्वमें सुवर्णमय दण्डसे सुशोभित व्यजनोंकी पंक्ति धीरे-धीरे डुलती रहे। कृष्णागरुकी धूपसे सम्पूर्ण दिशाएँ और वहाँका आकाश सुवासित रहे। झाँझ, करताल, वेणु, वीणा, माधुरिका आदि वाद्य गोविन्दकी इस विजययात्राके समय मधुर स्वरसे बजते रहें।

इस प्रकार उत्सव आरम्भ होनेपर श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राजीको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यलोग धीरे-धीरे ले जायँ। बीच-बीचमें रूईदार बिछौनोंपर उन्हें विश्राम करायें और इस प्रकार उन सबको रथपर ले जायँ। फिर उस उत्तम रथको घुमाकर श्रीकृष्ण, बलभद्र तथा सुभद्राजीको सुन्दर चँदोवायुक्त मण्डपसे सुशोभित रथमें विराजमान करे। उन सबको रूईदार गद्दोंपर बिठाकर भक्तिपूर्वक भाँति-भाँतिके वस्त्राभूषण और मालाओंसे विभूषित करे। नाना प्रकारके उपचारोंसे उनकी पूजा भी करे।

उस समय रथपर विराजमान होकर यात्रा करते हुए श्रीजगन्नाथजीका जो लोग भक्तिपूर्वक दर्शन करते हैं, उनका भगवान्के धाममें निवास होता है। जिनके नामका संकीर्तन करनेमात्रसे सौ जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है, रथमें स्थित हो महावेदीकी ओर जाते हुए उन पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राजीका दर्शन करके मनुष्य अपने करोड़ों जन्मोंके पापोंका नाश कर लेता है।

मेघोंके द्वारा जलकी वर्षाके संयोगसे रथका मार्ग जब कीचड़युक्त हो जाता है, उस समय भी वह श्रीकृष्णकी दिव्य दृष्टि पड़नेसे समस्त पापोंका नाश करनेवाला होता है। उस पङ्किल रथमार्गमें जो उत्तम वैष्णव भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं, वे अनादिकालसे अपने ऊपर चढ़े हुए पापपङ्कको त्यागकर मुक्त हो जाते हैं। जो भगवान् वासुदेवके आगे 'जय' शब्दका उच्चारण करते हुए स्तुति करते हैं, वे भाँति-भाँतिके पापोंपर नि:संदेह विजय पा जाते हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष वहाँ नृत्य करते हैं और गाते हैं, वे उत्तम वैष्णवोंके संसर्गसे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जो भगवान्के नामोंका कीर्तन करता हुआ उस यात्रामें साथ-साथ जाता है तथा गुण्डिचा नगरको जाते हुए श्रीकृष्णकी ओर देखकर भक्तिपूर्वक 'जय कृष्ण, जय कृष्ण, जय कृष्ण' का उच्चारण करता है, वह माताके गर्भमें निवास करनेका दु:ख कभी नहीं भोगता। जो मनुष्य रथके आगे खड़ा होकर चँवर, व्यजन, फूलके गुच्छों अथवा वस्त्रोंसे भगवान् पुरुषोत्तमको हवा करता है, वह ब्रह्मलोकमें जाकर मोक्ष पाता है। जो पवित्र 'सहस्रनाम' का पाठ करते हुए रथकी प्रदक्षिणा करते हैं, वे भगवान् विष्णुके समान होकर वैकुण्ठधाममें निवास करते हैं। जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णके उद्देश्यसे दान देता है, उसका वह थोड़ा भी दान मेरुदानके समान अक्षय फल देनेवाला होता है। जो भगवान्के आगे रहकर उनके मुखारविन्दका दर्शन करते हुए और पग-पगपर प्रणाम करते हुए मार्गकी धूल या कीचड़में लोटते हैं, वे क्षणभरमें मुक्तिरूपी फलको पाकर श्रीविष्णुके उत्तम धाममें चले जाते हैं।

इस प्रकार बलभद्र और सुभद्राके साथ भगवान् श्रीकृष्ण उत्तम रथपर विराजमान हो चारों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए और अपने अङ्गोंका स्पर्श करके बहनेवाली वायुके द्वारा समस्त देहधारियोंके पापोंका नाश करते हुए यात्रा करते हैं।

वे बड़े दयालु और भक्तोंके पालक हैं। जो अज्ञानी और अविश्वासी हैं, उनके मनमें भी विश्वास उत्पन्न करनेके लिये भगवान् विष्णु प्रतिवर्ष यात्रा आरम्भ करते हैं।

इस प्रकार गुण्डिचा नगरमें जाकर भगवान् विन्दुतीर्थके

तटपर सात दिन निवास करते हैं; क्योंकि प्राचीन कालमें उन्होंने राजा इन्द्रद्युम्नको यह वर दिया था कि 'मैं तुम्हारे तीर्थके किनारे प्रतिवर्ष निवास करूँगा। मेरे वहाँ स्थित रहनेपर सभी तीर्थ उसमें निवास करेंगे। उस तीर्थमें विधिपूर्वक स्नान करके जो लोग सात दिनोंतक गुण्डिचा-मण्डपमें विराजमान मेरा, बलरामका और सुभद्राका दर्शन करेंगे, वे मेरा सायुज्य प्राप्त कर लेंगे।'

सात दिनोंतक मौनभावसे तीनों काल स्नान करे और तीनों सन्ध्याओंमें कलशपर भक्तिपूर्वक भगवान्‌की पूजा करे। गायके घी अथवा तिलके तेलसे दीपक जलाये और उसे भगवान्‌के आगे रखकर रात-दिन उसकी रक्षा करे। दिनमें मौन रहे और रातमें जागरण करके भगवत्सम्बन्धी मन्त्रका जप करे। इस प्रकार सात दिन बिताकर आठवें दिन प्रातःकाल उठकर प्रतिष्ठा कराये। इस व्रतराजका पूरी तरह पालन करके मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको अपनी रुचिके अनुसार प्राप्त करता है। सात दिनोंतक यहाँ रथकी भलीभाँति रक्षा करके आठवें दिन उन सब रथोंको पुनः दक्षिणाभिमुख कर दे और वस्त्र, माला, पताका तथा चँवर आदिसे उनकी पुनः सजावट करे। आषाढ़ शुक्ल नवमीको प्रातःकाल उन सब भगवद्विग्रहोंको रथपर विराजमान करे। भगवान् विष्णुकी यह दक्षिणाभिमुख यात्रा अत्यन्त दुर्लभ है। भक्ति और श्रद्धासे युक्त मनुष्योंको इस यात्रामें प्रयत्नपूर्वक भाग लेना चाहिये। यात्रा और मन्दिर-प्रवेश—ये दोनों मिलकर भगवान्‌का एक ही उत्सव माना गया है। यह पूरी यात्रा नौ दिनोंकी होती है। जिन लोगोंने तीन अङ्गोंवाली इस यात्राकी पूर्णतः उपासना की है, उन्हींके लिये यह महावेदी-महोत्सव सम्पूर्ण फल देनेवाला होता है। गुण्डिचा-मण्डपसे रथपर बैठकर दक्षिण दिशाकी ओर आते हुए श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राजीका जो दर्शन करते हैं, वे मोक्षके भागी होते हैं अर्थात् भगवान्‌के वैकुण्ठधाममें जाते हैं।

इस प्रकार यह महावेदी-महोत्सवका वर्णन है, जिसके कीर्तनमात्रसे मनुष्य निर्मल हो जाता है। जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इस प्रसङ्गका पाठ करता है अथवा सावधान होकर सुनता है और भगवत्-प्रतिमाका चित्र लेकर भी उसे रथपर बैठाकर भक्तिभावसे इस यात्राको सम्पन्न करता है, वह भी भगवान् विष्णुकी कृपासे गुण्डिचा-महोत्सवके फलस्वरूप वैकुण्ठधाममें जाता है। [प्रेषक—श्रीसुरेशजी सैनी]

चातुर्मास्य व्रत तथा उसके पालनीय नियम

[श्रावणसे कार्तिकतक]

भगवान् विष्णुके शयन करनेपर चातुर्मास्यमें जो कोई नियम पालित होता है, वह अनन्त फल देनेवाला होता है। अतः विज्ञ पुरुषको प्रयत्न करके चातुर्मासमें कोई नियम ग्रहण करना चाहिये। भगवान् विष्णुके संतोषके लिये नियम, जप, होम, स्वाध्याय अथवा व्रतका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। जो मानव भगवान् वासुदेवके उद्देश्यसे केवल शाकाहार करके वर्षाके चार महीने व्यतीत करता है, वह धनी होता है। जो भगवान् विष्णुके शयनकालमें प्रतिदिन नक्षत्रोंका दर्शन करके ही एक बार भोजन करता है, वह धनवान्, रूपवान् और माननीय होता है। जो एक दिनका अन्तर देकर भोजन करते हुए चौमासा व्यतीत करता है, वह सदा वैकुण्ठधाममें निवास करता है।

भगवान् जनार्दनके शयन करनेपर जो छठे दिन भोजन करता है, वह राजसूय तथा अश्वमेधयज्ञोंका सम्पूर्ण फल पाता है। जो सदा तीन रात उपवास करके चौथे दिन भोजन करते हुए चौमासा बिताता है, वह इस संसारमें फिर किसी प्रकारका जन्म नहीं लेता। जो श्रीहरिके शयनकालमें व्रतपरायण होकर चौमासा व्यतीत करता है, वह अग्निष्टोमयज्ञका फल पाता है। जो भगवान् मधुसूदनके शयन करनेपर अयाचित अन्नका भोजन करता है, उसे अपने भाई-बन्धुओंसे कभी वियोग नहीं होता। जो मानव ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक चौमासा व्यतीत करता है, वह श्रेष्ठ विमानपर बैठकर स्वेच्छासे स्वर्गलोकमें जाता है। जो चौमासेभर नमकीन वस्तुओं एवं नमकको छोड़ देता है, उसके सभी पूर्तकर्म सफल होते हैं। जो चौमासेमें प्रतिदिन स्वाहान्त विष्णुसूक्तके मन्त्रोंद्वारा तिल और चावलकी आहुति देता है, वह कभी रोगी नहीं होता।

चातुर्मास्यमें प्रतिदिन स्नान करके जो भगवान् विष्णुके

आगे खड़ा हो 'पुरुषसूक्त'का जप करता है, उसकी बुद्धि बढ़ती है। जो अपने हाथमें फल लेकर मौनभावसे भगवान् विष्णुकी एक सौ आठ परिक्रमा करता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता। जो अपनी शक्तिके अनुसार चौमासेमें—विशेषत: कार्तिकमासमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराता है, वह अग्निष्टोमयज्ञका फल पाता है।

वर्षाके चार महीनोंतक नित्यप्रति वेदोंके स्वाध्यायसे जो भगवान् विष्णुकी आराधना करता है, वह सर्वदा विद्वान् होता है। जो चौमासेभर भगवान्के मन्दिरमें रात-दिन नृत्य-गीत आदिका आयोजन करता है, वह गन्धर्वभावको प्राप्त होता है। यदि चार महीनोंतक नियमका पालन करना सम्भव न हो तो मात्र कार्तिकमासमें ही सब नियमोंका पालन करना चाहिये। जिसने कुछ उपयोगी वस्तुओंको चौमासेभर त्याग देनेका नियम लिया हो, उसे वे वस्तुएँ ब्राह्मणको दान करनी चाहिये। ऐसा करनेसे ही वह त्याग सफल होता है। जो मनुष्य नियम, व्रत अथवा जपके बिना ही चौमासा बिताता है, वह मूर्ख है।

श्रावणमें कृष्णपक्षकी द्वितीयाको श्रवणनक्षत्रमें प्रात:काल उठे। पापी, पतित और म्लेच्छ आदिसे वार्तालाप न करे। फिर दोपहरमें स्नान करके धुले वस्त्र पहनकर पवित्र हो जलशायी श्रीहरिके समीप जाकर इस मन्त्रसे उनका पूजन करे—

श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकान्त श्रीधाम श्रीपतेऽव्यय।
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम्॥
पितरौ मा प्रणश्येतां मा प्रणश्यन्तु चाग्नय:।
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे प्रणश्यतु॥
लक्ष्म्या त्वशून्यशयनं यथा ते देव सर्वदा।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि॥

'श्रीवत्सचिह्न धारण करनेवाले लक्ष्मीकान्त! श्रीधाम! श्रीपते! अविनाशी परमेश्वर! धर्म, अर्थ एवं काम देनेवाला मेरा गार्हस्थ्य आश्रम नष्ट न हो। मेरे माता-पिता नष्ट न हों, मेरे अग्निहोत्र-गृहकी अग्नि कभी न बुझे। मेरा स्त्रीसे सम्बन्ध-विच्छेद न हो। हे देव! जैसे आपका शयनगृह लक्ष्मीजीसे कभी शून्य नहीं होता, उसी प्रकार प्रत्येक जन्ममें मेरी भी शय्या धर्मपत्नीसे शून्य न रहे।'

ऐसा कहकर अर्घ्य दे तथा अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणकी पूजा करे। इसी प्रकार भाद्रपद, आश्विन और कार्तिकमासमें भी जलशायी जगदीश्वरका पूजन करे तथा नमकरहित अन्न भोजन करे। व्रत समाप्त होनेपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक दान दे। जौ, धान्य, शय्या, वस्त्र तथा सुवर्ण दक्षिणामें दे। जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो इस प्रकार भलीभाँति व्रतका पालन करता है, उसके ऊपर जलशायी जगद्गुरु भगवान् विष्णु बहुत संतुष्ट होते हैं।

[प्रेषक—श्रीजगदीशप्रसादजी सैनी]

व्यासपूजा—गुरुपूर्णिमाकी महिमा

[आषाढ़-पूर्णिमा]

(श्रीश्रीधरसिंहजी 'दयालपुरी')

गुरु सर्वेश्वरका साक्षात्कार करवाकर शिष्यको जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त कर देते हैं। अतएव संसारमें गुरुका स्थान विशेष महत्त्वका है। पराशरजीकी कृपासे वेदव्यासजीका अवतरण इस भारतवसुन्धरापर आषाढ़की पूर्णिमाको हुआ। इसलिये आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमाको सभी अपने-अपने गुरुकी पूजा विशेषरूपसे करते हैं। व्यासदेवजी गुरुओंके भी गुरु माने जाते हैं। यह गुरु-पूजा विश्वविख्यात है। इसे व्यास-पूजाका पर्व भी कहते हैं। इस पूजोत्सवके अवसरपर सत्संगका भव्य आयोजन किया जाता है।

जैसे ज्ञान-विज्ञानके बिना मोक्ष नहीं हो सकता, उसी तरह सद्गुरुसे सम्बन्ध हुए बिना ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो

सकती। गुरु इस संसार-सागरसे पार उतारनेवाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान नौकाके समान बताया गया है। मनुष्य इस ज्ञानको पाकर भवसागरसे पार होकर कृतकृत्य हो जाता है, फिर उसे नौका और नाविक दोनोंकी ही अपेक्षा नहीं रहती।

गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसके आरम्भमें गुरुकी वन्दना करते हुए लिखते हैं—

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निंकर॥
बंदउँ गुरु पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥

'मैं गुरु महाराजके चरण-कमलकी रजको प्रणाम करता हूँ, जो अच्छी रुचि और प्रेमको उत्पन्न करनेवाली, सुगन्धित और सारसहित है।'

संत सद्गुरु महर्षि मेंहीं परमहंसजी महाराजने स्पष्ट किया है कि चरण-रजमें चरणोंकी चैतन्य-वृत्ति ऊर्जारूपसे स्वभावतः समायी होती है। यही चैतन्य-वृत्ति, चरण-रजमें सार है। जो पुरुष जिन गुणोंवाले होते हैं, उनकी चैतन्य-वृत्ति और ऊर्जा उन्हीं गुणोंका रूप होती है। भक्तिमान्, योगी, ज्ञानी और पवित्रात्मा गुरुके चरण-रजमें उनका चैतन्यरूपी सार भगवद्भक्तिमें सुरुचि और प्रेम उत्पन्न करता है और श्रद्धालु गुरुभक्तोंको वह रज सुगन्धित भी जान पड़ती है।

श्रीगुरुपदनखके सुमिरनसे हृदयके दोनों निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसाररूपी रातके सब दोष-दुःख मिट जाते हैं। अन्तरमें ब्रह्मज्योति देखनेवाली तुरीयावस्थाकी दृष्टि और विवेककी दृष्टि (बुद्धिमें सारासारकी शक्ति यानी विद्या) हृदयके दो निर्मल नेत्र हैं। हृदयमें निर्मल नेत्रोंके खुलते ही रामचरितरूप मणि-माणिक जहाँ जो जिस खानमें है गुप्त अथवा प्रकट हों, सूझने लगते हैं। गुप्त चरितरूप ब्रह्मज्योतिर्मय मणि-माणिक तुरीयावस्थावाली दिव्य दृष्टिसे अन्तरकी गहरी गुप्त खानमें देखे जाते हैं। प्रकट चरित-पुराणोंकी प्रकट खानमें विविध कथारूप रत्न-समूह हैं, जो विद्याकी दृष्टिसे मालूम पड़ते हैं।

श्रीरामचरितमानसमें लिखा है—

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि॥

उपर्युक्त दोहेको स्पष्ट करते हुए महर्षि मेंहींने कहा है कि मैं गुरुके चरण-कमलकी धूलिसे अपने मनरूपी दर्पणको स्वच्छकर श्रीरामजीके पवित्र यशका वर्णन करता हूँ, जो चारों फलों (अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष)-को देनेवाले हैं। मन जब जिस विषयका चिन्तन करता है, तब उसपर वह विषय लगता है। जैसे मनके विषयोंके चिन्तनमें लगनेके कारण ही यह कहा गया है—*'काई बिषय मुकुर मन लागी'*। इसी तरह जब मनसे गुरुमूर्तिका चिन्तन हो अथवा गुरुरूपका मानस-ध्यान किया जाय तो मनरूपी दर्पणपर सहजमें गुरुपदरज लग जायगी।

'गुरु' शब्दकी व्याख्या कई प्रकारसे की जाती है। उदाहरणार्थ—

(अ) **'गरति सिञ्चति कर्णयोर्ज्ञानामृतम् इति गुरुः'** अर्थात् जो शिष्यके कानोंमें ज्ञानरूपी अमृतका सिंचन करता है, वह गुरु है (**'गॄ सेचने भ्वादिः'**)।

(आ) **'गिरति अज्ञानान्धकारम् इति गुरुः'** अर्थात् जो अपने सदुपदेशोंके माध्यमसे शिष्यके अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट कर देता है, वह गुरु है (**'गॄ निगरणे तुदादिः'**)।

(इ) **'गृणाति धर्मादिरहस्यम् इति गुरुः'** अर्थात् जो शिष्यके प्रति धर्म आदि ज्ञातव्य तथ्योंका उपदेश करता है, वह गुरु है (**'गॄ शब्दे क्र्यादिः'**)।

(ई) **'गारयते विज्ञापयति शास्त्ररहस्यम् इति गुरुः'** अर्थात् जो वेदादि शास्त्रोंके रहस्यको समझा देता है, वह गुरु है (**'गॄ विज्ञाने चुरादिः'**)।

शिष्यवर्गमें अपने गुरुको ब्रह्मा, विष्णु, महेश और परब्रह्मके समकक्ष माननेकी यह सूक्ति बहुत प्रचलित है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

महर्षि याज्ञवल्क्यने लिखा है—

उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्।
वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत्॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति १।२।१५)

अर्थात् उपनयनकी विधि सम्पन्न हो जानेपर गुरु अपने शिष्यको **'भूः'**, **'भुवः'**, **'स्वः'**—इन व्याहृतियोंका उच्चारण कराकर वेद पढ़ाये और दन्तधावन एवं स्नान आदिके द्वारा शौचके नियमोंको सिखाये तथा उसके हितार्थ आचारकी भी शिक्षा दे।

आचार परम धर्म माना गया है। इसके सम्बन्धमें

रास्ता बता दिया है। वेदव्यासजीकी कृपा सभी साधकोंके चित्तमें चिरस्थायी रहे। जिन-जिनके अन्तःकरणमें ऐसे व्यासजीका ज्ञान, उनकी अनुभूति और निष्ठा उभरी, ऐसे पुरुष अभी भी ऊँचे आसनपर बैठते हैं तो कहा जाता है कि भागवतकथामें अमुक महाराज व्यासपीठपर विराजेंगे।

व्यासजीके शास्त्र-श्रवणके बिना भारत तो क्या विश्वमें भी कोई आध्यात्मिक उपदेशक नहीं बन सकता— व्यासजीका ऐसा अगाध ज्ञान है। व्यासपूर्णिमाका पर्व वर्षभरकी पूर्णिमा मनानेके पुण्यका फल तो देता ही है, साथ ही नयी दिशा, नया संकेत भी देता है और कृतज्ञताका सद्गुण भी भरता है। जिन महापुरुषोंने कठोर परिश्रम करके हमारे लिये सब कुछ किया, उन महापुरुषोंके प्रति कृतज्ञता ज्ञापनका अवसर—ऋषिऋण चुकानेका अवसर, ऋषियोंकी प्रेरणा और आशीर्वाद पानेका यही अवसर है—व्यासपूर्णिमा। यह पर्व गुरुपूर्णिमा भी कहलाता है। भगवान् श्रीराम भी गुरुद्वारपर जाते थे और माता-पिता तथा गुरुदेवके चरणोंमें विनयपूर्वक नमन करते थे—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

गुरुजनों, श्रेष्ठजनों एवं अपनेसे बड़ोंके प्रति अगाध श्रद्धाका यह पर्व भारतीय सनातन संस्कृतिका विशिष्ट पर्व है।

इस प्रकार कृतज्ञता व्यक्त करनेका और तप, व्रत, साधनामें आगे बढ़नेका भी यह त्योहार है। संयम, सहजता, शान्ति और माधुर्य तथा जीते-जी मधुर जीवनकी दिशा बनानेवाली पूर्णिमा है—गुरुपूर्णिमा। ईश्वरप्राप्तिकी सहज, साध्य, साफ-सुथरी दिशा बतानेवाला त्योहार है—गुरुपूर्णिमा। यह आस्थाका पर्व है, श्रद्धाका पर्व है, समर्पणका पर्व है।

(प्रस्तुतकर्ता—श्रीबलरामजी सैनी)

श्रावणमासके व्रतपर्वोत्सव—

श्रावणके सोमवार

श्रावणमासमें आशुतोष भगवान् शंकरकी पूजाका विशेष महत्त्व है। जो प्रतिदिन पूजन न कर सकें उन्हें सोमवारको शिवपूजा अवश्य करनी चाहिये और व्रत रखना चाहिये। सोमवार भगवान् शंकरका प्रिय दिन है, अतः सोमवारको शिवाराधन करना चाहिये। इसी प्रकार मासोंमें श्रावणमास भगवान् शंकरको विशेष प्रिय है। अतः श्रावणमासमें प्रतिदिन शिवोपासनाका विधान है। श्रावणमें पार्थिव शिवपूजाका विशेष महत्त्व है। अतः प्रतिदिन अथवा प्रति सोमवार तथा प्रदोषको शिवपूजा या पार्थिव शिवपूजा अवश्य करनी चाहिये।

इस मासमें लघुरुद्र, महारुद्र अथवा अतिरुद्र पाठ करानेका भी विधान है। श्रावणमासमें जितने भी सोमवार पड़ते हैं, उन सबमें शिवजीका व्रत किया जाता है। इस व्रतमें प्रातः गङ्गास्नान अन्यथा किसी पवित्र नदी या सरोवरमें अथवा विधिपूर्वक घरपर ही स्नान करके शिवमन्दिरमें जाकर स्थापित शिवलिङ्गका या अपने घरमें पार्थिव मूर्ति बनाकर यथाविधि षोडशोपचार-पूजन किया जाता है। यथासम्भव विद्वान् ब्राह्मणसे रुद्राभिषेक भी कराना चाहिये। इस व्रतमें श्रावणमाहात्म्य और श्रीशिवमहापुराणकी कथा सुननेका विशेष महत्त्व है। पूजनके पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराकर एक बार ही भोजन करनेका विधान है। भगवान् शिवका यह व्रत सभी मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

कर प्रज्वलित करना चाहिये। इसके बाद पवित्रीकरण, स्वस्तिवाचन और गणेशपूजन करे तथा यथाशक्ति यथासम्भव वरुण-कलशस्थापनपूजन, नवग्रहपूजन तथा षोडशमातृकापूजन भी करनेकी विधि है।

इसके बाद '**श्रीमङ्गलागौर्यै नमः**' इस नाम-मन्त्रसे मङ्गलागौरीका षोडशोपचारपूजन करना चाहिये। मङ्गलागौरीकी पूजामें सोलह प्रकारके पुष्प, सोलह मालाएँ, सोलह वृक्षके पत्ते, सोलह दूर्वादल, सोलह धतूरके पत्ते, सोलह प्रकारके अनाज तथा सोलह पान, सुपारी, इलायची, जीरा और धनिया भी चढ़ाये।

मङ्गलागौरीके ध्यानका मन्त्र इस प्रकार है—

कुंकुमागुरुलिप्ताङ्गां सर्वाभरणभूषिताम्।
नीलकण्ठप्रियां गौरीं वन्देऽहं मङ्गलाह्वयाम्॥

क्षमा-प्रार्थना तथा प्रणामके अनन्तर मङ्गलागौरीको विशेषार्घ्य प्रदान करना चाहिये। व्रत करनेवाली स्त्री ताँबेके

इस व्रतकी कथा इस प्रकार है—

कुण्डिन नगरमें धर्मपाल नामक एक धनी सेठ रहता था। उसकी पत्नी सती, साध्वी एवं पतिव्रता थी। परंतु उनके कोई पुत्र नहीं था। सब प्रकारके सुखोंसे समृद्ध होते हुए भी वे दम्पति बड़े दुःखी रहा करते थे। उनके यहाँ एक जटा-रुद्राक्षमालाधारी भिक्षुक प्रतिदिन आया करते थे। सेठानीने सोचा कि भिक्षुकको कुछ धन आदि दे दें, सम्भव है इसी पुण्यसे मुझे पुत्र प्राप्त हो जाय। ऐसा विचारकर पतिकी सम्मतिसे सेठानीने भिक्षुककी झोलीमें छिपाकर सोना डाल दिया। परंतु इसका परिणाम उलटा ही हुआ। भिक्षुक अपरिग्रहव्रती थे, उन्होंने अपना व्रत भंग जानकर सेठ-सेठानीको संतानहीनताका शाप दे डाला।

फिर बहुत अनुनय-विनय करनेसे उन्हें गौरीकी कृपासे एक अल्पायु पुत्र प्राप्त हुआ। उसे गणेशने सोलहवें वर्षमें सर्पदंशका शाप दे दिया था।

* विवाहात् प्रथमं वर्षमारभ्य पञ्चवत्सरम्। श्रावणे मासि भौमेषु चतुर्षु व्रतमाचरेत्॥
प्रथमे वत्सरे मातुर्गेहे कर्तव्यमेव च। ततो भर्तृगृहे कार्यमवश्यं स्त्रीभिरादरात्॥
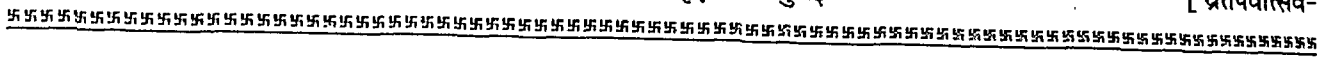
परंतु उस बालकका विवाह ऐसी कन्यासे हुआ, जिसकी माताने मङ्गलागौरी-व्रत किया था। उस व्रतके प्रभावसे उत्पन्न कन्या विधवा नहीं हो सकती थी। अत: वह बालक शतायु हो गया। न तो उसे साँप ही डँस सका और न ही यमदूत सोलहवें वर्षमें उसके प्राण ले जा सके।

इसलिये यह व्रत प्रत्येक नवविवाहिताको करना चाहिये। काशीमें इस व्रतको विशेष समारोहके साथ किया जाता है।

उद्यापनविधि—चार वर्ष श्रावणमासके सोलह या बीस मंगलवारोंका व्रत करनेके बाद इस व्रतका उद्यापन करना चाहिये; क्योंकि बिना उद्यापनके व्रत निष्फल होता है। व्रत करते हुए जब पाँचवाँ वर्ष प्राप्त हो तब श्रावणमासके मंगलवारोंमेंसे किसी भी मंगलवारको उद्यापन करे। आचार्यका वरण कर सर्वतोभद्रमण्डल बनाकर उसमें यथाविधि कलशकी स्थापना करे तथा कलशके ऊपर यथाशक्ति मङ्गलागौरीकी स्वर्णमूर्तिकी स्थापना करे। तदनन्तर गणेशादिस्मरणपूर्वक '**श्रीमङ्गलागौर्यै नमः**' इस नाम-मन्त्रसे गौरीकी यथोपलब्धोपचार पूजा कर सोलह दीपकोंसे आरती करे। मङ्गलागौरीको सभी सौभाग्यद्रव्योंको अर्पित करना चाहिये।

दूसरे दिन यथासम्भव हवन करवाये और सोलह सपत्नीक ब्राह्मणोंको पायस आदिका भोजन कराकर संतुष्ट करे। उत्तम वस्त्र तथा सौभाग्यपिटारीका दक्षिणाके साथ दान करे। इसी प्रकार अपनी सासजीके चरण-स्पर्शकर उन्हें भी चाँदीके एक बर्तनमें सोलह लड्डू, आभूषण, वस्त्र तथा सुहागपिटारी दे। अन्तमें सबको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार व्रतपूर्वक उद्यापन करनेसे वैधव्यकी प्राप्ति नहीं होती।

अशून्यशयनव्रत

[श्रावण कृष्ण द्वितीया]

(डॉ० श्रीवागीशजी शास्त्री, वाग्योगाचार्य)

पुण्य-प्राप्तिके लिये किसी विशेष तिथिपर या कालविशेषके लिये नियमका वरण किया जाना व्रत कहलाता है। इसमें उपवास भी सम्मिलित है। एकादशी-व्रतमें अन्नके स्थानपर फलाहार किया जाता है, किंतु निर्जला एकादशीव्रतमें जलतकका ग्रहण वर्जित है। प्रदोष आदिके व्रतमें अन्नग्रहण किया जाता है। कुछ व्रत कई दिनों और महीनोंतक चलते रहते हैं। चान्द्रायण तथा चातुर्मास्य व्रत इसी कोटिमें आते हैं। कुछ व्रत ऐसे हैं जिनका विधान केवल महिलाओंके लिये किया गया है। जीवत्पुत्रिकाव्रत, हरितालिकाव्रत इत्यादि केवल महिलाओंके लिये विहित हैं।

किसी कार्यको करने या न करनेके नियमपूर्वक दृढ़निश्चयको भी व्रत कहते हैं। किसी बातका पक्का संकल्प भी व्रतके अन्तर्गत परिगणित होता है। ब्रह्मचर्यव्रत, पातिव्रत्यव्रत, दुग्धाहारव्रत, फलाहारव्रत इत्यादि इसी प्रकारके व्रत हैं। महाराणा प्रतापने व्रत लिया था कि जबतक वे मातृभूमिको विधर्मियोंसे मुक्त न करा लेंगे, तबतक भूमिपर शयन तथा मृत्तिकापात्रोंमें भोजन करेंगे।

व्रत एक प्रकारका तप है, जिसके विधिपूर्वक अनुष्ठानसे विशिष्ट प्रकारकी ऊर्जाका प्रादुर्भाव होता है। यह व्रतीकी कार्यसिद्धिमें सहायक बनती है। इसी ऊर्जाको पुण्य कहते हैं। मीमांसाशास्त्रमें इसे '*अपूर्व*' कहा गया है।

भारतीय संस्कृतिमें देश और कालका विशेष महत्त्व है। धर्मशास्त्रमें कालके महत्त्वका वर्णन किया गया है। किस मासकी किस तिथिपर, किस कार्यकी सिद्धिके लिये, किस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये—पुराणोंमें इसका विस्तारसे वर्णन है।

भविष्यपुराणमें अशून्यशयनव्रतकी मीमांसा की गयी है। इस व्रतके अनुष्ठानका समय गुरुपूर्णिमाके अनन्तर श्रावणमासकी द्वितीया तिथि बतायी गयी है। इस व्रतको करनेसे स्त्री वैधव्य तथा पुरुष विधुर होनेके पापसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार स्त्री एवं पुरुष दोनोंके लिये इस व्रतका विधान किया गया है। *अशून्यशयनका अर्थ है—स्त्रीका शयन पतिसे शून्य तथा पतिका शयन पत्नीसे शून्य नहीं होता। दोनोंका ही यावज्जीवन विशुद्ध साहचर्य बना रहता है।*

भगवान् विष्णुके साथ लक्ष्मीका नित्य-निरन्तर साहचर्य रहता है। इसलिये पति-पत्नीके नित्य साहचर्यके लिये

दोनोंको अशून्यशयनव्रतमें श्रावण कृष्ण द्वितीया तिथिको लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुकी मूर्तिको विशिष्ट शय्यापर

पधराकर अनेक उपचारोंद्वारा उनका पूजन करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि श्रावण कृष्ण द्वितीयाको प्रातः स्नानादि करके श्रीवत्सचिह्नसे युक्त चार भुजाओंसे विभूषित, शेषशय्यापर स्थित और लक्ष्मीसहित भगवान्‌का गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे। दिनभर मौन रहे, व्रत रखे और सायंकाल पुनः स्नान करके भगवान्‌का शयनोत्सव मनाये। फिर चन्द्रोदय होनेपर अर्घ्यपात्रमें जल, फल, पुष्प और गन्धाक्षत रखकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे भगवान्‌को अर्घ्य दे—

गगनाङ्गणसंदीप क्षीराब्धिमथनोद्भव।
भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते॥

हे रमानुज! आपकी उत्पत्ति क्षीरसागरके मन्थनसे हुई है। आपकी आभासे ही दिशा-विदिशाएँ आभासित होती हैं। गगनरूपी आँगनके आप सत्स्वरूपी देदीप्यमान दीपक हैं। आपको नमस्कार है।

तदनन्तर भगवान्‌को प्रणाम करके भोजन करे। इस प्रकार प्रत्येक मासकी कृष्ण द्वितीयाको व्रत करके मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीयाको उस ऋतुमें होनेवाले मीठे फल सदाचारी ब्राह्मणको दक्षिणासहित दे। करौंदे, नीबू आदि खट्टे तथा इमली, नारंगी आदि स्त्रीनामके फल न दे।

चन्द्रमा लक्ष्मीका अनुज होनेके कारण उनका प्रिय है। वह प्रत्यक्ष देवता है। उसके पूजनसे लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं। उक्त विधानके साथ जो व्यक्ति चार मासोंतक व्रत करता है, उसे कभी स्त्री-वियोग प्राप्त नहीं होता और लक्ष्मी उसका साथ नहीं छोड़तीं। जो स्त्री भक्तिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करती है, वह तीन जन्मोंतक न तो विधवा होती है और न दुर्भाग्यका सामना करती है। यह अशून्यशयनव्रत सभी कामनाओं और उत्तम भोगोंको प्रदान करनेवाला है।

तीजपर्वके विविध रूप

[श्रावण शुक्ल तृतीया]

(श्रीमती अर्चनाजी, एम्०एस्-सी०, एम्०ए०)

मनुष्य स्वभावतः प्रकृतिप्रेमी एवं उत्सवप्रिय है। प्रायः ऋतु-परिवर्तनपर प्रकृतिकी मनभावन सुषमा एवं सुरम्य परिवेशको पाकर मानवमन आनन्दित होकर पर्वोत्सव मनाने लगता है।

ग्रीष्मके अवसानपर काले-कजरारे मेघोंको आकाशमें घुमड़ता देखकर पावसके प्रारम्भमें पपीहेकी पुकार और वर्षाकी फुहारसे आभ्यन्तर आप्लावित एवं आनन्दित होकर भारतीय लोकजीवन श्रावणशुक्ल तृतीया (तीज)-को कजली तीजका लोकपर्व मनाता है।

समस्त उत्तर भारतमें तीजपर्व बड़े उत्साह और धूमधामसे मनाया जाता है। इसे श्रावणी तीज, हरियाली तीज तथा कजली तीजके नामसे भी जाना जाता है। बुन्देलखण्डके जालौन, झाँसी, दतिया, महोबा, ओरछा आदि क्षेत्रोंमें इसे हरियाली तीजके नामसे व्रतोत्सवरूपमें मनाते हैं। प्रातःकाल उद्यानोंसे आम-अशोकके पत्तोंसहित टहनियाँ, पुष्पगुच्छ लाकर घरोंमें पूजास्थानके पास स्थापित झूलेको इनसे सजाते हैं और दिनभर उपवास रखकर भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहको झूलेमें रखकर श्रद्धासे झुलाते हैं, साथमें लोकगीतोंको मधुर स्वरमें गाते हैं।

ओरछा, दतिया और चरखारीका तीजपर्व श्रीकृष्णके दोलारोहणके रूपमें वृन्दावन-जैसा दिव्य दृश्य उत्पन्न कर देता है। बनारस, जौनपुर आदि पूर्वाञ्चलके जनपदोंमें तीजपर्व (कजली तीज) ललनाओंके कजली गीतोंसे गुंजायमान होकर अद्भुत आनन्द देता है। प्रायः विवाहिता

नवयुवतियाँ श्रावणी तीजको अपने मातृगृहों (पीहर)-में अपने भाइयोंके साथ पहुँचती हैं, जहाँ अपनी सखी-सहेलियोंके साथ नववस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर सायंकाल सरोवरतटके समीप उद्यानोंमें झूला झूलते हुए कजली तीजके गीत गाती हैं।

राजस्थानमें तीजपर्व ऋतूत्सवके रूपमें सानन्द मनाया जाता है। सावनमें सुरम्य हरियालीको पाकर तथा मेघ-घटाओंको देखकर लोकजीवन हर्षोल्लाससे यह पर्व हिल-मिलकर मनाता है। आसमानमें घुमड़ती काली घटाओंके कारण इस पर्वको कजली तीज (कज्जली तीज) अथवा हरियालीके कारण हरियाली तीजके नामसे पुकारते हैं।

श्रावणशुक्ल तृतीयाको बालिकाएँ एवं नवविवाहिता वधुएँ इस पर्वको मनानेके लिये एक दिन पूर्वसे अपने हाथों तथा पाँवोंमें कलात्मक ढंगसे मेहँदी लगाती हैं। जिसे **'मेहँदी- माँडणा'** के नामसे जाना जाता है। दूसरे दिन वे प्रसन्नतासे अपने पिताके घर जाती हैं, जहाँ उन्हें नयी पोशाकें, गहने आदि दिये जाते हैं तथा भोजन-पक्वान्न आदिसे तृप्त किया जाता है।

राजस्थानी लोकगीतोंके अध्ययनसे पता चलता है कि नवविवाहिता पत्नी दूरदेश गये अपने पतिकी तीजपर्वपर घर आनेकी कामना करती है।

तीजपर्व-सम्बन्धी अन्य लोकगीतोंमें नारीमनकी मार्मिक मनोभावना इस प्रकार सुन्दर रूपमें व्यक्त हुई है—

सावोणी री कजली तीज, साजन प्यारा पावणां जी।
नीमडली""॥

साहिवा जी हिवडा न आस घड़ाय
दलडी तो महगां मोल की जी।
नीमडली""॥

इसी प्रकार कजली तीजपर इस कुलकामिनीकी कामना निम्नलिखित लोकगीतमें इस रूपमें व्यक्त हुई—

मारा माथा न मेमद लाय, मारा अनजा मारु यही ही रहो जी।
यही ही रहो जी, लखपतिया ढोला यही ही रहो जी।

इस उमंगपर्वके बहुविध भावोंमें एक यह भाव भी द्रष्टव्य है—

राज म्हारी नाव घटा पर कजली तीज,
तीजा जो पधारो जी म्हाका सिरधार
राज म्हारा माथा न में मदल्याय रखड़ी मुलाओ जी।
राज म्हारी नाव""॥

तीजपर्वका उत्कृष्ट स्वरूप एवं लोक-जीवनमें महत्त्व इस गीतमें इस प्रकार व्यक्त हुआ है—

पगल्या न पायल लाय जो ढोला, साहिबा जी घूंगरा रतन जड़ायें
मुकनगढ़ हो जी किशनगढ़ चाकरी, ढोला साहिबा जी,
तीज सुण्यां घर आय।
तीजा तो तीजा करा ढोला, तीजा को बड़ो है त्यौहार॥

× × ×

तीजा तो तीजा पे करो गोरी, म्हारीं जैरण होई छ बनास।
थाकों तो दुकाना रो बैठबो, ढोला म्हाकों गलीको निकास॥

इस तीज-त्योहारके अवसरपर राजस्थानमें झूले लगते हैं और नदियों या सरोवरोंके तटोंपर मेलोंका सुन्दर आयोजन होता है। इस त्योहारके आस-पास खेतोंमें खरीफ फसलोंकी बोआई भी शुरू हो जाती है। अतः लोकगीतोंमें इस अवसरको सुखद, सुरम्य और सुहावने रूपमें गाया जाता है। मोठ, बाजरा, फली आदिकी बोआईके लिये कृषक तीजपर्वपर वर्षाकी महिमा मार्मिक रूपमें व्यक्त करते हैं। प्रकृति एवं मानव हृदयकी भव्य भावनाकी अभिव्यक्ति तीजपर्वमें निहित है। तीजपर्व (कजली तीज, हरियाली तीज, श्रावणी तीज)-की महत्ता स्वतःसिद्ध है।

राजस्थानकी परम्परामें हरियाली तीज

श्रावणमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको हरियाली तीज कहते हैं। इस दिन महिलाएँ भवानी—पार्वतीका पूजन करती हैं। राजस्थानकी परम्परामें इस माह लड़कियोंको ससुरालसे पितृगृह बुला लिया जाता है। जिस लड़कीके विवाहके पश्चात् पहला सावन आया हो, उसे ससुरालमें नहीं रखा जाता। सावनमें सुन्दर-से-सुन्दर पक्वान्न पकाकर बेटियोंको सिंधारा भेजा जाता है। इस माहमें हिंडोलेपर झूला जाता है। सुहागी मणसकर सासके पाँव छूकर उसे दिया जाता है, यदि सास न हो तो जेठानी या किसी वयोवृद्धाको देना शुभ होता है। इस तीजपर मेहँदी लगानेका विशेष महत्त्व है।

स्त्रियाँ हाथोंपर मेहँदीसे भिन्न-भिन्न प्रकारके बेलबूटे बनाती हैं। इस तीजपर मेहँदी रचानेकी कलात्मक विधियाँ परम्परासे स्त्री-समाजमें चली आ रही हैं। स्त्रियाँ पैरोंमें अलता भी लगाती हैं, जो सुहागका चिह्न माना जाता है।

इस तीजपर तीन बातोंको तजने (छोड़ने)-का विधान है—१- पतिसे छल-कपट, २- झूठ एवं दुर्व्यवहार और ३- परनिन्दा।

कहा जाता है कि इस दिन गौरा विरहाग्निमें तपकर शिवसे मिली थीं। इस दिन जयपुरमें राजपूत लाल रंगके कपड़े पहनते हैं। श्रीपार्वतीजीकी सवारी बड़ी धूमधामसे निकाली जाती है।

कजली तीज

[श्रावण कृष्ण तृतीया]

पूर्वी उत्तर प्रदेशके गाँवोंमें कजली तीज मनानेकी परम्परा है। लोकगायनकी एक प्रसिद्ध शैली भी इसीके नामसे प्रसिद्ध हो गयी है, जिसे 'कजरी' कहते हैं। अनेक ग्रामीण महिलाएँ बैठकर एक साथ बड़े चावसे इन्हें गाती हैं। इन गीतोंमें प्रधानरूपसे शिव-पार्वतीकी लीला तथा दाम्पत्य-विरहके भाव निहित रहते हैं।

श्रावणमासके कृष्णपक्षकी तृतीया 'कजली तीज' के नामसे जानी जाती है। यह परविद्धा ग्राह्य होती है। यदि इस तिथिको श्रवण-नक्षत्र हो तो भगवान् विष्णुका पूजन करके व्रत करना चाहिये—

तृतीया श्रावणे कृष्णा या स्याच्छ्रवणसंयुता।
तस्यां सम्पूज्य गोविन्दं तुष्टिमग्र्यामवाप्नुयात्॥

इस पर्वको प्रायः लोकोत्सवके रूपमें मनाते हैं, विवाहिता स्त्रियाँ प्रायः पीहर बुला ली जाती हैं। इस दिन हाथ-पैरमें मेहँदी लगानेका प्रचलन है, स्त्रियाँ हाथोंपर विभिन्न प्रकारके आलंकारिक बेलबूटे बनाती हैं तथा नये वस्त्र पहनकर आभूषणोंसे सुसज्जित हो झूला झूलती हैं और कजलीके गीत गाती हैं।

नागपञ्चमी महोत्सव

[श्रावण शुक्ल पञ्चमी]

(श्रीगदाधरजी भट्ट)

उत्सवप्रियता भारतीय जीवनकी प्रमुख विशेषता है। देशमें समय-समयपर अनेक पर्वों एवं त्योहारोंका भव्य आयोजन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। श्रावणमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको नागपञ्चमीका त्योहार नागोंको समर्पित है। इस त्योहारपर व्रतपूर्वक नागोंका अर्चन-पूजन होता है। वेद और पुराणोंमें नागोंका उद्गम महर्षि कश्यप और उनकी पत्नी कद्रूसे माना गया है। नागोंका मूलस्थान पाताललोक प्रसिद्ध है। पुराणोंमें ही नागलोकको राजधानीके रूपमें भोगवतीपुरी विख्यात है। संस्कृतकथा-साहित्यमें विशेषरूपसे 'कथासरित्सागर' नागलोक और वहाँके निवासियोंकी कथाओंसे ओतप्रोत है। गरुडपुराण, भविष्यपुराण, चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, भावप्रकाश आदि ग्रन्थोंमें नागसम्बन्धी विविध विषयोंका उल्लेख मिलता है। पुराणोंमें यक्ष, किन्नर और गन्धर्वोंके वर्णनके साथ नागोंका भी वर्णन मिलता है। भगवान् विष्णुकी शय्याकी शोभा नागराज शेष बढ़ाते हैं। भगवान् शिव और गणेशजीके अलंकरणमें भी नागोंकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। योगसिद्धिके लिये जो कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत् की जाती है, उसको सर्पिणी कहा जाता है। पुराणोंमें भगवान् सूर्यके रथमें द्वादश नागोंका उल्लेख मिलता है, जो क्रमशः प्रत्येक मासमें उनके रथके वाहक बनते हैं। इस प्रकार अन्य देवताओंने भी नागोंको धारण किया है। नागदेवता भारतीय संस्कृतिमें देवरूपमें स्वीकार किये गये हैं।

कश्मीरके जाने-माने संस्कृत कवि कल्हणने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'राजतरंगिणी' में कश्मीरकी सम्पूर्ण भूमिको नागोंका अवदान माना है। वहाँके प्रसिद्ध नगर अनन्तनागका नामकरण इसका ऐतिहासिक प्रमाण है। देशके पर्वतीय प्रदेशोंमें नागपूजा बहुतायतसे होती है। यहाँ नागदेवता अत्यन्त पूज्य माने जाते हैं। हमारे देशके प्रत्येक ग्राम-नगरमें ग्रामदेवता और लोकदेवताके रूपमें नागदेवताओंके पूजास्थल हैं। भारतीय संस्कृतिमें सायं-प्रातः भगवत्स्मरणके

साथ अनन्त तथा वासुकि आदि पवित्र नागोंका नामस्मरण भी किया जाता है जिनसे नागविष और भयसे रक्षा होती है तथा सर्वत्र विजय होती है—

अनन्तं वासुकिं शेषं पद्मनाभं च कम्बलम्।
शंखपालं धार्तराष्ट्रं तक्षकं कालियं तथा॥
एतानि नव नामानि नागानां च महात्मनाम्।
सायंकाले पठेन्नित्यं प्रातःकाले विशेषतः॥
तस्मै विषभयं नास्ति सर्वत्र विजयी भवेत्॥

देवीभागवतमें प्रमुख नागोंका नित्य स्मरण किया गया है। हमारे ऋषि-मुनियोंने नागोपासनामें अनेक व्रत-पूजनका विधान किया है। श्रावणमासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी नागोंको अत्यन्त आनन्द देनेवाली है—**'नागानामानन्दकरी'** पञ्चमी तिथिको नागपूजामें उनको गो-दुग्धसे स्नान करानेका विधान है। कहा जाता है कि एक बार मातृ-शापसे नागलोक जलने लगा। इस दाहपीडाकी निवृत्तिके लिये (नागपञ्चमीको)-गोदुग्धस्नान जहाँ नागोंको शीतलता प्रदान करता है, वहाँ भक्तोंको सर्पभयसे मुक्ति भी देता है। नागपञ्चमीकी कथाके श्रवणका बड़ा महत्त्व है। इस कथाके प्रवक्ता सुमन्त मुनि थे तथा श्रोता पाण्डववंशके राजा शतानीक थे। कथा इस प्रकार है—

एक बार देवताओं तथा असुरोंने समुद्रमन्थनद्वारा चौदह रत्नोंमें उच्चैःश्रवा नामक अश्वरत्न प्राप्त किया था। यह अश्व अत्यन्त श्वेतवर्णका था। उसे देखकर नागमाता कद्रू तथा विमाता विनता—दोनोंमें अश्वके रंगके सम्बन्धमें वाद-विवाद हुआ। कद्रूने कहा कि अश्वके केश श्यामवर्णके हैं। यदि मैं अपने कथनमें असत्य सिद्ध होऊँ तो मैं तुम्हारी दासी बनूँगी अन्यथा तुम मेरी दासी बनोगी। कद्रूने नागोंको बालके समान सूक्ष्म बनकर अश्वके शरीरमें आवेष्टित होनेका निर्देश किया, किंतु नागोंने अपनी असमर्थता प्रकट की। इसपर क्रदूने क्रुद्ध होकर नागोंको शाप दिया कि पाण्डववंशके राजा जनमेजय नागयज्ञ करेंगे, उस यज्ञमें तुम सब जलकर भस्म हो जाओगे। नागमाताके शापसे भयभीत नागोंने वासुकिके नेतृत्वमें ब्रह्माजीसे शापनिवृत्तिका उपाय पूछा तो ब्रह्माजीने निर्देश दिया—यायावरवंशमें उत्पन्न तपस्वी जरत्कारु तुम्हारे बहनोई होंगे। उनका पुत्र आस्तीक तुम्हारी रक्षा करेगा। ब्रह्माजीने पञ्चमी तिथिको नागोंको यह वरदान दिया तथा इसी तिथिपर आस्तीकमुनिने नागोंका परिरक्षण किया था। अतः नागपञ्चमीका यह व्रत ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है।

हमारे धर्मग्रन्थोंमें श्रावणमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमीको नागपूजाका विधान है। व्रतके साथ एक बार भोजन करनेका नियम है। पूजामें पृथ्वीपर नागोंका चित्राङ्कन किया जाता है। स्वर्ण, रजत, काष्ठ या मृत्तिकासे नाग बनाकर पुष्प, गन्ध, धूप-दीप एवं विविध नैवेद्योंसे नागोंका पूजन होता है। नागपूजनमें निम्नलिखित मन्त्रोंका उच्चारण कर नागोंको प्रणाम किया जाता है—

सर्वे नागाः प्रीयन्तां मे ये केचित् पृथिवीतले॥
ये च हेलिमरीचिस्था येऽन्तरे दिवि संस्थिताः।
ये नदीषु महानागा ये सरस्वतिगामिनः।
ये च वापीतडागेषु तेषु सर्वेषु वै नमः॥

(भविष्यपु०, ब्राह्मपर्व ३२। ३३-३४)

भाव यह है कि जो नाग पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, सूर्यकी किरणों, सरोवरों, वापी, कूप तथा तालाब आदिमें निवास करते हैं, वे सब हमपर प्रसन्न हों, हम उनको बार-बार नमस्कार करते हैं।

नागोंकी अनेक जातियाँ और प्रजातियाँ हैं। भविष्यपुराणमें नागोंके लक्षण, नाम, स्वरूप एवं जातियोंका विस्तारसे वर्णन मिलता है। मणिधारी तथा इच्छाधारी नागोंका भी उल्लेख मिलता है। भारत धर्मप्राण देश है। भारतीय चिन्तन प्राणिमात्रमें आत्मा और परमात्माके दर्शन करता है एवं एकताका अनुभव करता है—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।

यह दृष्टि ही जीवमात्र—मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग—सभीमें ईश्वरके दर्शन कराती है। जीवोंके प्रति आत्मीयता और दयाभावको विकसित करती है। अतः नाग हमारे लिये पूज्य और संरक्षणीय हैं। प्राणिशास्त्रके अनुसार नागोंकी असंख्य प्रजातियाँ हैं, जिनमें विषभरे नागोंकी संख्या बहुत कम है। ये नाग हमारी कृषि-सम्पदाकी कृषिनाशक जीवोंसे रक्षा करते हैं। पर्यावरणरक्षा तथा वनसम्पदामें भी नागोंकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। नागपञ्चमीका पर्व नागोंके साथ जीवोंके प्रति सम्मान, उनके संवर्धन एवं संरक्षणकी प्रेरणा देता है। यह पर्व प्राचीन समयके अनुरूप आज भी प्रासंगिक है। आवश्यकता है हमारी अन्तर्दृष्टिकी।

श्रावण कृष्णपक्षकी नागपञ्चमी

राजस्थानकी परम्परामें श्रावणकृष्ण पञ्चमीको नागपञ्चमीका उत्सव बड़े धूमधामसे मनाया जाता है। कृष्णपक्षकी इस पञ्चमीको देशके कई भागोंमें शुक्लपक्षमें मनाया जाता है। उत्सव मनानेकी विधि और प्रक्रियामें भिन्नता होते हुए भी दक्षिण, मध्य और उत्तर भारतके सभी प्रदेशोंमें नागपञ्चमी मनानेकी परम्परा है। यहाँ राजस्थानी परम्पराके अनुसार कृष्णपक्षकी नागपञ्चमीका विवरण संक्षेपमें दिया जा रहा है—

यह पञ्चमी कम-से-कम सूर्योदयके बाद छ: घड़ी जिस दिन हो और षष्ठीसहित हो उस दिन मनानेकी विधि है।

इस दिनसे एक दिन पहले चौथको मोठ एवं बाजरा भिगो दिया जाता है और पञ्चमीको अपने खानेके लिये भोजन भी चौथको ही बनाया जाता है; क्योंकि पहले दिनकी बनी हुई ठण्डी रसोई ही नागपञ्चमीको खायी जाती है।

पञ्चमीको नागका पूजन होता है। काष्ठका एक पट्टा बिछाकर उसपर एक रस्सीमें सात गाँठ लगाकर उसे सर्पके प्रतीकके रूपमें बनाकर तथा काला करके पाटेपर रख दिया जाता है और उसपर कच्चा दूध, घृत, शर्करा मिलाकर चढ़ाया जाता है एवं भीगे चने तथा चीनी भी चढ़ायी जाती है। मोठ मिला हुआ दूध सर्पकी बाँबीमें डाला जाता है। बाँबीके छेदसे कुछ मिट्टी लाकर उसमें कच्चा दूध मिलाकर चक्की-चूल्हे आदिपर उससे सर्प-जैसी आकृति बनायी जाती है और उन सर्पकी आकृतियोंको कच्चा दूध, घी तथा शर्करा चढ़ाकर पूजा जाता है। दक्षिणा भी चढ़ायी जाती है। अपनी सास तथा अन्य बड़ी-बूढ़ियोंके पाँव छूकर भीगे चने, चीनी अथवा खोएकी मिठाईका बायना देकर उनसे आशीर्वाद ग्रहण किया जाता है। बाँबीसे लायी गयी मिट्टीमें चने या गेहूँके दाने बो दिये जाते हैं इसे 'खत्ती-गाड़ना' कहते हैं, जिसका अर्थ होता है—घरका अन्नसे भरा-पूरा रहना।
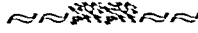
रक्षाबन्धन

[श्रावण शुक्ल पूर्णिमा]

श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको रक्षाबन्धनका पर्व मनाया जाता है। इसमें पराह्णव्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो या दोनों ही दिन न हो तो पूर्वा लेनी चाहिये। यदि उस दिन भद्रा हो तो उसका त्याग कर देना चाहिये।
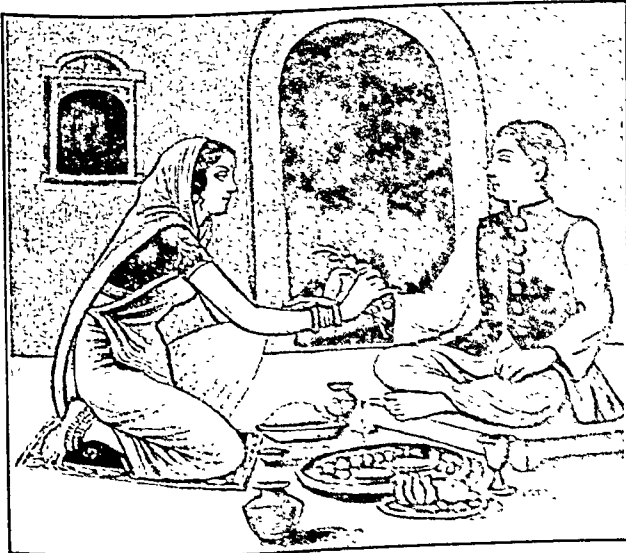
भद्रामें श्रावणी और फाल्गुनी दोनों वर्जित हैं; क्योंकि श्रावणीसे राजाका और फाल्गुनीसे प्रजाका अनिष्ट होता है—

भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा।
श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी॥

इस व्रतका विधान इस प्रकार है—

व्रतीको चाहिये कि इस दिन प्रात: सविधि स्नान करके देवता, पितर और ऋषियोंका तर्पण करे। दोपहरके बाद ऊनी, सूती या रेशमी पीतवस्त्र लेकर उसमें सरसों, सुवर्ण, केसर, चन्दन, अक्षत और दूर्वा रखकर बाँध ले। फिर गोबरसे लिपे स्थानपर कलश-स्थापन कर उसपर रक्षासूत्र रखकर उसका यथाविधि पूजन करे। उसके बाद विद्वान् ब्राह्मणसे रक्षासूत्रको दाहिने हाथमें बँधवाना चाहिये। रक्षासूत्र बाँधते समय ब्राह्मणको निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना चाहिये—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबल:।
तेन त्वामनुबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥
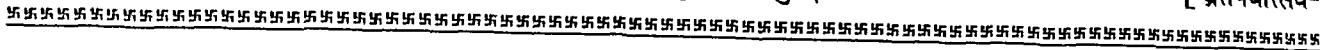
इस व्रतके संदर्भमें यह कथा प्रचलित है—

प्राचीन कालमें एक बार बारह वर्षोंतक देवासुर-संग्राम होता रहा, जिसमें देवताओंका पराभव हुआ और असुरोंने स्वर्गपर आधिपत्य कर लिया। दु:खी, पराजित और चिन्तित इन्द्र देवगुरु बृहस्पतिके पास गये और कहने लगे कि इस समय न तो मैं यहाँ ही सुरक्षित हूँ और न ही यहाँसे कहीं निकल ही सकता हूँ। ऐसी दशामें मेरा युद्ध करना ही अनिवार्य है, जबकि अबतकके युद्धमें हमारा पराभव ही हुआ है। इस वार्तालापको इन्द्राणी भी सुन रही थीं। उन्होंने कहा कि कल श्रावण शुक्ल पूर्णिमा है, मैं विधानपूर्वक रक्षासूत्र तैयार करूँगी, उसे आप स्वस्ति-वाचनपूर्वक ब्राह्मणोंसे बँधवा लीजियेगा। इससे आप अवश्य विजयी होंगे।

दूसरे दिन इन्द्रने रक्षाविधान और स्वस्तिवाचनपूर्वक रक्षाबन्धन कराया। जिसके प्रभावसे उनकी विजय हुई। तबसे यह पर्व मनाया जाने लगा। इस दिन बहनें भाइयोंकी कलाईमें रक्षासूत्र (राखी) बाँधती हैं।
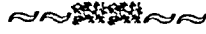
श्रावणी उपाकर्म

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा ही उपाकर्मका प्रसिद्ध काल माना गया है। पूर्णिमा यदि पहले दिन सूर्योदयसे दो घड़ी बाद आरम्भ हो और दूसरे दिन बारह घड़ी या उससे अधिक समयतक हो तो यह कर्म दूसरे दिन ही करना चाहिये। दोनों दिन सूर्योदयमें पूर्णिमा हो तो पहले दिन ही करनेका विधान है। उपाकर्म ग्रहण या संक्रान्तिके दिन नहीं होता। श्रावणी विशेषकर ब्राह्मणों अथवा पण्डितोंका पर्व है। वेदपारायणके शुभारम्भको उपाकर्म कहते हैं। इस दिन यज्ञोपवीतके पूजनका भी विधान है। ऋषिपूजन तथा पुराने यज्ञोपवीतको उतारकर नया यज्ञोपवीत धारण करना पर्वका विशेष कृत्य है। प्राचीन समयमें यह कर्म गुरु अपने शिष्योंके साथ किया करते थे। यह उत्सव द्विजोंके वेदाध्ययनका और आश्रमोंके उस पवित्र जीवनका स्मारक है। अत: इसकी रक्षा ही नहीं, अपितु इसे यथार्थरूपमें मानना हमारा परम धर्म होना चाहिये।

इस उपाकर्ममें सर्वप्रथम तीर्थकी प्रार्थनाके अनन्तर वर्षभरके जाने-अनजानेमें हुए पापोंके निराकरणके लिये प्रायश्चित्तरूपमें 'हेमाद्रिस्नानसंकल्प' करके दशविध स्नान करनेका विधान है। इसके अनन्तर ऋषिपूजन, सूर्योपस्थान, यज्ञोपवीतपूजन तथा नवीन यज्ञोपवीत धारण करनेकी विधि है।

श्रावणीपर्व—स्वाध्यायपर्व

(श्रीशिवकुमारजी शास्त्री, विद्यावाचस्पति)

ऋषितर्पण—वैदिकधर्ममें स्वाध्यायकी सर्वोपरि प्रधानता और महिमा बार-बार वर्णित की गयी है। चारों वर्णोंमें प्रथम वर्ण ब्राह्मणका स्वाध्याय ही मुख्य कर्तव्य है और उसको चातुर्वर्ण्य देह या विराट् पुरुषका सर्वश्रेष्ठ अङ्ग मुख कहा गया है। क्षत्रिय और वैश्यकी भी द्विजन्मा संज्ञा स्वाध्यायसे होती है। स्वाध्यायसे यह शरीर ब्रह्मप्राप्तिके योग्य बन जाता है।* इसलिये इसमें प्रवृत्त रहनेके लिये कहा गया है—**'स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात्'** (मनु० ६।८)।

आश्रमोंमें भी प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्यकी सृष्टि केवल स्वाध्यायके लिये ही हुई है। ब्रह्मचर्यकी समाप्तिपर समावर्तनके समय स्नातकको आचार्य **'स्वाध्यायान्मा प्रमदः'**, **'स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्'** का उपदेश देते हैं कि आगे चलकर गृहस्थाश्रममें भी स्वाध्याय करते रहो।

मनुस्मृतिमें मनु महाराजने ब्राह्मणके लिये विधान किया है—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥
(१।८८)

पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना ब्राह्मणका कर्तव्य है।

---

* स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः। महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥ (मनुस्मृति २।२८)

गृहस्थके पश्चात् वानप्रस्थका भी प्रधान कर्म स्वाध्याय और तप ही रह जाता है। संन्यासीका भी समय परमतत्त्वचिन्तन और उपदेशके अङ्गीभूत स्वाध्यायमें ही व्यतीत होता है। संन्यासीके लिये आज्ञा है—'**संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत्**' अर्थात् संन्यासी सब कर्मोंको त्याग दे केवल वेदको न त्यागे। स्वाध्यायको इतना महत्त्व देनेका उद्देश्य यही है कि जिस प्रकार शरीरकी स्थिति और उन्नति अन्नसे होती है, उसी प्रकार सारे शरीरके राजा मनका भी उत्कर्ष और शिक्षण स्वाध्यायसे होता है। स्वाध्यायके सातत्यसे ही मानसमुकुर दर्पण-जैसा स्वच्छ और पारदर्शी बन जाता है, इसीको मन्त्रदर्शन भी कहते हैं। मन्त्रदर्शनसे ही मनुष्य ऋषि बन जाते हैं अथवा मन्त्रद्रष्टा ही ऋषि कहलाते हैं। '**ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः**'—निरुक्तमें महामुनि यास्कका यह वचन प्रसिद्ध है।

अतः ऋषियोंके ग्रन्थोंका अर्थात् आर्षग्रन्थोंका ही स्वाध्याय करना चाहिये। असत्-साहित्यके अध्ययन एवं स्वाध्यायकी तो बात दूर रही, उसका दर्शन एवं स्पर्श आदि भी असद्विचारोंका जनक बन जाता है।

जो वस्तु जिसको प्रिय होती है उसीसे उसकी पूजा और तृप्तिकी आज्ञा है। इस विषयमें मनुस्मृति (३। ८१, ७५)-के निम्नलिखित श्लोक प्रमाणरूपसे उद्धृत किये जाते हैं—

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि।
पितॄञ्छ्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा॥
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दैवे चैवेह कर्मणि।

अर्थात् स्वाध्यायसे ऋषियोंकी, होमसे देवोंकी, श्रद्धासे पितरोंकी, अन्नसे मनुष्योंकी, बलिकर्म—अन्नप्रदानसे क्षुद्र प्राणियोंकी यथाविधि पूजा करे।

हमारे देशकी प्राचीन परम्परा यह रही है कि नित्य ही यहाँ वेदपाठ होता था, किंतु वर्षा-ऋतुमें वेदके पारायणका विशेष आयोजन किया जाता था; उसपर बहुत बल दिया जाता था। इसका कारण यह था कि भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। यहाँकी जनता आषाढ़ और श्रावणमें कृषि-कार्यमें व्यस्त रहती है। श्रावणीकी जुताई-बुवाई आषाढ़से प्रारम्भ होकर श्रावणके अन्ततक समाप्त हो जाती है। उधर ऋषि-मुनि, संन्यासी और महात्मालोग भी वर्षाके कारण अरण्य और वनस्थलीको छोड़कर ग्रामोंके निकटमें आकर रहने लगते थे और वहीं वेदाध्ययन, धर्मोपदेश तथा ज्ञानचर्चामें अपना चातुर्मास बिताते थे। श्रद्धालुलोग उनके पास जाकर वेदाध्ययन और उपदेश-श्रवणमें अपना समय लगाते थे और ऋषिजनोंकी सेवा करते थे। इसलिये यह समय ऋषितर्पण भी कहलाता है। यह वेदाध्ययन, श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको आरम्भ किया जाता था, अतः इसे 'श्रावणी उपाकर्म' कहा जाता है।

जैसा कि पारस्करगृह्यसूत्र (२। १०। १-२)-में लिखा है—'**अथातोऽध्यायोपाकर्म॥**', '**ओषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावण्यां पौर्णमास्याम्०।**'

मनुस्मृति (४। ९५-९६)-में उपाकर्म और उत्सर्जनका आदेश निम्नलिखितरूपमें दिया गया है—

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाऽप्युपाकृत्य यथाविधि।
युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्॥
पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजः।
माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि॥

अर्थात् ब्राह्मणादि श्रावणी या भाद्रपदी पूर्णिमाको उपाकर्म करके साढ़े चार मासमें ध्यानपूर्वक वेदाध्ययन करे। पुष्यनक्षत्रवाली पूर्णिमामें वेदका उत्सर्जन नामक कर्म ग्रामके बाहर जाकर करे या माघ शुक्लके प्रथम दिनके पूर्वाह्णमें करे।

चिरकालके पश्चात् वेदके पठन-पाठनका प्रचार न्यून हो जानेपर साढ़े चार मासतक नित्य वेदपारायणकी परिपाटी उठ गयी और लोग प्राचीन उपाकर्म और उत्सर्जनके स्मारकरूपमें श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको एक ही दिन उपाकर्म तथा उत्सर्जनकी विधियोंको पूरा करने लगे।

कालके प्रभावसे इस पर्वपर वेद-स्वाध्यायात्मक ऋषि-तर्पणका लोप-सा हो गया। होमयज्ञका प्रचार भी उठ गया।

आजकल श्रावणी कर्मका स्वरूप यह है कि धार्मिक आस्थावान् यज्ञोपवीतधारी द्विज श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको गङ्गा आदि नदी अथवा किसी पवित्र सरोवर-तालाब या जलाशयपर जाकर सामूहिक रूपसे पञ्चगव्य-प्राशनकर प्रायश्चित्त संकल्प करके मन्त्रोंद्वारा दशविध स्नानकर शुद्ध हो

जाते हैं। तदनन्तर समीपके किसी देवालय आदि पवित्र स्थलपर आकर अरुन्धतीसहित सप्तर्षियोंका पूजन, सूर्योपस्थान, ऋषितर्पण आदि कृत्य सम्पन्न करते हैं। तदुपरान्त नवीन यज्ञोपवीतका पूजन, पितरों तथा गुरुजनोंको यज्ञोपवीत दान कर स्वयं नवीन यज्ञोपवीत धारण करते हैं।

श्रावणी और स्वाध्याय

श्रावणीपर्वसे वेदाध्ययनका सीधा सम्बन्ध है। श्रावणी पर्व मनानेका उत्तम तरीका यह है कि वेदादि सच्छास्त्रोंका स्वाध्याय इस पर्वसे अवश्य प्रारम्भ किया जाय। स्वाध्याय जीवनका अङ्ग होना चाहिये।

स्वाध्याय आर्योंके जीवनका एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। वेदका पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना आर्योंका परम धर्म है। शतपथब्राह्मणमें स्वाध्यायकी प्रशंसा करते हुए लिखा गया है कि स्वाध्याय करनेवाला सुखकी नींद सोता है, युक्तमना होता है, अपना परम चिकित्सक होता है, उसमें इन्द्रियोंका संयम और एकाग्रता आती है और प्रज्ञाकी अभिवृद्धि होती है।

उसी ब्राह्मणग्रन्थ (११।५।७।१०)-में कहा गया है कि स्वाध्याय न करनेवाला अब्राह्मण हो जाता है। अतः प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिये और ऋक्, यजु, साम एवं अथर्व वेदोंको पढ़ना चाहिये।

यज्ञोपवीत और श्रावणी

श्रावणीके साथ नये यज्ञोपवीतके धारण और पुरानेको छोड़नेकी भी प्रथा जुड़ी हुई है। गृह्यसूत्रोंके आधारपर परिपाटी है कि प्रत्येक प्रधान उत्तम यज्ञ-याग आदिके समय नया यज्ञोपवीत धारण किया जाय। उसी आधारकी पोषिका इस श्रावणीपर यज्ञोपवीत बदलनेकी प्रथा भी है। यज्ञोपवीतके तीन सूत्र पितृ-ऋण, देव-ऋण और ऋषि-ऋण आदि कर्तव्योंका बोध कराते हैं। उपनयन, यज्ञोपवीत तथा व्रतबन्ध आदि पद इस सम्बन्धमें विशेष महत्त्वके हैं। आचार्यकुलमें विद्यार्थी लाया जाता है अतः यह व्रतबन्ध है।

ऋग्वेद (१०।४।२)-में कहा गया है कि जो तन्तु यज्ञोपवीत-तन्तु यज्ञोंका प्रसाधक है उसको हम धारण करें। अतः प्रत्येकका यह कर्तव्य है कि अपनी संस्कृतिको स्मरण करते हुए स्वाध्यायको अपने जीवनका अभिन्न अङ्ग बनानेमें तत्पर रहे तथा कम-से-कम वर्षमें एक बार आनेवाले श्रावणी उपाकर्ममें अवश्य सम्मिलित होकर वर्षभरमें जाने-अनजाने होनेवाले अपराधोंका प्रायश्चित्तद्वारा निराकरण कर ले।

भाद्रपदमासके व्रतपर्वोत्सव—

बहुला चतुर्थी (बहुला चौथ)

[भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी]

भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी बहुला चतुर्थी या बहुला चौथ कहलाती है। इस व्रतको पुत्रवती स्त्रियाँ पुत्रोंकी रक्षाके लिये करती हैं। वस्तुतः यह गो-पूजाका पर्व है। सत्यवचनकी मर्यादाका पर्व है। माताकी भाँति अपना दूध पिलाकर गौ मनुष्यकी रक्षा करती है, उसी कृतज्ञताके भावसे इस व्रतको सभीको करना चाहिये। यह व्रत सन्तानका दाता तथा ऐश्वर्यको बढ़ानेवाला है।

व्रतविधान—इस दिन गायके दूधसे बनी हुई कोई भी सामग्री नहीं खानी चाहिये और गायके दूधपर उसके बछड़ेका अधिकार समझना चाहिये। इस दिन दिनभर व्रत करके सन्ध्याके समय सवत्सा गौकी पूजा की जाती है। पुरवे (कुल्हड़)-पर पपड़ी आदि रखकर भोग लगाया जाता है और पूजनके बाद उसीका भोजन किया जाता है। पूजनके बाद निम्नाङ्कित श्लोकका पाठ किया जाता है—

याः पालयन्त्यनाथांश्च परपुत्रान् स्वपुत्रवत्।
ता धन्यास्ताः कृतार्थाश्च तास्त्रियो लोकमातरः॥

पूजनके बाद इस व्रतकी कथा सुनी जाती है, जो इस प्रकार है—

द्वापरयुगमें जब भगवान् श्रीहरिने श्रीकृष्णरूपमें अवतार लेकर व्रजमें लीलाएँ कीं तो अनेक देवता भी अपने-अपने अंशोंसे उनके गोप-ग्वालरूपी परिकर बने। गोशिरोमणि कामधेनु भी अपने अंशसे उत्पन्न हो बहुला नामसे नन्दबाबाकी गोशालामें गाय बनकर उसकी शोभा बढ़ाने लगी। श्रीकृष्णका उससे और उसका श्रीकृष्णसे सहज स्नेह था। बालकृष्णको देखते ही बहुलाके स्तनोंसे दुग्धधारा फूट पड़ती और श्रीकृष्ण भी उसके मातृभावको देख उमंग

स्तनोंमें कमलपँखड़ियोंसदृश अपने ओठोंको लगा अमृतसदृश पयका पान करते।

एक बार बहुला वनमें हरी-हरी घास चर रही थी। श्रीकृष्णको लीला सूझी, उन्होंने मायासे सिंहका रूप धारण कर लिया, भयभीत बहुला थर-थर काँपने लगी। उसने दीनवाणीमें सिंहसे कहा—हे वनराज! मैंने अभी अपने बछड़ेको दूध नहीं पिलाया है, वह मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा। अतः मुझे जाने दो, मैं दूध पिलाकर तुम्हारे पास आ जाऊँगी, तब मुझे खा लेना। सिंहने कहा—मृत्युपाशमें फँसे जीवको छोड़ देनेपर उसके पुनः वापस लौटकर आनेका क्या विश्वास! निरुपाय हो बहुलाने जब सत्य और धर्मकी शपथ ली, तब सिंहने उसे छोड़ दिया। बहुलाने गोशालामें जाकर प्रतीक्षारत बछड़ेको दूध पिलाया और अपने सत्यधर्मकी रक्षाके लिये सिंहके पास वापस लौट आयी। उसे देखकर सिंह बने श्रीकृष्ण प्रकट हो गये और बोले—बहुले! यह तेरी परीक्षा थी, तू अपने सत्यधर्मपर दृढ़ रही, अतः इसके प्रभावसे घर-घर तेरा पूजन होगा और तू गोमाताके नामसे पुकारी जायगी। बहुला अपने घर लौट आयी और अपने वत्सके साथ आनन्दसे रहने लगी।

इस व्रतका उद्देश्य यह है कि हमें सत्यप्रतिज्ञ होना चाहिये। उपर्युक्त कथामें सत्यकी महिमा कही गयी है। इस व्रतका पालन करनेवालेको सत्यधर्मका अवश्य पालन करना चाहिये। साथ ही अनाथकी रक्षा करनेसे सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। यह भी इस व्रतकथाकी महनीय शिक्षा है।
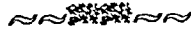
'व्रत-पर्वोंके मोती'

(श्रीचन्द्रमणिप्रसादजी मिश्र)

परम पिता परमेश्वरकी जब कुलपर करुणा होती ।
झर-झर पड़ते घर-आँगनमें व्रत-पर्वोंके मोती ॥

पुण्य पूर्वजोंका प्राणोंमें प्रेम पुलक भर देता ।
कलियुगमें भी आ विराजते सतयुग द्वापर त्रेता ॥

सदा समुन्नत उनका जीवन व्रत पालन जो करते हैं ।
धर्म-कर्मकी पृष्ठ-भूमिपर प्रतिपल बढ़ते जाते हैं ॥

पर्वमहोत्सव प्रतिदिन आते, सत्यम् शिवम् सिखाते हैं ।
सुन्दरसे सुन्दरतमका वे मर्म प्रकट कर जाते हैं ॥

व्रत-पर्वोंके पालनसे मन निर्मल हो जाता है ।
क्षण-प्रतिक्षण हरिदर्शनकी अभिलाषासे भर जाता है ॥

त्याग, तपस्या, दया, धर्मसे धरा शस्य-सम्पन्न हुई।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिकी विमल भक्तिसे पुण्य हुई॥

सावित्रीने व्रतके बलपर सत्यवान्‌को प्राप्त किया।
यमराज पराजित होकरके उसको जीवन-दान दिया॥

गाँव, समाज, देश-सेवाका व्रत पालन जब होता है।
स्वर्ग सदृश धरती हो जाती शत्रु-नाश हो जाता है॥

व्रत-महिमा त्रिभुवनमें छाई, वेद-पुराण बताते हैं।
देव सभी हर्षित होकर अक्षय अनुदान लुटाते हैं॥

श्रीकृष्णजन्माष्टमी

[भाद्रपद कृष्ण अष्टमी]

भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको रातके बारह बजे मथुरा नगरीके कारागारमें वसुदेवजीकी पत्नी देवकीके गर्भसे षोडश कलासम्पन्न भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ था।

इस व्रतमें सप्तमीसहित अष्टमीका ग्रहण निषिद्ध है—

पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमीदिने।
मुहूर्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साऽष्टमी भवेत्॥
कलाकाष्ठामुहूर्ताऽपि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः।
नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात् सप्तमीसंयुता नहि॥

साधारणतया इस व्रतके विषयमें दो मत हैं। स्मार्तलोग अर्धरात्रिका स्पर्श होनेपर या रोहिणीनक्षत्रका योग होनेपर सप्तमीसहित अष्टमीमें भी उपवास करते हैं, किंतु वैष्णवलोग सप्तमीका किञ्चिन्मात्र स्पर्श होनेपर द्वितीय दिवस ही उपवास करते हैं। निम्बार्क सम्प्रदायी वैष्णव तो पूर्व दिन अर्धरात्रिसे यदि कुछ पल भी सप्तमी अधिक हो तो भी अष्टमीको न करके नवमीमें ही उपवास करते हैं। शेष वैष्णवोंमें उदयव्यापिनी अष्टमी एवं रोहिणीनक्षत्रको ही मान्यता एवं प्रधानता दी जाती है।

पूर्ण पुरुषोत्तम विश्वम्भर प्रभुका भाद्रपदमासके अन्धकारमय पक्ष—कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको अर्धरात्रिके समय प्रादुर्भाव होना निराशामें आशाका संचार-स्वरूप है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने।
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः।
आविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः॥

अर्थात् अर्धरात्रिके समय जबकि अज्ञानरूपी अन्धकारका विनाश और ज्ञानरूपी चन्द्रमाका उदय हो रहा था, उस समय देवरूपिणी देवकीके गर्भसे सबके अन्तःकरणमें विराजमान पूर्ण पुरुषोत्तम व्यापक परब्रह्म विश्वम्भर प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए, जैसे कि पूर्व दिशामें पूर्ण चन्द्र प्रकट हुआ।

इस दिन भगवान्का प्रादुर्भाव होनेके कारण यह उत्सव मुख्यतया उपवास, जागरण एवं विशिष्टरूपसे श्रीभगवान्की सेवा-शृङ्गारादिका है। दिनमें उपवास और रात्रिमें जागरण एवं यथोपलब्ध उपचारोंसे भगवान्का पूजन, भगवत्-कीर्तन इस उत्सवके प्रधान अङ्ग हैं। श्रीनाथद्वारा और व्रज (मथुरा-वृन्दावन)-में यह उत्सव बड़े विशिष्ट ढंगसे मनाया जाता है।

इस दिन समस्त भारतवर्षके मन्दिरोंमें विशिष्टरूपसे भगवान्का शृङ्गार किया जाता है। कृष्णावतारके उपलक्ष्यमें गली-मुहल्लों एवं आस्तिक गृहस्थोंके घरोंमें भी भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकी झाँकियाँ सजायी जाती हैं एवं श्रीकृष्णकी मूर्तिका शृङ्गार करके झूला झुलाया जाता है। स्त्री-पुरुष रात्रिके बारह बजेतक उपवास रखते हैं एवं रातके बारह बजे शङ्ख तथा घण्टोंके निनादसे श्रीकृष्णजन्मोत्सव मनाया जाता है। भक्तगण मन्दिरोंमें समवेत स्वरसे आरती करते हैं एवं भगवान्का गुणगान करते हैं।

जन्माष्टमीको पूरा दिन व्रत रखनेका विधान है। इसके लिये प्रातःकाल उठकर स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर व्रतका निम्न संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य अमुकनामसंवत्सरे सूर्ये दक्षिणायने वर्षर्तौ भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे श्रीकृष्णजन्माष्टम्यां तिथौ अमुकवासरे अमुकनामाहं मम चतुर्वर्गसिद्धिद्वारा श्रीकृष्णदेवप्रीतये जन्माष्टमीव्रताङ्गत्वेन श्रीकृष्णदेवस्य यथामिलितोपचारैः पूजनं करिष्ये।

इस दिन केलेके खम्भे, आम अथवा अशोकके पल्लव आदिसे घरका द्वार सजाया जाता है। दरवाजेपर मङ्गल-कलश एवं मूसल स्थापित करे। रात्रिमें भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्ति अथवा शालग्रामजीको विधिपूर्वक पञ्चामृतसे स्नान कराकर षोडशोपचारसे विष्णुपूजन करना चाहिये। **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**—इस मन्त्रसे पूजनकर तथा वस्त्रालङ्कार आदिसे सुसज्जित करके भगवान्को सुन्दर सजे

हुए हिंडोलेमें प्रतिष्ठित करे। धूप, दीप और अन्नरहित नैवेद्य तथा प्रसूतिके समय सेवन होनेवाले सुस्वादु मिष्टान्न, जायकेदार नमकीन पदार्थों एवं उस समय उत्पन्न होनेवाले विभिन्न प्रकारके फल, पुष्पों और नारियल, छुहारे, अनार, बिजौरे, पंजीरी, नारियलके मिष्टान्न तथा नाना प्रकारके मेवेका प्रसाद सजाकर श्रीभगवान्‌को अर्पण करे।

दिनमें भगवान्‌की मूर्तिके सामने बैठकर कीर्तन करे तथा भगवान्‌का गुणगान करे और रात्रिको बारह बजे गर्भसे जन्म लेनेके प्रतीकस्वरूप खीरा फोड़कर भगवान्‌का जन्म कराये एवं जन्मोत्सव मनाये। जन्मोत्सवके पश्चात् कर्पूरादि प्रज्वलित कर समवेत स्वरसे भगवान्‌की आरती-स्तुति करे, पश्चात् प्रसाद वितरण करे।

जन्माष्टमी हमारे देशका अतिविशिष्ट और सर्वप्रमुख उत्सव है। देशके प्रत्येक अञ्चलमें इसकी पूर्ण प्रतिष्ठा है। बहुधा लोग व्रतमें फलाहार करते हैं, किंतु अधिकांश इस व्रतको पूर्ण उपवाससे मनाते हैं। जो मनुष्य जन्माष्टमीका व्रत करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है।

इसके द्वितीय दिन (अर्थात् नवमीको) दधिकांदो या (नन्दमहोत्सव) किया जाता है। इस समय भगवान्‌पर कपूर, हल्दी, दही, घी, जल, तेल तथा केसर आदि चढ़ाकर लोग परस्पर विलेपन तथा सेचन करते हैं। वाद्य-यन्त्रोंसे कीर्तन करते हैं तथा मिठाइयाँ बाँटते हैं। जैसा कि श्रीमद्भागवत (१०। ५। १२, १४)-में कहा गया है—

हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः॥
गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः॥
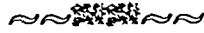
भगवान् श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव-महोत्सव—श्रीकृष्णजन्माष्टमी

(प्राचार्य श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय, निम्बार्कभूषण, व्याकरण-साहित्य-वेदान्ताचार्य)

शास्त्रोंमें भारतभूमिकी लोकोत्तर महिमा परिवर्णित है। यहाँ सृष्टिके आरम्भसे ही दीर्घकालिक तपः-स्वाध्यायमें निरत मन्त्रद्रष्टा ऋषि-महर्षियोंने मानव-जीवनको सदाचारपूर्ण, यम-नियमादि साधनसम्पन्न तथा आदर्शमय बनानेके लिये युगानुसार विविध शास्त्रोंकी रचना की है। जिनमें व्रत, उपवास, पर्व, उत्सव और यज्ञानुष्ठान आदिके विषयमें अन्वय-व्यतिरेकपूर्वक विधि-निषेधों—गुण-दोषोंका वर्णन उपलब्ध होता है। प्रत्येक मासमें तिथि, नक्षत्र और वारोंके योगसे प्रतिदिन किसी-न-किसी देवी-देवतासे सम्बन्धित व्रत, उपवास एवं पर्वका होना निश्चित रहता है। यहाँके नित्यव्रतों, नित्योपवासों एवं नित्योत्सवोंके कारण इसे महीमङ्गलभूयिष्ठा कहा गया है।

भारतभूमि अनन्तानन्त तीर्थोंकी भूमि, मनुष्योंकी कर्मभूमि, ऋषि-मुनियोंकी तपोभूमि, धर्माचार्योंकी साधनभूमि एवं भगवान् श्रीहरिकी अवतारलीलाभूमि है। दिव्य लोकोंमें अवस्थित देववृन्द भी भारतकी महिमा गाते हैं। 'गायन्ति देवाः किल गीतकानि' इत्यादि। यहाँ भगवान्‌के विविध अवतारोंमेंसे श्रीकृष्णावतार अर्थात् श्रीकृष्णजन्माष्टमीके सम्बन्धमें कुछ विचार प्रस्तुत हैं—

'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—इस शास्त्रीय वचनके अनुसार सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण समस्त अवतारोंमें परिपूर्णतम अवतार माने गये हैं। अचिन्त्य गुण-शक्तियुक्त प्रभु दिव्यधामसे साङ्ग सपरिकर भूतलपर अवतीर्ण होते हैं। जैसे एक दीपकसे दूसरे दीपकको प्रज्वलित करनेपर उसके प्रकाशमें किसी प्रकार न्यूनाधिक्य नहीं रहता, उसी प्रकार नित्यविभूतिसे लीलाविभूतिमें अवतीर्ण होनेपर प्रभुकी समस्त गुणशक्तियाँ यथावत् रहती हैं। इसीको अजहद् गुणशक्ति कहा गया है। युग-युगान्तरों, कल्प-कल्पान्तरोंके भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये ही श्रीकृष्णका यह अवतार है। अतः सुदर्शनचक्रावतार आद्याचार्य भगवान् श्रीनिम्बार्क कहते हैं—'**भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहात्।**' वह मथुरापुरी धन्य है, जहाँ यदुवंशियोंके मध्य वसुदेव-देवकीके पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण कर भगवान्‌ने उसे अपनी ऐश्वर्यशक्तिसे सदा अपना सांनिध्य प्रदान किया। मथुरामें प्रकट होनेके पश्चात् भक्तवाञ्छाकल्पतरु परमात्मा अपनी अनपायिनी शक्ति योगमायाका आश्रय लेकर वसुदेवजीद्वारा नन्दगोकुल पहुँचनेपर नन्दनन्दन यशोदानन्दनके रूपमें प्रकट होते हैं। यहाँसे प्रभुने अपनी माधुर्यलीलाओंका प्रारम्भ किया। मुख्यतया श्री-भू-लीला—इन त्रिशक्तियोंके माध्यमसे ऐश्वर्य, धैर्य एवं माधुर्य-लीलाओंका भूमण्डलमें विस्तार किया। इसीलिये वे लीलापुरुषोत्तम कहलाये और उन्होंने नाम, रूप, लीला एवं धामके ऐक्यसे व्रजभूमिको केन्द्र बनाकर वीचीतरङ्गवत् किंवा जलमें तैलवत् समस्त लीलाचरितोंको विश्वमें परिव्याप्त किया। सगुण-साकार होनेपर भी यही लीला व्याप्य-व्यापकता,

शक्ति-शक्तिमान्‌की अभिन्नताको दर्शाती है। सर्वेश्वरमें सर्वनियन्तृत्व, सर्वव्यापकत्व, सर्वान्तर्यामित्व आदि भाव भी स्वयंसिद्ध हैं। अतएव भगवान् श्रीकृष्णमें सगुण-साकार, निर्गुण-निराकार अर्थात् सविशेष-निर्विशेष आदि परस्पर विरुद्ध धर्म भी समानरूपसे विद्यमान रहते हैं। '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सर्वसमर्थवान् ईश्वरः**'—इस आप्त व्युत्पत्तिसे उनमें ईश्वरत्व किंवा सर्वेश्वरत्व स्वतःसिद्ध है। '**अणोरणीयान् महतो महीयान्**' इत्यादि श्रुतिवचन इसमें प्रमाण हैं।

आनन्दकन्दव्रजेन्द्रनन्दन वृन्दावनविहारी सर्वेश्वर श्रीकृष्णकी नित्यनिकुञ्जलीलाएँ परमाह्लादिनी शक्ति श्रीराधा एवं नित्य सहचारियोंके साथ होनेसे कैशोरभावयुक्त और मधुरातिमधुर हैं, अलौकिक एवं दिव्य हैं। व्रजलीलाएँ माधुर्यप्रधान ऐश्वर्यलीलाएँ हैं जहाँ माखनचोरी, ऊखलबन्धन आदिके साथ दुष्टदमन भी है। मथुरा-द्वारकाकी लीलाएँ ऐश्वर्यप्रधान माधुर्यलीलाएँ हैं। ये समस्त लीलाएँ देश, काल, अवस्थासे आबद्ध हैं, फिर भी नित्य एवं दिव्य हैं। इन्हीं लीलाओंका गायन, श्रवण, मनन एवं चिन्तन करके रसिक भावुक भक्तजन सदा आनन्दसिन्धुमें निमग्न रहते हैं। भाद्रपदमासके कृष्णपक्षकी अष्टमी उन्हीं अजन्मा लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी प्राकट्य अथवा जन्मतिथि होनेसे श्रीकृष्णजन्माष्टमीके नामसे सुविख्यात है। इस दिन व्रजक्षेत्रके अतिरिक्त देशके सभी राज्यों, महानगरों और नगरों तथा ग्रामोंमें यह महोत्सव बड़े उल्लास एवं धूमधामसे मनाया जाता है। साथ ही विदेशोंमें भी परम उत्साहसे यह उत्सव मनाते हैं। अ०भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ निम्बार्कतीर्थ सलेमाबादमें यह महोत्सव शताब्दियोंसे परम्परागत रूपमें विविध कार्यक्रमोंके साथ दस दिवसीय महोत्सवके रूपमें बड़े धूमधामसे सम्पन्न होता है। अष्टमीकी रात्रिको तीन आरतियोंके अनूठे दर्शन होते हैं। दूसरे दिन नन्दमहोत्सव, दधिकांदो, मल्लखम्भ, तैराकी प्रतियोगिता आदिके साथ महोत्सव पूर्ण होता है। श्रीकृष्णजन्माष्टमी जहाँ एक ओर उत्सव-महोत्सवका महान् पर्व है, वहीं दूसरी ओर व्रत-उपवासका परम पावन दिवस है।

अखिलब्रह्माण्डनायक, अनन्तकल्याणगुणगणनिलय, अपास्त समस्त दोषपुञ्ज, निखिलजगदभिन्ननिमित्तोपादानकारण, क्षराक्षरातीत, ब्रह्माशिववन्दितचरण, परब्रह्मपरमात्मा भगवान् सर्वेश्वर श्रीकृष्णका यह प्राकट्यमहोत्सव प्रतिवर्ष भाद्रपद कृष्णपक्षकी अष्टमीको आता है। कहीं इसे श्रावण कृष्ण अष्टमीकी संज्ञा दी गयी है; क्योंकि ज्योतिषशास्त्रमें शुक्ल प्रतिपदासे अमावास्यापर्यन्त एक पक्ष है जो गुजरात एवं दक्षिण भारतमें प्रायः प्रचलित है। एक अन्य पक्ष जो कृष्ण प्रतिपदासे पूर्णिमापर्यन्तका मास स्वीकार करता है वह उत्तर भारतमें मान्य है। अतः शास्त्रोंमें उभयविध वचनों—श्रावणकृष्णाष्टमी और भाद्रकृष्णाष्टमीका जो उल्लेख है, वह देशान्तरके भेदसे समझना चाहिये, शास्त्रवचनोंका परस्पर विरोध नहीं है।

भगवान् विष्णु वसुदेवजीसे देवकीके पुत्ररूपमें कंसासुरका वध करनेके लिये प्रकट हुए हैं। जिस दिन प्रभुका अवतरण हुआ वह दिन परम मङ्गलमय है। वह जो श्रावण कृष्ण अष्टमी (भाद्रपद कृष्णाष्टमी) प्रतिवर्ष आती है, उस समय यदि रोहिणी नक्षत्रका योग हो तो वह तिथि मनुष्योंके लिये मोक्षदायिनी हो जाती है। जिस तिथिमें साक्षात् सनातन पुराणपुरुषोत्तम प्रभु भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं वह तिथि मुक्तिदायिनी है तो इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात!

य एष भगवान् विष्णुर्देवक्यां वसुदेवतः।
जातः कंसवधार्थं हि तद्दिनं मङ्गलायनम्॥
या सा प्रत्यब्दमायाति श्रावणे बहुलाऽष्टमी।
सङ्गता द्रुहिणर्क्षेण नृणां मुक्तिफलप्रदा॥
यस्यां सनातनः साक्षात्पुराणः पुरुषोत्तमः।
अवतीर्णः क्षितौ सैषा मुक्तिदेति किमद्भुतम्॥

(ब्रह्माण्डपुराण)

इसी प्रकार गौतमीतन्त्रमें कहा गया है—

अथ भाद्रासिताष्टम्यां प्रादुरासीत् स्वयं हरिः।
ब्रह्मणा प्रार्थितः पूर्वं देवक्यां कृपया विभुः॥
रोहिण्यर्क्षे शुभतिथौ दैत्यानां नाशहेतवे।
महोत्सवं प्रकुर्वीत यत्नतस्तद्दिने शुभे॥
राजन्यैर्ब्राह्मणैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव स्वशक्तितः।
उपवासः प्रकर्तव्यो न भोक्तव्यं कदाचन॥
कृष्णजन्मदिने यस्तु भुङ्क्ते स तु नराधमः।
निवसेन्नरके घोरे यावदाभूतसम्प्लवम्॥
अष्टमी रोहिणीयुक्ता चार्धरात्रे यदा भवेत्।
उपोष्य तां तिथिं विद्वान् कोटियज्ञफलं लभेत्॥
सोमाह्नि बुधवारे वा अष्टमी रोहिणीयुता।
जयन्ती सा समाख्याता सा लभ्या पुण्यसञ्चयैः॥
तस्यामुपोष्य यत्पापं लोकः कोटिभवोद्भवम्।
विमुच्य निवसेद् विप्र वैकुण्ठे विरजे पुरे॥

अर्थात् भाद्रपदमासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको पूर्वकालमें स्वयं श्रीहरि ब्रह्मादि देवोंकी प्रार्थनापर दैत्योंके विनाशहेतु रोहिणी नक्षत्रयुक्त शुभतिथिमें माता देवकीके

उदरसे अनुग्रहपूर्वक प्रकट हुए। स्वयं प्रभु अपरिच्छिन्न होते हुए भी अपनी अद्भुत मायाशक्तिका आश्रय लेकर परिच्छिन्नस्वरूप सामान्य बालककी तरह क्रीडा करने लगे। अत: ऐसे शुभ दिनमें चारों वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रोंद्वारा अपनी शक्तिके अनुसार यत्नपूर्वक प्रभुका जन्ममहोत्सव सम्पन्न करना चाहिये और उपवास करना चाहिये। जबतक उत्सव सम्पन्न न हो तबतक भोजन नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य श्रीकृष्णजन्मोत्सवके अवसरपर भोजन करता है वह तो नराधम कहलाता है। जबतक यह सृष्टि अवस्थित रहे उतने समयतक उसे घोर नरकमें निवास करना पड़ता है। अर्धरात्रिके समय यदि अष्टमी रोहिणी नक्षत्रसे युक्त हो जाय तो उस तिथिमें किया गया उपवास करोड़ों यज्ञोंका फल देनेवाला होता है। भाद्रपद कृष्णाष्टमी यदि रोहिणी नक्षत्र और सोम या बुधवारसे संयुक्त हो जाय तो वह जयन्ती नामसे विख्यात होती है। जन्म-जन्मान्तरोंके पुण्यसञ्चयसे ऐसा योग प्राप्त होता है। इस प्रकार जिस मनुष्यको जयन्ती-उपवासका सौभाग्य मिलता है, उसके कोटिजन्मकृत पाप नष्ट हो जाते हैं तथा जन्मबन्धनसे मुक्त होकर वह परम दिव्य वैकुण्ठादि भगवद्धाममें निवास करता है।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी रोहिणी नक्षत्रयोगरहित हो तो 'केवला' और रोहिणी नक्षत्रयुक्त हो तो 'जयन्ती' कहलाती है। जयन्तीमें बुध-सोमका योग आ जाय तो वह अत्युत्कृष्ट फलदायक हो जाती है। ऐसा योग अनेक वर्षोंके बाद सुलभ होता है। जन्माष्टमी केवला और जयन्ती इस शब्दभेदसे इन दोनोंमें क्या अत्यन्त भेद है? या जन्माष्टमी ही गुणवैशिष्ट्यसे जयन्ती कही जाती है। इसका समाधान करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—केवलाष्टमी और जयन्तीमें अत्यन्त भिन्नता नहीं है; क्योंकि अष्टमीके बिना जयन्तीका स्वतन्त्र स्वरूप बन ही नहीं सकता। यह तो सिद्ध है कि रोहिणीके बिना भी केवल अष्टमीमें व्रत-उपवास किया ही जाता है, किंतु तिथि-योगके बिना रोहिणीमें किसी प्रकारका स्वतन्त्र व्रतविधान नहीं है। अत: श्रीकृष्णजन्माष्टमी ही रोहिणीके योगसे जयन्ती बनती है। एतदर्थ कहा गया है कि रोहिणी-गुणविशिष्टाजयन्ती। विशेष सामान्यसे पृथक् नहीं रहता। अष्टमी जयन्तीमें पशुत्व गोत्वकी तरह सामान्य-विशेषकृत मात्र भेद है। विष्णुरहस्यमें कहा गया है—

अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणीऋक्षसंयुता।
भवेत्प्रौष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता॥

अर्थात् भाद्रपदमासमें कृष्णपक्षकी अष्टमी यदि रोहिणी नक्षत्रसे संयुक्त होती है तो वह जयन्ती नामसे जानी जाती है।

व्रत-उपवास-महोत्सवकी संक्षिप्त विधि

सर्वप्रथम गुरुदेवके समीप जाकर प्रणतिपूर्वक प्रार्थना करे—'गुरुदेव! श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतका नियमपूर्वक मुझे उपदेश कीजिये।' तब कृपालु गुरुदेव जिस रूपमें बतायें वैसा नियम धारण कर प्रार्थना करे—'हे पुण्डरीकाक्ष प्रभो! आपके चरणकमल ही मेरे एकमात्र अवलम्ब हैं। आज जन्माष्टमीके दिन निराहार रहकर दूसरे दिन पूजोत्सवपूर्वक पारायण करूँगा।' ऐसी प्रतिज्ञा कर मध्याह्नमें जपादि पूर्ण कर कलश-स्थापन करे। उसपर पुत्रवत्सला माताकी गोदमें क्रीडारत और स्तनपान करते हुए स्वरूपवाली स्वर्ण, रजत या ताम्रनिर्मित प्रतिमाको सुसज्जितरूपमें अभिषेकपूर्वक विराजमान करे।

हाथमें पुष्प, तुलसीदल लेकर आवाहन कर आसन प्रदान करे और कहे—'हे जगत्पते! हे जगन्नाथ! हे पुरुषोत्तम! अपने पार्षदों एवं भगवती देवीसहित वैकुण्ठसे अवतरित होकर यहाँपर विराजें।' इस प्रकार सपरिवार प्रभुको आसन देकर षोडशोपचारविधिसे पूजा-अर्चना करे। पञ्चामृत एवं दुग्धाभिषेकके साथ माता देवकीसहित श्रीबालकृष्णको विविध शृङ्गारादिक वस्तुओंसे विशेषरूपसे अलंकृत करे। विशेषार्घ्य प्रदानपूर्वक धूप, दीप, नैवेद्य नीराजनपर्यन्त सेवासम्पादन करके पुष्पाञ्जलि अर्पण करे। आचार्य और विप्रजनोंको दान-दक्षिणा देकर पारण करे।

पारण—पारणके लिये शास्त्रोंमें दोनों वचन मिलते हैं—'**तिथ्यन्ते पारणम्, उत्सवान्ते पारणम्।**'

तिथ्यन्ते चोत्सवान्ते च व्रती कुर्वीत पारणम्।

(याज्ञवल्क्यस्मृति)

वायुपुराणमें कहा गया है—यदि समस्त पापोंको समूल नष्ट करना चाहे तो उत्सवान्तमें भगवत्प्रसादान्नका भक्षण करे। उत्सव सम्पन्न करके विद्वानोंको पारण करना चाहिये। परस्पर विनोदके साथ हरिद्रामिश्रित दधि-तक्रादिका लेप करे और मक्खन, मिस्री, फल-प्रसाद, वस्त्रादि वस्तुओंके निक्षेपपूर्वक हर्ष मनाये। तदनन्तर वैष्णवजनोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करे। इस विधिसे जो नर-नारी जन्माष्टमी-व्रतको सम्पन्न करते हैं, वे अपने कुलकी २१ पीढ़ियोंका उद्धार करते हैं। सब पुण्योंको देनेवाला जन्माष्टमी-व्रत करनेके बाद कोई कर्तव्य अवशेष नहीं रहता। व्रतकर्ता अन्तमें अष्टमीव्रतके प्रभावसे भगवद्धामको प्राप्त होता है। वर्षा-कालोद्भव पुष्पोंसे श्रीसर्वेश्वर श्रीकृष्णका जो अर्चन

करते हैं, वे मनुष्य नहीं देव हैं अर्थात् देवगण भी उनका वन्दन करते हैं।*

जन्माष्टमी पर्वके सम्बन्धमें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा धर्मराज युधिष्ठिरको उपदिष्ट कथानक जो भविष्यपुराणान्तर्गत वर्णित है, उसका यहाँ संक्षेपमें उल्लेख किया जा रहा है—

महाराज युधिष्ठिरने देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'हे अच्युत! आप कृपा करके मुझे जन्माष्टमी-व्रतके विषयमें बतायें कि किस कालमें उसका शुभारम्भ हुआ और उसकी विधि क्या है तथा उसका पुण्य क्या है?' धर्मराजकी भावनाके अनुसार प्रभुने कहा—महाराज! मथुरामें रङ्गके मध्य मल्लयुद्धपूर्वक जब हमने अनुयायियोंसहित दुष्ट कंसासुरको मार गिराया तब वहींपर पुत्रवत्सला माता देवकी मुझे अपनी गोदमें भरकर मुक्तकण्ठसे रोने लगीं। उस समय रङ्गमञ्चमें विशाल जनसमूह उपस्थित था। मधु, वृष्णि, अन्धकादि वंशके लोगों और उनकी स्त्रियोंसे माता देवकीजी घिरी हुई थीं। सब लोग अत्यन्त स्नेहभरी दृष्टिसे देख रहे थे। पिता श्रीवसुदेवजी भी वहाँ उपस्थित हो वात्सल्यभावसे पूर्ण होकर रोने लगे। वे बार-बार बलदाऊसहित मुझे हृदयसे लगाकर हे पुत्र! हे पुत्र! कहकर पुकारने लगे, उनके नेत्र आनन्दाश्रुपूर्ण थे, उनके कण्ठसे वाणी निकल नहीं पा रही थी। गद्गद स्वरमें अत्यन्त दुःखितभावसे वे कहने लगे—आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा जीवित रहना सार्थक हुआ, जो कि दोनों पुत्रोंसे मेरा समागम हो गया।

इस प्रकार परम हर्षके साथ उन दम्पतिके सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुए वहाँ उपस्थित यदुवंशके सभी महानुभाव प्रणतिपूर्वक मुझसे कहने लगे—हे जनार्दन! आज हमें महान् हर्ष हो रहा है, मल्लयुद्धद्वारा आप दोनों भाइयोंने दुष्ट कंसको उसके परिवार-परिकरोंसहित यमलोक पहुँचा दिया। हे मधुसूदन! मधुपुरीमें ही क्या, समस्त लोकोंमें महान् उत्सव हो रहा है। प्रभो! हमारे ऊपर आप और भी ऐसा अनुग्रह कीजिये—जिस तिथि, दिन, घड़ी, मुहूर्तमें आपको माता देवकीने जन्म दिया, उसे बतानेकी कृपा करें कि वह कौन-सा दिन है? उसमें हम सब आपका जन्मोत्सव मनाना चाहते हैं। हे केशव! हे जनार्दन! हम सब सम्यक् भक्तिभावसे संवलित हैं, अवश्य कृपा करें।

वहाँ समुपस्थित जनसमुदायद्वारा इस प्रकार भाव व्यक्त करनेपर पिता श्रीवसुदेवजी भी परम विस्मित हो रहे थे। बार-बार श्रीबलभद्रको और मुझको देखते हुए उनके आनन्दकी कोई सीमा न थी, अङ्ग-अङ्ग पुलकायमान हो रहा था। पूज्य पिताश्रीने कहा—'वत्स! समुपस्थित जनसमुदायके प्रार्थनानुसार जन्माष्टमी-व्रतका यथावत् निर्देश देकर सबका मान रखो।' तब मैंने पिताश्रीकी आज्ञासे मधुपुरीमें जनसमूहके समक्ष जन्माष्टमी-व्रतका सम्यक् प्रकारसे वर्णन किया। हे पृथानन्दन! आपसे भी वही सब कह रहा हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्य सभी जन जो धर्ममें आस्था रखनेवाले हैं वे जन्माष्टमी-व्रतका अनुष्ठान करके अपने अभीष्टकी सिद्धि प्राप्त कर लें, एतदर्थ इसे प्रकाशित किया। भगवान् श्रीकृष्ण कहने लगे—'हे भक्तवृन्द! भाद्रपदमासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथि बुधवार एवं रोहिणी नक्षत्रके शुभ योगमें अर्धरात्रिके समय वसुदेवजीसे देवकीमें मैं प्रकट हुआ, उस समय चन्द्रमा वृषराशिमें अवस्थित थे जो उनका उच्च स्थान है। माता देवकीके अङ्कमें अवस्थित बालस्वरूपका चिन्तन करते हुए मेरा जन्म-महोत्सव यथाविभव सम्पन्न करना चाहिये।'

हे धर्मनन्दन! इस प्रकार मेरे कथनानुसार मथुरावासियोंने प्रथम बार जब महान् समारोहके साथ जन्माष्टमी-व्रत-उपवास आदि विधिवत् सम्पन्न किया, तब आगे चलकर लोकमें सर्वत्र जन्माष्टमी-व्रतका प्रचार-प्रसार हुआ।

भगवान्‌के श्रीमुखसे जन्माष्टमी-व्रतकी परम्परा एवं विधि श्रवण कर महाराज युधिष्ठिर कृतकृत्य हो गये। उन्होंने हस्तिनापुरमें यह महोत्सव प्रतिवर्ष सम्पादित किया। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्यमहोत्सव—श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीके विषयमें यथामति शास्त्रोक्त रीतिसे विचार प्रस्तुत किये गये।

~~~

* समाप्यैवोत्सवं तस्मात्कर्तव्यं पारणं बुधैः। नवनीतदधितक्रैर्हरिद्रादिविमिश्रितैः ॥
परस्परं विनोदकैः सर्वैः परमवैष्णवैः। ततः स्नात्वा तु नद्यादौ चान्योन्यजलसेचने ॥
भगवदवशेषेण प्रियेणैव महात्मना। वैष्णवान् भोजयेद् भक्त्या तेभ्यो दद्यात्प्रदक्षिणाम् ॥
ततोऽश्नीयात् स्वयं भक्तो मित्रबन्धुसमन्वितः। विधिनानेन सहितां जयन्तीं च करोति यः ॥
नारी चोद्धरते पुंसः पुरुषानेकविंशति। संक्षेपेण तु यः कुर्याज्जयन्तीं कलिवल्लभाम् ॥
मनसेष्टफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति। एवं जन्माष्टमीं कृत्वा कर्तव्यं नावशिष्यते ॥
सर्वपुण्यफलं प्राप्य ह्यन्ते याति हरेः पदम्। तत्कालपुण्यमाहात्म्यं वर्णितं सनकादिभिः ॥
वर्षाकाले सकलेशं कुसुमैश्चम्पकोद्भवैः। येऽर्चयन्ति न ते मर्त्या देवास्ते देववन्दिताः ॥ (वायुपुराण)
~~~

श्रीगोगानवमी—गोगामेड़ी-दर्शन

[भाद्रपद कृष्ण नवमी]

(श्रीताराचन्द्रजी जोशी 'विकट', साहित्यायुर्वेदरत्न)

भाद्रपद श्रीकृष्णाष्टमीके दूसरे दिनकी पुण्यतिथि नवमी ही 'श्रीगोगानवमी' नामसे प्रसिद्ध है। इसी तिथिको श्रीजाहरवीर गोगाजीका जन्मोत्सव श्रद्धालु भक्तोंद्वारा अपार भक्ति-भावसे मनाया जाता है। इस अवसरपर बाबा जाहरवीर गोगाजीके भक्तगण अपने घरोंमें निज इष्टदेवकी थाड़ी (थान-वेदी) बनाकर अखण्डज्योति-जागरण कराते हैं तथा परम्परागत अपने पुरोहित नाथ-योगियोंद्वारा डौंरू-सारंगीकी ध्वनिके साथ जाहरवीरकी शौर्य-गाथा एवं जन्म-कथा श्रवण करते हैं। इस प्रथाको जाहरवीरका जोत-कथा-जागरण कहा जाता है। प्रान्तीय मान्यताओंके अनुसार श्रीगोगाजी महाराजको जाहरवीर, गोगावीर, गुगालवीर, गोगागर्भी एवं जाहरजहरी नामसे भी पुकारा जाता है।

आपकी जन्मस्थली राजस्थानके 'चूरू' जनपदमें 'ददरेबा' नामसे तथा पूजास्थली समाधि-मन्दिर 'गोगामेड़ी' नामसे प्रसिद्ध है। जो तहसील भादरा, जनपद गङ्गानगरके सन्निकट स्थित है।

बाबाश्रीकी पूजा-सामग्रीमें लौंग, जायफल, कर्पूर, गुग्गुल और गो-घृत विशेषरूपसे प्रचलित हैं। चूँकि श्रीगोगाजीका शुभ वाहन नीलवर्णका घोड़ा रहा है। सम्भवतः इसी कारण बाबाके नीलाश्वको प्रसन्न करनेकी कामनासे उनके भोग-प्रसादमें हरी दूब एवं चनेकी दाल समर्पित की जाती है और चन्दन-चूरा बाबाकी समाधिपर मला जाता है।

श्रीगोगाजीके प्रादुर्भावकी कथा नाथ-सम्प्रदायके योगपन्थसे मिली हुई है। योगी गोरक्षनाथने ही आपकी माता बाछलको उनकी पूजा-अर्चना-तपस्यासे प्रसन्न होकर प्रसादरूपमें अभिमन्त्रित गुग्गुल प्रदान किया था। जिसके प्रभावसे पाँच बन्ध्या माताओंने पाँच पुत्रों (वीरों)-को जन्म दिया था। क्रमशः महारानी बाछलसे जाहरवीर गोगाजी, पुरोहितानीसे नरसिंह पाण्डे, दासीसे मज्जूवीर, महतरानीसे रत्नावीर तथा बन्ध्या घोड़ीसे नीलाश्ववीरका प्रादुर्भाव हुआ। ये पाँचों वीर अपूर्व चमत्कारी तथा असाधारण व्यक्तित्वधारी थे। इन वीरोंका सनातनधर्म एवं गोरक्षार्थ यवन राजाओंसे संग्राम हुआ जिसमें श्रीगोगाजी एवं नीलाश्वको छोड़कर रत्ना एवं मज्जूवीर वीरगतिको प्राप्त हुए। अन्तमें गुरु गोरक्षनाथके योग, मन्त्र, प्रभाव एवं प्रेरणासे प्रेरित होकर श्रीजाहरवीर गोगाजीने नीले घोड़ेसहित धरतीमें जीवित समाधि लेकर अमर बलिदानकी धर्मध्वजा फहरायी।

समाधिके पश्चात् वीर गोगाजीने प्रकट होकर कितनी ही बार भक्तोंकी मनोकामनाएँ पूर्ण की हैं और आज भी भक्तोंकी मान्यताओं एवं विश्वासके अनुसार वे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपसे भक्तोंका मार्गदर्शन करते हैं और उनके विश्वासको जगाते हैं। इसी कारण गोगाजीको प्रकटवीर (जाहरवीर) कहा जाता है।

बागड़-दर्शन एवं यात्रा

भाद्रपद कृष्ण पञ्चमीको भारतके अनेक प्रान्तोंसे भक्तगण अपने गाँव, नगर एवं शहरोंसे अपने-अपने कुलगुरु (नाथयोगियों)-द्वारा पथवारी माताका विधिवत् पूजन कराकर सपरिवार पीले वस्त्र धारण करके नगर-परिक्रमा करते हुए बागड़-दर्शनहेतु प्रस्थान करते हैं।

प्रातः गोगानवमीके दिन गोरखटीलेके समक्ष करीब डेढ़ कि०मी० की दूरीपर स्थित समाधि-मन्दिर गोगामेड़ीके लिये प्रस्थान किया जाता है। इस प्राचीन मन्दिरके अंदर वीर गोगाजीकी अमर समाधि है। इस समाधिपर भक्तगण अटूट श्रद्धाभावसे परिक्रमा करते हुए अपने दोनों हाथोंसे चन्दन-चूरेका मर्दन करते हैं।

यह तो रहा राजस्थानका बागड़-दर्शन-मेला। इसके इतर हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश आदि प्रान्तोंमें भी श्रीगोगाजीके मेलोंका क्रम बना ही रहता है। यथा—जनपद सहारनपुरमें गुगालवीरका मेला, जागलमें गोगावीरका मेला, बिजनौरके चाँदपुर-दारानगरगंजमें छड़ियोंका मेला। नैनीताल रामनगरमें जहानाबादका जाहरवीरकी छड़ियोंका मेला। इसी प्रकार मथुरा, आगरा, झाँसी, फर्रुखाबाद, भोलेपुर, एटा 'रघुनाथपुर गद्दी' पर जाहरवीर गोगा दिवानका मेला भी प्रचलित है।

यात्राके पश्चात् यात्रीगणोंका निज-निज नगरोंमें आगमन होता है। पुनः पथवारी-पूजनके पश्चात् वे गृहप्रवेश करते हैं तथा गीत-मङ्गलादि और माताके छन्दोंका गायन-वादन होता है, पास-पड़ोस एवं गृह-कुटुम्बियोंको प्रसादवितरण कर एक-दूसरेके गले मिलते हैं और अपने-आपको कृतकृत्य एवं धन्य समझते हैं।

गोवत्स-द्वादशी (बछवारस)

[भाद्रपद कृष्ण द्वादशी]

स्त्रियोंद्वारा गाय और बछड़ोंके पूजनका यह त्योहार

भाद्रपद कृष्ण द्वादशीके दिन आता है। यह पर्व भी पुत्रकी मङ्गलकामनाके लिये किया जाता है। इसे पुत्रवती स्त्रियाँ करती हैं। इस पर्वपर गीली मिट्टीसे गाय, बछड़ा, बाघ तथा बाघिनकी मूर्तियाँ बनाकर ऊपरके चित्रके अनुसार पाटेपर रखी जाती हैं।

यदि किसीके यहाँ गाय और बछड़े न हों तो वह किसी दूसरेकी गाय और बछड़ेकी पूजा करे। यदि गाँवमें भी न हों तो मिट्टीके बनाकर उनकी पूजा करे। उसपर दही, भीगा हुआ बाजरा, आटा, घी आदि चढ़ाये, रोलीसे तिलक करे, चावल और दूध चढ़ाये। फिर मोठ, बाजरापर रुपया रखकर बायना सासजीको दे दे। इस दिन बाजरेकी ठंडी रोटी खाये। गायका दही, दूध, गेहूँ और चावल न खाय। यह व्रत पुत्र होनेके बाद ही किया जाता है। अपने कुँवारे लड़केकी कमीजपर साँतिया बनाकर तथा पहनाकर कुएँको पूजा जाता है। इससे बच्चेके जीवनकी रक्षा होती है और वह भूत-प्रेत तथा नजरके प्रकोपसे बचा रहता है।

बछवारसका उद्यापन (उजमन)—जिस साल लड़केका विवाह हो या लड़का पैदा हो तो उजमन किया जाता है। इस दिनसे एक दिन पहले बाजरा दान दे। बछवारसके दिन एक थालीमें तेरह मोंठ बाजरेकी ढेरी बनाकर उनपर दो मुट्ठी बाजरेका आटा, जिसमें घी-चीनी मिली हो रख दे। तिल और रुपये रख दे। इस सामानको हाथ फेरकर अपनी सासजीको पाँव छूकर दे दे। बादमें बछड़े और कुएँकी पूजा करे। फिर मङ्गल-गीत गाये। इसके बाद ब्राह्मणको दक्षिणा दे।

कुशोत्पाटिनी अमावास्या

[भाद्रपद अमावास्या]

भाद्रपदमासकी अमावास्या तिथि कुशोत्पाटिनी अमावास्याके नामसे जानी जाती है। इस दिन वर्षभरके धार्मिक कृत्यों तथा श्राद्धादि कृत्योंके लिये कुश-उत्पाटन किया जाता है। यह तिथि पूर्वाह्णव्यापिनी ली जाती है। हिन्दुओंके किसी भी धार्मिक क्रिया-कलापमें कुशकी अनिवार्यता होती है—

पूजाकाले सर्वदैव कुशहस्तो भवेच्छुचिः।
× × ×
कुशेन रहिता पूजा विफला कथिता मया॥

(शब्दकल्पद्रुम)

अतः प्रत्येक गृहस्थको इस दिन कुश-सञ्चय करना चाहिये। शास्त्रमें दस प्रकारके कुशोंका विवरण प्राप्त होता है—

कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्च सकुन्दकाः।
गोधूमा ब्राह्मयो मौञ्जा दश दर्भाः सबल्वजाः॥

इनमेंसे जो भी कुश इस तिथिको मिल जाय, वही ग्रहण कर लेना चाहिये।

जिस कुशका मूल सुतीक्ष्ण हो, जिसमें पत्ती हो, अग्रभाग कटा न हो और हरा हो, वह देव तथा पितृ दोनों कार्योंके लिये उपयुक्त होता है।

कुश-उत्पाटनके लिये इस तिथिको पूर्वाह्णमें दर्भस्थलपर जाकर पूर्व या उत्तराभिमुख बैठकर निम्न मन्त्र पढ़े और 'हुँ फट्' कहकर दाहिने हाथसे एक बारमें कुश उखाड़े—

विरञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिन्निसर्गज।
नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव॥

सुहागिनोंके अखण्ड सौभाग्यका रक्षक—हरितालिकाव्रत (तीज)

[भाद्रपद शुक्ल तृतीया]

(श्रीमती मधुलताजी गौतम, एम्०ए०)

पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार और झारखण्ड आदि प्रान्तोंमें भाद्रपद शुक्ल तृतीयाको सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने अखण्ड सौभाग्यकी रक्षाके लिये बड़ी श्रद्धा, विश्वास और लगनके साथ हरितालिकाव्रत (तीज)-का उत्सव मनाती हैं। जिस त्याग-तपस्या और निष्ठाके साथ स्त्रियाँ यह व्रत रखती हैं, वह बड़ा ही कठिन है। इसमें फलाहार-सेवनकी बात तो दूर रही, निष्ठावाली स्त्रियाँ जलतक नहीं ग्रहण करतीं। व्रतके दूसरे दिन प्रात:काल स्नानके पश्चात् व्रतपरायण स्त्रियाँ सौभाग्य-द्रव्य एवं वायन छूकर ब्राह्मणोंको देती हैं। इसके बाद ही जल आदि पीकर पारण करती हैं। इस व्रतमें मुख्यरूपसे शिव-पार्वती तथा गणेशजीका पूजन किया जाता है।

इस व्रतको सर्वप्रथम गिरिराजनन्दिनी उमाने किया, जिसके फलस्वरूप उन्हें भगवान् शिव पतिरूपमें प्राप्त हुए थे। इस व्रतके दिन स्त्रियाँ वह कथा भी सुनती हैं, जो पार्वतीजीके जीवनमें घटित हुई थी। उसमें पार्वतीके त्याग, संयम, धैर्य तथा एकनिष्ठ पातिव्रत-धर्मपर प्रकाश डाला गया है, जिससे सुननेवाली स्त्रियोंका मनोबल ऊँचा उठता है।

कहते हैं, दक्षकन्या सती जब पिताके यज्ञमें अपने पति शिवजीका अपमान न सहन कर योगाग्निमें दग्ध हो गयीं, तब वे ही मैना और हिमवान्‌की तपस्याके फलस्वरूप उनकी पुत्रीके रूपमें पार्वतीके नामसे पुनः प्रकट हुईं। इस नूतन जन्ममें भी उनकी पूर्वकी स्मृति अक्षुण्ण बनी रही और वे नित्य-निरन्तर भगवान् शिवके ही चरणारविन्दोंके चिन्तनमें संलग्न रहने लगीं। जब वे कुछ वयस्क हो गयीं तब मनोऽनुकूल वरकी प्राप्तिके लिये पिताकी आज्ञासे तपस्या करने लगीं। उन्होंने वर्षोंतक निराहार रहकर बड़ी कठोर साधना की। जब उनकी तपस्या फलोन्मुख हुई, तब एक दिन देवर्षि नारदजी महाराज गिरिराज हिमवान्‌के यहाँ पधारे। हिमवान्‌ने अहोभाग्य माना और देवर्षिकी बड़ी श्रद्धाके साथ सपर्या की।

कुशल-क्षेमके पश्चात् नारदजीने कहा—भगवान् विष्णु आपकी कन्याका वरण करना चाहते हैं, उन्होंने मेरे द्वारा यह संदेश कहलवाया है। इस सम्बन्धमें आपका जो विचार हो उससे मुझे अवगत करायें। नारदजीने अपनी ओरसे भी इस प्रस्तावका अनुमोदन कर दिया। हिमवान् राजी हो गये। उन्होंने स्वीकृति दे दी। देवर्षि नारद पार्वतीके पास जाकर बोले—उमे! छोड़ो यह कठोर तपस्या, तुम्हें अपनी साधनाका फल मिल गया। तुम्हारे पिताने भगवान् विष्णुके साथ तुम्हारा विवाह पक्का कर दिया है।

इतना कहकर नारदजी चले गये। उनकी बातपर विचार करके पार्वतीजीके मनमें बड़ा कष्ट हुआ। वे मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं।

सखियोंके उपचारसे होशमें आनेपर उन्होंने उनसे अपना शिवविषयक अनुराग सूचित किया।

सखियाँ बोलीं—तुम्हारे पिता तुम्हें लिवा जानेके लिये आते ही होंगे। जल्दी चलो, हम किसी दूसरे गहन वनमें जाकर छिप जायँ।

ऐसा ही हुआ। उस वनमें एक पर्वतीय कन्दराके भीतर पार्वतीने शिवलिङ्ग बनाकर उपासनापूर्वक उसकी अर्चना आरम्भ की। उससे सदाशिवका आसन डोल गया। वे रीझकर पार्वतीके समक्ष प्रकट हुए और उन्हें पत्नीरूपमें वरण

करनेका वचन देकर अन्तर्धान हो गये! तत्पश्चात् अपनी पुत्रीका अन्वेषण करते हुए हिमवान् भी वहाँ आ पहुँचे और सब बातें जानकर उन्होंने पार्वतीका विवाह भगवान् शंकरके साथ ही कर दिया।

अन्ततः *'बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥'* पार्वतीके इस अविचल अनुरागकी विजय हुई। देवी पार्वतीने भाद्र शुक्ल तृतीया हस्त नक्षत्रमें आराधना की थी, इसीलिये इस तिथिको यह व्रत किया जाता है।

तभीसे भाद्रपद शुक्ल तीजको स्त्रियाँ अपने पतिकी दीर्घायुके लिये तथा कुमारी कन्याएँ अपने मनोवाञ्छित वरकी प्राप्तिके लिये हरितालिका (तीज)-का व्रत करती चली आ रही हैं।

'आलिभिर्हरिता यस्मात् तस्मात् सा हरितालिका' सखियोंके द्वारा हरी गयी—इस व्युत्पत्तिके अनुसार व्रतका नाम हरितालिका हुआ। इस व्रतके अनुष्ठानसे नारीको अखण्ड सौभाग्यकी प्राप्ति होती है।

श्रीगणेशचतुर्थी

[भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी]

गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥

भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीको मध्याह्नके समय विघ्नविनायक

भगवान् गणेशका जन्म हुआ था। अतः यह तिथि मध्याह्नव्यापिनी लेनी चाहिये। इस दिन रविवार अथवा मंगलवार हो तो प्रशस्त है। गणेशजी हिन्दुओंके प्रथम पूज्य देवता हैं। सनातन धर्मानुयायी स्मार्तोंके पञ्चदेवताओंमें गणेशजी प्रमुख हैं। हिन्दुओंके घरमें चाहे जैसी पूजा या क्रियाकर्म हो, सर्वप्रथम श्रीगणेशजीका आवाहन और पूजन किया जाता है। शुभ कार्योंमें गणेशकी स्तुतिका अत्यन्त महत्त्व माना गया है। गणेशजी विघ्नोंको दूर करनेवाले देवता हैं। इनका मुख हाथीका, उदर लम्बा तथा शेष शरीर मनुष्यके समान है। मोदक इन्हें विशेष प्रिय है। बंगालकी दुर्गापूजाकी तरह महाराष्ट्रमें गणेशपूजा एक राष्ट्रिय पर्वके रूपमें प्रतिष्ठित है।

गणेशचतुर्थीके दिन नक्तव्रतका विधान है। अतः भोजन सायंकाल करना चाहिये तथापि पूजा यथासम्भव मध्याह्नमें ही करनी चाहिये, क्योंकि—

पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः।

अर्थात् सभी पूजा-व्रतोंमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि लेनी चाहिये।

भाद्रपद शुक्लपक्षकी चतुर्थी तिथिको प्रातःकाल स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर अपनी शक्तिके अनुसार सोने, चाँदी, ताँबे, मिट्टी, पीतल अथवा गोबरसे गणेशकी प्रतिमा बनाये या बनी हुई प्रतिमाका पुराणोंमें वर्णित गणेशजीके गजानन, लम्बोदरस्वरूपका ध्यान करे और अक्षत-पुष्प लेकर निम्न संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य दक्षिणायने सूर्ये वर्षर्तौ भाद्रपदमासे शुक्लपक्षे गणेशचतुर्थ्यां तिथौ अमुकगोत्रोऽमुकशर्मा / वर्मा / गुप्तोऽहं विद्याऽऽरोग्यपुत्रधनप्राप्तिपूर्वकं सपरिवारस्य मम सर्वसंकटनिवारणार्थं श्रीगणपतिप्रसादसिद्ध्यर्थं चतुर्थीव्रताङ्गत्वेन श्रीगणपतिदेवस्य यथालब्धोपचारैः पूजनं करिष्ये।

हाथमें लिये हुए अक्षत-पुष्प इत्यादि गणेशजीके पास छोड़ दे।

इसके बाद विघ्नेश्वरका यथाविधि 'ॐ गं गणपतये

नमः' से पूजन कर दक्षिणाके पश्चात् आरती कर गणेशजीको नमस्कार करे एवं गणेशजीकी मूर्तिपर सिन्दूर चढ़ाये। मोदक और दूर्वाकी इस पूजामें विशेषता है। अतः पूजाके अवसरपर इक्कीस दूर्वादल भी रखे तथा उनमेंसे दो-दो दूर्वा निम्नलिखित दस नाममन्त्रोंसे क्रमशः चढ़ाये—

१-ॐ गणाधिपाय नमः, २-ॐ उमापुत्राय नमः,
३-ॐ विघ्ननाशनाय नमः, ४-ॐ विनायकाय नमः,
५-ॐ ईशपुत्राय नमः, ६-ॐ सर्वसिद्धिप्रदाय नमः,
७-ॐ एकदन्ताय नमः, ८-ॐ इभवक्त्राय नमः,
९-ॐ मूषकवाहनाय नमः, १०-ॐ कुमारगुरवे नमः।

पश्चात् दसों नामोंका एक साथ उच्चारण कर अवशिष्ट एक दूब चढ़ाये। इसी प्रकार इक्कीस लड्डू भी गणेशपूजामें आवश्यक होते हैं। इक्कीस लड्डूका भोग रखकर पाँच लड्डू मूर्तिके पास चढ़ाये और पाँच ब्राह्मणको दे दे एवं शेषको प्रसादस्वरूपमें स्वयं ले ले तथा परिवारके लोगोंमें बाँट दे। पूजनकी यह विधि चतुर्थीके मध्याह्नमें करे। ब्राह्मणभोजन कराकर दक्षिणा दे और स्वयं भोजन करे।

पूजनके पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रसे वह सब सामग्री ब्राह्मणको निवेदन करे—

दानेनानेन देवेश प्रीतो भव गणेश्वर।
सर्वत्र सर्वदा देव निर्विघ्नं कुरु सर्वदा।
मानोन्नतिं च राज्यं च पुत्रपौत्रान् प्रदेहि मे॥

इस व्रतसे मनोवाञ्छित कार्य सिद्ध होते हैं; क्योंकि विघ्नहर गणेशजीके प्रसन्न होनेपर क्या दुर्लभ है? गणेशजीका यह पूजन बुद्धि, विद्या तथा ऋद्धि-सिद्धिकी प्राप्ति एवं विघ्नोंके नाशके लिये किया जाता है।

कई व्यक्ति श्रीगणेशसहस्रनामावलीके एक हजार नामोंसे प्रत्येक नामके उच्चारणके साथ लड्डू अथवा दूर्वादल आदि श्रीगणेशजीको अर्पित करते हैं। इसे गणपतिसहस्रार्चन कहा जाता है।

भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीको चन्द्रदर्शन-निषेध

[स्यमन्तकमणिका आख्यान]

भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थी सिद्धविनायक चतुर्थीके नामसे जानी जाती है। इसमें किया गया दान, स्नान, उपवास और अर्चन गणेशजीकी कृपासे सौ गुना हो जाता है, परंतु इस चतुर्थीको चन्द्रदर्शनका निषेध किया गया है। इस दिन चन्द्रदर्शनसे मिथ्या कलंक लगता है। अतः इस तिथिको चन्द्रदर्शन न हो, ऐसी सावधानी रखनी चाहिये।

यदि दैववशात् चन्द्रदर्शन हो जाय तो इस दोष-शमनके लिये निम्न मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥

भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने उसे स्यमन्तक नामकी मणि दी, जो सूर्यके समान ही कान्तिमान् थी। वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना देती थी तथा उसके प्रभावसे सम्पूर्ण राष्ट्रमें रोग, अनावृष्टि, सर्प, अग्नि, चोर तथा दुर्भिक्ष आदिका भय नहीं रहता था।

एक दिन सत्राजित् उस मणिको धारणकर राजा उग्रसेनकी सभामें आया, उस समय मणिकी कान्तिसे वह दूसरे सूर्यके समान दिखायी दे रहा था। भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छा थी कि यदि यह दिव्य रत्न राजा उग्रसेनके पास रहता तो सारे राष्ट्रका कल्याण होता, इधर सत्राजित्को यह मालूम हो गया कि श्रीकृष्ण मेरी मणि ले लेना चाहते हैं।

उन्होंने ही प्रसेनको मारकर मणि ले ली होगी। उधर वनमें मुँहमें मणि दबाये हुए सिंहको ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने देखा तो उसे मारकर स्वयं मणि ले ली और ले जाकर बच्चेको खेलनेके लिये दे दी, जिससे वह खेला करता था।

इधर द्वारकामें उठते हुए लोकापवादके स्वर श्रीकृष्णके कानोंतक पहुँचे, वे राजा उग्रसेनसे परामर्शकर कुछ साथियोंको ले प्रसेनके घोड़ेके खुरोंके चिह्नोंको देखते हुए वनमें पहुँचे।

वहाँ उन्होंने घोड़े और प्रसेनको मृत पड़ा पाया तथा उनके पासमें सिंहके चरणचिह्न देखे। उन चिह्नोंका अनुसरण करते हुए आगे जानेपर उन्हें सिंह भी मृत पड़ा मिला। वहाँसे ऋक्षराज जाम्बवान्‌के पैरोंके निशान देखते हुए वे लोग जाम्बवान्‌की गुफातक पहुँचे।

श्रीकृष्णने कहा कि अब यह तो स्पष्ट हो चुका है कि घोड़ेसहित प्रसेन सिंहद्वारा मारा गया है, परंतु सिंहसे भी बलवान् कोई है, जो इस गुफामें रहता है। मैं अपनेपर लगे लोकापवादको मिटानेके लिये इस गुफामें प्रवेश करता हूँ और स्यमन्तकमणि लानेकी चेष्टा करता हूँ। यह कहकर श्रीकृष्ण उस गुफामें घुस गये। वहाँ उनका ऋक्षराज जाम्बवान्‌से इक्कीस दिनोंतक घोर संग्राम हुआ। अन्तमें शिथिल अङ्गोंवाले जाम्बवान्‌ने भगवान्‌को पहचानकर उनकी प्रार्थना करते हुए कहा—हे प्रभो! आप ही मेरे स्वामी श्रीराम हैं, द्वापरमें आपने इस रूपमें मुझे दर्शन दिया। आपको कोटि-कोटि प्रणाम है। नाथ! मैं अर्घ्यस्वरूप अपनी इस कन्या जाम्बवती और यह मणि स्यमन्तक आपको देता हूँ, कृपया ग्रहणकर मुझे कृतार्थ करें तथा मेरे अज्ञानको क्षमा करें।

जाम्बवान्‌से पूजित हो श्रीकृष्ण स्यमन्तकमणि लेकर जाम्बवतीके साथ द्वारका आये। वहाँ उनके साथ गये यादवगण बारह दिन बाद ही लौट आये थे। द्वारकामें यह विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण गुफामें मारे गये, किंतु श्रीकृष्णको आया देख सम्पूर्ण द्वारकामें प्रसन्नताकी लहर

दौड़ गयी। श्रीकृष्णने सब यादवोंसे भरी हुई सभामें वह मणि सत्राजित्‌को दे दी। सत्राजित्‌ने भी प्रायश्चित्तस्वरूप अपनी पुत्री सत्यभामाका विवाह श्रीकृष्णसे कर दिया।

इस स्यमन्तकमणिका आख्यान जो कोई पढ़ता या सुनता है, उसे भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीके चन्द्रदर्शनके दोषसे मुक्ति मिल जाती है।

ऋषिपञ्चमी

[भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी]

भाद्रपद शुक्लपक्षकी पञ्चमी 'ऋषिपञ्चमी' कहलाती है। इस दिन किये जानेवाले व्रतको ऋषिपञ्चमी-व्रत कहते हैं। यह व्रत ज्ञात-अज्ञात पापोंके शमनके लिये किया जाता है, अत: स्त्री-पुरुष दोनों इस व्रतको करते हैं। स्त्रियोंसे रजस्वला अवस्थामें घरके पात्रादिका प्राय: स्पर्श हो जाता हैं, इससे होनेवाले पापके शमनके लिये वे इस व्रतको करती हैं। इस व्रतमें सप्तर्षियोंसहित अरुन्धतीका पूजन होता है, इसीलिये इसे 'ऋषिपञ्चमी' कहते हैं।

व्रत-विधान—इस दिन व्रतीको चाहिये कि वह प्रात:कालसे मध्याह्नपर्यन्त उपवास करके मध्याह्नके समय किसी नदी या तालाबपर जाय। वहाँ अपामार्गकी दातौनसे दाँत साफकर शरीरमें मिट्टी लगाकर स्नान करे। इसके बाद पञ्चगव्यका पान करना चाहिये। तदनन्तर घर आकर गोबरसे पूजाका स्थान चौकोर लीपना चाहिये। अनेक रंगोंसे सर्वतोभद्रमण्डल बनाकर उसपर मिट्टी अथवा ताँबेका घट स्थापित करके उसे वस्त्रसे वेष्टितकर उसके ऊपर ताँबे अथवा मिट्टीके बर्तनमें जौ भरकर रखना चाहिये। पञ्चरत्न, फूल, गन्ध और अक्षत आदिसे पूजन करना चाहिये। व्रतके प्रारम्भमें यह संकल्प करना चाहिये—

अमुकगोत्रा अमुकीदेवी अहं मम आत्मनो रजस्वलावस्थायां गृहभाण्डादिस्पर्शदोषपरिहारार्थं अरुन्धतीसहितसप्तर्षिपूजनं करिष्ये।

कलशके पास ही अष्टदल कमल बनाकर उसके दलोंमें कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि तथा वसिष्ठ—इन सप्तर्षियों और वसिष्ठपत्नी देवी अरुन्धतीकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। इसके बाद सप्तर्षियों तथा अरुन्धतीका षोडशोपचारपूर्वक पूजन करना चाहिये। इस दिन प्राय: लोग दही और साठीका चावल खाते हैं। नमकका प्रयोग वर्जित है। हलसे जुते हुए खेतका अन्न खाना वर्ज्य है। दिनमें केवल एक ही बार भोजन करना चाहिये।

कलश आदि पूजनसामग्रीको ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। पूजनके पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराकर ही स्वयं प्रसाद पाना चाहिये।

कथा—सत्ययुगमें श्येनजित् नामक एक राजा राज्य करता था। उसके राज्यमें सुमित्र नामवाला एक ब्राह्मण रहता था जो वेदोंका विद्वान् था। सुमित्र खेतीद्वारा अपने परिवारका भरण-पोषण करता था। उसकी पत्नी जयश्री सती, साध्वी और पतिव्रता थी। वह खेतीके कामोंमें भी अपने पतिका सहयोग करती थी। एक बार रजस्वला अवस्थामें अनजानेमें उसने घरका सब कार्य किया और पतिका भी स्पर्श कर लिया। दैवयोगसे पति-पत्नीका शरीरान्त एक साथ ही हुआ। रजस्वला अवस्थामें स्पर्शास्पर्शका विचार न रखनेके कारण स्त्रीने कुतिया और पतिने बैलकी योनि प्राप्त की, परंतु पूर्व जन्ममें किये गये अनेक धार्मिक कृत्योंके कारण उन्हें ज्ञान बना रहा। संयोगसे इस जन्ममें भी वे साथ-साथ अपने ही घरमें अपने पुत्र और पुत्रवधूके साथ रह रहे थे।

ब्राह्मणके पुत्रका नाम सुमति था। वह भी पिताकी भाँति वेदोंका विद्वान् था। पितृपक्षमें उसने अपने माता-पिताका श्राद्ध करनेके उद्देश्यसे पत्नीसे कहकर खीर बनवायी और ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दिया। उधर एक सर्पने आकर खीरको विषाक्त कर दिया। कुतिया बनी ब्राह्मणी यह सब देख रही थी। उसने सोचा कि यदि इस खीरको ब्राह्मण खायेंगे तो विषके प्रभावसे मर जायँगे और सुमतिको पाप लगेगा। ऐसा विचारकर उसने सुमतिकी पत्नीके सामने ही जाकर खीरको छू दिया। इसपर सुमतिकी पत्नी बहुत क्रोधित हुई और चूल्हेसे जलती लकड़ी निकालकर उसकी पिटाई कर दी। उस दिन उसने कुतियाको भोजन भी नहीं दिया।

रात्रिमें कुतियाने बैलसे सारी घटना बतायी। बैलने कहा कि आज तो मुझे भी कुछ खानेको नहीं दिया गया जबकि मुझसे दिनभर काम लिया गया। सुमति हम दोनोंके ही उद्देश्यसे श्राद्ध कर रहा है और हमें ही भूखों मार रहा है। इस तरह हम दोनोंके भूखे रह जानेसे तो इसका श्राद्ध करना ही व्यर्थ हुआ।

सुमति द्वारपर लेटा कुतिया और बैलकी वार्ता सुन रहा था। वह पशुओंकी बोली भलीभाँति समझता था

यह जानकर अत्यन्त दु:ख हुआ कि मेरे माता-पिता इन निकृष्ट योनियोंमें पड़े हैं। वह दौड़ता हुआ एक ऋषिके आश्रममें गया और उनसे अपने माता-पिताके पशुयोनिमें पड़नेका कारण और मुक्तिका उपाय पूछा। ऋषिने ध्यान और योगबलसे सारा वृत्तान्त जान लिया। उन्होंने सुमतिसे कहा कि तुम पति-पत्नी भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीको ऋषिपञ्चमीका व्रत करो और उस दिन बैलके जोतनेसे उत्पन्न कोई भी अन्न न खाओ। इस व्रतके प्रभावसे तुम्हारे माता-पिताकी मुक्ति हो जायगी। अनन्तर मातृ-पितृभक्त सुमतिने ऋषिपञ्चमीका व्रत किया, जिसके प्रभावसे उसके माता-पिताको पशुयोनिसे मुक्ति मिल गयी।

यह व्रत शरीरके द्वारा अशौचावस्थामें किये गये स्पर्शास्पर्श तथा अन्य पापोंके प्रायश्चित्तके रूपमें किया जाता है। इस व्रतसे स्त्रियोंको रजस्वलावस्थामें स्पर्शास्पर्शका विचार रखनेकी शिक्षा लेनी चाहिये। साथ ही पुरुषोंको भी इन दिनों संयमपूर्वक रहना चाहिये।

दुबड़ी सातें (दुबड़ी सप्तमी)

[भाद्रपद शुक्ल सप्तमी]

यह मुख्यरूपसे राजस्थानका त्योहार है। भाद्रपद-मासके शुक्लपक्षकी सप्तमीको प्राय: स्त्रियाँ इसे संतानकी

मङ्गलकामनासे मनाती हैं। इस दिन दुबड़ी माताकी पूजा की जाती है। एक काष्ठ-पट्टपर दुबड़ी (कुछ बच्चों)-की मूर्ति, सर्पोंकी मूर्ति, एक मटका और एक औरतका चित्र मिट्टीसे बना लिया जाता है। उनको चावल, जल, दूध, रोली, आटा, घी और चीनी मिलाकर लोई बनाकर उनसे पूजा जाता है, दक्षिणा चढ़ायी जाती है और भीगा हुआ बाजरा चढ़ाया जाता है। मोठ बाजरेका बायना निकालकर सासजीके पैर छूकर उन्हें दिया जाता है। फिर दुबड़ी सातेंकी कहानी सुनी जाती है। इस दिन ठंडी रसोई खायी जाती है। यदि इसी साल किसी लड़कीका विवाह हुआ हो तो वह उजमन (उद्यापन) करे। उजमनमें मोठ-बाजरेकी तेरह कुड़ी एक थालीमें लेकर तथा रुपया एवं साड़ी रखकर, हाथ फेरकर अपनी सासजीको प्रणाम कर उन्हें दे दिया जाता है।

इस व्रतकी कथा* इस प्रकार है—

एक साहूकारके सात बेटे थे, परंतु वह जिस भी बेटेका विवाह करता, वही मर जाता। इस प्रकार उसके छ: बेटे क्रमश: मर गये। अन्तमें सातवें बेटेका भी विवाह तय हो गया। सभी नाते-रिश्तेदारोंको आमन्त्रित किया गया था। विवाहमें शामिल होनेके लिये लड़केकी बुआ भी आ रही थी। रास्तेमें उसे एक बुढ़िया मिली। बुआने बुढ़ियाके चरण-स्पर्श किये तो उसने पूछा कि बेटी! कहाँ जा रही हो? बुआके बताये जानेपर बुढ़ियाने कहा कि लड़का तो मर जायगा। वह जैसे ही बारातके लिये घरसे निकलेगा, घरका दरवाजा गिर जायगा। यदि उससे बचेगा तो भी जिस पेड़के नीचे बारात रुकेगी, वह पेड़ गिर जायगा, वहाँसे बचनेपर जब वह ससुरालमें प्रवेश करेगा तो वहाँका भी दरवाजा गिर जायगा, उससे भी यदि बच गया तो सातवीं भाँवर पड़ते समय नाग आकर डँस लेगा।

बुआ बोली—हे माता! मेरा यह एक ही भतीजा बचा है, जब आपने इतने अनिष्टोंकी बात बतायी है तो कृपा करके

* यह एक लोककथा है, जिसे व्रतके दिन स्त्रियाँ परस्पर कहती-सुनती हैं।

रक्षाका उपाय भी बतायें। बुढ़िया जो स्वयं दुबड़ी माता थीं, बोलीं—बेटी! उपाय तो है पर है बहुत कठिन। बुआने कहा—माता! कितना भी कठिन उपाय हो भतीजेकी रक्षाके लिये मैं करूँगी। बुढ़िया बोली—बेटी! जब लड़का विवाह करने जाने लगे तो उसे दरवाजेसे न निकालकर दीवार फोड़कर निकलवाना, उसके बाद रास्तेमें किसी पेड़के नीचे बारातको रुकने न देना, इसी प्रकार ससुरालमें भी लड़केको दीवार फोड़कर ही घरमें प्रवेश कराना तथा भाँवरोंके समयमें कटोरेमें दूध भरकर रख देना, जब नाग आकर दूध पीने लगे तो उसे ताँतके फाँसमें फँसा लेना। जब नागिन आकर अपने नागको माँगे तो तुम उससे अपने छहों भतीजोंको माँग लेना। इस तरह तुम्हारा यह भतीजा तो जीवित बच ही जायगा, पहले मरे हुए भतीजे भी जीवित हो जायँगे, परंतु इस बातको किसीसे बताना नहीं; अन्यथा सुनने और कहनेवाले दोनों मर जायँगे और भतीजेकी भी मृत्यु हो जायगी।

बुढ़िया बनी दुबड़ी माताने जैसे कहा था मायके आकर बुआने वैसे ही किया। सभी घटनाएँ दुबड़ी माताने जैसे बतायी थीं वैसे ही घटीं, परंतु रक्षाका उपाय बता देनेके कारण भतीजेकी रक्षा हो गयी और पहले मर चुके छहों भतीजे भी जीवित हो गये। दुबड़ी माताकी कृपासे सब कुछ आनन्दमय हो गया। बारात लौटनेपर बुआने सप्तमीको दुबड़ी माताकी पूजा करायी।

हे दुबड़ी मैया! जैसे तुमने बुआको सातों भतीजे दिये वैसे ही सबको संतान-सुख देना।
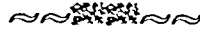
श्रीराधाजन्माष्टमी-व्रतमहोत्सव

[भाद्रपद शुक्ल अष्टमी]

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जैसे सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्ण नित्य हैं, समय-

समयपर इस भूमण्डलमें उनका आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है, उसी प्रकार सच्चिदानन्दमयी भगवती श्रीराधाजी भी नित्य हैं। वास्तवमें भगवान्‌की निजस्वरूपा-शक्ति होनेके कारण वे भगवान्‌से सर्वथा अभिन्न हैं और समय-समयपर लीलाके लिये आविर्भूत-तिरोभूत हुआ करती हैं। नारदपाञ्चरात्र (२।३।५१, ५४)-में कहा गया है—

यथा ब्रह्मस्वरूपश्च श्रीकृष्णः प्रकृतेः परः।
तथा ब्रह्मस्वरूपा च निर्लिप्ता प्रकृतेः परा॥
आविर्भावस्तिरोभावस्तस्याः कालेन नारद।
न कृत्रिमा च सा नित्या सत्यरूपा यथा हरिः॥

'जैसे श्रीकृष्ण ब्रह्मस्वरूप हैं तथा प्रकृतिसे पर हैं, वैसे ही श्रीराधाजी भी ब्रह्मस्वरूप, निर्लिप्त तथा प्रकृतिसे पर हैं। भगवान्‌की भाँति ही उनका समय-समयपर आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है। वस्तुतः वे भी श्रीहरिके सदृश ही अकृत्रिम, नित्य और सत्यस्वरूप हैं।'

इसी प्रकार इनका आविर्भाव-महोत्सव तथा उसका महत्त्व भी प्राचीनतम और नित्य है। पद्मपुराण, ब्रह्मखण्डके सप्तम अध्यायमें श्रीनारद-ब्रह्माके संवादरूपमें एक इतिहास मिलता है, उसमें नारदजीके पूछनेपर ब्रह्माजी राधा-जन्माष्टमी-व्रतके महान् माहात्म्यका वर्णन करते हुए एक प्राचीन प्रसंग सुनाते हैं। वे कहते हैं—

'वत्स नारद! पहले सत्ययुगमें एक मृगनयनी, शुभाङ्गी, चारुहासिनी, अतिसुन्दरी लीलावती नामकी वाराङ्गना थी। उसने बहुत बड़े-बड़े कठोर पाप किये थे। एक दिन धनको लालचसे वह अपने नगरसे निकलकर एक दूसरे नगरमें

गयी। वहाँ उसने एक जगह बहुत लोगोंको एकत्र देखा। वे लोग एक सुन्दर देवालयमें राधाष्टमी-व्रतका उत्सव मना रहे थे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, वस्त्र तथा नाना प्रकारके फल आदिसे भक्तिपूर्वक श्रीराधाजीकी श्रेष्ठ मूर्तिकी पूजा कर रहे थे। कोई गा रहे थे, कोई नाच रहे थे, कोई उत्तम स्तव-पाठ कर रहे थे। कोई बड़ी प्रसन्नतासे ताल, मृदङ्ग और वेणु बजा रहे थे। इस प्रकार उन लोगोंको महोत्सव-परायण देखकर वाराङ्गनाने कौतूहलपूर्वक उन लोगोंके पास जाकर पूछा—

'पुण्यात्माजनो! आप हर्षमें भरे यह क्या कर रहे हैं? मैं विनयपूर्वक पूछ रही हूँ, कृपा करके बताइये।' इसके उत्तरमें उन राधाव्रतियोंने कहा—

'भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको दिनके समय श्रीराधाजीका वृषभानुके यहाँ यज्ञभूमिमें प्राकट्य हुआ था। हमलोग उसीका व्रत करके महोत्सव मना रहे हैं। इस व्रतसे मनुष्योंके बहुत बड़े-बड़े पापोंका तुरंत नाश हो जाता है।' उनकी बात सुनकर वाराङ्गना लीलावतीने भी व्रत करनेका निश्चय करके व्रत किया। दैवयोगसे उसको सर्पने डँस लिया, इससे उसकी मृत्यु हो गयी। उसने बड़े पाप किये थे, अतएव हाथोंमें पाश तथा मुद्गर लिये भयानक यमदूत आ गये और उसे डाँटने लगे। इसी बीच शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले विष्णुदूतोंने आकर चक्रसे यमपाशको काट दिया। वह वाराङ्गना सर्वथा पापमुक्त हो गयी और उसे वे विष्णुदूत विमानपर चढ़ाकर 'गोलोक' नामक मनोहर दिव्य विष्णुपुरमें ले गये।'

ब्रह्माजीने फिर कहा—'इस प्रकार पापोंका नाश करनेवाले और श्रीराधामाधवको अत्यन्त प्रिय राधाष्टमी-व्रतको जो लोग नहीं करते हैं, वे मूढबुद्धि हैं। उन स्त्री-पुरुषोंको यमलोकमें जाकर नरकोंमें गिरना पड़ता है और फिर पृथ्वीपर जन्म लेनेपर घोर दुःख भोगने पड़ते हैं।'

वास्तवमें श्रीराधाजी भगवान् श्रीकृष्णकी ही अभिन्न मूर्ति हैं। इनकी पूजा सदासे होती आयी है और होनी चाहिये। जन-जनको चाहिये कि वह सर्वत्र श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत करने तथा महोत्सव मनानेका सत्प्रयास करे। शुद्ध हृदयसे उत्साहपूर्वक स्वयं मनाये तथा लोगोंको प्रेरणा देकर मनवाये। इसमें उसका और जगत्‌के उन जीवोंका, जो इस व्रत-महोत्सवका सेवन करेंगे, कल्याण होगा, इसमें कोई भी संदेह नहीं है।

श्रीराधापूजाकी अनिवार्य आवश्यकता

'श्रीमद्देवीभागवत'में श्रीनारायणने नारदजीके प्रति **'श्रीराधायै स्वाहा'** इस षडक्षर राधामन्त्रकी अति प्राचीन परम्परा तथा विलक्षण महिमाके वर्णन-प्रसंगमें श्रीराधा-पूजाकी अनिवार्यता तथा परम कर्तव्यताका निरूपण करते हुए कहा है—

कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना।
वैष्णवैः सकलैस्तस्मात् कर्तव्यं राधिकार्चनम्॥
कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति॥
राध्नोति सकलान् कामांस्तस्माद् राधेति कीर्तिता॥

'श्रीराधाकी पूजा न की जाय तो मनुष्य श्रीकृष्णकी पूजाका अधिकार नहीं रखता। अतएव समस्त वैष्णवोंको चाहिये कि वे भगवती श्रीराधाजीकी अर्चना अवश्य करें। ये श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इसलिये भगवान् इनके अधीन रहते हैं। ये भगवान्‌के रासकी नित्य अधीश्वरी हैं। श्रीराधाके बिना भगवान् श्रीकृष्ण क्षणभर भी नहीं ठहर सकते। ये सम्पूर्ण कामनाओंका राधन (साधन) करती हैं, इसी कारण इन देवीका नाम 'श्रीराधा' कहा गया है।'

इन श्रीराधाजीका प्राकट्य भाद्रपद शुक्लपक्षकी अष्टमीको मध्याह्नके समय श्रीवृषभानुपुरी (बरसाना) या उनके ननिहाल रावलग्राममें हुआ था। कुछ महानुभाव प्रातःकाल प्राकट्य हुआ मानते हैं। सम्भव है, कल्पभेदसे उनकी मान्यता सत्य हो; पर पुराणोंमें मध्याह्नका ही उल्लेख मिलता है।

श्रीराधाजन्माष्टमी-व्रतमहोत्सवका माहात्म्य

[देवर्षि नारद और भगवान् सदाशिवका संवाद]

भाद्रपद महीनेके कृष्णपक्षमें जब श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी आती है, उसके बाद शुक्लपक्षकी अष्टमीको हरिप्रिया श्रीराधिकाजीका जन्म हुआ। वृषभानुपुरी नामकी एक सब रत्नोंसे भरी सुन्दर नगरी है, जहाँ सुवर्ण और मणि-माणिक्यसे सुसज्जित विचित्र रंगके भवन और प्राङ्गण हैं। नाना प्रकारकी ध्वजा-पताका आदिसे विचित्र दिखनेवाली, चित्रोंसे सुशोभित वह नगरी अणिमा-महिमा आदि आठों प्रकारकी सिद्धियोंके द्वारा प्राप्त होनेवाले सुख और ऐश्वर्यसे

परिपूर्ण तथा परम मनोहर है। वह चिदानन्दस्वरूप तथा चिदानन्द प्रदान करनेवाली है। उस नगरीमें आनन्द-केलि करनेवाली नारियाँ सदा निवास करती हैं। उसी नगरीमें सारे शुभ लक्षणोंसे युक्त, विनोदशीला, अतिसुन्दरी, जगत्के मनको मोहनेवाली, अतिगुह्यरूपा श्रीराधा नामकी देवी प्रकट हुईं। हे मुनिवर! उनका स्वरूप अतिगुह्य है, वह मूढ लोगों और असंतोंके सामने कथनीय नहीं है।

श्रीराधाके स्वरूप एवं माधुर्यकी महिमा

नारदजी बोले—हे महाभाग! मैं आपका दास हूँ, प्रणाम करके पूछता हूँ, बतलाइये। श्रीराधादेवी लक्ष्मी हैं या देवपत्नी हैं, महालक्ष्मी हैं या सरस्वती हैं? क्या वे अन्तरङ्ग विद्या हैं या वैष्णवी प्रकृति हैं? कहिये—वे वेदकन्या हैं, देवकन्या हैं अथवा मुनिकन्या हैं?

सदाशिव बोले—हे मुनिवर! अन्य किसी लक्ष्मीकी बात क्या कहें, कोटि-कोटि महालक्ष्मी उनके चरणकमलकी शोभाके सामने तुच्छ कही जाती हैं। हे नारदजी! एक मुँहसे मैं अधिक क्या कहूँ? मैं तो श्रीराधाके रूप, लावण्य और गुण आदिका वर्णन करनेमें अपनेको असमर्थ पाता हूँ। उनके रूप आदिकी महिमा कहनेमें भी लज्जित हो रहा हूँ। तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा समर्थ नहीं है जो उनके रूपादिका वर्णन करके पार पा सके। उनकी रूपमाधुरी जगत्को मोहनेवाले श्रीकृष्णको भी मोहित करनेवाली है। यदि अनन्त मुखसे चाहूँ तो भी उनका वर्णन करनेकी मुझमें क्षमता नहीं है।

नारदजी बोले—हे प्रभो! श्रीराधिकाजीके जन्मका माहात्म्य सब प्रकारसे श्रेष्ठ है। हे भक्तवत्सल! उसको मैं सुनना चाहता हूँ।

युक्त तथा श्रीकृष्णके आराधक थे। उनकी भार्या श्रीमती श्रीकीर्तिदा थीं। वे रूप-यौवनसे सम्पन्न थीं और महान् राजकुलमें उत्पन्न हुई थीं। महालक्ष्मीके समान भव्य रूपवाली और परम सुन्दरी थीं। वे सर्वविद्याओं और गुणोंसे युक्त, कृष्णस्वरूपा तथा महापतिव्रता थीं। उनके ही गर्भमें शुभदा भाद्रपदकी शुक्लाष्टमीको मध्याह्न कालमें श्रीवृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाजी प्रकट हुईं। वेद-शास्त्र तथा पुराणादिमें जिनका 'कृष्णवल्लभा' कहकर गुणगान हुआ है, वे श्रीराधा सदा श्रीकृष्णको आनन्द प्रदान करनेवाली, साध्वी, कृष्णप्रिया थीं। हे महाभाग! अब मुझसे श्रीराधाजन्म-महोत्सवमें जो भजन-पूजन, अनुष्ठान आदि कर्तव्य हैं, उन्हें सुनिये। सदा श्रीराधाजन्माष्टमीके दिन व्रत रखकर उनकी पूजा करनी

श्रीराधा-माधव-युगलका ध्यान

हेमेन्दीवरकान्तिमञ्जुलतरं श्रीमज्जगन्मोहनं
नित्याभिर्ललितादिभिः परिवृतं सन्नीलपीताम्बरम्।
नानाभूषणभूषणाङ्गमधुरं कैशोररूपं युगं
गान्धर्वाजनमव्ययं सुललितं नित्यं शरण्यं भजे॥

(पद्मपुराण उत्तर० १६२।३१)

जिनकी स्वर्ण और नील कमलके समान अति सुन्दर कान्ति है, जो जगत्‌को मोहित करनेवाली श्रीसे सम्पन्न हैं, नित्य ललिता आदि सखियोंसे परिवृत हैं, सुन्दर नील और पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा जिनके नाना प्रकारके आभूषणोंसे आभूषित अङ्गोंकी कान्ति अति मधुर है, उन अव्यय, सुललित, युगलकिशोररूप श्रीराधाकृष्णके हम नित्य शरणापन्न हैं।' इस प्रकार युगलमूर्तिका ध्यान करके शालग्राममें अथवा मनोमयी मूर्तिमें या पाषाण आदिकी मूर्तिमें पुनः सम्यक् रूपसे अर्चना करे।

महाप्रसाद-वितरणकी महिमा—भगवान्‌को निवेदन किये गये गन्ध-पुष्प-माल्य तथा चन्दन आदिके द्वारा समागत कृष्णभक्तोंकी आराधना करे। श्रीराधाजीकी भक्तिमें दत्तचित्त होकर उनके लिये प्रस्तुत नैवेद्य, गन्ध-पुष्प-माल्य तथा चन्दन आदिके द्वारा दिनमें महोत्सव करे। पूजा करके दिनके अन्तमें भक्तोंके साथ आनन्दपूर्वक चरणोदक लेकर महाप्रसाद ग्रहण करे। श्रीराधाकृष्णका स्मरण करते हुए रातमें जागरण करे। चाँदी और सोनेकी सुसंस्कृत मूर्ति रखकर उसकी पूजा करे। दूसरी कोई वार्ता न करते हुए नारी तथा बन्धु-बान्धवोंके साथ पुराणादिसे प्रयत्नपूर्वक इष्टदेवता श्रीराधाकृष्णके कथा-कीर्तनका श्रवण करे। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रीराधाजन्माष्टमीके इस शुभानुष्ठानको करता है, उसके विषयमें सब देवतालोग कहते हैं कि 'यही मनुष्य भूतलमें राधाभक्त है।' **इस अष्टमीको दिन-रात एक-एक पहरपर विधिपूर्वक श्रीराधामाधवकी पूजा करे।** श्रीराधाकृष्णमें अनुरक्त रसिकजनोंके साथ आलाप करते हुए बारम्बार श्रीराधाकृष्णको याद करे। इस प्रकार महोत्सव करके परम आनन्दित होकर विधिपूर्वक साष्टाङ्ग दण्ड-प्रणाम करे। जो पुरुष अथवा नारी राधाभक्तिपरायण होकर श्रीराधाजन्म-महोत्सव करता है, वह श्रीराधाकृष्णके सांनिध्यमें श्रीवृन्दावनमें वास करता है, वह राधाभक्तिपरायण होकर व्रजवासी बनता है। श्रीराधाजन्म-महोत्सवका गुण-कीर्तन करनेसे मनुष्य भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

'राधा' नामकी तथा राधाजन्माष्टमी-व्रतकी महिमा

जो मनुष्य 'राधा-राधा' कहता है तथा स्मरण करता है, वह सब तीर्थोंके संस्कारसे युक्त होकर सब प्रकारकी विद्याकी प्राप्तिमें प्रयत्नवान् बनता है। जो 'राधा-राधा' कहता है, राधा-राधा कहकर पूजा करता है, राधा-राधामें जिसकी निष्ठा है, जो राधा-राधा उच्चारण करता रहता है, वह महाभाग श्रीवृन्दावनमें श्रीराधाकी सहचरी होता है। इस विश्वब्रह्माण्डमें यह पृथ्वी धन्य है, पृथ्वीपर वृन्दावनपुरी धन्य है। वृन्दावनमें सती श्रीराधाजी धन्य हैं, जिनका ध्यान बड़े-बड़े मुनिवर करते हैं। जो ब्रह्मा आदि देवताओंकी परमाराध्या हैं, जिनकी सेवा देवतालोग दूरसे ही करते रहते हैं। उन श्रीराधिकाजीको जो भजता है, उसको मैं भजता हूँ। हे महाभाग! उनका कथा-कीर्तन करो, उनके उत्तम मन्त्रका जप करो और रात-दिन राधा-राधा बोलते हुए नाम-कीर्तन करो। जो मनुष्य कृष्णके साथ राधाका (अर्थात् राधेकृष्ण, राधेकृष्ण) नाम-कीर्तन करता है, उसके माहात्म्यका वर्णन मैं नहीं कर सकता और न उसका पार पा सकता हूँ। राधा-नाम-स्मरण कदापि निष्फल नहीं जाता, यह सब तीर्थोंका फल प्रदान करता है। श्रीराधाजी सर्वतीर्थमयी हैं तथा सर्वैश्वर्यमयी हैं। श्रीराधा-भक्तके घरसे कभी लक्ष्मी विमुख नहीं होतीं। हे नारद! उसके घर श्रीराधाजीके साथ श्रीकृष्ण वास करते हैं। श्रीराधाकृष्ण

जिनके इष्ट देवता हैं, उनके लिये यह श्रेष्ठ व्रत है। उनके घरमें श्रीहरि देहसे, मनसे कदापि पृथक् नहीं होते। यह सब सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजीने प्रणत होकर यथोक्त रीतिसे श्रीराधाष्टमीमें यजन-पूजन किया। जो मनुष्य इस लोकमें यह राधाजन्माष्टमी-व्रतकी कथा श्रवण करता है, वह सुखी, मानी, धनी और सर्वगुणसम्पन्न हो जाता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रीराधाका मन्त्र-जप करता है अथवा नाम-स्मरण करता है, वह धर्मार्थी हो तो धर्म प्राप्त करता है, अर्थार्थी हो तो धन पाता है, कामार्थी पूर्णकाम हो जाता है और मोक्षार्थीको मोक्ष प्राप्त होता है। कृष्णभक्त वैष्णव सर्वदा अनन्यशरण होकर जब श्रीराधाकी भक्ति प्राप्त करता है तो सुखी, विवेकी और निष्काम हो जाता है। (पद्मपुराण उ०ख० १६२-१६३ का कुछ अंश)

श्रीराधा-प्राकट्यकी तिथि और काल

वृषभानुरिति ख्यातो जज्ञे वैश्यकुलोद्भवः।
सर्वसम्पत्तिसम्पन्नः सर्वधर्मपरायणः॥
उवाह कीर्तिदानाम्नीं गोपकन्यामनिन्दिताम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नां प्रतप्तकनकप्रभाम्॥
वृषभानुर्महाभक्तः कीर्तिदायास्तपोबलात्।
अस्माद् विनयबाहुल्यात् तत्कन्या राधिकाभवत्॥
भाद्रे मासि सिते पक्षे अष्टमी या तिथिर्भवेत्।
अस्यां दिनार्द्धेऽभिजिते नक्षत्रे चानुराधिके॥
राजलक्षणसम्पन्नां कीर्तिदासूतकन्यकाम्।
अतीवसुकुमाराङ्गीं सितरश्मिसमप्रभाम्।
त्रैलोक्याद्भुतसौन्दर्या दोषनिर्मुक्तविग्रहाम्॥

(भविष्यपुराण*)

कन्याको जन्म दिया। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग अत्यन्त सुकुमार थे, जिनसे चन्द्रमाकी-सी ज्योति निकल रही थी, उसका सौन्दर्य त्रिलोकीमें विलक्षण था और शरीर सब प्रकारके दोषोंसे सर्वथा मुक्त था।'

श्रीराधा-प्राकट्यका कारण तथा प्राकट्य-महोत्सव

गर्गसंहितामें आता है—राजा बहुलाश्वके पूछनेपर श्रीनारदजी कहते हैं—'तुम्हारा यह कुल धन्य है, क्योंकि इसीमें राजा निमि हो चुके हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके सर्वश्रेष्ठ भक्त थे। फिर इसी कुलमें तुम भी उत्पन्न हुए हो। अतः इसे पूर्णरूपसे गौरव प्राप्त हो गया। तुम्हारा स्वभाव बहुत ही विलक्षण है, क्योंकि तुम संसारसे सम्बन्ध रखते हुए भी त्यागी हो। अब तुम उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका श्रवण करो। वह पवित्र एवं कल्याणस्वरूप है। केवल कंसका संहार ही भगवान्‌के अवतारमें हेतु नहीं है, वे पृथ्वीपर संतजनोंकी रक्षाके लिये भी पधारे थे। राजन्! भगवान्‌ने ही अपनी महाशक्तिको प्रेरणा दी। अतः महाशक्तिने वृषभानुकी पत्नीके हृदयमें प्रवेश किया और वे ही 'राधिका' नामसे प्रकट हुईं। उनका अवतार एक भव्य भवनमें हुआ। वह स्थान यमुनाके तटपर निकुञ्ज-वनमें था। उस समय भाद्रपदका महीना था। शुक्लपक्ष एवं अष्टमी तिथि थी। मध्याह्न (दोपहर)-का समय था। आकाशमें मेघ छाये हुए थे। देवताओंने उस समय फूलोंकी वर्षा की। वे फूल नन्दनवनसे उन्हें प्राप्त हुए थे। उस समय राधिकाजीके पृथ्वीपर प्रकट होनेपर नदियाँ स्वच्छ हो गयीं। सम्पूर्ण दिशाओंमें आनन्द फैल गया। कमलकी गन्धसे व्याप्त वायु चलने लगी, वह बड़ी ही शीतल, मनोहर और धीमी गतिसे

सखियाँ पालनेमें राधिकाजीको झुलाया करती थीं।'

प्रेङ्खे खचिद्रत्नमयूखपूर्णे सुवर्णयुक्ते कृतचन्दनाङ्गे।
आन्दोलिता सा ववृधे सखीजनैर्दिने दिने चन्द्रकलेव भाभिः॥
श्रीरासरङ्गस्य विकासचन्द्रिका दीपावलीभिर्वृषभानुमन्दिरे।
गोलोकचूडामणिकण्ठभूषणां ध्यात्वा परां तां भुवि पर्यटाम्यहम्॥

(गर्गसंहिता १।८।११, १२)

'वह पालना सुवर्णसे बनाया गया था। उसमें रत्न जड़े हुए थे। चारों ओर चन्दन छिड़का गया था। प्रतिदिन राधिकाजीका श्रीविग्रह बढ़ता जाता था। ठीक उसी प्रकार, जैसे शुक्लपक्षमें प्रतिदिन बढ़ते हुए प्रकाशसे चन्द्रमाकी कलामें विस्तार होता जाता है। जो रासमण्डलको आह्लादित करनेवाली स्वच्छ चाँदनी हैं, जिन्होंने वृषभानुके भवनको अनन्त उज्ज्वल दीपावलियोंके समान प्रकाशित कर दिया है तथा जो गोलोकमें चूडामणिके रूपमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णके गलेकी हार हैं, उन पूजनीय राधिकाजीका ध्यान करके मैं पृथ्वीपर विचर रहा हूँ।'

श्रीवृषभानु तथा श्रीकीर्तिजी पूर्वजन्ममें कौन थे ?

श्रीनारदजी कहते हैं—तदनन्तर बहुलाश्वके पूछनेपर नारदजीने श्रीवृषभानु तथा श्रीकीर्तिजीके पूर्वजन्म तथा वरदानका इतिहास सुनाया। देवर्षि नारदजी बोले—एक राजा नग थे। उनके यहाँ सुचन्द्र नामक पुत्रका जन्म हुआ। सुचन्द्र अत्यन्त बड़भागी थे। राजाओंके ऊपर भी उनका शासन था। वे चक्रवर्ती थे। उन्हें साक्षात् भगवान्‌का अंश माना जाता था। उनका शरीर बड़ा ही कोमल था। (अर्यमा आदि) पितरोंके यहाँ संकल्पमात्रसे तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। तीनों बड़ी ही कमनीय-मूर्ति थीं। उनके नाम थे—कलावती, रत्नमाला और मेनका। कलावती सुचन्द्रके साथ ब्याही गयीं। सुचन्द्र बड़े विद्वान् और भगवान्‌के अंशावतार थे। रत्नमाला विदेह (जनक)-को समर्पित कर दी गयीं और गिरिराज हिमालयने मेनकाका पाणिग्रहण किया। पितरोंने अपनी रुचिके अनुसार ब्राह्मविधिसे ये कन्याएँ दान कीं। रत्नमालासे सीताजी प्रकट हुईं। मेनकाके गर्भसे पार्वतीजीका अवतार हुआ। महामते! इन दोनोंकी कथाएँ पुराणोंमें जगह-जगह वर्णित हैं। तदनन्तर, पत्नी कलावतीको साथमें लेकर सुचन्द्र गोमती नदीके तटपर स्थित एक वनमें चले गये। उन्होंने ब्रह्माजीकी तपस्या की। वह तप देवताओंके वर्षसे बारह वर्षोंतक चलता रहा। पश्चात् ब्रह्माजी वहाँ पधारे और उन्होंने सुचन्द्रको वरदान दिया—

'तुमलोग मेरे साथ स्वर्गमें चलो और वहाँ नाना प्रकारके आनन्दका उपभोग करो। समय आनेपर तुम दोनों पृथ्वीपर उत्पन्न होओगे। द्वापरके अन्तमें गङ्गा और यमुनाके बीच, भारतवर्षमें तुम्हारा जन्म होगा। तुम्हीं दोनोंसे स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णकी प्राण-प्रिया देवी राधिकाजी पुत्रीके रूपमें प्रकट होंगी। उसी समय तुम्हें परमधाम प्राप्त होगा।'

श्रीनारदजी कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्माजीका वरदान हुआ। वह महान् पवित्र तथा कभी भी निष्फल होनेवाला नहीं था। अतः उसीके प्रभावसे भूमण्डलपर कीर्ति तथा वृषभानु हुए। कन्नौज देशमें एक राजा थे। भलन्दन नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। उन्हींके यहाँ यज्ञकुण्डसे कलावतीका प्रादुर्भाव हुआ। कलावती अपने पूर्वजन्मकी सारी बातें जानती थीं। उनका स्वभाव भी बहुत विलक्षण था। सुरभानुके घर सुचन्द्रका जन्म हुआ। उस समय वे वृषभानु नामसे विख्यात हुए। उन्हें भी पहले जन्मका स्मरण था। गोपोंमें उनकी प्रधानता थी। वे इतने सुन्दर थे कि एक दूसरे कामदेव ही माने जाते थे। नन्दजीकी बुद्धि बड़ी निर्मल थी। उन्होंने दोनोंका परस्पर सम्बन्ध जोड़ दिया। उन दोनोंको पूर्वजन्मकी स्मृति तो थी ही। अतः वे दोनों चाहते भी ऐसा ही थे। जो मनुष्य इस वृषभानु और कलावतीके उपाख्यानका श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। अन्तमें वह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके परमधामका अधिकारी भी होता है। (गर्गसंहिता १।८)

श्रीराधाजन्माष्टमी-व्रत

'नारदपुराण' पूर्वभाग अध्याय ११७ में श्रीराधाजन्माष्टमी-व्रत का वर्णन करते हुए सनातन मुनिने कहा है—

'भाद्र शुक्ल अष्टमीको मनुष्य 'राधा-व्रत' करे। कलशस्थापन करके उसके ऊपर श्रीराधाकी स्वर्णमयी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। मध्याह्नकालमें श्रीराधाजीका पूजन करके एकभुक्त व्रत करे। विधिपूर्वक राधाष्टमी-व्रत करनेसे मनुष्य व्रजका रहस्य जान लेता है तथा राधा-परिकरोंमें निवास करता है।'

इसी प्रकार आदिपुराण, तन्त्र और अन्य कई प्राचीन ग्रन्थोंमें भी राधा-प्राकट्य तथा व्रतका वर्णन आया है।

दशावतार-व्रत

[भाद्रपद शुक्ल दशमी]

यह व्रत भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी दशमीको किया जाता है। इस दिन किसी पवित्र जलाशय या नदीमें स्नानकर देव और पितरोंका तर्पण करना चाहिये और अपने हाथसे पूए बनाकर भगवान्‌के दस अवतारों—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्किकी मूर्तिका यथाविधि पूजन करे तथा पूओं (अपूप)-का भोग लगाये। दस अपूप देवताके लिये, दस ब्राह्मणके लिये और दस अपने लिये रखकर भोजन करे। इस प्रकार दस वर्षतक यह व्रत करना चाहिये। अपूपके स्थानपर प्रतिवर्ष बदल-बदलकर पदार्थोंका भोग लगाया जाता है, इस प्रकार दस वर्षतक यह व्रत करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

वामनजयन्ती-महोत्सव (वामनद्वादशी-व्रत)

[भाद्रपद शुक्ल द्वादशी]

भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी वामनद्वादशी—वामनजयन्तीके रूपमें मनायी जाती है। 'श्रीमद्भागवतमहापुराण'-के अनुसार जिस समय वामनभगवान्‌ने जन्म ग्रहण किया, उस समय चन्द्रमा श्रवण नक्षत्रपर थे। भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी श्रवण नक्षत्रवाली द्वादशी थी। अभिजित् मुहूर्तमें भगवान्‌का जन्म हुआ था और सभी ग्रह, नक्षत्र तथा तारे भगवान्‌के मङ्गलमय जन्मको सूचित कर रहे थे। उस समय विजयाद्वादशी तिथि थी और सूर्य आकाशके मध्य भागमें स्थित थे—

श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः।
सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम्॥
द्वादश्यां सवितातिष्ठन्मध्यंदिनगतो नृप।
विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः॥

(८।१८।५-६)

व्रत-विधान—वामनद्वादशीका व्रत करनेवाले व्रतीको चाहिये कि द्वादशीको मध्याह्नके समय भगवान् वामनका षोडशोपचारपूर्वक पूजन करे तथा वामनभगवान्‌की कथा सुने। तदनन्तर एक मिट्टीके पात्रमें दही, चावल एवं शक्कर रखकर ब्राह्मणको दान दे। इस दिन फलाहार कर दूसरे दिन त्रयोदशीको पारण करे।

भगवान्‌की इस अमोघवाणीको सुनकर सभी देवगण हर्षित हो देवमाता अदितिके पास आकर भगवान्‌के अवतारकी प्रतीक्षा करने लगे। उधर राजा बलिने भृगुवंशी ब्राह्मणोंको लेकर नर्मदानदीके किनारे अश्वमेधयज्ञ करना प्रारम्भ किया।

इधर भगवान्‌के अवतारका समय जान सभी ग्रह-नक्षत्र अपनी शुभ स्थितियोंमें आ गये। आकाशमें शङ्ख, ढोल, मृदङ्ग बजने लगे और इस प्रकार अजन्मा भगवान् श्रीहरिका भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें द्वादशीको वामन-अवतार हुआ।

भगवान्‌ने जब सुना कि बलि यज्ञ कर रहे हैं तो वे बालब्रह्मचारीके वेशमें बलिकी यज्ञशालामें पहुँचे। उनके तेजोमय स्वरूपको देखकर बलिने अर्घ्य, पाद्य, आसन आदि देकर उनका षोडशोपचार पूजन किया तथा चरणोदक ग्रहण किया। उसके बाद उनकी वन्दना कर बलि बोले—हे ब्राह्मणकुमार! आप गौ, स्वर्ण, भूमि, रथ, अश्व, गज आदि जो कुछ भी चाहें, माँग लें। वामनभगवान्‌ने कहा—हे दैत्येन्द्र! आप प्रह्लाद-वंशके हैं और मुँहमाँगी वस्तु देनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं, इसलिये मैं आपसे थोड़ी-सी पृथ्वी—केवल अपने पैरोंसे तीन डग माँगता हूँ, मैं आपसे इससे अधिक नहीं चाहता; क्योंकि आवश्यकतासे अधिक प्रतिग्रह पाप है।

यदि स्वयं उपस्थित हो दानप्राप्तिकी इच्छा कर रहे हैं तो मैं अवश्य दूँगा। इसपर शुक्राचार्यने बलिको शाप दे दिया कि मेरी आज्ञाका उल्लंघन करनेके कारण तुम श्रीहीन हो जाओगे। इसपर भी जब बलि दान देनेके लिये भगवान्‌के

चरण धोने लगे तो देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण उनकी प्रशंसा कर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। इसके बाद वामनभगवान्‌ने अपने एक पगसे पृथ्वी तथा दूसरे पगसे ऊपरके सभी लोकों (महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक आदि)-को नाप लिया तथा तीसरे पगके लिये बलिके सिरपर अपने चरणकमल रख उसे सुतललोकका स्वामी बना दिया। यही नहीं अपने सुदर्शनचक्रको उसकी रक्षामें नियुक्त कर दिया। राजा बलिने सदैव दर्शन देनेका वरदान भी प्राप्त कर लिया—

नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम्।

वामनभगवान्‌के इस अद्भुत अवतार-चरित्रको श्रवण करनेवाला परमगतिको प्राप्त करता है—

य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः।
अवतारानुचरितं शृण्वन् याति परां गतिम्॥

(श्रीमद्भा० ८।२३।३०)

अनन्तचतुर्दशी

[भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी]

भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशीको अनन्तचतुर्दशी कहते हैं। इस दिन अनन्तभगवान्‌की पूजा की जाती है और अलोना (नमकरहित)-व्रत रखा जाता है। इसमें उदयव्यापिनी तिथि ली जाती है, पूर्णिमाका समायोग होनेसे इसका फल और बढ़ जाता है—

उदये त्रिमुहूर्तापि ग्राह्यानन्तव्रते तिथिः।

× × ×

पौर्णमास्याः समायोगे व्रतं चानन्तकं चरेत्॥

व्रत-विधान—व्रतीको चाहिये कि पक्वान्नका नैवेद्य लेकर किसी पवित्र नदी या सरोवरतटपर जाय और वहाँ स्नानके बाद व्रतके लिये निम्न संकल्प करे—

'ममाखिलपापक्षयपूर्वकशुभफलवृद्धये श्रीमदनन्त-प्रीतिकामनया अनन्तव्रतमहं करिष्ये।'

ऐसा संकल्पकर यथासम्भव नदीतटपर भूमिको गोबरसे लीपकर वहाँ कलश स्थापित कर उसकी पूजा करे। तत्पश्चात् कलशपर शेषशायी भगवान् विष्णुकी मूर्ति रखे और मूर्तिके सम्मुख चौदह ग्रन्थियुक्त अनन्तसूत्र (डोरा) रखे। इसके बाद **'ॐ अनन्ताय नमः'** इस नाम-मन्त्रसे भगवान् विष्णुसहित अनन्तसूत्रका षोडशोपचारपूर्वक पूजन करे। इसके बाद उस पूजित अनन्तसूत्रको निम्न मन्त्र पढ़कर पुरुष दाहिने हाथ और स्त्री बायें हाथमें बाँध ले—

अनन्तसंसारमहासमुद्रे
मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपे विनियोजितात्मा
ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते॥

अनन्तसूत्र बाँधनेके अनन्तर ब्राह्मणको नैवेद्य देकर स्वयं ग्रहण करना चाहिये और भगवान् नारायणका ध्यान करते हुए घर जाना चाहिये।

पूजाके अनन्तर परिवारजनोंके साथ इस व्रतकी कथा

चलो, गुफामें तुम्हें अनन्तभगवान्‌का दर्शन कराता हूँ। जब वे ब्राह्मणके साथ गुफामें गये तो वहाँ चतुर्भुजरूपमें भगवान्‌का दर्शन हुआ। भगवान्‌ने मुनिसे कहा—तुमने जो अनन्तसूत्रका तिरस्कार किया है, उसके मार्जनका उपाय यही है कि तुम चौदह वर्षतक अनन्तव्रतका पालन करो, इससे तुम्हारी नष्ट हुई सम्पत्ति पुनः प्राप्त हो जायगी और तुम सुखी हो जाओगे। कौण्डिन्यने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। भगवान्‌ने पुनः कहा—'जीव पूर्वजन्मके दुष्कर्मका फल भोगता है, जिसके कारण उसे अपने अनन्तरूप आत्माका साक्षात्कार नहीं होता। जब काम, क्रोध, लोभ आदि दोषोंसे पिण्ड छूटता है तभी मनुष्यका मन निर्मल होकर अपने-आपको प्रभुके लिये समर्पित करता है। तब भगवान्‌का दर्शन होता है। अन्यथा पूर्वजन्मके अनेक कुत्सित संस्कारोंके कारण वह इधर-उधर दौड़ता ही रहता है, कभी शान्त नहीं होता।'

कौण्डिन्यके साथ भी यही हुआ था। वे अन्तमें जब क्रोध और अभिमानको छोड़कर भगवान् अनन्तकी खोजमें आगे बढ़े, तब सद्‌गुरुके रूपमें उपस्थित होकर भगवान्‌ने बुद्धिरूपी गुफामें उन्हें अपना दर्शन कराया।

निष्कर्ष यह है कि भगवान् अनन्त सर्वत्र व्यापक हैं परन्तु जबतक मनुष्यकी देहासक्ति बनी रहती है तथा ममताके कारण मन धन-जनमें आसक्त रहता है तबतक उनका बोध उसे नहीं होता। सांसारिक विषयोंसे मुख मोड़कर जब मनुष्य अन्तर्मुख होने लगता है तब भगवान्‌का साक्षात्कार सुलभ हो जाता है।

अतः इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे भुक्ति और मुक्ति दोनोंकी उपलब्धि होती है, जिसका संकेत अनन्तसूत्र-धारणकी प्रार्थनामें इस प्रकार हुआ है—

अनन्तसंसारमहासमुद्रे
मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपे विनियोजितात्मा
ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते॥

श्रीमहालक्ष्मीव्रत (सोरहियाव्रत)

[भाद्रपद शुक्ल अष्टमीसे आश्विन कृष्ण अष्टमीतक]

भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीसे आश्विन कृष्ण

अष्टमीतक भगवती महालक्ष्मीका 'श्रीमहालक्ष्मीव्रत' होता है। यह व्रत सोलह दिनोंका होता है। शास्त्रों-पुराणोंमें इस व्रतका बहुत महत्त्व बताया गया है।

इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाले अपनी कामनाओंको ही नहीं अपितु धर्म, अर्थ, काम और मोक्षतक प्राप्त कर लेते हैं। जिस प्रकार तीर्थोंमें प्रयाग, नदियोंमें गङ्गाजी श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार व्रतोंमें यह महालक्ष्मीव्रत श्रेष्ठ है।

व्रत-विधान—भाद्रपद शुक्ल अष्टमीको प्रातःकाल उठकर सोलह बार हाथ-मुँह धोकर स्नानादिसे निवृत्त हो चन्दनादिनिर्मित भगवती महालक्ष्मीकी प्रतिमाका स्थापन करे। उसके समीप सोलह सूत्रके डोरेमें सोलह गाँठ लगाकर '**महालक्ष्म्यै नमः**' इस नाममन्त्रसे प्रत्येक गाँठका पूजन करके लक्ष्मीकी प्रतिमाका षोडशोपचार-पूजन करे। इसके पश्चात् निम्न मन्त्र पढ़कर डोरेको दाहिने हाथमें बाँध ले—

धनं धान्यं धरां हर्म्यं कीर्तिमायुर्यशः श्रियम्।
तुरगान् दन्तिनः पुत्रान् महालक्ष्मि प्रयच्छ मे॥

सोलह दूर्वा और सोलह अक्षत लेकर कथा सुने। इस प्रकार सोलह दिनतक व्रत करके आश्विन कृष्ण अष्टमीको

रात्रिजागरण कर विसर्जन करे। सोलहवें दिन डोरेको खोलकर लक्ष्मीजीके पास रख देना चाहिये। इस व्रतमें एक बार फलाहार किया जाता है तथा आटेके सोलह दीपक बनाकर दक्षिणाके साथ ब्राह्मणोंको दान किया जाता है।

कथा—एक लोककथाके अनुसार एक राजाके दो रानियाँ थीं। बड़ी रानीके अनेक पुत्र थे, परंतु छोटी रानीके एक ही पुत्र था। बड़ी रानीने एक दिन मिट्टीका हाथी बनाकर उसका पूजन किया, किंतु छोटी रानी इससे वञ्चित रहनेके कारण उदास हो गयी। उसका लड़का माँको उदास देख इन्द्रसे ऐरावत हाथी माँग लाया और बोला—माँ! तुम सचमुचके हाथीकी पूजा करो। रानीने ऐरावतकी पूजा की, जिसके प्रभावसे उसका पुत्र विख्यात राजा हुआ। अतः इस दिन लोग हाथीकी पूजा भी करते हैं। काशीमें लक्ष्मीकुण्डपर सोलह दिनका महालक्ष्मीका मेला लगता है जो सोरहिया मेला कहलाता है। यहाँ भक्तगण नियमपूर्वक लक्ष्मीजीका दर्शन करते हैं।
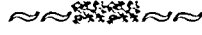
आश्विनमासके व्रतपर्वोत्सव—

पितृपक्ष

[आश्विन कृष्ण प्रतिपदासे अमावास्यातक]

आश्विनमासके कृष्णपक्षके पंद्रह दिन 'पितृपक्ष' के नामसे विख्यात हैं। इन पंद्रह दिनोंमें लोग अपने पितरोंको जल देते हैं तथा उनकी मृत्युतिथिपर श्राद्ध करते हैं। पितरोंका ऋण श्राद्धोंद्वारा चुकाया जाता है। पितृपक्ष श्राद्धोंके लिये निश्चित पंद्रह तिथियोंका एक समूह है। वर्षके किसी भी मास तथा तिथिमें स्वर्गवासी हुए पितरोंके लिये पितृपक्षकी उसी तिथिको श्राद्ध किया जाता है। पूर्णिमापर देहान्त होनेसे भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमाको श्राद्ध करनेकी विधि है। इसी दिनसे महालयका प्रारम्भ भी माना जाता है।

'श्राद्ध' का अर्थ है, श्रद्धासे जो कुछ दिया जाय।* पितृपक्षमें श्राद्ध करनेसे पितृगण वर्षभरतक प्रसन्न रहते हैं।

पितृपक्षमें श्राद्ध तो मुख्य तिथियोंको ही होते हैं, किंतु तर्पण प्रतिदिन किया जाता है। देवताओं तथा ऋषियोंको जल देनेके अनन्तर पितरोंको जल देकर तृप्त किया जाता है।

यद्यपि प्रत्येक अमावास्या पितरोंकी पुण्यतिथि है तथापि आश्विनकी अमावास्या पितरोंके लिये परम फलदायी है। इसी प्रकार पितृपक्षकी नवमीको माताके श्राद्धके लिये पुण्यदायी माना गया है। श्राद्धके लिये सबसे पवित्र स्थान गयातीर्थ है। जिस प्रकार पितरोंके मुक्तिनिमित्त गयाको परम पुण्यदायी माना गया है, उसी प्रकार माताके लिये काठियावाड़का सिद्धपुर स्थान परम फलदायी माना गया है। इस पुण्यक्षेत्रमें माताका श्राद्ध करके पुत्र अपने मातृ-ऋणसे सदा-सर्वदाके लिये मुक्त हो जाता है। यह स्थान मातृगयाके नामसे भी प्रसिद्ध है।

पितृपक्षमें श्राद्धकी महिमा

आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्।
पशून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्॥

तथा—

आयुः प्रजां धनं वित्तं स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः॥

धर्मशास्त्रोंमें कहा गया है कि पितरोंको पिण्डदान करनेवाला गृहस्थ दीर्घायु, पुत्र-पौत्रादि, यश, स्वर्ग, पुष्टि,

* श्रद्धया दीयते यत् तत् श्राद्धम्।

बल, लक्ष्मी, पशु, सुख-साधन तथा धन-धान्यादिकी प्राप्ति करता है। यही नहीं, पितरोंकी कृपासे ही उसे सब प्रकारकी समृद्धि, सौभाग्य, राज्य तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है। आश्विनमासके पितृपक्षमें पितरोंको आशा लगी रहती है कि हमारे पुत्र-पौत्रादि हमें पिण्डदान तथा तिलाञ्जलि प्रदानकर संतुष्ट करेंगे। यही आशा लेकर वे पितृलोकसे पृथ्वीलोकपर आते हैं। अतएव प्रत्येक हिन्दू सद्गृहस्थका धर्म है कि वह पितृपक्षमें अपने पितरोंके निमित्त श्राद्ध एवं तर्पण अवश्य करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार फल-मूल जो भी सम्भव हो, पितरोंके निमित्त प्रदान करे। पितृपक्ष पितरोंके लिये पर्वका समय है, अतएव इस पक्षमें श्राद्ध किया जाता है।

महालया (पितृविसर्जनी अमावास्या)—आश्विन कृष्ण अमावास्याको पितृविसर्जनी अमावास्या अथवा महालया कहते हैं। जो व्यक्ति पितृपक्षके पंद्रह दिनोंतक श्राद्ध-तर्पण आदि नहीं करते हैं, वे अमावास्याको ही अपने पितरोंके निमित्त श्राद्धादि सम्पन्न करते हैं। जिन पितरोंकी तिथि याद नहीं हो, उनके निमित्त श्राद्ध, तर्पण, दान आदि इसी अमावास्याको किया जाता है। आजके दिन सभी पितरोंका विसर्जन होता है। अमावास्याके दिन पितर अपने पुत्रादिके द्वारपर पिण्डदान एवं श्राद्धादिकी आशामें जाते हैं, यदि वहाँ उन्हें पिण्डदान या तिलाञ्जलि आदि नहीं मिलती है तो वे शाप देकर चले जाते हैं। अतएव एकदम श्राद्धका परित्याग न करे, पितरोंको संतुष्ट अवश्य करे।

श्राद्धमें ब्राह्मण

सर्वलक्षणसंयुक्तैर्विद्याशीलगुणान्वितैः ।
पुरुषत्रयविख्यातैः सर्वं श्राद्धं प्रकल्पयेत् ॥

समस्त लक्षणोंसे सम्पन्न, विद्या, शील एवं सद्गुणोंसे सम्पन्न तथा तीन पुरुषों (पीढ़ियों)-से विख्यात ब्राह्मणोंके द्वारा श्राद्ध सम्पन्न करे।

श्राद्धमें वर्जित ब्राह्मण

खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि वा भवेत्।
हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेद् बुधः ॥

लँगड़ा, काना, दाताका दास, अङ्गहीन एवं अधिक अङ्गवाला ब्राह्मण श्राद्धमें निषिद्ध है।

न ब्राह्मणं परीक्षेत देवकार्येषु प्रायशः ।
पितृकार्ये परीक्षेत ब्राह्मणं तु विशेषतः ॥

(निर्णयसिन्धु)

देवकार्य, पूजा-पाठ आदिमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा न करे, किंतु पितृकार्यमें अवश्य करे।

श्राद्धकर्ताके लिये वर्जित

जो श्राद्ध करनेके अधिकारी हैं, उन्हें पूरे पंद्रह दिनोंतक क्षौरकर्म नहीं कराना चाहिये। पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। प्रतिदिन स्नानके बाद तर्पण करना चाहिये। तेल, उबटन आदिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

दन्तधावनताम्बूले तैलाभ्यङ्गमभोजनम्।
रत्यौषधं परान्नं च श्राद्धकृत्सप्त वर्जयेत् ॥

दातौन करना, पान खाना, तेल लगाना, भोजन करना, स्त्री-प्रसङ्ग, औषध-सेवन और दूसरेका अन्न—ये सात श्राद्धकर्ताके लिये वर्जित हैं।

श्राद्धमें पवित्र

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः।
वर्ज्याणि प्राह राजेन्द्र क्रोधोऽध्वगमनं त्वरा ॥

दौहित्र (पुत्रीका पुत्र), कुतप (मध्याह्नका समय) और तिल—ये तीन श्राद्धमें अत्यन्त पवित्र हैं और क्रोध, अध्वगमन (श्राद्ध करके एक स्थानसे अन्यत्र दूसरे स्थानमें जाना) एवं श्राद्ध करनेमें शीघ्रता—ये तीन वर्जित हैं। (निर्णयसिन्धु)

श्राद्धमें अन्न

यदन्नं पुरुषोऽश्नाति तदन्नं पितृदेवताः।
अपक्वेनाथ पक्वेन तृप्तिं कुर्यात्सुतः पितुः ॥

मनुष्य जिस अन्नको स्वयं भोजन करता है, उसी अन्नसे पितर और देवता भी तृप्त होते हैं। पकाया हुआ अथवा बिना पकाया हुआ अन्न प्रदान करके पुत्र अपने पितरोंको तृप्त करे।

पितृपक्षमें श्राद्ध

इस पक्षमें पिताकी तिथिको पार्वणश्राद्ध करना चाहिये—'**पर्वणि भवः पार्वणः।**' महालयमें एकोद्दिष्टश्राद्ध नहीं होता। जो पार्वणश्राद्ध न कर सके, वह कम-से-कम पञ्चबलि निकालकर ब्राह्मण-भोजन ही कराये, जिसका विधान नीचे लिखा जाता है—

बहुत-से व्यक्ति पार्वणश्राद्ध नहीं कराकर केवल ब्राह्मण-भोजन ही करा देते हैं, उसका नियम इस प्रकार है—

श्राद्धके निमित्त पाक तैयार होनेपर एक थालीमें पाँच जगह थोड़े-थोड़े सभी प्रकारके पाक परोसकर हाथमें जल, अक्षत, पुष्प, चन्दन लेकर निम्नलिखित संकल्प करे—

अद्यामुक गोत्र अमुक शर्मा (वर्मा/गुप्तो वा) अहममुकगोत्रस्य मम पितुः (मातुः भ्रातुः पितामहस्य वा) वार्षिकश्राद्धे (महालयश्राद्धे) कृतस्य पाकस्य शुद्ध्यर्थं पञ्चसूनाजनितदोषपरिहारार्थं च पञ्चबलिदानं करिष्ये।

पञ्चबलि-विधि

(१) गोबलि (पत्तेपर)—मण्डलके बाहर पश्चिमकी ओर निम्नलिखित मन्त्र* पढ़ते हुए सव्य होकर गोबलि पत्तेपर दे—

ॐ सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः॥
इदं गोभ्यो न मम।

(२) श्वानबलि (पत्तेपर)—जनेऊको कण्ठीकर निम्नलिखित मन्त्रसे कुत्तोंको बलि दे—

द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ।
ताभ्यामन्नं प्रयच्छामि स्यातामेतावहिंसकौ॥
इदं श्वभ्यां न मम।

(३) काकबलि (पृथ्वीपर)—अपसव्य होकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर कौओंको भूमिपर अन्न दे—

ॐ ऐन्द्रवारुणवायव्या याम्या वै नैर्ऋतास्तथा।
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयोज्झितम्॥
इदमन्नं वायसेभ्यो न मम।

(४) देवादिबलि (पत्तेपर)—सव्य होकर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर देवता आदिके लिये अन्न दे—

ॐ देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसङ्घाः।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्॥
इदमन्नं देवादिभ्यो न मम।

(५) पिपीलिकादिबलि (पत्तेपर)—इसी प्रकार निम्नाङ्कित मन्त्रसे चींटी आदिको बलि दे—

पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या
बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः।
तेषां हि तृप्त्यर्थमिदं मयान्नं
तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु॥
इदमन्नं पिपीलिकादिभ्यो न मम।

पञ्चबलि देनेके बाद एक थालीमें सभी रसोई परोसकर अपसव्य और दक्षिणाभिमुख होकर निम्न संकल्प करे—

अद्यामुक गोत्र अमुकशर्माऽहममुकगोत्रस्य मम पितुः (पितामहस्य मातुः वा) वार्षिकश्राद्धे (महालयश्राद्धे वा) अक्षयतृप्त्यर्थमिदमन्नं तस्मै (तस्यै वा) स्वधा।

उपर्युक्त संकल्प करनेके बाद **'ॐ इदमन्नम्', 'इमा आपः', 'इदमाज्यम्', 'इदं हविः'** इस प्रकार बोलते हुए अन्न, जल, घी तथा पुनः अन्नको दाहिने हाथके अँगूठेसे स्पर्श करे।

पश्चात् दाहिने हाथमें जल, अक्षत आदि लेकर निम्न संकल्प करे—

ब्राह्मण-भोजनका संकल्प—अद्यामुक गोत्र अमुकोऽहं मम पितुः (मातुः वा) वार्षिकश्राद्धे यथासंख्याकान् ब्राह्मणान् भोजयिष्ये।

पञ्चबलि निकालकर कौआके निमित्त निकाला गया अन्न कौआको, कुत्ताका अन्न कुत्ताको और सब गायको देनेके बाद निम्नलिखित मन्त्रसे ब्राह्मणोंके पैर धोकर भोजन कराये।

यत् फलं कपिलादाने कार्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे।
तत्फलं पाण्डवश्रेष्ठ विप्राणां पादसेचने॥

इसे बाद उन्हें अन्न, वस्त्र और द्रव्य-दक्षिणा देकर तिलक करके नमस्कार करे। तत्पश्चात् नीचे लिखे वाक्य यजमान और ब्राह्मण दोनों बोलें—

यजमान—शेषान्नेन किं कर्तव्यम्। (श्राद्धमें बचे अन्नका क्या करूँ?)

ब्राह्मण—इष्टैः सह भोक्तव्यम्। (अपने इष्ट-मित्रोंके साथ भोजन करें।)

इसके बाद अपने परिवारवालोंके साथ स्वयं भी भोजन करे तथा निम्न मन्त्रद्वारा भगवान्‌को नमस्कार करे—

प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥

---

* यदि मन्त्र स्मरण न रहे तो केवल 'गोभ्यो नमः' आदि नाम-मन्त्रसे बलि-प्रदान कर सकते हैं।

जीवत्पुत्रिकाव्रत

[आश्विन कृष्ण अष्टमी]

(डॉ० श्रीराजेन्द्रजी झा, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

आश्विन मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको पुत्रके आयुरारोग्यलाभ तथा सर्वविध कल्याणके लिये जीवत्पुत्रिका—जितिया या जीमूतवाहनव्रतका विधान धर्मशास्त्रकारोंने निर्दिष्ट किया है। प्रायः स्त्रियाँ इस व्रतको करती हैं। प्रदोषव्यापिनी अष्टमीको अङ्गीकार करते हुए आचार्योंने प्रदोषकालमें जीमूतवाहनके पूजनका विधान स्पष्ट शब्दोंमें किया है—

प्रदोषसमये स्त्रीभिः पूज्यो जीमूतवाहनः।

यदि दो दिन प्रदोषव्यापिनी अष्टमी हो तो परदिनको ही ग्राह्य करना चाहिये। फिर यदि सप्तमी उपरान्त अष्टमी हो तो वह भी ठीक है—

सप्तम्यामुदिते सूर्ये परतश्चाष्टमी भवेत्।
तत्र व्रतोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेऽहनि॥

अष्टमी तिथिके बादमें पारणा करनी चाहिये—'**पारणं तु परदिने तिथ्यन्ते कार्यम्।**' (वर्षकृत्य)

पवित्र होकर संकल्पके साथ व्रती प्रदोषकालमें गायके गोमयसे अपने प्राङ्गणको उपलिप्त कर परिष्कृत करे तथा छोटा-सा तालाब भी जमीन खोदकर बना ले। तालाबके निकट एक पाकड़की डाल लाकर खड़ा कर दे। शालिवाहन राजाके पुत्र धर्मात्मा जीमूतवाहनकी कुशनिर्मित मूर्ति जल (या मिट्टी)-के पात्रमें स्थापित कर पीली और लाल रूईसे उसे अलङ्कृत करे तथा धूप, दीप, अक्षत, फूल, माला एवं विविध प्रकारके नैवेद्योंसे पूजन करे। मिट्टी तथा गायके गोबरसे चिल्ली या चिल्होड़िन (मादा चील) और सियारिनकी मूर्ति बनाकर उनके मस्तकोंको लाल सिन्दूरसे भूषित कर दे। अपने वंशकी वृद्धि और प्रगतिके लिये उपवास कर बाँसके पत्रोंसे पूजन करना चाहिये। तदनन्तर व्रत-माहात्म्यकी कथाका श्रवण करना चाहिये।*

अपने पुत्र-पौत्रोंकी लम्बी आयु एवं सुन्दर स्वास्थ्यकी कामनासे महिलाओंको विशेषकर सधवाको इस व्रतका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये।

व्रतमाहात्म्यकी कथा—प्रस्तुत कथाके वक्ता वैशम्पायन ऋषि हैं। बहुत पहले रमणीय कैलासपर्वतके शिखरपर भगवान् शंकर और माता पार्वती प्रसन्नमुद्रामें बैठे हुए थे। परम दयालु माता गौरीने महादेवजीसे पूछा—प्रभो! किस व्रत एवं पूजनसे सौभाग्यशालिनी नारियोंके पुत्र जीवित एवं चिरञ्जीवी बने रहते हैं? कृपया उसके बारेमें और उसकी कथाके विषयमें बतानेका कष्ट करें। त्रिकालज्ञ भगवान् शंकरने जीवत्पुत्रिकाव्रत—जितियाव्रतके विधान, महत्त्व तथा माहात्म्यकी कथा बताते हुए कहा—

दक्षिणापथमें समुद्रके निकट नर्मदाके तटपर काञ्चनावती नामकी एक सुन्दर नगरी थी। वहाँके राजा मलयकेतु थे। उनके पास चतुरङ्गिणी सेना थी। उनकी नगरी धन-धान्यसे परिपूर्ण थी। नर्मदाके पश्चिम तटपर बाहूट्टार नामक एक मरुस्थल था। वहाँ घाघू नामवाला एक पाकड़का पेड़ था। उसकी जड़में एक बड़ा-सा कोटर था। उसमें छिपकर एक सियारिन रहती थी। उसकी डालपर घोंसला बनाकर एक चिल्होड़िन भी रहती थी। रहते-रहते दोनोंमें मैत्री हो गयी थी। संयोगवश उसी नदीके किनारे उस नगरकी सधवा स्त्रियाँ अपने पुत्रोंके आयुष्य और कल्याणकी कामनासे जीमूतवाहनका व्रत एवं पूजन कर रही थीं। उनसे सब कुछ

---

* आश्विने कृष्णपक्षे तु या भवेदष्टमी तिथिः। शालिवाहनराजस्य पुत्रं जीमूतवाहनम्॥
पूजयन्ति स्त्रियस्तस्यां पुत्रकामाः सहर्षिताः। देवं दर्भमयं कृत्वा स्थापयेद्वारिभाजने॥
पीतलोहितवर्णैश्च कार्पासास्थिभिरेव च। नानावर्णपताकाभिर्गन्धपुष्पादिभिस्तथा॥
प्रकल्प्य प्राङ्गणे कोष्ठं कृत्वा पुष्करिणीं ततः। तत्रैव पर्कटीशाखा धर्तव्या जलसन्निधौ॥
चिल्ली शृगाली कर्तव्या गोमयैर्मृत्तिकादिभिः। ते उभे तत्र धर्तव्ये सिन्दूरारुणमस्तके॥
यथोपचारैः पूजाभिस्तं देवं विप्ररूपिणम्। पूजयित्वा कथामेनां याः शृण्वन्ति वराः स्त्रियः॥
उपवासः प्रकुर्वन्ति ताः स्युः पूर्णमनोरथाः। वंशपत्रेण कर्तव्या पूजा वंशविवृद्धये॥

जानकर चिल्होड़िन और सियारिनने भी व्रत करनेका संकल्प कर लिया। व्रत करनेके कारण भूख लगनी स्वाभाविक थी। चिल्होड़िनने भूख सहनकर रात बिता ली परंतु सियारिन भूखसे छटपटाने लगी। वह नदीके किनारे जाकर एक अधजले मुर्देका मांस भरपेट खाकर और पारणाके लिये मांसके कुछ टुकड़े लेकर फिर कोटरमें आ गयी। डालके ऊपरसे चिल्होड़िन सब कुछ देख रही थी। चिल्होड़िनने नगरकी सधवा औरतोंसे अङ्कुरित केलाय (मटर या अकुड़ी) लेकर पारणा ठीकसे कर ली। सियारिन बहुत धूर्त थी और चिल्होड़िन अधिक सात्त्विक विचारवाली थी।

कुछ समयके बाद दोनोंने प्रयाग आकर तीर्थसेवन शुरू किया। वहींपर चिल्होड़िनने 'मैं महाराजके महामन्त्री बुद्धिसेनकी पत्नी बनूँगी'—इस संकल्प एवं मनोरथके साथ अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। उधर सियारिनने भी—'मैं महाराज मलयकेतुकी रानी बनूँगी'—इस मनोरथ और संकल्पके साथ अपने प्राणोंका त्याग किया। दोनोंका जन्म भास्कर नामक वेदज्ञ ब्राह्मणके घरमें हुआ। दोनों कन्याओंमें नागकन्या और देवकन्याके असाधारण गुण लक्षित हो रहे थे। चिल्होड़िनका नाम जहाँ शीलवती रखा गया वहीं सियारिनका नाम कर्पूरावती। शीलवतीका विवाह मन्त्री (बुद्धिसेन)-से हुआ और कर्पूरावतीका विवाह राजा मलयकेतुके साथ। राजा और मन्त्री दोनों धर्मात्मा एवं न्यायवादी थे। प्रजाको राजा अपने पुत्रके समान मानता था और प्रजा भी उन्हें खूब चाहती थी।

समयके अनुसार शीलवती और कर्पूरावतीको सात-सात पुत्र हुए। शीलवतीके सातों पुत्र जीवित थे पर कर्पूरावतीके सातों पुत्र एक-एक करके कालके गालमें समाते गये। कर्पूरावती बहुत दुःखी रहती थी। उधर शीलवतीके सभी पुत्र हमेशा राजाकी सेवामें हाजिर रहते थे। वे सब बड़े विनयी और राजाके आज्ञाकारी थे। रानी उन्हें देखकर जलती रहती थी। उसे ईर्ष्या होती थी कि शीलवतीके सभी पुत्र जीवित हैं।

एक दिन रानीने रूठकर खाना-पीना और बोलना भी बंद कर लिया, राजासे दूर किसी एकान्त कोठरीमें पड़ी हुई थी। राजाको जब यह मालूम हुआ तो वे उसे मनाने गये तब उसने उनकी एक भी नहीं सुनी। आखिर परेशान राजाने कहा कि तुम जो कुछ कहोगी, मैं वही करूँगा। तुम उठो और खाना खाओ। यह सुनकर उसने कहा कि यदि यह सत्य है तो अमुक दरवाजेके पास एक चक्र रखा हुआ है। आप शीलवतीके सभी पुत्रोंका सिर काटकर ला दीजिये। ऐसा नहीं चाहते हुए भी राजाने आखिर वही किया जो रानी चाहती थी। रानीने सात (बाँसके बने) डाला या बरतनमें एक-एक सिर रखकर और उसे कपड़ेसे ढककर शीलवतीके पास भेजा। इधर जीमूतवाहनने उनकी गर्दनको मिट्टीसे जोड़कर एवं अमृत छिड़ककर उन्हें जीवित कर दिया। सौगातके रूपमें भेजे गये सभी सिर तालके फल बन गये। यह जानकर रानी तो और आगबबूला हो गयी। वह क्रोधके मारे अत्यन्त कुपित हो गयी और डंडा लेकर शीलवतीको मारने पहुँच गयी, लेकिन भगवान्‌की दयासे शीलवतीको देखते ही उसका क्रोध शान्त हो गया। शीलवती उसे लेकर नर्मदाके तटपर चली गयी। दोनोंने स्नान किया। बादमें शीलवतीने पूर्वजन्मकी याद दिलाते हुए उसे बताया कि तुमने सियारिनके रूपमें व्रतको भंग कर मुर्दा खा लिया था। उसे सब कुछ याद आ गया। ग्लानि और संतापसे उसके प्राण निकल गये। राजाको जब यह मालूम हुआ तो उसने अपना राज्य मन्त्रीको सौंप दिया और स्वयं तप करने चला गया। शीलवती अपने पति और पुत्रोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहने लगी। जितियाव्रतके प्रभावसे उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये।

इस प्रकार माहात्म्यकी कथा बतानेके अनन्तर भगवान् शंकरने कहा कि जो सौभाग्यवती स्त्री जीमूतवाहनको प्रसन्न करनेके लिये व्रत एवं पूजन करती है एवं कथा सुनकर ब्राह्मणको दक्षिणा देती है, वह अपने पुत्रोंके साथ सुखपूर्वक समय बिताकर अन्तमें विष्णुलोक प्रस्थान करती है—

अन्ते च भजते देवि विष्णुलोकं सनातनम्।

शारदीय नवरात्र

[आश्विन शुक्ल प्रतिपदासे नवमीतक]

आश्विनशुक्लकी प्रतिपदासे नवमी तिथितक नवरात्रव्रत होता है। नवरात्र मुख्यरूपसे दो होते हैं—वासन्तिक और शारदीय। वासन्तिकमें विष्णुकी उपासनाका प्राधान्य रहता है और शारदीयमें शक्तिकी उपासनाका। वस्तुतः दोनों नवरात्र मुख्य एवं व्यापक हैं और दोनोंमें दोनोंकी उपासना उचित है। आस्तिक जनता दोनोंकी उपासना करती है। इस उपासनामें वर्ण, जातिका वैशिष्ट्य अपेक्षित नहीं है, अतः सभी वर्ण एवं जातिके लोग अपने इष्टदेवकी उपासना करते हैं। देवीकी उपासना व्यापक है।

दुर्गापूजक प्रतिपदासे नवमीतक व्रत रहते हैं। कुछ लोग अन्न त्याग देते हैं। कुछ एकभुक्त रहकर शक्ति-उपासना करते हैं। कुछ 'श्रीदुर्गासप्तशती' का सकाम या निष्कामभावसे पाठ करते हैं। संयत रहकर पाठ करना आवश्यक है, अतः यम-नियमका पालन करते हुए भगवती दुर्गाका आराधन या पाठ करना चाहिये। नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करनेवाले जितने संयत, नियमित, अन्तर्बाह्य शुद्ध रहेंगे उतनी ही मात्रामें उन्हें सफलता मिलेगी—यह निःसंदिग्ध है।

प्रतिपदासे नवरात्र प्रारम्भ होता है। अमावास्यायुक्त प्रतिपदा ठीक नहीं मानी जाती। नौ रात्रियोंतक व्रत करनेसे यह 'नवरात्रव्रत' पूर्ण होता है। तिथिकी ह्रास-वृद्धिसे इसमें न्यूनाधिकता नहीं होती। प्रारम्भ करते समय यदि चित्रा और वैधृतियोग हो तो उनकी समाप्ति होनेके बाद व्रत प्रारम्भ करना चाहिये। परंतु देवीका आवाहन, स्थापन और विसर्जन—ये तीनों प्रातःकालमें होने चाहिये। अतः यदि चित्रा, वैधृति अधिक समयतक हों तो उसी दिन अभिजित् मुहूर्त (दिनके आठवें मुहूर्त यानी दोपहरके एक घड़ी पहलेसे एक घड़ी बादतकके समय)-में आरम्भ करना चाहिये।

आरम्भिक कर्तव्य

आरम्भमें पवित्र स्थानकी मिट्टीसे वेदी बनाकर उसमें जौ, गेहूँ बोये। फिर उनके ऊपर अपनी शक्तिके अनुसार बनवाये गये सोने, ताँबे आदि अथवा मिट्टीके कलशको विधिपूर्वक स्थापित करे। कलशके ऊपर सोना, चाँदी, ताँबा, मृत्तिका, पाषाण अथवा चित्रमयी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करे। मूर्ति यदि कच्ची मिट्टी, कागज या सिन्दूर आदिसे बनी हो और स्नानादिसे उसमें विकृति होनेकी आशंका हो तो उसके ऊपर शीशा लगा दे। मूर्ति न हो तो कलशके पीछे स्वस्तिक और उसके दोनों पार्श्वोंमें त्रिशूल बनाकर दुर्गाजीका चित्र, पुस्तक तथा शालग्रामको विराजितकर विष्णुका पूजन करे। पूजन सात्त्विक हो, राजस और तामस नहीं। नवरात्रव्रतके आरम्भमें स्वस्तिवाचन-शान्तिपाठ करके संकल्प करे और तब सर्वप्रथम गणपतिकी पूजा कर मातृका, लोकपाल, नवग्रह एवं वरुणका सविधि पूजन करे। फिर प्रधानमूर्तिका षोडशोपचार पूजन करना चाहिये। अपने इष्टदेव—राम, कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण या भगवती दुर्गादेवी आदिकी मूर्ति ही प्रधानमूर्ति कही जाती है। पूजन वेद-विधि या सम्प्रदाय-निर्दिष्ट विधिसे होना चाहिये। दुर्गादेवीकी आराधना-अनुष्ठानमें महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वतीका पूजन तथा मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत निहित 'श्रीदुर्गासप्तशती'का पाठ मुख्य अनुष्ठेय कर्तव्य है।

पाठविधि

'श्रीदुर्गासप्तशती' पुस्तकका—

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥

—इस मन्त्रसे पञ्चोपचार पूजन कर यथाविधि पाठ करे।

देवीव्रतमें कुमारी-पूजन परम आवश्यक माना गया है। सामर्थ्य हो तो नवरात्रभर प्रतिदिन, अन्यथा समाप्तिके दिन नौ कुमारियोंके चरण धोकर उन्हें देवीरूप मानकर गन्ध-पुष्पादिसे अर्चन कर आदरके साथ यथारुचि मिष्टान्न भोजन कराना चाहिये एवं वस्त्रादिसे सत्कृत करना चाहिये। शास्त्रोंमें आया है कि एक कन्याकी पूजासे ऐश्वर्यकी, दोकी पूजासे भोग और मोक्षकी, तीनकी अर्चनासे धर्म, अर्थ, काम—त्रिवर्गकी, चारकी अर्चनासे राज्यपदकी, पाँचकी पूजासे विद्याकी, छ:की पूजासे षट्कर्मसिद्धिकी, सातकी पूजासे राज्यकी, आठकी अर्चासे सम्पदाकी और नौ कुमारी कन्याओंकी पूजासे पृथ्वीके प्रभुत्वकी प्राप्ति होती है। कुमारी-पूजनमें दस वर्षतककी कन्याओंका अर्चन विहित है। दस वर्षसे ऊपरकी आयुवाली कन्याका कुमारी-पूजनमें वर्जन किया गया है। दो वर्षकी कन्या कुमारी, तीन वर्षकी त्रिमूर्तिनी, चार वर्षकी कल्याणी, पाँच वर्षकी रोहिणी, छ: वर्षकी काली, सात वर्षकी चण्डिका, आठ वर्षकी शाम्भवी, नौ वर्षकी दुर्गा और दस वर्षवाली सुभद्रा-स्वरूपा होती है।

दुर्गा-पूजामें प्रतिदिनका वैशिष्ट्य रहना चाहिये। प्रतिपदाको केशसंस्कारक द्रव्य—आँवला, सुगन्धित तैल आदि केश-प्रसाधन संभार, द्वितीयाको बाल बाँधने-गूँथनेवाले रेशमी सूत, फीते आदि, तृतीयाको सिन्दूर और दर्पण आदि, चतुर्थीको मधुपर्क, तिलक और नेत्राञ्जन, पञ्चमीको अङ्गराग-चन्दनादि एवं आभूषण, षष्ठीको पुष्प तथा पुष्पमालादि समर्पित करे। सप्तमीको ग्रहमध्यपूजा, अष्टमीको उपवासपूर्वक पूजन, नवमीको महापूजा और कुमारीपूजा करे। दशमीको पूजनके अनन्तर पाठकर्ताकी पूजा कर दक्षिणा दे एवं आरतीके बाद विसर्जन करे। श्रवण-नक्षत्रमें विसर्जनाङ्ग-पूजन प्रशस्त कहा गया है। दशमांश हवन, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण-भोजन कराकर व्रतकी समाप्ति करे।

विजयादशमी (दशहरा)

[आश्विन शुक्ल दशमी]
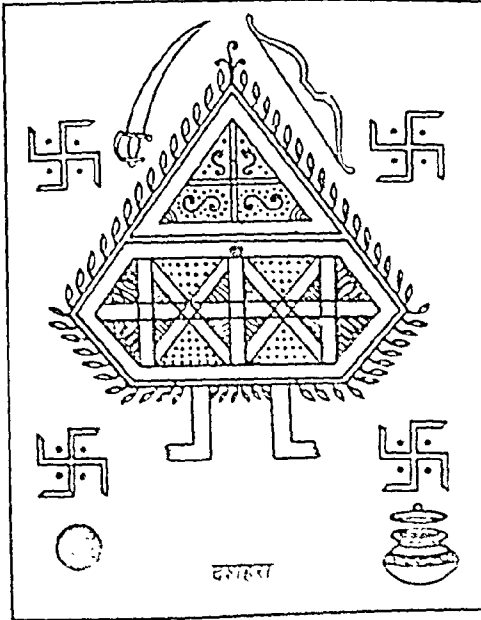
ईषमाससिता दशमी विजया शुभकर्मसुसिद्धिकरी कथिता।
श्रवणर्क्षयुता नितरां शुभगा नृपतेस्तु गमे जयसिद्धिकरी।
(मुहूर्तचिन्तामणि)

क्षत्रियोंका यह बहुत बड़ा पर्व है। इस दिन ब्राह्मण-लोग सरस्वतीपूजन एवं क्षत्रिय शस्त्रपूजन करते हैं—दुर्गा-विसर्जन, अपराजिता-पूजन, विजय-प्रयाण, शमीपूजन तथा नवरात्रपारण इस पर्वके महान् कर्म हैं। इस दिन संध्याके समय नीलकण्ठ पक्षीका दर्शन शुभ माना जाता है।

इस दिन प्रात:काल देवीका विधिवत् पूजन करके नवमीविद्धा दशमीमें विसर्जन तथा नवरात्रका पारण करना चाहिये। इस दिन विधिपूर्वक अपराजितादेवीके साथ जया तथा विजया देवियोंके पूजनका भी विधान है और सायंकालमें शमीपूजन तथा सीमोल्लंघनका विधान है। भारतवर्षके कोने-कोनेमें इस पर्वमें कुछ दिन पूर्व ही रामलीलाएँ —

लोग इसी दिन अपनी विजययात्रा आरम्भ करते थे। वैश्य अपने बही-खातोंका पूजन भी इस दिन किया करते हैं।

राजस्थान आदि कुछ प्रदेशोंकी परम्पराके अनुसार इस दिन घरोंमें भी गेरूसे दशहरा माँडकर जल, रोली और चावलसे पूजा की जाती है। पूजनमें चावल, मूली तथा गुबारफली चढ़ायी जाती है और दीप, धूपसे आरती होती है। दशहरापर जो दो गोबरकी हाँड़ी रखी जाती हैं, उनमेंसे एकमें तो रुपया तथा दूसरीमें फल, रोली एवं चावल रखकर दोनों हाँड़ियोंको ढँक दिया जाता है। दीपक जलाकर परिक्रमा देकर दण्डवत् किया जाता है। थोड़ी देर बाद हाँड़ीमेंसे रुपया निकालकर आलमारीमें रख लिया जाता है, बही-बसनेकी भी पूजा करके रोली, चावल चढ़ाया जाता है। बहियोंपर नवरात्रका नवयवाङ्कुर (जवारा) भी चढ़ाया जाता है।

शारदीय नवरात्रपूजा-विजयादशमी-शरत्पूर्णिमा

(आचार्य श्रीआद्याचरणजी झा)

शारदीय नवरात्र, विजयादशमी और शरत्पूर्णिमा—ये तीनों पर्व परस्पर सूत्रमें आबद्ध हैं। अतएव 'आश्विन शुक्ल प्रतिपदा'से पूर्णिमातकको शास्त्रोंमें देवी-पक्ष कहा गया है।

आश्विन कृष्ण प्रतिपदासे अमावास्यातकको 'पितृपक्ष' कहा गया है। इसलिये पहले पितरोंके श्राद्ध-तर्पणके उपरान्त 'देवी-पक्ष' प्रारम्भ होता है। माता-पिताके प्रसन्न होनेसे सभी देवता प्रसन्न होते हैं।

आश्विन कृष्ण अमावास्या 'महालया अमावास्या' शब्दसे विख्यात है। इसी तिथिको पहले 'पितृकर्म' सम्पन्न होते हैं तथा उसके बाद 'देवी-पक्ष' का प्रारम्भ होता है। यह '*संगम तिथि*' तीर्थस्वरूप है। महालयाकी पावन तिथि शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक दोनों है।

सामान्यतः नवरात्र चार हैं। १-चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे दशमीतक, २-आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदासे दशमीतक (इसी नवरात्रके बाद हरिशयनी एकादशी), ३-आश्विन शुक्ल प्रतिपदासे विजयादशमी तक (इसके बाद कार्तिक शुक्ल एकादशी देवोत्थान-प्रबोधिनी एकादशी) तथा ४-माघ शुक्ल प्रतिपदासे दशमीतक सारस्वत-नवरात्र।

इन चारोंमें वासन्तिक नवरात्र चैत्रमें एवं शारदीय नवरात्र आश्विनमें—ये दोनों अति प्रसिद्ध हैं, सर्वत्र आराधनाएँ होती हैं। शेष दो भी शक्ति-पीठोंमें यत्र-तत्र होते हैं।

'शयनाख्य' और 'बोधनाख्य' नामक दो नवरात्र होते हैं, शयनाख्य वासन्ती चैत्रमासीय तथा बोधनाख्य आश्विन-मासीय शारदीय नवरात्र कहलाता है।

रुद्रयामलतन्त्रमें कहा गया है—'**नवशक्तिसमायुक्तां नवरात्रं तदुच्यते**' नौ शक्तियोंसे युक्त होनेसे इसे नवरात्र कहा गया है। '**नवभिः रात्रिभिः सम्पद्यते यः स नवरात्रः।**' नवधा भक्ति, नवग्रह, रामनवमी, सीतानवमी (वैशाख शुक्लनवमी)—ये सभी नौ शब्दोंकी महत्ताके द्योतक हैं।

शयनाख्य चैत्रमासीय नवरात्रसे बोधनाख्य शारदीय नवरात्र अधिक प्रशस्त-व्यापक है। यथा—'*बृहत्सारसिद्धान्त*'-में कहा गया है—

आश्विनस्य सिते पक्षे नानाविधमहोत्सवैः।
प्रसादयेयुः श्रीदुर्गां चतुर्वर्गफलार्थिनः॥

अर्थात् आश्विन शुक्लपक्षमें विशेष महोत्सवोंसे श्रीदुर्गाजीकी पूजा धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—ये चारों फल देनेवाली है।

देवी पार्वती श्रीशङ्करजीसे कहती हैं कि शरत्कालीन नवरात्र-पूजा जो भक्तिपूर्वक करते हैं, उनको मैं प्रसन्न होकर पत्नी, धन, आरोग्य तथा उन्नति प्रदान करती हूँ।

उपर्युक्त विवेचनसे सिद्ध है कि शारदीय नवरात्र-पूजा सीमातीत फलदायिका है। निष्कामोपासक भक्तोंको तो देवी स्वयंको प्राप्त करा देती हैं।

दुर्गा-शब्दार्थ

दैत्यनाशार्थवचनो दकारः परिकीर्तितः।
उकारो विघ्ननाशस्य वाचको वेदसम्मतः॥
रेफो रोगघ्नवचनो गश्च पापघ्नवाचकः।
भयशत्रुघ्नवचनश्चाकारः परिकीर्तितः॥

देवीपुराणके उपर्युक्त वचनोंके अनुसार दुर्गा शब्दमें 'द' कार दैत्यनाशक, 'उ' कार विघ्ननाशक, 'रेफ' रोगनाशक, 'ग' कार पापनाशक तथा 'आ' कार भयशत्रुनाशक है। अतएव दुर्गा '**दुर्गतिनाशिनी**' हैं।

पूजाविधान

प्रतिपदा तिथिको वैदिक, पौराणिक एवं तान्त्रिक

मन्त्रोच्चारणके बाद नवरात्र दुर्गापूजानिमित्त यथाविधि कलश-स्थापन (घट-स्थापन) किया जाता है। इसी कलशपर षष्ठीतक सभी पूजाएँ होती हैं। महासप्तमीके प्रात:कालसे प्रतिमाओं (मूर्तियों)-में पत्रिका-प्रवेशके साथ प्राण-प्रतिष्ठा करके विजयादशमीतक पूजाका विधान है।

वैसे शारदीय नवरात्र दुर्गापूजा सम्पूर्ण भारतमें सर्वत्र होती है, किंतु 'मिथिलाञ्चल' एवं 'बंगाल' में विशालरूपमें महालयासे ही होती है जो शरत्पूर्णिमाको सुसम्पन्न होती है। यही 'देवीपक्ष' कहलाता है।

(क) वैयक्तिक अथवा सामाजिक रूपमें पूजाका प्रारम्भ सामान्यत: संकल्पपूर्वक घट-स्थापनसे होता है।

(ख) दो हाथ, डेढ़ हाथ, न्यूनतम एक हाथकी वेदी चतुष्कोण या वर्गाकार निर्मित कर उसे गायके गोबर, गङ्गाजलसे अभिषिक्त करके उसपर विहित मन्त्रोंद्वारा गङ्गाजलसे पूर्ण कलश रखा जाता है।

(ग) यह कलश सोने, चाँदी, ताँबे अथवा पीतलका भी होता है। इनके अभावमें मिट्टीके पात्रका प्रयोग होता है। यदि कलश-स्थापनके लिये स्थान प्रस्तर-निर्मित हो तो उसे बालुकासे पूर्ण करके उसीपर कलश-स्थापन होता है; क्योंकि उसी बालुकापर 'जयन्ती'—जौसहित सप्तधान्य विहित मन्त्रोंसे छींटकर प्रादुर्भूत होती है। जिसे विजयादशमीके दिन अतिविशिष्ट पूजोपरान्त काटा जाता है। देवताओंको समर्पित करके सभी उसे मस्तकपर धारण करते हैं।

(घ) कलशमें विविध निर्धारित पदार्थोंको भिन्न-भिन्न मन्त्रोंसे दिया जाता है। यहाँ केवल मन्त्रपूत गङ्गाजलपूरित घटमें प्रदेय पदार्थोंके नाम दिये जा रहे हैं—

(१) पञ्चरत्न—स्वर्ण, हीरा, पद्मराग, मरकत, नीलमणि (इनके अभावमें कम-से-कम एक रुपयाभर एक अशर्फी—स्वर्णखण्ड)। (२) स्वर्ण, (३) चाँदी, (४) ताम्र, (५) सप्तमृत्तिका, (६) पञ्चपल्लव—आम्र, पीपल, वट, पाकड़ और गूलर, (७) नारिकेल, (८) सर्वौषधि और (९) रक्तवस्त्र।

ये सभी पदार्थ इन वस्तुओंके लिये निर्धारित वेदमन्त्रोंद्वारा ही कलशमें देय हैं।

इस तरह घट-स्थापन करके उसी घटपर आगे एक रौप्य या ताम्र अथवा कांस्यका बड़ा पात्र रखकर विशाल पूजा प्रारम्भ होती है।

(ङ) पञ्चदेव-पूजनके साथ ही भगवती दुर्गाकी अतिविस्तृत षोडशोपचार पूजा, दुर्गाके सभी अङ्ग, वाहन, परिकर, नवचण्डिका, नवदुर्गा, नवग्रह, दशदिक्पाल, षोडश-मातृका आदिका भी पृथक् मन्त्रोंसे आवाहन—पञ्चोपचार, पुष्पाञ्जलिसे पूजा होती है।

(च) तदनन्तर पुष्पाञ्जलि और आरती होती है। इनके भी बहुत-से मन्त्र हैं।

नैवेद्यमें विविध फल, विविध मिष्टान्न, मखानाका पायस, मालपूआ, नारिकेल, नारिकेलोदक, मधुपर्ककी सामग्रियाँ प्रतिदिन प्रात:कालीन एवं सायंकालीन पूजामें आवश्यक हैं, इसी रूपमें षष्ठीतक पूजा होती है।

(छ) महासप्तमी, महाष्टमीकी अर्धरात्रिमें महानिशापूजा, महानवमीकी त्रिशूलिनी-पूजा एवं कर्मान्तमें हवन होता है। न्यूनतम नौ व्यक्तियोंद्वारा श्रीदुर्गासप्तशतीपाठ, नवार्णमन्त्रजप, श्रीसूक्त तथा वैदिक मन्त्रोंसे हवन होता है। हवनसे पूर्व महानवमीको हनुमद्ध्वजारोपण किया जाता है; क्योंकि हनुमान्जीको विजयपताका-ध्वजके अर्पणके विना रामका प्रस्थान सम्भव नहीं है।

(ज) विजयादशमीके प्रात:काल 'अपराजिता-लता'-का पूजन, अति विशिष्ट पूजा-प्रार्थनाके बाद विसर्जन, जयन्ती-धारण, अपराजिता-धारण आदि कृत्य होते हैं। इसके बाद उक्त कलश-जलसे उसी पञ्चपल्लवसे महाभिषेक किया जाता है।* इस तरह विजयादशमी-कृत्य सुसम्पन्न होता है।

शारदीय नवरात्र—दुर्गा-पूजाका प्रारम्भिक इतिहास

(१) सर्वप्रथम भगवान् श्रीरामचन्द्रने इस शारदीय नवरात्र-पूजाका प्रारम्भ समुद्रतटपर किया था। अतएव यह राजस-पूजा है। इसमें जितना सम्भव हो उपर्युक्त पूजा-सामग्रियोंके साथ पूजा-विधान है। विविध प्रकारके प्रभूत नैवेद्य यथासम्भव उत्सर्ग करना है।

(२) इसके बाद 'विजयादशमी' के दिन श्रीरामचन्द्रजीने लङ्का-विजयके लिये प्रस्थान किया—

अथ विजयदशम्यामाश्विने शुक्लपक्षे
दशमुखनिधनाय प्रस्थितो रामचन्द्रः।
द्विरदविधुमहाब्जैर्यूथनाथैस्तथाऽन्यैः
कपिभिरपरिमाणैर्व्याप्तभूदिक्खचक्रैः॥

(हनुमन्नाटक ७।२)

अर्थात् आश्विन शुक्लपक्षकी विजयादशमी तिथिको दशमुख रावण-वधके लिये श्रीरामचन्द्रजीने प्रस्थान किया। उनके साथ द्विरद, विधु, महाब्ज नामके कपिसेनापति तथा समग्र पृथ्वी, दिशा एवं गगन मण्डलोंको व्याप्त करते हुए असंख्य सैन्य थे। इससे यह प्रमाणित होता है कि श्रीरामचन्द्रजीने सर्वप्रथम शारदीय नवरात्र-पूजा की।

महापूजाकी वैज्ञानिकता

(१) **शरद्वसन्तनामानौ दानवौ द्वौ भयङ्करौ।**
तयोरुपद्रवशाम्यर्थमियं पूजा द्विधा मता॥

अर्थात् शरद् एवं वसन्त नामके दो भयंकर दानव विभिन्न रोगोंके कारण हैं। इन ऋतु-परिवर्तनोंके समय विभिन्न रोग—महामारी, ज्वर, शीतला (बड़ी-छोटी), कफ, खाँसी आदिके निवारणार्थ शारदीय तथा वासन्ती—ये दो नवरात्र दुर्गा-पूजाके लिये प्रशस्त हैं।

(२) विधिपूर्वक स्थापित घट—कलशमें प्रदत्त द्रव्यों, पदार्थोंको देखनेसे स्पष्ट होगा कि नौ दिनोंतक कलशमें दिये गये उन पदार्थोंसे कलशजल अमृतमय हो जाता है और उस अमृतरूप जलसे महामन्त्रोंद्वारा अभिषेक किया जाता है। वह *सर्वपाप—रोगविनाशक* है। सुरक्षित ताम्रपात्रमें रखा हुआ यह अमृतमय जल तीन महीनेके बाद सर्वरोगनाशक महौषधि हो जाता है। इसका आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सकीय परीक्षण हो चुका है।

पूजाके कलशपर स्थापित नारिकेल एवं नारिकेलजलसे शरत्पूर्णिमाको सायंकालीन महालक्ष्मी पूजा होती है — रात्रिका नाम **'को जागर्ति'** (कोजागरी) है। मिथिल बंगालमें इस रात्रि-जागरणका अति विशिष्ट महत्त्व है

(३) द्वितीया तिथिसे रेमन्त (अश्व)-पूजा नवम होती है। उसके गलेमें विभिन्न जड़ी-बूटियोंकी पं बाँधी जाती है। अपराजिता-लता पुष्प, द्रोणपुष्प आि आयुर्वेदीय अमोघ औषधियाँ हैं। अब एलोपैथिक पद्ध भी इन दोनों पुष्पों और उनकी जड़ोंसे प्राणरक्षक औष निर्मित होती हैं, हो रही हैं।

औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये।
सरितःसागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः। एते त्वामभिषिञ्चन्तु *सर्वकामार्थसिद्धये*॥
ॐ क्षेमंकरी *महाकाली चानिरुद्धा सरस्वती*। मातङ्गी चान्नपूर्णा च राजराजेश्वरी तथा।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये॥ ॐ उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका।
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका॥ उग्रदंष्ट्रा महादंष्ट्रा शुभ्रदंष्ट्रा कपालिनी॥
भीमनेत्रा विशालाक्षी मङ्गला विजया जया। एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये॥
ॐ असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्तसंज्ञकः। कपाली भीषणश्चैव संहारश्चाष्टभैरवाः॥
पुरुषः प्रकृतिश्चैव विकारश्चैव षोडश। एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये॥
नश्यन्तु प्रेतकूष्माण्डा राक्षसा दानवाश्च ये। विशाला गुह्यका भूता अभिषेके च ताडिताः॥
रोगाः शोकाश्च दौर्बल्यं दारिद्र्यं चित्तविक्रिया। नश्यन्तु चापदः सर्वाः सम्पदः सन्तु सुस्थिराः।
अभिषेकेन चानेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः॥
। ॐ अमृताभिषेकोऽस्तु।

कोजागरव्रत

[आश्विन पूर्णिमा]

आश्विनमासकी पूर्णिमाको भगवती महालक्ष्मी रात्रिमें यह देखनेके लिये घूमती हैं कि कौन जाग रहा है। जो जाग रहा है उसे धन देती हैं। लक्ष्मीजीके '**को जागर्ति**' कहनेके कारण इस व्रतका नाम कोजागर पड़ा है—

निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी।
जगति भ्रमते तस्यां लोकचेष्टावलोकिनी॥
तस्मै वित्तं प्रयच्छामि यो जागर्ति महीतले॥

इस व्रतमें निशीथव्यापिनी पूर्णिमा ग्रहण करनी चाहिये तथा ऐरावतपर आरूढ इन्द्र और महालक्ष्मीका पूजन करके उपवास करना चाहिये। रात्रिके समय घृतपूरित और गन्ध-पुष्पादिसे पूजित एक सौ या यथाशक्ति अधिक दीपकोंको प्रज्वलित कर देवमन्दिरों, बाग-बगीचों, तुलसी, अश्वत्थवृक्षोंके नीचे तथा भवनोंमें रखना चाहिये।

प्रातःकाल होनेपर स्नानादि करके इन्द्रका पूजन कर ब्राह्मणोंको घी-शक्करमिश्रित खीरका भोजन कराकर वस्त्रादिकी दक्षिणा और स्वर्णके दीपक देनेसे अनन्त फल प्राप्त होता है।

इस दिन श्रीसूक्त, लक्ष्मीस्तोत्रका पाठ ब्राह्मणद्वारा कराकर कमलगट्टा, बेल या पञ्चमेवा अथवा खीरद्वारा दशांश हवन कराना चाहिये।

कथा—मगध देशमें वलित नामक एक अयाचकव्रती ब्राह्मण था। उसकी पत्नी चण्डी अति कर्कशा थी। वह ब्राह्मणको रोज ताने देती कि मैं किस दरिद्रके घर आ गयी हूँ। वह सम्पूर्ण लोकमें पतिकी निन्दा ही किया करती थी। पतिके विपरीत आचरण करना ही उसने अपना धर्म बना लिया था। वह पापिनी रोज पतिको राजाके यहाँसे चोरी करके धन लानेको उकसाया करती थी।

एक बार श्राद्धके समय उसने पिण्डोंको उठाकर कुएँमें फेंक दिया। इससे अत्यन्त दुःखित होकर ब्राह्मण जंगलमें चला गया, जहाँ उसे नागकन्याएँ मिलीं। उस दिन आश्विनमासकी पूर्णिमा थी। नागकन्याओंने ब्राह्मणको रात्रिजागरण कर लक्ष्मीजीको प्रसन्न करनेवाला '**कोजागरव्रत**' करनेको कहा। कोजागरव्रतके प्रभावसे ब्राह्मणके पास अतुल धन-सम्पत्ति हो गयी। भगवती लक्ष्मीकी कृपासे उसकी पत्नी चण्डीकी भी मति निर्मल हो गयी और वे दम्पति सुखपूर्वक रहने लगे।

शरत्पूर्णिमा

आश्विनमासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा शरत्पूर्णिमा कहलाती है। इस व्रतमें प्रदोष और निशीथ दोनोंमें होनेवाली पूर्णिमा ली जाती है। यदि पहले दिन निशीथव्यापिनी और दूसरे दिन प्रदोषव्यापिनी न हो तो पहले दिन व्रत करना चाहिये।

शरत्पूर्णिमाकी रात्रिमें चन्द्रमाकी चाँदनीमें अमृतका निवास रहता है, इसलिये उसकी किरणोंसे अमृतत्व और आरोग्यकी प्राप्ति सुलभ होती है।

व्रत-विधान—इस दिन प्रातःकाल अपने आराध्य देवको सुन्दर वस्त्राभूषणसे सुशोभित करके उनका यथाविधि षोडशोपचार पूजन करना चाहिये। अर्धरात्रिके समय गो-दुग्धसे बनी खीरका भगवान्‌को भोग लगाना चाहिये। खीरसे भरे पात्रको रातमें खुली चाँदनीमें रखना चाहिये। इसमें रात्रिके समय चन्द्रकिरणोंके द्वारा अमृत गिरता है। पूर्ण चन्द्रमाके मध्याकाशमें स्थित होनेपर उनका पूजन कर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये।

इस दिन काँस्यपात्रमें घी भरकर सुवर्णसहित ब्राह्मणको दान देनेसे मनुष्य ओजस्वी होता है। अपराह्णमें हाथियोंका नीराजन करनेका भी विधान है।

भगवान् श्रीकृष्णने इसी तिथिको रासलीला की थी। इसलिये व्रजमें इस पर्वको विशेष उत्साहके साथ मनाया जाता है। इसे '**रासोत्सव**' या '**कौमुदी-महोत्सव**' भी कहते हैं।

कार्तिकमासके व्रतपर्वोत्सव—

कार्तिकमासकी महिमा

(डॉ० श्रीउपेन्द्रविनायकजी सहस्त्रबुद्धे)

सृष्टिके मूल सूर्यकी राश्यान्तर स्थितियोंके आधारपर दक्षिणायन और उत्तरायणका विधान है। भगवान् नारायणके शयन और प्रबोधनसे चातुर्मास्यका प्रारम्भ और समापन होता है। उत्तरायणको देवकाल और दक्षिणायनको आसुरीकाल माना गया है। दक्षिणायनमें देवकाल न होनेसे सतगुणोंके क्षरणसे बचने और बचानेके लिये उपासना तथा व्रत-विधान हमारे शास्त्रोंमें वर्णित है। कर्कराशिपर सूर्यके आगमनके साथ ही दक्षिणायन कालका प्रारम्भ हो जाता है और कार्तिकमास इसी दक्षिणायन और चातुर्मास्यकी अवधिमें ही उपस्थित होता है। पुराणादि शास्त्रोंमें कार्तिकमासका विशेष महत्त्व निर्दिष्ट है। हर मासका यूँ तो अलग-अलग महत्त्व है, मगर व्रत एवं तपकी दृष्टिसे कार्तिककी बहुत महिमा बतायी गयी है—

मासानां कार्तिकः श्रेष्ठो देवानां मधुसूदनः।
तीर्थं नारायणाख्यं हि त्रितयं दुर्लभं कलौ॥

(स्कन्दपु० वै० खं० का० मा० १।१४)

भाव यह है कि भगवान् विष्णु एवं विष्णुतीर्थके सदृश ही कार्तिकमासको श्रेष्ठ और दुर्लभ कहा गया है। कार्तिकमास कल्याणकारी मास माना जाता है।

एक दूसरे वचनमें कहा गया है कि कार्तिकके समान दूसरा कोई मास नहीं, सत्ययुगके समान कोई युग नहीं, वेदके समान कोई शास्त्र नहीं और गङ्गाजीके समान कोई तीर्थ नहीं है—

न कार्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम्॥
न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्।

(स्कन्दपु० वै० का० मा० १।३६-३७)

सामान्यरूपसे तुलाराशिपर सूर्यनारायणके आते ही कार्तिकमास प्रारम्भ हो जाता है।

कार्तिकका माहात्म्य पद्मपुराण तथा स्कन्दपुराणमें बहुत विस्तारसे उपलब्ध है। कार्तिकमासमें स्त्रियाँ ब्राह्ममुहूर्तमें स्नानकर राधा-दामोदरकी पूजा करती हैं।

कलियुगमें कार्तिकमास-व्रतको मोक्षके साधनके रूपमें दर्शाया गया है। पुराणोंके मतानुसार इस मासको चारों पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको देनेवाला माना गया है। स्वयं नारायणने ब्रह्माको, ब्रह्माने नारदको और नारदने महाराज पृथुको कार्तिकमासके सर्वगुणसम्पन्न माहात्म्यके संदर्भमें बताया है।

इस संसारमें प्रत्येक मनुष्य सुख, शान्ति और परम आनन्द चाहता है। कोई भी यह नहीं चाहता कि उसे अथवा उसके परिवारजनोंको किसी तरहका कोई कष्ट, दुःख एवं अशान्तिका सामना करना पड़े। परंतु प्रश्न यह है कि दुःखोंसे मुक्ति कैसे मिले? हमारे शास्त्रोंमें संत्राससे मुक्ति दिलानेहेतु कई उपाय निर्दिष्ट हैं, उनमें कार्तिकमासके स्नान-व्रतकी अत्यन्त महिमा बतायी गयी है और बताया गया है कि इस मासका स्नान-व्रत लेनेवालोंको कई संयम, नियमोंका पालन करना चाहिये तथा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान्‌की आराधना करनी चाहिये। कार्तिकमें पूरे माह ब्राह्ममुहूर्तमें किसी नदी, तालाब, नहर या पोखरमें स्नानकर भगवान्‌की पूजा की जाती हैं।

इस मासमें व्रत करनेवाली स्त्रियाँ अक्षयनवमीको आँवला-वृक्षके नीचे भगवान् कार्तिकेयकी कथा सुनती हैं। तदुपरान्त जहाँ ब्राह्मणको अन्न-धन दानमें दिये जाते हैं, वहीं भतुआके अंदर गुप्तदान भी दिया जाता है। इसके साथ ही कुँआरों-कुँआरियों एवं ब्राह्मणोंको आँवला-वृक्षके नीचे विधिवत् भोजन कराया जाता है। वैसे तो पूरे कार्तिकमासमें दान देनेका विधान है। कहीं-कहीं तो अक्षयनवमीके दिन मेला भी लगता है।

कार्तिकमास कई अर्थोंमें अन्य मासोंसे अधिक महत्त्व रखता है। इस मासकी अमावास्याको देशभरमें प्रकाशपर्व मनानेकी प्रथा है। इस प्रकाशपर्वको सभी धूमधामसे मनाते हैं। कहा जाता है कि प्रकाशपर्व अथवा दीपावलीके दिन विष्णुप्रिया माता लक्ष्मी सर्वत्र भ्रमण करती हैं और अपने भक्तोंको हर तरहसे धन-धान्यसे परिपूर्ण करती हैं।

स्कन्दपुराणके वैष्णवखण्डमें कार्तिकव्रतके माहात्म्यके विषयमें कहा गया है—

रोगापहं पातकनाशकृत्परं सद्बुद्धिदं पुत्रधनादिसाधकम्।
मुक्तेर्निदानं नहि कार्तिकव्रताद् विष्णुप्रियादन्यदिहास्ति भूतले॥

(स्कन्दपु० वै० का० मा० ५।३४)

इस मासको जहाँ रोगापह अर्थात् रोगविनाशक कहा गया है, वहीं सद्बुद्धि प्रदान करनेवाला, लक्ष्मीका साधक तथा मुक्ति प्राप्त करानेमें सहायक बताया गया है।

कार्तिकमासभर दीपदान करनेकी विधि है। आकाश-दीप भी जलाया जाता है। यह कार्तिकका प्रधान कृत्य है। कार्तिकका दूसरा प्रमुख कृत्य तुलसीवन-पालन है। वैसे तो कार्तिकमें ही नहीं, हर मासमें तुलसीका सेवन कल्याणमय कहा गया है, किंतु कार्तिकमें तुलसी-आराधनाकी विशेष महिमा है। एक ओर आयुर्वेदशास्त्रमें

तुलसी पूजन

तुलसीको रोगहर कहा गया है, वहीं दूसरी ओर यह यमदूतोंके भयसे मुक्ति प्रदान करती है। तुलसी-वन बताया गया है। पाँचवाँ द्विदलवर्जनको माना गया है। उड़द, मूँग, मसूर, चना, मटर, राई वगैरहकी गणना द्विदलमें की जाती है।

द्विदलं तिलतैलं च पक्वान्नं मूल्यदूषितम्।
अवदुष्टं शब्ददुष्टं वर्जयेत् कार्तिकव्रती॥

कार्तिकव्रतीको चना, मटर आदि दालों, तिलका तेल, पक्वान्न, भाव तथा शब्दसे दूषित पदार्थोंका त्याग करना चाहिये।

विष्णुसंकीर्तन कार्तिकमासका मुख्य कृत्य है। संकीर्तनसे वाणीको शुद्धता मिलती है। कलियुगमें तो इसका और भी अधिक महत्त्व है—'**कलौ हरिकीर्तनात्।**' कथाश्रवणसे पापोंका नाश होता है, बुद्धि सदाचारी बनती है। कार्तिकव्रतीको चाहिये कि वह गीता, श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरितमानस आदिका श्रवण करे। इसके अलावा कार्तिकव्रतीके लिये गोदान, अन्नदान, विष्णुपूजन, सत्य, अहिंसा आदि धर्मोंका पालन आवश्यक है।

यदि कार्तिकमासके महत्त्वको वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें देखें तो यह पायेंगे कि अश्वत्थपूजा, तुलसीवन-पालन एवं पूजन, आँवला-वृक्षका पूजन, गोपूजा, गङ्गास्नान तथा पूजन, गोवर्धनपूजा आदिसे पर्यावरण शुद्ध होता है और मनुष्य प्रकृतिप्रिय बनता है। इस व्रतसे इहलोक और परलोक दोनोंमें यश, बुद्धि, बल, धन तथा सत्संगकी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति इस मासको श्रद्धा, भक्ति एवं विश्वाससे उत्सवकी भाँति मनाता है, वह सब तरहसे परिपूर्ण हो जाता है।

परम पावन कार्तिकमासका व्रत-विधान—मानव-जीवनमें कार्तिकमास शुचिता, स्नान और व्रतकी दृष्टिसे मोक्षका सर्वोत्तम साधन माना गया है। स्कन्दपुराणमें कार्तिकमासका महत्त्व भगवान् विष्णुके सदृश दुर्लभ और

तदनन्तर नाभिपर्यन्त जलमें खड़े होकर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये।

गृहस्थ व्यक्तिको काला तिल तथा आँवलेका चूर्ण लगाकर स्नान करना चाहिये, परंतु विधवा तथा संन्यासियोंको तुलसीके पौधेकी जड़में लगी हुई मृत्तिकाको लगाकर स्नान करना चाहिये। सप्तमी, अमावास्या, नवमी, द्वितीया, दशमी तथा त्रयोदशी—इन तिथियोंमें तिल एवं आँवलेका प्रयोग वर्जित है।

तिलामलकचूर्णेन गृही स्नानं समाचरेत्।
विधवास्त्रीयतीनां तु तुलसीमूलमृत्सया॥
सप्तमी दर्शनवमी द्वितीया दशमीषु च।
त्रयोदश्यां न च स्नायाद्धात्रीफलतिलैः सह॥

कार्तिकमासमें पितरोंका तर्पण करनेसे पितरोंको अक्षयतृप्तिकी प्राप्ति होती है। तर्पणके पश्चात् व्रतीको जलसे बाहर आकर शुद्ध वस्त्र धारणकर भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये।

किसी प्रकारके तामसी एवं उत्तेजक पदार्थोंका सेवन व्रतीको नहीं करना चाहिये। पराये अन्नका भक्षण, किसीसे द्रोह करना तथा परदेशगमन भी व्रतीको करना उचित नहीं है।

कार्तिकव्रतीको ब्रह्मचर्यका पालन, भूमिशयन, दिनके चतुर्थ प्रहरमें पत्तल आदिपर भोजन करना चाहिये। कार्तिकमासमें स्नान एवं व्रत करनेवालेको केवल नरकचतु (कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी)-को ही तेल लगाना चाहिये। दिनोंमें तेल लगाना वर्जित है। इसके अतिरिक्त कार्तिकव्रती लौकी, गाजर, कैथ, बैगन आदि तथा बासी अन्न, पर अन्न, दूषित अन्नका भी भक्षण नहीं करना चाहिये। व्रती चाहिये कि वह मुनिवृत्तिसे रहे।

कार्तिकव्रत करनेवाले मानवको देखकर यमदूत प्रकार पलायन कर जाते हैं, जिस प्रकार सिंहसे पीि हाथी भाग खड़े होते हैं। इस भूतलपर भुक्ति अं मुक्तिप्रदायक जितने भी तीर्थस्थान हैं, वे सभी कार्तिकव्रती देहमें निवास करते हैं।

विष्णुव्रत करनेवाला प्राणी जिस किसी भी स्थान पूजित होकर रहता है, वहाँपर ग्रह-भूत-पिशाच आदि न रहते—

विष्णुव्रतकरो नित्यं यत्र तिष्ठति पूजितः।
ग्रहभूतपिशाचाद्या नैव तिष्ठन्ति तत्र वै॥

उपर्युक्त विधिके अनुसार कार्तिकव्रती प्राणीके पुण्यक चतुर्मुख ब्रह्मा भी कहनेमें समर्थ नहीं हैं। जो भी मान विष्णुप्रियकारी, समस्त पातकोंके नाशक, सत्पुत्र तथा धन-धान्यवृद्धिकारक कार्तिकव्रतका नियमपूर्वक पालन करत है, उसे तीर्थयात्राके महान् फलकी प्राप्ति होती है।
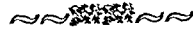
अखण्ड सुहागका प्रतिमान—'करवाचौथ'

[कार्तिक कृष्ण चतुर्थी]

भारतीय हिन्दू स्त्रियोंके लिये 'करवाचौथ'का व्रत अखण्ड सुहागको देनेवाला माना जाता है। विवाहित स्त्रियाँ इस दिन अपने पतिकी दीर्घ आयु एवं स्वास्थ्यकी मङ्गल-कामना करके भगवान् रजनीश (चन्द्रमा)-को अर्घ्य अर्पित कर व्रतको पूर्ण करती हैं। स्त्रियोंमें इस दिनके प्रति इतना अधिक श्रद्धाभाव होता है कि वे कई दिन पूर्वसे ही इस व्रतकी तैयारी प्रारम्भ कर देती हैं। यह व्रत कार्तिक कृष्णकी चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्थीको किया जाता है, यदि वह दो दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो या दोनों ही दिन न हो तो पूर्वविद्धा लेनी चाहिये। करकचतुर्थीको ही 'करवाचौथ' भी कहा जाता है।

वास्तवमें करवाचौथका त्योहार भारतीय संस्कृतिके उस पवित्र बन्धनका प्रतीक है जो पति-पत्नीके बीच होता है। भारतीय संस्कृतिमें पतिको परमेश्वरकी संज्ञा दी गयी है। करवाचौथ पति और पत्नी दोनोंके लिये नवप्रणय-निवेदन और एक-दूसरेके प्रति अपार प्रेम, त्याग एवं उत्सर्गकी चेतना लेकर आता है। इस दिन स्त्रियाँ पूर्ण सुहागिनका रूप धारण कर, वस्त्राभूषणोंको पहनकर भगवान रजनीशसे अपने अखण्ड सुहागकी प्रार्थना करती हैं।

स्त्रियाँ शृंगार करके ईश्वरके समक्ष दिनभरके व्रतके बाद यह प्रण भी लेती हैं कि वे मन, वचन एवं कर्मसे पतिके प्रति पूर्ण समर्पणकी भावना रखेंगी।

कार्तिकमासके कृष्णपक्षकी चौथको केवल चन्द्र देवताकी ही पूजा नहीं होती, बल्कि शिव-पार्वती और स्वामिकार्तिकेयको भी पूजा जाता है। शिव-पार्वतीकी पूजाका विधान इस हेतु किया जाता है कि जिस प्रकार शैलपुत्री पार्वतीने घोर तपस्या करके भगवान् शंकरको प्राप्तकर अखण्ड सौभाग्य प्राप्त किया वैसा ही उन्हें भी मिले। वैसे भी गौरी-पूजनका कुँआरी कन्याओं और विवाहिता स्त्रियोंके लिये विशेष माहात्म्य है।

इस संदर्भमें एक प्रसिद्ध कथाके अनुसार पाण्डवोंके वनवासके समय जब अर्जुन तप करने इन्द्रनील पर्वतकी ओर चले गये तो बहुत दिनोंतक उनके वापस न लौटनेपर द्रौपदीको चिन्ता हुई। कृष्णने आकर द्रौपदीकी चिन्ता दूर करते हुए करवाचौथका व्रत बताया तथा इस सम्बन्धमें जो कथा शिवजीने पार्वतीको सुनायी थी, वह भी सुनायी।

कथा—इन्द्रप्रस्थ नगरीमें वेदशर्मा नामक एक विद्वान् ब्राह्मणके सात पुत्र तथा एक पुत्री थी जिसका नाम वीरावती था। उसका विवाह सुदर्शन नामक एक ब्राह्मणके साथ हुआ। ब्राह्मणके सभी पुत्र विवाहित थे। एक बार करवाचौथके व्रतके समय वीरावतीकी भाभियोंने तो पूर्ण विधिसे व्रत किया, किंतु वीरावती सारा दिन निर्जल रहकर भूख न सह सकी तथा निढाल होकर बैठ गयी। भाइयोंकी चिन्तापर भाभियोंने बताया कि वीरावती भूखसे पीडित है। करवाचौथका व्रत चन्द्रमा देखकर ही खोलेगी। यह सुनकर भाइयोंने बाहर खेतोंमें जाकर आग जलायी तथा ऊपर कपड़ा तानकर चन्द्रमा-जैसा दृश्य बना दिया, फिर जाकर बहनसे कहा कि चाँद निकल आया है, अर्घ्य दे दो। यह सुनकर वीरावतीने अर्घ्य देकर खाना खा लिया। नकली चन्द्रमाको अर्घ्य देनेसे उसका व्रत खण्डित हो गया तथा उसका पति अचानक बीमार पड़ गया। वह ठीक न हो सका। एक बार इन्द्रकी पत्नी इन्द्राणी करवाचौथका व्रत करने पृथ्वीपर आयीं। इसका पता लगनेपर वीरावतीने जाकर इन्द्राणीसे प्रार्थना की कि उसके पतिके ठीक होनेका उपाय बतायें। इन्द्राणीने कहा कि तेरे पतिकी यह दशा तेरी ओरसे रखे गये करवाचौथव्रतके खण्डित हो जानेके कारण हुई है। यदि तू करवाचौथका व्रत पूर्ण विधि-विधानसे बिना खण्डित किये करेगी तो तेरा पति ठीक हो जायगा। वीरावतीने करवाचौथका व्रत पूर्ण विधिसे सम्पन्न किया, फलस्वरूप उसका पति बिलकुल ठीक हो गया। करवाचौथका व्रत उसी समयसे प्रचलित है।
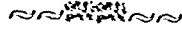
गोवत्सद्वादशीव्रत

[कार्तिक कृष्ण द्वादशी]

कार्तिकमासके कृष्णपक्षकी द्वादशी 'गोवत्सद्वादशी'के नामसे जानी जाती है। इस व्रतमें भक्तिपूर्वक गोमाताका पूजन किया जाता है।

व्रत-विधान—इस व्रतमें प्रदोषव्यापिनी तिथि ग्रहण की जाती है। यदि वह दो दिन हो या न हो तो 'वत्सपूजा व्रतश्चैव कर्तव्यौ प्रथमेऽहनि' के अनुसार मन्त्रसे पूजन करे—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट नमो नमः स्वाहा॥ (ऋक्० ८।१०१।१५)

इस प्रकार पूजन कर गौको ग्रास दे तथा निम्न

इस व्रतके प्रभावसे व्रती सभी सुखोंको भोगते हुए अन्तमें गौके जितने रोएँ हैं, उतने वर्षोंतक गोलोकमें वास करता है।

कथा—सत्ययुगकी बात है, महर्षि भृगुके आश्रम-मण्डलमें भगवान् शंकरके दर्शनकी अभिलाषासे करोड़ों मुनिगण तपस्या कर रहे थे। एक दिन उन तपस्यारत मुनियोंको दर्शन देनेके लिये भगवान् शंकर एक बूढ़े ब्राह्मणका वेश बनाकर हाथमें डंडा लिये काँपते हुए उस आश्रममें आये। उनके साथ सवत्सा गौके रूपमें जगन्माता पार्वतीजी भी थीं। वृद्ध ब्राह्मण बने भगवान् शंकर महर्षि भृगुके पास जाकर बोले—हे मुने! मैं यहाँ स्नानकर जम्बूक्षेत्रमें जाऊँगा और दो दिन बाद लौटूँगा, तबतक आप इस गायकी रक्षा करें।

मुनियोंके उस गौकी सभी प्रकारसे रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा करनेपर भगवान् शंकर अन्तर्हित हो गये और फिर थोड़ी देर बाद एक व्याघ्रके रूपमें प्रकट होकर बछड़ेसहित गौको डराने लगे। ऋषिगण भी व्याघ्रके भयसे आक्रान्त हो आर्तनाद करते हुए यथासम्भव उसे हटानेका प्रयास कर रहे थे। उधर गाय भी रँभा रही थी। निदान उन शान्तचित्त मुनियोंने क्रुद्ध हो ब्रह्मासे प्राप्त और भयंकर शब्द करनेवाले घंटेको बजाना प्रारम्भ किया। उस शब्दसे व्याघ्र तो भाग गया और उसके स्थानपर भगवान् शंकर प्रकट हो गये, भगवती उमा जगज्जननी पार्वती भी गोरूप त्यागकर वत्सरूपी कार्तिकेय तथा अन्य गणोंके साथ भगवान् भोलेनाथके वामभागमें विराजित हो गयीं। ब्रह्मवादी ऋषियोंने उनका पूजन किया। उस दिन कार्तिकमासके कृष्णपक्षकी द्वादशी थी, इसीलिये यह व्रत 'गोवत्सद्वादशी' के रूपमें प्रारम्भ हुआ।

एक अन्य कथाके अनुसार राजा उत्तानपादने पृथ्वीपर इस व्रतको प्रचारित किया। उनकी रानी सुनीति इस व्रतको किया करती थी, जिसके प्रभावसे उन्हें ध्रुव-जैसा पुत्र प्राप्त हुआ।

आज भी माताएँ पुत्ररक्षा और संतान-सुखके लि इस व्रतको करती हैं।
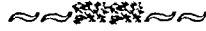
धनतेरस

[कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी]

कार्तिकमासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशी 'धनतेरस' कहलाती है। इस दिन चाँदीका बर्तन खरीदना अत्यन्त शुभ माना गया है, परंतु वस्तुतः यह यमराजसे सम्बन्ध रखनेवाला व्रत है।
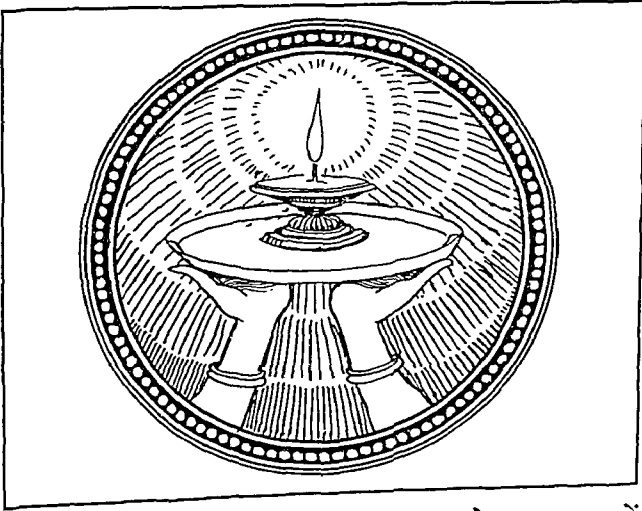
इस दिन सायंकाल घरके बाहर मुख्य दरवाजेपर एक पात्रमें अन्न रखकर उसके ऊपर यमराजके निमित्त दक्षिणाभिमुख दीपदान करना चाहिये तथा उसका गन्धादिसे पूजन करन चाहिये। दीपदान करते समय निम्नलिखित प्रार्थना करन चाहिये—

मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्यया सह।
त्रयोदश्यां दीपदानात्सूर्यजः प्रीयतामिति॥

यमुनाजी यमराजकी बहन हैं इसलिये धनतेरसके दिन यमुना-स्नानका भी विशेष माहात्म्य है। यदि पूरे दिनका व्रत रखा जा सके तो अत्युत्तम है, किंतु संध्याके समय दीपदान अवश्य करना चाहिये—

कार्तिकस्यासिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे।
यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति॥

कथा—एक बार यमराजने अपने दूतोंसे कहा कि तुमलोग मेरी आज्ञासे मृत्युलोकके प्राणियोंके प्राण हरण करते हो, क्या तुम्हें ऐसा करते समय कभी दुःख भी हुआ है या कभी दया भी आयी है? इसपर यमदूतोंने कहा—महाराज! हमलोगोंका कर्म अत्यन्त क्रूर है परंतु

किसी युवा प्राणीकी असामयिक मृत्युपर उसका प्राण हरण करते समय वहाँका करुणक्रन्दन सुनकर हमलोगोंका पाषाणहृदय भी विगलित हो जाता है। एक बार हमलोगोंको एक राजकुमारके प्राण उसके विवाहके चौथे दिन ही हरण करने पड़े। उस समय वहाँका करुणक्रन्दन, चीत्कार और हाहाकार देख-सुनकर हमें अपने कृत्यसे अत्यन्त घृणा हो गयी। उस मङ्गलमय उत्सवके बीच हमलोगोंका यह कृत्य अत्यन्त घृणित था, इससे हमलोगोंका हृदय अत्यन्त दुःखी हो गया। अतः हे स्वामिन्! कृपा करके कोई ऐसी युक्ति बताइये जिससे ऐसी असामयिक मृत्यु न हो।

इसपर यमराजने कहा कि जो धनतेरसके पर्वपर मेरे उद्देश्यसे दीपदान करेगा, उसकी असामयिक मृत्यु नहीं होगी।

भगवान् धन्वन्तरिका जन्मोत्सव

(श्रीओंकारनाथजी पाण्डेय, बी०ए० ऑनर्स)

भगवान् धन्वन्तरिका जन्मोत्सव कार्तिकमासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशी तिथिको मनाया जाता है। समुद्रमन्थनके समय भगवान् धन्वन्तरिका प्राकट्य माना जाता है। देव-दानवोंद्वारा क्षीरसागरका मन्थन करते समय भगवान् धन्वन्तरि संसारके समस्त रोगोंकी औषधियोंको कलशमें भरकर प्रकट हुए थे। उस दिन त्रयोदशी तिथि थी। इसलिये उक्त तिथिमें सम्पूर्ण भारतमें तथा अन्य देशोंमें (जहाँ हिन्दुओंका निवास है) भगवान् धन्वन्तरिका जयन्ती-महोत्सव मनाया जाता है। विशेषकर आयुर्वेदके विद्वान् तथा वैद्यसमाजकी ओरसे सर्वत्र भगवान् धन्वन्तरिकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की जाती है और उनका पूजन श्रद्धाभक्तिपूर्वक किया जाता है एवं प्रसादवितरण करके लोगोंके दीर्घ जीवन तथा आरोग्यलाभके लिये मङ्गलकामना की जाती है। दूसरे दिन संध्यासमय जलाशयोंमें प्रतिमाओंका विसर्जन भजन-कीर्तन करते हुए किया जाता है। इस प्रकार भगवान् धन्वन्तरि प्राणियोंको रोग-मुक्त करनेके लिये भव-भेषजावतारके रूपमें प्रकट हुए थे।

गोत्रिरात्र-व्रत

[कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीसे अमावास्यातक]

यह व्रत कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीसे दीपावलीके दिनतक किया जाता है। इसमें उदयव्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो तो पहले दिन व्रत करे। इस व्रतके लिये गोशाला या गायोंके आने-जानेके मार्गमें आठ हाथ लम्बी और चार हाथ चौड़ी वेदी बनाकर उसपर सर्वतोभद्र बनाये और उसके ऊपर छत्रके आकारका वृक्ष एवं उसमें विविध प्रकारके फल, पुष्प और पक्षी बनाये। वृक्षके नीचे मण्डलके मध्यभागमें गोवर्धनभगवान्‌की, उनके वामभागमें रुक्मिणी, मित्रवृन्दा, शैव्या और जाम्बवतीकी, दक्षिणभागमें सत्यभामा, लक्ष्मणा, सुदेवा और नाग्नजितीकी; उनके अग्रभागमें नन्दबाबा; पृष्ठभागमें बलभद्र और यशोदा तथा श्रीकृष्णके सामने सुरभी, सुनन्दा, सुभद्रा और कामधेनु गौ—इनकी सुवर्णमयी मूर्तियाँ स्थापित करे। उन सबका नाम-मन्त्र (यथा 'गोवर्धनाय नमः' आदि)-से पूजन करके—

गवामाधार गोविन्द रुक्मिणीवल्लभ प्रभो।
गोपगोपीसमोपेत गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

—से भगवान्‌को और—

रुद्राणां चैव या माता वसूनां दुहिता च या।

आदित्यानां च भगिनी सा नः शान्तिं प्रयच्छतु ॥

—से गौको अर्घ्य दे तथा—

सुरभी वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता।
प्रतिगृह्णातु मे ग्रासं सुरभी मे प्रसीदतु ॥

—से गौको ग्रास दे। विविध भाँतिके फल, पुष्प, पक्वान्न और रसादिसे पूजन करके बाँसके पात्रोंमें सप्तधान्य और सात मिठाई भरकर सौभाग्यवती स्त्रियोंको दे। इस प्रकार तीन दिन व्रत करे और चौथे दिन प्रातः स्नानादि करके गायत्री-मन्त्रसे तिलोंकी १०८ आहुति देकर व्रतका विसर्जन करे तो इससे पुत्र, सुख और सम्पत्तिका लाभ होता है (स्कन्दपुराण)।

भविष्योत्तर-पुराणके अनुसार गोत्रिरात्र-व्रतका फल पुत्र-प्राप्ति, सुख-भोग और अन्तमें गोलोककी प्राप्ति बताया गया है।

नरकचतुर्दशी

[कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी]
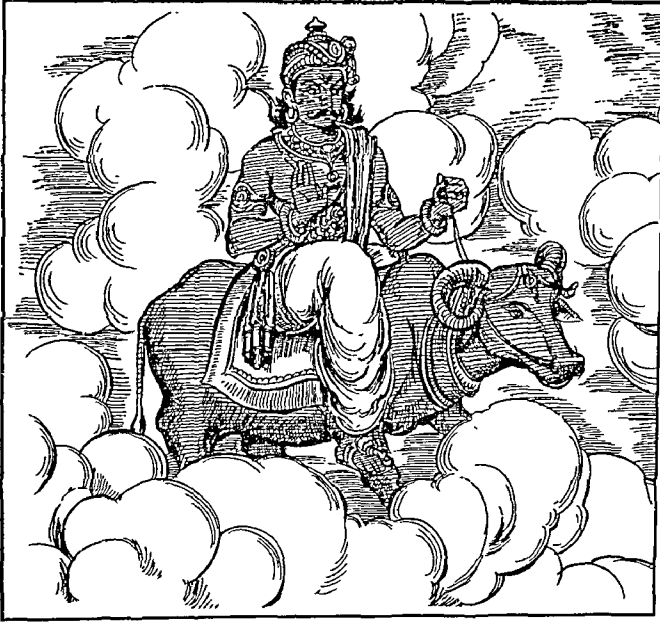
कार्तिकमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी 'नरकचतुर्दशी' कहलाती है। सनत्कुमारसंहिताके अनुसार इसे पूर्वविद्धा लेना चाहिये। इस दिन अरुणोदयसे पूर्व प्रत्यूषकालमें स्नान करनेसे मनुष्यको यमलोकका दर्शन नहीं करना पड़ता। यद्यपि कार्तिकमासमें तेल नहीं लगाना चाहिये, फिर भी इस तिथिविशेषको शरीरमें तेल लगाकर स्नान करना चाहिये। जो व्यक्ति इस दिन सूर्योदयके बाद स्नान करता है, उसके शुभ कार्योंका नाश हो जाता है। स्नानसे पूर्व शरीरपर अपामार्गका भी प्रोक्षण करना चाहिये। अपामार्गको निम्न मन्त्र पढ़कर मस्तकपर घुमाना चाहिये। इससे नरकका भय नहीं रहता—

सितालोष्ठसमायुक्तं सकण्टकदलान्वितम्।
हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ॥
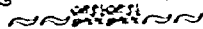
स्नान करनेके बाद शुद्ध वस्त्र पहनकर, तिलक लगाकर दक्षिणाभिमुख हो निम्न नाममन्त्रोंसे प्रत्येक नामसे तिलयुक्त तीन-तीन जलाञ्जलि देनी चाहिये। यह यम-तर्पण कहलाता है। इससे वर्षभरके पाप नष्ट हो जाते हैं।

'ॐ यमाय नमः', 'ॐ धर्मराजाय नमः', 'ॐ मृत्यवे नमः', 'ॐ अन्तकाय नमः', 'ॐ वैवस्वताय नमः', 'ॐ कालाय नमः', 'ॐ सर्वभूतक्षयाय नमः', 'ॐ औदुम्बराय नमः', 'ॐ दध्नाय नमः', 'ॐ नीलाय नमः', 'ॐ परमेष्ठिने नमः', 'ॐ वृकोदराय नमः', 'ॐ चित्राय नमः', 'ॐ चित्रगुप्ताय नमः'।

इस दिन देवताओंका पूजन करके दीपदान करना चाहिये। मन्दिरों, गुप्तगृहों, रसोईघर, स्नानघर, देववृक्षोंके नीचे, सभाभवन, नदियोंके किनारे, चहारदीवारी, बगीचे, बावली, गली-कूचे, गोशाला आदि प्रत्येक स्थानपर दीपक जलाना चाहिये। यमराजके उद्देश्यसे त्रयोदशीसे अमावास्यातक दीप जलाने चाहिये।

कथा—वामनावतारमें भगवान् श्रीहरिने सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ली। बलिके दान और भक्तिसे प्रसन्न होकर वामनभगवान्‌ने उनसे वर माँगनेको कहा। उस समय बलिने प्रार्थना की कि कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीसहित इन तीन दिनोंमें मेरे राज्यका जो भी व्यक्ति यमराजके उद्देश्यसे दीपदान करे, उसे यमयातना न हो और इन तीन दिनोंमें दीपावली मनानेवालेका घर लक्ष्मीजी कभी न छोड़ें। भगवान्‌ने कहा—'एवमस्तु।' जो मनुष्य इन तीन दिनोंमें दीपोत्सव करेगा, उसे छोड़कर मेरी प्रिया लक्ष्मी कहीं नहीं जायँगी।

हनुमज्जन्म-महोत्सव

[कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी]

आश्विनस्यासिते पक्षे भूतायां च महानिशि।
भौमवारेऽञ्जनादेवी हनूमन्तमजीजनत्॥

अमान्त आश्विन (कार्तिक) कृष्ण चतुर्दशी भौमवारकी महानिशा (अर्धरात्रि)-में अञ्जनादेवीके उदरसे हनुमान्‌जीका जन्म हुआ था। अतः हनुमत्-उपासकोंको चाहिये कि वे इस दिन प्रातः स्नानादि करके '**मम शौर्यौदार्यधैर्यादिवृद्ध्यर्थं हनुमत्प्रीतिकामनया हनुमज्जयन्तीमहोत्सवमहं करिष्ये**' यह संकल्प करके हनुमान्‌जीका यथाविधि षोडशोपचार पूजन करें। पूजनके उपचारोंमें गन्धपूर्ण तेलमें सिन्दूर मिलाकर उससे मूर्तिको चर्चित करे। पुन्नाम (पुरुष नामके हजारा-गुलहजारा आदि)-के पुष्प चढ़ाये तथा नैवेद्यमें घृतपूर्ण चूरमा या घीमें सेंके हुए और शर्करा मिले हुए आटेका मोदक एवं केला, अमरूद आदि फल अर्पण करके 'वाल्मीकीय रामायण'के सुन्दरकाण्डका पाठ करे। रात्रिके समय घृतपूर्ण दीपकोंकी दीपावलीका प्रदर्शन कराये। यद्यपि अधिकांश उपासक इसी दिन हनुमज्जयन्ती मनाते हैं और व्रत करते हैं, परंतु शास्त्रान्तरमें चैत्र शुक्ल पूर्णिमाको हनुमज्जन्मका उल्लेख किया है। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको हनुमज्जयन्ती मनानेका यह कारण है कि लङ्काविजयके बाद श्रीराम अयोध्या आये। पीछे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और भगवती जानकीजीने वानरादिको विदा करते समय यथायोग्य पारितोषिक दिया था। उस समय इसी दिन (का०कृ० १४ को) सीताजीने हनुमान्‌जीको पहले तो अपने गलेकी माला पहनायी, जिसमें बड़े-बड़े बहुमूल्य मोती और अनेक रत्न थे, परंतु उसमें राम-नाम न होनेसे हनुमान्‌जी उससे संतुष्ट न हुए। तब उन्होंने अपने ललाटपर लगा हुआ सौभाग्यद्रव्य सिन्दूर प्रदान किया और कहा—'इससे बढ़कर मेरे पास अधिक महत्त्वकी कोई वस्तु नहीं है, अतएव तुम इसे हर्षके साथ धारण करो और सदैव अजर-अमर रहो।' यही कारण है कि कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको हनुमज्जन्म-महोत्सव मनाया जाता है और तेल-सिन्दूर चढ़ाया जाता है।

दीपावली

[कार्तिक अमावास्या]

भारतवर्षमें मनाये जानेवाले सभी त्योहारोंमें दीपावलीका सामाजिक और धार्मिक दोनों दृष्टियोंसे अप्रतिम महत्त्व है। सामाजिक दृष्टिसे इस पर्वका महत्त्व इसलिये है कि दीपावली आनेसे पूर्व ही लोग अपने घर-द्वारकी स्वच्छतापर ध्यान देते हैं, घरका कूड़ा-करकट साफ करते हैं, टूट-फूट सुधरवाकर घरकी दीवारोंपर सफेदी, दरवाजोंपर रंग-रोगन करवाते हैं, जिससे उस स्थानकी न केवल आयु ही बढ़ जाती है, बल्कि आकर्षण भी बढ़ जाता है। वर्षा-ऋतुमें आयी अस्वच्छताका भी परिमार्जन हो जाता है।

दीपावलीके दिन धन-सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी भगवती महालक्ष्मीकी पूजा करनेका विधान है। शास्त्रोंका कथन है कि जो व्यक्ति दीपावलीको दिन-रात जागरण करके लक्ष्मीकी पूजा करता है, उसके घर लक्ष्मीजीका निवास होता है। जो आलस्य और निद्रामें पड़कर

दीपावली यूँ ही गँवाता है, उसके घरसे लक्ष्मी रूठकर चली जाती हैं।

ब्रह्मपुराणमें लिखा है कि कार्तिककी अमावास्याको अर्धरात्रिके समय लक्ष्मी महारानी सद्गृहस्थोंके घरमें जहाँ-तहाँ विचरण करती हैं। इसलिये अपने घरको सब प्रकारसे स्वच्छ, शुद्ध और सुशोभित करके दीपावली तथा दीपमालिका मनानेसे लक्ष्मीजी प्रसन्न होती हैं और वहाँ स्थायीरूपसे निवास करती हैं। यह अमावास्या प्रदोषकालसे आधी राततक रहनेवाली श्रेष्ठ होती है। यदि आधी राततक न भी रहे तो प्रदोषव्यापिनी दीपावली माननी चाहिये।

प्राय: प्रत्येक घरमें लोग अपने रीति-रिवाजके अनुसार गणेश-लक्ष्मीपूजन तथा द्रव्यलक्ष्मी-पूजन करते हैं। कुछ स्थानोंमें दीवारपर अथवा काष्ठपट्टिकापर खड़ियामिट्टी तथा विभिन्न रंगोंद्वारा चित्र बनाकर या पाटेपर गणेश-लक्ष्मीकी मूर्ति रखकर कुछ चाँदी आदिके सिक्के रखकर इनका पूजन करते हैं तथा थालीमें तेरह अथवा छब्बीस दीपकोंके मध्य तेलसे प्रज्वलित चौमुखा दीपक रखकर दीपमालिकाका पूजन भी करते हैं और पूजाके अनन्तर उन दीपोंको घरके मुख्य-मुख्य स्थानोंपर रख देते हैं। चौमुखा दीपक रातभर जले ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये।

संक्षिप्त दीपावली-पूजनविधि

कार्तिक कृष्ण अमावास्याको भगवती श्रीमहालक्ष्मी एवं भगवान् गणेशकी नूतन प्रतिमाओंका प्रतिष्ठापूर्वक विशेष पूजन किया जाता है। पूजनके लिये किसी चौकी अथवा कपड़ेके पवित्र आसनपर गणेशजीके दाहिने भागमें माता महालक्ष्मीको स्थापित करना चाहिये। पूजनके दिन घरको स्वच्छ कर पूजा-स्थानको भी पवित्र कर लेना चाहिये एवं स्वयं भी पवित्र होकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सायंकाल इनका पूजन करना चाहिये। मूर्तिमयी श्रीमहालक्ष्मीजीके पास ही किसी पवित्र पात्रमें केसरयुक्त चन्दनसे अष्टदल कमल बनाकर उसपर द्रव्य-लक्ष्मी (रुपयों)-को भी स्थापित करके एक साथ ही दोनोंकी पूजा करनी चाहिये। सर्वप्रथम पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख हो आचमन, पवित्री-धारण, मार्जन-प्राणायाम कर अपने ऊपर तथा पूजा-सामग्रीपर निम्न मन्त्र पढ़कर जल छिड़के—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

तदनन्तर जल-अक्षतादि लेकर पूजनका संकल्प करे—

संकल्प—**ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य मासोत्तमे मासे कार्तिकमासे कृष्णपक्षे पुण्यायाममावास्यायां तिथौ.......वासरे ....गोत्रोत्पन्नः .... शर्मा / वर्मा / गुप्तोऽहं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलावाप्तिकामनया ज्ञाताज्ञातकायिकवाचिकमानसिकसकलपापनिवृत्तिपूर्वकं स्थिरलक्ष्मीप्राप्तये श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं महालक्ष्मीपूजनं कुबेरादीनां च पूजनं करिष्ये। तदङ्गत्वेन गौरीगणपत्यादिपूजनं च करिष्ये।**

—ऐसा कहकर संकल्पका जल आदि छोड़ दे।

पूजनसे पूर्व नूतन प्रतिमाकी निम्न रीतिसे प्राण-प्रतिष्ठा कर ले—

प्रतिष्ठा—बायें हाथमें अक्षत लेकर निम्नलिखित मन्त्रोंको पढ़ते हुए दाहिने हाथसे उन अक्षतोंको प्रतिमापर छोड़ता जाय—

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञ समिमं दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ॥
ॐ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च।
अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन॥

इस प्रकार प्रतिष्ठाकर सर्वप्रथम भगवान् गणेशका पूजन करे। तदनन्तर कलश-पूजन तथा षोडशमातृकापूजन करे। तत्पश्चात् प्रधान पूजामें मन्त्रोंद्वारा भगवती महालक्ष्मीका षोडशोपचार-पूजन करे। '**ॐ महालक्ष्म्यै नमः**'—इस नाममन्त्रसे भी उपचारोंद्वारा पूजा की जा सकती है।

प्रार्थना—विधिपूर्वक श्रीमहालक्ष्मीका पूजन करनेके अनन्तर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे—

सुरासुरेन्द्रादिकिरीटमौक्तिकै-
र्युक्तं सदा यत्तव पादपङ्कजम्।
परावरं पातु वरं सुमङ्गलं
नमामि भक्त्याखिलकामसिद्धये॥
भवानि त्वं महालक्ष्मीः सर्वकामप्रदायिनी।
सुपूजिता प्रसन्ना स्यान्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये।
या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात् त्वदर्चनात्॥

'**ॐ महालक्ष्म्यै नमः, प्रार्थनापूर्वकं नमस्कारान् समर्पयामि।**' प्रार्थना करते हुए नमस्कार करे।

समर्पण—पूजनके अन्तमें '**कृतेनानेन पूजनेन भगवती महालक्ष्मीदेवी प्रीयताम्, न मम।**'—यह वाक्य उच्चारण कर समस्त पूजन-कर्म भगवती महालक्ष्मीको समर्पित करे तथा जल गिराये।

भगवती महालक्ष्मीके यथालब्धोपचार-पूजनके अनन्तर महालक्ष्मीपूजनके अङ्गरूप, देहलीविनायक, मसिपात्र, लेखनी, सरस्वती, कुबेर, तुला-मान तथा दीपकोंकी पूजा की जाती है। संक्षेपमें उन्हें भी यहाँ दिया जा रहा है। सर्वप्रथम देहलीविनायककी पूजा की जाती है—

देहलीविनायक-पूजन—व्यापारिक प्रतिष्ठानादिमें दीवारोंपर '**ॐ श्रीगणेशाय नमः**', '**स्वस्तिक-चिह्न,**' '**शुभ-लाभ**' आदि माङ्गलिक एवं कल्याणकर शब्द सिन्दूरादिसे लिखे जाते हैं। इन्हीं शब्दोंपर '**ॐ देहलीविनायकाय नमः**' इस नाममन्त्रद्वारा गन्ध-पुष्पादिसे पूजन करे।

श्रीमहाकाली (दावात)-पूजन—स्याहीयुक्त दावातको भगवती महालक्ष्मीके सामने पुष्प तथा अक्षतपुञ्जमें रखकर उसमें सिन्दूरसे स्वस्तिक बना दे तथा मौली लपेट दे। '**ॐ श्रीमहाकाल्यै नमः**' इस नाममन्त्रसे गन्ध-पुष्पादि पञ्चोपचारोंसे या षोडशोपचारोंसे दावातमें भगवती महाकालीका पूजन करे और अन्तमें इस प्रकार प्रार्थनापूर्वक उन्हें प्रणाम करे—

कालिके त्वं जगन्मातर्मसिरूपेण वर्तसे।
उत्पन्ना त्वं च लोकानां व्यवहारप्रसिद्धये॥
या कालिका रोगहरा सुवन्द्या
भक्तैः समस्तैर्व्यवहारदक्षैः।
जनैर्जनानां भयहारिणी च
सा लोकमाता मम सौख्यदास्तु॥

लेखनी-पूजन—लेखनी (कलम)-पर मौली बाँधकर सामने रख ले और—

लेखनी निर्मिता पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
लोकानां च हितार्थाय तस्मात्तां पूजयाम्यहम्॥

'**ॐ लेखनीस्थायै देव्यै नमः**' इस नाममन्त्रद्वारा गन्ध-पुष्पाक्षत आदिसे पूजन कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

शास्त्राणां व्यवहाराणां विद्यानामाप्नुयाद्यतः।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि मम हस्ते स्थिरा भव॥

सरस्वती (पञ्जिका-बहीखाता)-पूजन—बही, बसना तथा थैलीमें रोली या केसरयुक्त चन्दनसे स्वस्तिक-चिह्न बनाये एवं थैलीमें पाँच हल्दीकी गाँठें, धनिया, कमलगट्टा, अक्षत, दूर्वा और द्रव्य रखकर उसमें सरस्वतीका पूजन करे। सर्वप्रथम सरस्वतीजीका ध्यान इस प्रकार करे—

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

'**ॐ वीणापुस्तकधारिण्यै श्रीसरस्वत्यै नमः**'—इस नाममन्त्रसे गन्धादि उपचारोंद्वारा पूजन करे।

कुबेर-पूजन—तिजोरी अथवा रुपये रखे जानेवाले संदूक आदिको स्वस्तिकादिसे अलङ्कृत कर उसमें निधिपति कुबेरका आवाहन करे—

आवाहयामि देव त्वामिहायाहि कृपां कुरु।
कोशं वर्द्धय नित्यं त्वं परिरक्ष सुरेश्वर॥

आवाहनके पश्चात् '**ॐ कुबेराय नमः**' इस नाममन्त्रसे यथालब्धोपचार-पूजन कर अन्तमें इस प्रकार प्रार्थना करे—

धनदाय नमस्तुभ्यं निधिपद्माधिपाय च।
भगवन् त्वत्प्रसादेन धनधान्यादिसम्पदः॥

—इस प्रकार प्रार्थनाकर पूर्वपूजित हल्दी, धनिया, कमलगट्टा, द्रव्य, दूर्वादिसे युक्त थैली तिजोरीमें रखे।

तुला तथा मान-पूजन—सिन्दूरसे तराजू आदिपर

स्वस्तिक बना ले। मौली लपेटकर तुलाधिष्ठातृदेवताका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

नमस्ते सर्वदेवानां शक्तित्वे सत्यमाश्रिता।
साक्षीभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना॥

ध्यानके बाद '**ॐ तुलाधिष्ठातृदेवतायै नमः**' इस नाममन्त्रसे गन्धाक्षतादि उपचारोंद्वारा पूजनकर नमस्कार करे।

दीपमालिका (दीपक)-पूजन—किसी पात्रमें ग्यारह, इक्कीस या उससे अधिक दीपकोंको प्रज्वलित कर महालक्ष्मीके समीप रखकर उस दीपज्योतिका '**ॐ दीपावल्यै नमः**' इस नाममन्त्रसे गन्धादि उपचारोंद्वारा पूजन कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

त्वं ज्योतिस्त्वं रविश्चन्द्रो विद्युदग्निश्च तारकाः।
सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्दीपावल्यै नमो नमः॥

दीपमालिकाओंका पूजन कर अपने आचारके अनुसार संतरा, ईख, पानीफल, धानका लावा इत्यादि पदार्थ चढ़ाये। धानका लावा (खील) गणेश, महालक्ष्मी तथा अन्य सभी देवी-देवताओंको भी अर्पित करे। अन्तमें अन्य सभी दीपकोंको प्रज्वलित कर उनसे सम्पूर्ण गृहको अलङ्कृत करे।

प्रधान आरती—इस प्रकार भगवती महालक्ष्मी तथा उनके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों एवं उपाङ्गोंका पूजन कर लेनेके अनन्तर प्रधान आरती करनी चाहिये। इसके लिये एक थालीमें स्वस्तिक आदि माङ्गलिक चिह्न बनाकर अक्षत तथा पुष्पोंके आसनपर किसी दीपक आदिमें घृतयुक्त बत्ती प्रज्वलित करे। एक पृथक् पात्रमें कर्पूर भी प्रज्वलित कर वह पात्र भी थालीमें यथास्थान रख ले, आरती-थालका जलसे प्रोक्षण कर ले। पुनः आसनपर खड़े होकर अन्य पारिवारिक जनोंके साथ घण्टानादपूर्वक निम्न आरती गाते हुए साङ्गमहालक्ष्मीजीकी मङ्गल आरती करे—

श्रीलक्ष्मीजीकी आरती

ॐ जय लक्ष्मी माता, (मैया) जय लक्ष्मी माता।
तुमको निसिदिन सेवत हर-विष्णू-धाता॥ ॐ॥
उमा, रमा, ब्रह्माणी, तुम ही जग-माता।
सूर्य-चन्द्रमा ध्यावत, नारद ऋषि गाता॥ ॐ॥
दुर्गारूप निरञ्जनि, सुख-सम्पति-दाता।
जो कोइ तुमको ध्यावत, ऋधि-सिधि-धन पाता॥ ॐ॥
तुम पाताल-निवासिनि, तुम ही शुभदाता।
कर्म-प्रभाव-प्रकाशिनि, भवनिधिकी त्राता॥ ॐ॥
जिस घर तुम रहती, तहँ सब सद्गुण आता।
सब सम्भव हो जाता, मन नहिं घबराता॥ ॐ॥
तुम बिन यज्ञ न होते, वस्त्र न हो पाता।
खान-पानका वैभव सब तुमसे आता॥ ॐ॥
शुभ-गुण-मन्दिर सुन्दर, क्षीरोदधि-जाता।
रत्न चतुर्दश तुम बिन कोई नहिं पाता॥ ॐ॥
महालक्ष्मी (जी) की आरति, जो कोई नर गाता।
उर आनन्द समाता, पाप उतर जाता॥ ॐ॥

मन्त्र-पुष्पाञ्जलि—दोनों हाथोंमें कमल आदिके पुष्प लेकर हाथ जोड़े और निम्न मन्त्रका पाठ करे—

ॐ या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥

ॐ '**श्रीमहालक्ष्म्यै नमः, मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।**'—ऐसा कहकर हाथमें लिये फूल महालक्ष्मीपर चढ़ा दे। प्रदक्षिणा कर साष्टाङ्ग प्रणाम करे, पुनः हाथ जोड़कर क्षमा-प्रार्थना करे—

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वरि॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे॥
सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम्॥

पुनः प्रणाम करके '**ॐ अनेन यथाशक्त्यर्चनेन श्रीमहालक्ष्मीः प्रसीदतु**' यह कहकर जल छोड़ दे। ब्राह्मण एवं गुरुजनोंको प्रणाम कर चरणामृत तथा प्रसाद वितरण करे।

विसर्जन—पूजनके अन्तमें अक्षत लेकर गणेश एवं महालक्ष्मीकी नूतन प्रतिमाको छोड़कर अन्य सभी आवाहित, प्रतिष्ठित एवं पूजित देवताओंको अक्षत छोड़ते हुए निम्न मन्त्रसे विसर्जित करे—

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्।
इष्टकामसमृद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च॥
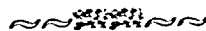
इनमें सबसे गरिमापूर्ण त्योहार है 'दीपावली'। जहाँ अन्य त्योहार केवल एक-एक दिन मनाये जाते हैं, वहाँ दीपावलीपर्व सतत पाँच दिनतक मनाया जाता है। कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीसे कार्तिक शुक्ल द्वितीयातक मनाये जानेवाले इस पर्वको निःसंकोच धर्माश्रित राष्ट्रिय पर्व कहा जा सकता है।

दीपोत्सवका आरम्भ जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीसे होता है। इसे आज धनतेरसके नामसे स्मरण किया जाता है। यह नाम आयुर्वेदप्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरिके जयन्ती-दिवसके आधारपर ही प्रचलित हुआ है, ऐसा अनुमान किया जाता है।

वस्तुतः यह दिन भगवान् धन्वन्तरि तथा यमराज दोनोंसे सम्बन्ध रखता है। एक ओर इस दिन वैद्यसमुदाय भगवान् धन्वन्तरिका पूजन कर निज राष्ट्रके लिये स्वास्थ्य-समृद्धिकी याचना करता है, वहीं दूसरी ओर सामान्य गृहस्थ यमराजके उद्देश्यसे तेलके दीपक जलाकर निज गृहके मुख्य द्वारपर रखते हैं।

पुराणोंके अनुसार कार्तिकमास यमुनास्नान और दीपदानद्वारा विशेष फलदायी प्रतिपादित हुआ है। धनतेरसके दिन यमुनास्नान करके, यमराज और धन्वन्तरिका पूजन-दर्शन कर यमराजके निमित्त दीप-दान करना चाहिये। इस दिन यदि उपवास रखा जा सके तो अत्युत्तम है। सन्ध्याके समय दीपदान करना चाहिये। धनतेरसके सम्बन्धमें एक कथा है—

एक बार यमराजने अपने दूतोंसे पूछा कि तुमलोग अनन्त कालसे जीवोंके प्राणहरणका दुःखद कार्य करते आ रहे हो। क्या कभी यह कार्य करते समय तुम्हारे मनमें दया आयी और यह विचार आया कि इस प्राणीके प्राण न लिये जायँ? यदि ऐसी स्थिति कभी आयी हो तो मुझे बताओ।

यह सुनकर एक यमदूतने बताया—प्रभो! हंस नामक एक प्रतापी राजा था। एक बार वह आखेटके लिये वनमें गया और मार्ग भटककर दूसरे राजा हेमराजके राज्यमें जा निकला। श्रम-क्लम तथा भूख-प्याससे व्याकुल राजा हंसका हेमराजने बहुत स्वागत किया। उसी दिन राजा हेमराजको पुत्रकी प्राप्ति हुई थी, अतः राजा हंसके आगमनको पुत्रप्राप्तिका निमित्त—कारण मान उसने आग्रहपूर्वक राजा हंसको कुछ दिनोंके लिये अपने यहाँ रोक लिया।

छठीके दिन जब समारोहपूर्वक राजपुत्रका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, किसी भविष्यवेत्ताने बताया कि विवाहके चार दिन बाद बालककी मृत्यु हो जायगी। यह सुनते ही सारा राज्य शोकार्णवमें डूब गया।

राजा हंसको जब यह दुःखदायी समाचार मिला तो उन्होंने राजा हेमराजको आश्वस्त करते हुए कहा—आप पूर्णतः निश्चिन्त रहें, मैं राजकुमारकी प्राणरक्षा करूँगा।

अपने वचनकी रक्षाके लिये राजा हंसने यमुना-तटपर एक गिरिगह्वरमें दुर्गका निर्माण कराकर उसमें गूढरूपसे राजकुमारके रहनेकी व्यवस्था कर दी। वहीं रहते हुए राजकुमार तरुण हुआ। राजा हेमराजके अपने मित्र राजा हंसकी प्रेरणासे उसका विवाह एक अनुपम सुन्दरी कन्यासे कर दिया। वह युगल साक्षात् काम और रतिका अवतार प्रतीत होता था। राजा हंस अपने मित्र-पुत्रकी प्राणरक्षाके लिये विविध उपाय कर रहे थे, परंतु आपके विधानको अन्यथा करनेकी शक्ति उनमें नहीं थी। विवाहके चौथे ही दिन हमें उसके प्राणहरणका अप्रिय कार्य करना पड़ा। प्रभो! जब हम उसके प्राण लेकर चले उस समयका दृश्य मैं कभी नहीं भूल सकता। विवाहके माङ्गलिक समारोहमें उमङ्गित राजसमाजमें जैसे हमने आग लगा दी थी। इस दुःखद दृश्यको देखकर हम स्वयं रोने लगे थे, परंतु करते क्या? परवश थे। हम उस कार्यसे विरत हो ही नहीं सकते थे।

यमराज इस घटनाको सुन कुछ देर चुप रहे और फिर बोले—तुम्हारी इस कारुणिक कथासे मैं स्वयं विचलित हो गया हूँ पर करूँ क्या? विधिके विधानकी रक्षाके लिये ही हमें और तुम्हें यह अप्रिय कार्य सौंपा गया है।

दूतने यह सुनकर पूछा—स्वामिन्! क्या ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिससे इस प्रकारकी दुःखद अकाल मृत्युसे प्राणियोंको मुक्ति मिल सके?

दूतका कथन सुनकर यमराजने उपर्युक्त विधिसे धनतेरसके पूजन और दीपदानकी चर्चा करते हुए कहा—इसके करनेसे मनुष्यको कभी अकाल मृत्युका सामना नहीं करना पड़ेगा। यही नहीं, जिस घरमें यह पूजन-विधान

किया जायगा, उस घरमें भी कोई अकाल मृत्यु नहीं होगी।

तभीसे धनतेरसके दिन यमराजके निमित्त दीपदानकी प्रथा चली आ रही है। दीपदानके समय इस मन्त्रको पढ़ना चाहिये—

मृत्युना पाशहस्तेन कालेन भार्यया सह।
त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्यजः प्रीयतामिति॥

(पद्मपु० उत्तरखण्ड १२२।५)

दूसरी कथा देव-दानवोंद्वारा समुद्र-मन्थनसे अमृत-कलश लिये प्रकट होनेवाले धन्वन्तरिसे सम्बद्ध है। जिन्होंने यज्ञभाग पानेके लिये भगवान् नारायणसे याचना की थी और भगवान् नारायणने कहा—यज्ञभाग जिन्हें मिलना था मिल चुका। अब कुछ नहीं हो सकता। तुम देवपुत्र हो, तुम्हें दूसरे जन्ममें जीवनकी सार्थकता प्राप्त होगी। तुम्हारे द्वारा आयुर्वेदका प्रचार-प्रसार होगा और तुम उसी शरीरसे देवत्व प्राप्त करोगे।

क्योंकि भगवान् धन्वन्तरिका प्राकट्य धनतेरसके दिन हुआ था, अतः उनकी जयन्तीके रूपमें धनतेरसको उनकी पूजा कर रोगविमुक्त स्वस्थ-जीवनकी याचना की जाती है।

दीपोत्सवपर्वका दूसरा दिन नरकचतुर्दशी अथवा रूपचौदसके रूपमें मनाया जाता है। इसे 'छोटी दिवाली' भी कहा जाता है। नरक न प्राप्त हो तथा पापोंकी निवृत्ति हो इस उद्देश्यसे प्रदोषकालमें चार बत्तियोंवाला दीपक जलाना चाहिये। दीपदानके समय निम्नलिखित मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

दत्तो दीपश्चतुर्दश्यां नरकप्रीतये मया।
चतुर्वर्तिसमायुक्तः सर्वपापापनुत्तये॥

पुराणोंके अनुसार आजहीके दिन भगवान् श्रीकृष्णने नरकासुरका वध कर संसारको भयमुक्त किया था। इस विजयकी स्मृतिमें यह पर्व मनाया जाता है। शास्त्रानुसार धनतेरस, नरकचतुर्दशी तथा दीपावलीका सम्बन्ध विशेषतः यमराजसे जुड़ा है। तीनों दिन उनके निमित्त दीपदान किया जाता है।

नरकचतुर्दशी मनानेकी विधि इस प्रकार है—इस दिन सूर्योदयसे पहले उठकर शौचादिसे निवृत्त हो तेल मालिशकर स्नान करना चाहिये। कहीं-कहीं हलमें लगी हुई मिट्टी, अपामार्ग, भटकटैया और तुम्बीको मस्तकपर घुमाकर स्नान करनेकी भी परिपाटी है। स्नानके पश्चात् यमराजके निमित्त तर्पण और जलाञ्जलि देनी चाहिये। जो मनुष्य इस दिन सूर्योदयके पश्चात् स्नान करते हैं अथवा सायंकाल यमराजके निमित्त दीपदान नहीं करते उनके शुभकर्मोंका नाश हो जाता है।

दीपोत्सवपर्वका तीसरा दिन दीपावलीके नामसे जाना जाता है। भारतमें मनाये जानेवाले सभी त्योहारोंमें इस पर्वका अपना विशेष स्थान है। इस पर्वके साथ हमारा युग-युगका इतिहास इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि चाहकर भी हम उन सब तथ्योंको विस्मृत नहीं कर सकते जो इतिहास-पुराणादिके माध्यमसे हमतक पहुँचे हैं।

स्कन्दपुराण, पद्मपुराण तथा भविष्यपुराणमें इसकी विभिन्न मान्यताएँ उपलब्ध होती हैं। कहीं महाराज पृथुद्वारा पृथ्वी-दोहन कर देशको धन-धान्यादिसे समृद्ध बना देनेके उपलक्ष्यमें दीपावली मनाये जानेका उल्लेख मिलता है तो कहीं आजके दिन समुद्र-मन्थनसे भगवती लक्ष्मीके प्रादुर्भूत होनेकी प्रसन्नतामें जनमानसके उल्लासका दीपोत्सवरूपमें प्रकटित होना वर्णित है। कहीं कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको भगवान् श्रीकृष्णद्वारा नरकासुरका वध कर उसके बन्दीगृहसे सोलह हजार राजकन्याओंका उद्धार करनेपर दूसरे अर्थात् अमावास्याके दिन भगवान् श्रीकृष्णका अभिनन्दन करनेके लिये सज्जित दीपमालाके रूपमें तथा कहीं (महाभारत आदिपर्वमें) पाण्डवोंके सकुशल वनवाससे लौटनेपर प्रजाजनोंद्वारा उनके अभिनन्दनार्थ दीपमालासे उनका स्वागत करनेके प्रसंगसे इस पर्वका सम्बन्ध जोड़ा गया है। कहीं श्रीरामके विजयोपलक्ष्यमें अयोध्यामें उनके स्वागतार्थ प्रज्वलित दीपमालासे प्रकृत दीपावलीका सम्बन्ध स्थापित किया गया है। कहीं सम्राट् विक्रमादित्यके विजयोपलक्ष्यमें जनताद्वारा दीपमालिका प्रज्वलित कर उनका अभिनन्दन करनेका उल्लेख है।

सनत्कुमारसंहिताके अनुसार वामनरूपधारी भगवान् विष्णुने कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीसे अमावास्यातक तीन दिनोंमें दैत्यराज बलिसे सम्पूर्ण लोक ले उसे पाताल जानेपर विवश किया था। सर्वस्व ले लेनेके पश्चात् भगवान् वामनने बलिसे इच्छित वर माँगनेको कहा तो बलिने लोककल्याणके लिये यह वर माँगा—'प्रभो! आपने मुझसे तीन दिनमें

तीनों लोक ग्रहण किये हैं। अतः मैं चाहता हूँ कि उपर्युक्त तीन दिनोंमें जो प्राणी मृत्युके देवता यमराजके उद्देश्यसे दीपदान करे उसे यमकी यातना न भोगनी पड़े और उसका घर कभी लक्ष्मीसे विहीन न हो।' श्रीमन्नारायणने राजा बलिके कथनको स्वीकार किया और तभीसे दीपोत्सव मनाने, यम-निमित्तक दीपदान करनेकी सरणिका प्रचलन हुआ। तीसरा दिन इस पर्वका प्रमुख दिन होता है; क्योंकि इस दिन भगवतीकी आरती दीपमालिका जलाकर की जाती है।

दीपावलीका सामाजिक और धार्मिक दोनों दृष्टियोंसे अप्रतिम महत्त्व है। सामाजिक दृष्टिसे इस पर्वका महत्त्व इसलिये है कि दीपावली आनेके पर्याप्त समय पूर्वसे ही घर-द्वारकी स्वच्छतापर ध्यान दिया जाने लगता है। घरका कूड़ा-करकट साफ किया जाता है। टूट-फूट सुधरवाकर घरकी दीवारोंपर सफेदी तथा दरवाजोंपर रंग-रोगन किया जाता है। जिससे न केवल उनकी आयु बढ़ जाती है, अपितु आकर्षण भी बढ़ जाता है। वर्षाकालीन अस्वच्छताका परिमार्जन हो जाता है। स्वच्छ और सुन्दर वातावरण शरीर और मस्तिष्कको नवचेतना तथा स्फूर्ति प्रदान करता है।

दीपावलीके दिन सम्पन्न धनकुबेरोंके घरोंसे लेकर श्रमिकोंकी झोपड़ियोंतकमें दीपावलीका प्रकाश किसी-न-किसी रूपमें अपनी प्रभा विकीर्ण करता हुआ अवश्य दृष्टिगोचर होता है। सभी वर्ण अपनी-अपनी क्षमताके अनुरूप इस पर्वकी अगवानी करते हैं और अपनी-अपनी स्थिति तथा मर्यादाके अनुसार इसके सर्वव्यापी आनन्दमें भाग लेते हैं। इसके साथ ही इस पर्वका जो सर्वाधिक आकर्षक सामाजिक महत्त्व है वह यह है कि इस दिन सम्पन्न और निर्धन दोनों ही पुरुषार्थसे प्रसन्न होनेवाली पराम्बा भगवती लक्ष्मीकी समाराधना कर उनकी कृपा-प्राप्तिकी आशा करते हैं। दीपावली चिरकालसे ही वर्ण, वर्ग एवं आश्रमकी मर्यादाका अतिक्रमण कर सबको समानरूपसे आनन्द-वितरण करती चली आ रही है। यद्यपि होली और विजयादशमीके समान इसमें आमोद-प्रमोदके विभिन्न साधन एकत्र नहीं हो पाते, तथापि यह कहा जा सकता है कि दीपावली जागरूकता और कर्मठताका जो सुभग संदेश देती है वह अन्य व्रतों और पर्वोंकी अपेक्षा कहीं अधिक उपादेय है।

दीपावलीके पर्वपर धनकी प्रभूत प्राप्तिके लिये धनकी अधिष्ठात्री धनदा भगवती लक्ष्मीकी समारोहपूर्वक इस प्रार्थनाके साथ षोडशोपचार पूजा की जाती है—

अश्वदायि गोदायि धनदायि महाधने।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामांश्च देहि मे॥
पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वाश्वतरी रथम्।
प्रजानां भवसि माता आयुष्मन्तं करोतु मे॥

(श्रीसूक्त १९-२०)

इसके साथ ही उनका आवाहन इस प्रकार किया जाता है—

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥

(श्रीसूक्त ४)

अर्थात् जिन भगवती लक्ष्मीका स्वरूप मन और वाणीके द्वारा न जान पानेके कारण अवर्णनीय है, जो निज मन्दहास्यसे सबको आह्लादित करनेवाली हैं, हिरण्यादि उपयोगी पदार्थोंद्वारा जो चारों ओरसे आवृत हैं, जो स्नेह तथा आर्द्र हृदयवाली हैं, उन तेजोमयी पूर्णकामा, भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाली, कमलपर विराजमान कमलके समान वर्णवाली भगवती लक्ष्मीका मैं आवाहन करता हूँ।

आर्ष वाङ्मयके अनुसार जो व्यक्ति दीपावलीको रात्रि-जागरण कर भगवती लक्ष्मीका शास्त्रीय विधिसे पूजन करता है। उसके गृहमें लक्ष्मीका निवास होता है तथा जो आलस्य और निद्राके वशीभूत हो भगवती धनदाके पूजनसे विमुख रहता है, उसके घरसे लक्ष्मी रूठकर चली जाती हैं। यहाँ जागरणसे अभिप्रेत है अपने उत्कृष्ट पुरुपार्थपर अवलम्बित रहना अथवा पुरुपार्थरत रहना और पुरुपार्थीको लक्ष्मीकी प्राप्ति होना अनिवार्य है; क्योंकि कहा गया है—

'उद्योगिनं पुरुपसिंहमुपैति लक्ष्मीः'

इस प्रकार दीपावलीका भारतीय पर्वोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। आवालवृद्ध महीनों पूर्वसे इसके आगमनकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते हैं और जब यह दीपावली आती है तब सोल्लास उसकी अगवानी करते हैं। इस पर्वको मनानेकी शास्त्रीय विधि इस प्रकार है—

दीपावलीके दिन मन और विचारोंको पवित्र कर

उत्साह और उल्लाससे परिपूर्ण हो भगवती धनदाके समाराधनार्थ प्रस्तुत होना चाहिये। प्रातः ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर दैनिक कृत्योंसे निवृत्त हो पितृगण तथा देवताओंका पूजन करना चाहिये। सम्भव हो तो दूध, दही और घृतसे पितरोंका पार्वणश्राद्ध करना चाहिये। यदि यह सम्भव न हो तो दिनभर उपवास कर गोधूलि वेलामें अथवा वृष, सिंह, वृश्चिक आदि स्थिर लग्नमें (प्रशस्त वृष और सिंह ही हैं) श्रीगणेश, कलश, षोडशमातृका एवं ग्रह-पूजनपूर्वक भगवती लक्ष्मीका षोडशोपचार-पूजन करना चाहिये। इसके अनन्तर महाकालीका दावातके रूपमें, महासरस्वतीका कलम, बही आदिके रूपमें तथा कुबेरका तुलाके रूपमें सविधि पूजन करना चाहिये। इसी समय दीपपूजन कर यमराज तथा पितृगणोंके निमित्त ससंकल्प दीपदान करना चाहिये। तत्पश्चात् घर-द्वार, बाग-बगीचे, स्नानागार, चौराहा आदि स्थानोंपर एवं नदियोंपर तैलपूर्ण

प्रज्वलित दीप रखने चाहिये। पावन-पूज्य स्थानों (तुलसीचौरा, मन्दिर आदि)-में घीके दीपक जलाने चाहिये। भगवती लक्ष्मीकी पूजा पवित्र वेदीकी रचना कर तथा उसपर रक्ताभ अष्टदल कमल बनाकर लक्ष्मीकी मूर्ति स्थापित करके करनी चाहिये। जिनके घरमें पृथक् पूजनकक्ष हो उन्हें उस कक्षको चित्र-विचित्र वस्त्रों, पत्र-पुष्पादिसे सुसज्जित कर वहाँ पूर्ण श्रद्धा तथा शक्तिके अनुसार एकत्रित पूजन-सामग्रीसे पराम्बा लक्ष्मीकी पूजा करनी चाहिये। पूजनके अनन्तर प्रदक्षिणा कर भगवतीको पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये। आधी रातके बाद घरकी स्त्रियाँ सूप आदि बजाकर अलक्ष्मी (दरिद्रा)-का निस्सारण करती हैं।

यह विश्वास है कि दीपावलीकी रात्रिमें विष्णुप्रिया लक्ष्मी सद्गृहस्थोंके घरोंमें विचरण कर यह देखती हैं कि हमारे निवासयोग्य घर कौन-कौनसे हैं? और जहाँ-कहीं उन्हें अपने निवासकी अनुकूलता दिखायी पड़ती है, वहीं रम जाती हैं। अतएव मानवको आजके दिन अपना घर ऐसा बनाना चाहिये जो भगवती लक्ष्मीके मनोनुकूल हो और जहाँ पहुँचकर वे अन्यत्र जानेका विचार भी अपने मनमें न लायें। भगवती लक्ष्मीको कौन-कौनसी वस्तुएँ प्रिय अथवा अप्रिय हैं इसका विवेचन अतीव कुशलतापूर्वक महाभारतादि ग्रन्थोंमें किया गया है। महाभारतमें स्पष्टरूपसे बताया गया है कि घरकी स्वच्छता, सुन्दरता और शोभा तो भगवती लक्ष्मीके निवासकी प्राथमिक आवश्यकता है ही, साथ ही उन्हें ये सब भी अपेक्षित हैं। जैसा कि देवी रुक्मिणीके यह पूछनेपर कि हे देवि! आप किन-किन स्थानोंपर रहती हैं, तथा किन-किनपर कृपाकर उन्हें अनुगृहीत करती हैं? स्वयं देवी लक्ष्मी बताती हैं*—

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे
दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने।
अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे
जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्णसत्त्वे॥
स्वधर्मशीलेषु च धर्मवित्सु
वृद्धोपसेवानिरते च दान्ते।
कृतात्मनि क्षान्तिपरे समर्थे
क्षान्तासु दान्तासु तथाबलासु॥
वसामि नारीषु पतिव्रतासु
कल्याणशीलासु विभूषितासु।

(महा०, अनु०, दानधर्मपर्व ११।६, १०, १४)

* इसी प्रकार एक बार महालक्ष्मीने भक्त प्रह्लादको बताया कि तेज, धर्म, सत्य, व्रत, बल एवं शील आदि मानवी गुणोंमें मेरा निवास रहता है। इन गुणोंमें भी शील अथवा चारित्र्य मुझे सर्वाधिक प्रिय है। मैं शीलवान् पुरुषोंका वरण करती हूँ। (महा०, शान्ति० १२४)

ऐसे ही एक बार लक्ष्मीने राजा बलिका परित्याग कर दिया था। इसका कारण देवराज इन्द्रको बताते हुए लक्ष्मीजीने कहा—सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम एवं धर्म जहाँ वास करते हैं, वहाँ मेरा निवास रहता है। (महा०, शान्ति० २२५)

अर्थात् मैं उन पुरुषोंके घरोंमें सतत निवास करती हूँ जो सौभाग्यशाली, निर्भीक, सच्चरित्र तथा कर्तव्यपरायण हैं। जो अक्रोधी, भक्त, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय तथा सत्त्वसम्पन्न होते हैं। जो स्वभावतः निज धर्म, कर्तव्य तथा सदाचरणमें सतर्कतापूर्वक तत्पर होते हैं। धर्मज्ञ और गुरुजनोंकी सेवामें सतत निरत रहते हैं। मनको वशमें रखनेवाले, क्षमाशील और सामर्थ्यशाली हैं। इसी प्रकार उन स्त्रियोंके घर प्रिय हैं जो क्षमाशील, जितेन्द्रिय, सत्यपर विश्वास रखनेवाली होती हैं तथा जिन्हें देखकर सबका चित्त प्रसन्न हो जाता है। जो शीलवती, सौभाग्यवती, गुणवती, पतिपरायणा, सबका मङ्गल चाहनेवाली तथा सद्गुणसम्पन्ना होती हैं।

भगवती लक्ष्मी किन व्यक्तियोंके घरोंको छोड़कर चली जाती हैं, इस विषयमें वे स्वयं देवी रुक्मिणीसे कहती हैं—

नाकर्मशीले पुरुषे वसामि
न नास्तिके साङ्करिके कृतघ्ने।
न भिन्नवृत्ते न नृशंसवर्णे
न चापि चौरे न गुरुष्वसूये॥
ये चाल्पतेजोबलसत्त्वमानाः
क्लिश्यन्ति कुप्यन्ति च यत्र तत्र।
न चैव तिष्ठामि तथाविधेषु
नरेषु संगुप्तमनोरथेषु॥

(महा० अनु० दान० ११। ७-८)

जो पुरुष अकर्मण्य, नास्तिक, वर्णसङ्कर, कृतघ्न, दुराचारी, क्रूर, चोर तथा गुरुजनोंके दोष देखनेवाला हो, उसके भीतर मैं निवास नहीं करती हूँ। जिनमें तेज, बल, सत्त्व और गौरवकी मात्रा बहुत थोड़ी है, जो जहाँ-तहाँ हर बातमें खिन्न हो उठते हैं, जो मनमें दूसरा भाव रखते हैं और ऊपरसे कुछ और ही दिखाते हैं, ऐसे मनुष्योंमें मैं निवास नहीं करती हूँ।

इसी प्रकार उन स्त्रियोंके घर भी मुझे प्रिय नहीं—

प्रकीर्णभाण्डामनवेक्ष्यकारिणीं
सदा च भर्तुः प्रतिकूलवादिनीम्॥
परस्य वेश्माभिरतामलज्जा-
मेवंविधां तां परिवर्जयामि।
पापामचोक्षामवलेहिनीं च
व्यपेतधैर्यां कलहप्रियां च॥
निद्राभिभूतां सततं शयाना-
मेवंविधां तां परिवर्जयामि।

(महा०, अनु०, दान० ११। ११—१३)

अर्थात् जो नारियाँ अपने गृहस्थीके सामानोंकी चिन्ता नहीं करतीं, बिना सोचे-विचारे काम करती हैं, पतिके प्रतिकूल बोलती हैं, पराये घरमें अनुराग रखती हैं, निर्लज्ज, पापकर्ममें रुचि रखनेवाली, अपवित्र, चटोरी, अधीर, झगड़ालू तथा सदा सोनेवाली हैं, ऐसी स्त्रियोंके घरको छोड़कर मैं चली जाती हूँ।

उपर्युक्त गुणोंका अभाव होनेपर अथवा दुर्गुणोंकी विद्यमानता होनेपर भले ही कितने ही सँभालके साथ लक्ष्मी-पूजन किया जाय, भगवती लक्ष्मीका निवास उनके गृहमें नहीं हो सकता।

दीपावलीकी एक कथा इस प्रकार प्राप्त होती है—

एक बार मुनियोंने सनत्कुमारजीसे पूछा—भगवन्! दीपावली लक्ष्मी-पूजाका पर्व है, फिर लक्ष्मी-पूजाके साथ अन्यान्य देवी-देवताओंकी पूजाका महत्त्व क्यों प्रतिपादित किया गया है? सनत्कुमारजीने बताया—राजा बलिका प्रताप जब समस्त भुवनोंमें फैल गया और उसने सभी देवताओंको बन्दी बना लिया था। उसके कारागारमें लक्ष्मीसहित सभी देवी-देवता बंद थे। कार्तिक कृष्णपक्षकी अमावास्याको वामनरूपधारी भगवान् विष्णुने जब बलिको बाँध लिया और सब देवी-देवता उसके कारागारसे मुक्त हुए, तब सबने क्षीरसागरमें जाकर शयन किया था। इसलिये दीपावलीके दिन लक्ष्मीके साथ उन सब देवताओंका पूजन कर उन सबके शयनका अपने घरमें उत्तम प्रबन्ध करना चाहिये, जिससे वे लक्ष्मीके साथ वहीं निवास करें, कहीं और न जायँ। नयी शय्या, नया विस्तर, कमल आदिसे सुसज्जित कर लक्ष्मीको शयन कराना चाहिये जो इस विधिसे लक्ष्मी-पूजन करते हैं, लक्ष्मी उनके यहाँ स्थिरभावसे निवास करती हैं।

इस पर्वका चौथा दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको मनाया जानेवाला गोवर्धन नामक पर्व है। इस दिन पवित्र होकर प्रातःकाल गोवर्धन तथा गोपेश भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करना चाहिये। गौओं और बैलोंको वस्त्राभूषणों तथा मालाओंसे सजाना चाहिये। गोवर्धनकी पूजाके समय अग्रलिखित मन्त्र बोलना चाहिये—

गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारक।
विष्णुवाहकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव॥

अर्थात् पृथ्वीको धारण करनेवाले गोवर्धन! आप गोकुलके रक्षक हैं। भगवान् श्रीकृष्णने आपको अपनी भुजाओंपर उठाया था। आप मुझे करोड़ों गौएँ प्रदान करें।

दूसरी बात यह है कि इस समयतक शरत्कालीन उपज परिपक्व होकर घरोंमें आ जाती है। भण्डार परिपूर्ण हो जाते हैं, अतः निश्चिन्त होकर लोग नयी उपजके शस्योंसे विभिन्न प्रकारके पदार्थ बनाकर श्रीमन्नारायणको समर्पित करते हैं। गव्य पदार्थोंको भी इस उत्सवमें सजा-सँवारकर निवेदित किया जाता है। गोमयका गोवर्धन (पर्वत) बना उसकी पूजा की जाती है। शारदीय उपजसे जो धान्य प्राप्त होते हैं, उनसे छप्पन प्रकारके भोग बनाकर श्रीमन्नारायणको समर्पित किये जाते हैं।

दीपोत्सवपर्वका समापन दिवस है कार्तिक शुक्ल द्वितीया, जिसे 'भैयादूज' कहा जाता है। शास्त्रोंके अनुसार भैयादूज अथवा यमद्वितीयाको मृत्युके देवता यमराजका पूजन किया जाता है। इस दिन बहनें भाईको अपने घर आमन्त्रित कर अथवा सायं उनके घर जाकर उन्हें तिलक करती हैं और भोजन कराती हैं। व्रजमण्डलमें इस दिन बहनें भाईके साथ यमुना-स्नान करती हैं, जिसका विशेष महत्त्व बताया गया है। भाईके कल्याण और वृद्धिकी इच्छासे बहनें इस दिन कुछ अन्य माङ्गलिक विधान भी करती हैं। यमुनातटपर भाई-बहनका समवेत भोजन कल्याणकारी माना जाता है। पौराणिक कथाके अनुसार इस दिन भगवान् यमराज अपनी बहन यमुनासे मिलने जाते हैं। उन्हींका अनुकरण करते हुए भारतीय भ्रातृ-परम्परा अपनी बहनोंसे मिलती है और उनका यथेष्ट सम्मान-पूजनादि कर उनसे आशीर्वादरूप तिलक प्राप्तकर कृतकृत्य होती है।

बहनोंको इस दिन नित्य कृत्यसे निवृत्त हो अपने भाईके दीर्घ जीवन, कल्याण एवं उत्कर्षहेतु तथा स्वयंके सौभाग्यके लिये अक्षत, कुंकुमादिसे अष्टदल कमल बनाकर इस व्रतका संकल्प कर मृत्युके देवता यमराजकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इसके पश्चात् यम-भगिनी यमुना, चित्रगुप्त और यमदूतोंकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर भाईको तिलक लगाकर भोजन कराना चाहिये। इस विधिके सम्पन्न होनेतक दोनोंको व्रती रहना चाहिये।

इस पर्वके सम्बन्धमें पौराणिक कथा इस प्रकार मिलती है—सूर्यको संज्ञासे दो संतानें थीं—पुत्र यमराज तथा पुत्री यमुना। संज्ञा सूर्यका तेज सहन न कर पानेके कारण अपनी छाया-मूर्तिका निर्माण कर उसे ही अपने पुत्र-पुत्रीको सौंप वहाँसे चली गयीं। छायाको यम और यमुनासे किसी प्रकारका लगाव न था, किंतु यम और यमुनामें बहुत प्रेम था। यमुना अपने भाई यमराजके यहाँ प्रायः जाती और उनके सुख-दुःखकी बातें पूछा करती। यमुना यमराजको अपने घरपर आनेके लिये कहती, किंतु व्यस्तता तथा दायित्वबोझके कारण वे उसके घर न जा पाते थे। एक बार कार्तिक शुक्ल द्वितीयाको यमराज अपनी बहन यमुनाके घर अचानक जा पहुँचे। बहन यमुनाने अपने सहोदर भाईका बड़ा आदर-सत्कार किया। विविध व्यञ्जन बनाकर उन्हें भोजन कराया तथा उनके भालपर तिलक लगाया। यमराज अपनी बहनद्वारा किये गये सत्कारसे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने यमुनाको विविध भेंट समर्पित की। जब वे वहाँसे चलने लगे, तब उन्होंने यमुनासे कोई भी मनोवाञ्छित वर माँगनेका अनुरोध किया। यमुनाने उनके आग्रहको देखकर कहा—भैया! यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो यही वर दीजिये कि आजके दिन प्रतिवर्ष आप मेरे यहाँ आया करें और मेरा आतिथ्य स्वीकार किया करें। इसी प्रकार जो भाई अपनी बहनके घर जाकर उसका आतिथ्य स्वीकार करे तथा उसे भेंट दे, उसकी सब अभिलाषाएँ आप पूर्ण किया करें और उसे आपका भय न हो।

यमुनाकी प्रार्थनाको यमराजने स्वीकार कर लिया। तभीसे बहन-भाईका यह त्योहार मनाया जाने लगा। वस्तुतः इस त्योहारका मुख्य उद्देश्य है भाई-बहनके मध्य सौमनस्य और सद्भावनाका पावन प्रवाह अनवरत प्रवाहित रखना तथा एक-दूसरेके प्रति निष्कपट प्रेमको प्रोत्साहित करना।

समष्टिरूपमें स्वास्थ्यसम्पद्, रूपसम्पद्, धनसम्पद्, शस्यसम्पद्, शक्तिसम्पद् तथा उल्लास और आनन्दको परिवर्धित करनेवाले 'दीपावलीपर्व' का धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रिय महत्त्व अनुपम है और वही इसे पर्वराज बना देता है।

अन्नकूट-महोत्सव

[कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा]

कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको अन्नकूट-महोत्सव मनाया जाता है। इस दिन गोवर्धनकी पूजा कर अन्नकूटका उत्सव मनाना चाहिये। इससे भगवान् विष्णुकी प्रसन्नता प्राप्त होती है—

कार्तिकस्य सिते पक्षे अन्नकूटं समाचरेत्।
गोवर्धनोत्सवं चैव श्रीविष्णुः प्रीयतामिति॥

इस दिन प्रातःकाल घरके द्वारदेशमें गौके गोबरका गोवर्धन बनाये तथा उसे शिखरयुक्त बनाकर वृक्ष-शाखादिसे संयुक्त और पुष्पोंसे सुशोभित करे। अनेक स्थानोंमें इसे मनुष्यके आकारका भी बनाते हैं। इसके बाद गन्ध-पुष्पादिसे गोवर्धनभगवान्का षोडशोपचारपूर्वक पूजन कर निम्न प्रार्थना करनी चाहिये—

गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारक।
विष्णुबाहुकृतोच्छ्राय गवां कोटिप्रदो भव॥

इसके बाद आभूषणोंसे सुसज्जित गौओंका यथाविधि पूजन करे और निम्न मन्त्रसे उनकी प्रार्थना करे—

लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता।
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु॥

इस दिन यथासामर्थ्य छप्पन प्रकारके व्यञ्जन बनाकर गोवर्धनरूप श्रीभगवान्को भोग लगाया जाता है। इसके बाद प्रसादरूपमें भक्तोंमें वितरित किया जाता है। रातमें गौसे गोवर्धनका उपमर्दन कराया जाता है, मन्दिरोंमें विविध प्रकारके पक्वान्न, मिठाइयाँ, नमकीन और अनेक प्रकारकी सब्जियाँ, मेवे, फल आदि भगवान्के समक्ष सजाये जाते हैं तथा अन्नकूटका भोग लगाकर आरती होती है, फिर भक्तोंमें प्रसाद-वितरण किया जाता है। व्रजमें इसकी विशेषता है। काशी, मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, बरसाना, नाथद्वारा आदि भारतके प्रमुख मन्दिरोंमें लड्डुओं तथा पक्वान्नोंके पहाड़ (कूट) बनाये जाते हैं, जिनके दर्शनके लिये विभिन्न स्थानोंसे यात्री पधारते हैं।

इस महोत्सवकी कथा इस प्रकार है—

द्वापरमें व्रजमें अन्नकूटके दिन इन्द्रकी पूजा होती थी। श्रीकृष्णने गोप-ग्वालोंको समझाया कि गायें और गोवर्धन प्रत्यक्ष देवता हैं, अतः तुम्हें इनकी पूजा करनी चाहि क्योंकि इन्द्र तो कभी यहाँ दिखायी भी नहीं देते अबतक उन्होंने कभी आपलोगोंके बनाये पक्वान्न ग्रहण नहीं किये। फलस्वरूप उनकी प्रेरणासे सभी व्रजवासि गोवर्धनका पूजन किया। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने गोवर्धन रूप धारणकर उस पक्वान्नको ग्रहण किया।

जब इन्द्रको यह बात ज्ञात हुई तो वे अत्य क्रुद्ध होकर प्रलयकालके सदृश मुसलाधार वृष्टि क लगे। यह देख श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वतको अपनी अँगुली धारण किया, उसके नीचे सब व्रजवासी, ग्वाल बाल, गायें-बछड़े आदि आ गये। लगातार सात दिन वर्षासे जब व्रजपर कोई भी प्रभाव न पड़ा तो इन्द्र बड़ी ग्लानि हुई। ब्रह्माजीने इन्द्रको श्रीकृष्णके परमब्र परमात्मा होनेकी बात बतायी तो लज्जित हो इन्द्रने व्र आकर श्रीकृष्णसे क्षमा माँगी। इस अवसरपर ऐरावत आकाशगङ्गाके जलसे और कामधेनुने अपने दूध भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक किया, जिससे वे 'गोविन्द कहे जाने लगे। इस प्रकार गोवर्धन-पूजन स्वयं श्रीभगवान् पूजन है।

गोवर्धन-पूजनका रहस्य

जीवमें जैसे-जैसे अहंकार जड़ जमाता जाता है, वैसे-वैसे उसे पतनकी गहराईकी ओर घसीटता जाता है और वञ्चित जीवको उसका पतातक नहीं होता। देवताओंके राजा इन्द्र भी इस अहंकारकी चपेटमें आ गये थे। परिणाम यह हुआ कि वे परब्रह्म परमात्माको मरणधर्मा 'मनुष्य', उनके चिन्मय तत्त्वोंको 'जड' और लीला-सहचरोंको 'जंगली' मान बैठे थे।[1] इस तरह देवराजमें असुरताके बीज अहंकारका स्तर अत्यन्त उग्र होता गया।

दयावश भगवान् श्रीकृष्णने एक ओर तो इन्द्रके इस रोगकी चिकित्सा करनी चाही और दूसरी ओर गोवर्धनगिरिकी 'चिन्मयता' भी व्यक्त कर देनेकी उनकी इच्छा हुई। अत: नन्दबाबासे कहकर उन्होंने 'इन्द्रयाग' पर रोक लगा दी और उन्हीं समस्त पूजन-सम्भारोंसे गोवर्धनकी पूजा करायी। भगवान्‌की यह योजना शंकरजीको बहुत अच्छी लगी। वे दल-बल-सहित इस गिरिपूजनमें सम्मिलित हुए—

धत्तूरभङ्गाविषपानविह्वलो
हिमाद्रिपुत्रीसहितो गणावृतः।
आरुह्य नन्दीश्वरमादिवाहनं
समाययौ श्रीगिरिराजमण्डलम्॥
(गर्गसंहिता, गिरि० खं० २।१४)

गोवर्धनपूजाका यह औचित्य राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों, देवर्षियों और सिद्धोंसे भी छिपा न था। वे भी बड़ी प्रसन्नतासे इस समारोहमें उपस्थित हुए। देवगिरि सुमेरु और नगाधिराज हिमालयके लिये भी गोवर्धनगिरिकी चिन्मयता व्यक्त ही थी। इसलिये उनमें जातिगत ईर्ष्या या द्वेष नहीं जगा और वे भी बड़ी प्रसन्नतासे गोवर्धनके पूजन-समारोहमें उपस्थित हुए।

पूजनके समय स्वयं भगवान्‌ने एक विशाल रूप धारण कर अपनेको 'गोवर्धन' घोषित किया और इस तरह उन्होंने गोवर्धनगिरिसे अपनी 'अभिन्नता' प्रकट की। देवता और मनुष्य भी इससे कम प्रसन्न नहीं हुए। इन्होंने फूलों और खीलोंकी मुक्तहस्त वर्षा प्रारम्भ कर दी।[2] किंतु देवराजके अहंकारका पर्दा इतना घना हो चुका था कि वे गिरिराजकी भगवद्रूपता तनिक भी आँक न पाये, प्रत्युत ईर्ष्या और क्रोधसे जल उठे। प्रलयकारी मेघोंको आज्ञा दे बैठे कि वे व्रजको ध्वंस कर दें। स्वयं भी ऐरावतपर चढ़कर मरुद्गणोंके साथ मेघोंकी सहायतामें आ डटे। इधर, भगवान्‌ने गोवर्धन-पर्वत एक ही हाथपर उठा इन्द्रकी सम्पूर्ण प्रलयङ्करी वर्षा निरर्थक कर दी। भगवान्‌ने मनसे ही शेष और सुदर्शनको आज्ञा दी और वे दोनों तत्क्षण वहाँ आकर उपस्थित हुए। चक्रने पर्वतके ऊपर स्थित हो जलसम्पात पी लिया और नीचे कुण्डलाकार हो शेषजीने सारा जलप्रवाह रोक दिया। गड्ढेके भीतर एक बूँद भी जल न जा सका—

जलौघमागतं वीक्ष्य भगवांस्तद्गिरेरधः।
सुदर्शनं तथा शेषं मनसाज्ञां चकार ह॥
कोटिसूर्यप्रभं चाद्रेरूर्ध्वं चक्रं सुदर्शनम्।
धारासम्पातमपिबदगस्त्य इव मैथिल॥
अधोऽधस्तं गिरिं शेषः कुण्डलीभूत आस्थितः।
रुरोध तज्जलं दीर्घं यथा वेला महोदधिम्॥
(गर्गसंहिता, गिरि० खं० ३।२०—२२)

जब इन्द्रने अपनी सारी शक्ति लगाकर देख लिया कि मनकी बात नहीं हुई, तब उनका अहंकार जाता रहा और उन्हें वस्तुस्थितिका ठीक-ठीक बोध हुआ। फिर तो वे अपनेको ही अपराधी पाकर भयभीत भी हो उठे और सीधे भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर आ गिरे। अब उन्हें श्रीकृष्णके शुद्ध सत्त्वमय ज्ञानघन स्वरूपका परिज्ञान हुआ और वे यह भी जान सके कि किस प्रकार उनके भीतर अहंकार

१-..............................गोपानां काननौकसाम्। कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम्॥ (श्रीमद्भा० १०।२५।३)

२-देवेषु वर्षत्सु च पुष्पवर्षं जनेषु वर्षत्सु च लाजसंघम्।
शैलोऽस्मि लोकानिति भाषयन् सन् जघास सर्वं कृतमन्नकूटम्॥ (गर्गसंहिता, गिरि० खं० २।२०-२१)

विध्वंसका कार्य कर रहा था। भगवान् श्रीकृष्णने इन्द्रको
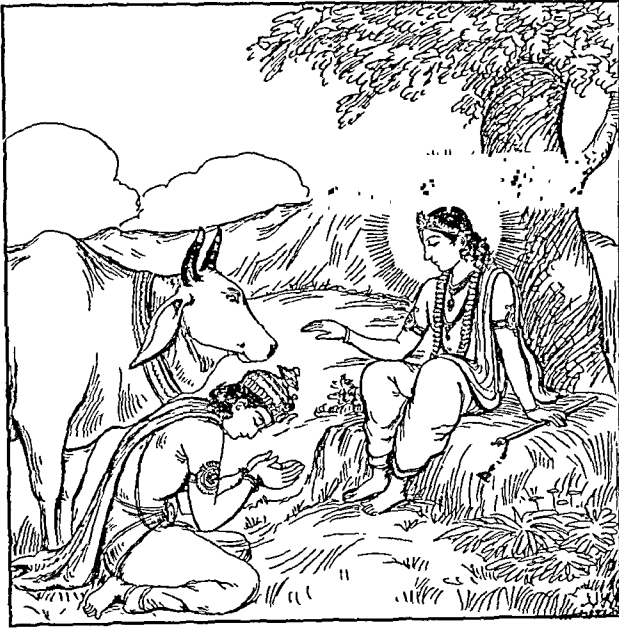
क्षमा कर दिया और इन्द्रने भी आकाश-गङ्गाके जलसे श्रीकृष्णका अभिषेक किया। इस प्रकार गोकुलकी की गयी रक्षासे कामधेनु भी बहुत प्रसन्न हुई और उसने अपनी दुग्धधारासे भगवान्‌का अभिषेक किया। इन अभिषेकोंको देखकर गिरिराज गोवर्धनके हर्षका ठिकाना न रहा और वह द्रवीभूत हो बह चला। तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर अपना करकमल उसपर रखा, जिसका चिह्न आज भी दीखता है—

तद्धस्तचिह्नमद्यापि दृश्यते तद्गिरौ नृप।

(गर्गसंहिता, गिरि० खं० ४।१२)

गोवर्धनकी चिन्मयताका स्पष्टीकरण गर्गसंहितामें हुआ है। अवतारके समय भगवान्‌ने राधासे साथ चलनेको कहा था। उसपर राधाजीने कहा था कि वृन्दावन, यमुना और गोवर्धनके बिना मेरा मन पृथिवीपर न लगेगा। यह सुन श्रीकृष्णने अपने हृदयकी ओर दृष्टि डाली थी, जिससे तत्क्षण एक सजल तेज निकलकर 'रासभूमि' पर जा गिरा था और वही पर्वतके रूपमें परिणत हो गया था। यह रत्नमय शृङ्गों, सुन्दर झरनों, कदम्ब आदि वृक्षों एवं कुञ्जोंसे सुशोभित था। उसमें अन्य भी नाना प्रकारकी दिव्य सामग्रियाँ उपस्थित थीं, जिन्हें देखकर राधाजी बहुत प्रसन्न हुईं।

इसी संदर्भमें एक और कथा है। भगवान्‌की प्रेरणासे शाल्मलीद्वीपमें द्रोणाचलकी पत्नीमें गोवर्धनका जन्म हुआ। भगवान्‌के जानुसे वृन्दावन और उनके वामस्कन्धसे यमुना प्रकट हुईं। गोवर्धनको भगवद्रूप जानकर ही सुमेरु, हिमालय आदि पर्वतोंने उसकी पूजा की और उसे गिरिराज बना उसका स्तवन भी किया।

एक समय तीर्थयात्राके प्रसंगमें पुलस्त्यजी वहाँ आये। वे गिरिराज गोवर्धनको देख मुग्ध हो उठे और द्रोणके पास जाकर उन्होंने कहा—'मैं काशीनिवासी हूँ। एक याचना लेकर आपके पास आया हूँ। आप अपने इस पुत्रको मुझे दे दें। मैं इसे काशीमें स्थापित कर वहीं तप करूँगा।' इसपर द्रोण पुत्रके स्नेहसे कातर तो हो उठे, पर वे ऋषिकी माँग ठुकरा न सके। तब गोवर्धनने मुनिसे कहा—'मैं दो योजन ऊँचा और पाँच योजन चौड़ा हूँ। आप मुझे कैसे ले चल सकेंगे।' मुनिने कहा—'मैं तुम्हें हाथपर उठाये चला चलूँगा'—

उपविश्य करे मे त्वं गच्छ पुत्र यथासुखम्।
वाहयामि करे त्वां वै यावत् काशीसमागमः॥

(गर्गसंहिता, वृन्दावनखं० २।३१)

गोवर्धनने कहा—'महाराज! एक शर्त है। यदि आप मार्गमें मुझे कहीं रख देंगे तो मैं उठ नहीं सकूँगा।' मुनिने यह शर्त स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् पुलस्त्य मुनिने हाथपर गोवर्धन उठाकर काशीके लिये प्रस्थान किया। मार्गमें व्रजभूमि मिली, जिसपर गोवर्धनकी पूर्वस्मृतियाँ जाग उठीं। वह सोचने लगा कि भगवान् श्रीकृष्ण राधाके साथ यहीं अवतीर्ण हो बाल्य और कैशोर आदिकी बहुत-सी मधुर लीलाएँ करेंगे! उस अनुपम रसके बिना मैं रह न सकूँगा। ऐसे विचार उत्पन्न होते ही वह भारी होने लगा, जिससे मुनि थक गये। इधर, लघुशंकाकी भी प्रवृत्ति हुई। पश्चात् स्नान आदिसे निवृत्त होकर जब वे गोवर्धनको पुनः उठाने लगे, तब वह न उठा। गोवर्धनने मुनिको अपनी शर्तकी याद दिलायी और कहा—'अब मैं यहाँसे डिगनेका नहीं।' इसपर मुनिको क्रोध हो आया और वे उसे शाप दे बैठे—'तुमने मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं किया, इसलिये तुम प्रतिदिन तिल-तिल घटते जाओगे।' उसी शापसे गिरिराज गोवर्धन आज भी तिल-तिल घटता ही जा रहा है—

नित्यं संक्षीयते नन्द तिलमात्रं दिने दिने॥

(गर्गसंहिता, वृन्दावनखं० २।४१)

इतना होनेपर भी, जबतक गङ्गा और गोवर्धन पृथिवीपर हैं, तबतक पृथिवीमें कलिका प्रभाव पूर्णरूपसे न जम सकेगा। इस तरह गिरिराजकी 'चिन्मयता' सुस्पष्ट हो जानेसे उसकी महत्ता स्वयं व्यक्त हो जाती है।

एक कथा है कि एक ब्राह्मण अपना ऋण वसूल करने मथुरा आया। लौटते समय उसने गिरिराजका एक गोल पत्थर भी साथ ले लिया। मार्गमें एक भयानक राक्षसने उसे घेरा। इसपर वह ब्राह्मण काँप उठा। वह इतना अधिक घबरा गया कि उसका हिलना-डोलना भी कठिन हो गया और वह रो पड़ा। राक्षस मुँह बाये सामने खड़ा था। ब्राह्मणने गोवर्धनका वह पाषाणखण्ड ही उसपर दे मारा। गोवर्धनके इस पाषाणखण्डकी 'चिन्मयता' का ही यह अद्भुत प्रभाव था कि उसके स्पर्शमात्रसे राक्षसको नीच योनिसे छुटकारा मिल गया और उसकी काया दिव्य हो गयी। साथ ही, नभोमार्गसे तत्क्षण एक दिव्य विमान उतरा, जिसमें चढ़कर वह राक्षस 'गोलोक' चला गया। अतः गन्धमादनकी यात्रा अथवा अन्य नाना प्रकारके पुण्यों एवं तपस्याओंका जो फल प्राप्त होता है, उससे भी कोटिगुण अधिक फल गोवर्धनके दर्शनमात्रसे होना शास्त्रोंमें लिखा है।
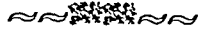
यमद्वितीया (भैयादूज)

[कार्तिक शुक्ल द्वितीया]

कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी द्वितीया 'यमद्वितीया' या 'भैयादूज' कहलाती है। इसे अपराह्णव्यापिनी ग्रहण करना चाहिये। इस दिन यमुना-स्नान, यम-पूजन और बहनके घर भाईका भोजन विहित है और शास्त्रीय मतके अनुसार मृत्युदेवता यमराजकी पूजा होती है।

आजके दिन व्रती बहनोंको प्रातः स्नानादिके अनन्तर अक्षतादिसे निर्मित अष्टदल कमलपर गणेशादिका स्थापन करके यम, यमुना, चित्रगुप्त तथा यमदूतोंके पूजनके अनन्तर निम्न मन्त्रसे यमराजकी प्रार्थना करनी चाहिये—

धर्मराज नमस्तुभ्यं नमस्ते यमुनाग्रज।
पाहि मां किङ्करैः सार्धं सूर्यपुत्र नमोऽस्तु ते॥

निम्न मन्त्रसे यमुनाजीकी प्रार्थना करे—

यमस्वसर्नमस्तेऽस्तु यमुने लोकपूजिते।
वरदा भव मे नित्यं सूर्यपुत्रि नमोऽस्तु ते॥

निम्न मन्त्रसे चित्रगुप्तकी प्रार्थना करनी चाहिये—

मसिभाजनसंयुक्तं ध्यायेत्तं च महाबलम्।
लेखनीपट्टिकाहस्तं चित्रगुप्तं नमाम्यहम्॥

इसके बाद शङ्ख, ताम्रपात्र या अञ्जलिमें जल, पुष्प और गन्धाक्षत लेकर यमराजके निमित्त निम्न मन्त्रसे अर्घ्य दे—

एह्येहि मार्तण्डज पाशहस्त यमान्तकालोकधरामरेश।
भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगवन्नमस्ते॥

तत्पश्चात् बहनको चाहिये कि वह भाईको एक शुभ आसनपर बैठाकर उसके हाथ-पैर धुलाये। गन्धादिसे उसका पूजन करे और विभिन्न प्रकारके उत्तम व्यञ्जन परोसकर उसका अभिनन्दन करे।

इसके बाद भाई बहनको यथासामर्थ्य अन्न-वस्त्र-आभूषणादि देकर उसका शुभाशिष प्राप्त करे। इस व्रतसे भाईकी आयुवृद्धि और बहनको सौभाग्यसुखकी प्राप्ति होती है। भारतीय संस्कृतिमें बहन दयाकी मूर्ति मानी गयी है। अतः शुभाशीर्वादपूर्वक उसके हाथसे भोजन करना आयुवर्धक तथा आरोग्यकारक है। शुद्ध प्रेमके प्रतीक इस उत्सवको बड़े प्रेमसे मनाना चाहिये।

कथा—यम और यमुना भगवान् सूर्यकी संतान हैं। दोनों भाई-बहनोंमें अतिशय प्रेम था। परंतु यमराज यमलोककी शासन-व्यवस्थामें इतने व्यस्त रहते कि यमुनाजीके घर ही न जा पाते। एक बार यमुनाजी यमसे मिलने आयीं। बहनको आया देख यमदेव बहुत प्रसन्न हुए और बोले—बहन! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे जो भी वरदान माँगना चाहो, माँग लो। यमुनाने कहा—भैया! आजके दिन जो मुझमें स्नान करे, उसे यमलोक न जाना पड़े। यमराजने कहा—बहन! ऐसा ही होगा। उस दिन कार्तिक शुक्ल द्वितीया थी। इसीलिये इस तिथिको यमुनास्नानका विशेष महत्त्व है।

कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिको यमुनाने

अपने घर अपने भाई यमको भोजन कराया और यमलोकमें बड़ा उत्सव हुआ, इसलिये इस तिथिका नाम 'यमद्वितीया' है। अतः इस दिन भाईको अपने घर भोजन न कर बहनके घर जाकर प्रेमपूर्वक उसके हाथका बना हुआ भोजन करना चाहिये। इससे बल और पुष्टिकी वृद्धि होती है। इसके बदले बहनको स्वर्णालंकार, वस्त्र तथा द्रव्य आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। यदि अपनी सगी बहन न हो तो पिताके भाईकी कन्या, मामाकी पुत्री, मौसी अथवा बुआकी बेटी-- ये भी बहनके समान हैं, इनके हाथका बना भोजन करे जो पुरुष यमद्वितीयाको बहनके हाथका भोजन करता है, उसे धन, यश, आयुष्य, धर्म, अर्थ और अपरिमित सुखकी प्राप्ति होती है।

सूर्यषष्ठी-महोत्सव

[कार्तिक शुक्ल षष्ठी]

(श्रीमती शैलकुमारीजी मिश्र)

भारतके बिहार प्रान्तका सर्वाधिक प्रचलित एवं पावन पर्व है—सूर्यषष्ठी। 'सूर्यषष्ठी' प्रमुखरूपसे भगवान् सूर्यका व्रत है। इस व्रतमें सर्वतोभावेन भगवान् सूर्यकी पूजा की जाती है। पुराणों तथा धर्मशास्त्रोंमें विभिन्न रूपोंमें ईश्वरकी उपासनाके लिये प्रायः पृथक्-पृथक् दिन एवं तिथियोंका निर्धारण किया गया है। जैसे गणेशकी पूजाके लिये चतुर्थी तिथिकी प्रसिद्धि है। श्रीविष्णुके लिये एकादशी तिथि प्रशस्त मानी गयी है। इसी प्रकार सूर्यके साथ सप्तमी तिथिकी संगति है। यथा—सूर्यसप्तमी, रथसप्तमी, अचलासप्तमी इत्यादि। किंतु बिहारके इस व्रतमें सूर्यके साथ षष्ठी तिथिका समन्वय विशेष महत्त्वका है।

हमारी परम्पराओंकी जड़ें बहुत गहरी हैं। अतः जितनी भी भारतीय परम्पराएँ प्रचलित हैं, प्रायः उन सभीका मूल स्रोत कहीं-न-कहीं पौराणिक कथाओंमें अवश्य उपलब्ध होता है। श्वेताश्वतरोपनिषद्में परमात्माकी मायाको 'प्रकृति' और मायाके स्वामीको 'मायी' कहा गया है। यह प्रकृति ब्रह्मस्वरूपा, मायामयी और सनातनी है। ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्डके अनुसार परमात्माने सृष्टिके लिये योगका अवलम्बन लेकर अपनेको दो भागोंमें विभक्त किया। दक्षिणभागसे पुरुष और वामभागसे प्रकृतिका आविर्भाव हुआ। यहाँ 'प्रकृति' शब्दकी व्याख्या कई प्रकारसे की गयी है। प्रकृतिके 'प्र' का अर्थ है प्रकृष्ट और 'कृति' का अर्थ है सृष्टि अर्थात् प्रकृष्ट सृष्टि। दूसरी व्याख्याके अनुसार 'प्र' का सत्त्वगुण, 'कृ' का रजोगुण और 'ति' का तमोगुण अर्थ किया गया है। इन्हीं तीनों गुणोंकी साम्यावस्था ही प्रकृति है—

त्रिगुणात्मस्वरूपा या सर्वशक्तिसमन्विता।
प्रधानसृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड १।६)

उपर्युक्त पुराणके अनुसार सृष्टिकी अधिष्ठात्री ये ही प्रकृतिदेवी स्वयंको पाँच भागोंमें विभक्त करती हैं—दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री। ये पाँच देवियाँ पूर्णतम प्रकृति कहलाती हैं। इन्हीं प्रकृतिदेवीके अंश, कला, कलांश और कलांशांश भेदसे अनेक रूप हैं, जो विश्वकी समस्त स्त्रियोंमें दिखायी देते हैं। मार्कण्डेयपुराणका भी यही उद्घोष है—'**स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।**' प्रकृतिदेवीके एक प्रधान अंशको 'देवसेना' कहते हैं, जो सबसे श्रेष्ठ मातृका मानी जाती हैं। ये समस्त लोकोंके बालकोंकी रक्षिका देवी हैं। प्रकृतिका छठा अंश होनेके कारण इन देवीका एक नाम 'षष्ठी' भी है।

षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च षष्ठी प्रकीर्तिता।
बालकाधिष्ठातृदेवी विष्णुमाया च बालदा॥
आयुःप्रदा च बालानां धात्री रक्षणकारिणी।
सततं शिशुपार्श्वस्था योगेन सिद्धियोगिनी॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड ४३।४, ६)

ब्रह्मवैवर्तपुराणके इन श्लोकोंसे ज्ञात होता है कि विष्णुमाया षष्ठीदेवी बालकोंकी रक्षिका एवं आयुप्रदा हैं।

षष्ठीदेवीके पूजनका प्रचार पृथ्वीपर कबसे हुआ, इस संदर्भमें एक कथा इस पुराणमें आयी है—'प्रथम मनु स्वायम्भुवके पुत्र प्रियव्रतको कोई संतान न थी। एक बार

महाराजने महर्षि कश्यपसे अपना दु:ख व्यक्त किया और पुत्रप्राप्तिका उपाय पूछा। महर्षिने महाराजको पुत्रेष्टियज्ञ करनेका परामर्श दिया। यज्ञके फलस्वरूप महाराजकी मालिनी नामक महारानीने यथावसर एक पुत्रको जन्म दिया, किंतु वह शिशु मृत था। महारानीको मृत-प्रसव हुआ है, इस समाचारसे हर्षका स्थान अवसादने ले लिया। पूरे नगरमें शोक व्याप्त हो गया। महाराज प्रियव्रतके ऊपर तो मानो वज्रपात ही हुआ हो। वे शिशुके मृत शरीरको अपने वक्षसे लगाये उन्मत्तोंकी भाँति प्रलाप कर रहे थे। परिजन किंकर्तव्यविमूढ खड़े थे। किसीमें इतना भी साहस नहीं था कि वह और्ध्वदैहिक क्रियाके लिये बालकके शवको राजासे अलग कर सके। तभी एक आश्चर्यजनक घटना घटी। सभीने देखा कि आकाशसे एक ज्योतिर्मय विमान पृथ्वीकी ओर आ रहा है। विमानके समीप आनेपर स्थिति और स्पष्ट हुई, उस विमानमें एक दिव्याकृति नारी बैठी हुई थी। राजाके द्वारा यशोचित स्तुति करनेपर देवीने कहा—मैं ब्रह्माकी मानसपुत्री षष्ठीदेवी हूँ। मैं विश्वके समस्त बालकोंकी रक्षिका हूँ एवं अपुत्रोंको पुत्र प्रदान करती हूँ—'पुत्रदाऽहम् अपुत्राय।' इतना कहकर देवीने शिशुके मृत शरीरका स्पर्श किया, जिससे वह बालक जीवित हो उठा। महाराजके प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे अनेक प्रकारसे षष्ठीदेवीकी स्तुति करने लगे। देवीने भी प्रसन्न होकर राजासे कहा—तुम ऐसी व्यवस्था करो, जिससे पृथ्वीपर सभी हमारी पूजा करें। इतना कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं। तदनन्तर राजाने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक देवीकी इस आज्ञाको शिरोधार्य किया और अपने राज्यमें 'प्रतिमासके शुक्लपक्षकी 'षष्ठी' तिथिको षष्ठी-महोत्सवके रूपमें मनाया जाय'— ऐसी राजाज्ञा प्रसारित करायी। तभीसे लोकमें बालकोंके जन्म, नामकरण, अन्नप्राशन

इस पौराणिक प्रसंगसे यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि षष्ठी शिशुओंके संरक्षण एवं संवर्धनसे सम्बन्धित देवी हैं तथा इनकी विशेष पूजा षष्ठी तिथिको होती है, वह चाहे बच्चोंके जन्मोपरान्त छठा दिन हो या प्रत्येक चान्द्रमासके शुक्लपक्षकी षष्ठी। पुराणोंमें इन्हीं देवीका एक नाम 'कात्यायनी' भी मिलता है, जिनकी पूजा नवरात्रमें षष्ठी तिथिको होती है—'**षष्ठं कात्यायनीति च।**'

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें वर्णित इस आख्यानसे षष्ठीदेवीका माहात्म्य, पूजन-विधि एवं पृथ्वीपर इनकी पूजाका प्रसार आदि विषयोंका सम्यक् ज्ञान होता है, किंतु सूर्यके साथ षष्ठीदेवीके पूजनका विधान तथा 'सूर्यषष्ठी' नामसे पर्वके रूपमें इसकी ख्याति कबसे हुई? यह विचारणीय विषय है। भविष्यपुराणमें प्रतिमासके तिथि-व्रतोंके साथ षष्ठीव्रतका भी उल्लेख मिलता है। यहाँ कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी षष्ठीका उल्लेख स्कन्द-षष्ठीके नामसे किया गया है, किंतु इस व्रतके विधानमें और लोकमें प्रचलित सूर्यषष्ठी-व्रतके विधानमें पर्याप्त अन्तर है। मैथिल 'वर्षकृत्यविधि' में 'प्रतिहार-षष्ठी' के नामसे बिहारमें प्रसिद्ध 'सूर्यषष्ठीव्रत' की चर्चा की गयी है। इस ग्रन्थमें व्रत, पूजाकी पूरी विधि, कथा तथा फलश्रुतिके साथ ही तिथियोंके क्षय एवं वृद्धिकी दशामें कौन-सी षष्ठी तिथि ग्राह्य है, इस विषयपर भी धर्मशास्त्रीय दृष्टिसे साङ्गोपाङ्ग चर्चा की गयी है और अनेक प्रामाणिक स्मृतिग्रन्थोंसे पुष्कल प्रमाण भी दिये गये हैं। सम्प्रति इस व्रतके अवसरपर लोकमें जिन परम्परागत नियमोंका अनुपालन किया जाता है, उनमें इसी ग्रन्थका सर्वथा अनुसरण दृष्टिगत होता है। कथाके अन्तमें 'इति श्रीस्कन्दपुराणोक्तप्रतिहारषष्ठीव्रतकथा समाप्ता' लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि 'स्कन्दपुराण' के किसी संस्करणमें इस व्रतका उल्लेख अवश्य हुआ होगा। अत: इस व्रतकी

व्रतका माहात्म्य, विधि तथा कथाका उपदेश करते हैं। यहाँ उक्त कथाके अनुसार एक राजा हैं, जो कुष्ठरोगग्रस्त एवं राज्यविहीन हैं, वे किसी विद्वान् ब्राह्मणके आदेशानुसार इस व्रतको करते हैं, जिसके फलस्वरूप वे रोगमुक्त होकर पुनः राज्यारूढ एवं समृद्ध हो जाते हैं। पञ्चमीयुक्त षष्ठीका यहाँ सर्वथा निषेध किया गया है। यथा स्कन्दपुराणमें— **'नागविद्धा न कर्तव्या षष्ठी चैव कदाचन'** इसके प्रमाणस्वरूप राजा सगरकी कथाका भी उल्लेख किया गया है। सगरने एक बार पञ्चमीयुक्त सूर्यषष्ठी-व्रतको किया था, जिसके फलस्वरूप कपिलमुनिके शापसे उनके सभी पुत्रोंका विनाश हो गया। उक्त दृष्टान्तसे इस व्रतकी प्राचीनता भी द्योतित होती है। व्रतकी विधिमें बताया गया है कि कार्तिकमासके शुक्लपक्षमें सात्त्विक रूपसे रहना चाहिये। पञ्चमीको एक बार भोजन करे। वाक्संयम रखे, षष्ठीको निराहार रहे तथा फल-पुष्प, घृतपक्व नैवेद्य, धूप, दीप आदि सामग्रीको लेकर नदीतटपर जाय और गीत-वाद्य आदिसे हर्षोल्लासपूर्वक महोत्सव मनाये। भगवान् सूर्यका पूजन कर भक्तिपूर्वक उन्हें रक्तचन्दन तथा रक्तपुष्प-अक्षतयुक्त अर्घ्य निवेदित करे—

कार्तिके शुक्लपक्षे तु निरामिषपरो भवेत्।
पञ्चम्यामेकभोजी स्याद् वाक्यं दुष्टं परित्यजेत्॥
षष्ठ्यां चैव निराहारः फलपुष्पसमन्वितः।
सरित्तटं समासाद्य गन्धदीपैर्मनोहरैः॥
धूपैर्नानाविधैर्दिव्यैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः।
गीतवाद्यादिभिश्चैव महोत्सवसमन्वितैः॥
समभ्यर्च्य रविं भक्त्या दद्यादर्घ्यं विवस्वते।
रक्तचन्दनसम्मिश्रं रक्तपुष्पाक्षतान्वितम्॥

इसी ग्रन्थमें आगे अर्घ्य, प्रदक्षिणा एवं नमस्कारके मन्त्र भी उल्लिखित हैं।

सम्प्रति इस व्रतका सर्वाधिक प्रचार बिहार राज्यमें दिखायी पड़ता है। सम्भव है, इसका आरम्भ भी यहींसे हुआ हो और अब तो बिहारके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रोंमें भी इसका व्यापक प्रसार हो गया है। इस व्रतको सभी लोग अत्यन्त भक्ति-भाव, श्रद्धा एवं उल्लाससे मनाते हैं। सूर्यार्घ्यके बाद व्रतियोंके पैर छूने और उनके गीले वस्त्र धोनेवालोंमें प्रतिस्पर्धाकी भावना देखते ही बनती है। इस व्रतका प्रसाद माँगकर खानेका विधान है। सूर्यषष्ठी-व्रतके प्रसादमें ऋतु-फलके अतिरिक्त आटे और गुड़से शुद्ध घीमें बने 'ठेकुआ'का होना अनिवार्य है; ठेकुआपर लकड़ीके साँचेसे सूर्यभगवान्के रथका चक्र भी अङ्कित करना आवश्यक माना जाता है। षष्ठीके दिन समीपस्थ किसी पवित्र नदी या जलाशयके तटपर मध्याह्नसे ही भीड़ एकत्र होने लगती है। सभी व्रती महिलाएँ नवीन वस्त्र एवं आभूषणादिकोंसे सुसज्जित होकर फल, मिष्टान्न और पक्वान्नोंसे भरे हुए नये बाँससे निर्मित सूप और दौरी (डलिया) लेकर षष्ठीमाता और भगवान् सूर्यके लोकगीत गाती हुई अपने-अपने घरोंसे निकलती हैं। भगवान्के अर्घ्यका सूप और डलिया ढोनेका भी महत्त्व है। यह कार्य पति, पुत्र या घरका कोई पुरुष सदस्य ही करता है। घरसे घाटतक लोकगीतोंका क्रम चलता ही रहता है और यह क्रम तबतक चलता है जबतक भगवान् भास्कर सायंकालीन अर्घ्य स्वीकार कर अस्ताचलको न चले जायँ। सूपों और डलियोंपर जगमगाते हुए घीके दीपक गङ्गाके तटपर बहुत ही आकर्षक लगते हैं। पुनः ब्राह्ममुहूर्तमें ही नूतन अर्घ्य सामग्रीके साथ सभी व्रती जलमें खड़े होकर हाथ जोड़े हुए भगवान् भास्करके उदयाचलारूढ होनेकी प्रतीक्षा करते हैं। जैसे ही क्षितिजपर अरुणिमा दिखायी देती है वैसे ही मन्त्रोंके साथ भगवान् सविताको अर्घ्य समर्पित किये जाते हैं। यह व्रत विसर्जन, ब्राह्मण-दक्षिणा एवं पारणाके पश्चात् पूर्ण होता है।

सूर्यषष्ठी-व्रतके अवसरपर सायंकालीन प्रथम अर्घ्यसे पूर्व मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर षष्ठीदेवीका आवाहन एवं पूजन करते हैं। पुनः प्रातः अर्घ्यके पूर्व षष्ठीदेवीका पूजन कर विसर्जन कर देते हैं। मान्यता है कि पञ्चमीके सायंकालसे ही घरमें भगवती षष्ठीका आगमन हो जाता है। इस प्रकार भगवान् सूर्यके इस पावन व्रतमें शक्ति और ब्रह्म दोनोंकी उपासनाका फल एक साथ प्राप्त होता है। इसीलिये लोकमें यह पर्व 'सूर्यषष्ठी' के नामसे विख्यात है।

सांसारिक जनोंकी तीन एषणाएँ प्रसिद्ध हैं— पुत्रैषणा,

वित्तैषणा तथा लोकैषणा। भगवान् सविता प्रत्यक्ष देवता हैं, वे समस्त अभीष्टोंको प्रदान करनेमें समर्थ हैं—'**किं किं न सविता सूते।**' समस्त कामनाओंकी पूर्ति तो भगवान् सवितासे हो जाती है, किंतु वात्सल्यका महत्त्व मातासे अधिक और कौन जान सकता है? परब्रह्मकी शक्तिस्वरूपा प्रकृति और उन्हींके प्रमुख अंशसे आविर्भूता देवी षष्ठी, संतति प्रदान करनेके लिये ही मुख्यतया अधिकृत हैं। अतः पुत्रकी कामना भगवती षष्ठीसे करना अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। इन्हीं पुराणोक्त कथाओंके भाव सूर्यषष्ठी-पर्वके अवसरपर बिहारमें महिलाओंद्वारा गाये जानेवाले लोकगीतोंमें भी देखनेको मिलते हैं—

काहे लागी पूजेलू तुहूं देवलघरवा (सूर्यमन्दिर) हे।
काहे लागी, कर ह छठी के बरतिया हे, काहे लागी"
अन-धन सोनवा लागी पूजी देवलघरवा हे,
पुत्र लागी, करीं हम छठीके बरतिया हे, पुत्र लागी"

इस गीतमें समस्त वैभवोंकी कामना तो भगवान् भास्करसे की गयी है, किंतु पुत्रकी कामना भगवती षष्ठीसे ही की जा रही है। इन पुराणसम्मत तथ्योंको हमारी ग्रामीण साधु महिलाओंने गीतोंमें पिरोकर अक्षुण्ण रखा है।

सविता और षष्ठी दोनोंकी एक साथ उपासनासे अनेक वाञ्छित फलोंको प्रदान करनेवाला यह सूर्यषष्ठी-व्रत वास्तवमें बहुत महत्त्वपूर्ण है।
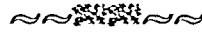
गोपाष्टमी-महोत्सव

[कार्तिक शुक्ल अष्टमी]

गौका माहात्म्य एवं महत्त्व बतानेकी आवश्यकता

नहीं है तथा यह भी बतानेकी आवश्यकता नहीं कि भगवान् श्रीकृष्णका अतिप्रिय 'गोविन्द' नाम गायोंकी रक्षा करनेके कारण ही पड़ा। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदासे लेकर सप्तमीतक गो-गोप-गोपियोंकी रक्षाके लिये श्रीकृष्ण गोवर्धनपर्वतको धारण किये रहे। आठवें दिन इन्द्रकी आँख खुली और वे अहंकाररहित होकर भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये। कामधेनुने भगवान्का अभिषेक किया और उसी दिन भगवान्का 'गोविन्द' नाम पड़ा।

उसी समयसे कार्तिक शुक्ल अष्टमीको गोपाष्टमीका उत्सव मनाया जाने लगा, जो अबतक चला आ रहा है। कार्तिक शुक्ल अष्टमीको प्रातःकाल गौओंको स्नान कराये, गन्ध-पुष्पादिसे उनका पूजन करे और अनेक प्रकारके वस्त्रालंकारोंसे अलंकृत करके गोपालों (ग्वालों)-का पूजन करे, गायोंको गोग्रास देकर उनकी परिक्रमा करे और थोड़ी दूरतक उनके साथ जाय तो सब प्रकारकी अभीष्ट-सिद्धि होती है। गोपाष्टमीको सायंकाल गायें चरकर जब वापस आयें, उस समय भी उनका आतिथ्य, अभिवादन और पञ्चोपचार-पूजन करके कुछ भोजन कराये और उनकी चरणरजको मस्तकपर धारण करे उससे सौभाग्यकी वृद्धि होती है।

भारतवर्षके प्रायः सभी भागोंमें गोपाष्टमीका उत्सव बड़े ही उल्लाससे मनाया जाता है, विशेषकर गोशालाओं

तथा पिंजरापोलोंके लिये यह बड़े महत्त्वका उत्सव है। गोशालाओंमें तो गोपाष्टमीके दिन एक मेला-जैसा ही लग जाता है—खाने-पीनेकी दूकानें आ जाती हैं, बड़ी भीड़ होती है। उसमें घूमनेके अतिरिक्त लोग गौओंके दर्शन करते हैं, उनको कुछ खिलाते हैं और गोशालाकी संस्थाको कुछ दान करते हैं। यह तो होना ही चाहिये, किंतु इतना ही काफी नहीं है, कुछ और भी करना होगा। जिन गो-गोपोंकी यह अष्टमी मनायी जाती है तथा जो गोप गोपालन करते हैं उनके उत्साहवर्धनके लिये उन्हें पारितोषिक भी देना चाहिये। गोपाष्टमी केवल किसी एक गाँवका या गोशालाओंका ही उत्सव नहीं होना चाहिये, वरन् गाँव-गाँव और घर-घरमें यह उत्सव बड़े समारोहसे मनाया जाना चाहिये। आवश्यकता इस बातकी है कि यह उत्सव अखिल भारतवर्षीय गो-दिवसका रूप धारण कर ले।

गोपाष्टमीके दिन क्या-क्या करें?

गोपाष्टमी मनानेका सुन्दर ढंग और उस दिन किये जानेवाले कार्य नीचे लिखे अनुसार हों तो उत्तम है—

१-गायोंको नहला-धुलाकर स्वच्छ करना और उन्हें भाँति-भाँतिसे सजाना, २-गायोंके रहनेके स्थानकी भलीभाँति सफाई करना, ३-गाय और ग्वालोंकी विधिवत् पूजा करना और स्वादिष्ठ भोजनसे उन्हें संतुष्ट करना, ४-उस दिन अपने व्यवसाय-व्यापारको बन्द रखकर गोशाला और पिंजरापोलोंमें जाकर वहाँके उत्सवों और कार्यक्रमोंमें भाग लेते हुए गोपालनके सम्बन्धमें विचार-विमर्श करना, ५-गोशाला और पिंजरापोलोंमें यथासाध्य दान देना, ६-गाँव-गाँव और नगर-नगरमें सभाएँ हों, जिनमें गो-सम्बन्धी इन बातोंपर विचार हो—

(अ) देशमें सर्वत्र गो-हत्याका निवारण कैसे हो सकता है?

(आ) गायोंकी वर्तमान स्थितिमें, उनकी नस्लमें और दुग्धोत्पादनमें किन साधनोंसे सुधार हो सकता है?

(इ) गोमय और गोमूत्रका खादके रूपमें अधिक-से-अधिक उपयोग कैसे किया जा सकता है?

(ई) गोपालकोंको आवश्यक सुविधाएँ कैसे मिल सकती हैं?

७-उस दिन लोगोंको ठीक-ठीक समझाकर और उनके भावोंको जाग्रत् कर यह प्रतिज्ञा करनी-करानी चाहिये—

(क) हम उस आदमीके हाथ गौ कभी नहीं बेचेंगे, जिसपर यह सन्देह हो कि वह घरमें गौका पालन न कर सीधे कसाईको या कसाईके हाथमें देनेवाले किसीको बेच देगा।

(ख) हम उन चमड़े, चर्बी तथा हड्डी आदिका अपने लिये व्यवहार और व्यापार कदापि नहीं करेंगे, जिनके कारण गायोंकी हत्या होती है।

(ग) वनस्पति-तैल (नकली घी)-का व्यवहार नहीं करेंगे।

८-जहाँ अच्छे साँड़ न हों, वहाँ अच्छे साँड़ोंकी व्यवस्थापर विचार करना, ९-जहाँ उत्तम साँड़ हों, वहाँ उनके भरपूर चारे-दाने और संरक्षणका प्रबन्ध करना, १०-स्थानीय गाय, बैल, बछिया और बछड़ोंकी संख्याका पता लगाकर लिखना, ११-सुविधा हो तो अच्छी-से-अच्छी गाय रखनेवालोंको पुरस्कार देना, १२-गायें स्वस्थ और सबल कैसे रहें तथा उन्हें संक्रामक रोगोंसे कैसे बचाया जा सकता है—यह समझना-समझाना, १३-अगली गोपाष्टमीतकके लिये गो-वंशकी उन्नतिका कार्यक्रम बनाना, १४-गतवर्ष गोवंशकी उन्नतिके लिये क्या किया गया—इसकी जाँच करना और १५-ऐसे अवसरोंपर सहृदय मुसलमान और ईसाई आदि सज्जनोंको भी बुलाया जाय और बड़े प्रेम तथा सम्मानका व्यवहार किया जाय, जिससे वे भी इसे सार्वजनिक मेला समझें और सभामें गौके महत्त्वको जानकर गोरक्षाके पक्षपाती बनें।

इस प्रकार उस दिनका सारा समय गो-चर्चामें ही लगाना चाहिये। ऐसा करनेसे ही गोवंशकी सच्ची उन्नति हो सकेगी, जिसपर हमारी उन्नति सोलहों आने निर्भर है।

अक्षयनवमी

[कार्तिक शुक्ल नवमी]

कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी नवमी 'अक्षयनवमी' कहलाती है। इस दिन स्नान, पूजन, तर्पण तथा अन्नादिके दानसे अक्षय फल प्राप्त होता है। इसमें पूर्वाह्णव्यापिनी तिथि ली जाती है। यदि वह दो दिन हो या न हो तो '**अष्टम्या नवमी विद्धा कर्तव्या फलकाङ्क्षिणा। न कुर्यान्नवमीं तात दशम्यां तु कदाचन॥**'—ब्रह्मवैवर्तपुराणके इस वचनके अनुसार अष्टमीविद्धा नवमी ग्रहण करनी चाहिये। दशमीविद्धा नवमी त्याज्य है।

व्रत-विधान—प्रात:काल स्नानादिके अनन्तर दाहिने हाथमें जल, अक्षत, पुष्प आदि लेकर निम्न प्रकारसे व्रतका संकल्प करे—

अद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुक शर्माहं (वर्मा गुप्तो वा) ममाखिलपापक्षयपूर्वकधर्मार्थकाममोक्षसिद्धिद्वारा श्रीविष्णुप्रीत्यर्थं धात्रीमूले विष्णुपूजनं धात्रीपूजनं च करिष्ये।

ऐसा संकल्पकर धात्रीवृक्ष (आँवले)-के नीचे पूर्वाभिमुख बैठकर '**ॐ धात्र्यै नमः**' मन्त्रसे आवाहनादि षोडशोपचार-पूजन करके निम्नलिखित मन्त्रोंसे आँवलेके वृक्षकी जड़में दूधकी धारा गिराते हुए पितरोंका तर्पण करे—

पिता पितामहाश्चान्ये अपुत्रा ये च गोत्रिणः।
ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूलेऽक्षयं पयः॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः।
ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूलेऽक्षयं पयः॥

इसके बाद आँवलेके वृक्षके तनेमें निम्न मन्त्रसे सूत्रवेष्टन करे—

दामोदरनिवासायै धात्र्यै देव्यै नमो नमः।
सूत्रेणानेन बध्नामि धात्रि देवि नमोऽस्तु ते॥

इसके बाद कर्पूर या घृतपूर्ण दीपसे आँवलेके वृक्षकी आरती करे तथा निम्न मन्त्रसे उसकी प्रदक्षिणा करे—

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे॥

इसके अनन्तर आँवलेके वृक्षके नीचे ब्राह्मण-भोजन भी कराना चाहिये और अन्तमें स्वयं भी आँवलेके वृक्षके सन्निकट बैठकर भोजन करना चाहिये। एक पका हुआ कुम्हड़ा (कूष्माण्ड) लेकर उसके अंदर रत्न, सुवर्ण, रजत या रुपया आदि रखकर निम्न संकल्प करे—

ममाखिलपापक्षयपूर्वकसुखसौभाग्यादीनामुत्तरोत्तराभिवृद्धये कूष्माण्डदानमहं करिष्ये।

तदनन्तर विद्वान् तथा सदाचारी ब्राह्मणको तिलक करके दक्षिणासहित कूष्माण्ड दे दे और निम्न प्रार्थना करे—

कूष्माण्डं बहुबीजाढ्यं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
दास्यामि विष्णवे तुभ्यं पितृणां तारणाय च॥

पितरोंके शीतनिवारणके लिये यथाशक्ति कम्बल आदि ऊर्णवस्त्र भी सत्पात्र ब्राह्मणको देना चाहिये।

यह अक्षयनवमी 'धात्रीनवमी' तथा 'कूष्माण्डनवमी' भी कहलाती है। घरमें आँवलेका वृक्ष न हो तो किसी बगीचे आदिमें आँवलेके वृक्षके समीप जाकर पूजा, दानादि करनेकी भी परम्परा है अथवा गमलेमें आँवलेका पौधा रोपित कर घरमें यह कार्य सम्पन्न कर लेना चाहिये।

देवोत्थापनी एकादशी

[कार्तिक शुक्ल एकादशी]

यद्यपि भगवान् क्षणभर भी सोते नहीं हैं, फिर भी भक्तोंकी भावना— '**यथा देहे तथा देवे**' के अनुसार भगवान् चार मास शयन करते हैं। भगवान् विष्णुके क्षीरशयनके विषयमें यह कथा प्रसिद्ध है कि भगवान्ने भाद्रपदमासकी शुक्ल एकादशीको महापराक्रमी शंखासुर नामक राक्षसको मारा था और उसके बाद थकावट दूर करनेके लिये क्षीर-सागरमें जाकर सो गये। वे वहाँ चार मासतक सोते रहे और कार्तिक शुक्ल एकादशीको जगे। इसीसे इस एकादशीका नाम 'देवोत्थापनी' या 'प्रबोधिनी एकादशी' पड़ गया। इस दिन व्रतके रूपमें उपवास करनेका विशेष महत्त्व है। उपवास न कर सके तो एक समय फलाहार करना चाहिये और संयम-नियमपूर्वक रहना चाहिये। एकादशीको भगवन्नाम-जप-कीर्तनकी विशेष महिमा है। कार्तिक शुक्ल एकादशीको भगवत्प्रीतिके लिये पूजा-पाठ, व्रत-उपवास आदि किया जाता है।

इस तिथिको रात्रि-जागरणका विशेष महत्त्व है। रात्रिमें भगवत्सम्बन्धी कीर्तन, वाद्य, नृत्य और पुराणोंका पाठ करना चाहिये। धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, गन्ध, चन्दन, फल और अर्घ्य आदिसे भगवान्की पूजा करके घंटा, शङ्ख, मृदंग आदि वाद्योंकी माङ्गलिक ध्वनि तथा निम्न मन्त्रोंद्वारा भगवान्से जागनेकी प्रार्थना करे—

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत् सुप्तं भवेदिदम्॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वाराह दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे।
हिरण्याक्षप्राणघातिन् त्रैलोक्ये मङ्गलं कुरु॥

इसके बाद भगवान्की आरती करे और पुष्पाञ्जलि अर्पण करके निम्न मन्त्रोंसे प्रार्थना करे—

इयं तु द्वादशी देव प्रबोधाय विनिर्मिता।
त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना॥
इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन॥

तदनन्तर प्रह्लाद, नारद, परशुराम, पुण्डरीक, व्यास, अम्बरीष, शुक, शौनक और भीष्मादि भक्तोंका स्मरण करके चरणामृत और प्रसादका वितरण करना चाहिये।

प्रबोधिनी एकादशीकी पारणामें रेवती (नक्षत्र)-का अन्तिम तृतीयांश हो तो उसे त्यागकर भोजन करना चाहिये।
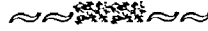
तुलसी-विवाह

[कार्तिक शुक्ल एकादशी]

कार्तिक शुक्ल एकादशीके दिन ही लोग तुलसी-विवाहका भी आयोजन करते हैं। तुलसी वैष्णवोंके लिये परमाराध्य पौधा है। कोई-कोई तो भगवान्के श्रीविग्रहके साथ तुलसीजीका विवाह बड़े धूमधामसे करते हैं। साधारणतया लोग तुलसीजीके पौधेका गमला, गेरु आदिसे सजाकर उसके चारों ओर ईखका मण्डप बनाकर उसके ऊपर ओढ़नी या सुहागकी प्रतीक चुनरी ओढ़ाते हैं। गमलेको साड़ीमें लपेटकर तुलसीको चूड़ी पहनाकर उनका शृङ्गार करते हैं। गणपत्यादि देवताओंका तथा श्रीशालग्रामजीका विधिवत् पूजन करके श्रीतुलसीजीकी षोडशोपचार पूजा '**तुलस्यै नमः**' नाममन्त्रसे करते हैं। तत्पश्चात् एक नारियल दक्षिणाके साथ टीकाके रूपमें रखते हैं तथा भगवान् शालग्रामकी मूर्तिका सिंहासन हाथमें लेकर तुलसीजीकी सात परिक्रमा कराये और आरतीके पश्चात् विवाहोत्सव पूर्ण करे। विवाहके समान ही अन्य कार्य होते हैं तथा विवाहके मङ्गल-गीत भी गाये जाते हैं। राजस्थानमें इस तुलसी-विवाहको 'बटुआ-फिराना' कहते हैं।
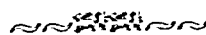
वैकुण्ठचतुर्दशी

[कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी]

कार्तिकमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी 'नरकचतुर्दशी' और शुक्लपक्षकी चतुर्दशी 'वैकुण्ठचतुर्दशी' कहलाती है। नरकचतुर्दशीको नरकके अधिपति यमराजकी और वैकुण्ठ-चतुर्दशीको वैकुण्ठाधिपति भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की जाती है। यह तिथि अरुणोदयव्यापिनी ग्रहण करनी चाहिये।

व्रत-विधान—प्रात:काल स्नानादिसे निवृत्त होकर दिनभरका व्रत रखना चाहिये और रात्रिमें भगवान् विष्णुकी कमलपुष्पोंसे पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् भगवान् शंकरकी यथाविधि पूजा करनी चाहिये—

विना यो हरिपूजां तु कुर्याद् रुद्रस्य चार्चनम्।
वृथा तस्य भवेत्पूजा सत्यमेतद्वचो मम॥

रात्रिके बीत जानेपर दूसरे दिन शिवजीका पुन: पूजन कर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भोजन करना चाहिये।

वैकुण्ठचतुर्दशीका यह पावन व्रत शैवों एवं वैष्णवोंकी पारस्परिक एकता और भगवान् विष्णु तथा शिवके ऐक्यका प्रतीक है।

कथा—एक बार भगवान् विष्णु देवाधिदेव महादेवका पूजन करनेके लिये काशी आये। यहाँ मणिकर्णिकाघाटपर स्नान करके उन्होंने एक हजार स्वर्ण कमलपुष्पोंसे भगवान् विश्वनाथके पूजनका संकल्प किया। अभिषेकके बाद जब वे पूजन करने लगे तो शिवजीने उनकी भक्तिकी परीक्षाके उद्देश्यसे एक कमलपुष्प कम कर दिया। भगवान् श्रीहरिको अपने संकल्पकी पूर्तिके लिये एक हजार कमल पुष्प चढ़ाने थे। एक पुष्पकी कमी देखकर उन्होंने सोचा मेरी आँखें कमलके ही समान हैं, इसीलिये मुझे 'कमलनयन' और 'पुण्डरीकाक्ष' कहा जाता है। एक कमलके स्थानपर मैं अपनी आँख ही चढ़ा देता हूँ—ऐसा सोचकर वे अपनी कमलसदृश आँख चढ़ानेको उद्यत हो गये। भगवान् विष्णुकी इस अगाध भक्तिसे प्रसन्न हो देवाधिदेव महादेव प्रकट होकर बोले—हे विष्णो! तुम्हारे समान संसारमें दूसरा कोई

मेरा भक्त नहीं है, आजकी यह कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी अब वैकुण्ठचतुर्दशीके नामसे अभिहित होगी। इस दिन व्रतपूर्वक पहले आपका पूजन कर जो मेरा पूजन करेगा, उसे वैकुण्ठलोककी प्राप्ति होगी। भगवान् शिवने विष्णुको करोड़ों सूर्योंकी प्रभाके समान कान्तिमान् सुदर्शन चक्र दिया और कहा कि यह राक्षसोंका अन्त करनेवाला होगा। त्रैलोक्यमें इसकी समता करनेवाला कोई अस्त्र नहीं होगा।

भीष्मपञ्चकव्रत

[कार्तिक शुक्ल एकादशीसे पूर्णिमातक]

यह व्रत कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी प्रबोधिनी एकादशीसे प्रारम्भ होता है और पूर्णिमाको पूर्ण होता है। इसे भीष्मजीने भगवान् वासुदेवसे प्राप्त किया था, इसीलिये यह व्रत 'भीष्मपञ्चक' के नामसे प्रसिद्ध है।

व्रत-विधान—इसके निमित्त काम, क्रोधादि त्यागकर ब्रह्मचर्यपूर्वक पाँच दिनका व्रत किया जाता है। व्रती मनुष्यको चाहिये कि मौन भावसे स्नानकर देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे तथा निम्न मन्त्रसे जल दे—

वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च।
अनपत्याय भीष्माय उदकं भीष्मवर्मणे॥
वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे॥

इसमें यथाशक्ति सोने या चाँदीकी भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी मूर्ति बनवाकर उसकी प्रतिष्ठाकर षोडशोपचार-पूजन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त पहले दिन भगवान्के हृदयका कमलपुष्पोंसे, दूसरे दिन कटिप्रदेशका बिल्वपत्रोंसे, तीसरे दिन घुटनोंका केतकीपुष्पोंसे, चौथे दिन चरणोंका चमेलीपुष्पोंसे तथा पाँचवें दिन सम्पूर्ण अङ्गका तुलसीकी मञ्जरियोंसे पूजन करना चाहिये। नित्यप्रति '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' मन्त्रका १०८ बार या अधिक-से-अधिक जितना सम्भव हो, जप करना चाहिये तथा मन्त्रमें 'स्वाहा' पद जोड़कर उससे घृतमिश्रित तिल, चावल और जौसे अग्निमें हवन करना चाहिये। व्रतके पाँच दिनोंमें सामर्थ्यानुसार निराहार, फलाहार, एकभुक्त, मिताहार या नक्तव्रत करना चाहिये, इस व्रतमें पञ्चगव्यपानकी विशेष महिमा है। व्रतान्तमें पारणाके समय ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराकर स्वयं भोजन करना चाहिये। इस व्रतमें पद्मपुराणोक्त कार्तिक-मासके माहात्म्यका पाठ या श्रवण करना चाहिये।

कार्तिक-पूर्णिमा

कार्तिक-पूर्णिमा बड़ी पवित्र तिथि है। इस तिथिको ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अंगिरा और आदित्य आदिने महापुनीत पर्व प्रमाणित किया है। अतः इसमें किये हुए स्नान, दान, होम, यज्ञ और उपासना आदिका अनन्त फल होता है। इस दिन गङ्गा-स्नान तथा सायंकाल दीपदानका विशेष महत्त्व है,

इसी पूर्णिमाके दिन सायंकाल भगवान्का मत्स्यावतार हुआ था, इस कारण इसमें किये गये दान, जपादिका दस यज्ञोंके समान फल होता है।* इस दिन यदि कृत्तिका नक्षत्र हो तो यह महाकार्तिकी होती है, भरणी हो तो विशेष फल देती है और यदि रोहिणी हो तो इसका फल और भी बढ़ जाता है।

जो व्यक्ति पूरे कार्तिकमास स्नान करते हैं उनका नियम कार्तिक-पूर्णिमाको पूरा हो जाता है। कार्तिक-पूर्णिमाके दिन प्रायः श्रीसत्यनारायणव्रतकी कथा सुनी जाती है। सायंकाल देव-मन्दिरों, चौराहों, गलियों, पीपलके वृक्षों तथा तुलसीके पौधोंके पास दीपक जलाये जाते हैं और गङ्गाजीको भी दीपदान किया जाता है। काशीमें यह तिथि देवदीपावली-महोत्सवके रूपमें मनायी जाती है।

चान्द्रायणव्रतकी समाप्ति भी आजके दिन होती है। कार्तिक-पूर्णिमासे आरम्भ करके प्रत्येक पूर्णिमाको व्रत और जागरण करनेसे सकल मनोरथ सिद्ध होते हैं। कार्तिक-पूर्णिमाके दिन गङ्गा आदि पवित्र नदियोंके समीप स्नानके लिये सहस्रों नर-नारी एकत्र होते हैं, जो बड़े भारी मेलेका रूप बन जाता है। सिक्ख धर्मावलम्बी इस दिन गुरुनानकदेवकी जयन्तीका उत्सव मनाते हैं।

व्रत-उपवास-नियम-तप-तत्पर, दान शक्तिभर, वत्सल-भृत्य।
दया, विनय, परनारी-वर्जन, स्व-स्त्री-रति, सब सुन्दर कृत्य॥
सदाचार-शुचि-शील-परायण, सरल, सत्यवादी, मतिमान।
मातृ-पितृ-सेवक, श्रद्धा-युत, शुद्ध-धर्म रत, गत-अभिमान॥
अर्थ न्यायसे अर्जन करता, रखता नित प्रभुमें विश्वास।
यथासाध्य सुख देता सबको, देता नहीं किसीको त्रास॥
आदर करता सब कुटुम्बका, पालन, सबका करता मान।
उस गृहस्थपर कृपा-सुधा बरसाते संतत श्रीभगवान॥

[पद-रत्नाकर]

* वरान् दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपोऽभवत् ततः। तस्यां दत्तं हुतं जप्तं दशयज्ञफलं स्मृतम्॥ (पद्मपुराण)

मार्गशीर्षमासके व्रतपर्वोत्सव—

कालभैरवाष्टमी

'काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे'

[मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी]

भगवान् शिवके दो स्वरूप हैं—१-भक्तोंको अभय देनेवाला विश्वेश्वरस्वरूप और २-दुष्टोंको दण्ड देनेवाला कालभैरवस्वरूप। जहाँ विश्वेश्वरस्वरूप अत्यन्त सौम्य और शान्त है, वहीं उनका भैरवस्वरूप अत्यन्त रौद्र, भयानक, विकराल तथा प्रचण्ड है।

शिवपुराणकी शतरुद्रसंहिता (८।२) के अनुसार परमेश्वर सदाशिवने मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीको भैरवरूपमें अवतार लिया। अतः उन्हें साक्षात् भगवान् शंकर ही मानना चाहिये—

भैरवः पूर्णरूपो हि शङ्करस्य परात्मनः।
मूढास्तं वै न जानन्ति मोहिताश्शिवमायया॥

व्रत-विधि—भैरवजीका जन्म मध्याह्नमें हुआ था, इसलिये मध्याह्नव्यापिनी अष्टमी लेनी चाहिये। इस दिन प्रातःकाल उठकर नित्यकर्म एवं स्नानसे निवृत्त होकर व्रतका संकल्प करना चाहिये तथा भैरवजीके मन्दिरमें जाकर वाहनसहित उनकी पूजा करनी चाहिये। '**ॐ भैरवाय नमः**' इस नाममन्त्रसे षोडशोपचारपूर्वक पूजन करना चाहिये। भैरवजीका वाहन कुत्ता है, अतः इस दिन कुत्तोंको मिष्टान्न खिलाना चाहिये।

इस दिन उपवास करके भगवान् कालभैरवके समीप जागरण करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है—

मार्गशीर्षसिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ।
उपोष्य जागरं कुर्वन् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

भैरवजीका पूजन कर उन्हें निम्न मन्त्रोंसे अर्घ्य देना चाहिये—

भैरवार्घ्यं गृहाणेश भीमरूपाव्ययानघ।
अनेनार्घ्यप्रदानेन तुष्टो भव शिवप्रिय॥
सहस्राक्षिशिरोबाहो सहस्रचरणाजर।
गृहाणार्घ्यं भैरवेदं सपुष्पं परमेश्वर॥
पुष्पाञ्जलिं गृहाणेश वरदो भव भैरव।
पुनरर्घ्यं गृहाणेदं सपुष्पं यातनापह॥

भैरवजी काशीके कोतवाल (नगररक्षक) हैं। काल-भैरवकी पूजाका काशीनगरीमें विशेष महत्त्व है। काशीमें भैरवजीके अनेक मन्दिर हैं। जैसे—कालभैरव, बटुकभैरव, आनन्दभैरव आदि। भैरवाष्टमी यदि मंगलवार या रविवारको पड़े तो उसका महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है।
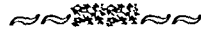
विवाहपञ्चमी

[मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमी]

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका विवाह मार्गशीर्ष

शुक्लपक्षकी पञ्चमीको जनकपुरमें सम्पन्न हुआ। सीतास्वयंवरमें भगवान्के द्वारा धनुष तोड़नेके अनन्तर विदेहराज जनकजीके द्वारा अयोध्या दूत भेजनेपर महाराज दशरथ बारात लेकर जनकपुर पधारते हैं। इसके अनन्तर विवाहकी विधि पञ्चमीको सम्पन्न होती है। इसीलिये श्रीअवधमें तथा जनकपुरमें विवाहपञ्चमीका महोत्सव बड़े समारोहसे प्रत्येक मन्दिरमें मनाया जाता है। भक्तगण भगवान्की बारात निकालते हैं तथा भगवान्की मूर्तियोंद्वारा रात्रिमें विधिपूर्वक भँवरी (फेरा) कराते हैं। अपनी परम्पराके अनुसार विवाहके पूर्व तथा बादकी सारी विधियाँ कुँवरमेला, सजनगोठ आदि सम्पन्न करते हैं।

विवाहकी लीला भी कई स्थानोंमें इस अवसरपर होती है। देशके विभिन्न भागोंमें रामभक्त यह महोत्सव अपने अपने ढंगसे आनन्द और उल्लासपूर्वक मनाते हैं।

श्रीदत्तात्रेय-जयन्ती

[मार्गशीर्ष-पूर्णिमा]

महायोगीश्वर दत्तात्रेयजी भगवान् विष्णुके अवतार हैं।

इनका अवतरण मार्गशीर्षकी पूर्णिमाको प्रदोषकालमें हुआ था। अतः इस दिन बड़े समारोहसे दत्तजयन्तीका उत्सव मनाया जाता है। श्रीमद्भागवत (२।७।४) में आया है कि पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे महर्षि अत्रिके तप करनेपर **'दत्तो मयाहमिति यद् भगवान् स दत्तः'** मैंने अपने-आपको तुम्हें दे दिया—श्रीविष्णुके ऐसा कहनेसे भगवान् विष्णु ही अत्रिके पुत्ररूपमें अवतरित हुए और दत्त कहलाये। अत्रिपुत्र होनेसे ये 'आत्रेय' कहलाते हैं। दत्त और आत्रेयके संयोगसे इनका 'दत्तात्रेय' नाम प्रसिद्ध हो गया। इनकी माताका नाम अनसूया है, जो सतीशिरोमणि हैं तथा उनका पातिव्रत्य संसारमें प्रसिद्ध है।

एक बारकी बात है श्रीलक्ष्मीजी, श्रीसतीजी और श्रीसरस्वतीदेवीको अपने पातिव्रत्यपर अत्यन्त गर्व हो गया। भगवान्‌को अपने भक्तका अभिमान सहन नहीं होता तब उन्होंने एक अद्भुत लीला करनेकी सोची—भक्तवत्सल भगवान्‌ने देवर्षि नारदके मनमें प्रेरणा उत्पन्न की। नारदजी घूमते-घूमते देवलोक पहुँचे और तीनों देवियोंके पास बारी-बारी जाकर कहा—अत्रिपत्नी अनसूयाके समक्ष आपका सतीत्व नगण्य है। तीनों देवियोंने अपने स्वामियों—विष्णु, महेश और ब्रह्मासे देवर्षि नारदजीकी यह बात बतायी और उनसे अनसूयाके पातिव्रत्यकी परीक्षा करनेको कहा। देवताओंने बहुत समझाया परंतु उन देवियोंके हठके सामने उनकी एक न चली। अन्ततः साधुवेश बनाकर वे तीनों देव अत्रिमुनिके आश्रममें पहुँचे। महर्षि अत्रि उस समय आश्रममें नहीं थे। अतिथियोंको आया देख, देवी अनसूयाने उन्हें प्रणामकर अर्घ्य, फल-मूलादि अर्पित किये, किंतु वे बोले—हमलोग तबतक आतिथ्य स्वीकार न करेंगे जबतक आप निर्वस्त्र हो हमारे समक्ष नहीं आयेंगी।

यह बात सुनकर प्रथम तो देवी अनसूया अवाक् रह गयीं, किंतु आतिथ्यधर्मकी महिमाका लोप न हो जाय—इस दृष्टिसे उन्होंने नारायणका ध्यान किया, अपने पतिदेवका स्मरण किया और इसे भगवान्‌की लीला समझकर वे बोलीं—यदि मेरा पातिव्रत्यधर्म सत्य है तो ये तीनों साधु छः-छः मासके शिशु हो जायँ। इतना कहना ही था कि तीनों देव छः मासके शिशु हो रुदन करने लगे। तब माताने उन्हें गोदमें लेकर स्तनपान कराया फिर पालनेमें झुलाने लगीं। ऐसे ही कुछ समय व्यतीत हो गया।

अनसूया

इधर देवलोकमें जब तीनों देव वापस न आये तो तीनों देवियाँ अत्यन्त व्याकुल हो गयीं। फलतः नारदजी आये और उन्होंने सम्पूर्ण हाल कह सुनाया। तीनों देवियाँ अनसूयाके पास आयीं और उन्होंने उनसे क्षमा माँगी। देवी

अनसूयाने अपने पातिव्रत्यसे तीनों देवोंको पूर्वरूपमें कर दिया। इस प्रकार प्रसन्न हो तीनों देवोंने अनसूयासे वर माँगनेको कहा तो देवी बोलीं—आप तीनों देव मुझे पुत्ररूपमें प्राप्त हों। 'तथास्तु'—कहकर तीनों देव और देवियाँ अपने-अपने लोकको चले गये।

कालान्तरमें ये ही तीनों देव अनसूयाके गर्भसे प्रकट हुए। ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा, शंकरके अंशसे दुर्वासा तथा विष्णुके अंशसे दत्तात्रेयजीका जन्म हुआ। इस प्रकार अत्रि तथा अनसूयाके पुत्ररूपमें श्रीदत्तात्रेयजी श्रीविष्णुभगवान्‌के ही अवतार हैं और इन्हींके आविर्भावकी तिथि श्रीदत्तात्रेय-जयन्ती कहलाती है। भगवान् दत्तात्रेय कृपाकी मूर्ति कहे जाते हैं। परम भक्तवत्सल दत्तात्रेयजी भक्तके स्मरण करते ही उसके पास पहुँच जाते हैं। इसीलिये इन्हें स्मृतिगामी तथा स्मृतिमात्रानुगन्ता कहा गया है। ये श्रीविद्याके परम आचार्य हैं। श्रीमद्भागवत आदिमें आया है कि इन्होंने चौबीस गुरुओंसे शिक्षा पायी थी। भगवान् दत्तजीके नामपर दत्तसम्प्रदाय दक्षिणभारतमें विशेष प्रसिद्ध है। गिरनारक्षेत्र श्रीदत्तात्रेयजीका सिद्धपीठ है। इनकी गुरुचरणपादुकाएँ वाराणसी तथा आबूपर्वत आदि कई स्थानोंपर हैं। दक्षिणभारतमें इनके अनेक मन्दिर हैं। वहाँ दत्तजयन्तीके दिन इनकी विशेष आराधना-पूजाके साथ महोत्सव सम्पन्न होता है। इस दिन भगवान् दत्तात्रेयके उद्देश्यसे व्रत करने एवं उनके मन्दिरमें जाकर दर्शन-पूजन करनेका विशेष महत्त्व है।

गीता-जयन्ती

[मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी]

विश्वके किसी भी धर्म या सम्प्रदायके किसी भी ग्रन्थका जन्म-दिन नहीं मनाया जाता, जयन्ती मनायी जाती है तो केवल श्रीमद्भगवद्गीताकी; क्योंकि अन्य ग्रन्थ किसी मनुष्यद्वारा लिखे या संकलित किये गये हैं जबकि गीताका जन्म स्वयं श्रीभगवान्‌के श्रीमुखसे हुआ है—

या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

श्रीगीताजीका जन्म धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें श्रीभगवान्‌के विभूतिस्वरूप मार्गशीर्षमासमें उनकी प्रिय तिथि शुक्लपक्षकी एकादशीको हुआ था। यह तिथि मोक्षदा एकादशीके नामसे

विख्यात है। गीता एक सार्वभौम ग्रन्थ है। यह किसी देश, काल, धर्म, सम्प्रदाय या जातिविशेषके लिये नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव-जातिके लिये है। इसे स्वयं श्रीभगवान्‌ने अर्जुनको निमित्त बनाकर कहा है, इसलिये इस ग्रन्थमें कहीं भी '**श्रीकृष्ण उवाच**' शब्द नहीं आया है बल्कि '**श्रीभगवानुवाच**' का प्रयोग किया गया है। जिस प्रकार गायके दूधको बछड़ेके बाद सभी धर्म, सम्प्रदायके लोग पान करते हैं, उसी प्रकार यह गीता ग्रन्थ भी सबके लिये जीवनपाथेय स्वरूप है। सभी उपनिषदोंका सार ही गोस्वरूप गीता माता हैं, इसे दुहनेवाले गोपाल श्रीकृष्ण हैं, अर्जुनरूपी बछड़ेके पीनेसे निकलनेवाला महान् अमृतसदृश दूध ही गीतामृत है—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

इस प्रकार वेदों और उपनिषदोंका सार, इस लोक और परलोक दोनोंमें मङ्गलमय मार्ग दिखानेवाला, कर्म, ज्ञान और भक्ति—तीनों मार्गोंद्वारा मनुष्यको परमश्रेयके साधनका उपदेश करनेवाला, सबसे ऊँचे ज्ञान, सबसे विमल भक्ति, सबसे उज्ज्वल कर्म, यम, नियम, त्रिविध तप, अहिंसा, सत्य और दयाके उपदेशके साथ-साथ धर्मके लिये धर्मका अवलम्बन कर, अधर्मको त्यागकर युद्धका उपदेश करनेवाला यह अद्भुत ग्रन्थ है। इसके छोटे-छोटे अठारह अध्यायोंमें इतना सत्य, इतना ज्ञान, इतने ऊँचे गम्भीर सात्त्विक उपदेश भरे हैं, जो मनुष्यमात्रको नीची-

से-नीची दशासे उठाकर देवताओंके स्थानमें बैठा देनेकी शक्ति रखते हैं। मनुष्यका कर्तव्य क्या है? इसका बोध कराना गीताका लक्ष्य है। गीतामें कुल अठारह अध्याय हैं, जो महाभारतके भीष्मपर्वमें सन्निहित हैं। गीता सर्वशास्त्रमयी है। योगेश्वर श्रीकृष्णजीने किसी धर्म विशेषके लिये नहीं, अपितु मनुष्यमात्रके लिये उपदेश किये हैं— कर्म करो, कर्म करना कर्तव्य है पर यह कर्म निष्कामभावसे होना चाहिये।

गीता हमें जीवन जीनेकी कला सिखाती है, जीवन जीनेकी शिक्षा देती है। केवल इस एक श्लोकके उदाहरणसे ही इसे अच्छी प्रकारसे समझा जा सकता है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

हम सब बड़े भाग्यवान् हैं कि हमें इस संसारके घोर अन्धकारसे भरे घने मार्गोंमें प्रकाश दिखानेवाला यह छोटा किंतु अक्षय स्नेहपूर्ण धर्मदीप प्राप्त हुआ है, अतः हमारा भी यह धर्म—कर्तव्य है कि हम इसके लाभको मनुष्यमात्रतक पहुँचानेका सतत प्रयास करें। इसी निमित्त गीता-जयन्तीका महापर्व मनाया जाता है। इसपर जनता-जनार्दनमें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बनानी चाहिये। इस हेतु निम्न कार्यक्रम किये जाने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन।

(२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण, उसके श्रोता नरस्वरूप भक्तप्रवर अर्जुन तथा उसे महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन।

(३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण

(४) गीता-तत्त्वको समझाने तथा उसके प्रचार-प्रसारके लिये सभाओं, प्रवचन, व्याख्यान और गोष्ठियोंका आयोजन।

(५) विद्यालयों और महाविद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यानका आयोजन।

(६) गीता-ज्ञान-सम्बन्धी परीक्षाका आयोजन तथा उसमें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण।

(७) मन्दिर, देवस्थान आदिमें गीता-कथाका आयोजन।

(८) श्रीगीताजीकी शोभायात्रा निकालना आदि।

पौषमासके व्रतपर्वोत्सव—

पौषमास-माहात्म्य तथा व्रत-विधान

पौषमासमें धनुकी संक्रान्ति होती है। अतः इस मासमें भगवत्पूजनका विशेष महत्त्व है। दक्षिण भारतके मन्दिरोंमें धनुर्मासका उत्सव मनाया जाता है। पौष कृष्ण अष्टमीको श्राद्ध करके ब्राह्मणभोजन करानेसे उत्तम फल मिलता है। पौष कृष्ण एकादशीको उपवासपूर्वक भगवान्का पूजन करना चाहिये। यह सफला एकादशी कहलाती है। इस व्रतको करनेसे सभी कार्य सफल हो जाते हैं। पौषमासकी कृष्ण द्वादशीको सुरूपा द्वादशीका व्रत होता है। यदि इसमें पुष्यनक्षत्रका योग हो तो विशेष फलदायी होता है। इस व्रतका प्रचलन गुजरातप्रान्तमें विशेषरूपसे लक्षित होता है। सौन्दर्य, सुख, सन्तान और सौभाग्यप्राप्तिके लिये इसका अनुष्ठान किया जाता है।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें आया है कि पौष शुक्ल द्वितीयाको आरोग्यप्राप्तिके लिये 'आरोग्यव्रत' किया जाता है। इस दिन गोशृङ्गोदक (गायोंकी सींगोंको धोकर लिये हुए जल)-से स्नान करके सफेद वस्त्र धारणकर सूर्यास्तके बाद बालेन्दु (द्वितीयाके चन्द्रमा)-का गन्ध आदिसे पूजन करे। जबतक चन्द्रमा अस्त न हों तबतक गुड़, दही, परमान्न (खीर) और लवणसे ब्राह्मणोंको संतुष्टकर केवल गोरस (छाँछ) पीकर जमीनपर शयन करे। इस प्रकार प्रत्येक शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको एक वर्षतक चन्द्रपूजन करके बारहवें महीने (मार्गशीर्ष)-में इक्षुरससे भरा घड़ा, सोना (स्वर्ण) और वस्त्र ब्राह्मणको देकर उन्हें भोजन करानेसे रोगोंकी निवृत्ति और आरोग्यताकी प्राप्ति होती है।

पौष शुक्ल सप्तमीको 'मार्तण्डसप्तमी' कहते हैं। इस दिन भगवान् सूर्यके उद्देश्यसे हवन करके गोदान करनेसे वर्षपर्यन्त उत्तम फल प्राप्त होता है।

पौष शुक्ल एकादशी 'पुत्रदा' नामसे प्रसिद्ध है। इस दिन उपवाससे सुलक्षण पुत्रकी प्राप्ति होती है। भद्रावती नगरीके राजा वसुकेतुने इस व्रतके अनुष्ठानसे सर्वगुणसम्पन्न पुत्र प्राप्त किया था।

पौष शुक्ल त्रयोदशीको भगवान्के पूजन तथा

घृतदानका विशेष महत्त्व है।

माघमासके स्नानका प्रारम्भ पौषकी पूर्णिमासे होता है। इस दिन प्रातःकाल स्नानादिसे निवृत्त होकर मधुसूदनभगवान्‌को स्नान कराया जाता है, सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित किया जाता है। उन्हें मुकुट, कुण्डल, किरीट, तिलक, हार तथा पुष्पमाला आदि धारण कराये जाते हैं। फिर धूप-दीप, नैवेद्य निवेदितकर आरती उतारी जाती है। पूजनके अनन्तर ब्राह्मणभोजन तथा दक्षिणादानका विधान है। केवल इस एक दिनका ही स्नान सभी वैभव तथा दिव्यलोककी प्राप्ति करानेवाला कहा गया है। पौषमासके रविवारको व्रत करके भगवान् सूर्यके निमित्त अर्घ्यदान दिया जाता है तथा एक समय नमकरहित भोजन किया जाता है।

माघमासके व्रतपर्वोत्सव—

माघमास-माहात्म्य

भारतीय संवत्सरका ग्यारहवाँ चान्द्रमास और दसवाँ सौरमास 'माघ' कहलाता है। इस महीनेमें मघा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा होनेसे इसका नाम माघ पड़ा। धार्मिक दृष्टिकोणसे इस मासका बहुत अधिक महत्त्व है। इस मासमें शीतल जलके भीतर डुबकी लगानेवाले मनुष्य पापमुक्त हो स्वर्गलोकमें जाते हैं—

माघे निमग्नाः सलिले सुशीते विमुक्तपापास्त्रिदिवं प्रयान्ति॥
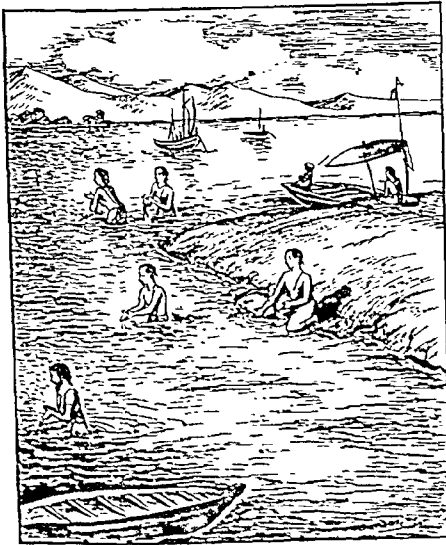
माघमासमें प्रयागमें स्नान, दान, भगवान् विष्णुके पूजन

और हरिकीर्तनके महत्त्वका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसमें लिखा है—

माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई॥
देव दनुज किंनर नर श्रेनीं। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं॥
पूजहिं माधव पद जलजाता। परसि अखय बटु हरषहिं गाता॥

पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें माघमासके माहात्म्यका वर्णन करते हुए कहा गया है कि व्रत, दान और तपस्यासे भी भगवान् श्रीहरिको उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी कि माघ महीनेमें स्नानमात्रसे होती है। इसलिये स्वर्गलाभ, सभी पापोंसे मुक्ति और भगवान् वासुदेवकी प्रीति प्राप्त करनेके लिये प्रत्येक मनुष्यको माघस्नान करना चाहिये—

व्रतैर्दानैस्तपोभिश्च न तथा प्रीयते हरिः।
माघमज्जनमात्रेण यथा प्रीणाति केशवः॥
प्रीतये वासुदेवस्य सर्वपापापनुत्तये।
माघस्नानं प्रकुर्वीत स्वर्गलाभाय मानवः॥

इस माघमासमें पूर्णिमाको जो व्यक्ति ब्रह्मवैवर्तपुराणका दान करता है, उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है—

पुराणं ब्रह्मवैवर्त यो दद्यान्माघमासि च।
पौर्णमास्यां शुभदिने ब्रह्मलोके महीयते॥

(मत्स्यपुराण ५३। ३५)

इस मासमें स्नान, दान, उपवास और भगवान् माधवकी पूजा अत्यन्त फलदायी है। इस विषयमें महाभारतके अनुशासनपर्वमें इस प्रकार वर्णन प्राप्त है—

दशतीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथा पराः॥
समागच्छन्ति माघ्यां तु प्रयागे भरतर्षभ।
माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः॥
स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्।

(महा०, अनु० २५। ३६—३८)

हे भरतश्रेष्ठ! माघमासकी अमावास्याको प्रयागराजमें तीन करोड़ दस हजार अन्य तीर्थोंका समागम होता है। जो नियमपूर्वक उत्तम व्रतका पालन करते हुए माघमासमें प्रयागमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गमें जाता है।

जो माघमासमें ब्राह्मणोंको तिल दान करता है, वह समस्त जन्तुओंसे भरे हुए नरकका दर्शन नहीं करता—

माघमासे तिलान् यस्तु ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति।
सर्वसत्त्वसमाकीर्णं नरकं स न पश्यति॥

(महा०, अनु० ६६। ८)

जो माघमासको नियमपूर्वक एक समयके भोजनसे व्यतीत करता है, वह धनवान् कुलमें जन्म लेकर अपने कुटुम्बीजनोंमें महत्त्वको प्राप्त होता है—

माघं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
श्रीमत्कुले ज्ञातिमध्ये स महत्त्वं प्रपद्यते॥

(महा०, अनु० १०६। २१)

माघमासकी द्वादशीतिथिको दिन-रात उपवास करके भगवान् माधवकी पूजा करनेसे उपासकको राजसूययज्ञका फल प्राप्त होता है और वह अपने कुलका उद्धार कर देता है—

अहोरात्रेण द्वादश्यां माघमासे तु माधवम्।
राजसूयमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत्॥

(महा०, अनु० १०९। ५)

जिन मनुष्योंको चिरकालतक स्वर्गलोकमें रहनेकी इच्छा हो, उन्हें माघमासमें सूर्यके मकरराशिमें स्थित होनेपर अवश्य स्नान करना चाहिये—

स्वर्गलोके चिरं वासो येषां मनसि वर्तते।
यत्र क्वापि जले तैस्तु स्नातव्यं मृगभास्करे॥

इसके लिये प्रातःकाल तिल, जल, पुष्प, कुश लेकर इस प्रकार संकल्प करना चाहिये—

***ॐ तत्सत् अद्य माघे मासि अमुकपक्षे* अमुक-तिथिमारभ्य मकरस्थ रविं यावत् अमुकगोत्रः अमुकशर्मा (वर्मा / गुप्तोऽहं) वैकुण्ठनिवासपूर्वकश्रीविष्णुप्रीत्यर्थं प्रातः-स्नानं करिष्ये।**

इसके बाद निम्न प्रार्थना करे—

दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च।
प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनम्॥
मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव।
स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव॥
दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोऽस्तु ते।
परिपूर्णं कुरुष्वेदं माघस्नानं महाव्रतम्॥
माघमासमिमं पुण्यं स्नाम्यहं देव माधव।
तीर्थस्यास्य जले नित्यं प्रसीद भगवन् हरे॥

माघमासकी ऐसी विशेषता है कि इसमें जहाँ-कहीं भी जल हो, वह गङ्गाजलके समान होता है, फिर भी प्रयाग, काशी, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार तथा अन्य पवित्र तीर्थों और नदियोंमें स्नानका बड़ा महत्त्व है। साथ ही मनकी निर्मलता एवं श्रद्धा भी आवश्यक है। इस प्रसंगमें पद्मपुराणमें एक बड़ी रोचक कथा आयी है, जो इस प्रकार है—

प्राचीन कालमें नर्मदाके तटपर सुव्रत नामक एक ब्राह्मणदेवता निवास करते थे। वे समस्त वेद-वेदाङ्गों, धर्मशास्त्रों एवं पुराणोंके ज्ञाता थे। साथ ही उन्होंने तर्कशास्त्र, ज्योतिष, गजविद्या, अश्वविद्या, मन्त्रशास्त्र, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र और चौंसठ कलाओंका भी अध्ययन किया था। वे अनेक देशोंकी भाषाएँ और लिपियाँ भी जानते थे। इतने विज्ञ होते हुए भी सुव्रतने अपने ज्ञानका प्रयोग धर्मकार्योंमें नहीं किया, अपितु आजीवन धन कमानेके लोभमें ही फँसे रहे। इसके लिये उन्होंने चाण्डालसे भी दान लेनेमें संकोच नहीं किया, इस प्रकार उन्होंने एक लाख स्वर्णमुद्राएँ अर्जित कर लीं। धनोपार्जनमें लगे-लगे ही उन्हें वृद्धावस्थाने आ घेरा, सारा शरीर जर्जर हो गया। कालके प्रभावसे सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो

गयीं और वे कहीं आने-जानेमें असमर्थ हो गये। सहसा उनके मनमें विवेक उदय हुआ कि मैंने सारा जीवन धन कमानेमें नष्ट कर दिया, अपना परलोक सुधारनेकी ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। अब मेरा उद्धार कैसे हो? मैंने तो आजीवन कोई सत्कर्म किया ही नहीं।

सुव्रत इस प्रकार पश्चात्तापकी अग्निमें दग्ध हो रहे थे, उधर रात्रिमें चोरोंने उनका सारा धन चोरी कर लिया। सुव्रतको पश्चात्ताप तो था ही, धनके चोरी चले जानेपर उसकी नश्वरताका भी बोध हो गया। अब उन्हें चिन्ता थी तो केवल अपने परलोककी। व्याकुलचित्त हो वे अपने उद्धारका उपाय सोच रहे थे कि उन्हें यह आधा श्लोक स्मरणमें आया—

माघे निमग्नाः सलिले सुशीते विमुक्तपापास्त्रिदिवं प्रयान्ति॥

सुव्रतको अपने उद्धारका मूल मन्त्र मिल गया। उन्होंने माघ-स्नानका संकल्प लिया और चल दिये नर्मदामें स्नान करने। इस प्रकार वे नौ दिनोंतक प्रातः नर्मदाके जलमें स्नान करते रहे। दसवें दिन स्नानके बाद वे अशक्त हो गये, शीतसे पीडित हो उन्होंने प्राण त्याग दिया। यद्यपि उन्होंने जीवनभर कोई सत्कर्म नहीं किया था, पापपूर्वक ही धनार्जन किया था, परंतु माघमासमें स्नान करके पश्चात्तापपूर्वक निर्मल मन हो प्राण त्यागनेसे उनके लिये दिव्य विमान आया और उसपर आरूढ हो वे स्वर्गलोक चले गये।

इस प्रकार माघ-स्नानकी अपूर्व महिमा है। इस मासकी प्रत्येक तिथि पर्व है। कदाचित् अशक्तावस्थामें पूरे मासका नियम न ले सके तो शास्त्रोंने यह भी व्यवस्था दी है कि तीन दिन अथवा एक दिन अवश्य माघ-स्नान-व्रतका पालन करे—'**मासपर्यन्तं स्नानासम्भवे तु त्र्यहमेकाहं वा स्नायात्।**' (निर्णयसिन्धु)

मकर-संक्रान्ति महापर्व

सूर्यका मकरराशिमें प्रवेश करना 'मकर-संक्रान्ति' कहलाता है। इसी दिनसे सूर्य उत्तरायण हो जाते हैं। शास्त्रोंमें उत्तरायणकी अवधिको देवताओंका दिन तथा दक्षिणायनको देवताओंकी रात्रि कहा गया है। इस तरह मकर-संक्रान्ति एक प्रकारसे देवताओंका प्रभातकाल है। इस दिन स्नान, दान, जप, तप, श्राद्ध तथा अनुष्ठान आदिका अत्यधिक महत्त्व है। कहते हैं कि इस अवसरपर किया गया दान सौ गुना होकर प्राप्त होता है।

इस दिन घृत और कम्बलके दानका भी विशेष महत्त्व है। इसका दान करनेवाला सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर मोक्षको प्राप्त होता है—

माघे मासि महादेव यो दद्याद् घृतकम्बलम्।
स भुक्त्वा सकलान् भोगान् अन्ते मोक्षं च विन्दति॥

मकर-संक्रान्तिके दिन गङ्गास्नान तथा गङ्गातटपर दानकी विशेष महिमा है। तीर्थराज प्रयाग एवं गङ्गासागरका मकर-संक्रान्तिका पर्वस्नान तो प्रसिद्ध ही है।

उत्तर प्रदेशमें इस व्रतको 'खिचड़ी' कहते हैं। इसलिये इस दिन खिचड़ी खाने तथा खिचड़ी-तिल दान देनेका विशेष महत्त्व मानते हैं। महाराष्ट्रमें विवाहित स्त्रियाँ पहली संक्रान्तिपर तेल, कपास, नमक आदि वस्तुएँ सौभाग्यवती स्त्रियोंको प्रदान करती हैं। बंगालमें इस दिन स्नान कर तिल दान करनेका विशेष प्रचलन है। दक्षिण भारतमें इसे 'पोंगल' कहते हैं। असममें आजके दिन बिहूका त्योहार मनाया जाता है।

राजस्थानकी प्रथाके अनुसार इस दिन सौभाग्यवती स्त्रियाँ तिलके लड्डू, घेवर तथा मोतीचूरके लड्डू आदिपर रुपया रखकर वायनके रूपमें अपनी सासको प्रणाम कर देती हैं तथा प्रायः किसी भी वस्तुका चौदहकी संख्यामें संकल्प कर चौदह ब्राह्मणोंको दान करती हैं।

इस प्रकार देशके विभिन्न भागोंमें मकर-संक्रान्तिपर्वपर विविध परम्पराएँ प्रचलित हैं।
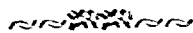
मकर-संक्रान्तिपर्वके विविध रूप

(श्रीरामसेवकजी भाल)

भारतमें समय-समयपर हर पर्वको श्रद्धा, आस्था, हर्षोल्लास एवं उमंगके साथ मनाया जाता है। पर्व एवं त्योहार प्रत्येक देशकी संस्कृति तथा सभ्यताको उजागर करते हैं। यहाँपर पर्व, त्योहार और उत्सव पृथक्-पृथक् प्रदेशोंमें अलग-अलग ढंगसे मनाये जाते हैं।

मकर-संक्रान्तिपर्वका हमारे देशमें विशेष महत्त्व है। इस सम्बन्धमें संत तुलसीदासजीने लिखा है—

माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई॥

(रा०च०मा० १।४४।३)

ऐसा कहा जाता है कि गङ्गा, यमुना और सरस्वतीके संगमपर प्रयागमें मकर-संक्रान्तिपर्वके दिन सभी देवी-देवता अपना स्वरूप बदलकर स्नानके लिये आते हैं। अतएव वहाँ मकर-संक्रान्तिपर्वके दिन स्नान करना अनन्त पुण्योंको एक साथ प्राप्त करना माना जाता है।

मकर-संक्रान्तिपर्व प्रायः प्रतिवर्ष १४ जनवरीको पड़ता है। खगोलशास्त्रियोंके अनुसार इस दिन सूर्य अपनी कक्षाओंमें परिवर्तन कर दक्षिणायनसे उत्तरायण होकर मकर-राशिमें प्रवेश करते हैं। जिस राशिमें सूर्यकी कक्षाका परिवर्तन होता है, उसे 'संक्रमण' या 'संक्रान्ति' कहा जाता है।

मकर-संक्रान्तिपर्वमें स्नान-दानका विशेष महत्त्व है। हमारे धर्मग्रन्थोंमें स्नानको पुण्यजनकके साथ ही स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी लाभदायक माना गया है। मकर-संक्रान्तिसे सूर्य उत्तरायण हो जाते हैं, गरमीका मौसम आरम्भ हो जाता है, इसलिये उस समय स्नान करना सुखदायी लगता है।

उत्तर भारतमें गङ्गा-यमुनाके किनारे (तटपर) बसे गाँवों-नगरोंमें मेलोंका आयोजन होता है। भारतमें सबसे प्रसिद्ध मेला बंगालमें मकर-संक्रान्तिपर्वपर 'गङ्गासागर' में लगता है। गङ्गासागरके मेलेके पीछे पौराणिक कथा है कि मकर-संक्रान्तिको गङ्गाजी स्वर्गसे उतरकर भगीरथके पीछे-पीछे चलकर कपिलमुनिके आश्रममें जाकर सागरमें मिल गयीं। गङ्गाजीके पावन जलसे ही राजा सगरके साठ हजार शापग्रस्त पुत्रोंका उद्धार हुआ था। इसी घटनाकी स्मृतिमें गङ्गासागर नामसे तीर्थ विख्यात हुआ और प्रतिवर्ष १४ जनवरीको गङ्गासागरमें मेलेका आयोजन होता है, इसके अतिरिक्त दक्षिण बिहारके मदार-क्षेत्रमें भी एक मेला लगता है।

मकर-संक्रान्तिपर्वपर इलाहाबाद (प्रयाग)-के संगम-स्थलपर प्रतिवर्ष लगभग एक मासतक माघमेला लगता है जहाँ भक्तगण कल्पवास भी करते हैं तथा बारह वर्षमें कुम्भका मेला लगता है। यह भी लगभग एक मासतक रहता है। इसी प्रकार छः वर्षमें अर्धकुम्भका मेला लगता है।

विभिन्न परम्पराओं और रीति-रिवाजोंके अनुरूप महाराष्ट्रमें ऐसा माना जाता है कि मकर-संक्रान्तिसे सूर्यकी गति तिल-तिल बढ़ती है, इसलिये इस दिन तिलके विभिन्न मिष्टान्न बनाकर एक-दूसरेको वितरित करते हुए शुभ कामनाएँ देकर यह त्योहार मनाया जाता है। महाराष्ट्र और गुजरातमें मकर-संक्रान्तिपर्वपर अनेक खेल-प्रतियोगिताओंका भी आयोजन होता है।

पंजाब एवं जम्मू-कश्मीरमें **'लोहिड़ी'** के नामसे मकर-संक्रान्तिपर्व मनाया जाता है। एक प्रचलित लोककथा है कि मकर-संक्रान्तिके दिन कंसने श्रीकृष्णको मारनेके लिये लोहिता नामकी एक राक्षसीको गोकुल भेजा था, जिसे श्रीकृष्णने खेल-खेलमें ही मार डाला था। उसी घटनाके फलस्वरूप लोहिड़ीका पावनपर्व मनाया जाता है। सिन्धीसमाज भी मकर-संक्रान्तिके एक दिन पूर्व इसे **'लाल लोही'** के रूपमें मनाता है।

तमिलनाडुमें मकर-संक्रान्तिको **'पोंगल'** के रूपमें मनाया जाता है। इस दिन तिल, चावल, दालकी खिचड़ी बनायी जाती है। नयी फसलका चावल, दाल, तिलके भोज्यपदार्थसे पूजा करके कृषिदेवताके प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाती है। तमिल पञ्चाङ्गका नया वर्ष पोंगलसे शुरू होता है।

भारतीय ज्योतिषके अनुसार मकर-संक्रान्तिके दिन सूर्यके एक राशिसे दूसरी राशिमें हुए परिवर्तनको अन्धकारसे प्रकाशकी ओर हुआ परिवर्तन माना जाता है। मकर-संक्रान्तिसे दिन बढ़ने लगता है और रात्रिकी अवधि कम होती जाती है। स्पष्ट है कि दिन बड़ा होनेसे प्रकाश अधिक होगा और रात्रि छोटी होनेसे अन्धकारकी अवधि कम होगी। यह सभी जानते हैं कि सूर्य ऊर्जाका अजस्र स्रोत है। इसके अधिक देर चमकनेसे प्राणिजगत्में चेतनता और उसकी कार्यशक्तिमें वृद्धि हो जाती है। इसीलिये हमारी संस्कृतिमें मकर-संक्रान्तिपर्व मनानेका विशेष महत्त्व है।

षट्तिला एकादशी

[माघ कृष्ण एकादशी]

माघमासके कृष्णपक्षकी एकादशी षट्तिला एकादशीके नामसे जानी जाती है। इस दिन छः प्रकारसे तिलोंका व्यवहार किया जाता है, इसीलिये इसे 'षट्तिला' कहा जाता है। इस दिन तिलोंके जलसे स्नान, तिलका उबटन, तिलसे हवन, तिल मिले जलका पान, तिलका भोजन तथा तिलका दान करनेसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है—

तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी।
तिलभुक् तिलदाता च षट्तिलाः पापनाशनाः॥

इस दिन काले तिल तथा काली गायके दानका भी बड़ा माहात्म्य है।

व्रत-विधान—इस दिन प्रातः स्नान करके '**श्रीकृष्ण**'—इस नाम-मन्त्रका जप करे, दिनभर उपवास रखे और रात्रिमें जागरण तथा तिलसे हवन करे। भगवान्का पूजन कर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अर्घ्य दे—

सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुषपूर्वज।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं लक्ष्म्या सह जगत्पते॥

नैवेद्यमें तिलयुक्त फलाहारी सामान रखना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको भी तिलयुक्त फलाहर खिलाना चाहिये। यह व्रत सभी मनोकामनाएँ पूर्ण करनेवाला है।

इस व्रतके संदर्भमें एक कथा प्रचलित है कि एक ब्राह्मणीको भगवत्सम्बन्धी व्रतों, उपवासों और पतिसेवाके फलस्वरूप वैकुण्ठ प्राप्त हो गया। उसने कपाली बने भगवान्को एक मिट्टीका ढेला दिया था, इसलिये वैकुण्ठमें उसे सुन्दर-सा मिट्टीका घर मिल गया। परंतु दानकें निमित्त एक दाना भी अन्न किसीको न देनेसे उसे वहाँ अन्नादि कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। तब उसने भगवान्की आज्ञासे षट्तिलाव्रत किया और इसके प्रभावसे उसे सब कुछ प्राप्त हुआ।

मौनी अमावास्या

[माघ-अमावास्या]

माघमासके कृष्णपक्षकी अमावास्याकी 'मौनी अमावास्या' के रूपमें प्रसिद्धि है। इस पवित्र तिथिपर मौन रहकर अथवा मुनियोंके समान आचरणपूर्वक स्नान-दान करनेका विशेष महत्त्व है। मौनी अमावास्याके दिन सोमवारका योग होनेसे उसका महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। इस दिन त्रिवेणी अथवा गङ्गातटपर स्नान-दानकी अपार महिमा है।

मौनी अमावास्याको नित्यकर्मसे निवृत्त हो स्नान करके तिल, तिलके लड्डू, तिलका तेल, आँवला, वस्त्र आदिका दान करना चाहिये। इस दिन साधु, महात्मा तथा ब्राह्मणोंके सेवनके लिये अग्नि प्रज्वलित करना चाहिये तथा उन्हें कम्बल आदि जाड़ेके वस्त्र देने चाहिये—

तैलमामलकाश्चैव तीर्थे देयास्तु नित्यशः।
ततः प्रज्वालयेद्वह्निं सेवनार्थे द्विजन्मनाम्॥
कम्बलाजिनरत्नानि वासांसि विविधानि च।
चोलकानि च देयानि प्रच्छादनपटास्तथा॥

इस दिन गुड़में काला तिल मिलाकर लड्डू बनाना चाहिये तथा उसे लाल वस्त्रमें बाँधकर ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इस दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा देनी चाहिये। स्नान-दानादि पुण्यकर्मोंके अतिरिक्त इस दिन पितृ-श्राद्धादि करनेका भी विधान है।

मौनी अमावास्याको यदि रविवार, व्यतीपातयोग और श्रवणनक्षत्र हो तो 'अर्धोदययोग' होता है। इस योगमें सभी स्थानोंका जल गङ्गातुल्य हो जाता है और सभी ब्राह्मण ब्रह्मसंनिभ शुद्धात्मा हो जाते हैं। अतः इस योगमें यत्किञ्चित् किये हुए स्नान-दानादिका फल भी मेरुसमान हो जाता है।
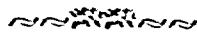
विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीका पूजन-महोत्सव—वसन्तपञ्चमी

[माघ शुक्ल पञ्चमी]

(आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

भारतीय संस्कृतिमें व्रत, पर्व एवं उत्सवोंकी विशेष प्रतिष्ठा है। यहाँ कोई भी दिन ऐसा नहीं होता, जिस दिन कोई-न-कोई व्रत, पर्व या उत्सव न मनाया जाता हो। माघ शुक्ल पञ्चमीको मनाये जानेवाले सारस्वतोत्सव (सरस्वती-पूजन)-का महत्त्व अनुपम है। इस उत्सवको मनाये जानेके पीछे क्या उद्देश्य है तथा सरस्वती-पूजनका महत्त्व क्या है—इसे जाननेके पूर्व हमें यह जानना आवश्यक है कि भगवती सरस्वतीका स्वरूप या प्रभाव क्या है?

भगवती सरस्वती विद्या, बुद्धि, ज्ञान और वाणीकी अधिष्ठात्री देवी हैं तथा सर्वदा शास्त्र-ज्ञानको देनेवाली हैं। भगवती शारदाका मूलस्थान शशाङ्कसदन अर्थात् अमृतमय प्रकाशपुञ्ज है। जहाँसे वे अपने उपासकोंके लिये निरन्तर पचास अक्षरोंके रूपमें ज्ञानामृतकी धारा प्रवाहित करती हैं। उनका विग्रह शुद्ध ज्ञानमय, आनन्दमय है। उनका तेज दिव्य एवं अपरिमेय है और वे ही शब्दब्रह्मके रूपमें स्तुत होती हैं। सृष्टिकालमें ईश्वरकी इच्छासे आद्याशक्तिने अपने पाँच भागोंमें विभक्त कर लिया था। वे राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा और सरस्वतीके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णके विभिन्न अङ्गोंसे प्रकट हुई थीं। उस समय श्रीकृष्णके कण्ठ से उत्पन्न होनेवाली देवीका नाम सरस्वती हुआ।*

'श्रीमद्देवीभागवत' और 'श्रीदुर्गासप्तशती'में भी आद्याशक्तिद्वारा अपने-आपको तीन भागोंमें विभक्त करनेकी कथा प्राप्त होती है। आद्याशक्तिके ये तीनों रूप महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वतीके नामसे जगद्विख्यात हैं।

भगवती सरस्वती सत्त्वगुणसम्पन्ना हैं। इनके अनेक नाम हैं, जिनमेंसे वाक्, वाणी, गीः, गिरा, भाषा, शारदा, वाचा, धीश्वरी, वागीश्वरी, ब्राह्मी, गौ, सोमलता, वाग्देवी और वाग्देवता आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

भगवती सरस्वतीकी महिमा और प्रभाव असीम है। ऋग्वेदके १० । १२५ सूक्तके आठवें मन्त्रके अनुसार वाग्देवी सौम्य गुणोंकी दात्री तथा वसु-रुद्रादित्यादि सभी देवोंकी रक्षिका हैं। वे राष्ट्रिय भावना प्रदान करती हैं तथा लोकहितके लिये संघर्ष करती हैं। सृष्टि-निर्माण वाग्देवीका कार्य है। वे ही सारे संसारकी निर्मात्री एवं अधीश्वरी हैं। वाग्देवीको प्रसन्न कर लेनेपर मनुष्य संसारके सारे सुख भोगता है। इनके अनुग्रहसे मनुष्य ज्ञानी, विज्ञानी, मेधावी, महर्षि और ब्रह्मर्षि हो जाता है। वाग्देवी सर्वत्र व्याप्त हैं तथापि वे निर्लेप-निरञ्जन एवं निष्काम हैं।

ब्राह्मणग्रन्थोंके अनुसार वाग्देवी ब्रह्मस्वरूपा, कामधेनु तथा समस्त देवोंकी प्रतिनिधि हैं। ये ही विद्या, बुद्धि और सरस्वती हैं।

इस प्रकार अमित तेजस्विनी और अनन्त गुणशालिनी देवी सरस्वतीकी पूजा एवं आराधनाके लिये माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथि निर्धारित की गयी है।

---

* आविर्बभूव तत्पश्चान्मुखतः परमात्मनः। एका देवी शुक्लवर्णा वीणापुस्तकधारिणी॥
वागधिष्ठातृ देवी सा कवीनामिष्टदेवता।
सा च शक्तिः सृष्टिकाले पञ्चधा चेश्वरेच्छया। राधा पद्मा च सावित्री दुर्गा देवी सरस्वती॥
वागधिष्ठातृ या देवी शास्त्रज्ञानप्रदा सदा। कृष्णकण्ठोद्भवा सा च या च देवी सरस्वती॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्म० ३। ५४, ५७; गणपतिखण्ड ४०। ६१, ६६)

वसन्तपञ्चमीको इनका आविर्भाव-दिवस माना जाता है। अतः वागीश्वरीजयन्ती एवं श्रीपञ्चमीके नामसे भी इस तिथिकी प्रसिद्धि है। इस दिन इनकी विशेष अर्चा-पूजा तथा व्रतोत्सवके द्वारा इनके सांनिध्यप्राप्तिकी साधना की जाती है। सरस्वतीदेवीकी इस वार्षिक पूजाके साथ ही बालकोंके अक्षरारम्भ एवं विद्यारम्भकी तिथियोंपर भी सरस्वती-पूजनका विधान किया गया है—

माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च।
पूर्वेऽह्नि संयमं कृत्वा तत्राह्नि संयतः शुचिः॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्ड ४।३४)

भगवती सरस्वतीकी पूजाहेतु आजकल सार्वजनिक पूजापण्डालोंकी रचना करके उसमें देवी सरस्वतीकी मूर्ति स्थापित करने एवं पूजन करनेका प्रचलन दिखायी पड़ता है, किंतु शास्त्रोंमें वाग्देवीकी आराधना व्यक्तिगत रूपमें ही करनेका विधान बतलाया गया है। सरस्वतीरहस्योपनिषद्, प्रपञ्चसार तथा शारदातिलक आदि ग्रन्थोंमें भगवती सरस्वतीके दिव्य स्वरूप तथा उनकी उपासनाका वर्णन हुआ है और उनके व्रतोपवास-सम्बन्धी अनेक मन्त्र, यन्त्र, स्तोत्र, पटल तथा पद्धतियाँ भी वहाँ प्राप्त हैं। संवत्सरप्रदीप, श्रीमद्देवीभागवत, श्रीदुर्गासप्तशती तथा ब्रह्मवैवर्तादि पुराणोंके समवेत अनुशीलनके पश्चात् सरस्वती-पूजनकी जो विधि स्पष्ट होती है। उसके अनुसार भगवती सरस्वतीके उपासकको माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको प्रातःकालमें भगवती सरस्वतीकी पूजा करनी चाहिये। इसके एक दिन पूर्व अर्थात् माघ शुक्ल चतुर्थीको वागुपासक संयम, नियमका पालन करे। इसके बाद माघ शुक्ल पञ्चमीको प्रातःकाल उठकर शौचादि नित्यक्रियासे निवृत्त होकर घट (कलश)-की स्थापना करके उसमें वाग्देवीका आवाहन करे तथा विधिपूर्वक देवी सरस्वतीकी पूजा करे। पूजन-कार्यमें स्वयं सक्षम न हो तो किसी सुविज्ञ कर्मकाण्डी या कुलपुरोहितसे दिशा-निर्देश प्राप्त करके तदनुसार पूजन-कार्य सम्पन्न करे।

भगवती सरस्वतीकी पूजन-प्रक्रियामें सर्वप्रथम आचमन, प्राणायामादिके द्वारा अपनी बाह्याभ्यन्तर शुचिता सम्पन्न करे। फिर सरस्वती-पूजनका संकल्प ग्रहण करे। इसमें देशकालादिका संकीर्तन करते हुए अन्तमें—'**यथोपलब्धपूजनसामग्रीभिः भगवत्याः सरस्वत्याः पूजनमहं करिष्ये।**' पढ़कर संकल्प-जल छोड़ दे। तत्पश्चात् श्रीगणेशकी आदिपूजा करके कलश स्थापित कर उसमें देवी सरस्वतीका सादर आवाहन करके वैदिक या पौराणिक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उपचार-सामग्रियाँ भगवतीको सादर समर्पित करे।

वेदोक्त अष्टाक्षरयुक्त मन्त्र सरस्वतीका मूलमन्त्र है अथवा जो उपासक जिस मन्त्रमें दीक्षित हो वही उसका मूलमन्त्र है। निज मूलमन्त्रसे अथवा '**श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा**' इस अष्टाक्षर-मन्त्रसे प्रत्येक वस्तु क्रमशः श्रीसरस्वतीको समर्पण करे (देवीभागवत ९।४।५०-५१)। अन्तमें देवी सरस्वतीकी आरती करके उनकी स्तुति करे।

सरस्वती-पूजनके समय निम्नलिखित श्लोकोंसे भगवतीका ध्यान करे—

सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम्॥
कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम् ।
वह्निशुद्धां शुकाधानां वीणापुस्तकधारिणीम्॥
रत्नसारेन्द्रनिर्माणनवभूषणभूषिताम् ।
सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः॥
वन्दे भक्त्या वन्दितां च मुनीन्द्रमनुमानवैः।

(देवीभागवत ९।४।४५—४८)

इसके अतिरिक्त भगवती सरस्वतीकी स्तुति एवं ध्यान करनेके लिये निम्नलिखित दो श्लोक जगद्विख्यात हैं—

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥
शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥

स्तुतिगानके अनन्तर सांगीतिक आराधना भी यथासम्भव करके भगवतीको निवेदित गन्ध-पुष्प-मिष्टान्नादिका प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। पुस्तक और लेखनी (कलम)-में भी देवी सरस्वतीका निवासस्थान माना जाता है तथा उसकी पूजा की जाती है। माघ शुक्ल पञ्चमीको अनध्याय भी कहा गया है।

भगवती सरस्वतीकी उत्पत्ति सत्त्वगुणसे हुई है। इनकी आराधना एवं पूजामें प्रयुक्त होनेवाली उपचार-सामग्रियोंमें अधिकांश श्वेतवर्णकी होती हैं। यथा—दुग्ध-

दही-मक्खन, धानका लावा, सफेद तिलका लड्डू, गन्ना एवं गन्नेका रस, पका हुआ गुड़, मधु, श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प, श्वेत परिधान (रेशमी या सूती), श्वेत अलंकार (चाँदीसे निर्मित), खोवेका श्वेत मिष्टान्न, अदरक, मूली, शर्करा, श्वेत धान्यके अक्षत, तण्डुल, शुक्ल मोदक, घृत, सैन्धवयुक्त हविष्यान्न, यवचूर्ण या गोधूमचूर्णका घृतसंयुक्त पिष्टक, पके हुए केलेकी फलीका पिष्टक, नारियल, नारियलका जल, श्रीफल, बदरीफल, ऋतुकालोद्भव पुष्प-फल आदि।

देवीभागवत एवं ब्रह्मवैवर्तपुराणमें वर्णित आख्यानमें पूर्वकालमें श्रीमन्नारायणभगवान्‌ने वाल्मीकिको सरस्वतीका मन्त्र बतलाया था। जिसके जपसे उनमें कवित्व शक्ति उत्पन्न हुई थी। भगवान् नारायणद्वारा उपदिष्ट वह अष्टाक्षर-मन्त्र इस प्रकार है—'**श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा।**' इसका चार लाख जप करनेसे मन्त्रसिद्धि होती है। आगम-ग्रन्थोंमें इनके कई मन्त्र निर्दिष्ट हैं, जिनमें—'**ऐं वाग्वादिनि वद वद स्वाहा**' यह सबीज दशाक्षर-मन्त्र सर्वार्थसिद्धिप्रद तथा सर्वविद्याप्रदायक कहा गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें प्रदिष्ट उनका एक मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा।**'

महर्षि वाल्मीकि, व्यास, वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा शौनक आदि ऋषि इनकी ही साधनासे कृतार्थ हुए। महर्षि व्यासजीकी स्वल्प व्रतोपासनासे प्रसन्न होकर ये उनसे कहती हैं—व्यास! तुम मेरी प्रेरणासे रचित वाल्मीकि-रामायणको पढ़ो, वह मेरी शक्तिके कारण सभी काव्योंका सनातन बीज बन गया है। उसमें श्रीरामचरितके रूपमें मैं साक्षात् मूर्तिमती शक्तिके रूपमें प्रतिष्ठित हूँ—

पठ रामायणं व्यास काव्यबीजं सनातनम्।
यत्र रामचरितं स्यात् तदहं तत्र शक्तिमान्॥

(बृहद्धर्मपुराण १।३०।४७

भगवती सरस्वतीको प्रसन्न करके उनसे अभिलषि वर प्राप्त करनेके लिये विश्वविजय नामक सरस्वती कवचका वर्णन भी प्राप्त होता है।*

भगवती सरस्वतीके इस अद्भुत विश्वविजय कवचव धारण करके ही व्यास, ऋष्यशृंग, भरद्वाज, देवल त जैगीषव्य आदि ऋषियोंने सिद्धि पायी थी। इस कवचव सर्वप्रथम रासरासेश्वर श्रीकृष्णने गोलोकधामके वृन्दाव नामक अरण्यमें रासोत्सवके समय रासमण्डलमें ब्रह्माजी कहा था। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने गन्धमादन पर्वतपर भृगुमुनिव इसे दिया था।

भगवती सरस्वतीकी उपासना (कालीके रूपमें करके ही कविकुलगुरु कालिदासने ख्याति पायी। गोस्वामीज कहते हैं कि देवी गङ्गा और सरस्वती दोनों एक समान ह पवित्रकारिणी हैं। एक पापहारिणी और एक अविवेक-हारिणी हैं—

पुनि बंदउँ सारद सुरसरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता॥
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका॥

भगवती सरस्वती विद्याकी अधिष्ठातृ देवी हैं और विद्याको सभी धनोंमें प्रधान धन कहा गया है। विद्यासे ही अमृतपान किया जा सकता है।

भगवती सरस्वतीके व्रतोपासकोंके लिये आगमोंमें

---

* श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः। श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदाऽवतु॥
ॐ सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रं पातु निरन्तरम्। ॐ श्रीं ह्रीं भारत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदाऽवतु॥
ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वतोऽवतु। ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा ओष्ठं सदाऽवतु॥
ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपंक्तीः सदाऽवतु। ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदाऽवतु॥
ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धं मे श्रीं सदाऽवतु। श्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु॥
ॐ ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम्। ॐ ह्रीं ह्रीं वाण्यै स्वाहेति मम पृष्ठं सदाऽवतु॥
ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदाऽवतु। ॐ रागाधिष्ठातृदेव्यै सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु॥
ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदाऽवतु। ॐ ह्रीं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा। सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदाऽवतु॥
ॐ ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां मे सदाऽवतु। कविजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु॥
ॐ सदाम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदाऽवतु। ॐ गद्यपद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु॥
ॐ सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदाऽवतु। ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदाऽवतु॥
ऐं ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाऽधो मां सदाऽवतु। ॐ ग्रन्थबीजरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु॥

(ब्र० वै० पु० प्रकृतिखण्ड ४। ७३—८५)

अचलासप्तमीव्रत-कथा तथा व्रत-विधि

[माघ शुक्ल सप्तमी]

(श्रीशिवाश्रयानन्दी रामप्रसादजी प्रजापति)

अचलासप्तमी पुराणोंमें रथ, सूर्य, भानु, अर्क, महती तथा पुत्रसप्तमी आदि अनेक नामोंसे विख्यात है और अनेक पुराणोंमें उन-उन नामोंसे अलग-अलग विधियाँ निर्दिष्ट हैं, जिनके पालनसे सभी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं। यहाँ भविष्यपुराणमें निर्दिष्ट अचलासप्तमीव्रतका माहात्म्य और विधान संक्षेपमें दिया जा रहा है—

एक बार राजा युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—भगवन्! आपने सभी उत्तम फलोंको देनेवाले—'माघस्नान'*का विधान बताया था, परंतु जो प्रात:काल स्नान करनेमें समर्थ न हो वह क्या करे? स्त्रियाँ अति सुकुमारी होती हैं, वे किस प्रकारसे माघस्नानका कष्ट सहन कर सकती हैं? इसलिये आप कोई ऐसा उपाय बतायें कि थोड़ेसे परिश्रमद्वारा नारियोंको रूप, सौभाग्य, संतान और अनन्त पुण्यकी प्राप्ति हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं अचलासप्तमीव्रतका विधान बतलाता हूँ, जिसे करनेसे सब उत्तम फल प्राप्त हो जाते हैं। इस सम्बन्धमें आप एक कथा सुनें—

मगध देशमें इन्दुमती नामकी एक अति रूपवती वेश्या रहती थी। एक दिन वह प्रात:काल बैठी-बैठी संसारकी अनवस्थिति (नश्वरता)-का इस प्रकार चिन्तन करने लगी—'देखो! यह विषयरूपी संसार-सागर कैसा भयंकर है, जिसमें डूबते हुए जीव जन्म, मृत्यु, जरा-जैसे जल-जन्तुओंसे पीड़ित होते हुए भी किसी प्रकार पार उतर नहीं पाते। ब्रह्माजीके द्वारा निर्मित यह प्राणिसमुदाय अपने किये गये कर्मरूपी ईंधन एवं कालरूपी अग्निसे दग्ध कर दिया जाता है। प्राणियोंके जो धर्म, अर्थ, कामसे रहित दिन व्यतीत होते हैं, फिर वे कहाँ वापस आते हैं? जिस दिन स्नान, दान, तप, व्रत, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण आदि सत्कर्म नहीं किया जाता, वह दिन व्यर्थ होता है। पुत्र, स्त्री, घर, क्षेत्र तथा धन आदिकी चिन्तामें मनुष्यकी सारी आयु बीत जाती है और मृत्यु आकर दबोच लेती है।'

इस प्रकार कुछ निर्विण्ण—उद्विग्न होकर सोचती-विचारती हुई वह वेश्या महर्षि वसिष्ठके आश्रममें गयी और उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़कर कहने लगी—'भगवन्! मैंने न तो कभी कोई दान किया और न जप, तप, व्रत, उपवास आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान ही किया तथा न

आदि किन्हीं देवताओंकी आराधना ही की। अब मैं इस भयंकर संसारसे भयभीत होकर आपकी शरणमें आयी हूँ, आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतलायें जिससे मेरा उद्धार हो जाय।'

वसिष्ठजी बोले—वरानने! तुम माघमासके शुक्लपक्षकी सप्तमीको स्नान करो, जिससे रूप, सौभाग्य और सद्गति आदि सभी फल प्राप्त होते हैं। षष्ठीके दिन एक बार भोजन करके सप्तमीको प्रातःकाल ही ऐसे नदीतट अथवा जलाशयपर जाकर दीपदान और स्नान करो, जिसके जलको किसीने स्नानकर हिलाया न हो, क्योंकि जल मलको प्रक्षालित कर देता है। बादमें यथाशक्ति दान भी करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। वसिष्ठजीका ऐसा वचन सुनकर इन्दुमती अपने घर वापस लौट आयी और उनके द्वारा बतायी गयी विधिके अनुसार उसने स्नान-ध्यान आदि कर्मोंको सम्पन्न किया। सप्तमीके स्नानके प्रभावसे बहुत दिनोंतक सांसारिक सुखोंका उपभोग करती हुई वह देहत्यागके पश्चात् देवराज इन्द्रकी सभी अप्सराओंमें प्रधान नायिकाके पदपर अधिष्ठित हुई। यह अचलासप्तमी सम्पूर्ण पापोंका प्रशमन करनेवाली तथा सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाली है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अचलासप्तमीव्रतका माहात्म्य तो आपने बतलाया, कृपाकर अब स्नान-विधान भी बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! षष्ठीके दिन एकभुक्त होकर सूर्यनारायणका पूजन करे। यथासम्भव सप्तमीको प्रातःकाल ही उठकर नदी या सरोवरपर जाकर अरुणोदय वेलामें बहुत सबेरे ही स्नान करनेकी चेष्टा करे। सुवर्ण, चाँदी अथवा ताम्रके पात्रमें कुसुम्भकी रँगी हुई बत्ती और तिलका तेल डालकर दीपक प्रज्वलित करे। उस दीपकको सिरपर रखकर हृदयमें भगवान् सूर्यका इस प्रकार ध्यान करे—

नमस्ते रुद्ररूपाय रसानाम्पतये नमः।
वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोऽस्तु ते॥
यावज्जन्म कृतं पापं मया जन्मसु सप्तसु।
तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी॥
जननी सर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके।
सर्वव्याधिहरे देवि नमस्ते रविमण्डले॥

(उत्तरपर्व ५३। ३३—३५)

तदनन्तर दीपकको जलके ऊपर तैरा दे, फिर स्नानकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करे और चन्दनसे कर्णिकासहित अष्टदल-कमल बनाये। उस कमलके मध्यमें शिव-पार्वतीकी स्थापना कर प्रणव-मन्त्रसे पूजा करे और पूर्वादि आठ दलोंमें क्रमसे भानु, रवि, विवस्वान्, भास्कर, सविता, अर्क, सहस्रकिरण तथा सर्वात्माका पूजन करे। इन नामोंके आदिमें 'ॐ' कार, चतुर्थी विभक्ति तथा अन्तमें '**नमः**' पद लगाये, यथा—'**ॐ भानवे नमः**', '**ॐ रवये नमः**' इत्यादि।

इस प्रकार पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा वस्त्र आदि उपचारोंसे विधिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा कर—'**स्वस्थानं गम्यताम्**'—यह कहकर विसर्जित कर दे। बादमें ताम्र अथवा मिट्टीके पात्रमें गुड़ और घृतसहित तिलचूर्ण तथा सुवर्णका तालपत्राकार एक कानका आभूषण बनाकर पात्रमें रख दे। अनन्तर रक्तवस्त्रसे उसे ढँककर पुष्प-धूपादिसे पूजन करे और वह पात्र दौर्भाग्य तथा दुःखोंके विनाशकी कामनासे ब्राह्मणको दे दे। अनन्तर—'**सपुत्रपशुभृत्याय मेऽर्कोऽयं प्रीयताम्**' पुत्र, पशु, भृत्य-समन्वित मेरे ऊपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जायँ—ऐसी प्रार्थना करे।

फिर गुरुको वस्त्र, तिल, गो और दक्षिणा देकर तथा शक्तिके अनुसार अन्य ब्राह्मणोंको भोजन कराकर व्रत समाप्त करे।

जो पुरुष इस विधिसे अचलासप्तमीको स्नान करता है, उसे सम्पूर्ण माघस्नानका फल प्राप्त होता है। व्रतके रूपमें इस दिन नमकरहित एक समय एकान्नका भोजन अथवा फलाहार करनेका विधान है। यह मान्यता है कि अचलासप्तमीका व्रत करनेवालेको वर्षभर रविवारव्रत करनेका पुण्य प्राप्त हो जाता है। जो अचलासप्तमीके माहात्म्यको श्रद्धा-भक्तिसे कहेगा अथवा सुनेगा तथा लोगोंको इस माहात्म्यका उपदेश करेगा, वह उत्तम लोकको अवश्य प्राप्त करेगा।
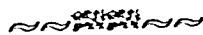
भीष्माष्टमी

[माघ शुक्ल अष्टमी]

माघमासके शुक्लपक्षकी अष्टमी 'भीष्माष्टमी'-के नामसे प्रसिद्ध है। इसी तिथिको बाल ब्रह्मचारी भीष्मपितामहने सूर्यके उत्तरायण होनेपर अपने प्राण छोड़े थे। उनकी पावन स्मृतिमें यह पर्व मनाया जाता है। इस दिन प्रत्येक हिन्दूको भीष्मपितामहके निमित्त कुश, तिल, जल लेकर तर्पण करना चाहिये, चाहे उसके माता-पिता जीवित ही क्यों न हों। इस व्रतके करनेसे मनुष्य सुन्दर और गुणवान् संतति प्राप्त करता है—

माघे मासि सिताष्टम्यां सतिलं भीष्मतर्पणम्।
श्राद्धं च ये नराः कुर्युस्ते स्युः सन्ततिभागिनः॥

(हेमाद्रि)

महाभारतके अनुसार जो मनुष्य माघ शुक्ल अष्टमीको भीष्मके निमित्त तर्पण, जलदान आदि करता है, उसके वर्षभरके पाप नष्ट हो जाते हैं—

शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद् भीष्माय यो जलम्।
संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥

व्रत-विधि—इस दिन प्रातः नित्यकर्मसे निवृत्त होकर यदि सम्भव हो तो किसी पवित्र नदी या सरोवरके तटपर जाकर स्नान करना चाहिये। अन्यथा घरपर ही विधिपूर्वक स्नानकर भीष्मपितामहके निमित्त हाथमें तिल, जल आदि लेकर अपसव्य और दक्षिणाभिमुख होकर निम्नलिखित मन्त्रोंसे तर्पण करना चाहिये—

वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च।
गङ्गापुत्राय भीष्माय सर्वदा ब्रह्मचारिणे॥
भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
आभिरद्भिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम्॥

इसके बाद पुनः सव्य होकर निम्न मन्त्रसे गङ्गापुत्र भीष्मको अर्घ्य देना चाहिये—

वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारिणे॥

कथा—भीष्मपितामह हस्तिनापुरके राजा शन्तनुके पुत्र थे। देवनदी भागीरथी श्रीगङ्गाजी इनकी माता थीं। बचपनमें इनका नाम देवव्रत था। इन्होंने देवगुरु बृहस्पतिसे शास्त्र तथा परशुरामजीसे अस्त्र-शस्त्रकी शिक्षा प्राप्त की थी। इनके समकालीन शस्त्र-शास्त्रका इनके-जैसा कोई ज्ञाता नहीं था। वीर होनेके साथ ही ये सदाचारी और धार्मिक थे। सब प्रकारसे योग्य देखकर महाराज शन्तनुने इन्हें युवराज घोषित कर दिया था।

एक बार महाराज शन्तनु शिकार खेलने गये थे। वहाँ उन्होंने मत्स्यगन्धा नामक एक निषादकन्याको देखा, जो पराशर ऋषिके वरदानसे अपूर्व लावण्यवती हो गयी थी। उसके शरीरसे कमलकी सुगन्ध निःसृत हो रही थी जो एक योजनतक जाती थी। महाराज शन्तनु उसके रूपलावण्यपर मुग्ध हो गये। उन्होंने उसके पिता निषादराजसे उस कन्याके लिये याचना की। निषादराजने शर्त रखी कि इस कन्यासे उत्पन्न पुत्र ही राज्यका अधिकारी हो।

राजा उदास हो गये, वे राजकुमार देवव्रतके अधिकारको छीनना अनुचित मानते थे, पर मत्स्यगन्धाको वे अपने हृदयसे निकाल नहीं सके। परिणामस्वरूप वे बीमार हो गये। राजकुमार देवव्रतको जब राजाकी बीमारी और उसका कारण पता चला तो वे निषादराजके पास गये और निषादराजसे कन्याको अपने पिताके लिये माँगा। निषादराजने अपनी शर्त राजकुमार देवव्रतके भी सामने रख दी। इसपर देवव्रतने कहा कि इस कन्यासे उत्पन्न होनेवाला पुत्र ही राज्यका अधिकारी होगा, मैं सत्यकी शपथ खाकर कहता

हूँ कि मैं राजसिंहासनपर नहीं बैठूँगा। इसपर निषादराजने कहा कि आप राज्यसिंहासनपर नहीं बैठेंगे, परंतु आपका पुत्र मेरे दौहित्रोंसे सिंहासन छीन सकता है। ऐसा सुनकर राजकुमार देवव्रतने सभी दिशाओं और देवताओंको साक्षी करके आजीवन ब्रह्मचारी रहने और विवाह न करनेकी भीषण प्रतिज्ञा की। इस भीषण प्रतिज्ञाके कारण ही उनका नाम 'भीष्म' पड़ा।

अपने पिताके सुखके लिये इतने बड़े व्रतको निभानेवाले आजीवन बालब्रह्मचारी भीष्मका चरित्र हम सबके लिये अनुकरणीय है। उनकी पुत्रहीन-अवस्थामें मृत्यु हुई, परंतु इनके अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रतके कारण सम्पूर्ण हिन्दूसमाज पुत्रकी भाँति इनका तर्पण करता है।

माघी पूर्णिमा

शास्त्रोंमें माघमासस्नान-व्रतकी बड़ी महिमा बतायी गयी है। यूँ तो माघकी प्रत्येक तिथि पुण्यपर्व है तथापि उनमें भी माघी पूर्णिमाको विशेष महत्त्व दिया गया है। माघमासकी पूर्णिमा तीर्थस्थलोंमें स्नान-दानादिके लिये परम फलदायिनी बतायी गयी है। तीर्थराज प्रयागमें इस दिन स्नान, दान, गोदान एवं यज्ञका विशेष महत्त्व है। सङ्गमस्थलपर

एक मासतक कल्पवास करनेवाले तीर्थयात्रियोंके लिये आजकी तिथि एक विशेष पर्व है। माघी पूर्णिमाको एक मासका कल्पवास पूर्ण भी हो जाता है।

इस पुण्य तिथिको सभी कल्पवासी गृहस्थ प्रात:काल गङ्गास्नान कर गङ्गा माताकी आरती और पूजा करते हैं तथा अपनी-अपनी कुटियोंमें आकर हवन करते हैं, फिर साधु-संन्यासियों तथा ब्राह्मणों एवं भिक्षुओंको भोजन कराकर स्वयं भोजन ग्रहण करते हैं और कल्पवासके लिये रखी गयी खाने-पीनेकी वस्तुएँ, जो कुछ बची रहती हैं, उन्हें दान कर देते हैं और गङ्गाजीकी 'रेणुका', कुछ प्रसाद—रोली एवं रक्षासूत्र तथा गङ्गाजल लेकर फिरसे गङ्गा माताके 'दरबार' में उपस्थित होनेकी प्रार्थना कर अपने-अपने घरोंको जाते हैं।

विधि—माघी पूर्णिमाको कुछ धार्मिक कृत्योंके सम्पन्न करनेकी भी विधि शास्त्रोंमें दी गयी है। वह इस प्रकार है—प्रात:काल नित्यकर्म एवं स्नानादिसे निवृत्त होकर भगवान् विष्णुका विधिपूर्वक पूजन करे। फिर पितरोंका श्राद्ध करे। असमर्थोंको भोजन, वस्त्र तथा आश्रय दे। तिल, कम्बल, कपास, गुड़, घी, मोदक, जूते, फल, अन्न और यथाशक्ति सुवर्ण, रजत आदिका दान दे तथा पूरे दिनका

व्रत रखकर ब्राह्मणोंको भोजन दे और सत्सङ्ग एवं कथा-कीर्तनमें दिन-रात बिताकर दूसरे दिन पारण करे।

माघ शुक्ल पूर्णिमाको यदि शनि मेषराशिपर, गुरु और चन्द्रमा सिंहराशिपर तथा सूर्य श्रवणनक्षत्रपर हों तो महामाघी पूर्णिमाका योग होता है। यह पुण्यतिथि स्नान-दानादिके लिये अक्षय फलदायिनी होती है।

फाल्गुनमासके व्रतपर्वोत्सव—

महाशिवरात्रि-महोत्सव तथा उसका आख्यान

[फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी]

(आचार्य श्रीरामगोपालजी गोस्वामी, एम्०ए०, एल्०टी०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न)

शिवरात्रिका अर्थ वह रात्रि है जिसका शिवतत्त्वके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। भगवान् शिवजीकी अतिप्रिय रात्रिको 'शिवरात्रि' कहा गया है।

शिवार्चन और जागरण ही इस व्रतकी विशेषता है। इसमें रात्रिभर जागरण एवं शिवाभिषेकका विधान है।

श्रीपार्वतीजीकी जिज्ञासापर भगवान् शिवजीने बताया कि फाल्गुन कृष्णपक्षकी चतुर्दशी शिवरात्रि कहलाती है। जो उस दिन उपवास करता है, वह मुझे प्रसन्न कर लेता है। मैं अभिषेक, वस्त्र, धूप, अर्चन तथा पुष्पादिसमर्पणसे उतना प्रसन्न नहीं होता जितना कि व्रतोपवाससे—

फाल्गुने कृष्णपक्षस्य या तिथिः स्याच्चतुर्दशी।
तस्यां या तामसी रात्रिः सोच्यते शिवरात्रिका॥
तत्रोपवासं कुर्वाणः प्रसादयति मां ध्रुवम्।
न स्नानेन न वस्त्रेण न धूपेन न चार्चया।
तुष्यामि न तथा पुष्पैर्यथा तत्रोपवासतः॥

ईशानसंहितामें बताया गया है कि फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिको आदिदेव भगवान् श्रीशिव करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावाले लिङ्गरूपमें प्रकट हुए।

फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि।
शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥

शिवरात्रिव्रतकी वैज्ञानिकता तथा आध्यात्मिकता

ज्योतिषशास्त्रके अनुसार फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी तिथिमें चन्द्रमा सूर्यके समीप होता है। अतः वही समय जीवनरूपी चन्द्रमाका शिवरूपी सूर्यके साथ योग—मिलन होता है। अतः इस चतुर्दशीको शिवपूजा करनेसे जीवको अभीष्टतम पदार्थकी प्राप्ति होती है। यही शिवरात्रिका रहस्य है।

महाशिवरात्रिका पर्व परमात्मा शिवके दिव्य अवतरणका मङ्गलसूचक है। उनके निराकारसे साकाररूपमें अवतरणकी रात्रि ही महाशिवरात्रि कहलाती है। वे हमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सरादि विकारोंसे मुक्त करके परम सुख, शान्ति, ऐश्वर्यादि प्रदान करते हैं।

चार प्रहरकी पूजाका विधान

चार प्रहरमें चार बार पूजाका विधान है। इसमें
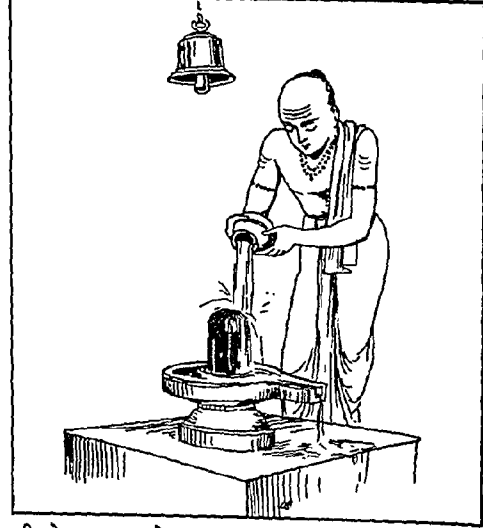
शिवजीको पञ्चामृतसे स्नान कराकर चन्दन, पुष्प, अक्षत, वस्त्रादिसे शृङ्गार कर आरती करनी चाहिये। रात्रिभर जागरण तथा पञ्चाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये। रुद्राभिषेक, रुद्राष्टाध्यायी तथा रुद्रीपाठ का भी विधान है।

प्रथम आख्यान

पद्मकल्पके प्रारम्भमें भगवान् ब्रह्मा जब अण्डज, पिण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज एवं देवताओं आदिकी सृष्टि कर चुके, एक दिन स्वेच्छासे घूमते हुए क्षीरसागर पहुँचे। उन्होंने देखा भगवान् नारायण शुभ्र, श्वेत सहस्रफणमौलि शेषकी शय्यापर शान्त अधलेटे हुए हैं। भूदेवी, श्रीदेवी, श्रीमहालक्ष्मीजी शेषशायीके चरणोंको अपने अङ्कमें लिये चरण-सेवा कर रही हैं। गरुड, नन्द, सुनन्द, पार्षद, गन्धर्व, किन्नर आदि विनम्रतया हाथ जोड़े खड़े हैं। यह देख ब्रह्माजीको अति आश्चर्य हुआ। ब्रह्माजीको गर्व हो गया था कि मैं एकमात्र सृष्टिका मूल कारण हूँ और मैं ही सबका स्वामी, नियन्ता तथा पितामह हूँ। फिर यह वैभवमण्डित कौन यहाँ निश्चिन्त सोया है!

श्रीनारायणको अविचल शयन करते हुए देखकर उन्हें क्रोध आ गया। ब्रह्माजीने समीप जाकर कहा—तुम कौन हो? उठो! देखो, मैं तुम्हारा स्वामी, पिता आया हूँ। शेषशायीने केवल दृष्टि उठायी और मन्द मुसकानसे बोले—वत्स! तुम्हारा मङ्गल हो। आओ, इस आसनपर

बैठो। ब्रह्माजीको और अधिक क्रोध हो आया, झल्लाकर बोले—मैं तुम्हारा रक्षक, जगत्का पितामह हूँ। तुमको मेरा सम्मान करना चाहिये। इसपर भगवान् नारायणने कहा—जगत् मुझमें स्थित है, फिर तुम उसे अपना क्यों कहते हो? तुम मेरे नाभि-कमलसे पैदा हुए हो, अत: मेरे पुत्र हो। मैं स्रष्टा, मैं स्वामी—यह विवाद दोनोंमें होने लगा। श्रीब्रह्माजीने 'पाशुपत' और श्रीविष्णुजीने 'माहेश्वर' अस्त्र उठा लिया। दिशाएँ अस्त्रोंके तेजसे जलने लगीं, सृष्टिमें प्रलयकी आशंका हो गयी थी। देवगण भागते हुए कैलास पर्वतपर भगवान् विश्वनाथके पास पहुँचे। अन्तर्यामी भगवान् शिवजी सब समझ गये। देवताओंद्वारा स्तुति करनेपर वे बोले—'मैं ब्रह्मा-विष्णुके युद्धको जानता हूँ। मैं उसे शान्त करूँगा। ऐसा कहकर भगवान् शङ्कर सहसा दोनोंके मध्यमें अनादि, अनन्त-ज्योतिर्मय स्तम्भके रूपमें प्रकट हुए।'

शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥

माहेश्वर, पाशुपत दोनों अस्त्र शान्त होकर उसी ज्योतिर्लिङ्गमें लीन हो गये।

यह लिङ्ग निष्कल ब्रह्म, निराकार ब्रह्मका प्रतीक है। श्रीविष्णु और श्रीब्रह्माजीने उस लिङ्ग (स्तम्भ)-की पूजा-अर्चना की। यह लिङ्ग फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको प्रकट हुआ तभीसे आजतक लिङ्गपूजा निरन्तर चली आ रही है। श्रीविष्णु और श्रीब्रह्माजीने कहा—महाराज! जब हम दोनों लिङ्गके आदि-अन्तका पता न लगा सके तो आगे मानव आपकी पूजा कैसे करेगा? इसपर कृपालु भगवान् शिव द्वादशज्योतिर्लिङ्गमें विभक्त हो गये। महाशिवरात्रिका यही रहस्य है (ईशानसंहिता)।

द्वितीय आख्यान

वाराणसीके वनमें एक भील रहता था। उसका नाम गुरुद्रुह था। उसका कुटुम्ब बड़ा था। वह बलवान् और क्रूर था। अत: प्रतिदिन वनमें जाकर मृगोंको मारता और वहीं रहकर नाना प्रकारकी चोरियाँ करता था। शुभकारक महाशिवरात्रिके दिन उस भीलके माता-पिता, पत्नी और बच्चोंने भूखसे पीड़ित होकर भोजनकी याचना की। वह तुरंत धनुष लेकर मृगोंके शिकारके लिये सारे वनमें घूमने लगा। दैवयोगसे उस दिन कुछ भी शिकार नहीं मिला और सूर्य अस्त हो गया। वह सोचने लगा—अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? माता-पिता, पत्नी, बच्चोंकी क्या दशा होगी? कुछ लेकर ही घर जाना चाहिये, यह सोचकर वह व्याध एक जलाशयके समीप पहुँचा कि रात्रिमें कोई-न-कोई जीव यहाँ पानी पीने अवश्य आयेगा—उसीको मारकर घर ले जाऊँगा। वह व्याध किनारेपर स्थित बिल्ववृक्षपर चढ़ गया। पीनेके लिये कमरमें बँधी तूम्बीमें जल भरकर बैठ गया। भूख-प्याससे व्याकुल वह शिकारकी चिन्तामें बैठा रहा।

रात्रिके प्रथम प्रहरमें एक प्यासी हरिणी वहाँ आयी। उसको देखकर व्याधको अति हर्ष हुआ, तुरंत ही उसका वध करनेके लिये उसने अपने धनुषपर एक बाणका संधान किया। ऐसा करते हुए उसके हाथके धक्केसे थोड़ा-सा जल और बिल्वपत्र टूटकर नीचे गिर पड़े। उस वृक्षके नीचे शिवलिङ्ग विराजमान था। वह जल और बिल्वपत्र शिवलिङ्गपर गिर पड़ा। उस जल और बिल्वपत्रसे प्रथम प्रहरकी शिव-पूजा सम्पन्न हो गयी। खड़खड़ाहटकी ध्वनिसे हरिणीने भयसे ऊपरकी ओर देखा। व्याधको देखते ही मृत्युभयसे व्याकुल हो वह बोली—व्याध! तुम क्या चाहते हो, सच-

सच बताओ। व्याधने कहा—मेरे कुटुम्बके लोग भूखे हैं, अत: तुमको मारकर उनकी भूख मिटाऊँगा। मृगी बोली—भील! मेरे मांससे तुमको, तुम्हारे कुटुम्बको सुख होगा, इस अनर्थकारी शरीरके लिये इससे अधिक महान् पुण्यका कार्य भला और क्या हो सकता है? परंतु इस समय मेरे सब बच्चे आश्रममें मेरी बाट जोह रहे होंगे। मैं उन्हें अपनी बहनको अथवा स्वामीको सौंपकर लौट आऊँगी। मृगीके

शपथ खानेपर बड़ी मुश्किलसे व्याधने उसे छोड़ दिया।

द्वितीय प्रहरमें उस हरिणीकी बहन उसीकी राह देखती हुई, ढूँढ़ती हुई जल पीने वहाँ आ गयी। व्याधने उसे देखकर बाणको तरकशसे खींचा। ऐसा करते समय पुनः पहलेकी भाँति शिवलिङ्गपर जल-बिल्वपत्र गिर गये। इस प्रकार दूसरे प्रहरकी पूजा सम्पन्न हो गयी। मृगीने पूछा—व्याध! यह क्या करते हो? व्याधने पूर्ववत् उत्तर दिया—मैं अपने भूखे कुटुम्बको तृप्त करनेके लिये तुझे मारूँगा। मृगीने कहा—मेरे छोटे-छोटे बच्चे घरमें हैं। अतः मैं उन्हें अपने स्वामीको सौंपकर तुम्हारे पास लौट आऊँगी। मैं वचन देती हूँ। व्याधने उसे भी छोड़ दिया।

व्याधका दूसरा प्रहर भी जागते-जागते बीत गया। इतनेमें ही एक बड़ा हृष्ट-पुष्ट हिरण मृगीको ढूँढ़ता हुआ आया। व्याधके बाण चढ़ानेपर पुनः कुछ जल-बिल्वपत्र लिङ्गपर गिरे। अब तीसरे प्रहरकी पूजा भी हो गयी। मृगने आवाजसे चौंककर व्याधकी ओर देखा और पूछा— क्या करते हो? व्याधने कहा—तुम्हारा वध करूँगा, हरिणने कहा—मेरे बच्चे भूखे हैं। मैं बच्चोंको उनकी माताको सौंपकर तथा उनको धैर्य बँधाकर शीघ्र ही यहाँ लौट आऊँगा। व्याध बोला—जो-जो यहाँ आये वे सब तुम्हारी ही तरह बातें तथा प्रतिज्ञा कर चले गये, परंतु अभीतक नहीं लौटे। शपथ खानेपर उसने हिरणको भी छोड़ दिया। मृग-मृगी सब अपने स्थानपर मिले। तीनों प्रतिज्ञाबद्ध थे, अतः तीनों जानेके लिये हठ करने लगे। अतः उन्होंने बच्चोंको अपने पड़ोसियोंको सौंप दिया और तीनों चल दिये। उन्हें जाते देख बच्चे भी भागकर पीछे-पीछे चले आये। उन सबको एक साथ आया देख व्याधको अति हर्ष हुआ। उसने तरकशसे बाण खींचा जिससे पुनः जल-बिल्वपत्र शिवलिङ्गपर गिर पड़े। इस प्रकार चौथे प्रहरकी पूजा भी सम्पन्न हो गयी।

रात्रिभर शिकारकी चिन्तामें व्याध निर्जल, भोजनरहित जागरण करता रहा। शिवजीका रञ्चमात्र भी चिन्तन नहीं किया। चारों प्रहरकी पूजा अनजानेमें स्वतः ही हो गयी। उस दिन महाशिवरात्रि थी। जिसके प्रभावसे व्याधके सम्पूर्ण पाप तत्काल भस्म हो गये।

इतनेमें ही मृग और दोनों मृगियाँ बोल उठे—व्याध-शिरोमणे! शीघ्र कृपाकर हमारे शरीरोंको सार्थक करो और अपने कुटुम्ब—बच्चोंको तृप्त करो। व्याधको बड़ा विस्मय हुआ। ये मृग ज्ञानहीन पशु होनेपर भी धन्य हैं, परोपकारी हैं और प्रतिज्ञापालक हैं मैं मनुष्य होकर भी जीवनभर

हिंसा, हत्या और पाप कर अपने कुटुम्बका पालन करता रहा। मैंने जीव-हत्या कर उदरपूर्ति की, अतः मेरे जीवनको धिक्कार है! धिक्कार है!! व्याधने बाणको रोक लिया और कहा—श्रेष्ठ मृगो! तुम सब जाओ। तुम्हारा जीवन धन्य है!

व्याधके ऐसा कहनेपर तुरंत भगवान् शङ्कर लिङ्गसे प्रकट हो गये और उसके शरीरको स्पर्श कर प्रेमसे कहा—वर माँगो। 'मैंने सब कुछ पा लिया'—यह कहते हुए व्याध उनके चरणोंमें गिर पड़ा। श्रीशिवजीने प्रसन्न होकर उसका 'गुह' नाम रख दिया और वरदान दिया कि भगवान् राम एक दिन अवश्य ही तुम्हारे घर पधारेंगे और तुम्हारे साथ मित्रता करेंगे। तुम मोक्ष प्राप्त करोगे। वही व्याध शृंगवेरपुरमें निषादराज 'गुह' बना, जिसने भगवान् रामका आतिथ्य किया।

वे सब मृग भगवान् शङ्करका दर्शन कर मृगयोनिसे मुक्त हो गये। शाप मुक्त हो विमानसे दिव्य धामको चले गये। तबसे अर्बुद पर्वतपर भगवान् शिव व्याधेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुए। दर्शन-पूजन करनेपर वे तत्काल मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं।

यह महाशिवरात्रिव्रत 'व्रतराज' के नामसे विख्यात है। यह शिवरात्रि यमराजके शासनको मिटानेवाली है और शिवलोकको देनेवाली है। शास्त्रोक्त विधिसे जो इसका जागरणसहित उपवास करेंगे उन्हें मोक्षकी प्राप्ति होगी। शिवरात्रिके समान पाप और भय मिटानेवाला दूसरा व्रत नहीं है। इसके करनेमात्रसे सब पापोंका क्षय हो जाता है।

(शिवपुराण)

महाशिवरात्रिव्रतका रहस्य

(डॉ० श्रीभीष्मदत्तजी शर्मा, पूर्वरीडर)

महाशिवरात्रिव्रत फाल्गुनमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी-तिथिको किया जाता है। इस व्रतको अर्धरात्रिव्यापिनी चतुर्दशीतिथिमें करना चाहिये, चाहे यह तिथि पूर्वा (त्रयोदशीयुक्त) हो, चाहे परा हो। नारदसंहिताके अनुसार जिस दिन फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीतिथि आधी रातके योगवाली हो उस दिन जो शिवरात्रिव्रत करता है, वह अनन्त फलको प्राप्त करता है। इस सम्बन्धमें तीन पक्ष हैं—१-चतुर्दशीको प्रदोषव्यापिनी, २-निशीथ (अर्धरात्रि)-व्यापिनी एवं ३-उभयव्यापिनी। व्रतराज, निर्णयसिन्धु तथा धर्मसिन्धु आदि ग्रन्थोंके अनुसार निशीथव्यापिनी चतुर्दशी-तिथिको ही ग्रहण करना चाहिये। अतः चतुर्दशीतिथिका निशीथव्यापिनी होना ही मुख्य है, परंतु इसके अभावमें प्रदोषव्यापिनीके ग्राह्य होनेसे यह पक्ष गौण है। इस कारण पूर्वा या परा दोनोंमें जो भी निशीथव्यापिनी चतुर्दशीतिथि हो, उसीमें व्रत करना चाहिये।

चतुर्दशीके स्वामी शिव

ज्योतिषशास्त्रके अनुसार प्रतिपदा आदि सोलह तिथियोंके अग्नि आदि देवता स्वामी होते हैं, अतः जिस तिथिका जो देवता स्वामी होता है, उस देवताका उस तिथिमें व्रत-पूजन करनेसे उस देवताकी विशेष कृपा उपासकको प्राप्त होती है। चतुर्दशीतिथिके स्वामी शिव हैं अथवा शिवकी तिथि चतुर्दशी है। अतः इस तिथिकी रात्रिमें व्रत करनेके कारण इस व्रतका नाम 'शिवरात्रि' होना उचित ही है। इसीलिये प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें शिवरात्रिव्रत होता है, जो मासशिवरात्रिव्रत कहलाता है। शिवभक्त प्रत्येक कृष्णचतुर्दशीका व्रत करते हैं, परंतु फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको अर्धरात्रिमें **'शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः'**—ईशानसंहिताके इस वचनके अनुसार ज्योतिर्लिङ्गका प्रादुर्भाव होनेसे यह पर्व महाशिवरात्रिके नामसे विख्यात हुआ। इस व्रतको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री-पुरुष और बाल-युवा-वृद्ध आदि सभी कर सकते हैं। जिस प्रकार श्रीराम, श्रीकृष्ण, वामन और नृसिंहजयन्ती तथा प्रत्येक एकादशीका व्रत हरेकको करना चाहिये, उसी प्रकार महाशिवरात्रिव्रत भी सभीको करना चाहिये। इसे न करनेसे दोष लगता है।

व्रतका महत्त्व

शिवपुराणकी कोटिरुद्रसंहितामें बताया गया है कि शिवरात्रिव्रत करनेसे व्यक्तिको भोग एवं मोक्ष दोनों ही प्राप्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा पार्वतीजीके पूछनेपर भगवान् सदाशिवने बताया कि शिवरात्रिव्रत करनेसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है। मोक्षार्थीको मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले चार व्रतोंका नियमपूर्वक पालन करना चाहिये। ये चार व्रत हैं—१-भगवान् शिवकी पूजा, २-रुद्रमन्त्रोंका जप, ३-शिवमन्दिरमें उपवास तथा ४-काशीमें देहत्याग। शिवपुराणमें मोक्षके चार सनातन मार्ग बताये गये हैं। इन चारोंमें भी शिवरात्रिव्रतका विशेष महत्त्व है। अतः इसे अवश्य करना चाहिये। यह सभीके लिये धर्मका उत्तम साधन है। निष्काम अथवा सकामभावसे सभी मनुष्यों, वर्णों, आश्रमों, स्त्रियों, बालकों तथा देवताओं आदिके लिये यह महान् व्रत परम हितकारक माना गया है। प्रत्येक मासके शिवरात्रिव्रतोंमें भी फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीमें होनेवाले महाशिवरात्रिव्रतका शिवपुराणमें विशेष माहात्म्य बताया गया है।

रात्रि ही क्यों?

अन्य देवताओंका पूजन, व्रत आदि जबकि प्रायः दिनमें ही होता है तब भगवान् शङ्करको रात्रि ही क्यों प्रिय हुई और वह भी फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीतिथि ही क्यों? इस जिज्ञासाका समाधान विद्वानोंने बताया है कि 'भगवान् शङ्कर संहारशक्ति और तमोगुणके अधिष्ठाता हैं, अतः तमोमयी रात्रिसे उनका स्नेह (लगाव) होना स्वाभाविक ही है। रात्रि संहारकालकी प्रतिनिधि है, उसका आगमन होते ही सर्वप्रथम प्रकाशका संहार, जीवोंकी दैनिक कर्मचेष्टाओंका संहार और अन्तमें निद्राद्वारा चेतनताका ही संहार होकर सम्पूर्ण विश्व संहारिणी रात्रिकी गोदमें अचेतन होकर गिर जाता है। ऐसी दशामें प्राकृतिक दृष्टिसे शिवका रात्रिप्रिय होना सहज ही हृदयङ्गम हो जाता है। यही कारण है कि भगवान् शङ्करकी आराधना न केवल इस रात्रिमें ही वरन् सदैव प्रदोष

(रात्रिके प्रारम्भ होने)-के समयमें की जाती है।'

शिवरात्रिका कृष्णपक्षमें होना भी साभिप्राय ही है। शुक्लपक्षमें चन्द्रमा पूर्ण (सबल) होता है और कृष्णपक्षमें क्षीण। उसकी वृद्धिके साथ-साथ संसारके सम्पूर्ण रसवान् पदार्थोंमें वृद्धि और क्षयके साथ-साथ उनमें क्षीणता होना स्वाभाविक एवं प्रत्यक्ष है। क्रमशः घटते-घटते वह चन्द्रमा अमावास्याको बिलकुल क्षीण हो जाता है। चराचर जगत्के यावन्मात्र मनके अधिष्ठाता उस चन्द्रके क्षीण हो जानेसे उसका प्रभाव अण्ड-पिण्डवादके अनुसार सम्पूर्ण भूमण्डलके प्राणियोंपर भी पड़ता है और उन्मना जीवोंके अन्तःकरणमें तामसी शक्तियाँ प्रबुद्ध होकर अनेक प्रकारके नैतिक एवं सामाजिक अपराधोंका कारण बनती हैं। इन्हीं शक्तियोंका अपर नाम आध्यात्मिक भाषामें भूत-प्रेतादि है और शिवको इनका नियामक (नियन्त्रक) माना जाता है। दिनमें यद्यपि जगदात्मा सूर्यकी स्थितिसे आत्मतत्त्वकी जागरूकताके कारण ये तामसी शक्तियाँ अपना विशेष प्रभाव नहीं दिखा पाती हैं, किंतु चन्द्रविहीन अन्धकारमयी रात्रिके आगमनके साथ ही वे अपना प्रभाव दिखाने लगती हैं। इसलिये जैसे पानी आनेसे पहले ही पुल बाँधा जाता है, उसी प्रकार इस चन्द्रक्षय (अमावास्या)-तिथिके आनेसे सद्यःपूर्व ही उन सम्पूर्ण तामसी वृत्तियोंके उपशमनार्थ इन वृत्तियोंके एकमात्र अधिष्ठाता भगवान् आशुतोषकी आराधना करनेका विधान शास्त्रकारोंने किया है। विशेषतया कृष्णचतुर्दशीकी रात्रिमें शिवाराधनाका रहस्य है।

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीका रहस्य

जहाँतक प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके शिवरात्रि कहलानेकी बात है, वे सभी शिवरात्रि ही कहलाती हैं और पञ्चाङ्गोंमें उन्हें इसी नामसे लिखा जाता है, परंतु फाल्गुनकी शिवरात्रि महाशिवरात्रिके नामसे पुकारी जाती है। जिस प्रकार अमावास्याके दुष्प्रभावसे बचनेके लिये उससे ठीक एक दिन पूर्व चतुर्दशीको यह उपासना की जाती है, उसी प्रकार क्षय होते हुए वर्षके अन्तिम मास चैत्रसे ठीक एक मास पूर्व फाल्गुनमें ही इसका विधान शास्त्रोंमें मिलता है जो कि सर्वथा युक्तिसंगत ही है। साथ ही रुद्रोंके एकादश संख्यात्मक होनेके कारण भी इस पर्वका ११वें मास (फाल्गुन)-में सम्पन्न होना इस व्रतोत्सवके रहस्यपर प्रकाश डालता है।

उपवास-रात्रिजागरण क्यों?

ऋषि-महर्षियोंने समस्त आध्यात्मिक अनुष्ठानोंमें उपवासको महत्त्वपूर्ण माना है। गीता (२।५९)-की इस उक्ति **'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः'**—के अनुसार उपवास विषय-निवृत्तिका अचूक साधन है। अतः आध्यात्मिक साधनाके लिये उपवास करना परमावश्यक है। उपवासके साथ रात्रिजागरणके महत्त्वपर गीता (२।६९)-का यह कथन अत्यन्त प्रसिद्ध है—**'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।'** इसका सीधा तात्पर्य यही है कि उपवासादिद्वारा इन्द्रियों और मनपर नियन्त्रण करनेवाला संयमी व्यक्ति ही रात्रिमें जागकर अपने लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्नशील हो सकता है। अतः शिवोपासनाके लिये उपवास एवं रात्रिजागरणके अतिरिक्त और कौन साधन उपयुक्त हो सकता है? रात्रिप्रिय शिवसे भेंट करनेका समय रात्रिके अलावा और कौन समय हो सकता है? इन्हीं सब कारणोंसे इस महान् व्रतमें व्रतीजन उपवासके साथ रात्रिमें जागकर शिवपूजा करते हैं।

पूजाविधि

शिवपुराणके अनुसार व्रती पुरुषको प्रातःकाल उठकर स्नान-संध्या आदि कर्मसे निवृत्त होनेपर मस्तकपर भस्मका त्रिपुण्ड्र तिलक और गलेमें रुद्राक्षमाला धारण कर शिवालयमें जाकर शिवलिङ्गका विधिपूर्वक पूजन एवं शिवको नमस्कार करना चाहिये। तत्पश्चात् उसे श्रद्धापूर्वक व्रतका इस प्रकार संकल्प करना चाहिये—

> शिवरात्रिव्रतं ह्येतत् करिष्येऽहं महाफलम्।
> निर्विघ्नमस्तु मे चात्र त्वत्प्रसादाज्जगत्पते॥

यह कहकर हाथमें लिये पुष्पाक्षत, जल आदिको छोड़नेके पश्चात् यह श्लोक पढ़ना चाहिये—

> देवदेव महादेव नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते।
> कर्तुमिच्छाम्यहं देव शिवरात्रिव्रतं तव॥
> तव प्रभावाद्देवेश निर्विघ्नेन भवेदिति।
> कामाद्याः शत्रवो मां वै पीडां कुर्वन्तु नैव हि॥

([illegible] ३८।[illegible])

अर्थात् हे देवदेव! हे महादेव! हे नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। हे देव! मैं आपका शिवरात्रिव्रत करना चाहता हूँ। हे देवेश्वर! आपकी कृपासे यह व्रत निर्विघ्न पूर्ण हो और काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रु मुझे पीडित न करें।

रात्रिपूजा

दिनभर अधिकारानुसार शिवमन्त्रका यथाशक्ति जप करना चाहिये अर्थात् जो द्विज हैं और जिनका विधिवत् यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ है तथा नियमपूर्वक यज्ञोपवीत धारण करते हैं, उन्हें **'ॐ नमः शिवाय'** मन्त्रका जप करना चाहिये, परंतु जो द्विजेतर अनुपनीत एवं स्त्रियाँ हैं, उन्हें प्रणवरहित **'शिवाय नमः'** मन्त्रका ही जप करना चाहिये। रुग्ण, अशक्त और वृद्धजन दिनमें फलाहार ग्रहणकर रात्रि-पूजा कर सकते हैं, वैसे यथाशक्ति बिना फलाहार ग्रहण किये रात्रिपूजा करना उत्तम है। रात्रिके चारों प्रहरोंकी पूजाका विधान शास्त्रकारोंने किया है। सायंकाल स्नान करके किसी शिवमन्दिरमें जाकर अथवा घरपर ही (यदि नर्मदेश्वर अथवा अन्य इसी प्रकारका शिवलिङ्ग हो) सुविधानुसार पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर और तिलक एवं रुद्राक्ष धारण करके पूजाका इस प्रकार संकल्प करे—देशकालका संकीर्तन करनेके अनन्तर बोले—**'ममाखिलपापक्षयपूर्वकसकलाभीष्टसिद्धये शिवप्रीत्यर्थं च शिवपूजनमहं करिष्ये।'** अच्छा तो यह है कि किसी वैदिक विद्वान् ब्राह्मणके निर्देशनमें वैदिक मन्त्रोंसे रुद्राभिषेकका अनुष्ठान कराया जाय।

व्रतीको पूजाकी सामग्री अपने पासमें रखनी चाहिये—ऋतुकालके फल-पुष्प, गन्ध (चन्दन), बिल्वपत्र, धतूरा, धूप, दीप और नैवेद्य आदिद्वारा चारों प्रहरकी पूजा करनी चाहिये। दूध, दही, घी, शहद और शक्करसे अलग-अलग तथा सबको एक साथ मिलाकर पञ्चामृतसे शिवको स्नान कराकर जलधारासे उनका अभिषेक करना चाहिये। चारों पूजनोंमें पञ्चोपचार अथवा षोडशोपचार, यथालब्धोपचारसे पूजन करते समय शिवपञ्चाक्षर ('नमः शिवाय')-मन्त्रसे अथवा रुद्रपाठसे भगवान्‌का जलाभिषेक करना चाहिये। भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान्, भीम और ईशान—इन आठ नामोंसे पुष्पाञ्जलि अर्पितकर भगवान्‌की आरती और परिक्रमा करनी चाहिये। अन्तमें भगवान् शम्भुसे इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

नियमो यो महादेव कृतश्चैव त्वदाज्ञया।
विसृज्यते मया स्वामिन् व्रतं जातमनुत्तमम्॥
व्रतेनानेन देवेश यथाशक्तिकृतेन च।
सन्तुष्टो भव शर्वाद्य कृपां कुरु ममोपरि॥

(शिवपुराण, कोटिरुद्रसंहिता ३८। ४२-४३)

अर्थात् 'हे महादेव! आपकी आज्ञासे मैंने जो व्रत किया, हे स्वामिन्! वह परम उत्तम व्रत पूर्ण हो गया। अतः अब उसका विसर्जन करता हूँ। हे देवेश्वर शर्व! यथाशक्ति किये गये इस व्रतसे आप आज मुझपर कृपा करके संतुष्ट हों।'

अशक्त होनेपर यदि चारों प्रहरकी पूजा न हो सके तो पहले प्रहरकी पूजा अवश्य करनी चाहिये और अगले दिन प्रातःकाल पुनः स्नानकर भगवान् शङ्करकी पूजा करनेके पश्चात् व्रतकी पारणा करनी चाहिये। स्कन्दपुराणके अनुसार इस प्रकार अनुष्ठान करते हुए शिवजीका पूजन, जागरण और उपवास करनेवाले मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता।

इस महान् पर्वके विषयमें एक आख्यानके अनुसार शिवरात्रिके दिन पूजन करती हुई किसी स्त्रीका आभूषण चुरा लेनेके अपराधमें मारा गया कोई व्यक्ति इसलिये शिवजीकी कृपासे सद्गतिको प्राप्त हुआ; क्योंकि चोरी करनेके प्रयासमें वह आठ प्रहर भूखा-प्यासा और जागता रहा। इस कारण अनायास ही व्रत हो जानेसे शिवजीने उसे सद्गति प्रदान कर दी।

इस व्रतकी महिमाका पूर्णरूपसे वर्णन करना मानवशक्तिसे बाहर है। अतः कल्याणके इच्छुक सभी मनुष्योंको यह व्रत करना चाहिये।

पर्वका संदेश

भगवान् शङ्करमें अनुपम सामञ्जस्य, अद्भुत समन्वय और उत्कृष्ट सद्भावके दर्शन होनेसे हमें उनसे शिक्षा ग्रहणकर विश्व-कल्याणके महान् कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये—यही इस परम पावन पर्वका मानवजातिके प्रति दिव्य संदेश है। शिव अर्धनारीश्वर होकर भी कामविजेता हैं, गृहस्थ होते हुए भी परम विरक्त हैं, हलाहल पान करनेके कारण नीलकण्ठ

होकर भी विषसे अलिप्त हैं, ऋद्धि-सिद्धियोंके स्वामी होकर भी उनसे विलग हैं, उग्र होते हुए भी सौम्य हैं, अकिंचन होते हुए भी सर्वेश्वर हैं, भयंकर विषधरनाग और सौम्य चन्द्रमा दोनों ही उनके आभूषण हैं, मस्तकमें प्रलयकालीन अग्नि और सिरपर परम शीतल गङ्गाधारा उनका अनुपम शृङ्गार है। उनके यहाँ वृषभ और सिंहका तथा मयूर एवं सर्पका सहज वैर भुलाकर साथ-साथ क्रीडा करना समस्त विरोधी भावोंके विलक्षण समन्वयकी शिक्षा देता है। इससे विश्वको सह-अस्तित्व अपनानेकी अद्भुत शिक्षा मिलती है।

इसी प्रकार उनका श्रीविग्रह—शिवलिङ्ग ब्रह्माण्ड एवं निराकार ब्रह्मका प्रतीक होनेके कारण सभीके लिये पूजनीय है। जिस प्रकार निराकार ब्रह्म रूप, रंग, आकार आदिसे रहित होता है उसी प्रकार शिवलिङ्ग भी है। जिस प्रकार गणितमें शून्य कुछ न होते हुए भी सब कुछ होता है, किसी भी अङ्कके दाहिने होकर जिस प्रकार यह उस अङ्कका दस गुणा मूल्य कर देता है, उसी प्रकार शिवलिङ्गकी पूजासे शिव भी दाहिने (अनुकूल) होकर मनुष्यको अनन्त सुख-समृद्धि प्रदान करते हैं। अतः मानवको उपर्युक्त शिक्षा ग्रहणकर उनके इस महान् *महाशिवरात्रि-महोत्सवको बड़े समारोहपूर्वक मनाना चाहिये।*
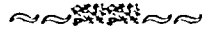
होलिकोत्सव—एक वैदिक सोमयज्ञ

(प्रो० श्रीओम्प्रकाशजी पाण्डेय, डी०लिट्०)

हास-परिहास, व्यंग्य-विनोद, मौज-मस्ती और सामाजिक मेल-जोलका प्रतीक लोकप्रिय पर्व होली अथवा होलिका वास्तवमें एक वैदिक यज्ञ है, जिसका मूल स्वरूप आज विस्मृत हो गया है। होलीके आयोजनके समय समाजमें प्रचलित हँसी-ठिठोली, गायन-वादन, चाँचर (हुड़दंग) और कबीर इत्यादिके उद्भव और विकासको समझनेके लिये हमें उस वैदिक सोमयज्ञके स्वरूपको समझना पड़ेगा, जिसका अनुष्ठान इस महापर्वके मूलमें निहित है।

वैदिक यज्ञोंमें सोमयज्ञ सर्वोपरि है। वैदिक कालमें प्रचुरतासे उपलब्ध सोमलताका रस निचोड़कर उससे जो यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे, वे सोमयज्ञ कहे गये हैं। यह सोमलता कालान्तरमें लुप्त हो गयी। ब्राह्मणग्रन्थोंमें इसके अनेक विकल्प दिये गये हैं, जिनमें पूतीक और अर्जुनवृक्ष

इन सोमयागोंके तीन प्रमुख भेद थे—एकाह, अहीन और सत्रयाग। यह वर्गीकरण अनुष्ठान-दिवसोंकी संख्याके आधारपर है। सत्रयागका अनुष्ठान पूरे वर्षभर चलता था। उनमें प्रमुखरूपसे ऋत्विग्गण ही भाग लेते थे और यज्ञका फल ही दक्षिणाके रूपमें मान्य था। गवामयन भी इसी प्रकारका एक सत्रयाग है, जिसका अनुष्ठान ३६० दिनोंमें सम्पन्न होता है। इसका उपान्त्य (अन्तिम दिनसे पूर्वका) दिन 'महाव्रत' कहलाता है। 'महाव्रत' में प्राप्य 'महा' शब्द वास्तवमें प्रजापतिका द्योतक है, जो वैदिक परम्परामें संवत्सरके अधिष्ठाता माने जाते हैं और उन्हींपर सम्पूर्ण वर्षकी सुख-समृद्धि निर्भर है। 'महाव्रत' के अनुष्ठानका प्रयोजन वस्तुतः इन प्रजापतिको प्रसन्न करना है—'प्रजापतिर्वाव महाँस्तस्यैतद् व्रतमन्नमेव [यन्महाव्रतम्']

यज्ञवेदीके समीप एक उदुम्बरवृक्ष (गूलर)-की टहनी गाड़ी जाती थी, क्योंकि गूलरका फल माधुर्य गुणकी दृष्टिसे सर्वोपरि माना जाता है। '**हरिश्चन्द्रोपाख्यान**' में कहा गया है कि जो निरन्तर चलता रहता है, कर्ममें निरत रहता है, उसे गूलरके स्वादिष्ट फल खानेके लिये मिलते हैं—'**चरन् वै मधु विन्देत चरन्स्वादुमुदुम्बरम्**' (ऐतरेय ब्राह्मण)। गूलरका फल इतना मीठा होता है कि पकते ही इसमें कीड़े पड़ने लगते हैं। उदुम्बरवृक्षकी यह टहनी सामगानकी मधुमयताकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति करती थी। इसके नीचे बैठे हुए वेदपाठी अपनी-अपनी शाखाके मन्त्रोंका पाठ करते थे। सामवेदके गायकोंकी चार श्रेणियाँ थीं—उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य। पहले ये सामगानके अपने-अपने भागको गाते थे, फिर सभी मिलकर एक साथ समवेतरूपसे गान करते थे। होलीमें लकड़ियोंको चुननेसे लगभग दो सप्ताह पूर्व गाड़ी जानेवाली एरण्डवृक्षकी टहनी इसी औदुम्बरी (उदुम्बरकी टहनी)-का प्रतीक है। धीरे-धीरे जब उदुम्बरवृक्षका मिलना कठिन हो गया तो अन्य वृक्षोंकी टहनियाँ औदुम्बरीके रूपमें स्थापित की जाने लगीं। एरण्ड एक ऐसा वृक्ष है, जो सर्वत्र सुलभ माना गया है। संस्कृतमें एक कहावत है, जिसके अनुसार जहाँ कोई भी वृक्ष सुलभ न हो, वहाँ एरण्डको ही वृक्ष मान लेना चाहिये—'**निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।**' उद्गाता तो उदुम्बर काष्ठसे बनी आसन्दीपर ही बैठकर सामगान करता है। सामगाताओंकी यह मण्डली महावेदीके विभिन्न स्थानोंपर घूम-घूमकर पृथक्-पृथक् सामोंका गान करती थी। सामगानके अतिरिक्त महाव्रत-अनुष्ठानके दिन यज्ञवेदीके चारों ओर, सभी कोणोंमें दुन्दुभि अर्थात् नगाड़े भी बजाये जाते थे—'**सर्व्वासु स्त्रक्तिषु दुन्दुभयो व्वदन्ति**' (ताण्ड्य ब्राह्मण ५।५।१८)। इसके साथ ही जलसे भरे घड़े लिये हुई स्त्रियाँ '**इदम्मधु इदम्मधु**' (यह मधु है, यह मधु है), कहती हुई यज्ञवेदीके चारों ओर नृत्य करती थीं—'**परिकुम्भिन्यो मार्जालीयं यन्ति, इदं मध्विति**' (ताण्ड्य ब्राह्मण ५।६।१५)। ताण्ड्य ब्राह्मणमें इसका विशद विवरण उपलब्ध होता है। उस समय वे निम्नलिखित गीतको गाती भी जाती थीं—

गावो हाऽऽरे सुरभय इदम्मधु,
गावो घृतस्य मातर इदम्मधु।

इस नृत्यके समानान्तर अन्य स्त्रियाँ और पुरुष वीणावादन करते थे। उस समय प्रचलित वीणाओंके अनेक प्रकार इस प्रसंगमें मिलते हैं। इनमें अपघाटिला, काण्डमयी, पिच्छोदरा, बाण इत्यादि मुख्य वीणाएँ थीं। 'शततन्त्रीका' नामसे विदित होता है कि कुछ वीणाएँ सौ-सौ तारोंवाली भी थीं। इन्हीं शततन्त्रीका-जैसी वीणाओंसे सन्तूरका विकास हुआ। कल्पसूत्रोंमें महाव्रतके समय बजायी जानेवाली कुछ अन्य वीणाओंके नाम भी मिलते हैं। ये हैं—अलाबु, वक्रा (समतन्त्रीका, वेत्रवीणा), कापिशीर्ष्णी, पिशीलवीणा (शूर्पा) इत्यादि। शारदीया वीणा भी होती थी, जिससे आगे चलकर आजके सरोदका विकास हुआ।

होलीमें दिखनेवाली हँसी-ठिठोलीका मूल '**अभिगर-अपगर-संवाद**' में निहित है। भाष्यकारोंके अनुसार 'अभिगर' ब्राह्मणका वाचक है और 'अपगर' शूद्रका। ये दोनों एक-दूसरेपर आक्षेप-प्रत्याक्षेप करते हुए हास-परिहास करते थे। इसी क्रममें विभिन्न प्रकारकी बोलियाँ बोलते थे, विशेषरूपसे ग्राम्य बोलियाँ बोलनेका प्रदर्शन किया जाता था—'**सर्व्वा त्वाचो वदन्ति संस्कृताश्च ग्राम्यवाचश्च**' (ताण्ड्य ब्राह्मण ५।५।२० तथा उसपर सायण-भाष्य)।

महाव्रतके ये विधान वर्षभरकी एकरसताको दूर कर यज्ञानुष्ठाता ऋत्विजोंको स्वस्थ मनोरञ्जनका वातावरण प्रदान करते थे। यज्ञोंकी योजना ऋषियोंने मानव-जीवनके समानान्तर की है, जिसके हास-परिहास अभिन्न अङ्ग हैं।

महाव्रतके दिन घर-घरमें विभिन्न प्रकारके स्वादिष्ट पक्वान्न बनाये जाते थे—'**कुले कुलेऽन्नं क्रियते।**' घरमें कोई जब उस दिन पक्वान्नोंको बनाये जानेका कारण पूछता था, तब उत्तर दिया जाता था कि यज्ञानुष्ठान करनेवाले इन्हें खायेंगे—'**तद् यत् पृच्छेयुः किमिदं कुर्वन्ति इति इमे यजमाना अन्नमत्स्यन्ति इति ब्रूयुः।**'

लेकिन हास-परिहास और मौज-मस्तीके इस वातावरणमें भी सुरक्षाके संदर्भको ओझल नहीं किया जाता था। राष्ट्ररक्षाके लिये जनमानसको सजग बने रहनेका

शिक्षा देनेके लिये इस अवसरपर यज्ञवेदीके चारों ओर शस्त्रास्त्र और कवचधारी राजपुरुष तथा सैनिक परिक्रमा भी करते रहते थे।

होलीके आयोजनमें महाव्रतके इन विधि-विधानोंका प्रभाव अद्यावधि निरन्तर परिलक्षित होता है। दोनोंके अनुष्ठानका दिन भी एक ही है—फाल्गुनी पूर्णिमा।

प्रारम्भमें उत्सवों और पर्वोंका आरम्भ अत्यन्त लघु बिन्दुसे होता है, जिसमें निरन्तर विकास होता रहता है। सामाजिक आवश्यकताएँ इनके विकासमें विशेष भूमिका निभाती हैं। यही कारण है कि होली जो मूलतः एक वैदिक सोमयज्ञके अनुष्ठानसे आरम्भ हुआ, आगे चलकर परम भागवत प्रह्लाद और उनकी बुआ होलिकाके आख्यानसे भी जुड़ गया। गवामयनके अन्तर्गत महाव्रतके इस परिवर्धित और उपबृंहित पर्व-संस्करणमें 'नव-शस्येष्टि' (नयी फसलके अनाजका सेवन करनेके लिये किया गया यज्ञानुष्ठान) तथा मदनोत्सव अथवा वसन्तोत्सवका समावेश भी इसी क्रममें आगे हो गया।

मानव-जीवनमें धर्म, अर्थ और मोक्षके साथ काम भी एक पुरुषार्थके रूपमें प्रतिष्ठित है। 'कामस्तदग्रे समवर्तताधि' कहकर वेदोंने भी इसे स्वीकार किया है। नृत्य-संगीत प्रभृति समस्त कलाएँ, हास-परिहास, व्यंग्य-विनोद तथा आनन्द और उल्लास इसी तृतीय पुरुषार्थके नानाविध अङ्ग हैं। होलिकोत्सवके रूपमें हिन्दू-समाजने मनोरञ्जनको जीवनमें स्थान देनेके लिये तृतीय पुरुषार्थके स्वस्थ और लोकोपयोगी स्वरूपको धर्माधिष्ठित मान्यता प्रदान की है, जैसा कि गीतामें भगवान् श्रीकृष्णका स्पष्ट कथन है—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।

हे अर्जुन! मैं प्राणियोंमें धर्मानुकूल काम-प्रवृत्ति हूँ।
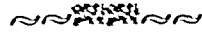
रंगोंका त्योहार—होली

(पं० श्रीरामप्रतापजी व्यास, एम्०ए०, एम्०एड०, साहित्यरत्न)

वसन्तपञ्चमीके आते ही प्रकृतिमें एक नवीन परिवर्तन आने लगता है। दिन छोटे होते हैं। जाड़ा कम होने लगता है। उधर पतझड़ शुरू हो जाता है। माघकी पूर्णिमापर होलीका डांडा रोप दिया जाता है। आम्रमञ्जरियोंपर भ्रमरावलियाँ मँडराने लगती हैं। वृक्षोंमें कहीं-कहीं नवीन पत्तोंके दर्शन होने लगते हैं। प्रकृतिमें एक नयी मादकताका अनुभव होने लगता है। इस प्रकार होली पर्वके आते ही एक नवीन रौनक, नवीन उत्साह एवं उमङ्गकी लहर दिखायी देने लगती है।

होली जहाँ एक ओर एक सामाजिक एवं धार्मिक त्योहार है, वहीं यह रंगोंका त्योहार भी है। आबालवृद्ध, नर-नारी—सभी इसे बड़े उत्साहसे मनाते हैं। यह एक देशव्यापी त्योहार भी है। इसमें वर्ण अथवा जातिभेदको कोई स्थान नहीं है। इस अवसरपर लकड़ियों तथा कंडों आदिका ढेर लगाकर होलिकापूजन किया जाता है, फिर उसमें आग लगायी जाती है। पूजनके समय निम्न मन्त्रका उच्चारण किया जाता है—

असृक्पाभयसंत्रस्तैः कृता त्वं होलि बालिशैः।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव॥

इस पर्वको नवान्नेष्टि यज्ञपर्व भी कहा जाता है। खेतसे नवीन अन्नको यज्ञमें हवन करके प्रसाद लेनेकी परम्परा भी है। उस अन्नको होला कहते हैं। इसीसे इसका नाम होलिकोत्सव पड़ा।

होलिकोत्सव मनानेके सम्बन्धमें अनेक मत प्रचलित हैं। यहाँ कुछ प्रमुख मतोंका उल्लेख किया गया है—

(१) ऐसी मान्यता है कि इस पर्वका सम्बन्ध 'काम-दहन' से है। भगवान् शंकरने अपनी क्रोधाग्निसे कामदेवको भस्म कर दिया था। तभीसे इस त्योहारका प्रचलन हुआ।

(२) फाल्गुन शुक्ल अष्टमीसे पूर्णिमापर्यन्त आठ दिन होलाष्टक मनाया जाता है। भारतके कई प्रदेशोंमें होलाष्टक शुरू होनेपर एक पेड़की शाखा काटकर उसमें रंग-बिरंगे कपड़ोंके टुकड़े बाँधते हैं। इस शाखाको जमीनमें गाड़ दिया जाता है। सभी लोग इसके नीचे होलिकोत्सव मनाते हैं।

(३) यह त्योहार हिरण्यकशिपुकी बहनकी स्मृतिमें भी मनाया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि हिरण्यकशिपुकी बहन होलिका वरदानके प्रभावसे नित्यप्रति अग्नि-स्नान

करती और जलती नहीं थी। हिरण्यकशिपुने अपनी बहनसे प्रह्लादको गोदमें लेकर अग्नि-स्नान करनेको कहा। उसने समझा था कि ऐसा करनेसे प्रह्लाद जल जायगा तथा होलिका बच निकलेगी।

हिरण्यकशिपुकी बहनने ऐसा ही किया, होलिका तो जल गयी, किंतु प्रह्लाद जीवित बच गये। तभीसे इस त्योहारके मनानेकी प्रथा चल पड़ी।

(४) इस दिन आम्रमञ्जरी तथा चन्दनको मिलाकर खानेका बड़ा माहात्म्य है। कहते हैं जो लोग फाल्गुन पूर्णिमाके दिन एकाग्र चित्तसे हिंडोलेमें झूलते हुए श्रीगोविन्द पुरुषोत्तमके दर्शन करते हैं, वे निश्चय ही वैकुण्ठलोकमें वास करते हैं।

(५) भविष्यपुराणमें कहा गया है कि एक बार नारदजीने महाराज युधिष्ठिरसे कहा—राजन्! फाल्गुनकी पूर्णिमाके दिन सब लोगोंको अभयदान देना चाहिये, जिससे सम्पूर्ण प्रजा उल्लासपूर्वक हँसे। बालक गाँवके बाहरसे लकड़ी-कंडे लाकर ढेर लगायें। होलिकाका पूर्ण सामग्रीसहित विधिवत् पूजन करें। होलिका-दहन करें। ऐसा करनेसे सारे अनिष्ट दूर हो जाते हैं।

होली एक आनन्दोल्लासका पर्व है। इसमें जहाँ एक ओर उत्साह-उमङ्गकी लहरें हैं, तो वहीं दूसरी ओर कुछ बुराइयाँ भी आ गयी हैं। कुछ लोग इस अवसरपर अबीर, गुलालके स्थानपर कीचड़, गोबर, मिट्टी आदि भी फेंकते हैं। ऐसा करनेसे मित्रताके स्थानपर शत्रुताका जन्म होता है। अश्लील एवं गंदे हँसी-मजाक एक-दूसरेके हृदयको चोट पहुँचाते हैं। अतः इन सबका त्याग करना चाहिये।

होली सम्मिलन, मित्रता एवं एकताका पर्व है। इस दिन द्वेषभाव भूलकर सबसे प्रेम और भाईचारेसे मिलना चाहिये। एकता, सद्भावना एवं सोल्लासका परिचय देना चाहिये। यही इस पर्वका मूल उद्देश्य एवं संदेश है।
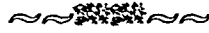
चैत्र कृष्णपक्षके व्रतपर्वोत्सव—

राजस्थानका गणगौर-महोत्सव

(डॉ० श्रीप्रणवदेवजी, एम्०ए०, एम्०फिल्०, बी०एड०, पी-एच्०डी०)

पुरातनकालसे ही राजस्थानकी वीरप्रसविनी भूमिकी सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराएँ अत्यन्त समृद्ध रही हैं। धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमिपर यहाँ समाजमें अनेक व्रत एवं पर्वोत्सव प्रचलित हैं, जिनमें गणगौर-महोत्सवका महत्त्वपूर्ण स्थान है। वसन्त-ऋतुकी वासन्ती बयार डोलनेपर फागुनके सरस एवं मधुर होली-गीतोंका अवसान भी नहीं हो पाता कि पूर्णिमाके पश्चात् नगर-नगर, ग्राम-ग्राममें गणगौरव्रत रखनेवाली सुकुमारियों एवं सधवा युवतियोंके सुरीले गणगौरगीतोंकी मधुर ध्वनि कानोंमें रस घोलने लगती है, जिसमें श्रद्धा एवं प्रेमके साथ गणगौरपूजनका सुन्दर आह्वान उन कुमारियों और युवतियोंद्वारा इस प्रकार किया जाता है—

खोल ए गणगौर माता, खोल ए किंवाड़ी।
बारै ऊभी थारी पूजन हाली।
राई सी भौजाई दे, कान कँवर सो बीरो॥

नवयौवनाएँ इस गीतमें अपने लिये श्रीकृष्ण-जैसा सुन्दर भाई तथा स्नेहिल भौजाई पानेकी कामना करती हैं।

कुमारियाँ नगर एवं ग्रामके बाहर स्थित मन्दिरोंमें विराजमान गण (ईश्वर—शिव) तथा गौर (माता पार्वती)-की पूजा करती हैं, और कामदेव-सा सुन्दर मनभावन वर पानेकी कामना करती हैं।

वस्तुतः कुमारियाँ एवं नवविवाहिताएँ फाल्गुन पूर्णिमाके पश्चात् चैत्र कृष्णपक्षभर—शुक्लपक्ष प्रतिपदा या तृतीयातक पन्द्रह दिन व्रती रहकर शिव-पार्वतीका प्रतिदिन पूजन करती हैं। इस व्रतमें होलीकी राखसे पिण्ड भी बनाये जाते हैं तथा जौके अंकुरोंके साथ इनका विधिवत् पूजन होता है। कुमारियाँ फूलों एवं दूर्वापत्रोंसे कलश सजाकर मधुर गीत गाती हुई अपने घर ले जाती हैं। इस अवसरपर इन गीतोंके माध्यमसे उनके द्वारा चूड़ा और चूँदड़ीकी अक्षयता अथवा सौभाग्यसूचक शृङ्गार पानेकी कामना की

जाती है। यथा—

गणगौरिया लाखा री बधाई ढोला मै मोया जी।
म्हारी कुण मनावै गणगौर॥
माथा ने भवर गढाओ जी, रखड़ी रतन जड़ाओ जी,
गणगौरिया लाखा री बधाई ढोला मै मोया जी।
म्हारी कुण मनावै गणगौर॥
काना ने झुमकियाँ गढ़ाऔ जी, म्हारी झूमकी के रतन जड़ाओ जी,
गणगौरिया लाखा री बधाई ढोला मैं मोया जी।
म्हारी कुण मनावै गणगौर॥
गला ने हरवा लायो जी, लोकिट के रतन जड़ाओ जी,
गणगौरिया लाखा री बधाई ढोला मै मोया जी।
म्हारी कुण मनावै गणगौर॥
हाथामें चुड़ला लावो जी, म्हारी चूड़ियाँ के हीरा जड़ाओ जी,
गणगौरिया लाखा री बधाई ढोला मै मोया जी।
म्हारी कुण मनावै गणगौर॥
अँगुलियाँ में बिछिया लाजो री, म्हारी बिछियाँ के रतन जड़ाओ जी,
गणगौरिया लाखा री बधाई ढोला मै मोया जी।
म्हारी कुण मनावै गणगौर॥

पावन प्रातः-वेलामें पूजास्थलपर कुमारियाँ, सौभाग्यवती युवतियाँ पूजासामग्रीसहित सिरपर तीन या सात पुष्पसज्जित कलश लिये हुए जब गणगौरका पूजन करनेके लिये जाती हैं तो निम्नलिखित गीत मधुर कण्ठसे गाती हैं—

गौर-गौर गणपती ईसर पूजे पार्वती,
पार्वती का आला गीला, गौर का सोने का टीका।
टीका टमका दे, राजा-रानी बरत करे
करता करता आस आयो, मास आयो खेरे खारे लाडु लायो,
लाडु मनै बीरा को दियो बीरा न चूँदड़ दीनी,
चूँदड़ मनै गौर को उढ़ाई, गौर ने म्ही सुहाग दियो।
सुहाग दियो भाग दियो, सम मन सोलहा सात कचोरा ईसर गोडा
रानी पूजे राज में म्हा पूजा सुहाग में,
रानी को राज बढतो जाय, म्हा को सुहाग बढतो जाय,
खीड़ी खीड़ी जात दै, गुजरात दै, गुजरात्या को पानी दै
दै दै गोरा पानी दे।
बाड़ी में बिजोड़ा, सारी में सिगाड़ा, वीरा म्हारा एक
दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह,
तेरह, चौदह, पंद्रह, सोलह।

सामान्यतः गणगौरका व्रत एवं पर्व शिव-पार्वतीके रूपमें ईसरजी और ईसरीजीकी प्रतिमाओंके पूजन द्वारा सम्पन्न होता है। राजस्थानमें ऐसी मान्यता है कि इस उत्सवका आरम्भ पार्वतीके गौने या पिताके घर पुनः लौटने और उनकी सखियोंद्वारा स्वागत-गानको लेकर आनन्दावस्थामें हुआ था। इसी स्मृतिमें आज भी गणगौरकी काष्ठप्रतिमाएँ सजाकर मिट्टीकी प्रतिमाओंके साथ किसी जलाशयपर ले जायी जाती हैं और घूमर-जैसे नृत्य तथा लोकगीतोंकी मधुर ध्वनिसे मिट्टीकी प्रतिमाओंका विसर्जन कर काष्ठप्रतिमाओंको लाकर पुनः पूजनार्थ प्रतिष्ठापित किया जाता है।

पुरातन हकीकत बहियोंसे प्रमाणित है कि इस व्रत-उत्सवको जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, कोटा आदि सम्भागोंमें बड़ी धूमधामसे कुमारियों एवं सधवा युवतियोंद्वारा मनाया जाता था, जिसमें स्वयं राज्यके राजा तथा राज्याधिकारी-कर्मचारी सवारीके साथ सम्मिलित होते थे। कोटामें तो अनेक जातियोंकी स्त्रियाँ भी शामिल होती थीं तथा राजप्रासादके प्राङ्गणमें आकर घूमर नृत्य करती थीं। उदयपुरमें मनाये जानेवाले गणगौर-पर्वपर गणगौर-सवारीका कर्नल टॉडने बड़ा रोचक वर्णन किया है, जिसमें सभी जातिकी स्त्रियाँ, बच्चे और पुरुष रंग-रँगीले वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो अट्टालिकाओंपर बैठकर गणगौरकी सवारीको देखते थे। यह सवारी तोपके धमाकेसे और नगाड़ेकी ध्वनिसे राजप्रासादसे आरम्भ होकर पिछोला तालाबके गणगौर-घाटतक बड़ी धूमधामसे पहुँचती थी तथा नौकाविहार एवं आतिशबाजीके प्रदर्शनके पश्चात् समाप्त होती थी।

भारतीय संस्कृतिकी सुदृढ़ आध्यात्मिक पृष्ठभूमिके रूपमें राजस्थानके इस गणगौर-जैसे महत्त्वपूर्ण पर्वका लोकजीवनको शान्त, सुखमय और मधुर बनानेमें विशेष योगदान है।

शीतलाष्टमी

[चैत्र कृष्ण अष्टमी]

यह व्रत चैत्र कृष्ण अष्टमी या चैत्रमासके प्रथम पक्षमें होलीके बाद पड़नेवाले पहले सोमवार अथवा गुरुवारको किया जाता है। इस व्रतके करनेसे व्रतीके कुलमें दाहज्वर, पीतज्वर, विस्फोटक, दुर्गन्धयुक्त फोड़े, नेत्रोंके समस्त रोग, शीतलाकी फुंसियोंके चिह्न तथा शीतलाजनित दोष दूर हो जाते हैं। इस व्रतके करनेसे शीतलादेवी प्रसन्न होती हैं। शीतलादेवीके स्वरूपका 'शीतलास्तोत्र' में इस प्रकार वर्णन किया गया है—

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम्।
मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालङ्कृतमस्तकाम्॥

व्रतकी विधि—अष्टमीव्रत करनेवाले व्रतीको पूर्वविद्धा अष्टमी तिथि ग्रहण करनी चाहिये। इस दिन प्रात:काल शीतलजलसे स्नानकर निम्नलिखित संकल्प करना चाहिये—

मम गेहे शीतलारोगजनितोपद्रवप्रशमनपूर्वकायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धये शीतलाष्टमीव्रतमहं करिष्ये।

इस व्रतकी विशेषता है कि इसमें शीतलादेवीको भोग लगानेवाले सभी पदार्थ एक दिन पूर्व ही बना लिये जाते हैं अर्थात् शीतलामाताको एक दिनका बासी (शीतल) भोग लगाया जाता है। इसलिये लोकमें यह व्रत बसौड़ाके नामसे भी प्रसिद्ध है। नैवेद्यके लिये मेवे, मिठाई, पूआ, पूरी, दाल-भात, लपसी आदि एक दिन पहलेसे ही बनाये जाते हैं, जिस दिन व्रत रहता है, उस दिन चूल्हा नहीं जलाया जाता।

इस व्रतमें रसोईघरकी दीवारपर पाँचों अँगुली घीमें डुबोकर छापा लगाया जाता है। उसपर रोली, चावल चढ़ाकर शीतलामाताके गीत गाये जाते हैं। सुगन्धित गन्ध-पुष्पादिसे शीतलामाताका पूजन कर 'शीतलास्तोत्र' का यथासम्भव पाठ भी करना चाहिये तथा शीतलामाताकी कहानी भी सुननी चाहिये। रात्रिमें दीपक जलाने चाहिये।

एक थालीमें भात, रोटी, दही, चीनी, जलका गिलास, रोली, चावल, मूँगकी दालका छिलका, हल्दी, धूपबत्ती तथा मोंठ, बाजरा आदि रखकर घरके सभी सदस्योंको स्पर्श कराकर शीतलामाताके मन्दिरमें चढ़ाना चाहिये। इस दिन चौराहेपर भी जल चढ़ाकर पूजन करनेका विधान है। फिर मोंठ-बाजराका वायना निकालकर उसपर रुपया रखकर अपनी सासजीके चरण-स्पर्शकर उन्हें देनेकी प्रथा है। इसके बाद किसी वृद्धाको भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये।

यदि घर-परिवारमें शीतलामाताके कुंडारे भरनेकी प्रथा हो तो एक बड़ा कुंडारा तथा दस छोटे कुंडारे मँगाक छोटे कुंडारोंको बासी व्यञ्जनोंसे भरकर बड़े कुंडारेमें रख दे। फिर उसकी हल्दीसे पूजा कर ले। इसके बाद सभी कुंडारोंको शीतलामाताके स्थानपर जाकर चढ़ा दे। जाते औ आते समय शीतलामाताका गीत भी गाया जाता है।

पुत्रजन्म और विवाहके समय जितने कुंडारे हमेश भरे जाते हैं उतने और भरने चाहिये।

शीतलामाताकी लोककथा और गीत

किसी गाँवमें एक औरत रहती थी। वह बसौड़ेके दिन शीतलामाताकी पूजा करती और ठंडी रोटी खाती थी उसके गाँवमें और कोई भी शीतलामाताकी पूजा नहीं करत था। एक दिन उस गाँवमें आग लग गयी, जिसमें उस औरतकी झोंपड़ी छोड़कर बाकी सबकी झोपड़ियाँ जल गयीं, जिससे सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। सब लोगोंने उस औरतसे इस चमत्कारका कारण पूछा। उस औरतने कहा कि मैं तो बसौड़ेके दिन ठंडी रोटी खाती हूँ और शीतलामाताकी पूजा करती हूँ, तुम लोग यह काम नहीं करते थे। इससे मेरी झोंपड़ी बच गयी और तुम सबकी झोंपड़ियाँ जल गयीं। तबसे बसौड़ेके दिन पूरे गाँवमें शीतलामाताकी पूजा होने लगी। हे शीतलामाता! जैसे आपने उस औरतकी रक्षा की, वैसे ही सबकी रक्षा करना।

गीत

मेरी माताको चिनिये चौवारौ, दूधपूत देनी को चिनिये चौवारौ।
कौन ने मैया ईंटें थपाई, और कौन ने घोरौ है गारौ।
श्रीकृष्णने मैया ईंटें थपाई, दाऊजी घोरौ है गारौ।
मेरी माताको चिनिये चौवारौ०॥

गीत गाते समय श्रीकृष्ण और दाऊजीके स्थानपर अपने परिवारके सदस्योंके नाम लिये जाते हैं।

वारुणीपर्व

[चैत्र कृष्ण त्रयोदशी]

चैत्रमासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको वारुणीपर्व होता है। यह पुण्यप्रद महायोग तीन प्रकारका होता है। पहला चैत्र कृष्ण त्रयोदशीको वारुण नक्षत्र (शतभिषा) हो तो 'वारुणी', दूसरा उसी दिन शतभिषा और शनिवार हो तो 'महावारुणी' और तीसरा यदि इस तिथिको शतभिषा नक्षत्र, शनिवार और शुभ योग हो तो 'महामहावारुणीपर्व' होता है। इस योगमें गङ्गादि तीर्थस्थानोंमें स्नान, दान और उपवासादि करनेसे करोड़ों सूर्यग्रहणोंके समान फल प्राप्त होता है।

चैत्रासिते वारुणऋक्षयुक्ता त्रयोदशी सूर्यसुतस्य वारे।
योगे शुभे सा महती महत्या गङ्गाजलेऽर्कग्रहकोटितुल्या॥

(त्रिस्थलीसेतु)

इस तिथिपर काशी, प्रयाग, हरिद्वार आदि तीर्थोंमें स्नान-दानका विशेष महत्त्व है।

~~~

चैत्र अमावास्या

इस दिन संवत्सरकी समाप्ति होती है। इस दिन प्रातः स्नानकर यथासामर्थ्य अन्न, गौ, सुवर्ण और वस्त्रादिका दान, पितरोंका श्राद्ध एवं देवताओंके समीप जप, ध्यान पूजन करके ब्राह्मणभोजन करानेसे बहुत पुण्य होता है। यदि इस दिन सोम, भौम अथवा गुरुवार हो तो ऐसे योगके दान, पुण्य, ब्राह्मणभोजन और व्रतसे सूर्यग्रहणमें स्नान, दानके समान फल होता है।

~~~

पुरुषोत्तममास—

पुरुषोत्तम, क्षयाधि (मल)-मास-समीक्षा

(श्री १००८ वीतराग स्वामी श्रीनारायणाश्रमजी महाराज)

यस्मिन् मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा।
मलमासः स विज्ञेयो मासे त्रिंशत्तमे भवेत्॥

(ब्रह्मसिद्धान्त)

भगवान् सूर्य सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्रके अधिष्ठातृदेव हैं। बृहदारण्यकोपनिषद्के सप्तान्नब्राह्मणमें संवत्सरात्मक अन्नके उपभोक्ता भगवान् भास्कर माने गये हैं। सूर्यका मेषादि द्वादश राशियोंपर जब संक्रमण (संचार) होता है, तब संवत्सर बनता है, जो सौर वर्ष कहलाता है। जिस मासमें भगवान् भुवनभास्करका किसी राशिपर संक्रमण (संक्रान्ति) न हो, वह अधिकमास तथा एक ही मासमें संक्रान्तिद्वय संयुक्त हो, वह क्षयमास कहलाता है।

भगवान् भास्करके मेषादि द्वादश राशियोंपर संक्रमणसे जो अमान्त-पूर्णिमान्त चैत्र-वैशाखादि शुद्ध मास होते हैं, उनमें वेदशास्त्रविहित नित्य, नैमित्तिक, काम्य, प्रायश्चित्त कर्म करने चाहिये। द्विसंक्रान्तिरहित या संयुक्त अधिमास अथवा क्षयमासमें वेदशास्त्रविहित नैमित्तिक एवं काम्य-कर्म नहीं करने चाहिये।

जिस वर्षके मध्य दो अधिमास सम्भव हों और कार्तिकादि तीन मासोंके मध्य क्षयमास आ पहुँचे, उस वर्षके तीनों मासमें विवाह, यज्ञ, मङ्गल-कार्योत्सव त्याग देने चाहिये। 'पुरुषार्थचिन्तामणि' में संक्रान्तिरहित मल (अधि)-मास प्रति २८ माससे ऊपर तथा ३६ मासके भीतर होना कहा गया है। यह एक मल (अधि)-माससे दूसरे मल (अधि)-मासतककी अवधि है। जिस मासमें सूर्यसंक्रान्तिका अभाव हो और द्विसंक्रान्ति-संयुत क्षयमासके पूर्व अपरमें होवे तो दोनों मलमास क्रमशः संसर्प तथा अंहस्पतिके नामसे जाने जाते है—

संक्रान्तिरहितो मासो यो वा संक्रान्तियुग्मयुक्।
पूर्वः संसर्पसंज्ञः स्यादंहस्पति तथापरः॥

'सम्यक् सर्पतीति संसर्पः' इस व्युत्पत्तिसे रवि-

संक्रमणरहित होकर भी आगे चलनेवाले इस उभय अधिमासमें प्रथम संसर्पसंज्ञक होता है और दूसरा अंहस्पति। 'निर्णय-सिन्धु' में इन दोनोंमें विवाह, यज्ञ, महोत्सव, देवप्रतिष्ठा आदि मङ्गलकार्य नहीं करनेको कहा गया है—

मलिम्लुचैः समाक्रान्तं सूर्यसंक्रान्तिवर्जितम्।
मलिम्लुचं विजानीयाद् गर्हितं सर्वकर्मसु॥

प्रथम अधिमासका नाम 'संसर्प' है। यदि एक ही वर्षमें दो अधिकमास उपस्थित होते हैं, तब संसर्पमास उत्तर अंहस्पतिकी अपेक्षा प्रशस्त (श्रेष्ठ) होता है। दूसरा मलिम्लुच अर्थात् मलिन या मलमास कहा गया है। जिस मासमें अर्कसंक्रमण होता है, उसीमें वेद-शास्त्रविहित मङ्गल-कर्म करने चाहिये। संसर्पमें सूर्यका संक्रमण न होनेके कारण शास्त्रविहित मङ्गल-कर्म नहीं किये जा सकते। इससे विपरीत क्षयमासमें दोनों मासोंके कर्म एक साथ किये जाते हैं—

एकस्मिन् मासि मासौ द्वौ यदि स्यातां तयोर्द्वयोः।

× × ×

तावेव पक्षौ ता एव तिथयस्त्रिंशदेव हि।
मासद्वयोदितं कर्म तत्कुर्यादिति निर्णयः॥

जब कभी अमान्त चान्द्रायणमास क्षय होने लगता है, तब उससे अगला शुद्ध मास माना जाता है। इसी शुद्ध मासमें उभय-मासके नित्य-नैमित्तिक, काम्य, विवाह-उत्सव आदि मङ्गल कर्म एक साथ करनेका शास्त्रमें विधान है। पहले संसर्प अधिमासमें सभी मङ्गल-कर्म वर्जन होनेपर भी नियमित पैतृक श्राद्ध करनेका विधान है—

वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि।
मासद्वयेऽपि तत्कुर्याद् व्याघ्रस्य वचनं यथा॥

प्रत्येक वर्षमें माता-पिताकी मरण-तिथिपर जिस प्रकार श्राद्धकर्म करते आ रहे हों, वैसा ही श्राद्ध मलमासमें भी वह तिथि उपस्थित होनेपर करना चाहिये। जब कभी कन्याराशिपर सूर्यके होनेपर दैवात् सूर्यका संक्रमण (संक्रान्ति)-का अवकाश न हो, तब पूर्व मलमासके कर्म तुलागत संक्रान्तिमें करने चाहिये—

मासः कन्यागते भानावसंक्रान्तो भवेद्यदि।
दैवं पित्र्यं तदा कर्म तुलास्थे कर्तुरक्षयम्॥

उदाहरणके रूपमें संवत् २०३९ आश्विनमें अधिकमास पड़ा था। इसके संसर्पसंज्ञक होनेके कारण आश्विनमासके सभी नवरात्र आदि मङ्गल-कर्म शुद्ध आश्विनमासमें ही हुए थे, संसर्पमें नहीं। उसके आगे पौषार्ध तथा माघके मध्य क्षयमासकी स्थिति थी। इसमें पौष-माघ उभयमासके कर्म शास्त्रविधिके अनुसार एक ही साथ किये गये थे। इससे आगेके फाल्गुनमासमें अधिमास या पुरुषोत्तममास पड़ा था। इस मासके सभी शिवरात्रि, होली आदि नित्य-नैमित्तिक वेदविहित कर्म शुद्ध फाल्गुनमें हुए थे, मलमासमें नहीं।

पुरुषोत्तममासकी महिमा

वन्दे कृष्णं गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम्।
अव्यक्तमव्ययं व्यक्तं गोपवेशविधायिनम्॥

(बृ०ना०पु० अ० ६।८)

'जो क्षर तथा अक्षरसे अतीत, अव्यक्त होकर भी गोपवेश धारण किये भक्तजनोंके सम्मुख व्यक्त (प्रकट) हुए हैं। उन अक्षर ब्रह्म आनन्दसिन्धु नन्दकुमार पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके पावन चरणोंमें मैं नमस्कार करता हूँ।' व्रजाङ्गनाओंके वदनपङ्कजके भ्रमर, रासिकाभरण रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ही पुरुषोत्तम हैं।

प्राचीन कालमें सर्वप्रथम अधिमासकी उत्पत्ति हुई। उस मासमें सूर्यकी संक्रान्ति न होनेके कारण वह 'मलमास' कहलाया। वह स्वामीरहित मलमास देव-पितर आदिकी पूजा तथा मङ्गलकर्मोंके लिये गर्ह्य माना गया। लोग उसकी घोर निन्दा करने लगे। इस प्रकारकी लोक-भर्त्सनासे मलमास चिन्तातुर हो अपार दुःख-समुद्रमें मग्न हो गया। उसके हृदयमें एक ही चिन्ता शूलकी तरह चुभने लगी। वह धैर्यको खोकर मरणासन्न मनुष्यकी भाँति हो गया।

अन्तमें उसे स्मृति उदय हुई और वह भटकता-फिरता भगवान् विष्णुके लोक वैकुण्ठमें पहुँचा, जहाँ भगवान् विष्णु अमूल्य रत्नजटित हेमसिंहासनपर विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर दण्डवत् प्रणाम कर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। 'मलमास' गद्गदकण्ठसे अश्रुपात करता हुआ बोला—'कृपानिधान! मेरा नाम मलमास है। संसारके लोगोंने मुझे निन्द्य समझकर मेरा तिरस्कार किया है। अब मैं आपके पादपद्ममें शरणागत हो गया हूँ। हे दीनवत्सल! करुणा-सिन्धु! मां पाहि मां पाहि।'

मलमासको दु:खार्णवमें मग्न देखकर भगवान् विष्णुका हृदय दयासे द्रवित हो गया। वे मलमासपर अनुकम्पा करते हुए बोले—अधिमास! मेरा यह वैकुण्ठलोक अजर, नित्य, आनन्दमय, अशोक तथा मृत्युवर्जित है। तुम इस प्रकारके वैकुण्ठलोकको प्राप्त करके क्यों दु:खी हो गये? तब मलमासने अपने हृदयकी वेदना सुनाकर प्रभुसे प्रार्थना की और कहा—

क्षणा लवा मुहूर्ताश्च पक्षा मासा दिवानिशम्।
स्वामिनामधिकारैस्ते मोदन्ते निर्भयाः सदा॥
न मे नाम न मे स्वामी न हि कश्चिन्ममाश्रयः।
तस्मान्निराकृताः सर्वे साधिदेवैः सुकर्मणः॥

(बृहन्नारदीयपु० म० अ० ४। २२-२३)

संसारमें क्षण, लव, मुहूर्त, पक्ष, मास, अहोरात्र आदि अपने-अपने अधिपतियोंके अधिकारोंसे सदैव निर्भय रहकर आनन्द मनाया करते हैं। एक मैं ही ऐसा अभागा हूँ, जिसका न कोई नाम है, न स्वामी और न कोई आश्रय। इसलिये सब अधिपतियोंने मेरा समस्त शुभ कर्मोंसे तिरस्कार किया है। इस कुत्सित जीवनसे मर जाना ही श्रेष्ठ है। जिसका हृदय सदैव जलता रहेगा, क्या वह सुखसे शयन कर सकता है? आप परम दयालु हैं, दूसरोंको दु:खमें डूबा हुआ देखकर कभी निश्चिन्त (शान्त) नहीं रह सकते। इसीलिये वेद, पुराणादि शास्त्रोंमें आपको 'पुरुषोत्तम' कहा गया है। ऐसा कहकर मलमास भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिर पड़ा।

मलमासको शरणागत हुआ देखकर, उसकी दयनीय दशासे भगवान् विष्णु कुछ क्षणोंके लिये चिन्तित हो गये। ध्यानमग्न हो वे कुछ क्षणोंके उपरान्त उससे बोले—

वत्सागच्छ मया सार्धं गोलोकं योगिदुर्लभम्।
यत्रास्ते भगवान् कृष्णः पुरुषोत्तम ईश्वरः॥

(बृहन्नारदीयपु० म० अ० ५। ९)

'वत्स मलमास! मेरे साथ उन योगी-मुनियोंके लिये अगम्य गोलोकमें चलो, जहाँपर नित्य चिन्मय श्रीविग्रह भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण विराजते हैं। जहाँ गोप-गोपाङ्गनाओंके मध्य मदनमोहन भगवान् श्रीकृष्ण रहते हैं, वहाँ पहुँचनेपर ही तुम्हारा शोक-संताप शान्त हो सकता है। पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका दिव्य, चिन्मय शरीर नव-नीरदके तुल्य श्याम-वर्णका है। शरद्-ऋतुके चन्द्रमातुल्य परम सुन्दर मुखपर दोनों हाथोंसे मुरली धारण किये हुए उसे वे निरन्तर बजाते रहते हैं। उनके नेत्र कमल-पँखड़ीके तुल्य परम शोभनीय हैं।'

गोलोकका स्वरूप

मलमासको साथमें लेकर भगवान् विष्णुने पहले लालिमासे रञ्जित उस ज्योतिर्मण्डलको पार किया, जिसमें प्रलयकालके समय यह समस्त संसार विलय हो जाता है। महाप्रलयमें भी विद्यमान इस ज्योतिर्मण्डलके ऊपर गोलोक है। गोलोक महातेज:पुञ्ज गोल आकारका है। उसकी समूची भूमि मणिरत्नमयी है। उस चिन्मय ज्योति:स्वरूप गोलोकके दाहिनी ओर विष्णुलोक है और बायीं ओर शिवलोक। विष्णुलोकमें भगवान् विष्णुके तुल्य वेश-भूषाधारी विष्णु-पार्षद तथा शिवलोकमें देवाधिदेव शंकरके तुल्य त्रिशूल-डमरू धारण किये सर्पके यज्ञोपवीत पहने हुए शिवगण हैं। वे सभी गङ्गाधर त्र्यम्बक हैं।

करोड़ों सूर्यके तुल्य तेजोमय महामरकतमणिके समान ज्योतिर्मण्डल ही गोलोकका स्वरूप है। गोलोकके अधिनायक महायोगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी योग-शक्तिसे यह लोक अन्तरिक्षमें चमक रहा है। उस दिव्य लोकमें शरीरके बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, भय तथा मानसिक रोग नहीं हैं—

गोलोकाभ्यन्तरे ज्योतिरतीव सुमनोहरम्।
परमाह्लादकं शश्वत् परमानन्दकारणम्॥

उस दिव्य सनातन गोलोकके मध्यमें अत्यन्त मनोहारी दिव्य, चिन्मय ज्योतिपुञ्ज है। उस निराकार परात्पर परमानन्दप्रदायक परमज्योतिका निरन्तर ध्यान-योगाभ्यास करनेवाले योगी-मुनि ज्ञानचक्षुसे दर्शन कर पाते हैं। जो कोई अनन्य भक्तियोगसे इस गोलोक-अभ्यन्तरस्थित चिदानन्दमय ज्योतिको देख लेता है, वह सदाके लिये संसार-चक्रसे मुक्त होकर असीम आनन्दसिन्धुमें निमग्न हो जाता है—

तज्ज्योतिरन्तरे रूपमतीव सुमनोहरम्।
इन्दीवरदलश्यामं पङ्कजारुणलोचनम्॥

उस निरतिशय चिन्मय ज्योतिके मध्यमें परम सुन्दर नीलकमलके समान सगुण साकार साँवला रूप है। वह

सनातन पूर्ण ब्रह्मके स्वेच्छामय लीला-श्रीविग्रहस्वरूप

है। अनन्तकोटिकन्दर्पके तुल्य अप्रतिम सौन्दर्य-शोभाशाली भगवान् श्रीकृष्ण पीताम्बर पहने, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न धारण किये शोभायमान हैं। आजानुलम्बिनी तुलसी, कुन्द, मन्दार, पारिजात, कमल-पुष्पकी वनमाला गलेमें धारण किये हुए गोपालरूपधारी किशोर वयवाले भगवान् श्रीकृष्ण रासमण्डलके मध्य विराजते हैं। मलमासको साथ लिये भगवान् विष्णुने गोलोकमें पहुँचकर उस ज्योतिधामको देखा। वह भगवद्धाम मणिस्तम्भोंसे अतिशय शोभायमान था। गोलोकमें मणियोंके खम्भोंसे परम शोभनीय भगवान् श्रीकृष्णके निवास—ज्योतिधामके दूरसे ही दर्शन कर विष्णु परम प्रसन्न हुए। पहले उस ज्योतिधामके दिव्य निरतिशय तेजसे भगवान् विष्णुके नेत्र बंद हो गये। उपरान्त शनैः-शनैः पलक उठाकर मलमासको पीछे किये हुए वे प्रमुख द्वारपर पहुँचे। अतिथिनिवासमें ठहरकर पश्चात् उसके अन्तर्गृहके भीतर पहुँचे, जहाँ गोलोकावतंस भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य मणिरत्नजटित सुवर्ण-सिंहासनपर विराजमान थे। गोप-गोपिकाओंके समुदायसे घिरे श्रीकृष्णको देखकर रमानाथ विष्णुने श्रद्धा-भक्तिसे उन्हें प्रणाम किया।

यद्यपि गोलोकावतंस भगवान् कृष्ण नवनीरदके समान श्याम एवं अनन्तकोटिकन्दर्पके तुल्य परम शोभनीय सगुण-साकार श्रीविग्रह हैं, तथापि सम्पूर्ण गुण-धर्मोंसे अतीत, अक्षर, अव्यक्त इन्द्रियोंसे गोचर न होनेवाले, अविनाशी परमात्मा हैं। जब कभी सर्ग-विसर्गकी रचना करनेकी आवश्यकता पड़ती है, तब निर्विकार परब्रह्म परमात्मा गोपवेश धारण किये श्रीवृन्दावनके वनमण्डलमें रासलीला करते हैं।

श्रीरासलीला-ललाम पीताम्बरधारी, घनश्याम, साक्षान्मन्मथ-मन्मथ श्रीविग्रह रत्नसिंहासनपर आसीन भगवान् श्रीकृष्ण विष्णुकी स्तुति सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। पार्षदोंसे भव्य स्वागत-सत्कार-पूजा करवाकर उन्हें दिव्य महामरकत-मणिरत्नविभूषित सुवर्ण-सिंहासनपर विराजमान किया।

मलमासका उद्धार

भगवान् विष्णुने मलमासको श्रीकृष्णके चरणोंमें नतमस्तक करवाया। जिस समय भयसे त्रस्त हो मलमास गोलोकके स्वामी गोपवेषधारी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें शरणागत हुआ, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण विष्णुसे पूछने लगे—'प्रभो! यह कौन है? हमारे इस दिव्य गोलोकमें शोक-मोह स्वप्नमें भी नाममात्रके लिये नहीं है, किंतु यह यहाँ रोदन क्यों करता है? गोलोकमें बसनेवाले सभी गोपवेषधारी वैष्णव सदैव आनन्द-परिप्लुत भक्तिरससिन्धुमें निमग्न रहते हैं। आँखोंमेंसे अजस्त्र अश्रुधारा प्रपात करता, काँपता हुआ यह मलमास मेरे सम्मुख क्यों रो रहा है?'

गोलोकनाथके नये बादलके समान मनोहारी मुखसे यह सुनकर भगवान् विष्णु बोले—'हे श्रीवृन्दावन-कलानाथ मुरलीधर श्रीकृष्ण! मलमासके दयनीय दुःखका कारण श्रवण करें।' यह तीव्र दुःख-दावानलमें दग्ध हो व्याकुल हो रहा है। कारण कि—

यह अधिकमास अर्कसंक्रमणसे रहित हो जानेके कारण मलिन हो चुका है। वेद-शास्त्रविहित पुण्य कर्मके अयोग्य होनेके कारण स्वामीरहित इसकी सबने घोर निन्दा की है। इस मलमासका कोई भी स्वामी नहीं है। इसलिये सभी वनस्पतियों, लताओं, बारह महीनों, कलाओं, काष्ठाओं, क्षण, उत्तर-दक्षिण अयन, संवत्सर आदिने आक्षिप्त करके इसका अपमान किया है—

अयं त्वधिकमासोऽस्ति व्यपेतरविसंक्रमः।
मलिनोऽयमनर्होऽस्ति शुभकर्मणि सर्वदा॥

'हृषीकेश! आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इसके महान् क्लेशका निवारण नहीं कर सकता। अतएव इस संतप्तको दुःख-संतापकी पीड़ासे कृपया विमुक्त कीजिये।' भगवान् श्रीकृष्णके सांनिध्यमें अधिमासकी सभी दुःखगाथा निवेदन करके उनके मुखारविन्दकी ओर देखकर भगवान् विष्णु हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'विष्णो! आप मलमासको साथ लेकर यहाँ आये, यह आपने महान् उपकार किया है।' अब मैं इसे सर्वोपरि—अपने तुल्य करता हूँ—

अहमेते यथा लोके प्रथितः पुरुषोत्तमः।
तथायमपि लोकेषु प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

सद्गुणों, कीर्ति, प्रभाव, षडैश्वर्य, पराक्रम, भक्तोंको वरदान देने आदि जितने भी गुण मुझमें हैं और उनसे जिस प्रकार मैं विश्वमें पुरुषोत्तमके नामसे विख्यात हूँ, उसी प्रकार यह मलमास भी भूतलपर 'पुरुषोत्तम' नामसे प्रसिद्ध होगा—

अस्मै समर्पितः सर्वे ये गुणा मयि संस्थिताः।
पुरुषोत्तमेति मन्नाम प्रथितं लोकवेदयोः॥
अहमेवास्य संजातः स्वामी च मधुसूदनः॥

मुझमें जितने सद्गुण हैं, उन सबको आजसे मैंने मलमासको सौंप दिये हैं। मेरा नाम जो वेद, लोक और शास्त्रमें विख्यात है, आजसे उसी पुरुषोत्तम नामसे यह मलमास विख्यात होगा और मैं स्वयं इस मासका स्वामी हो गया हूँ। जिस परमधाम गोलोकमें पहुँचनेके लिये मुनि-महर्षि कठोर तपस्यामें निरन्तर रत रहते हैं, वही दुर्लभ पद पुरुषोत्तममासमें स्नान, पूजादि अनुष्ठान करनेवाले भक्तजनोंको सुगमतासे प्राप्त हो सकेगा।

विधिवत् सेवते यस्तु पुरुषोत्तममादरात्।
कुलं स्वकीयमुद्धृत्य मामेवैष्यत्यसंशयम्॥

प्रति तीसरे वर्षमें पुरुषोत्तममासके आगमनपर जो व्यक्ति श्रद्धा-भक्तिके साथ व्रत, उपवास, पूजा आदि शुभ-कर्म करता है, वह अपने समस्त परिवारके साथ गोलोकमें पहुँचकर गोलोकावतंस भगवान् श्रीकृष्णका सांनिध्य प्राप्त करता है। आजसे संसारके सभी प्राणी मेरे आज्ञानुसार मेरे तुल्य पुरुषोत्तममासकी पूजा सदैव करते रहेंगे। यह बारह महीनोंमें सर्वश्रेष्ठ मासके नामसे ख्यात होगा। अधिमास भगवान् श्रीकृष्णसे वर प्राप्त करके इस भूतलपर पुरुषोत्तममासके नामसे विख्यात हुआ। जो कोई श्रद्धा-भक्तिसे पुरुषोत्तममासकी पूजा करता है, मरणोपरान्त उसे गोलोककी प्राप्ति होती है।

प्रपन्नव्रतीकी प्रपत्ति

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय॥
त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम्।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम्॥
भयानां भयं भीषणं भीषणानां गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृ त्वमेकं परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम्॥
वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः॥

हे जगत्के कारण सत्स्वरूप परमात्मा! आपको नमस्कार है। हे सर्वलोकोंके आश्रय चित्स्वरूप! आपको नमस्कार है। हे मुक्ति प्रदान करनेवाले अद्वैततत्त्व! आपको नमस्कार है। शाश्वत और सर्वव्यापी ब्रह्म! आपको नमस्कार है। एकमात्र आप ही शरणमें जाने योग्य अर्थात् आश्रय-स्थान हैं, एकमात्र आप ही पूजा करनेयोग्य हैं। एकमात्र आप ही जगत्के पालक और अपने प्रकाशसे प्रकाशित हैं। एकमात्र आप ही जगत्के कर्ता, पालक और संहारक हैं। एकमात्र आप ही निश्चल और निर्विकल्प हैं। आप भयोंको भय देनेवाले हैं, भयंकरोंमें भयंकर हैं, प्राणियोंकी गति हैं और पावनोंको पावन करनेवाले हैं। अत्यन्त उच्च पदोंके आप ही नियन्त्रण करनेवाले हैं, आप परसे पर हैं, रक्षण करनेवालोंका भी रक्षण करनेवाले हैं। हम आपका स्मरण करते हैं, हम आपको भजते हैं। हम आपको जगत्के साक्षिरूपमें नमस्कार करते हैं। सत्स्वरूप, निरालम्ब तथा एकमात्र शरण लेनेयोग्य आश्रय इस भवसागरकी नौकारूप ईश्वरके हम शरण जाते हैं।

जीवनमें पालनीय व्रत

शौचाचार तथा सदाचारव्रत

(आचार्य पं० श्रीउमाशंकरजी मिश्र 'रसेन्दु' एम्०ए०, बी०एड०)

भारतीय ऋषि-मुनियों एवं मीमांसकोंने जीवनको पवित्र, बुद्धिको व्यवसायात्मिका तथा मनको निर्मल बनानेके लिये शौचाचार और सदाचारव्रतका आत्मोन्नतिमूलक एवं आनन्दवर्द्धक सन्मार्ग प्रशस्त किया है। जिसपर स्वधर्मानुसार चलकर मनुष्य अपने चरम लक्ष्यको प्राप्त कर लेता है। हमारे लोकद्रष्टा ऋषियोंकी लोकहितकारिणी संकल्पना—**'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** इसी उच्चतम धरातलपर चरितार्थ होती है। इन्हीं सदाचार-सोपानोंपर अवस्थित होकर मानव अपने नित्य स्वरूपको प्राप्त कर लेता है। कर्मानुसार ही मनुष्य विविध शरीरोंसे सहस्र-सहस्र योनियोंमें जन्म ग्रहणकर सुख-दुःख, भय-शोकका अनुभव करता हुआ कालचक्रका अनुसरण किया करता है—

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते।
सुखं दुःखं भयं शोकं कर्मणैव प्रणीयते॥

जीवनपथको सरस और पवित्र बनानेके लिये शौचाचार एवं सदाचारव्रतको सुदृढ़ सोपान, आधारभूत उत्कर्षकारक बताया गया है।

शौचाचार

'शौच' शब्द शुद्धताका पर्यायवाची है। शुद्ध—पवित्रतामूलक कार्य-कलाप शौचाचारके अन्तर्गत आता है। स्वरूपभेदके अनुसार शौचाचारके तीन भेद—कायिक, वाचिक और मानसिक बताये गये हैं। शुद्धतामूलक क्रियाकलापोंके अभावसे आज सर्वत्र पर्यावरण तथा आचरणमें प्रदूषण व्याप्त है। इस छायाग्राहिणी कृत्यासे सम्पूर्ण विश्व विषादग्रस्त एवं संत्रस्त है, तथापि जनमानस संजीवनी-स्वरूप महौषधि—इस शौचाचारके अनुपालनसे उदासीन हो रहा है। भारतीय मनीषाने इसे आत्मसात् करते हुए इसकी उपादेयताको मुक्तकण्ठसे व्यक्त किया है—

शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो यतो द्विजः।
शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः॥

मन, वाणी और कर्मकी पवित्रता, शुद्धताको शुचिता कहा जाता है। मनमें विकारोंका न आना मनकी निर्मलता तथा पवित्रता है। वाणीसे मधुर, कल्याणकारक, प्रिय-सत्यसम्भाषण वाणीकी पवित्रता है। अभद्र, असत्य और उद्वेगजनक दोषपूर्ण सम्भाषणसे बचना, वाणीका तप है।

कायिक शौचके अन्तर्गत शारीरिक शुद्धिका क्रियात्मक उपाय बताया गया है—

उषःकाले तु सम्प्राप्ते शौचं कृत्वा यथार्थवत्।
ततः स्नानं प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम्॥

उषःकालमें (सूर्योदयसे पूर्व) उठकर शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर दातौन, मंजन और स्नान कर लेना सभी मनुष्योंके लिये श्रेयस्कर है। यही क्रिया मध्याह्न और सायंकाल भी करनी चाहिये। शरीरशुद्धिका श्रेष्ठ साधन स्नान (जलस्नान) ही बताया गया है। शरीर शुद्ध हो जानेपर मन भी शुद्ध हो जाता है। मनके शुद्ध होनेपर क्रियाशुद्धि होती है। क्रियाशुद्धिको ही शौचाचारका सारतत्त्व समझना चाहिये। बाह्यशौचकी अपेक्षा अन्तःशौचकी विशेष आवश्यकता है। अन्तःकरणकी शुद्धताको ही मुख्य शौच बताया गया है।

सदाचार-व्रत

सामान्यतः व्यक्तिके क्रियाकलाप और व्यवहारको आचार कहते हैं। सात्त्विक, पवित्र आचरणको सदाचार कहा जाता है। कर्म दो प्रकारके बताये गये हैं—वेदविहित और वेदनिषिद्ध। वेदप्रतिपादित कर्म ही धर्म कहा जाता है। वर्णाश्रमधर्मके अन्तर्गत इसकी विशद व्याख्या की गयी है। आचार ही व्यक्ति, समाज तथा संस्कृति-सभ्यताको सम्मान प्रदान करता है। इसलिये महर्षि वसिष्ठ आचारपालनको परम धर्म बताते हुए कहते हैं—

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः।
हीनाचारपरीतात्मा प्रेत्य चेह विनश्यति॥

(वसिष्ठ स्मृ० ६।१)

आचारहीन मनुष्यके लिये लोक भी नष्ट है और परलोक भी असिद्ध है। आचारहीन व्यक्तिमें यज्ञ, याग और वेद प्रतिष्ठित नहीं हो सकते। इसीलिये सदाचार-व्रतका व्यवहारमें अनुष्ठान करना बहुत आवश्यक है। और आगमें

विशेष लाभ नहीं है इसलिये आचरणकी प्रधानता है।

आचरणका मौन व्याख्यान अमोघ फलदायी है। आचरणका प्रभाव अचूक प्रभावोत्पादक होता है। राईभरका आचरण पर्वत-सरीखे व्याख्यानसे गुरुतर कहा गया है। गोस्वामी तुलसीदासजीने मानसमें इस संदर्भमें लिखा है—

पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

सदाचारव्रतके मूलभूत सूत्र

(१) स्वधर्मपालन—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

हमारे धर्मशास्त्रोंमें सदाचार-परिपालनकी सर्वसमादृत, सर्वजनहितकारिणी, आत्मोन्नतिमूलक, परम पुरुषार्थसमन्वित एवं सर्वतोभद्र चातुर्वर्ण्य व्यवस्थाका विधान है। प्रत्येक वर्णाश्रमीके लिये स्वकर्तव्य-पालन ही श्रेष्ठ और श्रेयस्कर है। भलीभाँति आचरित दूसरोंके धर्मसे, गुणरहित अपना धर्म अति उत्तम है; अपने धर्ममें अर्थात् स्वकर्मानुष्ठानमें मर जाना भी कल्याणकारक है। परंतु दूसरोंका धर्म भय प्रदान करनेवाला है (गीता ३। ३५)।

(२) प्रातः जागरण—

'ब्राह्मे मुहूर्ते बुद्ध्येत धर्मार्थावनुचिन्तयेत्।' प्रत्येक गृहीको अभीष्ट है कि वह प्रात:काल उठकर स्वस्थचित्तसे स्वकर्मानुष्ठानका विचारपूर्वक चिन्तन करे जिससे धर्म और अर्थका चिन्तन तदनुरूप सम्पादित हो सके। स्वकर्तव्य और न्यायतः अर्थोपार्जनको श्रेष्ठ एवं मङ्गलकारक बताया गया है। आज अर्थपिपासाने मानवको नैतिक मूल्योंसे इतना दूर कर दिया है कि नैतिकताकी चर्चा करना भी उसके समक्ष एक अपराध-सा हो गया है। यद्यपि अर्थसंसाधन पारिवारिक जीवन-संचालनका एक मुख्य संवाहक अङ्ग है, सम्पोषण-सूत्र है तथापि न्यायोपार्जित धन ही उसके उत्कर्षका मूल सूत्र है। अन्याय और अधर्मसे अर्जित अर्थ अनर्थमूलक (विनाशकारी) कहा गया है। दूसरोंके धनकी दुराशा करना ही लोभ है। लोभको पापकी जड़ कहा जाता है, जो सबसे गर्हित पाप है—**'लोभः पापस्य कारणम्।'**

(३) नित्य भगवत्-स्मरण—

'हरिं चिन्तयेत् नित्यम्।'—प्रत्येक सद्गृहीको नित्य प्रातः-सायं भगवान् जनार्दन श्रीहरिका विशुद्धभावसे स्मरण, नाम-संकीर्तन करना अभीष्ट है। भगवान् श्रीहरिका नामोच्चारण-संकीर्तन अमृतरससे परिपूर्ण है। शास्त्रका उद्घोष है—**'नारायणाख्यं पीयूषं पिब जिह्वे निरन्तरम्।'**—हे जिह्वे! भगवान् नारायणके नामामृतका निरन्तर पान कर। यही नामामृत कलिकालके कराल कालकूट विषका शमन करता है। भगवान् श्रीहरिके कमलसे भी सुकोमल चरणारविन्दोंका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। श्रीहरिके चरणकमल ही संसार-सागरसे पार जानेके लिये सुदृढ़ नाव हैं। परमात्माके मङ्गलनाम-संकीर्तनसे संसारके सारे अमङ्गल दूर हो जाते हैं—

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥

(४) सदुपयोगी बनो—

'कुर्वन्नेवेह कर्माणि।'—सदाचारसंहिताका सुदृढ़ सोपान स्वकर्मानुष्ठान है। विधिपूर्वक निष्कामभावसे कर्म करते हुए सौ वर्ष (पूर्ण आयुपर्यन्त) जीनेकी इच्छा रखनी चाहिये। अकर्मण्य जीवन गर्हित, निन्दित और निकृष्ट है। पुरुषार्थहीन जीवन मृतकतुल्य कहा गया है। अतः प्रत्येक मनुष्यको पुरुषार्थ-साधनका समाश्रयण ही अभीष्ट है।

(५) निषिद्ध कर्मोंका परित्याग—

निषिद्ध कर्मोंका परित्याग करना कर्मकी पवित्रता है। हमारी भारतीय संस्कृति पवित्रतामूलक है। पवित्र अन्न, जल, आसन, आच्छादनका प्रभाव अविकारी हुआ करता है। निषिद्धकर्मोंसे मनमें नाना प्रकारके विकार—दोष उत्पन्न होते हैं, अतः उनका परित्याग करना ही श्रेष्ठ है। अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये भावशुद्धि, कर्मशुद्धि, अहंताशुद्धि तथा चिन्तनशुद्धिका क्रम बताया गया है। चिन्तनशुद्धिसे अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, शुद्ध अन्तःकरणद्वारा संकल्पित कर्म ही विशुद्ध कर्म बताया गया है। अतः शुद्ध अन्तःकरणयुक्त वेद-शास्त्रके तत्त्वको जाननेवाला व्यक्ति जिस किसी आश्रममें रहता हुआ कर्मका सम्पादन, कर्मानुष्ठान करता है, वह इस लोकमें रहते हुए भी ब्रह्मका साक्षात्कार कर लेता है—

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

(मनुस्मृति १२। १०२)

इस प्रकार शौचाचार तथा सदाचारव्रतका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाला व्रती शाश्वत कल्याणप्राप्तिका पथिक बन जाता है।

वाक्संयमव्रत

(स्वामी श्रीअजस्रानन्दजी महाराज)

वाक् संसारके समस्त व्यवहारोंकी नियामिका शक्ति है। आकाश महाभूत इसका जनक है। इसीके माध्यमसे वाक् इन्द्रियद्वारा ध्वनित शब्दतरंगें मस्तिष्कपर अपना प्रभाव छोड़ती हैं, जो कोमल और कठोर—दो प्रकारकी होती हैं। इन तरंगोंमें अन्त:संकल्पके सूक्ष्म तत्त्वोंका समावेश होता है। इस कारण कोमल शब्द-तरंगें जहाँ मस्तिष्कमें आह्लाद भरती हैं—चित्तप्रसादन करती हैं, वहीं कठोर शब्दतरंगें मस्तिष्कमें उद्विग्नता भरती हैं और चित्तमें विषाद एवं कटुता उत्पन्न कर उत्तेजना लाती हैं। इसीलिये वाक्संयमव्रतका परिपालन ही श्रेयस्कर माना गया है।

वाणीके संयमके आधारपर भगवान्‌की ओर सतत उन्मुख रहनेकी प्रवृत्ति ही वाक्संयमव्रत है। देह-इन्द्रिय समूहको विखर कहा जाता है। विखरमें उत्पन्न होनेके कारण वाणीको वैखरी कहा जाता है। परा, पश्यन्ती और मध्यमा—ये सभी वाणीके उत्कृष्ट रूप हैं। वाग्व्यवहारमें वैखरी रूप है।

प्रभुका सतत सांनिध्य प्राप्त करनेके लिये मनुष्य पर्वों, व्रतों और उत्सवोंका आयोजन करता है। व्रतोत्सव-शृङ्खलामें वाक्संयमव्रतकी विशेष महिमा है। वाक्संयमव्रत समस्त सिद्धियोंका दाता है। आपके दो मीठे बोल किसीके जीवनमें वसन्तका-सा वातावरण बना दें तो समझ लीजिये आपका हृदय पूजाके धूपदानकी तरह स्नेह और परदु:खकातरतासे परिपूर्ण हो सर्वदा सौरभ प्रदान करता रहेगा। वाक्संयमसे समाजमें मैत्रीभावका विकास होनेके साथ-साथ लोककल्याणकी भावना भी निरन्तर बनी रहती है। शब्दको विधाविशेषमें ध्वनित करनेकी क्षमता परमात्माने प्राणिजगत्‌में मात्र मानवको ही दी है।

ब्रह्मविद्या-परिपूर्ण उपनिषत्काव्य श्रीमद्भगवद्गीतामें परमात्मा श्रीकृष्णने बड़े सार्थक शब्दोंमें मन, वाणी और शारीरिक तपका निर्वचन किया है। उनके अनुसार मौन मानसिक तप है, वाङ्मय तप नहीं, परंतु मौन शब्द न बोलनेके अर्थमें ही लोकमें प्रचलित है—

मन:प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥
देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

(गीता १७। १६, १५, १४)

जो किसीको उद्वेग न करनेवाला, प्रिय, हितकारक एवं यथार्थ वाक्य है तथा वेद-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है, वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है।

वेद-शास्त्रोंमें ऋषियों, मनीषियों, स्वयं परमात्म श्रीराम और श्रीकृष्णने वाक्संयमव्रताचरणनिमित्त जो हृदयग्राह विधि-निषेधात्मक शिक्षा दी है, उसका यहाँ संक्षेपमें अनुशीलन किया जा रहा है—

वाक्संयमव्रतमें सत्य, प्रिय, मधुर, हित, मित और माङ्गल्यवाणीका प्रयोगाभ्यास और निन्दा, विकथा, परिहास, सांसारिक विषयचर्चा, अश्लील एवं अनर्गल प्रलापका परित्याग होता है।

सत्य—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'सत्यं परं धीमहि', 'सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपद्ये', 'सत्यनारायणं देवम्'—इन मन्त्रोंसे सत्य स्वयं परमात्मरूप सिद्ध है। प्राणिमात्रका आत्यन्तिक हितकारक वचन ही सत्य है—**यद्भूतहितमत्यन्तं तत्सत्यमभिधीयते** (म०भा०) **सत्यं प्रियहितं च यत्** (गीता १७। १५), **प्र देव्येतु सूनृता** (साम० ५६) उपकारिणी, प्रिय एवं सत्यवाणी हमें प्राप्त हो। **स्तुहि सत्यधर्माणम्** (अथर्व० ३। ३०। ३) सत्यनिष्ठकी प्रशंसा करें। **सत्यपूतां वदेद् वाचम्** (श्रीमद्भा० ११। १८। १६) **सत्यमेव जयति नानृतम्** (मुण्डकोपनिषद् ३। १। ६) आदि वचन सत्यकी महिमाका उद्घोष करते हैं।

प्रिय—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

(मनुस्मृति ४। १३८)

'सत्य बोले, प्रिय बोले, सत्य भी अप्रिय न बोले

और प्रिय भी असत्य न बोले; यही सनातनधर्म है।'

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता॥

(चाणक्यनीतिदर्पण १६।१७)

'मधुर वचन बोलनेसे सब जीव संतुष्ट होते हैं, इसलिये मधुर वचन ही बोलने चाहिये, वचनमें दरिद्रता क्या?'

प्रिय वचन बोलनेवाले देव होते हैं और क्रूरभाषी पशु होते हैं। परमात्मा श्रीरामने कहा है—'**देवास्ते प्रियवक्तारः पशवः क्रूरवादिनः**' (वा० रा०)। प्रियभाषीको नरदेहमें ही देव कहा गया है—'**ये प्रियाणि भाषयन्ति प्रयच्छन्ति च सत्कृतिम्। श्रीमन्तो वन्द्यचरणा देवास्ते नरविग्रहाः॥**'

मधुर—मधुर पेशल वचनको साम कहते हैं। '**मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणम्। वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः** (अथर्व० १।३४।३), **जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।**' (अथर्व० ३।३०।२) पति-पत्नी मधुर वचन बोलें। भगवान् श्रीराम—'**सर्वत्र मधुरा गिरा**' (वा०रा०) सर्वत्र मधुर बोलें—ऐसा कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंके अपने पास आते ही जो अमृत-भाषण किया, वह सबके लिये आदर्श है—

ता दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान् व्रजयोषितः।
अवदद् वदतां श्रेष्ठो वाचः पेशैर्विमोहयन्॥
स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम्॥*

(श्रीमद्भा० १०।२९।१७-१८)

हित—वनेचर युधिष्ठिरसे कहता है—'**हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः**' अर्थात् हितकर तथा मनको रुचिकर वचन दुर्लभ है (भारवि)।

मित—संक्षिप्त, सारभरे बोल ही वाग्मीके लक्षण हैं—'**मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता**' (भवभूति)। सत्यवचन और संयत व्यवहार ही मानव-समाजमें अमृत घोलते हैं। '**अतिवादांस्तितिक्षेत्**' अतिवादका त्याग करें। बोलें कम, सुनें ज्यादा। ज्यादा बोलना ओछेपनका लक्षण है। किसे ज्ञान देना चाहते हैं, तुमसे ज्यादा ज्ञान लोगोंके पास है। जोशमें तो बिलकुल न बोला जाय। वाणीमें मितव्ययी बनें। समाजमें वाणीका प्रदूषण भयंकर है—प्रकृतिने स्वर दिया है—शोर नहीं।

माङ्गल्य—सामवेदमें कहा गया है—'**भद्रा उत प्रशस्तयः**' सुन्दर वाणी कल्याणकारिणी होती है। सबसे मङ्गलकारी वचन बोलना चाहिये, अमङ्गलकारी नहीं। मदालसा अपने पुत्रोंको सीख देती है—'**न चामाङ्गल्यवाग् भवेत्**' (मार्क०पु०)।

उक्त वक्तव्य विधिके साथ महात्मा विदुर बिना पूछे बोलनेवालेको मूढ, नराधम कहते हैं—'**अपृष्टो बहुभाषते मूढचित्तो नराधमः।**' परंतु ज्ञानार्णवमें कहा गया है कि धर्मके नाशमें, क्रियाध्वंशमें, सुसिद्धान्तनिरूपणमें तथा सत्य-स्वरूप-प्रकाशनमें बिना पूछे भी बीचमें बोलना प्रशस्य (वचोगुप्ति) है—

धर्मनाशे क्रियाध्वंशे सुसिद्धान्तार्थविप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं सत्स्वरूपप्रकाशने॥

महाभारतमें देवगुरु बृहस्पति अति व्यावहारिक निर्देश देते हैं कि जो सभीको देखकर पहले ही बात करता है और सबसे मुसकराकर ही बोलता है, उसपर सब लोग प्रसन्न रहते हैं—

यस्तु सर्वमभिप्रेक्ष्य पूर्वमेवाभिभाषते।
स्मितपूर्वाभिभाषी च तस्य लोकः प्रसीदति॥

(महाभारत, शान्तिपर्व ८४।६)

इस प्रकार वाक्संयमव्रतको अपने जीवनमें उतारकर परम तत्त्वकी प्राप्तिका दृढ़ प्रयत्न करना चाहिये।

---
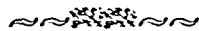
* जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि व्रजकी अनुपम विभूतियाँ गोपियाँ मेरे बिलकुल पास आ गयी हैं, तब उन्होंने अपनी विनोदभरी वाक्चातुरीसे उन्हें मोहित करते हुए कहा—क्यों न हो—भूत, भविष्य और वर्तमानकालके जितने वक्ता हैं, उनमें वे ही तो सर्वश्रेष्ठ हैं।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाभाग्यवती गोपियो! तुम्हारा स्वागत है। बतलाओ, तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये मैं कौन-सा काम करूँ? व्रजमें तो सब कुशल-मङ्गल है न? कहो, इस समय यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ गयी?

ब्रह्मचर्यव्रतका स्वरूप

(डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूडामणि)

मानव-जीवनका प्रथम सोपान है—ब्रह्मचर्य। चार आश्रमोंमें विभक्त जीवनका यह प्रथम आश्रम है। अतएव स्मृतिकार भगवान् मनुने स्पष्टरूपसे निर्देश दिया है—

अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्॥

(मनु० ३।२)

यहाँ अविप्लुत ब्रह्मचर्यसे तात्पर्य है—सब प्रकारसे अखण्डित ब्रह्मचर्यका पालन। जिस प्रकार भवनका मूलस्थान (नीवँ) मजबूत होनेपर ही उसमें चिरस्थायिनी शक्ति आती है, उसी प्रकार शरीररूपी प्रासाद (महल)-के लिये भी दृढ़ मूलकी आवश्यकता होती है—

प्रासादस्य विनिर्माणे मूलभित्तिरपेक्ष्यते।
तथैव जीवनस्यादौ ब्रह्मचर्यमपेक्षते॥

मानव-शरीरका मूल तो ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्यमूलक शरीरमें चिरकालतक जीनेकी शक्ति आती है। अतः शारीरिक उत्कर्षमें ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठा आवश्यक है। अथर्ववेदमें इसकी महनीय महिमाको देखकर 'ब्रह्मचर्य-सूक्त' का ही प्रवर्तन किया गया है। उस समय राष्ट्ररक्षाका एक प्रमुख साधन ब्रह्मचर्य ही था। जैसा कि कहा गया है—

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥

(अथर्व० ११।५।१७)

अर्थात् ब्रह्मचर्य और तपस्यासे बलवान् होकर राजा राष्ट्रकी रक्षा करता था तथा गुरुकुलका आचार्य ब्रह्मचर्यसे ही ब्रह्मचारीका अध्ययनके लिये चयन करता था। आशय यह है कि ब्रह्मचर्य-पालनसे शक्ति आती है और शक्तिसे दुष्टोंका दमन होता है। इस प्रकार राजनीतिकी शिक्षामें तो ब्रह्मचर्यकी प्रधानता थी ही, अन्य सभी शिक्षाओंमें भी ब्रह्मचर्यका प्राधान्य था। इतना ही नहीं, ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके लिये भी ब्रह्मचर्य-पालन अनिवार्य बताया गया है—

विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या॥

(महा०, उद्योगपर्व ४४।२)

इसकी पुष्टि अथर्ववेद (११।५।२४)-से भी होती है—'**ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति**'—इसका उदाहरण कठोपनिषद्में नचिकेता और यमके संवादमें प्राप्त होता है। वहाँ ब्रह्मस्वरूप एकाक्षर 'ॐ' को ही ब्रह्मचर्यका आधार माना गया है। जैसा कि कहा गया है—

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

(कठोपनिषद् १।२।१५)

अर्थात् जिस एकाक्षर 'ॐ'की महत्ता सभी वेद स्वीकार करते हैं, सभी प्रकारकी तपस्याओंका प्रतिफल ॐकारको ही मानते हैं और जिस ब्रह्मचर्यके पालनमें ॐकार सर्वातिशायी सहायक है, उसकी महत्ता (महनीयता)-के विषयमें विशेष क्या कहा जाय! यहाँ गुरुकुलवाससे ब्रह्मचर्यका जो सम्बन्ध है, वह नैष्ठिक ब्रह्मचर्यसे है।

अतएव ब्रह्मचर्य तो ब्रह्म (वेद)-प्राप्तिके लिये मार्ग—रास्ता है। ब्रह्मसे वेद समझना चाहिये, उसके अध्ययनके लिये जो व्रत (नियम) किये जायँ, वह भी ब्रह्म ही है। ब्रह्मसे तपका भी ग्रहण होता है। अतः तप (ज्ञान)-को प्राप्त करनेके लिये जो व्रत किया जाय, वह भी ब्रह्मचर्यव्रत है। इसकी पुष्टि तैत्तिरीयोपनिषद्से होती है। वहाँ कहा गया है—'**तपो ब्रह्म**'। (३।२) अतः आपस्तम्बधर्मसूत्र (आपस्तम्ब प्र०प्र० पटल १, कण्डिका २।१८)-में कहा गया है—'**ब्रह्म वेदस्तदर्थं यद् व्रतं चरितव्यं तद् ब्रह्मचर्यं तदधिक्रियते**'

अर्थात् ब्रह्म वेद है उसकी प्राप्तिके लिये जो व्रत किया जाय, वह भी ब्रह्मचर्यव्रत ही है।

प्राचीनकालमें कन्या भी ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके युवा पतिका वरण करती थी। जैसा कि अथर्ववेद (११।५।१८)-में कहा गया है—'**ब्रह्मचर्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम्।**' इतना ही नहीं ब्रह्मचर्यके द्वारा अमृतत्व (अमरत्व)-की भी प्राप्ति हो सकती है। जैसा कि देवताओंने प्राप्त किया है। इस संदर्भमें अथर्ववेद (११।५।१९)-में ही देखें—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।

इस प्रकारका विवरण गोपथ ब्राह्मण (२।५)-में भी उपलब्ध होता है। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि ब्रह्मचर्यके भयसे मृत्यु भी मारनेकी इच्छा नहीं करती है। अतः ब्रह्मचर्य वरण करनेयोग्य होता है। इस [illegible]

ब्रह्मचर्यकी परिभाषा महर्षि शाण्डिल्यने सुस्पष्टरूपसे इस प्रकार की है—

'**ब्रह्मचर्यं नाम सर्वावस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वत्रमैथुनत्यागः।**' (दक्षसंहिता)

अर्थात् सभी अवस्थाओंमें मन, वचन, शरीर और कर्मसे मैथुन-त्यागको ब्रह्मचर्य कहते हैं।

विशेषरूपसे 'पातञ्जलयोग-दर्शन' के भाष्यमें महर्षि वेदव्यासजीने इस विषयपर समीक्षा की है। इसका स्पष्टीकरण दक्षसंहितामें भी है। यथा—

ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य च संयमम्।
ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा लक्षणं पृथक्।
स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्॥
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः॥

संहिताके अनुसार ब्रह्मचर्य उसे कहते हैं, जहाँ गुप्त इन्द्रियका संयम हो अर्थात् नियन्त्रणमें रहे, वही ब्रह्मचर्य है। इस ब्रह्मचर्यकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये। ब्रह्मचर्य भङ्गकारक यह मैथुन आठ प्रकारका होता है—(१) स्मरण (स्त्री या पुरुषका स्मरण), (२) कीर्तन (उनकी गाथा कहते रहना), (३) केलि (दोनोंका मिलकर क्रीडा करना), (४) प्रेक्षण (छिपकर देखना), (५) गुह्यभाषण (एकान्तमें भाषण करना), (६) संकल्प (दोनोंके मिलनेकी दृढ़ इच्छा), (७) अध्यवसाय (उस क्रियाको करनेकी चेष्टा) और (८) क्रियानिवृत्ति—ये आठ प्रकारके मैथुनके अङ्ग कहे गये हैं।

महर्षि शाण्डिल्यने जो '**मनोवाक्कायकर्मभिः**' के द्वारा मन, वाणी, शरीर तथा कर्मसे मैथुनका त्याग ब्रह्मचर्यके लक्षणमें कहा है, उसीका विश्लेषण, स्मरण, कीर्तन आदिसे बोध कराया गया है।

ब्रह्मचर्यके सम्पादन-निमित्त सत्यनिष्ठाका विशेषरूपसे उल्लेख मिलता है। जैसा कि कहा गया है—

नित्यं सत्ये रतिर्यस्य पुण्यात्मा तुष्टतां व्रजेत्।
ऋतौ प्राप्ते व्रजेन्नारीं स्वीयां दोषविवर्जितः॥

(पद्म० भूमि० १३।२)

अर्थात् जिसकी सत्यमें निष्ठा हो और जो पुण्यात्मा दोषरहित होकर ऋतुकाल प्राप्त होनेपर अपनी स्त्रीके साथ समागम करता है तथा एकदारा-व्रती रहता है, वह भी एक प्रकारका ब्रह्मचर्यव्रतका स्वरूप है अर्थात् '**एका भार्या सुन्दरी वा दरी वा**' इस सिद्धान्तका जो सत्यतासे, दृढ़ निष्ठासे पालन करता है, वह भी ब्रह्मचर्यसेवी माना जाता है। ऐसा ब्रह्मचर्यव्रत गृहस्थाश्रम निवासियोंके लिये ही है।

निष्कर्ष यहाँ यह है कि मनमें और प्राणमें उच्च भावनाओंका पोषण करना, शुभ चिन्तनके द्वारा शरीर और मनको क्रमशः उन्नतिशील बनाकर फलस्वरूप समस्त दोषोंसे अपनी रक्षा करते हुए समुन्नतिकी चेष्टा करना ही ब्रह्मचर्य है। अतः महर्षि पतञ्जलिने जो '**ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः**' कहा है—यह सुतरां सिद्ध है।

यदि समग्र ब्रह्मचर्यका पालन सम्भव हो तभी ब्रह्मचारित्वकी कल्पना सार्थक है, अन्यथा केवल नामधारणमात्र ही होगा, जैसा कि कहा गया है—

हृदि कामाग्निना दीप्ते कायेन वहतो व्रतम्।
किमिदं ब्रह्मचर्यं ते मनसा ब्रह्मचारिणः॥

(सौन्दरनन्द ११।३०)

अर्थात् कामरूपी अग्निसे हृदयके प्रदीप्त होनेपर यदि शरीरसे ही केवल ब्रह्मचर्यव्रत धारण किया जाता है तो ऐसा व्रत किस कामका! ऐसे लोग तो केवल मनसे ही ब्रह्मचारी हैं।

व्याकरणके अनुसार ब्रह्मचर्यव्रत या ब्रह्मचारी शब्दका निर्वचन करते हुए आचार्य श्रीभट्टोजि दीक्षितने कहा है—'**ब्रह्मवेदस्तदध्ययनार्थं व्रतमपि तच्चरतीति ब्रह्मचारीति**' [बृंह्+मनिन, नकारास्याकारे ऋतो रत्वम्, व्रतम्—प्रज्+घ, जस्य तः] अर्थात् ब्रह्म वेद है, उसके अध्ययनके लिये जो व्रत है, वह ब्रह्मचर्य और जो व्रताचरण करे वह ब्रह्मचारी है। यहाँ वेद शब्दसे ज्ञानराशिका बोध होता है और ज्ञानराशि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी साधनस्वरूपा है। शरीरकी रक्षाके लिये जो आचरण किया जाय वही ब्रह्मचर्य है। मन, वाणी और शरीरसे साधित एवं आठ प्रकारके मैथुनोंके अभाववाले ब्रह्मचर्यसे शरीरमें दृढ़ता और बुद्धिमें तीक्ष्णता आती है जिससे असाधारणवृत्ति सम्पादन हेतु मेधा (बुद्धि) उत्पन्न होती है।

ब्रह्मचर्यव्रतकी उपयोगिता—पूर्व युगों (प्राचीनकाल)-में ब्रह्मचर्यव्रतके प्रभावसे तपस्याद्वारा महर्षियोंने लोकातीत

(अत्यन्त) कठिन कार्योंका सम्पादन किया। जिसका वर्णन मत्स्यपुराण (१७५। ३३, ३६-३७)-में वेदव्यासजीने यों किया है—

ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यात्मदर्शिनः।
ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत्॥

× × ×

एते तपसि तिष्ठन्ति व्रतैरपि सुदुष्करैः।
ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति परां गतिम्॥
ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते।

अर्थात् ब्रह्म (ब्राह्मण)-योनिमें समुत्पन्न आत्मदर्शी ब्राह्मणका भलीभाँति आचरित ब्रह्मचर्य ब्रह्माको भी डिगा सकता है। ये तपस्वी ब्राह्मण ब्रह्मचर्य आदि अत्यन्त कठिन व्रतोंसे युक्त होकर मोक्षकी कामना करते हैं। ब्राह्मणका ब्राह्मणत्व ब्रह्मचर्यसे ही सुरक्षित रहना सम्भव है। ब्रह्मचर्यव्रतसे कठिन-से-कठिन कार्य भी सम्भव हो सकता है।

श्रीरामभक्त वायुपुत्र हनुमान्ने ब्रह्मचर्यके बलसे ही वज्रका कठोर देह प्राप्त किया था। दुर्दान्त रावणसे युद्ध, समुद्रका लंघन, भगवती सीताकी खोज, लक्ष्मणजीकी मूर्च्छाको दूर करनेमें प्रबल उद्योग—यह सब पराक्रम ब्रह्मचर्यव्रतका ही प्रभाव है। अपरञ्च ब्रह्मचर्यके प्रभावसे ही आबाल ब्रह्मचारी महाप्रतापी भीष्मने स्वेच्छामृत्यु प्राप्त की थी और इसी ब्रह्मचर्यका ही यह प्रभाव था कि गङ्गापुत्र महारथी भीष्मने दीर्घ आयु प्राप्त की।

स्मृतिकारोंने गृहस्थाश्रममें रहनेवाले लोगोंके लिये भी नियमपूर्वक ब्रह्मचर्यव्रतका उल्लेख किया है। देखें—महाबली भीम और अर्जुनने गृहस्थाश्रममें विहित ब्रह्मचर्यके द्वारा प्राप्त बलसे रसातलगमन तथा स्वर्गगमन आदि दुरूह कार्योंका सम्पादन किया।

अतः अभ्युदय तथा निःश्रेयस (परम कल्याण या मोक्ष) चाहनेवाले लोगोंको ब्रह्मचर्यव्रतमें दीक्षित होना चाहिये। शरीर, वाणी और मनसे सर्वत्र मैथुनत्यागपूर्वक सत्यका आचरण उत्कृष्ट (श्रेष्ठ) ब्रह्मचर्य है और जननेन्द्रियका संयम शरीररक्षणमात्र है।

ब्रह्मचर्यव्रतके भेद—ब्रह्मचर्यव्रतसे मनुष्य अमरत्व प्राप्तकर तीनों लोकोंको भी जीत सकता है। इस अमरत्व तथा विजयत्व प्रदान करनेवाले ब्रह्मचर्यको सभीको ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकारके ब्रह्मचर्योपासक ब्रह्मचारीके चार भेद हैं—(१) गायत्र, (२) ब्राह्म, (३) प्राजापत्य और (४) नैष्ठिक (वैखानस धर्म प्रश्न तृ०ख०)। वीरराघवाचार्यजीने दक्षस्मृतिका अनुसरण कर भागवतचन्द्रटीकामें ब्रह्मचर्यके दो भेद कहे हैं—(१) औपकुर्वाण (उपकुर्वाणक) और (२) नैष्ठिक।

इनमें उपकुर्वाणक ब्रह्मचारी वह होता है जो वेद पढ़कर स्नातक बने। तत्पश्चात् विवाह तथा यज्ञादिका सम्पादन करे। नैष्ठिक ब्रह्मचारी उसे कहते हैं जो आजीवन ब्रह्मचर्य धारण करे (नीतिवाक्यामृत)।

उपर्युक्त लक्षणोंसे युक्त ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यव्रतको धारण करके अपने तेजसे कठिनसे भी कठिन कार्य कर सकता है।

ब्रह्मचारीकी दिनचर्या—उपकुर्वाणक ब्रह्मचारी गुरुकुलमें रहते हुए अपनी दिनचर्या किस प्रकार चलाये, इस विषयमें कहा गया है—उपनीत ब्रह्मचारी मेखला, उपवीत, मृगचर्म और दण्ड (पलाश, बिल्व आदिका) धारण करे; ब्राह्ममुहूर्तमें उठे, त्रिकाल सन्ध्योपासन करे तथा समिधा-आहरणकर होम करे और गुरुके चरणोंमें नित्य प्रणाम करके व्रत-धारणपूर्वक अध्ययन करे।

इस प्रकार प्राचीन गुरुकुल-परम्परामें ब्रह्मचारीके आचार-विचारका दिग्दर्शन होता है। इनके अतिरिक्त शिष्टाचार, सदाचार, आयुष्य, गुरुभक्ति, मिताहार और जितेन्द्रियत्व आदि ब्रह्मचर्य-चर्यामें आवश्यक गुणके रूपमें कहे गये हैं।

शिष्य (ब्रह्मचारी) गुरुकी नित्य वन्दना करके पवित्र और अप्रमत्त होकर स्वाध्याय (अध्ययन) करे, घमण्ड न करे, रोष (क्रोध)-का सर्वदा त्याग करे, यह ब्रह्मचर्यव्रतका प्रथम चरण है।

विशेष क्या कहा जाय इहलोक और परलोकके साधक इस ब्रह्मचर्यव्रतकी महिमा और उपयोगिता अनन्त है। साधक व्रतीको इसका पालन करके शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक उन्नतिको प्राप्त करना चाहिये।
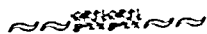
अहिंसाव्रत

(श्रीबालकृष्णदासजी पुरोहित, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

अहिंसा मानवका सहज स्वभाव है। अहिंसाके पालनके लिये प्रयास नहीं करने पड़ते, बल्कि जिन कारणोंसे हिंसक वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें दूर करना होता है। ऐसा होते ही अहिंसा सहज ही जीवनका स्थायी अङ्ग बन जाती है। अहिंसाका शाब्दिक अर्थ है—न मारना। लेकिन जिन अर्थोंमें अहिंसा हमारे आर्षग्रन्थोंमें व्यक्त की गयी है और जिन रूपोंमें ऋषि-मुनि इसका व्यवहारमें पालन करते आये हैं, वह इस अर्थसे कहीं अधिक व्यापक है। अहिंसाव्रत एक ऐसा व्रत है जिसके पालनसे जीवमात्रमें वैरभाव ही निर्मूल हो जाता है।

श्रुति कहती है—'**मा हिंस्यात् सर्वाणि भूतानि**' अर्थात् किसी भी प्राणीकी हिंसा मत करो। वेदोंमें कई स्थलोंपर अहिंसाके लिये प्रार्थनाएँ मिलती हैं। योगदर्शनमें अष्टाङ्ग-योगके प्रथम अङ्ग यमको परिभाषित करते हुए महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

'**अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥**'

(साधनपाद ३०)

अर्थात् यमके पाँच प्रकारोंमें अहिंसा प्रथम अङ्ग है। अहिंसाकी व्याख्या करते हुए कहा गया है—'मन, वाणी और शरीरसे किसी भी प्राणीको कभी किसी प्रकार किञ्चिन्मात्र भी दुःख न देना अहिंसा है।' अर्थात् किसी भी प्राणीका मन न दुखाना अहिंसा है—उसका भी नहीं, जो आपको अपना शत्रु मानता है। वास्तवमें परपीडावृत्तिका न होना ही अहिंसा है।

पातञ्जलयोगदर्शनमें हिंसाके कई प्रकार बताये गये हैं। कर्ताभावसे हिंसा तीन प्रकारकी होती है—'**कृतकारिता-नुमोदिताः**' (२। ३४) अर्थात् '**कृत**' (स्वयं) करे, '**कारिता**' (दूसरोंसे करवाये) और '**अनुमोदिता**' (हिंसाका) अनुमोदन करे। वृत्तिके आधारपर तीन और भेद करते हुए कहा गया है—'**लोभक्रोधमोहपूर्वकाः**' अर्थात् हिंसा लोभ, क्रोध और मोहके कारण हो सकती है। इन भेदोंको मिलाकर एक साथ देखें तो हिंसाके नौ भेद होते हैं। हिंसाकी तीव्रताके आधारपर इसके तीन और भेद किये गये हैं—'**मृदुमध्याधिमात्राः**' अर्थात् किसीको थोड़ा दुःख देना, कुछ अधिक दुःख देना और बहुत ज्यादा दुःख देना।

इन सबको एक साथ रखें तो हिंसाके सत्ताईस भेद होते हैं। चूँकि हिंसा मन, वाणी और शरीरसे की जा सकती है, इसलिये हिंसाके इक्यासी प्रकार बताये गये हैं। देश, काल और व्यक्तिके आधारपर हिंसा और भी कई भागोंमें विभाजित की जा सकती है। योगी याज्ञवल्क्यद्वारा प्रणीत योगसंहितामें कहा गया है—

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
अक्लेशजननं प्रोक्तं अहिंसात्वेन योगिभिः॥

अर्थात् कर्मसे, मनसे और वाणीसे किसीको क्लेश न पहुँचाना अहिंसा है। साधारणतः क्लेशका अर्थ है— दुःख न देना, न सताना। लेकिन योगदर्शन (साधनपाद ३)-में क्लेश एक पारिभाषिक शब्द है—'**अविद्यास्मिता-रागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः॥**' अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश—ये पाँच क्लेश हैं। इन पाँचोंमेंसे किसीका भी प्रयोग किसीके विरुद्ध किया जाता है तो वह हिंसा कहलाती है। जैसे—किसीको मूर्ख बनाना (अविद्या), किसीके घमण्डको बढ़ाना (अस्मिता), किसीके मनमें ऐसा प्रेम उत्पन्न कर देना कि वह रोता फिरे (राग), किसीसे शत्रुता रखना (द्वेष) और किसीके मनमें मरनेका भय पैदा करना (अभिनिवेश)। इन सबका या इनमेंसे किसी एकका भी प्रयोग किया जाता है तो वह हिंसा है और इनका प्रयोग न करना अहिंसाव्रतका पालन करना है। किसीके सुखमें, ज्ञानमें और जीवनशैलीमें बाधा पहुँचाना हिंसा है। हमारे ऋषि-मुनि तो परदोषदृष्टिको भी हिंसा कहते हैं।

वास्तवमें हिंसाका बुनियादी आधार ही ममत्व है। जबतक किसी भी रूपमें 'मैं' का अस्तित्व है, तबतक हिंसाकी वृत्तियाँ उत्पन्न होती रहेंगी; क्योंकि 'मैं' और 'मेरे'-का भाव मनुष्योंके बीच भेद उत्पन्न करता है। मेरा धर्म, मेरा प्रान्त, मेरा देश, मेरे लोग आदि भाव जैसे ही मनमें आते हैं, वैसे ही जो 'मेरे नहीं हैं' वे दूर होते जाते हैं और धीरे-धीरे उनके प्रति हिंसक वृत्तियाँ जन्म लेने लगती हैं। इसलिये अहिंसाका अर्थ है—'मैं' तथा 'मेरे' भावका परित्याग। अपने-परायेका भेद न रहनेपर अहिंसाका

पालन सहज ही हो जाता है।

अहिंसाव्रतके पालनके लिये मानवीय व्यवहारमें कुछ विशेष बातें होनी जरूरी हैं—

१-निर्भयता—अहिंसाके पालनके लिये निर्भयता जरूरी है; क्योंकि हिंसाका जन्म ही भयसे होता है। भयभीत व्यक्ति ही दूसरोंपर आक्रमणके बारेमें सोचता है। निर्भय अर्थात् किसीसे भय न होनेपर हिंसाका विचार ही उत्पन्न नहीं होगा और अहिंसाका पालन होगा।

२-समत्व—अहिंसाके लिये सभी जीवोंके प्रति समभाव रखना, उन्हें आत्मवत् मानना जरूरी है। भेददृष्टि रहनेपर हिंसाके भाव पैदा होंगे।

३-साहस—अहिंसक व्यक्तियोंका साहसी होना जरूरी है। कायरता और अहिंसा साथ-साथ नहीं रह सकती। कायर व्यक्ति भले ही स्पष्टरूपसे अहिंसक लगे, किंतु उसके अन्तर्मनमें हिंसक विचार अवश्य रहते हैं। इसलिये वह अहिंसक नहीं हो सकता।

४-आत्मा एवं शरीर—आत्माके स्वभावको न समझ पानेके कारण शरीरको आत्मा माननेकी भूल सामान्यतः हम करते हैं। इस कारण शरीरके प्रति मोह जुड़ा रहता है। शरीरपर सम्भावित खतरोंके कारण मनमें हिंसक भाव आते रहते हैं। अहिंसाव्रतके पालनके लिये शरीर और आत्माको भिन्न समझना और दोनोंके स्वभावोंको जानना जरूरी है।

५-आत्मशुद्धि—अहिंसाके पालनके लिये मन, कर्म और वचनसे निर्विकार होना आवश्यक है। राग-द्वेषमुक्त व्यवहार अहिंसाके पालनके लिये अनिवार्य है।

इन सबका प्रयोग अहिंसाव्रतके पालनको प्रभावी बनाता है।

आजके अशान्त और हिंसाप्रधान वातावरणमें अहिंसाव्रत एक ऐसा उपाय है जो कल्याणकारी शान्ति और निर्भयताकी स्थापना कर सकता है। अहिंसा विपरीत परिस्थितियोंमें भी मनुष्यको अडिग रखकर धर्मपालनके लिये साहस देती है। इस व्रतमें विश्वास रखनेवालेकी मानवतामें गहरी आस्था रहती है। दूसरे सारे उपाय एक पलड़ेमें रखे जायँ और अहिंसा अकेले ही दूसरे पलड़ेमें रहे तो भी अहिंसाका पलड़ा सदा भारी होगा। अतः सभीको अहिंसाव्रतमें तत्पर रहना चाहिये।

तपोव्रतद्वारा इष्टसिद्धि

(आचार्य श्रीरामनाथजी 'सुमन')

सेवाव्रत, दानव्रत, दयाव्रत, मौनव्रत, क्षमाव्रत, राष्ट्रव्रत, पतिव्रत, एकादशीव्रत, वनयात्राव्रत आदि विविध आचरणोंकी व्रतसंज्ञा व्यवहारमें विश्रुत है तथापि महर्षि पतञ्जलिद्वारा प्रतिपादित शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान नामसे व्यवहृत नियमोंके अन्तर्गत तपोव्रतका ही यहाँ प्रतिपादन किया जा रहा है—

तपोव्रत वरणीय तथा करणीय कर्म तो है ही, व्रत एवं कृतकर्म भी है। यज्ञके देव अग्निदेव देवताओंके पूज्य पुरोहित तो हैं ही, व्रतके निर्विघ्नतापूर्वक निष्पादनके लिये शक्ति प्रदान करनेका सामर्थ्य भी रखते हैं। वेदान्त कहे जानेवाले उपनिषद् ग्रन्थोंमें परम प्रभुको भी संकल्परूप ही सही; तपकी अनिवार्यताका यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। प्रश्नोपनिषद्का प्रारम्भ ही इस प्रश्नसे होता है कि '**भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति**' (१। ३) कत्य ऋषिके प्रपौत्र कबन्धी ऋषिके इस प्रश्नका उत्तर देते हुए महर्षि पिप्पलाद कहते हैं कि '**प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत**' (प्रश्नोपनिषद् १। ४) अर्थात् सृष्टि उत्पन्न करनेकी कामनासे सृष्टिके स्वामी परमात्माने (संकल्परूप) तप किया, तब सृष्टि उत्पन्न की।

ऐतरेयोपनिषद्में लिखा है कि लोकोंकी रचना करनेके उपरान्त परमात्माने सोचा कि लोकपालोंकी रचना और करनी चाहिये। यह सोचकर परमात्माने जलमेंसे हिरण्यगर्भ पुरुषको निकालकर मूर्तिमान् किया तथा '**तमभ्यतपत्**' अर्थात् उसे लक्ष्य बनाकर तप किया। तैत्तिरीयोपनिषद् (२। ६। ४)-में '**सोऽकामयत्। बहु स्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदꣳ सर्वमसृजत यदिदं किं च।**' अर्थात् परमात्माने कामना की कि मैं प्रकट हो जाऊँ और अनेक नाम-रूप धारण करके बहुत बन जाऊँ। यह सोचकर परमात्माने तप किया और तप करके यह जो कुछ दिखायी दे रहा है इन सबकी रचना की। इतना ही क्यों? श्वेताश्वतरोपनिषद्में तो यहाँतक लिख दिया गया है कि तपके प्रभावसे और परमात्माकी कृपासे ऋषि श्वेताश्वतरने ब्रह्मको जाना—
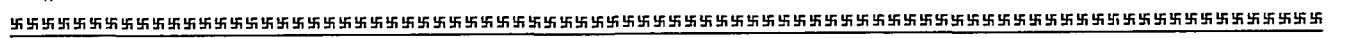
तप:प्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म
ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान्।
(६।२१)

प्रतीत होता है कि प्रभुकी कृपा भी तभी प्राप्त होती है, जब तपका प्रभाव होता है। श्रीमद्भागवतमें तो धर्मके चार पादोंमें तपको सर्वोपरि स्थान दिया गया है—

तप: शौचं दया सत्यमिति पादा: कृते कृता:।
(१।१७।२४)

इतना ही नहीं, ब्रह्मकी प्रथम सृष्टि ब्रह्माके द्वारा प्रथम सृष्ट ब्राह्मणसमाजका नि:श्रेयस करनेवाले दो ही तत्त्व श्रीमद्भागवतमें बताये गये हैं—तप और विद्या। ये दोनों विनयशील ब्राह्मणोंके लिये तो कल्याणप्रद हैं, किंतु दुर्विनीतके पास पहुँचकर ये ही दोनों अनिष्टकारी हो जाते हैं—

तपो विद्या च विप्राणां नि:श्रेयसकरे उभे।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा॥
(९।४।७०)

महाकवि कालिदासने अपने 'कुमारसम्भव' महाकाव्यमें भगवती पार्वतीके विषयमें लिखा है कि जब पार्वतीने पिनाकी शिवद्वारा कामदेवको अपने समक्ष भस्मसात् होते देखा तो उन्होंने तपके द्वारा तपस्वी शिवको अनुकूल बनानेका प्रयास किया। सच भी तो है कि ऐसा प्रेम और ऐसा पति तपके बिना प्राप्त नहीं हो सकता—

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां
समाधिमास्थाय तपोभिरात्मन:।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं
तथाविधं प्रेमपतिश्च तादृश:॥
(५।२)

कविने '**तपोभि:**' में बहुवचनका प्रयोग साभिप्राय किया है। ग्रीष्म, वर्षा तथा शीत ऋतुमें गौरीशिखरपर उमाका तप वस्तुत: बड़े-से-बड़े तपस्वियोंको भी चकित कर देनेवाला है। पार्वतीने ग्रीष्म-ऋतुमें कठोर तप करते हुए अपने चारों ओर अग्नि प्रज्वलित कर ली। ज्येष्ठके महीनेमें बाहर खड़े होकर सूर्यकी ओर टकटकी लगाकर देखते रहना और फिर भी चेहरेपर पवित्र मुसकराहट बनाये रखना यह देवी उमाका ही काम था, अन्यका नहीं—

शुचौ चतुर्णां ज्वलतां हविर्भुजां
शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभा-
मनन्यदृष्टि: सवितारमैक्षत॥
(५।२०)

पार्वतीके इस प्रकारके ग्रीष्म तपके उपरान्त वर्षाकालीन तपका क्रम आता है। आकाशके सूर्य और पृथ्वीकी अग्निराशिसे निकामतप्त देवी पार्वतीने वर्षाकालके आरम्भमें पृथ्वीके साथ गरम साँस तो छोड़ी ही, पार्वतीकी सखी भी उस समयके तपमें उनका साथ न दे सकी। दिन-रातके उस तपकी साक्षिणी केवल रात्रियाँ थीं, जो आवश्यकता पड़नेपर कह सकेंगी कि देवी पार्वतीने कठोर तप:साधना की थी।

शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं
निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु ।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयै-
र्महातप: साक्ष्य इव स्थिता: क्षपा:॥
(५।२५)

अर्थात् बिना किसी छायाके एक स्थानपर शिलाके ऊपर बैठकर पार्वती ऐसा तप कर रही हैं, जहाँ झंझावातके साथ मुसलाधार वर्षा हो रही है। बीच-बीचमें तड़पती हुई बिजलीके रूपमें आँखें खोलकर रात्रियाँ ही उनके महातपकी गवाही देनेको वहाँ खड़ी हुई थीं। वर्षाकालके इस महातपने शक्तिरूपा पार्वतीको न केवल एकाकिनी बना दिया है, अपितु साधनाके निकट भी ला दिया है।

शीत-ऋतुका भीषण तप देवी पार्वतीके पर्वताकार साहसका प्रत्यक्ष परिचय दे गया। जाड़ेकी हेमन्त-ऋतु, उसमें प्रखर पौषमासकी बर्फीली हवा, उसमें भी भीषण रात्रिकाल। इतनी विपरीत परिस्थितियोंमें भी उमाकी अविचल लक्ष्यसाधनाको कोई निष्ठावान् रचनाकार ही चित्रित कर सकता है।

निनाय सात्यन्तहिमोत्किरानिला:
सहस्यरात्रीरुदवासतत्परा ।
परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयो:
पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावती॥
(५।२६)

अर्थात् पार्वतीने पानीमें खड़े रहकर अत्यन्त बर्फीली हवाओंवाली पौषमासकी रात्रियोंको रात्रिमें अलग-अलग हो जानेवाले चक्रवाक-युगलपर सहानुभूतिपूर्वक कृपा करते हुए बिताया। इस प्रकार तीनों ऋतुओंकी अत्यन्त विपरीत

परिस्थितियोंको सहते हुए पार्वतीका महातप लक्ष्योन्मुख ही नहीं, लक्ष्याभिमुख हो गया। भगवान् स्वयं ब्रह्मचारीका वेष बनाकर गौरीशिखरपर पहुँच गये। अनेक प्रबल तर्कों-वितर्कोंके अनन्तर उमाकी महनीय महत्ता सार्थक हुई। यह कहते हुए कि बड़ोंकी बुराई करनेवाला ही नहीं, बुराई सुननेवाला भी दोषी माना जाता है, पार्वतीने जैसे ही वहाँसे उठनेका प्रयास किया। चन्द्रमौलि भगवान् शंकर कह उठे—

अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते॥

(५।८६)

अर्थात् हे देवि! आजसे मैं तपद्वारा खरीदा गया तुम्हारा दास बन गया हूँ। भगवान्‌का ऐसा कहना था कि पार्वतीका सम्पूर्ण तपस्याके समयका कष्ट एकदम दूर हो गया। ठीक ही तो है—फल पानेके पश्चात् क्लेश शरीरमें नवताका ही संचार करता है, दुर्बलताका नहीं। भगवती पार्वतीके तीनों ऋतुओंके तपने बहुवचनका रूप धारण करके भगवान् चन्द्रमौलिसे भी स्वमुखसे '**क्रीतस्तपोभिः**' यह बहुवचनान्त पद ही कहलाया है, एकवचनान्त नहीं।

इस प्रकार निर्भ्रान्तरूपसे कहा जा सकता है कि 'व्रत' शब्द यद्यपि विविध क्षेत्रीय कर्तव्यकर्मोंका द्योतन करता है, तथापि यह शब्द मूलतः तपकी ही ध्वनि संक्रमित करता है। तप भगवान्‌की ओर उन्मुख होने तथा भगवान्‌से सम्बद्ध होनेका प्रमुख साधन है। तपके द्वारा इष्टसिद्धि सुनिश्चित है।

पातिव्रत्यकी महिमा

(डॉ० श्रीसुरेशनन्दनप्रसादजी सिंह 'नीलकंठ')

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥
पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम्॥

(मनु० ५।१५५-१५६)

स्त्रीको न तो कोई यज्ञ करनेकी आवश्यकता है और न किसी व्रत-उपवासकी। पतिकी सेवा करनेसे ही वह स्वर्गमें आदृत होती है। नारीके लिये परम धाम पतिलोक होता है। कन्या पाणिग्रहणके पश्चात् चाहे पति जीवित हो या मृत, उसका अप्रिय कभी न करे।

मनुस्मृतिमें इसे ही पातिव्रत्य कहा गया है। पातिव्रत दो शब्दोंके योगसे बना है—पति+व्रत। अर्थात् 'पतिके लिये लिया गया व्रत' ही शाब्दिक अर्थमें पातिव्रत्य कहलाता है। यह व्रत विवाहके समय लिया जाता है और नारीको इसे जीवन-संकल्प मानकर जीवनपर्यन्त इसका निर्वहण करना पड़ता है।

मनुस्मृति तथा अन्य शास्त्रोंमें विवाहको गृहस्थाश्रमका सर्वश्रेष्ठ संस्कार कहा गया है। विवाहके बिना मानव-जीवन अपूर्ण माना जाता है। भगवती श्रुतिमें कहा गया है—विवाह ही प्रजातन्तु है, इसे उच्छिन्न मत करो—'**प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः**'। विवाहका उद्देश्य स्त्री एवं पुरुषके मधुर पवित्र समन्वय तथा सामञ्जस्यद्वारा पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रिय जीवनकी सुव्यवस्था एवं सुख-स्वास्थ्य-शान्तिकी रक्षा करना है। विवाह नारी-पुरुषके लिये इन्द्रियोंकी तृप्ति और भोगका साधन नहीं है, अपितु यह जीवन-संकल्प है—जीवन-व्रत है। यह जन्मान्तरका सम्बन्ध है, दाम्पत्यप्रेमकी पवित्रताका द्योतक है। विवाहमें नारीका तपोमय स्वरूप निहित है और उसके पातिव्रत्यकी गरिमा प्रतिभासित है। विवाहके अवसरपर पिताके द्वारा कन्यादान और वर-वधूका पाणिग्रहण शास्त्रवर्णित पावन जीवनधर्म है—

जन्मान्तरीयसम्बन्धस्तथा पाणिपवित्रता।
तपःप्रधाना नार्यश्च कन्यादानस्य श्रेष्ठता॥

मनुस्मृतिमें कन्यादान और पाणिग्रहणका विस्तृत उल्लेख है। शास्त्रोंमें वर्णित है कि सृष्टिसंचालनके लिये सृष्टिकर्ताने स्वयंको दो भागोंमें अवतरित किया—'स्त्रीधारा' और 'पुरुषधारा'। देवीभागवतमें कहा गया है—

स्वेच्छामयः स्वेच्छयायं द्विधारूपो बभूव ह।
स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान् स्मृतः॥

स्वेच्छामय भगवान् स्वेच्छासे दो रूप हो गये, वामभागांशसे स्त्री और दक्षिणभागके अंशसे पुरुष बने।

मनुस्मृतिमें स्त्री और पुरुषकी मूलधाराको विवाह-बन्धनमें बाँधकर सृष्टिकी गतिशीलताका प्रावधान वर्णित है। कहा गया है कि विवाहसंस्कारके द्वारा स्त्री और पुरुष अपनी-अपनी अनर्गल भोगप्रवृत्तियोंको एक-दूसरेमें केन्द्रीभूत एवं नियन्त्रित कर आत्मसंयम और आत्मत्यागके अभ्यासद्वारा एक-दूसरेकी आध्यात्मिक उन्नतिमें सहायक होते हैं। स्त्रीके लिये पातिव्रत्य और पुरुषके लिये एकपत्नीव्रत धर्म सनातन संस्कृतिका अध्यात्ममय आदर्श है।

मनुस्मृतिमें आठ प्रकारके विवाहोंका वर्णन है—

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥

(मनु० ३।२१)

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच—ये आठ प्रकारके विवाह होते हैं। ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य—इन चार प्रकारके विवाहोंसे जो संतानें उत्पन्न होती हैं, वे ब्रह्मतेजसे युक्त होती हैं। इन चार विवाहोंमें कन्यादान, पाणिग्रहण, सप्तपदी और ध्रुवदर्शनका विधान है। माता-पिता यज्ञमण्डपमें यज्ञाग्निको साक्षी रखकर अपनी कन्याका कर वरके करमें समर्पित कर पाणिग्रहण करवाते हैं। वर-वधू सात बार यज्ञाग्निकी प्रदक्षिणा करते हुए सप्तपदी-मन्त्र उच्चारित कर जीवन-संकल्प लेते हैं। कन्याके द्वारा उच्चारित एवं संकल्पित सप्तपदी-मन्त्रको ही पातिव्रत्यमन्त्र कहते हैं। इसके पश्चात् कन्याको ध्रुवदर्शन कराया जाता है। कन्या ध्रुवतारेको देखकर कहती है—'**ध्रुवमसि ध्रुवं त्वां पश्यामि**' अर्थात् हे ध्रुव! तुम अचल—अटल हो, मैं तुम्हें देख रही हूँ और मैं भी तुम्हारे समान अपनी प्रतिज्ञापर अचल—अटल रहूँगी।

सातवाँ पग उठाते हुए पति कहता है—'**सखा सप्तपदि भव**' हमने सात पग उठा लिये, अब हम दोनों सखा हैं। वेदोंमें परमेश्वरको सखा कहा गया है। सखाको मित्रसे भी अधिक हितचिन्तक माना गया है। इस प्रकार वरका परमेश्वरस्वरूप और वधूका परमेश्वरीस्वरूप एक ही प्राणके दो स्वरूप हैं; जैसे एक रथके दो चक्र और एक ही पक्षीके दो पंख—

एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः।
अभार्योऽपि नरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु॥

जैसे एक रथ दो रथ-चक्रोंके बिना नहीं चल सकता, एक चिड़िया दो पंखोंके बिना नहीं उड़ सकती, वैसे ही भार्यासे रहित अकेला पुरुष आध्यात्मिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रिय जीवनकी सुव्यवस्था एवं सुख-स्वास्थ्य-शान्तिकी रक्षा नहीं कर सकता। इस पवित्र और मधुर समन्वयके कारण ही पति परमेश्वर है और पत्नी परमेश्वरी। शिव बिना शिवाके प्राणहीन शव हैं।

पातिव्रत्य-मन्त्र (सप्तपदीमन्त्र)

धनं धान्यं च मिष्टान्नं व्यञ्जनाद्यं च यद् गृहे।
मदधीनं च कर्तव्यं वधूराद्ये पदे वदेत्॥
कुटुम्बं रक्षयिष्यामि सदा ते मञ्जुभाषिणी।
दुःखे धीरा सुखे हृष्टा द्वितीये साब्रवीद्वचः॥
पतिभक्तिरता नित्यं क्रीडिष्यामि त्वया सह।
त्वदन्यं न नरं मंस्ये तृतीये साब्रवीदियम्॥
लालयामि च केशान्तं गन्धमाल्यानुलेपनैः।
काञ्चनैर्भूषणैस्तुभ्यं तुरीये सा पदे वदेत्॥
आर्ते आर्ता भविष्यामि सुखदुःखविभागिनी।
तवाज्ञां पालयिष्यामि पञ्चमे सा पदे वदेत्॥
यज्ञे होमे च दानादौ भविष्यामि त्वया सह।
धर्मार्थकामकार्येषु वधूः षष्ठे पदे वदेत्॥
अत्रांशे साक्षिणो देवा मनोभावप्रबोधिनः।
वञ्चनं न करिष्यामि सप्तमे सा पदे वदेत्॥

वधू संकल्प लेती है—'धन-धान्य, मिष्टान्न आदि जो कुछ घरमें है, सब मेरे अधीन रहेगा। मैं सदा मधुरभाषिणी, कुटुम्बकी रक्षा करनेवाली, दुःखमें धीर और सुखमें प्रसन्न रहूँगी। पतिपरायणा होकर तुम्हारे ही साथ विहार करूँगी, तुम्हारे सिवा किसी अन्य पुरुषको पुरुष ही नहीं समझूँगी। गन्ध, माला, लेपन-भूषण आदिसे तुम्हें सदा प्रसन्न करूँगी। मैं सदा तुम्हारे दुःखमें दुःखिनी, सुखमें सुखिनी हो तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगी। यज्ञ, होम, दान तथा सभी धर्म, अर्थ, कामके साधक कार्योंमें सदा तुम्हारे साथ रहूँगी। मेरी इन प्रतिज्ञाओंमें अन्तर्यामी देवतागण साक्षी रहें, मैं कभी तुम्हारी वञ्चना नहीं करूँगी।'

तदनन्तर वर वधूकी इन प्रतिज्ञाओंको इन शब्दोंमें
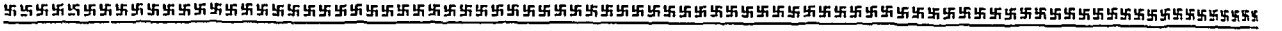
स्वीकार करता है—

मम व्रते ते हृदयं दधामि
मम चित्तमनु चित्तं तेऽस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व
प्रजापतिष्ट्वा वि युनक्तु मह्यम्॥
मदीयचित्तानुगतं च चित्तं
सदा ममाज्ञापरिपालनं च।
पतिव्रता धर्मपरायणा त्वं
कुर्याः सदा सर्वमिमं प्रयत्नम्॥

'अपना हृदय मेरे काममें लगाओ, अपना चित्त मेरे चित्तके अनुरूप करो, तुम मेरे मनमें अपना मन मिलाकर मेरे वचनका पालन करो। प्रजापति तुम्हें मुझे प्रसन्न करनेमें प्रवृत्त करें। तुम पतिव्रता, धर्मपरायणा, सदा मद्‌गतचित्ता, मेरी आज्ञाकारिणी और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कार्य करनेमें तत्पर रहो।'

विवाहके समय वर-वधूद्वारा लिया गया एकपत्नीव्रत और पातिव्रत्यसंकल्प ही सनातन संस्कृतिका उच्चतम वैवाहिक आदर्श है। इन संकल्पोंको नित्य दैनिक चरित्रके द्वारा चरितार्थ करनेवाले स्त्री-पुरुष शिव-पार्वती, सीताराम, सावित्री-सत्यवान्, अत्रि-अनसूया आदिके समान प्रातःस्मरणीय हैं। सृष्टिका आदिमहाकाव्य 'वाल्मीकिरामायण' सनातन संस्कृतिके घर-घरमें पूजित है। रामकथा जन-जनमें वन्दित है। श्रीराम और श्रीसीताका चरित्र भारतीय समाजका महान् आदर्श है। सतीशिरोमणि जगज्जननी श्रीसीताजीका पातिव्रत्य सनातन संस्कृतिके नारी-समाजका आदर्श है।

श्रीसीताजीकी पातिव्रत्यमहिमा

भू-सुता जनकनन्दिनीका आविर्भाव तपोमय है। वे *भक्तिमयी, शक्तिमयी एवं प्रेममयी जगदम्बिका हैं। बाल्यावस्थामें* पूजागृहमें भगवान् शंकरका पिनाक वे सहज ही उठाकर एक स्थानसे दूसरे स्थानपर रख देती हैं। स्वयंवरमें धनुर्भंगके पश्चात् श्रीरामसे उनका विवाह शक्तिमयी जगदम्बिकाका शक्तिमान् ब्रह्मसे पुनीत मिलन एवं कल्याणकारी संगम है। उनका वैवाहिक जीवन त्यागमयी तपस्विनी पतिव्रताका जीवन है। यहींसे पातिव्रत्य महिमाकी पावनगाथाका शुभारम्भ होता है।

धर्माचरण-प्रसंग

पतिव्रताकी श्रेष्ठता उसके धर्माचरणसे प्रतिभासित होती है। श्रीसीताजीने अभी वैवाहिक सुखके कुछ दिवस ही व्यतीत किये थे कि श्रीरामवनगमनका समाचार सुननेको मिलता है—

समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥

भगवती जानकी सीधे आकर भगवान् श्रीरामके साथ कथोपकथन नहीं आरम्भ कर देती हैं, अपितु कुल एवं पतिव्रताकी सम्पूर्ण मर्यादाओंका पालन करती हुई अत्यन्त विनयशीलताके साथ माता कौसल्याके माध्यमसे एवं उनकी अनुमतिसे अपना पक्ष प्रस्तुत करती हैं। पतिव्रता जानकीने 'सप्तपदी' के समय संकल्प लिया है—'**दुःखे धीरा सुखे हृष्टा**' तथा '**आर्ते आर्ता भविष्यामि सुखदुःखविभागिनी**' *ऐसी पतिव्रता अपने पतिको अकेले वन कैसे जाने दे और* स्वयं राजसदनका राजसुख कैसे भोगे! पतिव्रता जानकी अपना पक्ष अत्यन्त विनम्रतासे प्रस्तुत करती हैं—

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥

किंतु प्रभु—

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं॥

क्योंकि—

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥

और प्रभु आप ही सोचकर देखिये—

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू॥

पतिव्रताके धर्माचरणका यह उच्चतम आदर्श है। *पतिव्रता जानकी वनवासी श्रीरामके साथ तपस्विनी वन* जाती हैं।

पतिव्रता नारीको पुरुष मनोविज्ञानका गहनतम ज्ञान होता है। वह बिना कहे ही पतिके मनकी बात जान लेती है। केवट अपनी नावसे श्रीराम, श्रीसीता तथा श्रीलक्ष्मणको गङ्गा पार कराता है—

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता॥

केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥

पतिव्रता जानकी बिना बताये श्रीरामके हृदयकी बात जानकर प्रसन्नमनसे मणिजटित अँगूठी उतार कर दे देती हैं। जो पतिप्रेमके आभूषणोंसे आभूषित हैं, उन्हें अन्य आभूषणोंकी क्या आवश्यकता? वे तो सहधर्मिणी हैं और अर्धाङ्गिनी हैं—'**अर्धं भार्या मनुष्यस्य।**' साथ ही सप्तपदीका संकल्प है—'**यज्ञे होमे च दानादौ भविष्यामि त्वया सह।**'

पातिव्रत्य-महिमा-सत्संग

पातिव्रत्य-महिमाका गुणगान ही पतिव्रताओंके मध्य सत्संगका मुख्य विषय हुआ करता है। वनवासकी अवधिमें श्रीराम चित्रकूटमें महर्षि अत्रिके आश्रमपर पधारते हैं। औपचारिकताके बाद महर्षि अत्रि कहते हैं—मेरी सहधर्मिणी अनसूया तुम दोनोंके लिये माताके समान पूजनीया हैं। जनकनन्दिनी इनके पास जायँ, सत्संग करें।

पतिव्रता जानकी प्रणाम निवेदित कर वनागमनका कारण बताती हैं। सुनकर प्रातःस्मरणीया पतिव्रता अनसूया प्रमुदितभावसे कहती हैं—

नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः॥
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः॥

(वा०रा० २।११७।२३-२४)

स्वामी नगरमें रहें या वनमें, भले हों या बुरे, जिन स्त्रियोंके वे प्रिय होते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयशाली लोकोंकी प्राप्ति होती है। पति बुरे स्वभावका, मनमाना बर्ताव करनेवाला अथवा धनहीन ही क्यों न हो, वह उत्तम स्वभाववाली नारियोंके लिये श्रेष्ठ देवताके समान होता है।

भक्तप्रवर संत तुलसीदासजीने पातिव्रत्यमहिमा-प्रसंग और सीता-अनसूया-प्रसंगको अत्यन्त हृदयग्राही एवं मर्मस्पर्शी बना दिया है—

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥

(रा०च०मा० ३।५।११—१९, सो० ५क)

ऋषिपत्नीके सत्संगमें जनकनन्दिनीको मातृसीख और मातृसुखका सुलाभ मिला। सत्संग पाकर दोनों पतिव्रताओंका मुखमण्डल सूर्य-चन्द्रप्रभाके समान विभासित हो उठा।

पातिव्रत्यकी अग्निपरीक्षा

पातिव्रत्यकी अग्निपरीक्षाकी घड़ी तब आती है, जब पत्नी अपने पतिकी आज्ञासे जगत्-कल्याणके लिये अपने प्राणतक निछावर कर देती है। जनकनन्दिनीके जीवनमें भी ऐसी दो घड़ी आती हैं। लङ्काविजयके पश्चात् श्रीराम-सेवक हनुमान् अशोकवाटिकासे माता जानकीको लेकर आते हैं। श्रीराम वानर-भालुओं लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण आदिकी उपस्थितिमें अपनी पत्नी जानकीसे सतीत्व प्रमाणित करनेहेतु अग्निपरीक्षा देनेका आदेश देते हैं। जगज्जननी जानकी बिना विचलित हुए कहती हैं—

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥

(वा०रा० ६।११६।२५)

'यदि मेरा हृदय कभी एक क्षणके लिये भी श्रीरघुनाथजीसे दूर न हुआ हो तो सम्पूर्ण जगत्‌के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें।'

स्वयं अग्निदेवने प्रकट होकर सतीशिरोमणि सीताका सतीत्व प्रमाणित कर दिया।

तपस्विनी जानकीका आविर्भाव ही पतिव्रतकी श्रेष्ठता एवं पवित्रता प्रतिभासित करनेके लिये हुआ था। जनकनन्दिनीको राजसदनका सुख मात्र कुछ समयके लिये ही प्राप्त हुआ। राजा रामके रामराज्यमें प्रजाका निर्णय सर्वोपरि है। एक साधारण धोबीके कथनका सम्मान करते हुए राजा रामने अपनी पत्नी महारानी सीताको राज्य-निर्वासनका दण्ड

दे दिया। महारानी सीता पतिकी आज्ञाको परमेश्वरका आदेश मानकर पुनः तपस्विनी हो गयीं। लोकधर्मका निर्वहण कर उन्होंने पातिव्रत्य-धर्म-ध्वजाको युग-युगान्तरके लिये समादृत कर दिया।

गर्भवती जनकनन्दिनी जानकीजी वनमें भटकती-भटकती महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर जा पहुँचीं। वहाँ उन्होंने दो अत्यन्त तेजस्वी शिशुओंको जन्म दिया—लव और कुश। महर्षि वाल्मीकिके दिशा-निर्देशमें शस्त्र और शास्त्रमें पारंगत उन बालकोंने अयोध्याके जनमानसका मन मोह लिया। प्रजापरिषद्ने महारानी सीताको आमन्त्रित करनेका निश्चय किया। महर्षि वाल्मीकिके साथ महारानी सीताका आगमन हुआ। राजा रामने पुनः अपनी पत्नीसे शुद्धता प्रमाणित करनेको कहा। महर्षि वाल्मीकिने भरी राज्यसभामें घोषणा की—

बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।
नोपाश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली॥

(वा०रा० ७ । ९६ । २०)

'मैंने सहस्रों वर्षोंतक तपश्चर्या की है। यदि सीता अपवित्र आचरणवाली हो तो मुझे उस तपस्याका फल न मिले।'

महारानी सीताने अपनी भू-मातासे प्रार्थना की —'यदि मैंने मन, वचन और क्रियाद्वारा कभी स्वप्नमें भी राघवके सिवा और किसीका चिन्तन न किया हो तो पृथ्वीमाता मुझे अपने अंकमें स्थान दें।'

और अन्तमें पृथ्वी फट गयीं। दिव्य सिंहासनके र पृथ्वीमाता प्रकट हुईं। भू-सुता भूमिगत हो गयीं। दे पुष्पवर्षण किये। अयोध्याकी प्रजा अवसन्न रह ग भगवती सीताने पातिव्रत्यका जो आदर्श रखा, वह आज अनुकरणीय, अनुसरणीय है। वही आज भी सना संस्कृतिके नारीसमाजका मार्गदर्शक चरित्र है। यही व्यासव है, यही शास्त्रवचन है—

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता॥

जब महोत्सवोंके माध्यमसे राष्ट्रिय जागरण किया गया

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

उत्सवों-महोत्सवोंका राष्ट्र-जागरण, सामाजिक समरसता तथा भारतकी स्वाधीनतामें भी उल्लेखनीय योगदान रहा है। यहाँ कुछ ऐसे ही महोत्सवोंका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है—

(१) गणपति-उत्सव

गणपति-उत्सव अनन्तचतुर्दशीके अवसरपर विशेष-रूपसे महाराष्ट्रमें बड़े समारोहसे मनाया जाता है। भगवान् श्रीगणेशजी महाराजकी भव्य प्रतिमाओंकी सवारी जगह-जगह निकाली जाती है। लाखों श्रद्धालुजन *'गणपति बप्पा मोरया पुढच्या वर्षी लवकरया'* अर्थात् हे गणेशबाब आप अगले वर्ष फिरसे आइये—इस उद्घोषके यी श्रीगणेशजीकी मूर्तियाँ नदियोंमें विसर्जित की जाती हैं।

महान् राष्ट्रभक्त तथा सनातनधर्मके निष्ठावान् उपास लोकमान्य बालगंगाधर तिलक महाराजने गणपति-महोत्सव राष्ट्रिय जागरण तथा हिन्दू-संगठनका माध्यम बनाने प्रयास किया।

अंग्रेजोंका शासन कट्टरपंथी मुसलमानोंको संरक्ष और प्रोत्साहन देकर उन्हें दंगोंके लिये प्रेरित करता रह

था। सन् १८९३ ई०में मुहर्रमके जुलूसकी आड़में प्रभासपट्ट-तीर्थमें हिन्दू-मन्दिरोंपर आक्रमण करके देवमूर्तियाँ भंग की गयीं। साधुओं एवं पुजारियोंको आगमें जला डालनेके लिये प्रयास किये गये। उसी वर्ष बम्बईमें हनुमान्-मन्दिरपर मज़हबी उन्मादियोंकी भीड़ने आक्रमण कर दंगा भड़काया। कई दिनोंतक बम्बईका बड़ा भाग दंगेकी चपेटमें अशान्त रहा। उस समय लोकमान्य तिलक महाराजने 'केसरी' नामक पत्रके सम्पादकीय लेखमें स्पष्ट लिखा था कि 'हिन्दू मुसलमानोंके आक्रमणसे तभी बच पायेंगे जब वे शक्तिसम्पन्न बन जायँगे।'

सन् १८९३ ई० में लोकमान्य तिलक महाराजने पूनामें गणपति-महोत्सवको व्यापक रूप दिया। अगले वर्ष सन् १८९४ ई० का गणपति-महोत्सव तो महाराष्ट्रके अनेक नगरोंमें अत्यन्त उत्साहके साथ विराट् रूपमें मनाया गया। गणपतिकी भव्य शोभा-यात्रामें अनेक भजन-मण्डलियाँ भजन-कीर्तन कर जहाँ वातावरणको धार्मिक बना देती थीं। वहीं मल्ल (पहलवान) शारीरिक प्रदर्शन करते हुए चलते थे। पटाबाजी-तलवारबाजीके प्रदर्शनसे युवकोंमें वीरताका संचार होता था। पुणेमें आयोजित इस गणपति-उत्सव-शोभायात्रामें लाखों व्यक्ति शामिल हुए थे। उसका नेतृत्व लोकमान्य तिलक महाराजने किया था।

सामाजिक समरसताका उदाहरण

लोकमान्य तिलकजीने गणपति (गणेशजी)-के महत्त्वपर प्रवचन किया तथा आह्वान किया कि समस्त हिन्दू-समाज सामाजिक समरसताके रंगमें रँगकर राष्ट्रिय चेतनाका संकल्प ले। आपसी भेद-भाव भुलाकर अपने राष्ट्र, धर्म तथा संस्कृतिकी रक्षाके लिये व्रतधारी बने।

तिलकजी इस गणपति-उत्सवकी शोभायात्राका नेतृत्व करते हुए आगे-आगे चल रहे थे। अकस्मात् उन्हें एक मकानकी खिड़कीसे एक बालकके रोनेकी आवाज सुनायी दी। वे पासमें रुके तथा बोले—'बालक क्यों रो रहा है?' बालककी माँने कहा—इस बालकने गणपतिकी एक प्रतिमा खरीदी है। यह चाहता है कि इसकी प्रतिमा भी नदीमें विसर्जन की जानेवाली प्रतिमाओंमें शामिल की जाय। मैंने इसे यह कहकर डाँट दिया कि हम अस्पृश्य हैं, अतः हमारी प्रतिमा उनमें शामिल नहीं हो सकती। इसलिये यह रो रहा है।'

ये शब्द सुनते ही तिलक महाराजकी आँखोंमें आँसू आ गये। वे मकानके अंदर गये। बालक तथा प्रतिमाको गोदमें उठाया तथा दोनोंको जुलूसमें शामिल कर लिया।

गणपति-महोत्सवको अत्यन्त व्यापक होते देखकर अंग्रेजी शासनके अधिकारी तिलमिला उठे। उनके संकेतपर कुछ धर्मविरोधी भारतीयोंने भी गणपति-उत्सवको व्यापक रूप देनेके प्रयासको मुसलिम-विरोधी बताकर विरोध शुरू किया।

लन्दनके 'टाइम्स' पत्रने सर वेलन्टाइन चिरोल नामक अपने पत्रकार प्रतिनिधिकी एक रिपोर्ट प्रकाशित की। उसमें उसने लिखा—'बालगंगाधर तिलकने अपने राजनीतिक आन्दोलनके साथ धार्मिक जनताकी सहानुभूति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे भारतके परमप्रिय देव गणपतिको माध्यम बनाकर गणपति-महोत्सवको व्यापक स्वरूप दिलाया है। उन्होंने गणेश-मण्डलियाँ स्थापित कराकर जुलूसमें पहलवानोंका प्रदर्शन कराकर अपना प्रभाव-क्षेत्र प्रदर्शित किया है।'

अंग्रेजोंकी सरकारने 'गणपति-महोत्सव' की व्यापकतासे चिढ़कर तिलक महाराजको 'अशान्तिका जन्मदाता' तक कह डाला था। किंतु अंग्रेजोंके विरोधी प्रचारका उलटा ही प्रभाव पड़ा जिससे गणेशोत्सव और भी तेजस्विताके साथ राष्ट्रिय जागरणका माध्यम बनता गया।

(२)

शिवाजी-महोत्सव

गणेशोत्सवकी सफलताके बाद लोकमान्य तिलकने शिवाजी महाराजके ऐतिहासिक दुर्ग—रायगढ़को जन-जागृतिका केन्द्र बनानेका बीड़ा उठाया।

हिन्दूधर्मव्रती छत्रपति शिवाजी महाराजको विश्वासघाती सिद्ध करनेके लिये मुसलिम एवं अंग्रेज इतिहासकारोंने अफ़ज़ल खाँकी हत्याकी घटनाको तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया था। श्रीमहादेव गोविन्द रानाडे तथा आर०पी० करकेरिया आदिने तथ्य प्रस्तुत कर यह सिद्ध किया कि अफ़ज़ल खाँने बीजापुरसे चलनेसे पूर्व यह घोषणा की थी कि वह आज उस पहाड़ी चूहे (शिवाजी)-को जिंदा या मुर्दा पकड़कर लौटेगा। शिवाजीके सिरपर उसने तलवारसे वार करना चाहा, किंतु वे स्वयं सचेत थे तथा पगड़ीके नीचे

लोहेका आवरण बाँधकर गये थे। इसलिये बच गये तथा उन्होंने उलटे उसे ही यमलोक पहुँचा दिया।

केसरी तथा अन्य पत्रोंमें इतिहासके इस तथ्यकी चर्चा होते ही महाराष्ट्रके राष्ट्रभक्तोंका ध्यान रायगढ़ दुर्गके जीर्णोद्धारकी ओर गया।

लोकमान्य तिलकके साथ-साथ महामना पं० मदनमोहन मालवीयजी तथा बंगालके राष्ट्रभक्त नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जीने भी शिवाजी-स्मारकके रूपमें रायगढ़ दुर्गको भव्य रूप देनेका आह्वान कर डाला। सन् १८९६ ई० में रायगढ़में शिवाजी-महोत्सव मनानेकी घोषणा की गयी।

अंग्रेजोंने शिवाजी-महोत्सवको राजद्रोह बताकर विरोध करना शुरू कर दिया। कुछ भ्रान्त लोगोंने उसे हिन्दू-मुसलिम एकतामें बाधक बताकर विरोध किया।

रायगढ़में शिवाजी-महोत्सवकी तैयारियाँ पूरे जोर-शोरसे होने लगीं। अन्ततः 'शिवाजी-महोत्सव' में भीड़ उमड़ पड़ी। लोकमान्य तिलक तथा अन्य राष्ट्रवादी नेताओंकी उपस्थितिमें भजन-कीर्तन एवं अन्य समारोह धूमधामसे सम्पन्न हुए। चार दिनोंतक लाखों व्यक्तियोंको राष्ट्रियताकी प्रेरणा दी गयी।

जस्टिस, टाइम्स ऑफ इण्डिया आदि एंग्लो-इण्डियन पत्रोंने शिवाजी-महोत्सवको राजद्रोह भड़कानेका हथियार बताते हुए लोकमान्य तिलक आदिके विरुद्ध विष-वमन शुरू कर दिया।

२२ जून, सन् १८९७ ई० को पूनामें महारानी विक्टोरियाके राजतिलक-समारोहसे लौटते समय मि० रैण्ड तथा लेफ्टिनेन्ट आयर्स्टकी चाफेकर बन्धुओंने हत्या कर दी। अन्तमें इन हत्याओंका दोषारोपण लोकमान्य तिलकद्वारा लिखे लेखों तथा गणेशोत्सव, शिवाजी-उत्सव आदिपर मढ़कर तिलकजीको गिरफ्तारतक किया गया। उनपर चलाये गये अभियोगमें भी यही आरोप लगाये गये।

इस प्रकार इन दोनों महोत्सवोंने अंग्रेजी साम्राज्यकी नींद हराम कर दी थी। विनायक दामोदर सावरकरजीने भी गणेशोत्सव तथा शिवाजी-महोत्सवसे प्रेरणा लेकर मात्र १४ वर्षकी आयुमें अपनी कुलदेवी दुर्गाकी प्रतिमाके समक्ष अपना जीवन स्वातन्त्र्य-लक्ष्मीकी आराधनाके लिये समर्पित करनेका व्रत लिया था।

सावरकरजीने 'मित्र-मेला' के तत्त्वावधानमें गणेशोत्सव, शिवाजी-महोत्सव आदि मनाकर अनेक युवकोंको क्रान्ति-पथका पथिक बनानेमें सफलता प्राप्त की थी।

(३)
बंगालका दुर्गापूजा-महोत्सव

महाराष्ट्रमें गणेश-महोत्सव तथा शिवाजी-महोत्सव जहाँ राष्ट्रिय जागरणके माध्यम बने, वहीं बंगालमें दुर्गापूजा-महोत्सवको माध्यम बनाकर राष्ट्रियताकी अलख जगायी गयी।

बंगाल प्रारम्भसे शक्ति-साधक रहा है। वहाँ दु[illegible] काली, उमा आदि कितने ही रूपोंमें आद्याशक्ति[illegible] साधना होती रही है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस [illegible] विवेकानन्द-जैसे भक्त, तेजस्वी राष्ट्र-संतोंकी प्रेरणा-स्र[illegible] माँ काली ही रही हैं। वहीं महर्षि अरविन्द, रवीन्द्रन[illegible] ठाकुर प्रभृति मनीषियोंने भी कालीकी आराधना कर उ[illegible] राष्ट्रिय जागरणका प्रेरक बताया। वे ही महिषासुरमर्दि[illegible] मुण्डमालधारिणी काली, दुर्गा या शक्ति भारतमाताके रूप[illegible] प्रतिष्ठित होकर असंख्यों क्रान्तिकारी राष्ट्रभक्तोंकी प्रेरणा[illegible] अजस्त्र स्रोत बनीं।

सन् १९०६-०७ ई० में बंगाल कालीमाताको प्रेर[illegible] मानकर विदेशी, विधर्मी अंग्रेजोंसे जूझनेको तत्पर हो उ[illegible] था। 'युगान्तर' पत्रने लिखा था—'कालीके उपासक[illegible] तुम्हारे धर्म, संस्कृति तथा राष्ट्रका अस्तित्व खतरेमें है[illegible] अहिंसा एवं शान्तिकी मृगमरीचिकामें न फँसकर इस व[illegible] शत्रुओंके अरिमुण्डोंसे माताका अभिषेक करनेव[illegible] संकल्प लो।'

उन्हीं दिनों कालीके कलकत्तामें **'व्रती-समिति'** त[illegible] **'वन्दे मातरम् सम्प्रदाय'** का गठन कर राष्ट्रिय चेतनाक[illegible] दुन्दुभि बजानी शुरू की गयी।

खुदीराम बोस आदि अल्पायु क्रान्तिकारी किशोरों[illegible] गीतासे प्रेरणा और माँ कालीसे शक्ति प्राप्त करके ही राष्ट्रक[illegible] आराधनाके लिये हँसते-हँसते फाँसीका फन्दा चूमा था[illegible] खुदीराम बोसने फाँसीपर चढ़नेसे पूर्व माँ कालीका प्रसाद ग्रहण करनेकी इच्छा व्यक्त की थी।

दुर्गा-महोत्सवके साथ-साथ हिन्दू-मेला भी बंगालमें राष्ट्रिय जागरणके पुनीत कार्यमें सहभागी बना था।

सन् १८५७ ई० के सैनिक विद्रोहके बाद नील-विद्रोह आदिकी भावनाको मूर्तरूप देनेके लिये सन् १८६[illegible]

ई० में बंगालमें हिन्दू-मेलाकी स्थापना की गयी। सत्येन्द्रनाथ ठाकुरद्वारा रचित—

मिले सब भारत सन्तान भारत भूमिर तुल्य
एक तान मन प्राण। आछे कोन स्थान?
गाओ भारतेर यशोगान। कोन अद्रि हिमाद्रि समान?

—जैसे गीतोंके माध्यमसे 'हिन्दू-मेला' में राष्ट्रभक्ति तथा समाज-संगठनका संचार किया जाता था। हिन्दू-मेलाके तत्त्वावधानमें संगीत, नाटकों, कविताओं तथा साहित्यके माध्यमसे राष्ट्रिय तथा जातीय जागरणके स्वर गुँजाये जाते थे। 'वन्दे मातरम्' की रचना भी बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायने इसी वातावरणसे प्रभावित होकर की थी।

२८ सितम्बर, सन् १९०५ ई० को दुर्गापूजा-महोत्सवके पावन पर्वपर कालीघाट (कलकत्ता)-के कालीमन्दिरमें ५० हजार राष्ट्रभक्त बंगालियोंने बंग-भंगके विरोधमें संकल्प लिया था। मन्दिरके पुजारियोंने संस्कृत-भाषामें उन्हें संकल्प-व्रत दिलाया था। कालीमाताकी मूर्तिके समक्ष विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारका भी व्रत लिया गया।

'राखी-बन्धन' बना विदेशी बहिष्कारका माध्यम

रवीन्द्रनाथ ठाकुरके आह्वानपर बंग-भंगके विरोधमें २६ अक्टूबर, सन् १९०५ ई० को बंगालमें **'राखी-बन्धन'** महोत्सव मनाया गया। राष्ट्रभक्तोंकी टोलियाँ **'वन्दे मातरम्'** का गान एवं भगवन्नाम-संकीर्तन करते हुए भागीरथी-स्नानके लिये उमड़ पड़ी थीं। स्नानके बाद केसरिया रंगके धागोंकी राखियाँ बाँधकर विदेशी-विधर्मी अंग्रेजोंकी सत्ताको उखाड़ फेंकनेका संकल्प लिया गया। 'राखी-बन्धन' महोत्सवने पूरे बंगालमें विदेशी वस्तुओंके बहिष्कारकी ऐसी बयार चलायी कि जगह-जगह स्वदेशीका मन्त्र मूर्तरूप लेता दिखायी देने लगा। 'राखी-बन्धन' महोत्सवके माध्यमसे चतुःसूत्री बहिष्कार-योजना बनायी गयी—(१) विदेशी-वस्त्र, नमक, चीनी आदिका बहिष्कार, (२) अंग्रेजी-भाषा और शिक्षाका बहिष्कार, (३) सरकारद्वारा प्रदत्त सम्मान एवं उपाधियोंका बहिष्कार तथा (४) उपर्युक्त सभी नियमोंका उल्लंघन करनेवालोंका बहिष्कार।

'राखी-बन्धन'-महोत्सवपर लिये गये व्रतने ऐसा अनूठा प्रभाव दिखाया कि विदेशी वस्त्रोंकी जगह-जगह होलियाँ जलायी जाने लगीं। साथ ही चर्मकार बन्धुओंने अंग्रेजी जूतोंकी मरम्मत करनेसे इनकार कर दिया। रसोइयोंने मांस आदि अभक्ष्य वस्तुएँ बनानेसे इनकार कर दिया। वीरभूम (बंगाल)-के पण्डितों, पुरोहितोंने उन धार्मिक-कृत्योंमें शामिल होनेसे इनकार कर दिया जिनमें विदेशी चीनी तथा नमकका प्रयोग होता हो। और-तो-और कालीघाट (कलकत्ता)-के धोबियोंतकने विदेशी-वस्त्र धोनेसे इनकार कर उत्कट राष्ट्रभक्ति एवं स्वदेशी भावनाका उदाहरण प्रस्तुत किया।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके संस्थापक डॉ० केशव बलिराम हेडगेवारने सन् १९१९ ई० में नागपुरमें **'राष्ट्रिय-उत्सव-मण्डल'** की स्थापना की। उसने हिन्दू उत्सवोंके माध्यमसे हिन्दू समाजमें चेतना उत्पन्न की। नागपुरमें जब अंग्रेज सरकारने हिन्दुओंके एक जुलूसपर प्रतिबन्ध लगाया तो राष्ट्रिय-उत्सव-मण्डलके तत्त्वावधानमें सत्याग्रह कर डॉ० हेडगेवारजीने गिरफ्तारी दी।

इस प्रकार हमारे धार्मिक उत्सवों, महोत्सवों तथा व्रत-पर्वोंका राष्ट्रिय और सामाजिक स्वाभिमानके जागरणमें प्रमुख योगदान रहा है।

व्रत-उत्सव-पर्व और मेले क्यों ?

(डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता)

भारतमें उत्सवों और पर्वोंकी भरमार है, यहाँ मेले भी बहुत होते हैं। सम्पूर्ण विश्वपर दृष्टिपात करें तो सर्वत्र ही उत्सवोंके दर्शन होंगे। इतिहासमें झाँकें तो अनेक उत्सव और मेलोंकी चर्चा मिलेगी, ये अब नहीं होते। प्रश्न यह है कि ये होते क्यों हैं ?

आइये, बहुत पीछे चलें, उस युगमें जब मानव पशुवत् जंगलों और गुफाओंमें रहता था। क्या उन दिनों उत्सव होते थे? छोड़िये, आदमीको क्या पशुजगत्में भी उत्सव होते हैं? पशुजगत्में ऋतुओंका बड़ा महत्त्व है। वर्षामें मोर नाचने लगते हैं, वसन्त-ऋतुमें कोयल कूकने लगती है। इस समूची मैथुनी सृष्टिमें ऋतुकाल आनेपर उत्सव होता है, भले उसका कोई नाम न हो। आदिम युगका मानव भी पर्याप्त आहार पा जानेपर, शत्रुपर विजय पानेपर प्रसन्न होकर उत्सव मनाता था, नाचता था, गाता था और ढोल-नगाड़े (या उस युगके वाद्य) बजाता था। बहुत विस्तारमें न जायँ तो इतना तो सत्य है कि उत्सवप्रियता प्राणिमात्रके जीवनसे जुड़ी है, उसका रूप भिन्न हो सकता है। आदिवासी और गाँवका आदमी गाता, बजाता, नाचता है और कालान्तरमें उसने इन कलाओंका परिष्कार किया तथा उन्हें रोचक रूप दिया। यदि हम आदिम मनमें झाँकें तो अदृश्य अव्यक्तका भय झाँकता मिलेगा तो उसे तुष्ट करने, रिझाने और प्रसन्न करनेके लिये भी वह व्रत-उत्सव करता है। आदिवासी और वनवासी आज भी हैं, केवल भारतमें नहीं वरन् सभी महाद्वीपोंमें हैं और सभी अपने ढंगसे उत्सव मनाते हैं।

व्रत-उत्सवकी मनोवैज्ञानिक पीठिका समझनेके लिये हमें नृवंशशास्त्र, प्राणिशास्त्र (और इसमें वृक्षविज्ञान भी), समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, आयुर्विज्ञान, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, ऋतुविज्ञान, धर्म और अध्यात्म—इन सभीका सूक्ष्म अध्ययन करना होगा। अन्यत्र आपको धर्म और आध्यात्मिक महत्त्वकी बात पढ़नेको मिलेगी। भारतमें व्रत-उत्सव गहनरूपसे ऋतुसे जुड़े हैं और क्यों न हों, यह कृषिप्रधान देश है। यहाँ फसल बोने और काटनेके बाद थोड़ा अवकाश मिलता है जो उत्सवके रूपमें मनाया जाता है। नवरात्र, दशहरा, दीपावली, होली आदिको ऐसे ऋतु-उत्सवके रूपमें देखा जा सकता है। प्राचीन मिस्र देशमें जहाँ कृषि नील नदीकी बाढ़पर निर्भर थी (पानी तो बरसता ही नहीं), जब बाढ़ आ जाती तो नदी काली मिट्टी लाकर खेतोंको नवजीवन देनेका काम करती और लोगोंको छुट्टी रहती। इस देशमें इन दिनों खूब उत्सव होते थे।

ऋतुका खेल यूरोपके देशोंमें अच्छा दिखता है। शीतकालमें सूर्यका प्रकाश अल्प मिलता, वर्षा और हिमसे मार्ग बंद हो जाते, ऐसेमें क्रिसमसका आयोजन होता। हरियालीको तरसते लोग घरके अंदर वृक्ष लगाते, उसे सजाते, उपहार बाँटते (जिसके द्वारा खुशी बाँटते), खाते-पीते, गाते, नाचते थे। बर्फसे ढके इंग्लैण्डमें क्रिसमसकी सार्थकता, बड़े दिनके स्वागतकी बात स्पष्ट समझमें आती है, पर आप देखेंगे वहाँ उत्सव कम हैं। क्रिसमस और ईस्टर ही मुख्य त्योहार है। मुसलिम देशोंमें मौसम कम बदलता है—वर्षा होती नहीं, दिनमें गर्मी, रातमें सर्दी। नगर-गाँवके बाहर रेगिस्तान। वहाँ 'रोजा' एक ऐसा व्रत है जो अत्यन्त आवश्यक है, आदमीका प्रशिक्षण है जल-आहार बिना भी काफी दिन जीते रहनेका। रातका आकाश हमेशा खुला रहता है अत: ईदका चाँद देखनेके लिये बहुत मेहनत नहीं करनी पड़ती। इस सम्प्रदायमें भी बहुत थोड़े त्योहार होते हैं। हाँ, प्राचीन युगमें झाँकें, इसलामके उदयसे पूर्वके जमानेमें देखें तो अनेक उत्सव होते थे—सुमेर, बाबुल, (बेबीलोनिया), असुर आदि सभ्यताओंमें उत्सवोंका अध्ययन रोचक है। ईस्टरके समय यहूदी उत्सव भी धर्म और समाजसे, इतिहाससे जुड़े थे।

एक बात जो देखनेकी है कि इनमेंसे किसी भी देशमें भारतकी तरह छः ऋतुएँ नहीं होतीं। यहाँकी तरह प्रकृति नित नये शृङ्गार नहीं करतीं। यहाँ रंगोंकी बहार है। इस गङ्गा-यमुना, कृष्णा और कावेरीके देशमें उत्सवोंमें आनन्दकी भावना भरी होती है जो अन्यत्र कम मिलती है। आप देखें मुहर्रम दुःखद यादका त्योहार है, ईस्टरमें ईसामसीहकी शहादत हुई—दुःखद शुक्रवार था, उस दुःखको हलका करनेके लिये 'गुडफ्राइडे' बनाया। जैन-सम्प्रदायोंमें व्रतों—पर्वोंका महत्त्व अधिक है और वे कठोर व्रतका पालन कर आध्यात्मिक शक्ति बढ़ाना चाहते हैं। बौद्ध अपना महोत्सव

मनाते हैं; क्योंकि उस दिन भगवान्‌का जन्म हुआ था। जैन दीपावली मनाते हैं; क्योंकि उस दिन अन्तिम तीर्थंकर महावीरने प्रयाण किया था और इस आदेशके साथ कि एक दीप बुझ रहा है अस्तु, अन्धकारकी विजय न होने दो—हजार दीप जलाओ। दीप जलाते हैं, पर उनमें रामके अयोध्या लौटने-जैसी खुशी नहीं होती।

अध्यात्मके क्षेत्रमें चरम उपलब्धि प्राप्त करनेवाले देश भारतमें तो सर्वत्र आनन्द बिखरा पड़ा है। आकाशके हर रंगको—ग्रहण हो, संक्रान्ति हो या पूनो-अमावस यह देश व्रत-स्नान-पूजन और उत्सवके माध्यमसे मनाता है।

इन भारतीय उत्सवोंमें स्वास्थ्यकी पैनी दृष्टि भी दिखती है। फाल्गुनमें विषाणु प्रबल हो जाते हैं, अत: उनसे लड़ने, उनका प्रतिकार करनेके लिये अग्नि (होलिका) जलाना, रंग उड़ाना, रंगसे नहाना, रंग पोतना और नीमका सेवन आनन्द तो देते ही हैं साथ ही स्वास्थ्यरक्षा भी करते हैं। दीपावलीको ही देखें—वर्षाके बाद गंदगी और अपार संख्यामें कीट-पतंगे जीना दूभर कर देते हैं, बहुसंख्य दीप और घरकी सफाई, सजावट जीवनको आनन्दमय बनाते हैं। व्रत-उत्सवोंके खान-पानमें स्वास्थ्यकी पूरी दृष्टि दिखती है।

कहा भी गया है—*'जैसा देश, वैसा भेष।'* जहाँ प्रकृति अवसादभीनी है वहाँ उत्सव भी वैसे ही होंगे और वहाँके त्योहार मनानेके तरीके भी अवसादको कम करनेके लिये होंगे तथा जहाँ प्रकृति नटी बनकर नाचती है वहाँ तो आनन्द बिखरा ही रहता है। भारतीय व्रत-उत्सवोंमें स्नान, उपवास, आहारके नियम आदिका विशेष महत्त्व है; क्योंकि यह धर्मप्रिय देश है।

सिकन्दरने ठीक ही कहा था कि यह विचित्र देश है। अरे! और लोग तो जीवनका उत्सव मनाते हैं, यहाँ तो मृत्युको भी महोत्सव बना दिया गया है।

इस विशाल देशमें मेलोंका अपना अलग महत्त्व है। लाखों गाँवोंके गरीब देशमें आप हर गाँवमें 'मॉल' (आधुनिक बाजार) नहीं बना सकते। छोटे-छोटे गाँवोंमें इतनी बिक्रीकी सम्भावना नहीं होती कि शानदार दूकानें चल सकें। अत: होते हैं मेले, जहाँ गृहस्थीका सब सामान एक जगह मिल जाता है, खिलौनेसे लेकर हाथी भी खरीदे जा सकते हैं। पर आप कहीं मेला लगायें (जैसा आजकल प्रदर्शनी, मेलोंमें होती है) तो लोग क्यों आयेंगे? परन्तु ये मेले धर्मसे जुड़े हैं। स्थानविशेषपर स्नान, ध्यान, देवपूजन और देवीदर्शनसे जुड़े हैं। इन मेलोंको लोकसंगीत, लोकनाट्य और लीलासे सजाया गया है। हर मेलेको विशेषता दी गयी है। यह रथयात्रा है, इसमें आप नानखटाई खरीद सकते हैं। यह संक्रान्ति है, खिचड़ी खानेका मेला है। यह सतुआ संक्रान्ति है, आजके पर्वपर झंझर, छाता, पादत्राण आदि देना होता है। आज दूध-बतासा खानेका दिन है, आज गन्ना चूसिये और अब आजसे प्रभुको निवेदित कर आम चूसिये।

सच कहें तो इतने रंग, इतनी विविधताएँ, इतनी आनन्द-भक्तिकी भावनाएँ अन्यत्र कहीं नहीं मिलतीं और सहज ही कहना पड़ता है—**'धन्या तु भारतभूमि:।'**

सियाका मुँहदिखाई-महोत्सव

(प्रो० श्रीइन्द्रदेवप्रसाद सिंहजी)

भारतीय अनुष्ठानोंमें सबसे विशद और बृहद् अनुष्ठान विवाहका ही होता है। विवाह सबसे बड़ा सामाजिक उत्सव है; क्योंकि भारतीय संस्कृतिमें गृहस्थाश्रम ही सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। शेष तीनों आश्रम इसीके आश्रित, पोषित एवं रक्षित हैं। इसीलिये इस आश्रममें उछाहकी विपुलता है, साथ ही इसकी विधियोंमें जटिलता भी है। जहाँ विवाहोत्सवमें एक ओर कर्मकाण्डकी शास्त्रीय विधियाँ विहित हैं, वहीं दूसरी ओर उसका लोकाचार और कुलाचार-रसका परम गम्भीर समुद्र है। यहाँ एक बात ध्यातव्य है कि देशकालानुसार वैवाहिक विधियाँ भले ही अलग-अलग हैं, पर अनुष्ठानकी शास्त्रीय विधि प्राय: एक है।

यद्यपि सीताके विवाहकी मुख्य शर्त धनुष तोड़ना ही था, पर गुरुजनोंके आदेशसे शास्त्रीय रीति और कुलरीतिके अनुसार विधिवत् यह संस्कार सम्पन्न हुआ। *'टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥'* परंतु विश्वामित्रजीने कहा—

तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु॥

विवाहमें वैदिक विधियोंके साथ-साथ कुलाचार एवं लोकाचारका प्रयोग दिखता है। जिस प्रकार बारात देखनेको

उत्कण्ठा नारियोंमें निसर्गत: अति उत्कट होती है, उसी प्रकार विवाहका फलागम दुलहिन-दर्शनकी आत्यन्तिक अभिलाषा और भी तीव्रतम होती है। जिस प्रकार वर एवं बारातके द्वारपर आनेके बाद जनकपुरकी रानियाँ अन्य सुहागिनोंके संग मङ्गल साज-सजाकर परछन एवं सरस स्वागत करती हैं, उसी प्रकार दूने उत्साहसे वरके द्वारपर दुलहिनके आनेके बाद वरकी माताएँ एवं अन्य स्त्रियाँ परम माङ्गलिक आयोजनके साथ शुभ मुहूर्तमें दुलहिनोंका परछन कर उल्लाससहित बहुओंको अपने महलमें लाती हैं। कविवर तुलसीदासजीने जिस रागात्मकतासे सीता-रामके सहित अन्य भाइयोंके विवाहका मङ्गलमय वर्णन किया है, उससे कणमात्र भी न्यूनरूपमें दुलहिनोंके अवध-प्रवेशका वर्णन नहीं किया है। जैसे विवाहोत्सवमें जनकपुरमें सर्वत्र मङ्गलमयता दिखलायी पड़ती है, उसी प्रकार श्रीअवधधाममें आज सर्वत्र मङ्गलमयता दिखलायी पड़ रही है—

वीथि-वीथि में रस बहता है। कण-कण उसका यूँ कहता है॥
धन्य अयोध्या रजधानी को। उठ दुलहिन की अगवानी को॥
जय निनाद कर गगन प्रकारा। जय गुरुदेव वशिष्ठ तुम्हारा॥
जय दशरथ जय जय रघुराई। भरत शत्रुहन लक्ष्मण भाई॥
माताएँ आरती उतारें। उल्लासित हो तन मन वारें॥
मधुर सुधासम रस पीने को। लालायित नैना जीने को॥

इसी हर्षोल्लासकी मधुमयी वेलामें दुलहिनोंका परछन कर माताएँ नववधुओंको पालकीसे नीचे उतारती हैं। जहाँ एक ओर सुकोमल पग-पाँवड़े बिछाये जा रहे थे, वहीं दूसरी ओर नवागत वधुओंके सुषमादर्शनार्थ नयनोंके नयनाभिराम पलक-पाँवड़े भी बिछ रहे थे। परछनके समय मुखावलोकन न तो पूर्णतया सम्भव है और न ही उचित; क्योंकि मुँहदिखाईकी विधि वैवाहिक पूर्णताकी द्योतिका है। इस मङ्गलमय अवसरपर नववधुओंको नेगके रूपमें आभूषण और आशीर्वाद प्राप्त होते हैं।

श्रीरामविवाहके संदर्भमें एक विलक्षण मनोभाव चक्रवर्तीजी एवं उनकी तीनों महारानियोंके मनमें हमेशा हलचल मचाये रहता था कि हमारे चारों कुमारोंकी समतामें आनेवाली बहुएँ क्या जगत्‌में सम्भव हैं? यह मनोभाव रानियोंके लिये मनोवेदना बन चुकी थी। खासकर श्रीरामभद्रकी सौन्दर्य-सुषमाकी समता-समकक्षता असम्भव प्रतीत होती थी। यद्यपि यह भावना सर्वथा उचित है, परंतु विदेह-नगरीसे आनेवाली वैदेहीकी मधुर मञ्जुल सुषमाका इन माताओंको क्या पता कि वे—'*सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई॥*' हैं। श्रीराम सौन्दर्यके समुच्चय हैं, अनन्वय हैं। परंतु श्रीमैथिलीके समक्ष फिर भी कुछ हलके लगते हैं। हाँ, यह बात अलग है कि विदेहनन्दिनीको पाकर सर्वाङ्गसुन्दर श्रीराम और भी सुन्दर दिखायी दे रहे हैं।

स्नेहाधिक्यके चलते जनकपुरमें बारात अधिक दिनोंतक टिक गयी। अवधपुरवासियोंकी बेचैनी बढ़ने लगी। भगवत्प्रेरणासे इसी बीच सार्वत्रिक गतिशील देवर्षि नारदजी अवध आये। रानियोंने रनिवासमें बुलाकर उनका स्वागत किया और मनोव्यथा भी प्रकट की। देवर्षिने रानियोंकी मनोव्यथाका निराकरण किया। साथ ही दुलहिनोंके सौन्दर्यकी श्लाघनीय सराहना की और देवमण्डलके उच्चतम न्यायालयका निर्णय सीताके मुखावलोकनके पूर्व ही सुना दिया—

बानी विधि गौरी हर सेसहूँ गनेस कही सही भरी लोमस भुसुंडि बहु बारिखो।
चारिदसो भुवन निहारि नर-नारि सब नारदसो परदा न नारद सो पारिखो॥
तिन्ह कही जग में जगमगति जोरी एक दूजो को कहैया औ सुनैया चख चारिखो।
रमा रमारमन सुजान हनुमान कही सीय-सी-न तीय न पुरुष राम सारिखो॥

जहाँ देवर्षि नारदके संदेशसे रानियोंकी मनोवेदना शान्त हुई, वहीं दुलहिन-दर्शनकी उत्कट उत्कण्ठाने एक अन्य बेचैनी पैदा कर दी। आज शान्ताजी सुकुमारी सियाको लेकर आँगनमें आ बैठीं। इधर रानियोंके लिये—

मुख देखन का अवसर आया। चाहती थी घूँघट पलटाया।
ठहरो! अकस्मात् ध्वनि आई। यह रीति हमको नहीं भाई॥

अवरोधक आवाज चक्रवर्ती दशरथजीकी थी और उसमें संकेत निहित था—

कौसल्या बोलीं फिर कैसे। अवधेश्वर बोले पुनि ऐसे॥

महाराजश्रीने कहा—

त्रिपुरारी ने अपनी करुणा से ये दिन मुझे दिखाया है।
सारे जीवन में सर्वोत्तम ये अवसर मैंने पाया है॥
जो अलभ्य वस्तु देकर अपनी भावना दिखायेंगी।
वह सुकुमारी कुलवधुओं का मुख मधुर देखने पायेंगी॥

इतना कहकर चक्रवर्ती दशरथजी आँगनसे अलग गये और महारानियाँ सहमकर ठिठक गयीं—

यह विकट समस्या आ धमकी पड़ गई विचारों में रानी।
तीनों अकिंचना सी बनकर लज्जित थीं और पानी-पानी॥

इधर सिया सुकुमारी श्रीशान्ताजीके सहारे शुभ

सिंहासनपर घूँघट डाले प्रतीक्षामें हैं कि कब माताजीका आशीर्वाद मिले। अचानक क्रियास्वरूपा श्रीकैकेयीजीने मुँहदिखाईका प्रारम्भ किया—

कैकेयी ने पहिले मौन भंग की औ बोली जनक दुलारी से।
मैं अभी उऋण हो पाती हूँ लाडिली सिया सुकुमारी से॥
अवगुण्ठन उठाकर माताने मस्तक चूमा और प्यार किया।
सीते! ये मैंने कनक भवन आजसे तुम्हें उपहार दिया।

अब अम्बा सुमित्राकी बारी आयी। वे बेचैन हैं—विवश हैं, क्या दूँ इस अनिन्द्यसुन्दरीको नेग? कुछ ही क्षणमें स्फुरणा हुई—

अब मातु सुमित्रा ने अपनी अन्तरदृष्टि मनपर डाली।
इस रूप के क्या अनुरूप कहूँ सब दिखता है खाली-खाली॥
फिर अकस्मात् इक वस्तु की स्मृति कौंधी निज मस्तक में।
चिन्तातुर चेहरे पर आ गई चमक औ पुनः विचारा यूँ मन में॥
दिव्य चूड़ामणि दे रानी ने श्री सिया सुधामुख पान किया।
नैनों से अमृत पी-पीकर निज को कृत-कृत्य महान किया॥

श्रीअवधके परमरसिक संत श्रीवैजनाथजीने सुमित्राद्वारा सुतको भी निछावर करनेकी बात कही है—

सुन्दर गौर तड़ित न्योछावर सब सुठोर जस अंग चहोरी।
खुलत करोर चन्द्र आनन दुति छहरि छोनि सखि रची सी रही री॥
कनकालय कैकेयी सुमित्रा सुत सेवा-हित दीन सही री॥

यहाँ रसिक संतने श्रीमैथिलीकी आननदुतिके छोनीपर छहरनेकी बात भी कही है। अम्बा सुमित्राने अपनी प्रिय पुत्रवधू जनकदुलारीसे कहा—बेटी सीते! जिन बालकोंको मैंने जन्म दिया है, उन्हें मैंने श्रीराम और श्रीभरतके चरणोंमें पूर्व ही समर्पित कर दिया है। परंतु वे सेवक तो श्रीरामके थे लेकिन माँ उनकी मैं ही रही हूँ। हे जनक-तनये! आज मैं लाड़ले लक्ष्मणपरसे मातृत्वका अधिकार समाप्त करती हूँ। लक्ष्मण ऐसे सुयोग्य पुत्रको—बलिदानी पुत्रको हे पुत्रि! मैं आज तेरी गोदमें सौंप रही हूँ। (इसीलिये माता सुमित्राने वनगमन-प्रसङ्गमें कहा है—*'तात तुम्हारि मातु बैदेही'*) भक्तिस्वरूपा सरल-सरस सुमित्रा अम्बाके आशीर्वादसे सुकुमारी सीता कुछ अधिक गद्गद हुई और—

सीता छोटी माताजी के चरणों में सादर शीश झुकाती हैं।
मानो प्रीती की पुतली वो मिलते उनकी हो जाती हैं॥

अब पूज्य अम्बा कौसल्याके आशीर्वचनहेतु सीताजी मन-ही-मन मधुर कल्पना कर रही हैं कि जाने बड़ी माँ कौन-सा अनमोल उपहार देंगी। यहाँ यह बात ध्यातव्य है कि श्रीरामभद्रजूके सदृश दुलहिनकी असम्भवताकी सबसे बड़ी शिकार कौसल्याजी ही थीं, मगर आज उनके बोल बदले हुए हैं—

ऐसा मुख मैंने जन्म जन्म सुरसदनों में नहीं पाया है।
त्रिभुवन के सुन्दर मुख जितने सारे इस मुख की छाया है॥

सुनयनाललीका लालित्य तो बड़ी अम्बाने देख लिया, लेकिन दूँ तो क्या दूँ?

समकक्ष कोई वस्तु हो तो दे दूँ पर दूँ क्या कुछ है ही नहीं।
अथ-इति यहीं देखे दोनों अबतक न देखे गये कहीं॥

अन्तमें अम्बा कौसल्या अपने नामकी सार्थकताको सार्थक करते हुए विलक्षण बुद्धिमत्ताका परिचय देती हैं—

सीते मैं तुझको देती हूँ जिसको जोगी जन पा न सके।
विद्वानों की मति कुंठित है देवता समझ में ला न सके॥
श्रीरामलला का हाथ पकड़ ले सीते मुँह दिखलाई ले।
हाथों में हाथ थमा करके माँ बोली बेटी बधाई ले॥

श्रीजनकपुरके मण्डपमें श्रीरामने सीताका पाणिग्रहण भले ही किया हो मगर आज तो अवधके मणिमय आँगनमें अँगनाओंके आगे श्रीकौसल्याजीके करकमलोंसे कुशलतापूर्वक श्रीरामभद्रजूका पाणिग्रहण श्रीकिशोरीजूके कमनीय करोंमें हुआ। ऐसा लगता है कि माताजीने स्वहाथों श्रीरामको गिरवी रख दिया, लेकिन अत्यन्त दूरदर्शितापूर्वक। सचमुच ज्ञानका सर्वोच्च आसन भक्तिमहारानीका करकमल ही है। यहाँ ज्ञान सुरक्षित रहता है मगर सरस होकर। ज्ञानका शील शोभाश्रीको भक्तिके हाथों ही प्राप्त करता है। आज ज्ञानस्वरूप श्रीराम अनन्तानन्त सौन्दर्यसुधाके सागर बन गये। ऐसी स्थितिमें श्रीकिशोरीजूके करकमलके खिलौनेको मिथिलावासी अपनी निजी धरोहर मानें तो क्या हिचक! श्रीकौसल्या अम्बा अभी भावावेशपूरित हैं। ऐसी शोभाकर वधू पाकर उनका किंकर्तव्यविमूढ़ होना भी कुछ रसिक भावुकोंने कहा है। मधुरातिमधुर मुखवाली मैथिलीकी प्रशंसासे अधर नहीं अघाया तो वे सियासहित अम्बा सुनयनाके सौभाग्यकी सराहना करने लग गयीं—

कोटिन रती को रूप वारतीं तिनुका तोरि कोटि पूनो चन्द मुख [illegible] नहीं।
विकस्यो विभाति कोटि [illegible] भवन [illegible] नहीं॥
उमा रमा शारदादि सुन्दरि समेटि सब पटतर [illegible] उपमा भनै नहीं।

कोमल वधूको मुख हेरि हेरि कौसिला सों हौसिला के मारे कछु बोलत वनै नहीं॥

श्रीमैथिलीकी रूपसुधाका आसव आज कौसल्याको इतना अघा दिया है कि वे पुनः-पुनः पुनीता सीताकी तथा उनकी माताकी सराहना कर रही हैं—

कोटिन प्रयाग हू ते परम पुनीता कोखि जाये भो निवास ऐसे परम पुनीता को।
यज्ञराज कैसे के बखानि पार पैहैं कवि सुखद सुभाव गुण गौरव के गीता को॥
वेश में किशोरी अति मोरी राजहंसिनी सी परम प्रकासक निर्मल मति अधीता को।
कौसिला सराहैं मिथिलेस भामिनी को भाग राम हू तें सौ गुनो बिलोकि रूप सीता को॥

जनकपुरकी पुष्पवाटिकामें *'सुंदरता कहुँ सुंदर करई'* का प्रमाणपत्र श्रीरामने दिया था। आज अम्बा कौसल्या भी पूर्वाग्रह त्यागकर श्रीरामसे शताधिक गुणा सौन्दर्य सीतामें देखकर चिन्मय चिरन्तन प्रमाणपत्र दे रही हैं— *'राम हूते सौ गुनो विराजैं रूप सीता को।'* मधुरातिमधुर सीताकी त्रिभुवनमोहिनी परम अनूप छविको देखकर कौसल्या अम्बा आनन्दसिन्धुमें आपादमस्तक निमज्जित होने लगीं और अपने सर्वस्व—श्रीरघुनन्दनको अर्पित करनेपर भी उन्हें अल्प ही लग रहा था—*'दै रघुनन्दन रत्न सिया कर सासु सकोच तऊ मुख देख्यो।'* संकोचाभिभूत कौसल्याजी सुनयनातनया सियाको कण्ठश्री पुनः देना चाहती थीं लेकिन माधुरीमोहित चित्रवत् किंकर्तव्यविमूढ़की स्थिति! सियाके सौन्दर्य-सिन्धुमें मति पङ्गु हो गयी—

रानी कौसल्या धीरमती भुजराकर बस फूल गई।
मनिमाल पतोहू को अपने करसों पहनाना भूल गई॥
तब तुरत सुमित्रा रानी ने उनके कर में वह हार दिया।
कंठ श्री दुलही को देकर पुनि-पुनि मनोरथ सुफल किया॥

संतों, भक्तों एवं विद्वानोंमें एक श्लोक बहुप्रचलित और प्रतिष्ठित है—

ज्ञानशक्तिश्च कौसल्या सुमित्रोपासनात्मिका।
क्रियाशक्तिश्च कैकेयी वेदो दशरथो नृपः॥

अतः ज्ञानस्वरूपा कौसल्या अम्बाने अपना आन्तरिक और अन्तिम मन्तव्य इन शब्दोंमें प्रकट कर दिया—

मुख निरखि वधूकी जियब गुइयाँ।

महामनीषाके दिव्यावतार महर्षि वाल्मीकिने भी इस महामहोत्सवमें अपनी लेखनीका ललित प्रसाद प्रदान किया है। वे कहते हैं—

ननन्द स्वजनै राजा गृहे कामैः सुपूजितः।
कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च सुमध्यमा॥
वधूप्रतिग्रहे युक्ता याश्चान्या राजयोषितः।
ततः सीतां महाभागामूर्मिलां च यशस्विनीम्॥
कुशध्वजसुते चोभे जगृहुर्नृपयोषितः।
मङ्गलालापनैर्होमैः शोभिताः क्षौमवाससः॥

(वा०रा० १।७७।१०—१२)

इस प्रकार जब नव वधुओंका मुख श्रीकौसल्यादि माताओंने देखा तो सबकी आँखोंमें प्रेमाश्रु छलक आये। सभीकी सुन्दरता सभीके द्वारा सराही गयी। सभी बहुओंको सभी माताओंने अनेक प्रकारके नेगोपहार दिये, परंतु श्रीसीताजीको कुछ अधिक मिला। फिर भी रानियोंको आत्मतोष नहीं, असंतोष ही आन्दोलित कर रहा था कि अब और क्या दें कुसुम-कलिकाओंसे सुन्दर सुकान्त बहुओंको।

अन्तरङ्ग महलके अन्तर्गत मुँहदिखाई-महोत्सव अभी चल ही रहा था कि कनकभवनके बहिर्द्वारपर मङ्गलगान, नृत्य, संगीत आदिकी भव्य ध्वनिने सबका ध्यान आकर्षित किया। नित्य आनन्दधाम अयोध्यामें आनन्दाम्बुधि उमड़ उठा था। सीताकी सुन्दरताकी चर्चाने जन-जनके मनमें मोदोत्कण्ठा उत्पन्न कर दी थी। दर्शनकी लालसाने उमङ्गमें उल्लास पैदा कर दिया था। रसिक रसरङ्गमणिजीके शब्दोंमें सभी सुवासिनियाँ सस्वर बोल रही थीं—

चलु सीय आजु अवधमें आई।
चारो बहिनी गुनरूप शील छबि छाई॥
परिछि प्रेमयुत सासु मुदित मन मंजु महल में लाई॥

किंतु सखियाँ एक-दूसरेसे कहती हैं कि अब नववधुएँ शीघ्र ही मंजुमहलसे आँगनमें आनेवाली हैं। क्या तुझे मालूम नहीं कि विवाहोत्सवपर महलका द्वार सर्वसाधारणके लिये खोल दिया जाता है। साथ ही श्रीकिशोरीजूकी असीम अनुकम्पा भी जन-मनकी कल्पलताको फलीभूत करना चाहती थी। उदारहृदया महारानियोंने शान्ताजीको आदेश दिया कि नववधुओंको आँगनमें ले जाओ। कनकभवनके आँगनकी स्थिति कमनीय सखी स्वनामधन्या कलन्दरशाहजीकी दृष्टिमें दर्शनीय है—

कनकभवन के अहाते में भीर भारी है।
हजारों रानियों की आ रही सवारी है॥
गगन में लग गया देवांगनाओं का मेला है।
पुरी की नारियों का भी बड़ा झमेला है॥
सब गावैं सहाना अजब गुइयाँ।

मुँह दिखाई सिया की अजब गुइयाँ॥

रसिक परम्पराके परम रसिक संत श्रीजुगलविहारिनिजीके शब्दोंमें मुखावलोकन-महोत्सवकी झाँकीका एक नमूना—

मिथिला से अवध सिया आई गवन।
सासु सात सत पुर नभ वनिता लखि छबि सबहिं भई है मगन।
गौर गौरता गौर करत मन ठौर नहीं कहि पावै कवन।
जेहि लखि श्याम गौरता पाई अभिमतप्रद सब संत जनन॥

श्रीकलन्दरशाह कहते हैं—

इसी तरहसे सभी रानियोंने मुँह देखा।
निछावरोंकी करै कौन कवि वहाँ लेखा॥
अजिरमें भूषनोंका ढेर लग गई खुसतर।
सुमन से पाट दिया परियों ने मगन होकर॥
अनुरागिन सबन की सभी गुइयाँ। मुँह दिखाई सियाकी अजब गुइयाँ॥

इस प्रकार तीनों पटरानियोंके अतिरिक्त अन्यान्य रानियोंने वधूका मुखावलोकन किया और न्योछावर दिया। अनन्तर इसके कि आगे पुनः मुँहदिखाईका क्रम चले सीताजीकी ननद श्रीशान्ताजीने लोकाचारानुसार वधूके मुखपर राईलोन उतारा। ताकि नागरियोंके नजर-दोषसे वधू सुरक्षित हो जाय। इस प्रकार पुनः—

'रानियाँ हट गई तब औरों की बारी आई।
शान्ताजी ने निकट बैठ उतारी राई॥'
बारी-बारीसे दिखाने लगी श्रीमुख छविको।
ताव किसको है जो निज दृष्टिसे देखे रविको॥
सब बिसरे कहब सुनब गुइयाँ। मुँह दिखाई सिया की अजब गुइयाँ॥

इस मुँहदिखाई-महोत्सवने मोक्षदायिकापुरीमें सौन्दर्यामृत-पानहेतु लोगोंको, खासकर सुन्दरियोंको सकाम बना दिया है मोक्षाकाङ्क्षाको किनारे रखकर। वैसे मोक्ष शब्द है भी पुँल्लिङ्ग खातेका। अँगनाओंके अँगना-अँगनामें यही मन्त्र-सदृश पंक्ति मुखर है—*'अवसि देखिअहिं देखन जोगू॥'* इस नयनामृतसंतृप्ति-महामहोत्सव—मुँहदिखाई-महायज्ञमें जिन-जिन महाभाग्यवानोंने नयनसुख प्राप्त किया और अपनी विमल वाणीका अनमोल अर्घ्य प्रदान किया है, उन अमृतमयी अनुभूतियोंका नातिदीर्घ आस्वादन अवश्यमेव आकलनीय एवं दर्शनीय-पठनीय है। यथाक्रम

घुँघट उघार मुख देखत दसा बिसारि फैलत प्रकास पुंज चंद मंद परिगो॥

श्रीरामस्वयंवरके रचनाकार रसिकाधिराज महाराज रघुराज सिंहने भी ऐसा ही भाव प्रकट किया है। जबकि श्रीमान् राजासाहब अपनी रचनाओंके आधारपर श्रीराघवेन्द्रके परम पक्षधर दिखते हैं, मगर सत्यको स्वीकारते हुए कह रहे हैं—

घुंघट खोलत कोटि शशी सम फैली फरस जोन्हाई।
चितवहिं चकित देखि दुलहिन को आनन्द सिन्धु अन्हाई॥
हेरि थकी सिय मुख पटतर छवि त्रिभुवन में नहिं पाई॥
कौसलपति सत शक्र साहिबी वारी मातु लजाई।
वदन बिलोकि नेग दीवे को कछु नहिं जिय ठहराई॥

मुख-समतामें नेगदारिद्र्यकी लाचारीसे चिन्तित रानियोंकी ओर इन्होंने भी संकेत दिया है। आगे अभी-अभी कुछ नयी-नवेली युवतियाँ अपनी अहम्मन्यतामें नाज़-नखरेपूर्ण हो सियाकी सुन्दरता-दर्शनार्थ आयी हैं। इस अवसरपर मथुराके ग्वाल कविने सीयमुख-सुषमाकी कैसी समाँ उपस्थित की है। देखिये—

खोलि मुख दुलही को ननद लै नगीच बैठी, देखिवे को युवतिन की जुरी भीर वीसा है।
आगे ते दायें ते बायें ते विलौकैं सव, निजमुख दीखै पै न वाको मुख दीसा है॥
ग्वालकवि आपुसमें अचम्भा सव मानि कहैं, काको यह तिलस्मात काको वक सीसा है।
फिरि फिरि जाय फिरि पूछै आय सासुन से, शीशा की वहू है कि वहू को बन्यो शीशा है॥

कविवर तुलसी (न कि तुलसीदास)-ने भी कहा है सियाके अमित माधुरी प्रभावको—*'सखी सीय मुख।'* यथा—

जुरि आई बनी के विलोकिवे कौं अलि औलि चकोरी हुई सी परैं।
सुषमा है न ऐसी उमा रमा में उपमा नहिं देखि दुई सी परैं॥
तिय तारन मांहि सुधानिधि ज्यों सिय सोभा अपार हुई सी परैं।
दुलही के दुकूलनि तें उलही छिति पै छवि मानो चुई सी परैं॥

कलन्दरशाहकी उक्तिमें दर्शनार्थियोंकी दशा—*'सव विसरे कहव सुनव गुइयाँ॥'* अलियोंकी अवलिने रसिक-सम्राट् अग्रअलीके स्वरमें स्वरालाप किया—

रूपमाधुरी कहि न परत है, अंग-अंग छवि के उठत हिलोर।

'श्रीजानकीचरितामृत' में भी रचनाकारने स्नेहासिक्त शब्दोंमें स्नेहोपहार दिया है—

रमणीयताकी ओर भी लक्षित होता है, मगर मैथिलीके मुखमयङ्कका ही पलड़ा भारी पड़ा। सरस सखियाँ सहर्ष स्वीकारती हैं—

उमा रमा शारदादि सुन्दरी न कहूँ ऐसी
कोटि-कोटि सूर्य शशि की प्रभाहू सरमाई है।
सुषमा सुधाको सिन्धु विश्व वसुधाको चीरि
सर्वेश्वरी सीता आदिभक्ति कढ़ि आई है॥

गगनाङ्गनकी देवाङ्गनाएँ शान्त एकान्त देखकर वधूमुख-निरीक्षणहेतु—अन्तमें अन्तिम फैसला सुनाने आयी हैं अथवा एकान्त रमणीयाभक्ति स्वरूपा नववधूका पुनः-पुनः मुखदर्शन करने आयी हैं।

जोहन मुख आई सिया दुलहिन नवेलीको उमा रमा भारती ऐसी अभिरामिनी।
गावैं गीत गौने के बढ़ावैं रसरीति प्रीति कोकिल से कंठमुख कंज सी कामिनी॥
घुँघट पट टारि टारि देखैं मुख बार-बार है राम घनश्याम की दिव्य यह भामिनी।
सुषमा शृंगार सार जापै उपमा सब वार वो है तिलोक अभिराम ये है राम अभिरामिनी॥

किंतु परमरसिक कनकभवन-विहारी-विहारिनीके रूपोपासक कलन्दरशाह कहते हैं कि देवराजप्रिया अपनी सुन्दरताकी नाज़से ओत-प्रोत नाकसे आयी मगर गजबका नकद पुरस्कार लेकर गयी—

जो आई रूप गुमानभरी इन्द्रानी आदि विवुध नारी।
उनके दिल और निगाहों में हो गई अजब ईजरततारी।
मुख है या अजब तमाशा है कहती कलन्दर रह गई।
अपना ही मुख देखा उसमें अपना मुँह लेकर रह गई॥
यही नहीं अपना-सा मुँह लेकर भी घर गई॥

तब सियाकी मुँहदिखाई-महोत्सवके अनन्य आयोजक कलन्दरशाहने करतलध्वनि करते हुए कहा—

हम बोलब मिलब हँसब गुइयाँ।
मुँह दिखाई सिया की अजब गुइयाँ॥

इस प्रकार सरस मुँहदिखाई-महोत्सव सम्पन्न तो हुआ, मगर एक आश्चर्यजनक घटना तब घट गयी, जब महारानियोंने कहा कि शान्ता नववधूको राईलोनसे स्वच्छ करके तुम विरत हो जाओ। शान्ताजीने उनकी आज्ञाका पालन किया। तीनों महारानियाँ अन्तमें शिविकाकी तरह एक बार पुनः श्रीरामभद्र और सियाको एक-दूसरेके पार्श्वमें बैठाकर मङ्गल आरती और आशीर्वादोपरान्त महलमें ले जाना चाहती थीं। ज्योंही माताओंने ऐसा किया, त्योंही श्रीरामजी गोरे हो गये। रसिक रघुराजजीकी रमणीय भावना अतीव दर्शनीय है—*'सियमुख छटा राम मुख छाजति गौर वरन दरसो तनु कारो। भोर भयो दशरथ रानिन को कस ह्वै गयो कुमार हमारो॥'* परम भागवत रसिकाचार्य सरस सं श्रीनारायणदासजी भक्तमालीने भी तो मिथिला-मण्डप जोर-जोरसे शोर किया है कि—

आजु मंडप में अजगुत अभोर भइले।
सखि हे स्याम रंग दुलहा आजु गोर भइले॥

यदि ऐसा न हो तो *'सुंदरता कहुँ सुंदर करई।'* श्रीरामकृ परिभाषामें बट्टा लगेगा। किंतु माताएँ माधुर्य-मोलमें बि चुकी थीं। उन्हें इसमें मिथिलानियोंका षड्यन्त्र नजर आ और बरस ही तो पड़ीं मिथिलानियोंपर—

मिथिला की नटखटी नागरी चेटक मंत्र कछु पढ़ि डारो
तब पुनः स्व हाथों—
राईलोन उतारन लागी श्रीरघुराज जाय बलिहारो

इन सबके बावजूद भी मिथिलाकी शालीन (नटख नहीं) नागरी श्रीमोदलताजीका निर्णय करुणानिधान श्रीराम भी मान्य है—

पै मिथिलेश किशोरी छटा अवलोकि लला अतिहिं ठगते हैं
मोद जो साँची कहौ छवि में तो लली से लला लघु ही लगते हैं

अतः सियाकी मुँहदिखाई-महोत्सवमें यह सा हुआ कि दुलहासे दुलहिन प्रबल है। बाबाने गाँठ जोड़ दोनोंको खूब सँभाला है। टोक न लगे, सो ललाके लिलार कहीं काजल लग गया। कहनेवाले कहते हैं, क्या कीजियेगा अपने दुलहेसे बीस नहीं, इक्कीस पड़ती हैं श्रीकिशोरीजी। निर्णयसे तीनों रानियाँ नाराज नहीं खुश हैं और इस परिणामपर अगर कोई सर्वाधिक खुश हैं तो वे हैं—*'आनँदहू के आनँद दाता'*—के प्रापक श्रीराम। शायद यदि कोई इस फैसलेसे नाक-भौं सिकोड़े तो उनके लिये श्रीरामनगरके सरस संन्यासी संत श्रीकाष्ठजिह्वास्वामी देवजीका श्रीरामनगरकी नववधू श्रीसियाका मुँहदिखाई-महोत्सवपर दिया गया उत्तररूप न्योछावर है—

रामचन्द्र मंडल से कारे तुम चाँदनि उजियारी।
रामदेव का दूसर करिहैं यद्यपि हो तुम प्यारी॥

और इस अद्वितीय मुँहदिखाई-महोत्सवकी पुनः पुष्पाञ्जलि है—*'मुँह दिखाई सिया की अजब गुइयाँ॥'*

विविध तीर्थोंके उत्सव एवं मेले

[भारतवर्षमें तीर्थोंकी विशेष प्रतिष्ठा है। परमात्मप्रभुका अवतार जिस भूमिपर होता है, वह भूमि दिव्य बन जाती है। इसी प्रकार भगवान्‌के प्राकट्यके साथ उनके दिव्य धामोंका प्राकट्य भी पृथ्वीपर होता है। ये दिव्यधाम ही पृथ्वीपर तीर्थके रूपमें प्रतिष्ठित होते हैं। अपने शास्त्रोंकी यह मान्यता है कि इन तीर्थोंमें मनाये जानेवाले व्रतपर्वोत्सव भी दिव्य हो जाते हैं, जो विशेष कल्याणकारी हैं। इसलिये देशके विभिन्न तीर्थोंमें व्रतपर्वोत्सवोंकी एक विशिष्ट परम्परा है। अतः यहाँ देशके विभिन्न भागोंमें स्थित तीर्थोंमें जो मेले, उत्सव और पर्व मनाये जाते हैं, उन्हें यथासाध्य प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है—सं०]

श्रीअयोध्याजीके व्रतपर्वोत्सव

(महन्त श्रीनृत्यगोपालदासजी महाराज)

याऽयोध्या जगतीतले तु मनुना वैकुण्ठतो ह्यानिता
याचित्वा निजसृष्टिपालनपरं वैकुण्ठनाथं प्रभुम्।
या वै भूमितले निधाय विमला चेक्ष्वाकवे चार्पिता
साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा॥
यस्याः पश्चिमतो नदः प्रवहति ब्रह्मात्मजो घर्घरः
सामीप्यं न जहाति यत्र सरयूः पुण्या नदी सर्वदा।
विद्या यत्र महाधिका गिरिसुते स्थानं च विष्णोर्हरेः
साऽयोध्या विमला पुरी वरप्रदा स्याद्वः सदानन्ददा॥
या चक्रोपरि राजते च सततं वैकुण्ठनाथस्य वै
या वै मानवलोकमेत्य सकलान् दात्री सदा वाञ्छितान्।
या तीर्थानि पुनाति संततमहो वर्वर्त्ति तीर्थोपरि
साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नां परा मुक्तिदा॥

श्रीसरयूजी

नमस्ते सरयू देवि वसिष्ठतनये शुभे।
ब्रह्मादिसकलैर्देवैर्ऋषिभिर्नारदादिभिः ॥

मङ्गलमयी पुरीके रूपमें किया है—

'नित नव मंगल कौसलपुरी।'

श्रीअयोध्याजी व्रत एवं पर्वोंका सम्मिलित स्वरूप है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे नवसंवत्सर प्रारम्भ होता है एवं नवरात्र भी। अतः पूजन-पाठके साथ नवाह्नपाठ, कीर्तन-भजन, कथा-सत्सङ्ग एवं श्रीरामलीला-रासलीला आदिके आयोजन नवदिवसीय होते हैं। सायंकाल *'अवधमें बाजे बधैया'* का दिव्यानन्द मिलता है।

मासे मधौ या नवमी सुयुक्ता शुक्लाऽदितीशेन शुभेन येन
कर्के महापुण्यतमा सुलग्ने जातोऽत्र रामः स्वयमेव विष्णुः।
अत्र कुर्वीत मुदा व्रतोत्सवं रामार्चनं जागरणं महाफल-
मनेकजन्मार्जितपापनाशनं श्रीरामकीर्तेः श्रवणं च कीर्तनम्॥

वैशाख शुक्लपक्षके प्रारम्भमें चैत्रकी पूर्णिमासे ही चौरासी कोसकी परिक्रमा प्रारम्भ हो जाती है जो श्रीजानकीनवमीको पूर्ण होती है।

वैशाख शुक्लपक्ष तृतीयाको जिसे अक्षयतृतीया कहते हैं, सत्ययुग प्रारम्भ होता है। इस दिन श्रीठाकुरजीकी विशेष अर्चना होती है। वैशाख शुक्ल नवमीको श्रीजानकीजन्म-

व्रत भी रखा जाता है। यह पर्व विशेषरूपसे असत्पर सत्की विजयका प्रतीक है, साथ ही भक्तराज प्रह्लादके विश्वास एवं आस्थाका परिचायक है।

ज्येष्ठमासमें गरमीसे बचनेके लिये भावनानुसार फूल-बँगले सजाये जाते हैं, जिनमें भगवान् श्रीसीतारामको विराजमान कर गान-महोत्सव होता है। ज्येष्ठ शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको श्रीगङ्गादशहराकी भाँति श्रीसरयूजन्मोत्सव मनाया जाता है। इस पर्वपर श्रीसरयूतटपर विशेष झाँकीका आयोजन होता है जिसमें आरती एवं पूजन किया जाता है।

आषाढ़मासमें शुक्लपक्षकी द्वितीयाको भगवान् श्रीजगन्नाथजीकी भाँति श्रीरामजीकी रथयात्रा होती है, जिसमें श्रीसरयूतटपर बड़ी संख्यामें संत-भक्त एकत्र होते हैं। आषाढ़मासकी पूर्णिमाको श्रीगुरुपूजन सभी आश्रमों एवं स्थानोंमें भक्तजनोंके द्वारा बड़े उत्साहसे मनाया जाता है। विशेषकर भगवान् श्रीरामजीके गुरुदेव श्रीवसिष्ठजीके वसिष्ठकुण्डपर भक्तजन गुरुपूजनको जाते हैं। यह गुरुपर्व, गुरु-शिष्यपरम्पराका पारम्परिक पर्व है।

श्रावणमास सरस—रसमय मास है, इसमें श्रीसीतारामजी महाराज झूला झूलते हैं। सर्वप्रथम मणिपर्वतपर श्रीअयोध्याजीके अधिपति श्रीठाकुरजी झूला झूलने जाते हैं। श्रीसीतारामजीका पञ्चदशदिवसीय झूलन-पर्व गाने-बजानेके साथ मनाया जाता है।

नागपञ्चमीको नागपूजनके साथ शेषावतार श्रीलक्ष्मणजीकी विशेष पूजा होती है एवं लक्ष्मणघाटपर स्नान होता है। श्रावण शुक्लपक्षकी सप्तमीको गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजकी जन्मतिथि मनायी जाती है। इस अवसरपर विशेष पूजन-अर्चन एवं मानसप्राकट्यस्थली तुलसीचौरा तथा तुलसीस्मारकमें प्रवचन-सत्सङ्गके कार्यक्रम सम्पन्न होते हैं। श्रावणमासका प्रधान पर्व है—श्रावणीकर्म, जिसमें द्विजातियोंके साथ श्रीसरयूतटपर विभिन्न विद्वन्मण्डलियोंके साथ श्रावणीकर्म होता है।

भाद्रपद श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत एवं उपासनाका महान् पर्व है—

भाद्रेऽसिते निशीथेऽथ रोहिण्यामष्टमीतिथौ।
सिंहमर्केगते सौम्ये कृष्णो जातो विधूयते॥
कृष्णजन्माष्टमी सोक्ता तस्यां कृष्णमहोत्सवम्।
कुर्वीत विधिसंयुक्तं चतुर्वर्गफलप्रदम्॥

अष्टमीको रात्रिमें १२ बजे भगवान् श्रीकृष्णका जन्मपर्व विशेष पूजा-अर्चनाके साथ सम्पन्न होता है तथा दूसरे दिन 'दधिकाँदो-महोत्सव' सम्पन्न होता है। भाद्रपद शुक्लपक्षकी षष्ठीके बाद पड़नेवाले रविवारको जिसे 'बड़ा रविवार' कहते हैं, इस दिन सूर्यकुण्ड (दर्शन-नगर)-पर स्नान-पूजनकर भगवान् सूर्यको अर्घ्य दिया जाता है। भाद्रपद शुक्लपक्षकी एकादशीको श्रीसरयूतटपर भगवान् श्रीजानकी-रमणजीका 'नौकाविहार-उत्सव' गाने-बजानेके साथ सम्पन्न होता है। भाद्रपद शुक्लपक्षकी द्वादशीको भगवान् वामनरूपमें प्रकट हुए थे। अतः इस दिन वामनद्वादशीका उत्सव मनाया जाता है। यथा—

श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः।
सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम्॥

(श्रीमद्भा० ८।१८।५)

आश्विनमासके कृष्णपक्षमें जो लोग गयाश्राद्ध करने जाते हैं। वे श्रीअयोध्याजीमें श्राद्ध करके ही आगे बढ़ते हैं। नवरात्रमें माँ भगवती दुर्गा एवं श्रीरामजीकी उपासना होती है। यहाँ श्रीरामलीला, दशहरा, श्रीभरतमिलाप आदि बड़े धूमधामसे मनाये जाते हैं।

शरत्पूर्णिमाको श्रीसीतारामजी चाँदनी रात्रिमें बाहर पधारते हैं, क्षीरका भोग लगता है। कार्तिकमासमें प्रयागके माघमासकी भाँति एक मासका कल्पवास यहाँ होता है। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीको श्रीहनुमज्जयन्ती मनायी जाती है—

स्वात्यां कुजे शैवतिथौ तु कार्तिके
कृष्णोऽञ्जनागर्भत एव साक्षात्।
मेषे कपीट् प्रादुरभूच्छिवः स्वयं
व्रतादिना तत्र तदुत्सवं चरेत्॥

(श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर ८१)

श्रीहनुमान्गढ़ी एवं अन्यत्र नवाह्नपाठ एवं कीर्तनके साथ रात्रिमें १२ बजे जन्मोत्सवकी धूम रहती है।

दूसरे दिन दीपमालिका मन्दिर-मन्दिर एवं घर-घरमें होती है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको अन्नकूटका उत्सव बड़े उत्साहसे किया जाता है। अगले दिन यमथला तीर्थमें यमद्वितीयाका उत्सव होता है।

कार्तिक शुक्लपक्षमें अक्षयनवमी तिथिको लाखों लोग चौदह कोसकी परिक्रमा करते हैं। मान्यता है कि वर्षभरके पाप इस दिन परिक्रमा और स्नान-दानसे क्षय होते हैं एवं

अक्षय पुण्योंकी प्राप्ति होती है। देवोत्थानी एकादशीको भी लाखों लोग पञ्चक्रोशीपरिक्रमा करते हैं।

'पंचकोश करत घोर वज्रपाप कटिहैं।'

एकादशी-उद्यापन एवं श्रीतुलसीविवाह-महोत्सव भी बड़े धूमधामसे मनाये जाते हैं। कार्तिकमासकी पूर्णिमाको यहाँपर लाखों श्रद्धालुजन सरयूके पावन जलमें स्नान करते हैं। उस समयका दृश्य बड़ा ही मनोहारी होता है।

मार्गशीर्ष (अगहन)-में शुक्लपक्ष पञ्चमीको श्रीसीतारामविवाह-महोत्सव एवं श्रीरामकलेवा अत्यन्त हर्षोल्लाससे विधिवत् मनाये जाते हैं। एकादशीको श्रीगीता-जयन्ती पूजा-पाठ, प्रवचनके रूपमें मनायी जाती है। सरयूतटपर श्रीरामायणमेलाका आयोजन होता है।

माघमासमें मकर-संक्रान्ति स्नान-दानके रूपमें तथा वसन्तपञ्चमी माँ सरस्वतीकी जयन्तीके रूपमें मनायी जाती है। संस्कृत विद्यालयोंमें श्रीसरस्वती-पूजन-पाठ, प्रवचनके रूपमें छात्र एवं अध्यापक मनाते हैं।

फाल्गुनमासमें महाशिवरात्रिको श्रीनागेश्वरनाथजी, श्रीक्षीरेश्वरनाथजी एवं श्रीचारधाम मन्दिरमें श्रीरामेश्वर-पूजन, अभिषेक तथा सायं विभिन्न स्थलोंमें श्रीशिव-पार्वतीविवाह धूमधामसे मनाते हैं।

फाल्गुन शुक्ल एकादशीसे फाग-महोत्सव एवं होलिकादाहके कार्यक्रम उत्साहपूर्वक होते हैं। ये सभी व्रत एवं पर्वोत्सव शरीर एवं मनकी शुद्धि तथा आपसी मैत्री एवं प्रेम-श्रद्धाकी दृष्टिसे मनाये जाते हैं। प्राचीन रसिक संतोंने अष्टयामपूजा एवं विभिन्न महोत्सवोंके लिये अनेक ललित तथा भावपूर्ण पदोंकी रचना की है। जैसे—

'निरखु सखी बाजत आनन्द बधाई।
मिथिलापुर नौबत बाजि रही।
प्यारी बाजी बधाई मिथिलापुर सुखदाई।
सखी फूल बंगला आई बहार।
सजनी रथपर दोउ सोहि रहे।
झूलें दोउ मनके मोहनहार।
प्रीतम रसरंग बहार फागुन आय गई।
सखी री मो मनको भाये छयल बनरा बन आय।

श्रीभगवान् अनन्त हैं। उनकी कथा, लीला और महोत्सव भी अनन्त हैं—*'हरि अनंत हरिकथा अनंता'* के अनुसार कुछ व्रतपर्वोत्सवोंका यहाँ दिग्दर्शन कराया गया।
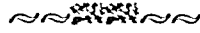
काशीके त्योहार और मेले

(डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता)

तीन लोकसे न्यारी काशी सभी धर्म-सम्प्रदायोंकी राजधानी है। युग-युगमें विभिन्न धर्मों तथा जातियोंके लोग यहाँ आये और बस गये। वे अपने साथ अपनी संस्कृति, अपने रीति-रिवाज, अपनी उपासना-पद्धति और अपनी सांस्कृतिक विरासत भी ले आये। परिणाम यह हुआ कि कालान्तरमें काशी संस्कृतियोंका संग्रहालय बन गयी। व्रत, उत्सव, त्योहार और मेलेकी ही बात लें तो प्रथम दृष्टिमें अजीब-सी बात प्रतीत होगी कि इस नगरमें रोज ही कोई-इतिहास उद्घाटित होने लगता है। तब इन तेरह त्योहारोंके संरक्षणका प्रश्न उठता है और चिन्ता होती है कि वर्तमान अनास्थाकी आँधीमें इनका मूल स्वरूप नष्ट न हो जाय। आइये, एक नजर इन त्योहारोंपर डालें; क्योंकि इस विश्लेषणके माध्यमसे यह ज्ञात हो सकेगा कि इस अद्भुत शहरमें हेरिटेज (धरोहर)-के रूपमें बहुत कुछ था, जो नष्ट हो गया और अभी भी बहुत कुछ है, जो गम्भीर चिन्तन और संरक्षणका तलबगार है।

तो कोई अलोना (बिना नमकका) भोजन करता है। कोई फलाहार करता है तो कोई अन्न नहीं ग्रहण करता। कोई मौन व्रत लेता है तो कोई त्यागका व्रत लेता है। व्रतमें जब पूरा समूह शामिल होता है तो वह पर्व बन जाता है। इसमें स्नान और देवदर्शनका विशेष माहात्म्य है।

त्योहार बड़े पर्व हैं, इनमें बड़े पैमानेपर आनन्द, उत्सव मनाये जाते हैं। घरों, दूकानों, मन्दिरोंमें सजावट, गायन-वादन, परस्पर मिलना-जुलना और मिष्टान्न-भोजन तथा देवता-विशेषके दर्शन-पूजन होते हैं। पर्व-त्योहारके साथ मेले भी होते हैं। जब मेला लगता है तो दूरस्थ स्थानोंसे लोग आते हैं। खुले मैदानमें अस्थायी बाजार, मनोरञ्जन—चरखी, झूला, जादूका तमाशा आदि, चाट-मिठाईकी दूकानें, खिलौनोंकी दूकानें आदि लग जाती हैं। मेलेका केन्द्रबिन्दु होता है कोई देवस्थल या पवित्रतीर्थ। मेला वाराणसीमें रामलीलासे भी सम्बद्ध होता है और जब मेलेमें लाखोंकी भीड़ होती है तो उसे लाखा-मेला कहते हैं।

पञ्चाङ्गका अवलोकन करें तो कुछ स्थायी व्रतोंकी जानकारी होगी। हर पक्षमें द्वितीयाको अशून्यशयनव्रत, गणेशचौथ, शीतलाष्टमी, एकादशी, त्रयोदशीको प्रदोष और चतुर्दशीको शिवरात्रिव्रत, पूर्णिमाको श्रीसत्यनारायणव्रत एवं अमावास्याको भी व्रत होता है। फिर बहुत-से लोग अपनी इच्छानुसार या गुरुजनके निर्देशपर किसी वार-विशेषका व्रत रखते हैं। काशीमें तो सोम और प्रदोषकी महिमा है; क्योंकि यह बाबा विश्वनाथका दिन है, फिर मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि और रविवारके व्रत होते हैं। शुक्रवार वर्तमानमें संतोषीमाताके व्रतसे भी सम्बद्ध हो गया है और शनिवारको शनिकी दशासे पीडित लोग दान-दक्षिणा, व्रत और शनि-दर्शन करते हैं। जब वार किसी तिथिसे सम्बद्ध होता है तो पर्व बन जाता है—सूर्यषष्ठी, भानुसप्तमी, चन्द्रषष्ठी, भौमवती चतुर्थी, बुधाष्टमी, सोमवारको अमावास्या पड़े तो सोमवती अमावास्या महापर्व बन जाता है। फिर कहीं मौनी अमावास्या यदि सोमवारको पड़े तब तो कहना ही क्या। भारतीय पश्चिमकी देखा-देखी रविवारकी छुट्टी रहती है। भारतीय पञ्चाङ्ग-प्रेमी-संस्थान प्रतिपदा (पड़वा) और अष्टमीको बंद रहते हैं। पञ्चाङ्ग चान्द्रमासके अनुसार बनते हैं, जिससे वर्षमें दस दिन कम रह जाते हैं। अस्तु, भारतीय ज्योतिषियोंने हिसाब ठीक रखनेके लिये हर तीसरे वर्ष एक मास जोड़ दिया, जो अधिकमास या पुरुषोत्तममास कहलाता है। यह पूरा महीना व्रत, पूजाका मास होता है। व्रतोंमें पाँच व्रत महाव्रत कहलाते हैं—चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, शिवरात्रि और दशावतार। त्योहारोंमें चार बहुत बड़े त्योहार हैं—रक्षाबन्धन (श्रावणी), दशहरा दीपावली और होली। इसी प्रकार चार सौर त्योहार बहुत बड़े माने जाते हैं—मकर-संक्रान्ति—खिचड़ी, मेष-संक्रान्ति—सतुआ-संक्रान्ति, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण। जितने लोग उतने देवता। फिर संत हैं, महापुरुष हैं और यादगार दिन हैं जिन्हें मनाया जाता है।

इसी क्रममें देवियोंके वार और महापुरुषोंकी जयन्तियाँ आती हैं, देवियोंके दिन हैं—नवरात्र—चैत्र शुक्लपक्ष तथा आश्विन शुक्लपक्ष। राधा, जानकी, उमा, गङ्गा, सावित्री, विन्ध्यवासिनी, गिरिजा, लक्ष्मी, काली, जगद्धात्री, तुलसी, शीतला माताके विशिष्ट दिन भी हैं। चैत्र नवरात्रमें गौरीपूजाके मेले होते हैं और वाराणसीमें नौ गौरीमन्दिर हैं जिनमें तिथिक्रमसे लोग दर्शन करने जाते हैं। ये गौरियाँ हैं—मुखनिर्मालिका, ज्येष्ठा, सौभाग्य, शृङ्गार, विशालाक्षी, ललिता, भवानी, मङ्गला तथा महालक्ष्मी। इसी प्रकार आश्विनमें नवदुर्गाके क्रमसे दर्शन करनेका विधान है। ये हैं—शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी तथा सिद्धिदात्री। महापुरुषों और संतोंके दिन इस प्रकार हैं—महावीर, महाप्रभु वल्लभाचार्य, वाल्मीकि, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, कुँवर सिंह, बुद्ध, कबीर, गुरु, नाग, पतञ्जलि, पाणिनि, तुलसी, भारतेन्दु, सप्तर्षि, श्रीचन्द्र, विश्वकर्मा, लोकपाल, पितृ, मध्वाचार्य, धन्वन्तरि, नानक, गुरु तेगबहादुर, दत्तात्रेय, पार्श्वनाथ, गुरुगोविन्द सिंह, विवेकानन्द, लाला लाजपत राय, रविदास, पञ्चाङ्ग तिथिक्रमसे २ अक्टूबर गाँधी-जयन्ती, शहीददिवस और २६ जनवरी आदि।

बनारस अपने मेलोंके लिये प्रसिद्ध हैं, इनमें भी कुछ मेले 'लाखा-मेले' कहलाते हैं। ये हैं—भरत-मिलाप—नाटी इमली, नक्कटैया—चेतगंज, नागनथैया—तुलसीघाट, बुढ़वामंगल—पञ्चगङ्गासे रामनगर—यह अन्तिम मेला अब बंद हो गया है। इसी प्रकार लोलार्ककुण्डपर

कजरीका मेला होता था वह भी बंद हो गया। अन्य प्रमुख मेले हैं—सारनाथका मेला—वैशाख, दुर्गाजीका मेला—चैत्र-श्रावणमें, रथयात्रा—आषाढ़में, गाजी मियाँके ब्याहका मेला—जेष्ठके पहले रविवारको, गङ्गाजीका मेला—ज्येष्ठमें, शंकुधाराका मेला—कर्क-संक्रान्ति, वेदव्यासका मेला—आषाढ़, झूलनोत्सव—श्रावण, वृद्धकालका मेला—श्रावण, सोरहियाका मेला—भाद्रपद, दुर्गापूजा—आश्विन, रामलीला—आश्विन, दुर्गाधसान (विसर्जन) आश्विन, बड़ा गणेशका मेला—मार्गशीर्ष, शिवरात्रिका मेला—फाल्गुन तथा पञ्चक्रोशी मेला। इनके साथ जोड़ लें, अनेक गङ्गास्नानके पर्व और चन्द्र तथा सूर्यग्रहण। गङ्गास्नानके पर्व यों तो प्रतिदिन होते हैं, पर विशेष पर्व हैं—एकादशी, अमावास्या, पूर्णिमा—वैशाखकी अमावास्याको सतुआदान, श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको गङ्गातटपर श्रावणीकर्म, भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमाको महालया, आश्विन कृष्ण अमावास्याको पितर अमावास्या, माघ कृष्णको मौनी अमावास्या, माघ पूर्णिमा, अक्षय तृतीया—वैशाख, अक्षयनवमी—कार्तिक, गङ्गादशहरा तथा निर्जला एकादशी, ऋषिपञ्चमीको दन्तधावन-उत्सव, वामनद्वादशीको वरुणासंगम-स्नान, पितृपक्ष—आश्विन कृष्णमें पूरे पक्षभर स्नान, वैशाख, कार्तिकमासस्नान, माघमें कल्पवास और गङ्गास्नान, शिवरात्रिका स्नान और चन्द्र-सूर्यग्रहणोंके स्नान तथा वारुणी-स्नान।

वाराणसीमें कुछ मेले स्थायीरूपसे तिथि विशेषसे असम्बद्ध होते रहते हैं, ये हैं—देवी, देवताओं, वीर, पीर, वरमके मेले—इन्हें सिंगार भी कहते हैं, कजरी, विरहा दंगल, नवाह्न या मानसपाठ, कीर्तन, सावनझूला, बहरी अलंगकी सैर, चैती-महोत्सव और गुलाबबाड़ी।

व्रत करनेवालोंके लिये यात्राओंका विधान है और ये हैं—नित्ययात्रा, अन्तर्गृही यात्रा, उत्तर-दक्षिणयात्रा, पञ्चक्रोशी-यात्रा, पञ्चतीर्थीयात्रा, विष्णुयात्रा, आदित्ययात्रा, दुर्गायात्रा, विनायकयात्रा, गौरीयात्रा, भैरवयात्रा, सप्तर्षियात्रा, ज्योतिर्लिङ्गयात्रा, सप्तपुरीयात्रा, चारधामयात्रा, ओंकार-विश्वेश्वर तथा केदारखण्डकी यात्राएँ। एकादशीका बड़ा माहात्म्य है और हर मासमें दो एकादशियाँ होती हैं।

उपर्युक्त विवरणमें अनेक पर्व, उत्सव छूट गये हैं। आइये उनका भी अवलोकन कर लें। हमारा नववर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे आरम्भ होता है। इस दिन वर्षका पुनरावलोकन करते हैं, वर्षपतिकी पूजा करके नववर्षका फल श्रवण करते हैं। वासन्ती नवरात्र आरम्भ होता है। ज्योतिषीगण वायु-परीक्षा करते हैं। मङ्गल-कलश स्थापित करते हैं। घरकी सफाई करते हैं और नीमकी पत्ती तथा मिश्री खाकर मङ्गलकामना करते हैं। प्रियजनोंसे गत वर्षके अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करते हैं और जलपात्र दान करते हैं। तृतीयाको गणगौरकी कुमारिकाओंद्वारा व्रत-पूजा सम्पन्न होती है। श्रीपञ्चमीको रामराज्यका महोत्सव होता है। षष्ठी तिथिको सूर्यषष्ठी या स्कन्दषष्ठी कहते हैं। अष्टमीको अन्नपूर्णाकी परिक्रमा करके तारा अष्टमी मनाते हैं तथा कुमारी कन्याओंका पूजन होता है और भोजन कराया जाता है। जैनसम्प्रदायका 'ओलीपर्व' आरम्भ होता है। नवमी तो महान् त्योहार रामनवमी है, इस दिन दुर्गाजीका भी पर्व है। त्रयोदशीको अनङ्ग या मदन त्रयोदशी कहते हैं और इसी दिन शिवजीने कामदेवको भस्म किया था और रतिपर प्रसन्न होकर कामदेवको अनङ्गरूप दिया था। पूर्णिमाको हनुमज्जयन्ती और पूजनोपूनो मनाते हैं।

वैशाखके कृष्णपक्षकी एकादशीको महाप्रभु वल्लभाचार्यकी जयन्ती और अमावास्याको सतुआ-दानका माहात्म्य है। वैशाख शुक्ल द्वितीयाको शिवाजी-जयन्ती, अक्षयतृतीयाको परशुरामजयन्ती, गङ्गास्नान करके झंझर, छातादान करनेका माहात्म्य है। इस दिन बदरीनाथके मन्दिरके कपाट खुलते हैं। पञ्चमीको आदिशंकराचार्यकी जयन्ती मनायी जाती है और छठको रामानुजाचार्यकी। सप्तमी गङ्गाजीका उत्सव है। पहले इस दिन बनारसमें शहनाई-दंगल होता था। नवमीको जानकी-जयन्ती, इसे जानकी-नवमी कहते हैं। चतुर्दशीको प्रह्लादके रक्षार्थ नरसिंहभगवान् प्रकट हुए थे। नरहरिपुरा और प्रह्लादघाटपर इस अवसरपर नरसिंह-लीला आयोजित की जाती है। वैशाखी पूर्णिमाको बुद्धपूर्णिमा भी कहते हैं। इस दिन सारनाथका मेला होता है और भगवान् बुद्धको जयन्ती मनाते हैं।

ज्येष्ठके पहले रविवारको गाजी मियाँके ब्याहका मेला होता है और अमावास्याको वटसावित्रीव्रत। सावित्रीद्वारा सत्यवान्की मृत्युपर विजयका यह उत्सव वटवृक्षपूजाके रूपमें मनाते हैं और वटवृक्षके मूलमें ब्रह्मा, तनेमें विष्णु

तथा डाली-पत्तोंमें शिवकी भावना करके यह अनूठा पर्व मनाया जाता है। ज्येष्ठ शुक्ल दशमीको श्रीगङ्गा-दशहरा मनाते हैं। इस दिन गङ्गास्नान और गङ्गापूजनसे दस पापोंसे मुक्ति होती है। बालिकाएँ इस दिन गङ्गाजीमें अपनी गुड़िया विसर्जन करती हैं। अगले दिन निर्जला एकादशी होती है, इसे भीमसेनी एकादशी भी कहते हैं—छाता, जूता, फल और पात्र-दान किया जाता है, दीपोत्सव और गङ्गोत्सव मनाते हैं। पूर्णिमाको संत कबीरकी जयन्ती और जगन्नाथजीकी स्नान-यात्रा होती है।

आषाढ़का प्रथम दिन वर्षाके आवाहनका होता है। शुक्लपक्षकी द्वितीयासे चतुर्थीतक भगवान् जगन्नाथकी रथयात्राका मेला होता है। सप्तमी वैवस्वत मनुके नाम है। एकादशीको भगवान् विष्णुके शयनका दिन है और इसी दिनसे चातुर्मास्यव्रत आरम्भ हो जाता है। इन चार महीनोंमें बौद्ध-भिक्षु तथा पण्डित एक स्थानपर वास करके स्वाध्याय करते हैं। आषाढ़ पूर्णिमाको गुरुकी पूजा की जाती है। यह वेदव्यासकी पूर्णिमा है, लोग रामनगरमें वेदव्यासके दर्शन करने जाते हैं। इस दिन शिवशयनोत्सव भी होता है।

श्रावण हरियालीका मास है। हर सोमवारको व्रत और सारनाथका मेला, हर मंगलको दुर्गाजीका मेला लगता है। शुक्लपक्षकी तृतीयाको ठकुराइन या मधुश्रवातीज, पञ्चमीको नागपञ्चमी—बड़े गुरु पतञ्जलि और छोटे गुरु पाणिनिका त्योहार नागपूजा, अखाड़ोंमें मल्लयुद्ध और शरीर-सौष्ठवके प्रदर्शन होते हैं। वर्षा-ऋतुमें सर्प अधिक होते हैं। अस्तु यह पूजा-विधान ऋषि आस्तीककी स्मृति है। श्रावणके अन्तिम पाँच दिन मन्दिरों और ठाकुरद्वारोंमें झूलनोत्सव मनाते हैं, छोटी बालिकाओंका पुष्प-शृङ्गार होता है। श्रावणकी पूर्णिमा रक्षाबन्धनका बड़ा त्योहार है। इस दिन ब्राह्मणलोग श्रावणीकर्म करते हैं—नया यज्ञोपवीत धारण करते हैं। इसी दिन अमरनाथके दर्शन होते हैं। यह पूर्णिमा हयग्रीव और अगस्त्यका जन्म-दिन भी है।

भाद्रपद कृष्णपक्षकी पूजा कज्जली तीज, विशालाक्षीदर्शन, हरकालीपूजासे आरम्भ होती है। चतुर्थीको मनसादेवीकी पूजा—बहुला चौथ मनाते हैं। छठको बलरामका जन्म हलषष्ठी या ललही छठ होती है। अष्टमी बड़े त्योहार—श्रीकृष्णजन्माष्टमी, गोकुलाष्टमी, नन्दोत्सवका दिन है। इसी दिन दूर्वाष्टमी भी मनाते हैं। अमावास्याको कर्मकाण्डी पण्डित कुश खोदकर लाते हैं, अस्तु इसे कुशोत्पाटिनी अमावास्या कहते हैं। शुक्लपक्षकी द्वितीया वाराह-जयन्ती, हरितालिका तीज ढेला चौथ लेकर आती है। चतुर्थीको गणेशोत्सव आरम्भ होता है। ऋषिपञ्चमीको सप्तर्षिपूजन, भारतेन्दु-जयन्ती, दन्तधावनोत्सवके साथ ही जैन बन्धुओंका दस दिनका पर्युषणव्रत आरम्भ होता है। षष्ठीको लोलार्ककुण्डका मेला, सूर्यपूजा, कार्तिकेय षष्ठी, कृमिकुण्डपर कज्जली मेला, संतान सप्तमी या अपराजिता सप्तमीको मुक्ताभरणव्रत होता है। अष्टमीसे काशीका अनूठा सोलह दिनका मेला—सोरहिया आरम्भ होता है, इसमें लक्ष्मीकुण्डपर मेला लगता है और लोग नियमसे सोलह दिन लक्ष्मीजीके दर्शन करने जाते हैं और अनूठी लक्ष्मी-प्रतिमाएँ खरीदते हैं। यह राधाजीका जन्म-दिन भी है। नवमीको श्रीचन्द्रजयन्ती, दशमीको दशावतारव्रत होता है। १७ सितम्बरको सभी उद्योगकर्मी विश्वकर्मापूजा करते हैं। वामनद्वादशीको वरुणा-संगममें स्नान करते हैं और सायंकाल चित्रकूटमें वामनी लीला देखते हैं। त्रयोदशीसे पूर्णिमातक राजा दिलीपका नन्दिनी गौकी रक्षार्थ प्राणोंकी बलि देनेको तत्पर होनेकी यादमें व्रत करते हैं। चौदश (अनन्त चतुर्दशी) बड़ा त्योहार है। इस दिन भुजापर अनन्तका डोर बाँधते हैं और शेषभगवान्‌की पूजा करते हैं। वाराणसीकी प्रमुख लीला आरम्भ होती हैं। अनन्त चतुर्दशी रम्भाव्रत और कदलीव्रतका भी दिन है। कहते हैं इसी दिन द्रौपदी-चीरहरण हुआ था और भगवान्‌ने अपनी लीला दिखायी थी। पूर्णिमाको महालया, उमामहेश्वरव्रत, नान्दी या मातामहश्राद्धका दिन है। इस दिन लोकपालोंकी पूजा करते हैं।

आश्विनका कृष्णपक्ष पितृपक्ष कहलाता है। इसमें अष्टमीको जीवत्पुत्रिका (जिउतिया)-व्रत किया जाता है और सोरहिया मेलेका समापन होता है। मातृनवमी और पितृ-विसर्जन अमावास्या विशेष पर्व हैं। शुक्लपक्ष दुर्गापूजा नवरात्रसे आरम्भ होता है। प्रतिदिन दुर्गा देवियोंके दर्शन और नवरात्रपूजाकी स्थापना होती है। षष्ठीको अकालबोधनपूजा होती है—दुर्गामाता महिषासुरमर्दिनीकी आगमनी होती है। हजारों पण्डालोंमें उत्सव आरम्भ हो जाता है। तीन दिन धूमधामसे पूजा होती है। विजयादशमी बहुत बड़ा त्योहार

है। इस दिन शस्त्रपूजन, अश्व-गजपूजन, नीलकण्ठदर्शन, शमीपूजन होता है। रावणवध, विजयादशमी होती है और दुर्गामाताकी प्रतिमाओंका विसर्जन—धसान होता है। यह बौद्धावतारका भी दिन है। एकादशीको काशीका लाखा-मेला भरत-मिलाप होता है। शरदपूनम कोजागरी, कौमुदी महोत्सवका दिन है, इसी रात भगवान् कृष्णचन्द्रने व्रजमें महारास रचाया था। पूर्णिमाकी रातमें लक्ष्मी-कुबेरपूजन करते हैं।

कार्तिकमासमें गङ्गातटपर आकाश-दीपकी शोभा और स्नानका बड़ा माहात्म्य है। बाढ़ उतर जानेपर गङ्गा पुनः निर्मल हो चुकी होती है। कृष्णपक्षकी करवाचौथको चेतगंजकी नक्कटैया निकलती है जो बनारसका लाखा-मेला है। राधा-जयन्ती या अहोई अष्टमीको अस्सीपर कृष्णलीला आरम्भ होती है। द्वादशी गोवत्सपूजनका और वाक् देवीके पूजनका दिन है। त्रयोदशीसे दीपावलीका त्योहार आरम्भ हो जाता है।

दीपावली चार बड़े त्योहारोंमें एक है। इसमें धनतेरसको वैद्यसमाज धन्वन्तरि-पूजन करता है। यह समुद्र-मन्थनका दिन है, जिसमेंसे चौदह रत्न निकले थे। अस्तु लक्ष्मी, कल्पवृक्ष, कामधेनु, धन्वन्तरि, अमृत और विषकी वर्षगाँठ भी है। चतुर्दशीको नरक-चतुर्दशी भी कहते हैं। यह हनुमान्जीका जन्म-दिन है और केदारगौरीव्रतका दिन। दीपोत्सवके दिन लक्ष्मीपूजाका विधान है। जैनसमाज इसे परम्परा है। एकादशीको भगवान् विष्णु उठते हैं और तुलसीसे ब्याह करते हैं। देवोत्थान एकादशीको छोटी दिवाली भी कहते हैं और इस दिनसे चौमासेमें बंद शादी-ब्याह पुनः आरम्भ हो जाते हैं। एकादशीसे पूर्णिमातक पाँच दिन भीष्मपञ्चकव्रत होता है। इन दिनों शरशय्यापर पड़े भीष्म पितामहने युधिष्ठिरको उपदेश दिया था। काशीमें गङ्गातटपर भीष्मकी मिट्टीकी विशाल प्रतिमाएँ बनानेकी परम्परा थी। भगवान् उठ गये, अस्तु महाविष्णुकी पूजा करके वैकुण्ठ-चतुर्दशी मनाते हैं। पूर्णिमा कार्तिक स्वामीकी पूजा, त्रिपुरोत्सवका दिन है, इस दिन दुर्गाघाटपर मुक्की दंगल होता है, नानकदेवकी जयन्ती और जैनबन्धु रथयात्रा निकालते हैं।

मार्गशीर्ष कृष्णके पहले मंगलको प्यालेका मेला होता है जो अति प्राचीन बाँसकी डलिया बनानेवालोंका मेला है। अष्टमी कालभैरव काशीके कोतवालका दिन है। एकादशीको एकादशीका जन्म-दिन मनाते हैं। शुक्लपक्षकी पञ्चमीको रामविवाहोत्सव तथा गुरु तेगबहादुरकी शहादतका दिन मनाते हैं। स्कन्दषष्ठी, चम्पाषष्ठी, मित्रसप्तमी और सूर्य-सप्तमी, कालादि नवमी और नन्दानवमीके बाद एकादशीको बड़े धूमधामसे गीता-जयन्ती मनाते हैं। इस दिन कृष्णने अर्जुनको गीता-उपदेश दिया था। चतुर्दशीको पिशाचमोचनका लोटा-भण्टाका मेला होता है। पूर्णिमा गुरु दत्तात्रेयका दिन है, पञ्चक्रोशीयात्रा की जाती है।

कहते हैं और प्राचीन भारतमें भी इस दिन वसन्तोत्सव मनाया जाता था जो रति-काम-महोत्सव भी कहलाता था। पञ्चमीको तक्षकपूजा और वागीश्वरीदेवीकी जयन्ती भी मनायी जाती है। शीतलाषष्ठी, रथसप्तमी, भानुसप्तमी, अचलासप्तमीके बाद भीमाष्टमी आती है, इस दिन पितामह भीष्मने महाप्रयाण किया था। महानन्दा नवमीको हरसूब्रह्मदेवका मेला होता है। भीष्म द्वादशीको लाला लाजपतरायकी जयन्ती और माघी पूर्णिमाको कल्पवास समाप्तिके साथ रविदास-जयन्ती मनाते हैं।

फाल्गुनको बनारसमें मस्त महीना कहते हैं। इसमें कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको वैद्यनाथ-जयन्ती तथा चतुर्दशीको महाशिवरात्रि काशीपुरपति विश्वनाथका उत्सव होता है। शुक्लपक्षकी एकादशी रंगभरी होती है, इस दिन आँवलेके वृक्षकी पूजा करते हैं और अन्नपूर्णाकी स्वर्णप्रतिमाके दर्शन होते हैं। होलीका हुड़दंग एकादशीसे ही आरम्भ हो जाता है। पूर्णिमाकी शामको होलिका-दहन होता है। इस दिन डोलयात्रा भी होती है।

चैत्र कृष्णकी प्रतिपदाको प्रातः धूलिवन्दन करके रंग खेलते हैं और दोपहर बाद स्नान करके शुभ्रवस्त्र पहनकर प्रियजनोंको गुलाल मलते लोग चौसट्ठीदेवीके दर्शनको जाते हैं। होलीके बादके मंगलसे काशीमें अनूठा बुढ़वा मंगल मेला होता था जो वास्तवमें बनारसी संगीतकी तैरती महफिल होती थी। अब मेला बंद हो गया है। इसी महीने चैती-महोत्सव मनाते हैं और गुलाबबाड़ीकी महफिलें सजती हैं, जिसमें चैती-गुलाबके छिड़कावके साथ चैती-गायन होता है। त्रयोदशीको वर्षका अन्तिम पर्व वारुणी होता है। यदि वारुणी शतभिषानक्षत्रमें अथवा शनिवारको पड़े तो महावारुणी होती है और महावारुणीमें अन्य शुभ योग भी मिल जाय तो महामहावारुणी हो जाती है।

जैसा पहले निवेदन किया कि काशी सर्व-धर्म-राजधानी है। उपर्युक्त त्योहारोंमें आप ढूँढ़ेंगे तो दर्जनों सम्प्रदाय और उपसम्प्रदायोंकी झलक मिल जायगी। पुराने भारतने अनेक जाति और सम्प्रदायोंको आत्मसात् कर लिया था, पर नये भारतमें साम्प्रदायिक धाराएँ अलग दिखती हैं। पुराने सभी सम्प्रदाय मिलकर हिन्दू समाज बनाते हैं, इनके अलावा मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिख, पारसी, सिन्धी आदि समूह हैं। ये अपने-अपने त्योहार मनाते हैं।

सबसे पहले मुसलमानोंके त्योहार लें। मुसलमान चन्द्रमाससे गणना करते हैं, पर हिन्दू पञ्चाङ्गकी भाँति उन्होंने वर्षके दस दिनोंकी कमीका संशोधन नहीं किया, फलतः इनके त्योहार भी परिक्रमा करते रहते हैं—इनकी ईद कभी जाड़ेमें तो कभी गर्मीमें पड़ती है। पहले महीने मुहर्रमका नववर्ष और इसी महीनेके दसवें दिन हजरत अलीकी शहादत। मुहर्रम, मातमका त्योहार है। इसमें आँसुओंकी शहनाई बजती है, दुलदुल और अलमके जुलूस निकलते हैं, ताजिये उठाये जाते हैं और दफ़न किये जाते हैं। लोग छाती पीट-पीटकर 'हसन-हुसैन' का मातम मनाते हैं। परम्पराके अनुसार चालीस दिन बाद चेहलुम मनाते हैं नौवें महीने रमज़ानमें पूरे एक मासतक धर्मपरस्त मुसलमान रोज़े रखते है, पाँच वक्त नमाज़ पढ़ते हैं और महीना पूरा होनेपर ईदका चाँद देखकर खुशियाँ मनायी जाती हैं। इदुलफितर या ईद बहुत खुशीका त्योहार है। आठवें चन्द्रमास शबानमें शब-बे-बरात मनाते हैं, यह भी हँसी-खुशीका त्योहार है। पैगम्बर मोहम्मद साहबका जन्म-दिन बारहवफ़ात ईद-ए-मिलाद रबीउल-अखैलको (तीसरा महीना) मनाया जाता है और पैगम्बर साहबका अवसान भी इसी दिन बारह दिनकी बीमारीके बाद हुआ था। ईदुज्जुहा या बकरीद अब्राहमके त्यागकी यादमें मनायी जाती है।

सिखोंके गुरुओंकी जयन्तियाँ मनायी जाती हैं और बैसाखी, सिखपंथ खालसाके उद्भवका दिन है। सिन्धसे आये लोग वरुणदेवका उत्सव झूलेलालकी जयन्ती मनाते हैं। ईसाई क्रिसमसके अलावा गुडफ्राइडे, ईस्टर संडे, न्यू ईयर मनाते हैं। यहूदी सम्प्रदायकी देन है रविवार-सैवथकी छुट्टी। बौद्ध बुद्धजयन्ती मनाते हैं और जैन महावीरजयन्ती, पार्श्वनाथजयन्ती, पर्युषणपर्व—(दस दिनका व्रत और उसके बाद छमौसी), चातुर्मास्य, मर्यादा-महोत्सव, जलयात्रा और देव-दीवाली मनाते हैं।

दक्षिण भारतके विशेष त्योहारोंमें मकर-संक्रान्ति या पोंगल है। इसे तीन दिन मनाते हैं—१-भोगी पोंगल—जब लोग अपने घरमें उत्सव मनाते हैं, २-सूर्य पोंगल—जब सार्वजनिक उत्सव होता है और ३-पट्ट पोंगल—जिसमें गोधनकी पूजा करते हैं। ओणम अनूठा त्योहार है और केरलके लोगोंद्वारा मनाया जाता है। केरलमें सूर्य-नौकाओंकी दौड़ होती है। ओणम बलि-वामनकी कथापर आधारित है।

केरलमें बलिका राज्य था, वामनने उसे हराया तब तय हुआ कि महाबली वर्षमें एक दिन अपनी प्रजाको देखने आ सकेंगे। इसीसे ओणमके दिन मानते हैं कि महाबली पधारते हैं। गुडीपडवा भी दक्षिणका प्रमुख त्योहार है।

यह तो हुआ त्योहारोंका विवरण, इसमें अभी और अनेक जोड़े जा सकते हैं। प्रश्न यह है कि इन त्योहारोंका महत्त्व क्या है और इनमें हमारी सांस्कृतिक विरासत क्या है और यदि इन्हें संरक्षण देना है तो क्या करना चाहिये? बड़े जटिल प्रश्न हैं। त्योहारके व्यक्तिगत स्तर हैं जिसमें आस्थावान् धार्मिक व्यक्ति परम्पराके अनुसार व्रत-पूजन आदि करते हैं। वर्तमान युगमें आस्थाके संकटके साथ इस परम्पराका ह्रास हो रहा है। बहुत कम लोग व्रत, उपवास, गङ्गास्नान आदि करने लगे हैं। विचारणीय बात यह है कि ये व्रत केवल धार्मिक अन्धविश्वास और पिछड़ेपनके प्रतीक हैं अथवा वर्गविशेषके द्वारा पिलायी जा रही अफीम या इनकी कोई प्रासंगिकता भी है? चिकित्साविज्ञानको स्वास्थ्यकी दृष्टिसे उपवास, आहारविशेष लेनेकी रीति, जाड़ेमें गङ्गास्नान आदिका अध्ययन करना चाहिये और बताना चाहिये कि ये स्वास्थ्यके लिये हानिकारक हैं या लाभदायक? मेरा अनुमान है कि उपवास अति न करें तो लाभदायक होते हैं, बिना नमकका भोजन, भिन्न अन्न या अन्नविहीन भोजन, फल, सब्जी विशेष खाना स्वास्थ्यके लिये लाभदायक होना चाहिये और इसके द्वारा सूक्ष्म तत्त्वोंकी कमीसे बचाव हो सकता है। गङ्गाके निर्मल जलमें स्नान करके शरीरकी सुरक्षाव्यवस्था दृढ़ की जा सकती है और सर्दी, जुकाम तथा एलर्जीसे बचाव हो सकता है। ये विषय अनुसन्धानकी अपेक्षा करते हैं।

पर्वोंकी समाजशास्त्रीय दृष्टिसे जाँच की जानी चाहिये। त्योहार तो राष्ट्रके जीवनमें मनोवैज्ञानिक, संवेदनात्मक, भावात्मक और सामाजिक प्रभाव डालते हैं। वर्षमें कुछ अवसर आते हैं जब मनमें सहज ही उल्लास भर जाता है और नीरस, उबाऊ दैनिक जीवनक्रमका बोझ कम हो जाता है। अनेक त्योहार मौसम और कृषिसे सम्बन्धित हैं और कृषिप्रधान देशमें इन त्योहारोंका धार्मिक नहीं, राष्ट्रिय महत्त्व है। विजयादशमीपर किसान गेहूँ बो चुका है, अंकुर फूट चुके हैं। अतः उल्लासमें मगन हो नाचता-गाता है, दीपावलीपर बाढ़ उतर चुकी है, विदेशयात्रा व्यापारकी सुविधा बढ़ी है। अतः व्यापारी नयी उमंगसे गुनगुना उठा है, होलीपर फसल कटने और भण्डारमें अन्न भर जानेका आह्लाद तो है ही, फिर वसन्तकी बहार फागुनी रंगोंमें उमड़ पड़ती है।

अन्तमें विदेशी त्योहारोंकी बात कर लें और वह है मूर्खोंका दिन—पहली अप्रैलको 'आल फूल्स डे'। बनारसने इसे पूरी तरह अपनाया है; क्योंकि यह ठलुवोंका नगर है और इसे मूर्ख और मूढ़ अति प्रिय हैं और बाबा तुलसीदास भी कह गये हैं—सबसे भले हैं मूढ़। भोले बाबाके नगरमें भोले लोग ही ठठाकर हँस सकते हैं और यह सबसे बड़ी विरासत है जिसे सँजोकर रखना है।
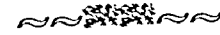
काशी-स्तुति

सेइअ सहित सनेह देह भरि, कामधेनु कलि कासी। समनि सोक-संताप-पाप-रुज, सकल-सुमंगल-रासी॥
मरजादा चहुँओर चरनबर, सेवत सुरपुर-बासी। तीरथ सब सुभ अंग रोम सिवलिंग अमित अविनासी॥
अंतरऐन ऐन भल, थन फल, बच्छ बेद-बिस्वासी। गलकंवल वरुना बिभाति जनु, लूम लसति, सरिताऽसी॥
दंडपानि भैरव बिषान, मलरुचि-खलगन-भयदा-सी। लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा-सी॥
मनिकर्निका बदन-ससि सुंदर, सुरसरि-सुख सुखमा-सी। स्वारथ परमारथ परिपूरन, पंचकोसि महिमा-सी॥
बिस्वनाथ पालक कृपालुचित, लालति नित गिरिजा-सी। सिद्धि, सची, सारद पूजहिं मन जोगवति रहति रमा-सी॥
पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गव्य सुपंचनदा-सी। ब्रह्म-जीव-सम रामनाम जुग, आखर बिस्व बिकासी॥
चारितु चरति करम कुकरम करि, मरत जीवगन घासी। लहत परमपद पय पावन, जेहि चहत प्रपंच-उदासी॥
कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति कला-सी। तुलसी बसि हरपुरी राम जपु, जो भयो चहै सुपासी॥

(विनय-पत्रिका)
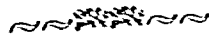
व्रजके व्रतोत्सव-त्योहार

(प्रो० श्रीगोविन्दजी शर्मा, निदेशक)

श्रीगोपालकृष्णके सहस्रों नामोंमें कुछ नाम हैं—'**नित्योत्सवो नित्यसौख्यो नित्यश्रीर्नित्यमङ्गलः।**' (श्रीगोपाल-सहस्रनाम १३४) अर्थात् वे नित्य उत्सवमय, सदा सुखसौख्यमय, सतत श्रीशोभामय और मङ्गलमय हैं। सम्भवतः इसी कारण व्रजमण्डल भी नित्य उत्सवमय क्षेत्र है। कहावत है कि व्रजमें '*सात वार और नौ त्योहार*' होते हैं। प्रतिदिन कोई-न-कोई उत्सव या त्योहार रहता है। किसी-किसी दिन तो दो-दो, तीन-तीन त्योहार पड़ जाते हैं। व्रज विशेषतः वृन्दावन तो श्रीकृष्णका देहस्वरूप बताया गया है—'**पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम्**' अतः यह भी भगवद्विग्रहकी भाँति नित्योत्सवमय है।

समुद्रमें सरिताओंके समान समस्त देवी-देवता श्रीकृष्णमें समाहित हो जाते हैं। भारतके प्रायः सभी प्रदेशोंके भक्तजन दूर-दूरसे आकर व्रज-वृन्दावनवासी बन गये हैं। उनके अपने स्थानोंके व्रत, उत्सव, त्योहार आदि भी व्रजसंस्कृतिमें संनिविष्ट हो गये हैं। यह भी एक कारण है व्रजके उत्सवबाहुल्यका।

भगवान्‌की भक्ति दो प्रकारकी बतायी गयी है—वैधी और रागानुगा। रसमय ब्रह्म श्रीकृष्णको रागानुगा भक्ति अत्यन्त प्रिय है। उनके अधिकतर भक्त भी रागमार्गका ही अनुसरण करते हैं। अतः व्रजमें विधि-निषेधपर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। यहाँके व्रतोत्सव, पर्व और त्योहार विधि-विधानमय कम, रसमय अधिक होते हैं। मूल व्रजवासी अनुरागको अधिक महत्त्व देते हैं। प्रेमकी प्रधानताके साथ आनन्द, उल्लास एवं मस्ती व्रजके उत्सव-त्योहारोंकी विशेषता है।

भारतीय संस्कृतिमें, विशेषतः हिन्दुओंमें व्रतोंकी बहुत महिमा है। सम्पूर्ण देशमें व्रतोंका व्यापक प्रचलन है। सभी प्रदेशों, जातियों एवं वर्गोंके नर-नारी अनेक प्रकारके व्रतोंका पालन करते हैं। इनमें कोई व्रत आधे दिनका, कोई पूरे दिनका, कोई अधिक दिनों—सात, नौ, एक मास या एकाधिकमासोंका होता है। अपनी-अपनी रुचि, श्रद्धा अथवा कामनाके अनुसार स्त्री-पुरुष इनका पालन करते हैं। व्रज भी इनसे सर्वथा अछूता नहीं। पुण्यप्राप्ति या इष्टकामनासिद्धिके इच्छुकजन व्रजमें भी व्रत-उपवास आदि करते हैं। व्रतसे तात्पर्य है कोई नियमविशेष। व्रतमें भोजन ग्रहण किया जाता है। भोजनका भी कोई विशेष नियम होता है, जैसे—एक बार खाना, अन्न न खाकर फलाहार या दुग्धाहार ग्रहण करना, कोई विशेष अन्न ग्रहण करना आदि। उपवासमें प्रायः निराहार रहा जाता है। कुछ लोग निर्जल उपवास भी करते हैं।

पुण्यसंचयके लिये व्रजमें वैष्णवजन अधिकतर एकादशीका व्रत या उपवास करते हैं। इसमें अन्न नहीं खाया जाता। व्रजवासी कूटू, सिंघाड़ेके आटेकी पूरियाँ, हलवा, साँवाँ, आलू और विविध प्रकारके फल प्रायः सभी व्रतोंमें खा लेते हैं। दूध या मावेसे बनी सामग्री उनको बहुत भाती है। इनके पक्वान्नोंका तो कहना ही क्या? अपनी-अपनी स्थितिके अनुसार खोएके लड्डू-पेड़े, मलाईके पुए, मखानेकी खीर, रबड़ी इत्यादिका भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण किया जाता है। व्रत चाहे एकादशीका हो, चाहे श्रीकृष्णजन्माष्टमीका अथवा शिवरात्रिका। हाँ, शास्त्रीयमार्गका अधिक अनुगमन करनेवाले कुछ मर्यादी वैष्णव, साधु-संत इनमें उपवास भी करते हैं। व्रजके कुछ सम्प्रदायोंमें सभी प्रकारके व्रत एवं उपवासोंका निषेध है। भगवत्प्रसादको सर्वोपरि समझकर उनके अनुयायी प्रतिदिन प्रसाद पाते हैं।

व्रजकी नारियाँ करवाचौथ, अहोई अष्टमी और संकष्टी चौथको दिनभर निर्जल उपवास करती हैं। सायंकाल खूब पक्वान्न बनाये जाते हैं—पूआ, पूरी, चूरमा, कचौड़ी, पकौड़ी आदि। शीतकालमें बाजरे और तिलकी मीठी टिकियाँ भी। रातमें चन्द्रमाको अर्घ्य देकर और पूजन कर भोजन ग्रहण किया जाता है। इन व्रतोंकी लोककथाएँ हैं, जिन्हें स्त्रियाँ पूजाके समय सुनती-सुनाती हैं।

व्रजमें वैशाख और कार्तिकमास अतीव पवित्र एवं पुण्यप्रद माने जाते हैं। इनमें विशेष व्रत या नियम धारण किये जाते हैं। कार्तिकमासको यहाँ दामोदरमास कहा जाता है, जो कृष्णको अत्यन्त प्रिय है—'**कृष्णप्रियो हि कार्तिकः, कार्तिकः कृष्णवल्लभः।**' इसी महीनेमें माता यशोदाने अपने माखनचोर कन्हैयाको ऊखलमें बाँधकर 'दामोदर' बनाया था और परब्रह्मकी प्रेमपरवशताको प्रमाणित किया था। कार्तिकमें दूर-दूरके श्रीकृष्णभक्त व्रज-वृन्दावनमें आते हैं और नियमसेवा करते हैं। इन नियमोंमें प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें

प्राय: सभी मन्दिरोंमें पञ्चाङ्गश्रवण होता है। प्रतिपदासे नवमीतक देवीमन्दिरोंमें विशेष पूजन-हवन, यज्ञादि होते हैं। व्रजवनिताएँ प्रतिदिन दुर्गापूजन और अष्टमीका उपवास करती हैं। अष्टमी, नवमीको कन्या लाँगुराके रूपमें बालिका-बालकोंको पूरी, पूआ, हलवा आदि खिलाकर वस्त्र-दक्षिणा दी जाती है। वृन्दावनके कात्यायनीपीठमें बृहदोत्सव होता है; क्योंकि वृन्दावन शक्तिपीठ और कात्यायनी व्रजगोपियोंद्वारा पूजिता देवी हैं, जो कृष्णप्राप्तिमें सहायिका हैं। नरी-सेमरी नामक गाँवमें भी नौ दिनतक विशाल मेला लगता है, जिसमें दूर-दूरके लोग आते हैं। ये देवी श्रीराधाकी सखियाँ बतायी जाती हैं, जो अब शक्तिरूपमें पूजित हैं। एकादशीको मन्दिरोंमें गुलाबडोल सजाये जाते हैं। गुलाबपुष्पोंसे निर्मित डोलोंमें श्रीयुगल (राधा-कृष्ण) रातके समय झूला झूलते हैं। पूर्णिमाको श्रीहनुमान्‌जीकी जयन्तीपर मानसपाठ, भोग-भण्डारोंका आयोजन किया जाता है।

वैशाखमें स्त्रियाँ वैशाख-स्नान करती हैं। अक्षयतृतीयाके दिन सत्तूका भोग लगाया जाता है और दान किया एवं खाया जाता है। इसे चन्दनयात्रा भी कहते हैं। आराध्यके श्रीअङ्गोंको चन्दनचित्रोंसे अलंकृत, चर्चित किया जाता है। गरुडसहित गरुडगोविन्दके चन्दनचर्चित विग्रहके निरावरणदर्शन केवल इसी दिन होते हैं। वृन्दावनमें श्रीबाँकेविहारीके चरणदर्शन सालमें एक बार इसी तिथिको होते हैं। दूर-दूरसे आये भक्तोंकी अपार भीड़ होती है। नृसिंह-जयन्तीपर मथुरा-वृन्दावनमें नृसिंहलीलाएँ होती हैं। नृसिंह, वाराह, गणेश आदिके मुखौटे और वेष धारण कर पूरी रात और पूर्णिमाको दोपहरतक सड़कों, गलियों एवं मन्दिरोंमें नृत्य किया जाता है। वैशाख पूर्णिमाको वृन्दावनमें स्वयं प्रकट श्रीराधारमण देवविग्रहका प्राकट्यदिवस पञ्चामृत महाभिषेक-महोत्सवसहित सम्पन्न होता है।

ज्येष्ठ पूर्णिमाको मन्दिरोंमें जलयात्रा-महोत्सव मनाया जाता है। पुष्पकुञ्जों, फूल-बँगलोंमें आराध्यको विराजमान कराकर फौआरे चलाये जाते हैं। ग्रीष्म-ऋतुमें मन्दिरोंमें प्राय: फूल-बँगले बनाये जाते हैं और फुहारे चलाये जाते हैं। शीतलभोग भी अर्पित किया जाता है। व्यासपूर्णिमाको समस्त स्थानोंमें गुरुपूजन किया जाता है। दूर-दूरसे शिष्यगण व्रज-वृन्दावनमें आकर अपने गुरुओंकी पूजा-अर्चना करते हैं। आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको रथयात्राके दिन ठाकुरजी रथमें विराजमान होते हैं। वृन्दावनकी ज्ञानगूदड़ीमें अनेक मन्दिरोंके रथ आकर उसकी परिक्रमा करते हैं। इन रथोंमें श्रीजगन्नाथजीके दारुविग्रह समारूढ रहते हैं।

श्रावणमासमें व्रजके झूले तो भारतविख्यात हैं। श्रीवल्लभसम्प्रदायमें ठाकुरजी पूरे श्रावणमास झूला झूलते हैं। अन्य मन्दिरोंमें श्रावण शुक्ल तृतीया—हरियाली तीजसे रक्षाबन्धन—पूर्णिमातक हिण्डोले सजाये जाते हैं। वृन्दावनमें श्रीबाँकेविहारी तीजकी रातको ही सोने-चाँदीके गङ्गा-जमुनी विशाल हिण्डोलेमें झुलाये जाते हैं। अन्य मन्दिरोंमें प्रत्येक रात्रिको सोने-चाँदी, फूल-पत्तियों, कदलीस्तम्भों आदिके झूलोंमें दर्शन होते हैं। मथुरामें श्रीद्वारकाधीशकी घटाएँ सुप्रसिद्ध हैं। किसी दिन गुलाबी घटा, किसी दिन हरी घटा, किसी दिन काली घटा। जैसी घटा होती है सारे पर्दे, पिछवाई, हिण्डोले, ठाकुरजीके वस्त्रालंकार—सभी उसी रंगके होते हैं। इनमें काली घटाकी प्रसिद्धि बहुत अधिक है। रक्षाबन्धनके दिन बहनें भाइयोंको राखी बाँधती हैं। श्रावणमासमें घेवर, फेनी और सेवइयोंका अधिक प्रचलन है। हरियाली तीजसे एक दिन पूर्व बहनों और बहुओंको सिंधारा दिया जाता है। इसमें वस्त्र, सौभाग्यसामग्री, घेवर, फेनी, फल आदि सभी कुछ सम्मिलित होता है। बरसानेमें श्रीराधारानीको सिंधारा समर्पित कर श्रद्धालु हिण्डोलेमें उनके दर्शन कर गद्‌गद हो जाते हैं। ठाकुरजीको मालपुओंका विशेष भोग पूरे झूलनोत्सवमें निवेदित किया जाता है।

भाद्रपदमास भी महोत्सवोंसे भरपूर है। श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीका उत्सव सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें घर-घर, मन्दिर-मन्दिरमें मनाया जाता है। अधिकतर लोग व्रत रखते हैं और रातको बारह बजेके बाद ही पञ्चामृत या फलाहार ग्रहण करते हैं। मथुराके जन्मस्थानमें विशेष आयोजन होता है। सवारी निकाली जाती है। दूसरे दिन नन्दोत्सवमें मन्दिरोंमें दधिकाँदो होता है। फल, मिष्टान्न, वस्त्र, बर्तन, खिलौने और रुपये लुटाये जाते हैं, जिन्हें प्राय: सभी दर्शनार्थी लूटकर धन्य होते हैं। गोकुल, नन्दगाँव, वृन्दावन आदि नगरोंमें इसकी बड़ी धूम रहती है।

भाद्रपद-शुक्ल षष्ठीको श्रीबलदेवजीके जन्म-दिनपर बलदेव (दाऊजी)-में विशेष मेला लगता है, जो कई दिनोंतक चलता है। व्रजके अन्य मन्दिरोंमें भी बलदेवछठपर उत्सव होते हैं, जिनमें खीर, मालपुओंका विशेष भोग अर्पित किया जाता है। इसी प्रकार श्रीराधाष्टमी भी समस्त

व्रजका महा-महोत्सव है। विशेषकर रावल, बरसाने और वृन्दावन—श्रीराधाके धामोंमें इसका अत्यन्त रसमयरूप दृष्टिगोचर होता है। वृन्दावनका राधावल्लभमन्दिर इसका प्रधान केन्द्र है। बरसाने और वृन्दावनमें एक रात पहले श्रीजीके मन्दिर तथा श्रीराधावल्लभमन्दिरमें ढाँढी-ढाँढा नृत्य एवं समाज-गायनसे उत्सवका समारम्भ होता है। अष्टमीको दोपहरतक दधिकाँदो और लूट होती है। श्रीराधावल्लभमन्दिरमें गोस्वामीगण हल्दीमिश्रित दहीसे एक-दूसरेको स्नान कराते हुए नृत्य करते हैं और *'राधारानीने जनम लियौ है'* गा-गाकर मस्त हो जाते हैं। रात्रिमें श्रीबाँकेविहारीमन्दिर और श्रीराधावल्लभ-मन्दिरकी चाव (शोभायात्रा) नगरके प्रधान मार्गोंसे होती हुई निधिवन और रासमण्डलतक जाती है। इसमें अनेक बैण्ड, शहनाई, धार्मिक झाँकियाँ और दूरस्थ प्रदेशोंसे आये भक्तोंकी नाचती-गाती कीर्तनमण्डलियाँ होती हैं। राजमार्गोंको विद्युत्-बल्बों, बन्दनवारों, द्वारोंसे सजाया जाता है और स्थान-स्थानपर शीतल जल, शर्बत, मिष्टान्न आदिसे सभीका सत्कार किया जाता है। प्रात:कालसे लेकर पूरी राततक सारा वृन्दावन राधारससागरमें निमग्न रहता है, *'राधे-राधे, जै श्रीराधे'* की मधुर ध्वनियों एवं विविध कीर्तनधुनोंसे गुंजित रहता है। अगली रात नवमीको श्रीस्वामी हरिदासजीकी शोभायात्रा श्रीस्वामी हरिदास-सेवा-संस्थानसे निकाली जाती है। बरसानेमें इसी अवसरपर बूढ़ी लीलाएँ होती हैं, जिनमें गहबरवनकी दानलीला बहुत विख्यात है।

भाद्रपदकी अनन्तचतुर्दशीको महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके कोई भी वंशज गोस्वामी मथुराके विश्रामघाटपर संकल्प लेकर चौरासी कोसकी व्रजयात्रा प्रारम्भ करते हैं। उनके साथ सहस्रों श्रद्धालु यात्री व्रजकी परिक्रमा करते हैं। लगभग डेढ़ मासतक चलनेवाली इस यात्रामें अनेक प्रकारके व्रत या नियम धारण कर नंगे पाँव यात्री श्रीकृष्णकी विभिन्न लीलास्थलियोंके दर्शन करते हुए गाँव-गाँव, वन-वनमें घूमते, रात्रिविश्राम करते, कृष्णमय हो जाते हैं। रातको जहाँ निवास रहता है, वहाँ डेरा-तम्बुओंका नगर-सा बस जाता है। भजन-कीर्तन, कथाप्रवचन और रासलीलानुकरण आदिका आयोजन भी रहता है। श्रीगिरिराजगोवर्धनमें छप्पनभोग (अन्नकूट) आदिके दर्शन कराये जाते हैं। पूरे आश्विनमास और आधे कार्तिकमासतक यह व्रजयात्रा श्रद्धालु भक्त यात्रियोंके लिये एक बड़ा रोमाञ्चकारी आध्यात्मिक अनुभव होता है।

इस व्रजयात्राकी बड़ी महिमा है। मानवदेहका परिमाण चौरासी अँगुल होता है। व्रज श्रीकृष्णका ही देहस्वरूप है इसे ब्रह्मका भौमरूप भी कहा गया है—**'गुणातीतं परब्रह्मव्यापकं व्रज उच्यते।'** एक प्रकारसे यह मानवकी अपनी ही अन्तर्यात्रा है। श्रीनन्द-यशोदाकी इच्छा थी भारतके विभिन्न तीर्थोंके दर्शन और यात्राकी। श्रीकृष्ण नहीं चाहते थे कि उनके माता-पिता वृद्धावस्थामें समूचे देशकी श्रमसाध्य यात्रा करें। इसलिये उन्होंने व्रजके चौरासी कोसकी पुण्यभूमिमें ही भारतके समस्त तीर्थोंको स्थापित कर दिया और माता-पिताके साथ व्रजयात्रा कर भारतयात्राका पुण्य प्राप्त किया। इस चौरासी कोसकी व्रजयात्रामें श्रीबदरी, केदार, रामेश्वर, जगन्नाथ आदि चारों धामों तथा अन्य तीर्थोंके दर्शन होते हैं। अब तो अनेक सम्प्रदायाचार्य, संतजन अपने शिष्यों, श्रद्धालुओंके साथ अलग-अलग व्रजयात्रा करते हैं, कोई पंद्रह दिनमें तो कोई एक मासमें। यह व्रजयात्रा सबसे पहले किसने प्रारम्भ की इसका श्रेय भी अलग-अलग सम्प्रदाय लेना चाहते हैं, किंतु इसके प्रथम प्रारम्भकर्ता तो स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं।

आश्विनमासके पितृपक्षमें व्रजका लोकोत्सव 'साँझी' भी व्रजकी कन्याओंद्वारा मनाया जाता है। वे अपने घरोंकी भीतपर गोबर, फूल-पत्ती, पन्नियों आदिसे प्रतिसन्ध्याको सुन्दर आकृतियाँ अङ्कित करती हैं और पूजा-आरती कर भोग लगाती हैं। इसका समापन विजयादशमीको कोट (किला) रचकर किया जाता है। व्रजके अनेक मन्दिरोंमें इसी पक्षमें फूलों और सूखे रंगोंसे कलापूर्ण साँझियाँ बनायी जाती हैं, जिनमें श्रीराधाकृष्णकी विविध लीलाओंका अङ्कन होता है। यह साँझी भी व्रजकी विशिष्ट कला है।

आश्विनमासके शुक्लपक्षमें गाँवों और नगरोंमें रामलीला भी आयोजित होती हैं। नवरात्रमें व्रत तथा दुर्गापूजनकी धूम रहती है। व्रजके देवीमन्दिरों और शक्तिपीठोंमें सुन्दर दर्शन, झाँकियाँ, चण्डीपाठ, हवन, कन्यापूजन आदि अनुष्ठित होते हैं। विशेषकर वृन्दावनमें बंगालकी भाँति स्थान-स्थानपर पण्डाल आदि सुसज्जित कर उनमें देवीप्रतिमाएँ पधरायी जाती हैं। उनके समक्ष रात्रिमें भजन, जागरण, छप्पनभोग आदिका आयोजन होता है। आगे आती है शरदपूनो।

कार्तिक नियम, सेवा, उत्सवों और त्योहारोंका महान

है। इसका आरम्भ चतुर्थीको करवाचौथके साथ होता है, जो महिलाओंका एक महत्त्वपूर्ण व्रत-त्योहार है। प्रत्येक सौभाग्यवती स्त्री और कन्याएँ भी अपने पति या भावी पतिकी कल्याणकामनासे करवाचौथका व्रत रखती हैं। कृष्णपक्षकी अहोई अष्टमीको पुत्र-संतानोंके मङ्गलहेतु अहोईका अङ्कन, पूजन कर कथा कही जाती है तथा पक्वान्नोंका भोग लगाया जाता है। यह भी महिलाओं—माताओंका व्रतोत्सव है। इस दिन मध्यरात्रिमें श्रीराधाकुण्ड-स्नानका बड़ा माहात्म्य है। श्रद्धालु श्रीकृष्णभक्त दूर-दूरसे आकर रात्रिमें राधाकुण्डमें गोते लगाते हैं और 'श्रीराधाकृपाकटाक्षस्तोत्र' का पाठ करते हैं, जो आशु प्रभूत फलदायी माना जाता है। पूरी रात्रि स्नानार्थियोंका मेला लगा रहता है। मान्यता है कि जिनकी कोई संतान नहीं होती यदि वे श्रद्धासहित अहोई अष्टमीकी अर्ध-रात्रिको राधाकुण्डमें स्नान करें तो श्रीराधारानीकी कृपासे उनकी गोद और गृहमें संतानकी किलकारी गूँजने लगती है।

धनतेरससे दीपावलीका त्योहार शुरू हो जाता है। तेरसको मन्दिरोंमें ठाकुरजी सोने-चाँदीकी हटरियोंमें विराजमान हो जाते हैं। दीपावलीको घर-घर लक्ष्मी-गणेशपूजन और पटाखे-फुलझड़ियोंसे त्योहार मनाया जाता है। गोवर्धनमें मानसीगङ्गाके किनारे सारे घाटोंकी सीढ़ियोंको दीपमालाओंसे सजाया जाता है। उनका प्रतिबिम्ब सरोवरके जलमें एक अद्भुत दृश्यकी सृष्टि करता दृष्टिगोचर होता है। दूर-दूरके लाखों यात्री इसका आनन्द लेने और अन्नकूटके अवसरपर गोवर्धनकी पूजा-परिक्रमा करने आते हैं। अगले दिन प्रतिपदाको पड़नेवाला अन्नकूट तो व्रजका विशेष त्योहार है, जो घर-घर, मन्दिर-मन्दिरमें मनाया जाता है। इस दिन श्रीकृष्णने श्रीगोवर्धनकी पूजा कर भाँति-भाँतिके पक्वान्नोंसे उनको भोग लगाया था। इस दिन नये अन्न, चावल, मूँग, बाजरा और कढ़ी घर-घरमें बनते हैं और भोग लगाया जाता है। गोबरसे गोवर्धन बनाकर सारा परिवार बड़े समारोहसे उनकी पूजा-परिक्रमा करता है। दूसरे दिन उसी स्थानको परिमार्जित—लीपकर घरकी स्त्रियाँ अपने भाइयोंकी मङ्गलकामनाहेतु भैयादूजकी कहानी सुनती हैं। फिर भाइयोंके घर जाकर उनका तिलक करती हैं और मिष्टान्न, पक्वान्न खिलाकर दक्षिणा प्राप्त करती हैं। मथुरामें विश्रामघाटपर भाई-बहनों द्वारा परस्पर हाथ पकड़कर यमुनास्नान करनेका बड़ा माहात्म्य है। कहते हैं कि यमराजने अपनी बहन यमुनाको वर दिया था कि जो भाई-बहन यमद्वितीयापर यमुनास्नान करेंगे, उन्हें यमयातना नहीं भोगनी पड़ेगी। यमद्वितीयापर उत्तर-भारतके लाखों यात्री मथुरामें यमुनास्नानकर पुण्यार्जन करते हैं।

अक्षयनवमी और देवोत्थान एकादशीको हजारों श्रद्धालु मथुरा-वृन्दावन, गरुडगोविन्दकी अठारह कोसी परिक्रमा करते हैं। अर्धरात्रिसे अगली सन्ध्यातक ये चलती रहती हैं। आश्विन और कार्तिककी पूनों 'शरत्पूर्णिमाएँ' कही जाती हैं। शरत्पूर्णिमाको श्रीकृष्णने व्रजगोपियोंके साथ महारास किया था। गौड़ीय सम्प्रदायके मन्दिरोंमें कार्तिक पूर्णिमाको रासपूर्णिमा माना जाता है और महारासकी झाँकियोंके दर्शन कराये जाते हैं। अन्य सम्प्रदाय आश्विनमें शरदोत्सव मनाते हैं। ठाकुरजीको श्वेत पोशाकों, आभूषणोंसे अलंकृतकर शरच्चन्द्रिकामें विराजमान कराकर खीरका भोग लगाते हैं। वृन्दावनमें इसकी मनोहारिणी झाँकियाँ सजायी जाती हैं। श्रीबाँकेविहारी सालमें एक दिन शरत्पूर्णिमाकी रात्रिको ही लकुट-मुकुट, कटिकाछनी धारणकर मुरली बजाते दर्शन देते हैं। स्थान-स्थानपर महारासकी लीलाएँ आयोजित होती हैं।

मार्गशीर्षकी पूर्णिमाको दाऊजीके गाँवमें श्रीबलरामका प्राकट्योत्सव—पाटोत्सव मनाया जाता है। वहाँ कई दिनोंतक मेला लगता है। दाऊजीको व्रजका राजा और जाग्रत् देव माना जाता है। लाखों भक्त उनके दर्शन कर माखन-मिस्रीका भोग लगाते हैं। हण्डा करते हैं अर्थात् बड़ी-बड़ी हाँड़ियोंमें नैवेद्य अर्पित करते हैं।

पौष खरमास है। इसमें व्रतोत्सव या त्योहार नहीं होते। मन्दिरोंमें गरम-गरम खिचड़ीका भोग लगाया जाता है। वृन्दावनमें श्रीराधावल्लभलालका खिचड़ी-महोत्सव अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो आधे पौषसे आधे माघतक चलता है। प्रातःकाल ठाकुरजीको घी-मेवाके साथ सिद्ध की गयी गरमागरम खिचड़ीका भोग लगाया जाता है, जो 'राधावल्लभी खिचड़ी'-के नामसे विख्यात है और दूर-दूरतक भेजी-मँगायी जाती है। जैसे श्रीबाँकेविहारीके दूध-भातके भोगकी महिमा है, वैसे ही राधावल्लभजीकी खिचड़ीकी महिमा है। इस उत्सवमें श्रीराधावल्लभलालकी विविध झाँकियोंके दर्शन भी भक्तोंको कराये जाते हैं। कभी वे शिववेश धारण करते हैं, तो कभी बाँकेविहारीकी रूपसज्जा। कभी बलदाऊ बन जाते हैं, तो कभी श्रीराधाकृष्णके युगल-शृङ्गारस्वरूपमें दर्शन देते हैं।

व्रजके सभी सुप्रसिद्ध ठाकुरोंके रूपमें उनके दर्शन एकमें अनेकता और साम्प्रदायिक समन्वय एवं सौहार्दका अतीव सराहनीय उदाहरण है। उत्सवमें समाज-गायन भी होता है।

माघके प्रारम्भमें संकष्टचतुर्थी या संकटचौथ स्त्रियोंका त्योहार है, जो पति-संतानकी कल्याणकामनासे करवाचौथकी भाँति मनाया जाता है। माघमास भी पवित्र और पुण्यप्रद है। इसमें महिलाएँ माघस्नान यमुना-सरोवरोंमें करती हैं। मकर-संक्रान्तिके दिन स्नान-दान, खिचड़ी-भोजनकी सर्वत्र धूम रहती है। तिलके लड्डू, रेवड़ी-गजक, खिचड़ी आदिका दान बड़ा पुण्यदायक माना जाता है। माघ शुक्ल वसन्तपञ्चमीसे व्रजमें होली या फागका श्रीगणेश हो जाता है। कुछ वर्षों पहलेतक वसन्तपञ्चमीको आबाल-वृद्ध प्रायः सारे व्रजवासी वसन्ती परिधान धारणकर मस्तकपर केसरिया चन्दन और कानोंमें सरसोंके वसन्तीपुष्प लगाकर वसन्तका स्वागत करते थे। घर-मन्दिरोंमें केसरिया भात, खीर और पीले पक्वान्नोंका भोग लगाया जाता था। ठाकुरद्वारोंमें सेव्य विग्रहोंको वसन्ती धागे धारण कराने और पीले परदोंसे सजाया जाता है। पुष्पोंसे तो प्रायः अब भी सजावट होती है। होलीके रसिया कृष्णके कपोलों एवं कपालपर लाल गुलाल लगानेका भी आरम्भ हो जाता है। होली और फाग-गायन मन्दिरों तथा संगीतसमाजोंमें शुरू हो जाता है। गाँव-नगरोंमें होलिकादहनके स्थानोंपर होलीका 'डूँड' (मोटा डण्डा या स्तम्भ) गाड़ दिया जाता है। पूर्णिमाको होलीकी रात्रिमें होली जलायी जाती है।

व्रजवासी स्वभावतः शिवभक्त हैं, क्योंकि परमवैष्णव शम्भु भक्तिके दाता माने जाते हैं। शिवरात्रिको जागरण और चतुर्दशीको व्रतपूजनद्वारा भगवान् शंकरको प्रसन्न किया जाता है। व्रजके चार महादेव—मथुरामें भूतेश्वर, वृन्दावनमें गोपीश्वर, गोवर्धनमें चक्रेश्वर (चकलेश्वर) और कामवनमें कामेश्वर शिवालयोंमें प्रातःकालसे रात्रितक बड़ी भीड़ बनी रहती है। काँवरधारी एक ही दिन-रातमें इन चारों महादेवोंपर गङ्गाजल चढ़ानेका व्रत पूरा करते हैं। 'बम-बमं भोले'के गीतों और जयध्वनियोंसे समूचा व्रज गुञ्जायमान रहता है।

फाल्गुन शुक्ल नवमीको बरसानेकी रंगीली गलीमें लट्ठमार होली होती है। नन्दगाँवके कृष्णसखा 'हुरिहारे' बरसानेमें होली खेलने आते हैं, जहाँ बरसानेवाली श्रीराधाजीकी सखियाँ लाठियोंसे उनका स्वागत-सत्कार करती हैं। सखागण मज़बूत ढालोंसे अपने सिर और शरीरकी रक्षा करते हैं। खून निकल आता है तो व्रजरज लगा लेते हैं। इस होलीका आनन्द लेने हजारों भक्त नन्दगाँव बरसानेकी गलियोंमें उमड़ पड़ते हैं; क्योंकि अगले दिन सायंकाल ऐसी ही लट्ठमार होली नन्दगाँवमें होती है। वहाँ नन्दगाँवकी नारियाँ होती हैं और बरसानेके पुरुष। आगामी दिन एकादशीसे व्रज-वृन्दावनके सारे मन्दिरों और नगर-गाँवोंमें रंगीली होली आरम्भ हो जाती है। टेसूके रंगकी पिचकारी और लाल गुलालके मुक्तहस्त प्रयोगसे मन्दिर, घर एवं हाट-बाजार रंगरञ्जित हो जाते हैं। एक तो व्रजवासी स्वभावसे ही मस्त होते हैं, उसपर फाल्गुनकी मादकता उनकी मस्तीको और भी रंगत दे देती है। यह व्रजका सर्वप्रसिद्ध त्योहार है। रसिक भक्त नागरीदासजी (महाराज सावन्तसिंह)-ने लिखा भी है—*'व्रजकी सोभा फाग ते। व्रज ते सोभित फाग॥'* फाल्गुन लगते ही फाग और होलीके रसियोंका गायन, व्रजके गाँव-गाँव, नगर-नगरमें प्रारम्भ हो जाता है। होलीकी रात्रि फालैन नामक गाँवमें पण्डा जलती होलीके बीचसे निकलता है। उसके साथ अन्य साहसी श्रद्धालु भी निकल जाते हैं। मुखराई नामक ग्राममें चरकुला नृत्य होता है। चरकुला पहिया-जैसा होता है, जो बड़ा भारी होता है। कई चरकुलोंको ऊपर-नीचे लगाकर एक झाड़-सा बना लेते हैं। उनमें दीपक जड़े होते हैं, जिन्हें जलाकर नगाड़ोंकी ताल और रसियोंकी धुनपर अनेक व्रजवनिताएँ नृत्य करती हैं। मुखराई श्रीराधारानीकी ननसार (ननिहाल) है। प्रसिद्ध है कि श्रीराधाके जन्मका समाचार सुनकर उनकी नानीने हर्षविभोर होकर चरकुला नाच किया था। अब यह होलीपर किया जाता है। चैत्र कृष्ण द्वितीयाको दाऊजीका दुरंगा बलदेवग्राममें और बठैनमें होता है। बठैनमें राधारानी अपने जेठ बलदेवजीसे होली खेलती हैं। दाऊजीका हुरंगा वहाँके पण्डोंके परिवारोंके बीच होता है। जिसमें पुरुष स्त्रियोंपर रंग फेंकते हैं और स्त्रियाँ उन्हें कोड़े मार-मारकर भगाती हैं। इस प्रक्रियामें वे उनके कपड़े फाड़-फाड़कर कोड़े बना डालती हैं।

प्रेमप्रधान व्रजप्रदेशमें लोक और शास्त्रके व्रतोत्सव त्योहारोंका सुन्दर समन्वय, विभिन्न प्रदेशोंकी संस्कृतियोंका संगम और समस्त भारतका एकीकृत स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। श्रीकृष्णके व्यापक विराट् व्यक्तित्वके प्रभावसे यह 'लघुभारत' ही है। [प्रेषक—श्रीपुरुषोत्तमलालजी धानुका]

नाथद्वारामें श्रीनाथजीके महोत्सव

(श्रीरामनारायणजी चंडक)

[शङ्करजी माता पार्वतीजीको 'श्रीगोपालसहस्रनाम' उनमें वे गोपालजीका नाम 'नित्योत्सवः' कह ोत्सवो नित्यसौख्यो नित्यश्रीर्नित्यमङ्गलः' (१३४)। उत्सवप्रिय प्रभु श्रीनाथजी नाथद्वारामें साक्षात् होकर भक्तों एवं गोस्वामी बालकोंके द्वारा नित्य ; क्योंकि श्रीनाथजी स्वयंप्रकट हैं उनका प्राकट्य र्णन गर्गसंहितामें इस प्रकार वर्णित है—

राजगुहामध्यात्सर्वेषां पश्यतां नृप।
:सिद्धं च तद्रूपं हरेः प्रादुर्भविष्यति॥
ाथो रङ्गनाथो द्वारकानाथ एव च।
नाथश्चतुष्कोणे भारतस्यापि पर्वते॥
र्णां भुवि नाथानां कृत्वा यात्रां नरः सुधीः।
पश्येद्देवदमनं स न यात्राफलं लभेत्॥
नाथं देवदमनं पश्येद्गोवर्धने गिरौ।
ुर्णां भुवि नाथानां यात्रायाः फलमाप्नुयात्॥
(३।७।३०, ३३, ३६-३७)

श्रीनारदजी राजा बहुलाश्वसे कहते हैं—] हे नृप! की गुफाके मध्यभागसे सबके देखते-देखते श्रीहरिका द्ध रूप प्रकट होगा। भगवान् भारतके चारों कोनोंमें जगन्नाथ, श्रीरङ्गनाथ, श्रीद्वारकानाथ और श्रीबदरीनाथके प्रसिद्ध हैं। नरेश्वर! भारतके मध्यभागमें भी वे नाथके नामसे विद्यमान हैं। उन सबका दर्शन करके ायण हो जाता है। जो विद्वान् पुरुष इस भूतलपर चारों ो यात्रा करके मध्यवर्ती देवदमन श्रीगोवर्धननाथका नहीं करता, उसे यात्राका फल नहीं मिलता। जो न पर्वतपर देवदमन श्रीनाथका दर्शन कर लेता है, उसे र चारों नाथोंकी यात्राका फल प्राप्त हो जाता है।

इसी कारणसे सम्पूर्ण भारत ही नहीं, विदेशोंमें भी ाले सनातनी हिन्दू भगवान् श्रीनाथजीके दर्शन करने वहाँ होनेवाले नित्यके उत्सव एवं विशेष महोत्सवमें ालित होकर अपने-आपको धन्य करते हैं। वैष्णव ंकी प्रगाढ़ भक्तिके कारण श्रीनाथजीमें होनेवाले सम्पूर्ण व एवं महोत्सव विशिष्ट रीतिसे सम्पन्न होते हैं। साथ ही नाथद्वारामें भी श्रीनाथजीका शृङ्गार और भोग ऋतुओंके अनुसार ही होता है। इस कारण उत्सवोंका आकर्षण अत्यन्त सुन्दर होता है।

यों तो नाथद्वारामें श्रीनाथजीके मन्दिरमें नित्य ही मनोरथ एवं उत्सव होते हैं, तथापि उनमेंसे कुछ प्रमुख उत्सवोंका यहाँ अति संक्षेपमें वर्णन किया जा रहा है—

जन्माष्टमी—यों तो जन्माष्टमी सारे भारतवर्षमें मनायी जाती है, किंतु नाथद्वारामें बड़े भारी आनन्दसे यह उत्सव सम्पन्न होता है। प्रातःकाल मङ्गला-दर्शनमें प्रभुका पञ्चामृत होता है बादमें शृङ्गार होता है। रात्रिमें जागरणदर्शन होते हैं जो करीब दो घंटे होते हैं एवं मध्यरात्रिमें जन्मका महोत्सव होता है। महाभोगमें श्रीनाथजीको अनेकानेक पक्वान्नोंका भोग लगाया जाता है।

नन्दमहोत्सव—जन्माष्टमीके दूसरे दिन पलनाके दर्शन होते हैं। सोनेके पलनेमें ठाकुरजीको झुलाया जाता है। भक्त ग्वाल-बालके रूपमें बनकर दूध, दही, हल्दी आदि छिड़कते हैं। अपार जनसमूह इस उत्सवका दर्शन कर कृतकृत्य होता है।

राधाष्टमी—भाद्रपद शुक्ल अष्टमीको राधाष्टमी मनायी जाती है। इस अवसरपर प्रभुका भारी शृङ्गार होता है। राजभोगमें तिलक होता है।

दान-एकादशी—भाद्रपद शुक्ल एकादशीको दानका महोत्सव होता है।

वामनद्वादशी—भाद्रपद शुक्ल द्वादशीको वामन-द्वादशीका विशेष शृङ्गार होता है एवं प्रभुको धोती उपरना धारण कराया जाता है। राजभोगमें बालकृष्णजीका पञ्चामृत होता है।

श्रीहरिरायजीका उत्सव—यह आश्विन कृष्ण पञ्चमीको मनाया जाता है।

श्रीगोपीनाथजीका उत्सव—यह उत्सव आश्विन कृष्ण द्वादशीको होता है।

नवरात्र-उत्सव—आश्विन शुक्ल प्रतिपदासे नवमीतक प्रभुको अलग-अलग रंगके वस्त्र एवं आभरण पुष्टिमार्गकी

रीतिके अनुसार पधराये जाते हैं एवं ऋतुके अनुसार भोग लगाया जाता है।

दशहरा—सफेद जरीके वस्त्र, हीरा, माणिक्य एवं मोतीसे प्रभुका विशेष शृङ्गार होता है। सायं तिलकके बाद जवारे पधराये जाते हैं।

शरत्पूर्णिमा—आश्विन शुक्ल पूर्णिमाको प्रभुका सफेद जरीके वस्त्र, हीरेका मुकुट एवं हीरोंके आभरणसे शृङ्गार होता है। इस दिन शयनके दर्शन अंदर होते हैं। दूसरे दिन शयनमें शरत्के दर्शन कराये जाते हैं।

दीपावली—कार्तिक कृष्ण एकादशीसे ही तिलकायतके शृङ्गार आरम्भ हो जाते हैं। धनतेरसको हरी जरीके वस्त्रोंद्वारा भारी शृङ्गार एवं रूपचौदसको ठाकुरजीका अभ्यङ्ग होता है। राजभोगमें सोने-चाँदीका बंगला होता है। दीपावलीको सफेद जरीके वस्त्र एवं बहुत भारी शृङ्गार होता है। आजके दिन गोशालासे गायें नाथद्वारामें प्रवेश करती हैं। सायं 'कान्ह जगाई' होती है एवं रतनचौकमें नवनीत प्रभु विराजते हैं।

अन्नकूट—यह नाथद्वाराका सबसे बड़ा उत्सव है। दोपहरमें गोवर्धन-पूजा होती है। सायं अन्नकूटमें डेढ़ सौ मन चावलका ढेर लगाकर अन्नकूट (शिखर) बनाया जाता है। अनेक प्रकारकी सामग्री भोगमें आती है।

कार्तिक शुक्ल द्वितीया—आज 'भैयादूज'का उत्सव होता है।

कार्तिक शुक्ल अष्टमी—गोपाष्टमी—आजके दिन भगवान् श्रीकृष्ण सर्वप्रथम गो चराने पधारे थे। आज विशेष शृङ्गार होता है।

कार्तिक शुक्ल एकादशी—देवप्रबोधिनी एकादशीका डोलतिवारीमें मण्डप बनता है, उसमें बालकृष्णजी विराजते हैं एवं पञ्चामृत होता है।

मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा—आजके दिन रतनचौक एवं डोलतिवारी पक्वान्नोंसे भर दी जाती है एवं भारी उत्सव होता है।

पौष कृष्ण नवमी—श्रीगुसाँईजीका उत्सव मनाया जाता है। आज विशेषरूपसे जलेबी आरोगायी जाती है। इसे जलेबी-उत्सव कहते हैं।

मकर-संक्रान्ति—आज भारी शृङ्गार होता है एवं श्रीठाकुरजीको तिलका भोग लगता है।

माघ शुक्ल पञ्चमी—वसन्तपञ्चमी—आजसे ठाकुरजीको वसन्ती वस्त्र धारण कराये जाते हैं। ठाकुरजीके सम्मुख वसन्तका कलश स्थापित होता है।

फाल्गुन कृष्ण सप्तमी—पाटोत्सव—आजके दिन श्रीनाथजी नाथद्वारामें पाटपर विराजे थे।

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा—आजके दिन खूब गुलाल उड़ायी जाती है।

चैत्र कृष्ण प्रतिपदा (डोलोत्सव)—आजके दिन डोल बँधता है। उसमें नवनीत प्रभु पधारते हैं। भारी खेल होता है, चार दर्शन खुलते हैं। दर्शनोंमें भारी गुलाल उड़ाया जाता है।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा—संवत्सरोत्सव—आजके दिन भगवान्‌को पञ्चाङ्ग सुनाया जाता है। राजभोगमें फूलोंकी मण्डनी होती है।

चैत्र शुक्ल तृतीया—गणगौर—आजसे तीन दिनतक चूंढडीके भावसे पद होते हैं।

चैत्र शुक्ल नवमी—रामनवमीका महोत्सव मनाया जाता है। फूलोंकी मण्डनी आती है, बालकृष्णजीको पञ्चामृत-पान कराया जाता है।

वैशाख कृष्ण एकादशी—श्रीमहाप्रभुजीका उत्सव होता है। आजके दिन महाप्रभुजीका प्राकट्य चम्पारण्यमें हुआ था।

वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षयतृतीया)—आजके दिन श्रीनाथजीको मलयगिरि चन्दन धराया जाता है एवं शीतल सामग्रीका भोग लगता है। विशेषकर मोतीके आभरण धराये जाते हैं।

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी—नृसिंहचतुर्दशी—आज सन्ध्या-आरतीमें शालग्रामजीको पञ्चामृत स्नान कराया जाता है। ज्येष्ठ और आषाढ़में प्रभुके फूलोंके आभरण एवं फूलोंके वस्त्रादिसे शृङ्गार होते रहते हैं।

ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमी—श्रीजीमें नावका मनोरथ होता है। मनमोहनजी विराजते हैं।

ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा—स्नानयात्रा—आजके दिन ठाकुरजीको अभिषेक कराया जाता है। आजके दिन श्रीनाथजीको सवा लाख आमका भोग लगता है।

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया—रथयात्रा—आज भारी ार होता है। भगवान्‌के सम्मुख रजत-रथ रखा जाता है सवा लाख आमका भोग लगता है।

श्रावणमास—पूरे महीने मन्दिरमें हिंडोला होते हैं। । नया शृङ्गार होता है। विशेषकर हरियाली अमावस, ाइन तीज, पवित्रा एकादशी एवं राखीका भारी उत्सव है। रक्षाबन्धनपर ठाकुरजीको राखी धरायी जाती है।

पुरुषोत्तममास—पुरुषोत्तममासमें पूरे महीने तिथिके अनुसार सालभरके सब त्योहार प्रतीकात्मक रूपसे मनाये जाते हैं। नित्य नये शृङ्गार, भोग मनोरथ होते रहते हैं। सालभरके सब उत्सवोंकी झाँकी देखनेको मिलती है।

श्रीनाथजीके उत्सवका अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन यहाँ हुआ है। जहाँ प्रभु साक्षात् विराजमान हैं एवं वल्लभ-कुलके बालकोंके द्वारा सेवा होती है, वहाँका वर्णन करना सामान्य बात नहीं है। उसका आनन्द तो स्वयं देखकर ही लिया जा सकता है।
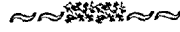
तीर्थगुरु पुष्करराजके प्रसिद्ध पर्व

(श्रीप्रदीपकुमारजी शर्मा)

जिस प्रकार देवताओंमें पुरुषोत्तम सर्वश्रेष्ठ हैं। वैसे ही में पुष्कर आदितीर्थ है—

यथा सुराणां सर्वेषामादिस्तु पुरुषोत्तमः।
तथैव पुष्करं राजंस्तीर्थानामादिरुच्यते॥

(पद्मपुराण)

इसे सिद्धतीर्थ माना गया है। कहते हैं—पुष्करमें जाना कठिन है (बड़े सौभाग्यसे होता है)। पुष्करमें तपस्या : है। पुष्करमें दान भी दुष्कर है और वास करना तो भी दुष्कर बताया गया है—

दुष्करं पुष्करं गन्तुं दुष्करं पुष्करे तपः।
दुष्करं पुष्करे दानं वस्तुं चैव सुदुष्करम्॥

(पद्मपुराण)

यह भी कहा गया है कि कोई सौ वर्षोंतक लगातार ोत्रकी उपासना करे या कार्तिक पूर्णिमाकी एक रात तीर्थमें वास करे—दोनोंका फल समान है—

यस्तु वर्षशतं पूर्णमग्निहोत्रमुपाचरेत्।
कार्तिकीं वा वसेदेकां पुष्करे सममेव तु॥

(पद्मपुराण)

सिद्धतीर्थ पुष्करराजकी जयघोषके साथ इन ो विशिष्टताएँ समापन होती हैं। राजस्थानके विशेषरूपसे । जनताके मानसमें पुष्करपर्व-मेला विशेष स्थान है।

'पद्मपुराण' के अनुसार सृष्टिके आदिमें पुष्करतीर्थके स्थानमें वज्रनाभ नामक एक राक्षस रहता था। वह बालकोंको मार दिया करता था। उसी समय ब्रह्माजीके मनमें यज्ञ करनेकी इच्छा जाग्रत् हुई। वे भगवान् विष्णुकी नाभिसे निकले कमलसे जहाँ प्रकट हुए थे, उस स्थानपर आये और वहाँ अपने हाथके कमलको फेंककर उन्होंने उस वज्रनाभ राक्षसको मार दिया। ब्रह्माजीके हाथका कमल जहाँ गिरा था, वहाँ सरोवर बन गया, यही पुष्करतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ, उसे पुष्कर कहते हैं।

चन्द्रनदीके उत्तर, सरस्वतीनदीके पश्चिम, नन्दन स्थानके पूर्व तथा कनिष्ठ पुष्करके दक्षिणके मध्यवर्ती क्षेत्रको ब्रह्माजीने यज्ञवेदी बनाया। इस यज्ञवेदीमें उन्होंने ज्येष्ठ पुष्कर, मध्य पुष्कर तथा कनिष्ठ पुष्कर—ये तीन पुष्करतीर्थ बनाये। ब्रह्माके यज्ञमें सभी देवता तथा ऋषि पधारे। ऋषियोंने आस-पास आश्रम बना लिये। भगवान् शङ्कर भी कपालधारी बनकर वहाँ पधारे।

यज्ञारम्भमें सावित्रीदेवीने आनेमें देर की। यज्ञ-मुहूर्त बीता जा रहा था। इसलिये ब्रह्माजीने गायत्री नामकी एक गोपकुमारीसे विवाह करके उन्हें यज्ञमें साथ बैठाया। जब सावित्रीदेवी आयीं तब ब्रह्माजीके पार्श्वभागमें गायत्रीको देख वे रुष्ट हो गयीं। वे पासके ही एक पर्वत-शिखरपर जाकर दूसरा यज्ञ करने लगीं। कहा जाता है कि यहीं भगवान् वाराह ब्रह्माजीकी नासाछिद्रसे प्रकट हुए। अतः इन तीन पुष्कर तीर्थोंके अतिरिक्त ब्रह्माजी, वाराहभगवान्,

कपालेश्वर शिव, पर्वतपर सावित्रीदेवी और ब्रह्माजीके यज्ञके प्रधान महर्षि अगस्त्य—ये सभी इस क्षेत्रके मुख्य देवता हैं।

जैसे प्रयाग तीर्थोंके राजाके रूपमें 'तीर्थराज' नामसे प्रसिद्ध है, वैसे ही पुष्कर तीर्थोंके गुरु माने जाते हैं। इस तीर्थको पुष्करराज भी कहते हैं। पुष्करकी गणना पञ्चतीर्थोंमें भी है। पञ्चतीर्थ इस प्रकार हैं—पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गया, गङ्गाजी और प्रभास। पञ्चसरोवरोंमें भी पुष्करकी गणना है। पञ्चसरोवर इस प्रकार हैं—मानसरोवर, पुष्करसरोवर, बिन्दुसरोवर, नारायणसरोवर तथा पम्पासरोवर।

राजस्थानके अजमेर शहरसे सात मीलकी दूरीपर पश्चिममें पुष्करतीर्थ स्थित है। जहाँ राजमार्गद्वारा जाया जाता है। पुष्करके किनारोंपर गौघाट, ब्रह्मघाट, कपालमोचनघाट, यज्ञघाट, बदरीघाट, रामघाट और कोटितीर्थ आदि घाट पक्के बने हैं। पुष्करसरोवरसे सरस्वतीनदीका उद्‌गम है, जो साबरमतीसे मिलनेके बाद लूनीनदी कही जाती है।

पुष्करसरोवर तीन हैं—ज्येष्ठ (प्रधान) पुष्कर, मध्य (बूढ़ा) पुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर। ज्येष्ठ पुष्करके देवता ब्रह्माजी, मध्य पुष्करके देवता भगवान् विष्णु और कनिष्ठ पुष्करके देवता रुद्र हैं। पुष्करका मुख्य मन्दिर ब्रह्माजीका है। यह सरोवरसे थोड़ी दूर ही है। मन्दिरमें चतुर्मुखी ब्रह्माजी, दाहिनी ओर सावित्रीदेवी, बायीं ओर गायत्री-देवीका मन्दिर है। पासमें एक ओर सनकादि मुनियोंकी मूर्तियाँ हैं। एक छोटेसे मन्दिरमें नारदजीकी मूर्ति विराजित है। एक अन्य मन्दिरमें हाथीपर सवार कुबेरजीकी मूर्ति है। ब्रह्माजीके मन्दिरके अतिरिक्त वाराह-मन्दिर, आत्मेश्वर महादेव-मन्दिर मुख्य मन्दिरोंमें हैं। इसे कपालेश्वर या अटपटेश्वर महादेव भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त श्रीरङ्गजीका मन्दिर दर्शनीय है। यात्री पुष्करकी परिक्रमा करते हैं। इस परिक्रमामें श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभुकी वैठक भी आ जाती है जो सरोवरके दूसरे किनारेपर है। पुष्करके पास शुद्धवापी नामक गयाकुण्ड है। जहाँ लोग श्राद्धकर्म करते हैं।

पुष्करसरोवरके एक ओर एक पर्वतके शिखरपर सावित्रीदेवी और दूसरी ओर दूसरे पर्वतशिखरपर गायत्री-मन्दिर है। यह गायत्रीपीठ ५१ शक्तिपीठोंमेंसे एक है। यहाँ सतीका मणिबन्ध गिरा था।

पुष्करतीर्थसे कुछ दूर यज्ञपर्वत है, जिसके पास अगस्त्य ऋषिका आश्रम एवं अगस्त्यकुण्ड है। पुष्करमें स्नान करके अगस्त्यकुण्डमें स्नान करनेसे ही पुष्करकी यात्रा पूर्ण मानी जाती है। यज्ञपर्वतके ऊपरसे निकलते जलस्रोतका उद्‌गम पवित्र माना गया है। उसका दर्शन ही पापनाशक है। यहाँ गोमुखसे पानी गिरता है। यज्ञपर्वतके नीचे एक स्थानपर नागतीर्थ एवं नागकुण्ड है। नागपञ्चमीको नागकुण्डमें स्नान करनेका बड़ा महत्त्व है। यहींपर नागकुण्ड, चक्रकुण्ड, सूर्यकुण्ड और गङ्गाकुण्ड हैं।

पुष्करमें सरस्वतीनदीमें स्नानका बड़ा भारी महत्त्व है। यहाँ सरस्वती—सुप्रभा, काञ्चना, प्राची, नन्दा और विशालिका—इन पाँच नामोंसे बहती है।

ज्येष्ठ (प्रधान) पुष्करसे दो मील दूर मध्य (बूढ़ा) पुष्कर तथा कनिष्ठ पुष्कर है। मध्य पुष्करसरोवर विशाल और गहरा है। उसके एक किनारे घाट बना है। पुष्करतीर्थकी चार परिक्रमा—पहली अन्तर्वेदी—छः मीलकी, दूसरी मध्यवेदी—दस मीलकी, तीसरी प्रधानवेदी—चौबीस मीलकी एवं चौथी बहिर्वेदी—अड़तालीस मीलकी है। इन परिक्रमाओंमें ऋषि-मुनियोंके आश्रम-स्थल सम्मिलित हैं। पुष्करसे लगभग बारह मील दूर प्राची, सरस्वती और नन्दा नदियोंका संगम है। पुष्करके पास नागपर्वतपर अनेक गुफाएँ हैं। जिनमें भर्तृहरिकी गुफा एवं भर्तृहरिशिला दर्शनीय हैं।

कार्तिक शुक्ल एकादशीसे पूर्णिमातक पुष्करमें मेला लगता है। लोग कार्तिक पूर्णिमापर पुष्कर-स्नानको सर्वाधिक पुण्यप्रद मानते हैं। पुष्कर-मेलेमें हजारों यात्री सम्मिलित होते हैं।

कार्तिक पूर्णिमापर्वके अतिरिक्त श्रावणमासमें श्रीरङ्गजीके मन्दिरमें हिण्डोलोंकी झाँकीका आयोजन किया जाता है। जन्माष्टमीका उत्सव बड़ी धूमधामसे श्रीरङ्गजीके मन्दिरमें सम्पन्न होता है।

पुरीमें श्रीजगन्नाथमन्दिरके पर्वोत्सव और यात्राएँ

(डॉ० श्रीरघुनाथजी महापात्र, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

श्रीजगन्नाथपुरीके मन्दिरमें बारह महीनोंमें द्वादश या त्रयोदश मुख्य यात्राएँ मनायी जाती हैं। वैसे दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक एवं वार्षिक उत्सवों तथा यात्राओंकी संख्या बहुत अधिक है। प्रतिदिनके वेशोंको छोड़कर विशेष उत्सवोंपर विग्रहोंके लिये विशेष प्रकारके वेशोंकी व्यवस्था भी है। स्कन्दपुराण, उत्कलखण्ड (३९। १३)-में महर्षि जैमिनिने अन्य ऋषियोंके सामने इन यात्राओं और उत्सवोंके होते रहनेके कारणोंका उल्लेख करते हुए बताया है कि दुःखी प्राणियोंके उद्धारके लिये तथा दुरात्मा लोगोंका भगवान्‌पर विश्वास हो जाय, इस दृष्टिसे प्रत्येक वर्ष यात्रा करनी चाहिये—

तेषामुद्धरणार्थाय विश्वासाय दुरात्मनाम्।
यात्रा नानाविधा विप्रा वर्षे वर्षे प्रवर्तयेत्॥

द्वादश या त्रयोदश यात्राएँ—१-स्नानयात्रा या देव-स्नानयात्रा, २-श्रीगुण्डिचा या रथयात्रा, ३-शयन, ४-उत्तरायण या मकर, ५-दक्षिणायन या कर्कट, ६-पार्श्वपरिवर्तन, ७-उत्थापन, ८-प्रावण, ९-पुष्याभिषेक, १०-दोलयात्रा, ११-चन्दनयात्रा, १२-बाहुड़ायात्रा तथा कोई-कोई १३-नीलाद्रिमहोदयको भी मानते हैं।

वार्षिकोत्सव एवं यात्राएँ

श्रीजगन्नाथमन्दिरमें मासक्रमसे जो यात्राएँ एवं उत्सव होते हैं, उनमेंसे कुछ विशेष यात्राओं और उत्सवोंका संक्षिप्त विवरण यहाँपर दिया जा रहा है—

वैशाखमासके उत्सव

१-महाविषुव-संक्रान्ति—उत्कलमें वैशाखकी संक्रान्तिको पूणा-संक्रान्ति या सतू-संक्रान्ति भी कहते हैं। इस दिन सबेरेका भोग लग चुकनेके बाद हनुमान् बारह भाई महावीरोंसे प्राप्त आज्ञामाल लेकर गोपालवल्लभमठमें जाते हैं। फिर वहाँसे पण्डे जगन्नाथवल्लभ-महावीरको आज्ञामाल देने जाते हैं। इसी दिनसे उत्कलमें नयी-पंजिका या पञ्चाङ्गका शुरू होना माना जाता है।

२-अक्षयतृतीयासे इक्कीस दिनोंतक चन्दनयात्रा—वैशाख शुक्ल तृतीया 'अक्षयतृतीया' कहलाती है। इसी दिनसे रथयात्राके लिये रथोंके निर्माणका कार्य भी प्रारम्भ किया जाता है। किसान खेतोंमें बीजवपनका कार्य भी प्रारम्भ करते हैं। वैशाख शुक्ल तृतीयासे ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमीतक नरेन्द्र-पुष्करिणीमें चन्दनयात्राका आयोजन होता है। बलभद्र, सुभद्रा, जगन्नाथके बदले उनकी विजयप्रतिमाएँ प्रतिनिधित्व करती हैं। रामकृष्ण, मदनमोहन, लक्ष्मी, सरस्वती और पञ्चपाण्डवकी मूर्तियाँ भी रहती हैं। रास्तेभर उन्हें बीच-बीचमें भोग लगाया जाता है। पुष्करिणीमें दो बड़ी नावोंपर जलविहार कराया जाता है। जलविहारके उपरान्त पुष्करिणीके बीचमें बने मन्दिरमें चन्दनकुण्डमें ये सब विजय प्रतिमाएँ रखी जाती हैं। उनका वेश होता है। माण्डुअका भोग लगाया जाता है। ठीक इसी समय श्रीमन्दिरमें महाप्रभुजीको आलटका भोग लगाते हैं। जलविहार दिनके हिसाबसे बढ़ता जाता है—प्रथम दिन एक बार, द्वितीय दिन दो बार, इसी प्रकार २१वें दिन इक्कीस बार जलविहार कराया जाता है। इस बीच ११वें दिनसे कृष्णावतारके वेश आदि भी धारण कराये जाते हैं।

३-नीलाद्रि-महोदय—वैशाख शुक्ल सप्तमीको रातमें चन्दनलागि हो चुकनेके बाद भोगमण्डपको धोकर चन्द्रातप टाँगा जाता है तथा १०८ गागरोंके जलसे अधिवास किया जाता है।

४-नृसिंहजन्म—वैशाख शुक्ल चतुर्दशीके दिन नृसिंहजन्मोत्सव मनाया जाता है। प्रथम दिनकी चन्दनयात्रासे लौटनेके बाद होमपालिया पण्डा जगन्नाथजीके श्रीअङ्गसे आज्ञामाल लेकर चक्रनारायणजीके पास जाकर वहाँ आज्ञामाल देकर लौटते हैं। इसी बीच मुक्तिमण्डपपर नृसिंहजीको लाया जाता है। महास्नानके उपरान्त पञ्चोपचारसे शीतलभोग लगाया जाता है। उसके बाद विमालवडु (विमान ढोनेवाले) नृसिंहजीको जगन्नाथवल्लभ ले जाते हैं।

ज्येष्ठमासके उत्सव

५-शीतलाषष्ठी—ज्येष्ठ शुक्ल षष्ठीके दिन पण्डागण श्रीजगन्नाथजीके श्रीअङ्गसे आज्ञामाल लाकर जगमोहन महादेवजीको देते हैं और उसके दूसरे दिन पञ्चपाण्डव (महादेव) नगरभ्रमणपर निकलते हैं।

६-राजेन्द्राभिषेक—यह उत्सव ज्येष्ठ शुक्ल दशमीको

मनाया जाता है। एक वार्तावाहक मदनमोहनजीके पास रुक्मिणीका विवाहप्रस्ताव लाता है। स्वयं महाप्रभु राजेन्द्राभिषेकके लिये कहते हैं। पालिया खुण्टियासे दयणायुक्त शुक्ल फूलकी माला लेकर एक सेवक कृतकौतुक ऋषि बनता है और अञ्जलि करके रास्तेभर दण्ड प्रणाम करता हुआ दक्षिणघर (या आश्रम)-को जाता है।

७-रुक्मिणीहरण एकादशी—ज्येष्ठ शुक्ल एकादशीके दिन जलनीतिके साथ इसका पालन होता है। लक्ष्मी और मदनमोहन स्वयं नहीं आते, केवल दोलगोविन्दप्रतिमा लायी जाती है।

८-देवस्नान या स्नानयात्रा—ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमाके दिन यह उत्सव मनाया जाता है। आनन्दबाजारके भीतर उत्तर-पूर्व कोनेपर बने, स्नानवेदीपर चारों विग्रहोंको पहण्डी करके लाया जाता है। स्वर्णकूपके १०८ घड़े जलसे प्रत्येक विग्रहको स्नान कराया जाता है। संध्याके समय विग्रहोंका गणेशवेश भी होता है, कुछ लोग इसे हाथीवेश भी कहते हैं। कहते हैं कि कर्णाटकके गणपति भट्ट नामक एक भक्तके लिये भगवान्‌ने यह वेश धारण किया था! सुभद्रा हरिद्रारंगका और दोनों भाई कत्थई रंगका वेश धारण करते हैं। विग्रहोंको भोग लगाया जाता है।

९-अनवसर या अणसर—कहा जाता है कि ज्येष्ठ शुक्ल स्नानपूर्णिमाकी रात्रिसे लेकर १४ (या १५) दिनोंतक भगवान्‌को ज्वर हो जाता है। इस बीच उनके दर्शन नहीं होते और नीतियाँ गोपनीय रूपसे पालन की जाती हैं। विग्रहोंका दायित्व इस बीच दइतापतियोंपर होता है। इस समय जगमोहनमें दशावतार, लक्ष्मी आदिकी पूजा खुलेमें की जाती है तथा भक्त उन्हींका दर्शन करते हैं। जिस वर्ष आषाढ़का मलमास या पुरुषोत्तममास होता है, उस वर्ष इन काष्ठसे बने विग्रहोंका नवकलेवर होता है—जिसमें नये विग्रहोंका निर्माण किया जाता है।

आषाढ़मासके उत्सव

१०-नेत्रोत्सव—अनवसरके समय विग्रहोंको नये रंगों आदिसे रँगा जाता है, किंतु आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदाके दिन उनकी आँखें बनायी जाती हैं। इस दिन अनवसरके उपरान्त प्रथम बार विग्रहोंके दर्शनका मौका भक्तोंको लगता है। पूजापण्डागण तीन सींकोंकी सहायतासे नेत्रोंको छूते हैं इसे 'श्रीनेत्रलागि' तथा नवयौवनदर्शन भी कहते हैं। इसका भाव ज्वराक्रान्त होनेके बाद नवजीवन प्राप्त करनेसे है।

११-रथयात्रा—इसके अन्य नाम हैं श्रीगुण्डिचायात्रा या घोषयात्रा। आषाढ़ शुक्ल द्वितीयासे दशमीतक नौ दिनोंकी यह यात्रा विश्वप्रसिद्ध है। कहते हैं आजके बहुत पहले, जब बड़शंखके पास बांकी मुहाना नदी बहती थी, तब छः रथ (तीन नदीके इस ओर और तीन नदीके उस ओर) होते थे और रथयात्रामें कोई एक महीना भी लग जाता था। बादमें राजा नरसिंहदेवने उस नदीको पटवा दिया, तबसे तीन रथोंका प्रचलन हुआ। बलभद्रजीके रथका नाम तालध्वज, सुभद्राके रथका नाम देवदलन और जगन्नाथजीके रथका नाम नन्दीघोष है। तीनों विग्रहोंको रत्नवेदीसे पहण्डी करके रथोंपर अलग-अलग लाते हैं तथा बड़दाण्डसे होकर रथोंको श्रीगुण्डिचामन्दिरतक खींचकर ले जाते हैं। पुरीके महाराजा प्रथम सेवकके नाते रथोंपर छेरा-पंहरा (पोहरा) करते हैं, उसके बाद ही रथोंको खींचा जाता है। ये रथ प्रतिवर्ष नयी लकड़ीसे बनाये जाते हैं और कहीं भी लोहेके काँटों आदिका प्रयोग नहीं होता। श्रीगुण्डिचामन्दिरके शरघाबालि मैदानपर ८ वें दिन तीनों रथोंको घुमाकर सीधा किया जाता है। ये रथ वापस दशमीके दिन लाये जाते हैं तथा एकादशीके दिन रथोंपर सभी विग्रहोंका स्वर्णवेश सर्वसाधारण दर्शनके लिये होता है। द्वादशीके दिन रथोंपर अधरपणाके बाद नीलाद्रिविंज कराया जाता है अर्थात् मन्दिरमें पुनः प्रवेश होता है। श्रीजगन्नाथजीकी यह रथयात्रा साम्य और एकताकी प्रतीक है। विग्रहोंको छूकर दर्शन करनेका सौभाग्य केवल रथपर ही भक्तोंको मिलता है। स्कन्दपुराण उत्कलखण्डमें वर्णित है कि इन्द्रद्युम्नको भगवान्‌ने कहा था कि उनका जन्मस्थान उन्हें अत्यन्त प्रिय है, अतः वे वर्षमें एक बार वहाँ अवश्य जायँगे।

१२-हैरापञ्चमी—रथयात्राके ठीक पाँचवें दिन लक्ष्मी गुस्सेमें गुण्डिचाक्षेत्रमें जाती हैं तथा लौटते समय रथको हानि पहुँचाकर हेरागौहरी साहीसे होकर श्रीमन्दिरमें लौटती हैं।

१३-हरिशयनी एकादशी—आषाढ़ शुक्ल एकादशीके दिन भाण्डारघरसे वासुदेव, भुवनेश्वरी और नारायणको लाकर क्रमशः बलभद्र, सुभद्रा और जगन्नाथके रथोंपर

विजय कराया जाता है और भोग आदि लग चुकनेके बाद वापस ले जाकर शयन कराया जाता है।

१४-गरुडशयनद्वादशी—इस दिन विग्रहोंको श्रीमन्दिरमें ले जाते हैं। जगन्नाथजीके जाते समय लक्ष्मी और जगन्नाथमें सिंहद्वारपर झगड़ा होता है तथा जगन्नाथ लक्ष्मीजीको मनानेकी कोशिश करते हैं। मन्दिरके भीतर जानेपर रुक्मिणी-विवाहकी गाँठ खोली जाती है, तब महाप्रभु सिंहासनपर विराजित होते हैं।

१५-दक्षिणायन या कर्क-संक्रान्ति—इस दिन विग्रह चाहे जहाँ-कहीं भी हों, मन्दिरमें, रथपर या गुण्डिचामन्दिरमें उन्हें सूखे चावल और उड़दकी बलि चढ़ायी जाती है।

श्रावणमासके उत्सव

१६-चितालागि अमावास्या—श्रावण कृष्णपक्षकी अमावास्याके दिन जिन मणियोंको अनवसरके समय निकाल दिया जाता है, उन्हें फिरसे पहनाया जाता है। भाण्डारसे लाकर उन्हें नये पट्टकी डोरीसे फिरसे विग्रहोंको पहनाते हैं। बलभद्रका नीला, सुभद्राका लाल और जगन्नाथजीका हीरा सफेद होता है। इसे चितालागि कहते हैं।

१७-झूलनयात्रा-रक्षाबन्धन—श्रावण शुक्ल दशमीसे पूर्णिमातक लक्ष्मी, सरस्वती और मदनमोहनको मुक्तिमण्डपपर सजाये गये झूलेमें झुलाया जाता है। पूर्णिमाके दिन बलभद्रजीका जन्म-दिन मनाया जाता है। इस अवसरपर सुदर्शन विमानपर जाकर कुम्भकारसे जो मिट्टी लाते हैं, उसकी सहायतासे एक सुआर बलभद्रकी प्रतिमा बनाता है जिसे पूजापण्डा जीवन्यास देते हैं, फिर उनकी पञ्चोपचारसे पूजा होती है तथा उन्हें भोग लगाया जाता है। शेषमें वन्दापनाके उपरान्त इस प्रतिमाको जलमें विसर्जित कर दिया जाता है।

भाद्रपदमासके उत्सव

१८-राहु-रेखालागि—भाद्रपद कृष्ण पञ्चमीके दिन भगवान्को भाण्डारसे लाकर सोनेकी बनी हुई राहु-रेखा लगायी जाती है।

१९-श्रीकृष्णजन्माष्टमी—भाद्रपद कृष्ण अष्टमीसे लेकर एक महीनेतक श्रीकृष्णजन्माष्टमीका उत्सव मन्दिरमें मनाया जाता है। पूर्वरात्रिको जगन्नाथजीके लिये एक अधिक वन्दापना होती है, जिसे गर्भोदक वन्दापना कहते हैं। अष्टमीके दिन संध्याके समयका भोग लग चुकनेके बाद भाण्डारघरके सामने सर्वतोभद्रमण्डल (जन्म-चकड़ा) बनाया जाता है। कलशवरण होता है। चित्रकार श्रीकृष्णजन्मकी पट्टी बनाकर देता है और सोनार नौ पंखड़ियोंवाला एक पद्म। इस पद्मपर वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा, लक्ष्मी, उग्रसेन, बलभद्र, गर्ग और श्रीकृष्ण अंकित होते हैं। दक्षिणघरसे बालकरूप होनेसे उलग्न मदनमोहन लाये जाते हैं। दो महाजन देवकी-वसुदेव बनते हैं। देवंकर पूजापण्डा उग्रसेन बनते हैं तथा वसेधारापण्डा नाभिच्छेदन करते हैं। इसके उपरान्त भाद्रपदमासकी पूर्णिमातक जो-जो लीलाएँ की जाती हैं, वे इस प्रकार हैं—कृष्ण नवमीको नन्दोत्सव, दशमीको वनवेश, बेर बेचना, अघा और बकाका वध, एकादशीको कालियदमन, द्वादशीको प्रलम्बवध, त्रयोदशीको श्रीकृष्ण-बलरामवेश, अमावास्याको वस्त्रहरणलीला, शुक्ल प्रतिपदाको दावाग्निलीला, द्वितीयाको निकुञ्जलीला, तृतीयाको अन्धमन्दिर हाथीलीला, पञ्चमीको दाहलीला, षष्ठीको बिम्बासुरवध, सप्तमीको केशीवध, दशमीको नवनीतभक्षण, अक्रूरगमन, रजक-धेनुका-मल्लवध, कुब्जाको वरदान, कुवलया और कंसवध तथा उग्रसेनकी राज्याभिषेकलीलाएँ एवं द्वादशीसे पूर्णिमातक इन्द्रध्वजपूजाकी लीला होती है।

२०-कुछ अन्य लीलाएँ—भाद्रपदमासकी अमावास्याको भगवान्को सप्तपुरी-भोग लगाया जाता है। नारायण आज्ञामाल लेकर सागरविजय करते हैं। शुक्ल चतुर्थीके दिन गणेशपूजा होती है। इसी दिन जन्माष्टमीकी जन्मयात्रा भी समाप्त होती है। अष्टमीके दिन राधाष्टमी, एकादशीके दिन बड़सिंगारके बाद महास्नान होता है। फिर पार्श्वपरिवर्तनके लिये नये कपड़े पहनाकर पञ्चोपचारसे पूजा करते हैं। द्वादशीके दिन वामनजन्म, गरुडपार्श्वरूप-परिवर्तनका उत्सव होता है। इसी दिनसे पुरीके महाराजका नये वर्षका प्रारम्भ भी माना जाता है।

आश्विनमासके उत्सव

२१-सहस्रकुम्भाभिषेक—आश्विन कृष्ण सप्तमीसे शुक्ल नवमीपर्यन्त दुर्गापूजा विमलामन्दिरमें होती है, विभिन्न वेश भी होते हैं। इस दौरान विमलामन्दिरमें स्त्रियोंका प्रवेश निषिद्ध होता है और भाण्डारघरमें अस्त्र-शस्त्रोंकी पूजा की जाती है।

२२-दशहरा एकादशी—इसे अपराजिता दशमी भी कहते हैं। भीतरकी आरती समाप्त होनेपर मदनमोहन, रामकृष्ण तथा माणरघरसे दुर्गामाधव रत्नसिंहासनपर लाये जाते हैं। वे बाहर दशहरा-मैदानमें जानेके लिये वीरवेश पहनते हैं। एकादशीके दिन रातके दो घड़ी रहते गोपालवल्लभपूजा समाप्त की जाती है और दुर्गामूर्तियोंका विसर्जन भी किया जाता है।

२३-कुमारपूर्णिमा—कौमुदी-उत्सव—आश्विन पूर्णिमाके दिन भगवान्के प्रतिनिधिके रूपमें मुदिरथ और लक्ष्मीकी प्रतिनिधिके रूपमें मुदुदिमहाजन २१ हिंगुलकी और २१ चाँदीकी कौड़ियोंकी सहायतासे पासा खेलते हैं। जलक्रीड़ा होती है तथा पुष्प, माल्य, लेपन, पिठा और नारियलकी सेवा होती है।

कार्तिकमासके उत्सव

२४-हरि-उत्थापन एकादशी—कार्तिक शुक्ल एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशीको मदनमोहन आज्ञामाल लेकर जगमोहनमें आते हैं। रातको भगवान्को उठाया जाता है। फिर उन्हें नाट्यमण्डपमें ले जाकर पञ्चामृत, फलरस, नारियल-जल आदिसे स्नान कराया जाता है। नृत्य और गीतके साथ सारी रात आनन्दोत्सव होता है।

२५-रासपूर्णिमा—इस दिन कार्तिकव्रतका उद्यापन होता है। संध्याधूपके उपरान्त दक्षिणघरसे कालगोविन्दको रत्नसिंहासनपर लाते हैं।

मार्गशीर्षमासके उत्सव

२६-दीपदान—मार्गशीर्ष कृष्ण चतुर्दशी, अमावास्या तथा शुक्ल प्रतिपदाके दिन महाप्रभु जगन्नाथजी अपने पिता—नन्द-वसुदेवके लिये पितृश्राद्ध करते हैं और दीपदान भी। इन दिनोंमें भी मन्दिरके ऊपर महादीप उठाया जाता है। कहते हैं कि इन्द्रद्युम्नके निर्वंश होनेके कारण भगवान् जगन्नाथजी उनके लिये स्वयं इस दिन वार्षिक श्राद्ध करते हैं।

२७-पार्वण या औढ़णषष्ठी—मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठीसे वसन्तपञ्चमीतक इसका पालन होता है। इस दिन २ त्रिशाखाएँ, ४ कुण्डल और २ तिड़ग—इस प्रकार ८ सुवर्णाभूषणोंको चढ़ानेकी परम्परा है। प्रत्येक वारके लिये अलग-अलग रंगोंके कपड़ोंकी व्यवस्था होती है। वस्त्र ओढ़ानेकी विधि यह है कि पञ्चमीकी रात्रिको २१ सुवासित वस्त्रोंको ढाँककर तैयार रखा जाता है। प्रत्येक विग्रहके लिये सात-सात पूजा होती है। फिर कपड़ोंको बेढेमें घुमाया जाता है।

पौषमासके उत्सव

२८-पुष्याभिषेक—पौष पूर्णिमाके दिन भगवान्का पुष्याभिषेक किया जाता है। एकादशीसे स्नानमण्डपके पास अंकुररोपण होता है। रघुनाथ रत्नसिंहासनपर जाते हैं तथा आज्ञामाल लेकर लक्ष्मीमन्दिरके बाहर अभिषेकके लिये जाते हैं। ८१ कुम्भोंका अधिवास होता है—होम, स्नान, अलंकार, माला, आयुध आदिका आवाहन किया जाता है। इस दिन विग्रहोंका स्वर्णवेश होता है।

२९-नवांकयात्रा एवं मकर-संक्रान्ति—संक्रान्तिके पहले दिन नवांकयात्रा होती है। महामोई बाघमुखा पहनकर मन्दिरकी बेढ़ा परिक्रमा करते हैं तथा मकरचावलका भोग लगाते हैं।

माघमासके उत्सव

३०-वसन्तपञ्चमी—इसी दिनसे भगवान्के कपड़े ओढ़नेकी विधि समाप्त होती है। दक्षिण घर-स्थित सरस्वती एवं लक्ष्मीकी मूर्तियोंको चाँचरीवेश कराया जाता है तथा लक्ष्मी-नारायण फाग खेलनेके लिये विराजते हैं। इसी प्रकार दक्षिण घरसे दोलगोविन्द बैण्ट-शिकारके लिये जगन्नाथवल्लभ जाते हैं।

फाल्गुनमासके उत्सव

३१-शिवरात्रि—फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीके दिन भाण्डार-लोकनाथ हरिहर भेंटके लिये श्रीलोकनाथमन्दिर जाते हैं।

३२-दोलयात्रा—फाल्गुन शुक्ल दशमीसे पूर्णिमातक फाग या दोल-उत्सव पालित होता है। एकादशीसे त्रयोदशीतक सरस्वती और लक्ष्मीको चाँचरीवेशमें विमानमें जगन्नाथवल्लभ ले जाया जाता है। मदनमोहनको दोलवेदीपर दोलेमें झुलाया जाता है। इस अवसरपर पञ्चपाण्डव (या पञ्चशिव—लोकनाथ, यमेश्वर, मार्कण्डेश्वर, नीलकण्ठ, कपालमोचन) श्रीमन्दिरके द्वारपर लाये जाते हैं। दोलवेदीसे आग्नेय कोणपर अग्न्युत्सव भी होता है। इस दिन नये आमकी पहली पूजा होती है और पार्वतीजीको शिवजी नया पञ्चाङ्ग सुनाते हैं।

चैत्रमासके उत्सव

३३-रामनवमी—पूर्व दिन गर्भोदयके लिये

जगन्नाथजीकी एक अधिक वन्दापना की जाती है। दक्षिण घरके रामविग्रह प्रतिनिधि बनते हैं। दो महाजन दशरथ और कौसल्या बनते हैं। रामलीलासे सम्बन्धित मायामृग, सीताहरण, लङ्कादहन, सेतुबन्ध, रावणवध तथा राज्याभिषेक-जैसी लीलाएँ होती हैं। ये उत्सव चैत्र शुक्ल दशमीसे लेकर वैशाख कृष्ण द्वितीयातक पालित होते रहते हैं।

इस प्रकार श्रीजगन्नाथमन्दिरमें छोटी-बड़ी लगभग ४० यात्राएँ होती हैं। ऐसी २७ उपयात्राएँ और लगभग १०८ पर्व-त्योहार मनाये जाते हैं। इन त्योहारोंमें कुछ तो ऐसे हैं, जिन्हें परवर्ती भक्तों और राजाओंने प्रारम्भ किया था।

विशेष अवसरोंपर वन्दापना, पूजा या स्नान आदिके उत्सव-पालनकी परम्परा है। यथा—१-प्रत्येक मासकी अमावास्याके दिन 'नक्षत्रवन्दापना' की जाती है, २-अमावास्या यदि प्रतिपदास्पर्शयुक्त हो तो 'अमावास्यापूजन'-का विधान है, ३-अमावास्यामें यदि सूर्यग्रहण हो तो सूर्यग्रहणका स्नान कराया जाता है, ४-पूर्णिमामें यदि चन्द्रग्रहण हो तो चन्द्रग्रहणका स्नान कराया जाता है, ५-यदि किसी कारणसे मन्दिरके परिसरमें अशौच हो गया हो तो विग्रहोंको 'महास्नान' कराया जाता है।

दैनिक उत्सवोंमें प्रतिदिन प्रातः मङ्गल-आरतीसे लेकर रात्रि शयन-आरतीतक अनेक उत्सव होते हैं।

साप्ताहिक उत्सव प्रति गुरुवारके दिन होता है। एकादशीके दिन पाक्षिक उत्सवका पालन होता है। संध्या-आरतीके ठीक उपरान्त श्रीमन्दिरके ऊपर नीलचक्रकी ऊँचाईतक 'महादीप' उठाया जाता है। इसमें गरुड़सेवक चुनरा श्रीमन्दिरके ऊपर महादीप लेकर उठता है और 'दधिनउति' के नीचे खड़े होकर नीलचक्रको चन्दन लगाकर तुलसी चढ़ाता है तथा उसके चारों ओर तीन बार परिक्रमा करता है।

इस प्रकार श्रीजगन्नाथमन्दिरमें पालित होनेवाली यात्राओं, उत्सवों और नीतियोंके विवरणसे यह पता चलता है कि जगन्नाथजी जहाँ कलिकालके साक्षात् परब्रह्म हैं, वहीं साधारण मनुष्यके लिये आदर्श गृहस्थ भी हैं। जागरणसे लेकर शयनपर्यन्त, वर्षके प्रारम्भसे लेकर अन्ततक वे भी ऋतुओंके अनुसार एक मनुष्यकी तरह सारी लीलाएँ करते हैं—खाते-पीते हैं, गरमीमें जलविहार करते हैं, स्नान करते हैं, ज्वराक्रान्त होते हैं, औषधियोंका सेवन करते हैं, अच्छे होनेपर रथयात्रापर निकलते हैं, लक्ष्मीजीको साथ न ले जानेके कारण वे मान-अभिमान करती हैं, क्रुद्ध होती हैं तब जगन्नाथजी उन्हें मनाते हैं। वे हमारे अपने बीचके बन जाते हैं, नितान्त अपने। उनका नाम तो है जगत्के नाथ—जगन्नाथ, किंतु पूर्वी भारत-क्षेत्रके वे पीठदेवता हैं। वे देवस्नानमण्डपमें गणेश हैं, शयनयात्रामें अम्बिका, रथयात्रामें वामन या सूर्य, नवकलेवरके समय रुद्र और रत्नसिंहासनपर विष्णु हैं।

राजाधिराज महाकालेश्वर (उज्जैन) और श्रीमन्दिरके पर्वोत्सव

(श्रीहरिनारायणजी नीमा, एम्०ए०)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें परिगणित भगवान् महाकालेश्वर भक्तोंके परम आराध्य हैं। भारतकी प्राचीनतम सप्तपुरियोंमें अवन्तिका (उज्जैन)-का विशेष महत्त्व है। सृष्टिका आरम्भ महाकालसे हुआ है। भौगोलिक दृष्टिसे उज्जैन कर्करेखापर स्थित है, यहाँ सूर्यके स्थित होनेपर उत्तरायण आता है। उज्जैन कालगणनाका मुख्य केन्द्र माना गया है। यहाँका सूर्योदय-समय समग्र भारत देशके लिये प्रामाणिक रहा है। एक मान्यता यह भी है कि लङ्कासे सुमेरुपर्वततक जो देशान्तर रेखा गयी है वह उज्जैनस्थित श्रीमहाकालेश्वर मन्दिरके शिखरके ऊपरसे जाती है।

अवन्तिनाथ महाकालेश्वर दक्षिणामूर्ति हैं। अनन्त चैतन्यस्वरूप श्रीमहाकालेश्वरभगवान्में अन्तरिक्ष, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र और मन—ये अष्टमूर्तियाँ निहित हैं। भगवान्के त्रिशूल, डमरु, मृग और परशु चार आयुध हैं। नन्दी इनका वाहन है इसलिये ये नन्दिकेश्वर कहलाते हैं।

महाकालेश्वर आदिनाथ हैं और ये भगवती शिप्राके तटपर स्थित वन (महाकालवन)-में विराजमान हैं। अनुश्रुतियोंके आधारपर मन्दिरकी स्थापना चौदह हजार वर्ष पूर्व हुई थी।

वर्तमान मन्दिर राणोजी सिन्धियाके दीवान महाभाग

रामचन्द्र बाबा शेणवीने ईस्वी सन् १७३४ में बनवाया था। मन्दिरके प्रथम खण्डमें श्रीमहाकालेश्वरभगवान्, द्वितीय खण्डमें ओंकारेश्वर और तृतीय खण्डमें नागचन्द्रेश्वर स्थापित हैं।

गर्भगृहकी छतपर रुद्रयन्त्र निर्मित है, इस यन्त्रराजमें ऋग्वेदके दो सौ चौहत्तर मन्त्रोंको लिपिबद्ध किया गया है। नागवेष्ठित रजतजलधरीमें विराजमान महाकालेश्वरभगवान्के सम्मुख शिव-शिवा स्वरूप दो नन्दीदीप अखण्ड जलते रहते हैं। अवन्ती, महाकाल एवं शिप्राकी जयघोषके साथ नित्य प्रातः चार बजे भस्मा-आरतीके साथ महाकालकी पूजा प्रारम्भ होती है, जो विविध पूजाक्रमोंके साथ देर रात शयन-आरतीतक चलती रहती है। चैत्रमासमें नववर्ष प्रतिपदाके दिन मन्दिर-शिखरपर नयी ध्वजा चढ़ायी जाती है और महाकालका विशेष शृंगार किया जाता है।

वैशाखमें इस 'शिवक्षेत्र' की परिक्रमाएँ होती हैं, जिन्हें पञ्चक्रोशी, अष्टतीर्थी तथा चारद्वार यात्रा कहते हैं। पञ्चक्रोशी परिक्रमा पाँच दिनोंमें पूरी होती है। ज्येष्ठमासमें ग्वालियर राज्यकी ओरसे भगवान्के समक्ष वर्षाहेतु **'पर्जन्य-अनुष्ठान'** होता रहा। अब यह यज्ञ मन्दिर-समिति सम्पादित करवाती है। आषाढ़मासमें जप, रुद्राभिषेक आदि होते हैं। 'श्रावण-भाद्रपद' तो शिवाराधनाके मुख्य मास हैं, जिनमें नियमित बिल्वार्पण होता है और जन्माष्टमी, नागपञ्चमी तथा रक्षाबन्धनपर विशेष उत्सव होते हैं एवं प्रति सोमवार राजाधिराजका नगर-भ्रमण कराया जाता है। उस समय सारा नगर शिवमय हो जाता है। श्रीनागचन्द्रेश्वरके दर्शन वर्षमें एक दिन नागपञ्चमीको ही होते हैं। आश्विनमासमें उमापति-मन्दिरके प्राङ्गणमें विशेष महोत्सव होता है तथा नवरात्र और दशहरेके पर्व मनाये जाते हैं। दशहरेके दिन संध्या समय राजाधिराज पालकीमें विराजकर 'शमीपूजा' करनेके लिये पधारते हैं। 'शमीवृक्ष' अग्नि और तेजका प्रतीक माना गया है।

कार्तिकमासमें श्रद्धालु भक्तजन शिप्राजलसे प्रभुको स्नान कराते हैं। शुक्लपक्षकी चतुर्दशी (वैकुण्ठ चतुर्दशी)-को उज्जैनमें अति प्राचीन समयसे 'हरिहर-मिलन' होता है। यहाँ श्रीहरि और शिवशंकर विश्वनाथ महादेवमें कोई भेद नहीं माना जाता, यह हरिहरक्षेत्र है।

श्रीतुकाराम महाराजने यथार्थ ही कहा है—

'तुका म्हणे भक्ति साठी हरि हर-हरिहरा भेद नाहीं, नका करू वाद॥'

चतुर्दशीकी मध्य रात्रिमें श्रीमहाकालेश्वर नगरके मध्यमें विराजित श्रीद्वारकाधीश गोपाल-मन्दिरमें पधारते हैं, निजमन्दिरमें उज्जैनके राजा द्वारकाके राजासे मिलते हैं। भोग आरोगनेके पश्चात् माल्यार्पण होता है। इसमें श्रीमहाकालेश्वरकी ओरसे श्रीगोपालकृष्णभगवान्को बिल्वपत्रकी और श्रीठाकुरजीकी ओरसे महाकालेश्वरको तुलसीपत्रकी माला पहनायी जाती है। वैसे भी श्रीमहाकालेश्वरकी पूजाविधिमें तुलसी-दल समर्पित किया जाता है। वैष्णवजन तुलसी धारण करते हैं। मार्गशीर्ष, पौष और माघमासमें यहाँ सतत आनन्दकी वर्षा होती है, फाल्गुनमें अबीर, गुलाल, पुष्पसार (इत्र), केशर, चन्दन आदि सतरंगी फाग-महोत्सव होता है और इन्हीं दिनोंमें महाशिवरात्रिपर्व भी सम्पन्न होता है। यह पर्व कई दिनों पूर्वसे प्रारम्भ हो जाता है। प्रतिदिन सन्ध्या-आरतीके समय महाकाल राजाको रजतमुखौटा धराया जाता है, स्वर्ण, रजत और मौक्तिक-मणिमालाएँ पहनायी जाती हैं। पर्वके दिन भक्तजन मध्यरात्रिसे ही पंक्तिबद्ध होकर पूजन-अर्चनकी प्रतीक्षामें खड़े हो जाते हैं। हजारों-हजार लोगोंके मुखसे निकले महाकाल महाराजकी जयघोषसे आकाश गूँजता रहता है। इस प्रकार पूरे वर्षभर महाकालेश्वरमें नित्य कोई-न-कोई पर्वोत्सव होता ही रहता है।

उपवासके बाधक बारह दोष

क्रोधः कामो लोभमोहौ विधित्साकृपासूये मानशोकौ स्पृहा च।
ईर्ष्या जुगुप्सा च मनुष्यदोषा वर्ज्याः सदा द्वादशैते नराणाम्॥
एकैकःपर्युपास्ते ह मनुष्यान् मनुजर्षभ। लिप्समानोऽन्तरं तेषां मृगाणामिव लुब्धकः॥

'काम, क्रोध, लोभ, मोह, असंतोष, निर्दयता, असूया, अभिमान, शोक, स्पृहा, ईर्ष्या और निन्दा—मनुष्योंमें रहनेवाले ये बारह दोष सदा ही त्याग देने योग्य हैं। नरश्रेष्ठ! जैसे व्याध मृगोंको मारनेका अवसर देखता हुआ उनकी टोहमें लगा रहता है, उसी प्रकार इनमेंसे एक-एक दोष मनुष्योंका छिद्र देखकर उनपर आक्रमण कर देते हैं।'

तिरुपतिबालाजीके महोत्सव

श्रियःकान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम्।
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम्॥
श्रीवैकुण्ठविरक्ताय स्वामिपुष्करिणीतटे।
रमया रममाणाय वेङ्कटेशाय मङ्गलम्॥

भगवान्के अनन्तानन्त नामोंमें 'नित्योत्सव' तथा 'नित्यमङ्गल'—ये दो नाम भक्तोंको अतिप्रिय हैं। इनका तात्पर्य है कि भगवान् नित्य उत्सवरूप हैं और नित्य मङ्गलस्वरूप हैं। भगवान्का श्रीविग्रह सदा कल्याणमय, मङ्गलमय, आनन्दमय तथा उत्सवमय है और इसीलिये उनके आलयोंमें नित्य नूतन महोत्सव हुआ करते हैं, जिससे भक्तजनोंको परम आनन्दकी अनुभूति होती है और नेत्रोंका होना सफल हो जाता है। ऐसा ही एक आलय भगवान् श्रीनिवासका है—'श्रीतिरुपति तिरुमलै' जो अपने उत्सवोंके लिये सर्वत्र विश्रुत है।

श्रीवेङ्कटाद्रि एक ऐसा दिव्य क्षेत्र है—मन्दिर है, जहाँ भगवान् स्वयं आविर्भूत हुए। श्रीवेङ्कट (पर्वत)-के दर्शनसे एवं इस सप्तगिरिमें विराजमान भगवान्के दर्शनसे परम लाभ होता है। वराह आदि पुराणोंका आख्यान है कि महाविष्णुने हिरण्याक्षद्वारा अपहृत (पाताल ले जायी गयी) वसुधादेवी (पृथ्वी)-का उद्धार करनेके लिये श्वेतवाराह रूप (विभवावतार) धारण किया और पातालसे पृथ्वीको लाकर शेषनागके फणोंपर स्थापित कर दिया। उस समय उन प्रभुने पृथ्वीके आर्त प्राणियों तथा भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये पृथ्वीपर निवास करनेका मन बनाया। इस संकल्पकी पूर्तिके लिये भगवान् वराहने अपने प्रिय पार्षद और वाहन गरुडजीको आदेश दिया कि वे वैकुण्ठसे क्रीडाचलको धरतीपर ले आयें। भगवदाज्ञाका पालन हुआ और गरुडजीने वैकुण्ठसे श्री एवं श्रीनिवासकी क्रीडावापी (जिसे स्वामिपुष्करिणीके नामसे जाना जाता है)-सहित क्रीडापर्वतको धरतीपर लाकर द्रविड़देशके महापुण्यप्रद पावन स्थल तिरुमलपर स्थापित कर दिया। कलियुगमें इसी पर्वतका नाम वेंकटाद्रि पड़ा। यह तिरुमलाचल—तिरु अर्थात् श्री तथा मल अर्थात् स्थान या उच्चस्थल, धरतीपर ही नहीं अपितु समस्त विधि-प्रपञ्चोंमें अनुपम माना गया है। आलवार संतोंने इसे अपने दिव्य-प्रबन्धमें 'तिरुवेङ्कडम्' कहकर सम्बोधित किया है।

इसी श्वेतवाराहकल्पमें कलिके जीवोंपर कृपादृष्टि करनेके लिये श्रीमहाविष्णुने श्रीवेङ्कटेश प्रभुके रूपमें अर्चावतार धारण किया तथा संसारी जीवोंके नयनविषय बनकर वे ही बालाजी, इन्दिरारमण, वेङ्कटरमण तथा गोविन्दा आदि नामोंसे विख्यात हुए। वेङ्कटाचलके अर्थमें कहा गया है कि समस्त पाप 'वें' कहलाते हैं तथा उनको दहन करनेकी क्रिया 'कट' कहलाती है। इस प्रकार पापोंका नाश करनेवाले प्रभु वेङ्कट कहलाये और जिस पर्वतपर उनका आलय बना वह पर्वत वेङ्कटाचल, वेङ्कटाद्रि या शेषाद्रि कहलाया। श्रीपति भगवान् विष्णुको यह वेङ्कटाचल सर्वाधिक प्रिय है।

इसी वेङ्कटपर्वतपर स्वामिपुष्करिणीतीर्थके पास भगवान् तिरुपति बालाजीका भव्य मन्दिर प्रतिष्ठित है। जहाँ भगवान् वेङ्कटेशके साथ उनकी आह्लादिनी शक्तियाँ—श्रीदेवी और भूदेवी प्रतिष्ठित हैं। यहाँ नित्य नूतन उत्सव-महोत्सव हुआ करते हैं। कुछ उत्सवोंका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है—

(१) ब्रह्मोत्सव

श्रीतिरुपतिजीमें होनेवाले दैनिक उत्सवोंके अतिरिक्त जो सर्वप्रमुख उत्सव है उसका नाम है—'ब्रह्मोत्सव।' यह महान् उत्सव है इसलिये महोत्सव भी कहलाता है।

यह उल्लेख है कि जब प्रभु श्रीनिवासने अपनी शक्तियोंके साथ वेङ्कटाचलपर अपना निवास बनाया, उसी समय सृष्टिके अधिष्ठाता चतुर्मुख ब्रह्माजीने भगवान् बालाजी (वेङ्कटेश) महाप्रभुकी महिमाका प्रचार करनेके लिये तिरुमलपर्वतपर एक दिव्य उत्सवका आयोजन किया, जिसमें सभी देवता, यक्ष, गन्धर्व, नाग, सिद्ध, साध्य, अप्सरागण तथा ऋषि-मुनि आदि उपस्थित हुए। चूँकि यह उत्सव ब्रह्माजीद्वारा प्रवर्तित हुआ और परब्रह्मकी अन्तःप्रेरणासे जीवोंके कल्याणके लिये अनुष्ठित हुआ, अतः 'ब्रह्मोत्सव' कहलाया। तबसे आजतक इस उत्सवको मनानेकी परम्परा चली आ रही है।

यह वार्षिक उत्सव है। इसे आश्विनमासकी प्रतिपदासे

प्रारम्भ कर नौ दिनोंतक बड़े धूमधामसे मनाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्मादि देवता और नारदादि ऋषि-मुनि भी परोक्षरूपसे सम्मिलित होकर इस उत्सवका आनन्द लेते हैं। वराहपुराणमें बताया गया है कि जब सूर्य कन्याराशिमें प्रवेश करता है, उस समय आश्विनमासमें ब्रह्मोत्सव आयोजित होता है। इस उत्सवमें भगवान् वेङ्कटेश मलयप्प स्वामीके रूपमें श्रद्धालुओंपर अपनी असीम कृपा बरसानेके लिये श्रीदेवी तथा भूदेवीके साथ विभिन्न वाहनोंपर सवार होकर अपने दिव्य निलय तथा उससे लगी स्वामिपुष्करिणीके चारों ओरकी वीथियोंमें भ्रमण करते हैं।

इस उत्सवके मुख्य कृत्य इस प्रकार हैं—

(क) आलयशुद्धि एवं अलंकरण—ब्रह्मोत्सवके प्रारम्भमें आलय अर्थात् भगवान् बालाजीके मन्दिरकी शास्त्रोक्तरीतिसे सफाई की जाती है। देवालयकी दीवारों, रसोईघर आदिको स्वच्छ जलसे भलीभाँति धोया-पोंछा जाता है। तदनन्तर मुख्य देवालयको बाहर-भीतर तथा तिरुमल नगर-परिसरको आमके पत्तों, केलेके खम्भों, फूलों आदिके तोरणों, पूर्ण कुम्भों तथा विविध वर्णकी पुष्पमालाओं आदिसे अलंकृत किया जाता है। यह आलय-शुद्धि तथा अलंकरण ब्रह्मोत्सवका प्रारम्भिक मुख्य कृत्य है।

(ख) मृत्तिकासंग्रह—ध्वजारोहणके पहले धान्यांकुरोंको रोपनेके लिये पवित्रस्थानकी मिट्टी लाना ही 'मृत्तिकासंग्रह' कहलाता है। इसके लिये मन्दिरके अर्चकमण्डल नूतन वस्त्र धारण कर श्रीआण्डाल, श्रीविष्वक्सेन, श्रीगरुड आदिकी अर्चनाके पश्चात् निश्चित स्थानपर जाकर भूदेवी (पृथ्वीदेवी)-की पूजा करते हैं और वहाँसे बड़े समारोहसे मिट्टी लाकर आनन्दनिलयके मुख्य प्राङ्गणमें बिछा देते हैं तथा उसीमें यथाविधि अंकुर—बीजवपन किया जाता है। इस क्रियाको 'अंकुरार्पण' कहते हैं।

(ग) ध्वजारोहण—भगवान्‌की ध्वजाको फहराना ही ध्वजारोहण है। यह ब्रह्मोत्सवका मुख्य अङ्ग है। यह कृत्य आश्विन शुक्ल द्वितीयाको सम्पन्न होता है और यहींसे ब्रह्मोत्सवका मुख्य उत्सव भी प्रारम्भ हो जाता है। भगवान् वेङ्कटेशके मन्दिरके सामने स्थित ध्वजस्थानके निकट यथाविधि ध्वजारोहण होता है।

(घ) देवता-आवाहन—ब्रह्मोत्सवमें उपस्थित होनेके लिये मनुष्योंके अतिरिक्त ऋषिगण एवं समस्त देवताओंका आवाहन किया जाता है। यह कार्य आद्य ब्रह्मोत्सवमें गरुडजीके माध्यमसे सम्पन्न हुआ, अतः आज भी वैसी ही भावना की जाती है।

(ङ) वाहनसेवा—ब्रह्मोत्सवका यह मुख्य उत्सव है। वाहनसेवा आश्विन शुक्ल द्वितीयासे एकादशीतक नित्य सायं-प्रातः सम्पन्न होती है। भगवान् वेङ्कटेशस्वामी (मलयप्प स्वामी)-को अपनी प्राणशक्तियों श्रीदेवी तथा भूदेवीके साथ विभिन्न वाहनोंपर विराजमान करके विशाल शोभायात्राके साथ आनन्दनिलयके चारों ओरकी वीथियोंमें भ्रमण कराया जाता है। सोने-चाँदीकी पालकियों, शेष, हंस, गरुड, हनुमान्, गज तथा अश्वादि वाहनोंपर प्रतिष्ठित हो भगवान् यात्रा करते हैं और भक्तोंको सुख पहुँचाते हैं। समस्त वाहनोंमें रथोत्सवयात्रा अत्यन्त लोकप्रिय है। बड़े-बड़े चार पहियोंपर चन्दनकी लकड़ीसे बने ऊँचे एवं रंग-बिरंगे दिव्य रथको दो घोड़े खींचते रहते हैं। भगवान् और देवियोंके रक्षार्थ आठ दिक्पाल भी रथके सभी ओर नियुक्त रहते हैं। यह दृश्य बड़ा ही रमणीक होता है। भक्तोंका अपार समूह साथमें जय-जयकारकी तुमुल ध्वनि करता रहता है।

(च) बालाजीका दरबार—भगवान् बालाजी प्रतिदिन प्रातः वाहनपर सवारी करनेके बाद अपने आलयमें प्रविष्ट होकर कुछ समयके लिये मण्डपमें विराजमान होते हैं, अर्चकगण प्रभुकी अर्चना करके नैवेद्य निवेदित करते हैं। अनन्तर भगवान्‌का प्रसाद दरवारमें उपस्थित जनोंको दिया जाता है।

(छ) स्नपन—प्रतिवाहन सेवाके पश्चात् श्रीदेवी तथा भूदेवीसहित भगवान् वेङ्कटेशको पञ्चामृत आदिसे स्नान कराया जाता है। यह विशिष्ट स्नान ही स्नपन कहलाता है। भक्तोंकी भावना है कि भगवान् भ्रमण करनेसे थक जाते हैं, अतः उन्हें स्नान कराया जाता है।

(ज) चूर्णाभिषेक—सवारी निकलनेसे पूर्व देवियोंसहित भगवान्‌को चावलके आटेसे प्रोक्षित (उबटन) करके उस आटे (चूर्ण)-को आलयके बाहर भ्रमणके समय दर्शन करनेवाले श्रद्धालुओंको बाँटा जाता है। यह विश्वास है कि चूर्णाभिषेकके इस प्रसादसे सभी पाप-ताप दूर हो जाते हैं।

(झ) चक्रस्नान—यह एक प्रकारसे यज्ञकी पूर्णाहुतिपर

होनेवाले 'अवभृथ-स्नान'के समान है। भगवान्‌को अपनी शक्तियोंके साथ ब्रह्मोत्सवके अन्तिम दिन श्रीस्वामिपुष्करिणीमें अपने सुदर्शनचक्रके साथ शोभायात्रा तथा मङ्गल मन्त्रों और वाद्योंकी ध्वनिके साथ स्नान कराया जाता है। इसे भगवान्‌का जलविहार भी कहा जाता है। स्नानके अनन्तर भगवान्‌को पुनः अपने आनन्दनिलयमें प्रतिष्ठित कराया जाता है।

(ञ) देवतोद्वासन—प्रारम्भमें जिन देवताओं तथा ऋषि-महर्षियोंका विविध मन्त्रोंद्वारा ब्रह्मोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये आवाहन किया गया था, उनका अगले ब्रह्मोत्सवमें पुनः पधारनेके लिये प्रार्थनाके साथ विसर्जन किया जाता है, इसे ही देवतोद्वासन कहा गया है।

(ट) ध्वजावरोहण—ब्रह्मोत्सवके प्रारम्भमें जिस ध्वजको आलयके प्राङ्गणमें ध्वजस्तम्भपर फहराया गया था, उसे यथाविधि ब्रह्मोत्सवके समापनपर उतार दिया जाता है, इसीका नाम ध्वजावरोहण है।

इस प्रकार बड़े समारोहपूर्वक बालाजीका ब्रह्मोत्सव पूर्ण होता है।

(२) कल्याणोत्सव

बालाजीका दूसरा मुख्य उत्सव 'कल्याणोत्सव' कहलाता है। साधारणतया यह तिरुमलनायक-मण्डपके कल्याणमण्डपमें मनाया जाता है। इस उत्सवमें श्रीमलयप्प स्वामीका श्रीदेवी और भूदेवीके साथ विवाह रचा जाता है। विवाहका यह माङ्गलिक दृश्य बड़ा ही आकर्षक होता है, जो पञ्चमूर्ति पूजासे प्रारम्भ होकर वैखानस आगमके अनुसार सम्पन्न होता है। वैदिक विधानके अनुसार देवियोंको मङ्गलसूत्र धारण कराया जाता है। इस उत्सवमें बहुमान देनेकी परम्परा है।

(३) लक्ष्मीदेवी-महोत्सव

यह उत्सव उत्तरा भाद्रपदनक्षत्रसे प्रारम्भ होकर रोहिणीनक्षत्रतक—छः दिनोंमें पूर्ण होता है। उत्सवका आरम्भ अंकुरार्पणसे होता है। ब्रह्मा, सोम, शेष तथा लक्ष्मीकी प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा की जाती है। श्रीसूक्त, कल्पसूक्त, लक्ष्मीसहस्रनामावली तथा लक्ष्मी-गायत्रीका जप होता है। सुमङ्गली स्त्रियोंका सम्मान किया जाता है।

(४) अन्य उत्सव

यूँ तो तिरुपतिमें प्रतिदिन प्रातः सुप्रभातम्‌से रात्रिशयन-पर्यन्त भगवान्‌की अर्चा-पूजाके विभिन्न उत्सव हुआ ही करते हैं, किंतु विशेष तिथियों और पर्वोंपर विशेष उत्सव भी होते हैं, उन्हींमेंसे कुछ-एकके नाम यहाँ दिये जा रहे हैं— रथसप्तमी, पवित्रोत्सव, पल्लवोत्सव, सहस्रनामार्चनोत्सव, सहस्रकमलाभिषेकोत्सव, वसन्तोत्सव, विवाहोत्सव, नौकोत्सव, प्लवोत्सव, पद्मावतीपरिणयोत्सव आदि। उत्सवोंमें मुख्य रूपसे भगवान्‌का अभिषेक, विशेष शृङ्गार, यात्रा, शोभायात्रा, जलविहार, मण्डप-प्रवेश तथा मङ्गल-आरती एवं प्रसाद-वितरण आदि कृत्य होते हैं। तिरुपतिबालाजी अपने उत्सवोंके लिये अति प्रसिद्ध हैं। यहाँकी अर्चा, पूजा, सेवा, यात्रा, उत्सवविधान आदि वैखानस आगमकी रीतिसे विमानार्चनकल्प आदि ग्रन्थोंके अनुसार होते हैं। यहाँ प्रतिष्ठित भगवान्‌का श्रीविग्रह अत्यन्त दिव्य, भव्य एवं कल्याणमय है।

सीतामढ़ी और जनकपुरका जानकीनवमी-महोत्सव

(श्रीसुधाकरजी ठाकुर)

वैशाख शुक्ल नवमीको वर्तमान बिहार राज्य स्थित सीतामढ़ी स्थानमें जानकीजीका आविर्भाव हुआ था। राजा जनककी राजधानी—जनकपुर, जहाँ भगवान् श्रीरामका विवाह हुआ था, बिहार राज्यके उत्तरमें सम्प्रति नेपाल देशमें स्थित है। जनकपुरमें विशाल महलोंके खण्डहर अभी भी विद्यमान हैं। इन खण्डहरोंपर की गयी चित्रकारी विलक्षण है। सभी इतिहासकारोंने एकमत होकर जनकपुरको माता जानकीकी मातृभूमिके रूपमें माना है। काठमाण्डूके राजकीय पुस्तकालयमें प्राचीन ताम्रपत्र, शिलालेख एवं भोजपत्र अभी भी जनकपुरके इतिहासके साक्षी हैं। महाराज नेपालके राजपण्डित अभी भी उन्हें मिथिलानरेश मानते हैं। महाराज नेपाल प्रतिवर्ष विवाहपञ्चमी (मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमी)-को काठमाण्डूसे आकर जानकीजीकी पूजा-अर्चना जनकपुर-मन्दिरमें करते हैं। जानकीजीका यह विशाल मन्दिर अति प्राचीन है। पहले यह जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें था। यह प्रसिद्धि है कि श्रीजानकीजीने मध्यभारतकी महारानी अहल्याबाई

जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही वर तुमको प्राप्त होगा—

मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो॥

सीतामढ़ीके कवि विद्यापतिने भी सीता-स्तुति करते हुए लिखा है—

रे नरनाह सतत भजु ताहि। ताहि नहिं जननि जनक नहिं जाहि॥

× × ×

जाहि ओदर से बाहर भेलि। से पुनि पलटि ततय चलि गेलि॥
भन विद्यापति सुकबी भान। कबि के कबि कहँ कबि पहचान॥

उन्होंने माता जानकीको माँ काली (भवानी)-के रूपमें चित्रित करते हुए लिखा है कि आदि माता जानकीजी ही—*'रूप कार्य सहस्र-कारण'* हजारों कार्योंके लिये माँ श्रीजानकीजी ही नाना रूप धारण करती हैं—

जगति-पालन, जनन मारण, 'रूप कार्य सहस्र-कारण'
हरि बिरंचि महेश-शेखर चुम्ब्यमान पदे।
सकल -पाप कला-परिच्युति सुकवि विद्यापति कृत- स्तुति
तोषिते सिवसिंह भूपति-कामना-फल दे।
भक्ति नम्र-सुरासुराधिप-मंगल प्रवरे॥

कोटि-कोटि जन्मोंके पापनाशक प्रभु श्रीराम तथा किशोरीजी अभिन्न हैं, वे हमारी विनय अवश्य सुनेंगे। यदि हम पूर्णत: समर्पित हो जायँ, अन्त:करणमें श्रीजानकीजीको बसा लें तो वे हमें दर्शन भी देंगी। माँ जानकीजीके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम। उनके पाद-पद्मोंमें बारम्बार नमन।

वन्दे विदेहतनयापदपुण्डरीकं
कैशोरसौरभसमाहतयोगिचित्तम्।
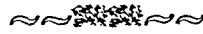
आदिशक्ति भगवती 'कामाख्या' का 'अम्बुवाची' व्रतोत्सव

(डॉ० श्रीदेवदत्तजी आचार्य, एम्०डी०)

भगवती कामाख्यादेवी योगमाया हैं। उन्हें महामाया भी कहते हैं, क्योंकि वे ज्ञानिजनोंकी भी चेतनाको बलात् आकर्षित करके मोहरूपी गर्तमें डाल देती हैं—

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।

(श्रीदुर्गा० १।५५-५६)

असमके कामगिरि पर्वतपर महामाया भगवती आद्याशक्ति कामाख्यादेवीका पावन पीठ विराजमान है जो चिन्मयी आद्याशक्तिका पीठ योनिपीठ कहलाता है—**'योनिपीठं कामगिरौ कामाख्या यत्र देवता'** यहाँ भगवती कामाख्याकी पूजा-उपासना तन्त्रोक्त आगम पद्धतिसे की जाती है। देवीभागवत, मत्स्य, पद्म तथा स्कन्द आदि पुराणोंमें देवीके १०८ शक्तिपीठोंका उल्लेख है। महाभागवत (देवीपुराण)-में इक्यावन शक्तिपीठोंकी गणना है। इनमें कामाख्याको सर्वोत्तम तीर्थ, तप, धर्म तथा परमगति कहा गया है—

कामाख्या परमं तीर्थं कामाख्या परमं तपः।
कामाख्या परमो धर्मः कामाख्या परमा गतिः॥

जब भगवान् शङ्कर सतीके शवको कन्धेपर ढो रहे थे, तब विष्णुके चक्रसे खण्डित होकर देवी सतीका *गुह्यभाग यहीं गिरा था।* इसीलिये यह कामरूप पीठ कहलाता है।

महाभागवत (देवीपुराण)-के १२वें अध्यायमें आता है कि सतीके वियोगसे अत्यन्त दुःखित होकर भगवान् शङ्करने ब्रह्मा तथा विष्णुसे पुनः सतीकी प्राप्तिका उपाय पूछा। भगवान् विष्णु तथा ब्रह्माजीके बहुत समझानेपर उन्होंने कहा कि सतीकी सर्वव्यापकता तथा नित्यताका ज्ञान होनेपर भी मैं उनके पत्नीत्वका अभाव नहीं सह सकता। फिर तीनोंने यहीं तपस्या आरम्भ की। भगवतीने प्रकट होकर शङ्करजीको वर दिया कि मैं गङ्गा तथा पार्वतीके रूपमें हिमवान्‌के घर अवतीर्ण होकर दोनों रूपोंमें आपका ही वरण करूँगी और हुआ भी वैसा ही। भगवान् विष्णु एवं ब्रह्माजीको भी यथेच्छ वरकी प्राप्ति हुई, तबसे इसका माहात्म्य विलक्षण समझा जाता है—

पीठानि चैकपञ्चाशदभवन्मुनिपुङ्गव॥
तेषु श्रेष्ठतमः पीठः कामरूपो महामते॥

(महाभाग० १२।२९-३०)

यहाँ भगवती साक्षात् नित्य हैं। इस महापीठके लाल जलमें स्नान करनेकी बड़ी महिमा है। साक्षात् भगवान्

जनार्दन ही यहाँ जल (द्रव)-रूपसे वर्तमान हैं। यहाँ स्नानकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे कामेश्वरी भगवतीको प्रणाम करना चाहिये—

कामेश्वरीं च कामाख्यां कामरूपनिवासिनीम्॥
तप्तकाञ्चनसंकाशां तां नमामि सुरेश्वरीम्।

(देवीपुराण १२। ३४-३५)

शक्तिपीठोंके आविर्भावकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

कैलासपति भगवान् शङ्करका विवाह दक्षप्रजापतिकी सुपुत्री भगवती सतीके साथ हुआ था। एक बार दक्षप्रजापतिने एक विशाल यज्ञका आयोजन किया, जिसमें सब देवोंको तो आमन्त्रित किया गया, किंतु द्वेषवश दक्षने शिवजीको नहीं बुलाया। देवर्षि नारदने कैलासमें जाकर भगवती सतीको बताया कि तुम्हारे पिताके घरपर यज्ञ हो रहा है और तुमको यहाँपर देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। सतीने कहा—'यज्ञका आमन्त्रण हमें मिला नहीं है, अतः हम वहाँ कैसे जायँ।' यह सुनकर देवर्षि नारद बोले—'पितृगृहमें यज्ञादि कार्य हो रहा हो और आमन्त्रण न भी आये, तो भी वहाँ जाना पुत्रीके लिये अनुचित नहीं है।' ऐसा कहकर नारदमुनि वहाँसे चले गये। बादमें सतीने भगवान् शङ्करसे पितृगृह जानेकी अनुज्ञा माँगी। शङ्करने सतीको समझाया कि वहाँपर बिना आमन्त्रणके जाना उचित नहीं है। सतीने प्रत्युत्तर दिया—'पितृगृहमें यज्ञ-यागादि धर्मकार्य होते हों तो बिना आमन्त्रणके भी पुत्रीको वहाँपर जाना अनुचित नहीं है, ऐसा नारदमुनिने यहाँपर आकर मुझे समझाया है। इसलिये मैं पितृगृह जाना चाहती हूँ।' यह सुनकर शिवजीने जान लिया। उनके सेवकोंमें प्रमुख वीरभद्र आदिने यज्ञका विध्वंस कर दिया। वहाँ प्रकट हुए भगवान् शिवका महारौद्ररूप देखकर सब देव और ऋषि-मुनि वहाँसे पलायित हो गये। भगवान् शङ्करने अपनी प्रिय पत्नी सतीका शव (मृतदेह) अपने कन्धेपर रख लिया और आकाशमार्गपर उन्मत्त हो विचरण करने लगे। यह देखकर दुःखित देवोंने भगवान् विष्णुसे कहा कि 'यदि भगवान् शङ्करकी इस प्रकारकी स्थिति बनी रही तो विश्वका संचालन गड़बड़ा जायगा, अतः शिवको शवमुक्त करना ही होगा।' देवोंकी प्रार्थनासे भगवान् विष्णु आर्द्रचित्त हुए। उन्होंने अपने अमोघशक्तिसम्पन्न सुदर्शनचक्रको आज्ञा देकर छोड़ा। उसने शङ्करके समीप पहुँचकर सतीके मृतदेहके टुकड़े-टुकड़े करना प्रारम्भ किया। जो-जो टुकड़ा पृथ्वीपर जहाँ-जहाँपर पड़ा, वही स्थान शक्तिपीठ कहलाया। इस प्रकार शक्तिपीठोंका निर्माण हुआ। आसाम-प्रदेशके इस पहाड़पर सतीके मृतदेहकी योनि गिरी थी, अतः यहाँपर सतीकी योनिकी पूजा की जाती है। यहाँके शक्ति-पीठकी आराध्यादेवी आदिशक्ति भगवती कामाख्या हैं। कहते हैं कि दसवीं शताब्दीमें कौल-सम्प्रदायके संस्थापक एवं प्रवर्तक योगी मत्स्येन्द्रनाथ (योगी गोरक्षनाथके गुरु)-ने इस शक्तिपीठमें दीर्घकालतक निवास करके शक्तिसाधनाद्वारा कामाख्यादेवीका साक्षात्कार प्राप्त किया था।

इस शक्तिपीठमें नवरात्रका उत्सव भव्यरूपमें मनाया जाता है। देवीके भक्तजन कामाख्यादेवीके दर्शन-पूजनके लिये यहाँपर आते हैं।

प्रथम चरणमें होता है, यह काल, अम्बुवाचीका पर्याय है। तीन दिन पूरा होनेके बाद चौथे दिन पत्थरको स्नान कराकर उसपर चन्दन-कुमकुम लगाकर तथा पुष्पमाला पहनाकर भू-माता (पृथ्वीदेवी) शुद्ध हुई—ऐसी भावना की जाती है। आसाम-प्रदेशमें आषाढ़ शुक्लमें उस समय देवीके मन्दिरका द्वार तीन दिनपर्यन्त बंद रखा जाता है। कामाख्यादेवी ऋतुमती हैं—ऐसी भावना करके किसी भी भक्तको देवीके दर्शन करनेकी अनुमति नहीं दी जाती। चौथे दिन प्रात:कालमें देवीको सविधि स्नान करवाकर तथा वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित कर बादमें देवीके दर्शनहेतु द्वार खोला जाता है। देवीको नैवेद्य निवेदन कर उनकी आरती करनेके बाद ही उपस्थित भक्तोंको देवीके रजोदर्शनके प्रतीकके रूपमें लालरंगके वस्त्रका टुकड़ा प्रसादरूपमें दिया जाता है।

यह भी बताया जाता है कि 'अम्बुवाची-उत्सव'का सम्बन्ध कृषिकर्मके साथ है।' देहविज्ञान कहता है कि स्त्रीके रजोदर्शनकालमें गर्भधारण नहीं होता। उस समय वीर्यरूप बीज व्यर्थ जाता है। इसी प्रकार धरित्री (भूमि)-के रजोदर्शनकी भावना भी है और उसे भी तीन दिनपर्यन्त अस्पृश्य एवं अयोग्य माना जाता है। मृगशिरा-नक्षत्रके पहले बरसातसे मिट्टी बहकर नदी-नालेमें जाती है और पानीको लालरंगका बना डालती है। इस दृश्यसे पृथ्वीके रज:स्रावकी भावना की जाती है। इसीलिये वे तीन दिन कृषिकर्मके लिये अनुपयुक्त माने गये। आसाम-प्रदेशकी कामाख्यादेवी भी पृथ्वीमाताका ही स्वरूप होनेसे उनका इस अम्बुवाची कालमें विशिष्ट विधि-निषेध निर्माण किया गया है। कृषिशास्त्रके एक ग्रन्थमें बताया गया है कि 'द्यौ' यह पुरुष है, 'धरणी' नारी है। द्यौमेंसे गिरा हुआ पर्जन्य (बरसात)-बीज है। द्यौ, धरणी और बीजके संयोगमेंसे धान्यादि वनस्पतिकी सम्भावना होती है। अन्न ही जगत्का आधार है। अन्नसे ही यह सम्पूर्ण जीवनिकाय और विश्व टिका हुआ है। जल ही अन्नका मूल होनेसे जलको जीवन कहा गया है। इसीलिये तो कृषिशास्त्रमें स्पष्ट कहा है—

वृष्टिमूला कृषिः सर्वा वृष्टिमूलं च जीवनम्॥

पृथ्वीको अन्नके गर्भधारणकी क्षमता अम्बुवाचीके बाद ही प्राप्त होनेसे अम्बुवाचीका महत्त्व कृषिजीवनमें विशेषरूपमें देखा जाता है। धरणीकी यह गर्भधारण-आर्द्रता ही अम्बुवाची संज्ञासे अभिव्यक्त हुई है।

गयाजीका पितृपक्ष-महोत्सव

(प्रो० डॉ० श्रीराधेमोहनप्रसादजी)

'गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत्।'

(वायुपु० उ० ४३।९)

अर्थात् श्राद्ध करनेकी दृष्टिसे पुत्रको गयामें आया देखकर पितरोंके लिये उत्सव होता है। तात्पर्य यह है कि जैसे उत्सवमें हर्षोल्लास तथा आनन्द होता है, वैसे ही पितर भी अत्यन्त आनन्दित होकर उत्सव मनाते हैं।

यदि प्रयाग तीर्थराज है तो गया तीर्थराजराजेश्वर, जहाँ आकर मनुष्य अपने पापोंसे निवृत्त होकर पितरोंसहित दिव्यधामका अधिकारी बन जाता है। पूर्वजोंको तारनेवाले सभी देवता, सर्वाक्षरमय ओंकार तथा सभी सुरसमाजसहित चराचर भगवान् विष्णु यहाँ 'गदाधर' नामसे निवास करते हैं। यहीं वह शिला भी है जो प्रेतयोनिसे मुक्त करानेवाली है। अन्त:सलिला फल्गु नदी यहीं बहती है। अपनी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं साहित्यिक धरोहरके लिये सारे संसारमें प्रसिद्ध गयाजी ही वह स्थान है, जहाँ पूरे विश्वके हिन्दू अपने पूर्वजोंके मोक्षप्राप्तिहेतु पिण्डदान करने आते हैं। वायुपुराणके अनुसार—

गङ्गा पादोदकं विष्णोः फल्गुर्ह्यादिगदाधरः।
स्वयं हि द्रवरूपेण तस्माद् गङ्गाधिकं विदुः॥

(वायुपु० उ० ४९।१८)

गयाजी पूर्वजोंके उद्धारके लिये सर्वश्रेष्ठ स्थान है। जो कोई भी व्यक्ति पवित्र मनसे यहाँ आकर तर्पण-श्राद्धादिका कार्य सम्पन्न करता है तो उसके पितृगण संतृप्त हो अक्षयलोक प्राप्त करते हैं और कर्ताको भी पुण्यफल प्राप्त होता है।

अत्रिस्मृति, वृहस्पतिस्मृति, कात्यायनस्मृति, महाभारत,

गयातीर्थको भगवान् सूर्यके ज्येष्ठ पौत्र सुद्युम्नके पुत्र 'गय' ने बसाया था। उन्होंने इस तीर्थमें सौ 'अश्वमेधयज्ञ' किये थे। इस प्रतापी राजाके पुण्यप्रतापसे ही इस तीर्थका नाम 'गया' के रूपमें प्रसिद्ध हुआ।

एक अन्य कथाके अनुसार प्राचीन कालमें गयासुर नामक एक दानव था, जिसने अपने तपोबलसे सभी देवताओंको अपने वशमें कर लिया था। देवताओंमें त्राहि-त्राहि मच गयी, अपनी रक्षाके लिये उन्होंने भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की। इस संकटके निवारणार्थ भगवान् विष्णुने सर्वप्रथम ब्रह्माजीको भेजा। ब्रह्माजीने आकर यज्ञके निमित्त गयासुरसे उसका पवित्र हुआ शरीर माँगा तो गयासुरने सहर्ष अपने शरीरको समर्पित कर दिया। विराट् शरीरवाला गयासुर उत्तरकी ओर सिर तथा दक्षिणकी ओर पैर करके वहीं भूमिपर सो गया। तदनन्तर उसीके शरीरपर यज्ञका अनुष्ठान किया गया, किंतु उसका शरीर स्थिर नहीं हो सका। ब्रह्माने किसी तरह आश्वासन देकर थोड़ी देरतक शान्त रहनेकी प्रार्थना की, इतनेहीमें सभी तीर्थ अपना-अपना रूप धारण कर असुरको दबाने लगे ताकि वह स्थिर हो जाय। देवताओंने अपनी अभीष्ट-सिद्धि होते न देखकर भगवान् विष्णुका आवाहन किया। गदाधर भगवान् विष्णुने अपने लोकसे तत्क्षण पहुँचकर गयासुरपर अपना चरण रख दिया तब जाकर वह स्थिर हुआ। भगवान् विष्णुसे उसने यह वर प्राप्त कर लिया कि जो मनुष्य इस स्थानपर आकर अपने पूर्वजोंका श्राद्ध करेंगे उनके इक्कीस कुलका उद्धार होगा। तभीसे यह स्थान गयाजीके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

गयाका प्रसिद्ध विष्णुपदमन्दिर स्थापत्य कलाका उत्कृष्ट नमूना है, जिसका पुनरुद्धार एवं निर्माणकार्य इन्दौरकी महारानी अहल्याबाई होल्करने करवाया था। मन्दिरकी ऊँचाई लगभग सौ फीट है, जिसकी चोटीपर चमकता हुआ स्वर्णध्वज तथा कलश स्थापित है। जब भगवान् भास्करकी पहली किरण उसपर पड़ती है तो वहाँ दृष्टि ठहर ही नहीं पाती तथा सन्ध्याकालमें सूर्यास्त हो जानेके बाद भी हेमकलश तथा ध्वजकी प्रभा भावुक मनको मोह लेती है। इस मन्दिरमें भगवान् विष्णुके चरण हैं। न जाने कबसे करोड़ों भक्त अपने हाथोंसे उन चरणोंका स्पर्श करते आये हैं। पाँच कोस गयाक्षेत्र और एक कोस गयासिर माना जाता है। सारे तीर्थ इसी सीमामें रहते हैं—

पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः।
तन्मध्ये सर्वतीर्थानि प्रयच्छन्तु हितं नृणाम्॥

(वायुपु० उ० ४४। ६५)

गयातीर्थमें प्रभाशेखर, कोटिखल, स्वर्गद्वारेश्वर, रामेश्वर, गदालोल, ब्रह्मेश्वर, महाचण्डी, मार्कण्डेश्वर आदि प्रसिद्ध मन्दिर हैं। यात्री फल्गु नदी, ब्रह्मतीर्थ, सोमतीर्थ, रामह्रद तथा वैतरणी-जैसे तीर्थोंमें स्नान करते हैं। भस्मकूट, गायत्री, सावित्री तथा सरस्वतीमें तर्पण करनेका नियम है। धर्मारण्य, मङ्गलवापी, धर्मकूप, धेनुकारण्य, भरताश्रम, पाण्डुशिला और कौशिकी ह्रदमें श्राद्ध किया जाता है। इसके साथ ही विष्णुपद, अक्षयवट, गदालोल, रामशिला, प्रेतशिला, रामकुण्ड तथा ब्रह्मकुण्डका भी बहुत महत्त्व है। भगवान् बुद्धको जिस स्थानपर ज्ञानकी प्राप्ति हुई थी, वह स्थान भी यहींपर है, जिसे 'बोधगया' के नामसे जाना जाता है।

गयाजी वह स्थान है, जहाँ अकालमृत्युप्राप्त प्रेतात्माओंको पिण्डदान करनेसे उन्हें मुक्ति मिलती है। मृतात्माके लिये तर्पण-श्राद्ध आदि जरूर करते रहना चाहिये। यह तो पूरी तरह सिद्ध हो चुका है कि मृत्यु ही जीवनका अन्त नहीं है, वरन् इसके बाद भी एक ऐसा जीवन है जो हमारे वर्तमानसे अधिक शक्तिशाली, प्रभावकारी तथा सामान्य नियन्त्रणसे परे है। देखा गया है कि अधिक धन रहनेपर भी व्यक्ति सुखी नहीं होता। उसे विभिन्न प्रकारकी ऐसी समस्याओंका सामना करना पड़ता है, जिसका कोई स्पष्ट कारण नजर नहीं आता। पर सम्भव है कि इन कष्टोंका सम्बन्ध हमारे पूर्वजोंकी अतृप्तिसे हो, जिसपर हमारा ध्यान कभी नहीं जाता। घरमें कोई भी माङ्गलिक कार्य प्रारम्भ करनेके समय पितरोंकी पूजा (नान्दीश्राद्ध) करनेका विधान इसीलिये बना हुआ है। मार्कण्डेयपुराणके अनुसार तर्पण-श्राद्धादि द्वारा संतृप्त पितृगण आयु, संतान, वैभव, विद्या, राज्य, सुख, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं—

आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः॥

अपने जिन पूर्वजोंसे हमें यह शरीर प्राप्त हुआ, हमारा पालन-पोषण हुआ, यदि उनके निमित्त यह सब कार्य न करें तो यह हमारी कृतघ्नता होगी। इसीसे पूर्वजोंकी मुक्तिके लिये शास्त्रोंमें तर्पण, श्राद्धादि कार्योंका विधान है। श्रद्धा और विश्वाससे किया जानेवाला वह कार्य जो पितरोंके उद्धारके लिये सम्पन्न किया जाता है, श्राद्ध कहलाता है। जिसका अपने परिवारमें कोई नहीं है, उसका गयाश्राद्ध करवा देनेसे बहुत अधिक पुण्य होता है। जिसका नाम न मालूम हो उसके लिये 'यथानाम' कहकर पिण्ड दिया जाता है। अज्ञात तिथिवालोंका श्राद्ध अमावास्याको करनेका विधान है। वैसे भूले-बिसरे लोग जो आपसे पिण्ड पानेकी अभिलाषा रखते हों और जिन्हें आप नहीं जानते, उन्हें भी गयाजीमें ही पिण्ड दिया जाता है। देवयोनि, नारकीय योनि, पशुपक्षीयोनि तथा मनुष्ययोनिमें भी अपने परिवारजनोंद्वारा दिया गया श्राद्ध प्राणीको जरूर प्राप्त होता है, ऐसा शास्त्रोंका मत है। शास्त्रोंके अनुसार जीवात्माका अगला जीवन पिछले संस्कारोंसे बनता है। अतः श्राद्ध करके यह भावना की जाती है कि उनका अगला जीवन अच्छा हो। वे भी हमारे वर्तमान जीवनकी अड़चनोंको दूर करनेकी प्रेरणा देते हैं और हमारी सहायता करते हैं तथा इन सब कार्योंके लिये गयाजी सर्वश्रेष्ठ स्थान है। शास्त्रोंने तो इतना तक भी बताया है कि गयाके लिये घरसे प्रस्थानमात्र कर देनेसे कर्ताका वह प्रत्येक गमनरूपीपद पितरोंके लिये स्वर्गगमनकी सीढ़ी बन जाता है—

गृहाच्चलितमात्रेण गयायां गमनं प्रति।
स्वर्गारोहणसोपानं पितॄणां च पदे पदे॥

(वायुपु० उ० ४३।२८)

मकर-संक्रान्तिपर्वपर गङ्गासागरयात्रा-महोत्सव और आख्यान

(श्रीराजेन्द्रप्रसादजी त्रिपाठी)

एक ख्यातिप्राप्त लोकोक्ति है—*'सब तीरथ बार-बार गङ्गासागर एक बार।'* इसे दो संदर्भोंमें देखा जा सकता है—प्रथम तो यह कि दूसरे तीर्थोंमें अनेक बार जाने, दर्शन करनेका जो पुण्य होता है उतना पुण्य गङ्गासागरके एक बारके दर्शनसे हो जाता है। दूसरे संदर्भके अनुसार प्राचीन कालमें गङ्गासागरकी यात्राको अत्यन्त दुरूह माना जाता था; क्योंकि वहाँकी भौगोलिक स्थिति अत्यन्त दुर्गम थी और नौकाएँ वहाँ प्रायः डूब जाया करती थीं, परंतु अब ऐसी स्थिति नहीं है। गङ्गासागर तीर्थ पहुँचनेके लिये तीर्थयात्रियोंको हावड़ा रेलवे स्टेशन पहुँचना होता है। हावड़ा रेलवे स्टेशनसे ही लगा हुआ कोलकाता ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशनका बस-स्टैण्ड है। बसें तीर्थयात्रियोंको हावड़ा रेलवे स्टेशनसे हराउड प्वाइंट, कागद्वीप नामखाना, बूढ़ी गङ्गा (नामघाट) इत्यादि स्थानोंको ले जाती हैं, वहाँसे फिर आठ-दस कि० मी० लांचके द्वारा हुगली (गङ्गा) नदीको पार कर कुचबेडिया बस-स्टैण्डसे बसद्वारा गङ्गासागर बस-स्टैण्ड पहुँचा जाता है। गङ्गासागर बस-स्टैण्डसे गङ्गासागर तीर्थ लगभग डेढ़ कि० मी० है। बस-स्टैण्डसे कपिलमुनि-मन्दिर एक कि० मी० है, अतः वहाँसे उसे देखा जा सकता है।

डीघा (उड़ीसा-कोलकाता पश्चिम बंगालकी सीमा)-से चित्तागोंग (बँगला देश)-तक विस्तृत गङ्गाजीका पाट गङ्गाका मुहाना कहा जाता है। इसी मुहानेके बीचोबीच उत्तरसे दक्षिणकी ओर लगभग ३५ कि० मी० और पूर्वसे पश्चिमकी ओर लगभग १५ कि० मी० क्षेत्रफलका एक टापू है जो कि माँ गङ्गाकी एक १०—१२ कि० मी० चौड़ी धाराके रूपमें प्रवाहित हुगली नदी सागर-सङ्गमके पूर्वी तटपर स्थित है। इसे ही गङ्गासागर कहते हैं। यहाँ यात्री समुद्र देवताको नारियल और जनेऊ भेंट करते हैं। पूजन एवं पिण्डदानके लिये बहुत-से पण्डागण गाय-बछियाके साथ खड़े रहते हैं, जो कि इच्छित पूजा करा देते हैं। समुद्रमें पितरोंको जल अवश्य अर्पित करना चाहिये। स्नान करनेके बाद कपिलमुनि-मन्दिरका दर्शन करना चाहिये। असली कपिलमुनि-मन्दिर लुप्त हो गया है, वर्तमानमें जो

कपिलमुनि-मन्दिर है, वह समुद्रमें नहीं डूबता। इस प्रकार गङ्गासागरयात्रा अब बहुत आनन्ददायक एवं पुण्यमयी है। मकर-संक्रान्तिके पर्वपर देश-विदेशसे लाखों दर्शनार्थी यहाँ आते हैं।

गङ्गासागरतीर्थकी उत्पत्तिकी कथा

भगवान् श्रीरामने अवतार लेकर सूर्यवंशको धन्य किया। उन्हींके पूर्वजोंमें महाराज बाहुकी छोटी रानीसे राजा सगरका जन्म हुआ। यथासमय महामुनि और्वने सगरको अस्त्र-शस्त्रोंकी मन्त्रसहित शिक्षा-दीक्षा दी। राजा सगरने अपने कुलगुरु वसिष्ठसे दिव्यास्त्रोंको प्राप्तकर अपने शत्रु राजाओंको पराजित किया।

राजा सगरकी दो रानियाँ थीं—केशिनी और सुमति। ये दोनों विदर्भराज काश्यपकी कन्याएँ थीं। एक समय राजा सगरकी दोनों रानियोंद्वारा पुत्रप्राप्तिकी प्रार्थना करनेपर और्व-मुनि बोले—तुम दोनोंमेंसे एक रानी तो एक ही पुत्र प्राप्त करेगी, जो कि वंशको चलानेवाला होगा। दूसरी रानी केवल संतानविषयक इच्छाकी पूर्तिके लिये साठ हजार पुत्र पैदा करेगी। अतः तुमलोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार इनमेंसे एक-एक वर माँग लो। केशिनीने वंश-परम्पराहेतु एक ही पुत्रका वरदान माँगा तथा रानी सुमतिके साठ हजार पुत्र हुए। केशिनीके पुत्रका नाम असमंजस था। असमंजस दुष्टता एवं उन्मत्ततासे भरपूर था। असमंजसकी देखादेखी सगरके सभी पुत्र दुराचारी हो लोकमें उपद्रव करने लगे। वे धार्मिक अनुष्ठान करनेवाले लोगोंके कार्यमें विघ्न डालते थे। उन्होंने साधुपुरुषोंकी जीविका छीन ली और सदाचारका नाश कर डाला। इन्द्रादि देवता दुःखसे अत्यन्त पीड़ित हो कपिलमुनिके पास गये। कपिलमुनिने कहा—जो लोग इस जगत्‌में अपने यश, बल, धन और आयुका नाश चाहते हैं, वे ही दूसरे लोगोंको पीडा पहुँचाते हैं। उन्हें दैव शीघ्र ही नष्ट कर देता है। थोड़े ही दिनोंमें इन सगर-पुत्रोंका नाश हो जायगा। राजा सगर अपने पुत्रोंके दुष्कृत्यसे बहुत दुःखी रहते थे। असमंजसके अंशुमान् नामक पुत्र हुआ, जो बड़ा धर्मात्मा, गुणवान् और शास्त्रोंका ज्ञाता था। वह हमेशा अपने पितामह राजा सगरके साथ रहकर राज्यके कार्योंमें हाथ बँटाता था।

राजा सगरने वसिष्ठ आदि महर्षियोंके सहयोगसे परम उत्तम अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया। उस यज्ञके लिये नियुक्त किये हुए घोड़ेको देवराज इन्द्रने चुरा लिया और पातालमें जहाँ कपिलमुनि रहते थे, ले जाकर बाँध दिया। सगरके पुत्रोंने सभी लोकोंमें अश्वको खोजा, परंतु अश्व कहीं भी दिखायी नहीं दिया। जब उन्हें कहीं घोड़ा नहीं मिला, तब उन्होंने सब ओरसे पृथ्वीको खोद डाला। एक-एकने अलग-अलग एक-एक योजन भूमि खोद डाली और कपिलमुनिके आश्रममें जा पहुँचे, जहाँ एक कोनेमें कपिलमुनिके पास घोड़ा दिखायी दिया। घोड़ेको देखकर वे साठ हजार राजकुमार शस्त्र उठाकर यह कहते हुए कपिलमुनिकी ओर दौड़ पड़े कि 'यही हमारे घोड़ेको चुरानेवाला है, इसे बाँध लो।' इससे मुनिकी समाधि भङ्ग हो गयी। उन्होंने सगर-पुत्रोंसे कहा—'जो ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हैं, जो भूखसे पीड़ित हैं, जो कामी हैं तथा जो अहङ्कारसे मूढ़ हो रहे हैं—ऐसे मनुष्योंको विवेक नहीं होता।' ऐसा कहकर भगवान् कपिलके नेत्रोंसे आग प्रकट हुई। उस आगने समस्त सगर-पुत्रोंको जलाकर भस्म कर डाला।

देवदूतने राजा सगरको उनके साठ हजार पुत्रोंके भस्म होनेका वृत्तान्त सुनाया। सब वृत्तान्त सुनकर शास्त्रोंके ज्ञाता राजाने प्रसन्नतापूर्वक कहा—दैवने ही उन दुष्टोंको दण्ड

दिया है। महाराज सगरने अपने पौत्र अंशुमान्‌को अश्व खोजनेके लिये भेजा। अंशुमान् अपने चाचाओंके द्वारा खोदे हुए मार्गसे समुद्रके किनारे-किनारे चलकर उनके शरीरोंकी भस्मके पास पहुँचे और वहीं घोड़ेको देखा। वहींपर भगवान्‌के अवतार कपिलमुनि भी बैठे हुए थे। अंशुमान्‌ने अपने पिताके भाइयोंद्वारा किये गये निन्दित कर्मके लिये क्षमा माँगी और नाना प्रकारसे कपिलमुनिकी प्रार्थना की। कपिलमुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—'राजकुमार! वर माँगो।' तब अंशुमान् प्रणाम करके बोला—'भगवन्! हमारे इन पितरोंको ब्रह्मलोक पहुँचा दें।' तब कपिलमुनि बोले—'तुम्हारा पौत्र यहाँ गङ्गाजीको लाकर अपने पितरोंको स्वर्गलोक पहुँचायेगा। पुण्यसलिला गङ्गाजी इन सगर-पुत्रोंके पाप धोकर इन्हें परमपदकी प्राप्ति करा देंगी। बेटा! इस घोड़ेको ले जाओ, जिससे तुम्हारे पितामहका यज्ञ पूर्ण हो जाय।' तब अंशुमान्‌ने अश्वसहित जाकर राजा सगरको सब समाचार निवेदन किया। राजा सगर अपने पौत्र अंशुमान्‌को राज्य सौंपकर निःस्पृह एवं बन्धनमुक्त हो भगवान् विष्णुकी उपासना करते हुए स्वर्गधाम चले गये।

राजा अंशुमान्‌के पुत्र हुए दिलीप और महाराज दिलीपके पुत्र हुए भगीरथ। यद्यपि राजा अंशुमान्, दिलीप सभीने घोर तपस्या की, परंतु अंशुमान्‌के पौत्र एवं दिलीपके पुत्र महाराज भगीरथकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती गङ्गाने उन्हें दर्शन दिया और कहा—'मैं तुम्हें वर देनेके लिये आयी हूँ।' तब

महाराज भगीरथने अपना अभिप्राय बताया कि 'आप मृत्युलोकमें चलिये।' गङ्गाजीने कहा—'जिस समय मैं स्वर्गसे पृथ्वीतलपर गिरूँ, उस समय मेरे वेगको कोई धारण करनेवाला होना चाहिये।' तब महाराज भगीरथने भगवान् शङ्करकी तपस्या की। तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने गङ्गाजीके वेगको सिरपर धारण करना स्वीकार किया। इस प्रकार जब गङ्गाजी स्वर्गसे चलीं तो भगवान् शङ्करने उन्हें अपनी जटाओंमें धारण कर लिया। इसके बाद राजर्षि भगीरथ त्रिभुवन-पावनी गङ्गाजीको लेकर वहाँ आये, जहाँ उनके पितरोंके शरीर राखके ढेर बने पड़े थे। इस प्रकार गङ्गासागर-संगमपर पहुँचकर गङ्गाजीने सगरके जले हुए पुत्रोंकी भस्मको डुबो दिया। यद्यपि सगरके पुत्र ब्राह्मणके तिरस्कारके कारण भस्म हो गये थे, इसलिये उनके उद्धारका कोई उपाय न था, फिर भी केवल शरीरकी राखके साथ गङ्गाजलका स्पर्श हो जानेसे ही वे स्वर्गमें चले गये। जब गङ्गाजलसे शरीरकी राखका स्पर्श हो जानेसे सगरके पुत्रोंको स्वर्गकी प्राप्ति हो गयी, तब जो लोग श्रद्धाके साथ मकर-संक्रान्तिके शुभ अवसरपर स्नान, दान तथा तर्पण आदि करते हैं, उनकी मुक्तिमें क्या संदेह।

गङ्गासागरका महत्त्व

देवर्षि नारदने ब्रह्माके आदेशसे महीसागर (गङ्गासागर) संगमपर एक यज्ञ किया एवं ब्रह्मवेत्ताओंको बसाया। उन्हीं ब्रह्मवेत्ताओंमें एक हारीतमुनि थे। हारीतमुनिने गङ्गासागरमें कठोर तपस्या की। नित्य सूर्य-उपासना करते हुए वे कहा करते थे, 'हे भुवनभास्कर! समस्त मानव-समुदायका कल्याण करें। मैं बार-बार आपको सादर नमन करता हूँ।' भगवान् भुवनभास्कर उनकी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हुए। एक दिन हारीतमुनिने उदयाचलमें साक्षात् सूर्यदेवके दर्शन किये। सूर्यदेवने मुनिको 'सूर्यांश' से परिपूर्ण पुत्र प्रदान किया, जिसका नाम 'कमठ' रखा गया।

देवर्षि नारद प्रायः ब्रह्मवेत्ताओंके पास सत्सङ्ग करने गङ्गासागर आया करते थे। उनकी दृष्टि आठ-दस वर्षीय कमठपर पड़ी जो ब्रह्मवेत्ताओंके साथ शास्त्रोंकी परिचर्चामें लीन था। देवर्षि नारद उस बालककी ज्ञानगरिमासे अत्यन्त प्रभावित हुए। वे तत्काल सूर्यलोक पहुँचे। उन्होंने सूर्यदेवसे सादर निवेदन किया—हे दिवाकर! आपकी असीम कृपासे आपका सूर्यांश प्राप्तकर एक तत्त्वदर्शी बालकने महीसागर संगमको पावन बना रखा है। वह जन्म-मृत्यु, वेद-वेदाङ्ग, ग्रह-नक्षत्र, ज्योतिष आदि विद्याओंमें प्रवीण हो चुका है।

उसके योग्य आचार्यका मिलना दुर्लभ हो गया है। कृपया उसे दीक्षा देकर महीसागर-संगमको कृतार्थ कीजिये। भुवनभास्करने कहा—'देवर्षि! आपसे बढ़कर आचार्य कौन हो सकता है?' देवर्षि नारदने उत्तर दिया—प्रभो! मेरी परीक्षा न लीजिये। कृपा करके गङ्गासागर-संगमको पावन कीजिये। भगवान् भास्करने 'तथास्तु' कहा।

एक दिन महीसागर-संगमपर ब्रह्मवेत्ताओंका विशाल समागम हुआ। विभिन्न विषयोंपर चर्चा चल रही थी। बालक कमठ एकके बाद एक सभी प्रश्नोंके उत्तर दे रहा था, तभी पूर्व दिशासे एक संतरूपधारी तेजस्वी पुरुष वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने ज्ञानमण्डलके सदस्योंसे प्रश्न पूछनेकी अनुमति माँगी। प्रश्न किया—एक प्राकृत भोजन होता है, दूसरा परम भोजन होता है। क्या आप सब मुझे परम भोजन प्रदान करेंगे? सभीके तर्क-वितर्कके बाद बालक कमठने कहा—हे ज्ञानिश्रेष्ठ! प्रकृति आदि चौबीस तत्त्वोंसे बने शरीरको जो तृप्त करता है, वही प्राकृत भोजन होता है। नाना प्रकारके धर्मका श्रवण अन्न है, दोनों कान उस अन्नको ग्रहण करनेवाले मुख हैं और क्षेत्रज्ञ आत्मा उस अन्नका भोक्ता है। ऐसा आत्माको तृप्त करनेवाला भोजन परमानन्द देता है, वही परम भोजन कहलाता है।

आगन्तुकने पुनः प्रश्न किया—प्राणी परमपद कैसे प्राप्त कर सकता है? बालक कमठने उत्तर दिया—

यैस्त्यक्तो ममताभावो लोभकोपौ निराकृतौ।
ते यान्ति परमं स्थानं कामक्रोधविवर्जिताः॥

ममता, लोभ, क्रोध आदिका त्याग करनेसे प्राणीको परमपदकी प्राप्ति होती है। अनेकानेक प्रश्न पूछनेके बाद आगन्तुकने प्रश्न किया—प्रकृति और अध्यात्मका संयोग-सूत्र कौन-सा है? बालक कमठने विहँसते हुए कहा—हे भुवनभास्कर! प्रकृति आपकी लीलाका प्रसार है और अध्यात्म आपकी पावन महिमाका उपहार है।

गूढ़ उत्तर सुनकर भुवनभास्कर अपना बनावटी वेष त्यागकर सूर्यदेवके रूपमें प्रकट हुए। महीसागर-संगम भगवान् भुवनभास्करकी कोटि-कोटि रश्मियोंसे आलोकित हो उठा। मुनिसमुदाय एक स्वरसे सूर्यमन्त्र उच्चारित करने लगे। हारीतमुनिके नेतृत्वमें समस्त ब्रह्मवेत्ताओंने सूर्यनमस्कार कर दण्डवत् प्रणाम निवेदित किया। भुवनभास्करने अपनी रश्मियोंसे बालक कमठको दीक्षा-मन्त्र प्रदान करते हुए कहा—हे कुलश्रेष्ठ कमठ! तुम्हारा स्थान आजसे सूर्यधाममें होगा। अनन्त ज्ञान-रश्मियोंमेंसे एक ज्ञान-रश्मिकी पहचान तुम्हारे नामसे हुआ करेगी।

बालक कमठने बड़ी विनम्रतासे प्रार्थना की—हे भुवनभास्कर! आपकी उपस्थितिसे यह महीसागर-संगम धन्य हो गया। इसे सूर्यतीर्थका गौरव प्रदान कीजिये। हे प्रभो! आजके ही दिन प्रतिवर्ष अपनी अध्यात्मरश्मियाँ इस स्थलको प्रदानकर महीसागर-संगम-स्नान करनेवालोंको मोक्षका लाभ प्राप्त करनेका वरदान दीजिये। भुवनभास्करने कहा—'तथास्तु'।

तबसे आजतक महीसागर-संगमको जयादित्यतीर्थ—गङ्गासागरतीर्थ कहा जाता है। मकर-संक्रान्तिके दिन यहाँ स्नान करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। ऐसा भी कहा जाता है कि श्रद्धालु निष्ठावान् सूर्य-भक्तोंको वहाँ बालक कमठके द्वारा उस दिन अदृश्यभावसे जो मन्त्रोच्चार हुआ था वह ध्वनि आज भी सुनायी पड़ती है।

संतोष

सर्वस्त्विन्द्रियलोभेन संकटान्यवगाहते॥

सर्वत्र सम्पदस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम्। उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः॥
संतोषामृततृप्तानां यत् सुखं शान्तचेतसाम्। कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥
असंतोषः परं दुःखं संतोषः परमं सुखम्। सुखार्थी पुरुषस्तस्मात् संतुष्टः सततं भवेत्॥

इन्द्रियोंके लोभग्रस्त होनेसे सभी मनुष्य सङ्कटमें पड़ जाते हैं। जिसके चित्तमें संतोष है, उसके लिये सर्वत्र धन-सम्पत्ति भरी हुई है; जिसके पैर जूतेमें हैं, उसके लिये सारी पृथ्वी मानो चमड़ेसे ढकी है। संतोषरूपी अमृतसे तृप्त एवं शान्त चित्तवाले पुरुषोंको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़नेवाले लोगोंको कहाँसे प्राप्त हो सकता है। असंतोष ही सबसे बढ़कर दुःख है और संतोष ही सबसे बड़ा सुख है; अतः सुख चाहनेवाले पुरुषको सदा संतुष्ट रहना चाहिये। (पद्मपुराण)

वनवासव्रती श्रीरामकी वनयात्रा

(श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री)

वैसे तो भगवान् श्रीरामके अवतारके अनेक कारण हैं, परंतु मुख्यरूपसे साधुपरित्राण, दुष्टविनाश एवं धर्मरक्षण हैं। शेष सभी कारण तो इसके अन्तर्गत समाविष्ट हो जाते हैं। भगवान् श्रीरामका चौदह वर्षका वनवास परम रहस्यमय कारणोंसे भरा हुआ है। जिसे श्रीरामने स्वयं ही अपने श्रीमुखसे महारानी कौसल्या एवं माँ कैकेयीजीके सामने स्पष्टरूपमें व्यक्त किया। वे कौसल्याजीसे कहते हैं—

पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥

महारानी कैकेयीजीसे तो उन्होंने यहाँतक कहा है कि वास्तवमें श्रीरामके अवतार एवं समस्त लीलाओंके सूत्रधार, मार्गदर्शक तथा सब प्रकारके सहयोगी मुनिगण ही हैं। इनके सहयोगके बिना लीलाका कोई भी कार्य सम्पन्न ही नहीं हो सकता था। प्रथम तो चक्रवर्ती नरेश महाराज श्रीदशरथजीके यहाँ जब कोई संतान नहीं हुई तो गुरु मुनिराज वसिष्ठजीकी कृपा एवं महर्षि ऋष्यशृङ्गजीके आचार्यत्वमें पुत्रेष्टियज्ञ करानेपर अंशोंके सहित अवतार ग्रहण करनेका आश्वासन भगवान्‌की ओरसे मिला। आगे महामुनि विश्वामित्रजीकी कृपा एवं आशीर्वाद-सेवासे चारों भाइयोंका एक साथ विवाह सम्पन्न हुआ और आगे भी समस्त मुनियोंके द्वारा सब प्रकारका सहयोग मिला। वनगमनार्थ प्रस्थान करनेपर मार्गदर्शनके लिये महर्षि भरद्वाजजीसे श्रीरामने स्वयं पूछा—

'नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं॥'

उत्तरमें महर्षिने चार शिष्योंको मार्गदर्शनार्थ भेजा। चित्रकूटकी ओर प्रस्थान करनेपर भी मुनि वाल्मीकिजीसे निवासस्थान पूछा—

अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला॥

श्रीरामके वास्तविक स्वरूपको समझकर महामुनि वाल्मीकिजीने ऐश्वर्यमय आध्यात्मिक चौदह स्थानोंका वर्णन किया और फिर जहाँसे सभी राक्षसोंके आवागमनका परम प्रसिद्ध सिद्धमार्ग एवं भवनका भी वर्णन करनेके साथ-ही-साथ चित्रकूटके लिये प्रस्थान श्रीरामके सहित कर दिया। कहा भी—

मनोकामनाको पूर्ण करनेके साथ-ही-साथ श्रीरामने श्रीअगस्त्य-मुनिजीसे राक्षसोंके मारणके मन्त्र, अस्त्र, शस्त्र आदि सब प्राप्त किये—

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही॥

(रा०च०मा० ३।१३।३)

इतना ही नहीं, श्रीराम अगस्त्यजीसे इन्द्रके द्वारा प्रदत्त अक्षय तूणीर, धनुष-बाण, खड्ग आदि भी प्राप्त करते हैं।

नाना प्रकारकी माया करनेपर भी जब रावण नहीं मर रहा था, तब श्रीराम उसी अस्त्रका प्रयोग करनेको तैयार हुए। युद्धभूमिमें आकर महामुनि अगस्त्यजीने उनको 'आदित्यहृदयस्तोत्र' के पाठकी विधि बतायी और कहा कि इसका विधिपूर्वक पाठ करनेसे निश्चित ही रावणका विनाश हो जायगा। फलस्वरूप श्रीरामने वैसा ही प्रयोग किया, जैसा अगस्त्यजीने समझाया था। तब रावणवधमें उन्हें सफलता मिली। ये महामुनि अगस्त्यजीके मन्त्र, अस्त्र-शस्त्र, खड्ग, अक्षय तूणीर एवं धनुष-बाणका ही चमत्कार था, जो उनके वन जानेपर ही सम्भव था।

वनमें जब सीताहरण हो गया तो उनके विरह-विलापमें प्रभु सीताजीका पता किससे-किससे पूछते हैं, देखिये—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥

(रा०च०मा० ३।३०।९)

इसमें भी रहस्य है 'खग' (**'खे आकाशे गच्छन्तीति खगाः'**) अर्थात् जो आकाशचारी हैं, चारों ओर आकाशसे ही देख सकते हैं। जल, थल, आकाश, वृक्ष, पर्वत और कन्दरा—सर्वत्र देखनेवाले पक्षियोंसे ही पूछा; क्योंकि रावणके भयसे और कोई बता ही नहीं सकता था। पक्षियोंने ही सीताका पता ठीक-ठीक बताया। जटायुका कथन था—

लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। *बिलपति अति कुररी की नाईं*॥

(रा० च० मा० ३।३१।३)

पुनः आगे चलकर जब सीतान्वेषणके लिये हनुमदादि वीर भेजे गये तो उनको भी जटायुके बड़े भाई पक्षी (खग) सम्पातिने ही बताया—

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका॥
तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई॥
'मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।'

(रा० च० मा० ४।२८।११-१२, ४।२८)

खगोंने ही सीताप्राप्तिका ठीक-ठीक परिचय दिया। सुग्रीवजीने कहा—

मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा॥
गगन पंथ देखी मैं जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥
राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी॥

(रा० च० मा० ४।५।३—५)

ये सब मृग (शाखामृग—वानर) ही तो थे—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥

(रा० च० मा० ५।३३।७, ३।३०।९)

इनसे ही क्यों पूछा? मूलतः ये हैं कौन? विचार करें—

मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥

(रा० च० मा० ४।१३।४)

इनकी इस शरीरसे प्रभुसेवा एवं साथ-ही-साथ प्रभुकृपा भी सार्थक हो रही है। दोनों एक साथ अभीष्ट प्राप्त कर रहे हैं। ये भी कार्य वनवासकालमें ही सम्भव थे।

इस प्रकार धरणी, धेनु, धर्म, देव एवं द्विजोंका रक्षण, दुष्टोंका दलन, निषाद, केवट, कोल-किरात, शबरी, गीध, सुग्रीव, विभीषणादि भगवद्भक्तोंकी मनोकामनाकी पूर्ति, निष्कण्टक रामराज्य-स्थापनाकी पृष्ठभूमि, शुद्ध सनातन शाश्वत मानवादर्श-स्थापन—ये सभी कार्य श्रीरामके वनगमनसे ही सम्भव थे।

लोकदृष्टिमें माता कैकेयीजीको निन्दनीया माना जाता है—*'गारीं सकल कैकइहि देहीं'* किंतु यदि गम्भीर विचार, अन्तर्दृष्टि तथा श्रीरामकी दृष्टिसे देखा जाय तो श्रीरामने चित्रकूटकी भरी सभामें सभी निन्दकोंको सावधान किया—

दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥

क्योंकि मूलमें कैकेयीके पीछे मन्थरा, मन्थराके पीछे सरस्वती और उनके पीछे श्रीराम स्वयं ही कारण हैं—

सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥

इस कारण समस्त लीलाओंके सूत्रधार स्वयं होते हुए भी जिस पात्रको जो पात्रता उनकी ओरसे दी गयी, उसका निर्वाह पात्रका स्वकर्तव्य ही है। इसी कारण वे कहते भी हैं—माता कैकेयीका दोष नहीं। तभी

शंकरजी विचारपूर्वक कहते हैं—

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥

यह सब प्रभुकी लीला है।

दूसरा कारण—

सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहुँ पछितानी॥

राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होत आपुने हाथ॥

तीसरा कारण—अवधपुरीके समस्त पात्रोंका इसी माध्यमसे निखारकर उनकी पात्रताका वास्तविक परिष्कृत परिचय कराना एवं रामराज्यकी पृष्ठभूमिका प्रस्थापन करना था। यह सब श्रीरामके चौदह वर्षके वनवाससे ही सम्भव था। इस प्रकार वनवासव्रती श्रीरामकी वनयात्रा अनेक रहस्योंसे भरी हुई है। वनवासके माध्यमसे श्रीरामने माता-पिताकी आज्ञाका पालन, त्याग, तपस्या, तितिक्षा, शौर्य, वीर्य, उदारता, करुणा, पूज्यजनोंकी सेवा, व्रत, संयम, नियम, जप एवं सहिष्णुताकी जो सीख हमें दी है, वह सर्वथा अनुकरणीय है। वास्तवमें वनलीलामें ही प्रभुके दिव्य प्रेममय स्वरूपकी झाँकी प्राप्त होती है।
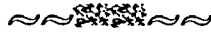
श्रीकामदगिरि—चित्रकूट-परिक्रमा

(श्रीरामसेवकजी भाल)

भारतवर्ष तीर्थोंका देश है। धर्मप्राण भारतीय संस्कृतिके भव्य भवनको सँभालनेवाले सुदृढ़ आधारस्तम्भोंके रूपमें स्थित इन अगणित पुनीत तीर्थोंसे शोभित यह धराधाम धन्य-धन्य हो रहा है। हमारे तीर्थ हमारी आस्थाके केन्द्रबिन्दु हैं।

चित्रकूटधाम—कामदगिरि एक ऐसा ही आरण्यकतीर्थ है जो भारतवर्षका हृदयबिन्दु है। चित्रकूटधामकी परिधिमें श्रीकामदगिरि स्थित है। यह स्थल सृष्टिके प्रारम्भकालसे ही एक अति रमणीक पुनीत सिद्ध तपोवन रहा है।

कामदगिरि-परिक्रमा

चित्रकूटधाम आनेवाला हर श्रद्धालु मन्दाकिनी गङ्गास्नान और कामदगिरिकी परिक्रमा अवश्य करता है। मान्यता है कि भगवान् श्रीराम वनवासकालमें लक्ष्मण और सीतासहित कामदगिरिका आश्रय लेकर बारह वर्षतक चित्रकूटमें रहे थे। वाल्मीकीय रामायणमें यह अवधि दस वर्ष मानी गयी है।

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना॥

अतः श्रद्धालुजन कामदगिरिको साक्षात् भगवद्विग्रह मानकर उसका पूजन, अर्चन, दर्शन, वन्दन तथा उसकी परिक्रमा करते हैं। *'कामदमनि कामदा कलप तरु'* अथवा *'कामद भे गिरि राम प्रसादा'*-जैसी संत तुलसीदासकी उक्तियाँ आज लोकमान्यताका रूप ले चुकी हैं। अतः कामदगिरिको सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला देवता माना जाता है। कामदगिरि-परिक्रमाकी प्रथा बड़ी प्राचीन है।

कामदगिरिके उत्तर द्वार (प्रमुख द्वार) मुखारविन्दसे परिक्रमा प्रारम्भ होती है। परिक्रमामार्गमें प्राचीन एवं नवीन सैकड़ों देवालय हैं, जिनमें मुखारविन्द, भरतमिलाप, बहरा हनुमान् तथा पीली कोठीके मन्दिर दर्शनीय हैं। परिक्रमासे संलग्न लक्ष्मणपहाड़ीकी चोटीपर बने लक्ष्मणमन्दिर एवं कुएँको भी देखने श्रद्धालु लोग जाते हैं। कामदगिरि-परिक्रमा स्थल हर जाति, धर्म, वर्ग एवं सम्प्रदायके लिये सदैव खुला रहता है।

कामदगिरिकी पाँच कि०मी० लम्बी परिक्रमा नंगे पैर करनेकी प्रथा है। कुछ लोग लेटकर परिक्रमा करते हैं, जिसे स्थानीय भाषामें 'दण्डवती-परिक्रमा' कहते हैं।

मान्यता है कि कामदगिरिके दर्शन, पूजन और परिभ्रमण (परिक्रमा करने)-से लोगोंकी मनोकामना पूरी होती है। दीपावलीमें कामदगिरि और मन्दाकिनी गङ्गामें दीपदान करनेसे इच्छित लाभ मिलता है तथा सोमवती अमावास्यापर श्रद्धालुओंकी भारी भीड़ बनी रहती है।

विशेषपर्व और मेले

सावनझूला, नवरात्र, दीपावली, रामनवमी तथा विवाहपञ्चमी, प्रायः सभी तीज-त्योहार, सूर्य और चन्द्रग्रहण, प्रत्येक मासकी अमावास्या और रामायणमेला आदि उत्सव यहाँ मनाये जाते हैं। वर्षभर प्रतिदिन आनेवाले श्रद्धालुओंकी भीड़ यहाँ बनी रहती है। बुन्देला-पन्नानरेश महाराज छत्रसालने सन् १६८८ ई० में मुगलसेनापति अब्दुल हमीदको हराकर इस क्षेत्रपर अधिकार कर लिया और पन्नाको अपनी राजधानी

बनाया। हिन्दूधर्म और संस्कृतिका विशेष प्रेमी पन्नाराजपरिवार चित्रकूटधामको महिमामण्डित करनेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। कहा जाता है कि कामदगिरि-परिक्रमाका पक्का मार्ग सर्वप्रथम महाराज छत्रसालकी धर्मपत्नी महारानी चन्द्रकुँवरिने ही सन् १७५२ ई० में बनवाया था। जिसका पुनरुद्धार महाराज अमान सिंहके कालमें हुआ। महाराज अमान सिंह (१८वीं सदीका उत्तरार्ध)-ने चित्रकूटधाम—कामदगिरिमें अनेक मठों, मन्दिरों, कुओं और घाटोंका निर्माण कराया तथा उसमें माफियाँ लगायीं। १९वीं सदीके पन्नानरेश हिन्दूपतने भी उदार वंशपरम्पराका निर्वाह किया और धीरे-धीरे चित्रकूटधाममें पन्ना-राजघरानेके द्वारा बन गये मठ और मन्दिरोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी। इस जन्मि राजघरानेसे सम्मान पानेके कारण इस अवधिमें चित्रकूट महत्त्व भी जनसामान्यमें विशेषरूपसे प्रचरित हुआ।

चित्रकूट ऋषि-मुनियोंकी तपस्थली ही नहीं, अपि हजारों, लाखों लोगोंकी श्रद्धाका केन्द्रबिन्दु भी है।

वही कामद चित्रकूट स्थली यह।
सियारामकी पुण्य लीला स्थली यह॥
तपो पूत रम्या अरण्य स्थली यह।
सभीके लिये स्वर्गकी स्थली यह॥

श्रीगिरिराज-परिक्रमा

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

परम वन्दनीय श्रीगोलोकधाममें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके अद्भुत प्रेमसे संतुष्ट होकर वरदानस्वरूप श्रीगिरिराज पर्वत प्राकट्य कर अपनी मायाके माध्यमसे व्रज-क्षेत्रमें स्थापित कर दिया। आगे चलकर यह स्थान श्रीगोवर्धन ग्रामके नामसे प्रसिद्ध होकर पूज्य एवं पवित्र तीर्थ बन गया।

श्रीकृष्णके भूमण्डलपर अवतरणके पश्चात् इस श्रीगिरिराज पर्वतने उनकी दिव्य लीलामें उस समय प्रवेश किया, जब देवराज इन्द्रके प्रकोपसे व्रजवासियोंकी रक्षा तथा इन्द्रदेवका अभिमान तोड़नेहेतु निरन्तर सात दिनोंतक वे भगवान्‌की एक अँगुलीपर छत्ररूपमें विराजमान रहे। इन्द्रके पराजित होनेपर श्रीनन्दबाबासहित समस्त ग्वाल-बाल, गोप-गोपिकाओं और स्वयं श्रीकृष्णने भी इन्हें छप्पन प्रकारके भोग अर्पण कर पूजा-अर्चनाके साथ इनकी परिक्रमा की थी।

उसी समयसे यह गोवर्धन ग्राम पवित्र तीर्थधाम बन गया। भारतके सभी प्रदेशोंसे आकर लाखों भक्तगण श्रीगिरि गोवर्धनकी नंगे पैर चलकर तथा दण्डवत् प्रणाम करते हुए सात कोस (लगभग बाईस किलोमीटर)-की परिक्रमा कर अपने जीवनको धन्य करते हैं। ग्रामके बीचमें स्थित मानसीगङ्गामें स्नानकर श्रीगोवर्धननाथजीके मन्दिरमें ठाकुरजीका फूल-मालाओं तथा दूधसे अभिषेक कर दानघाटीसे परिक्रमामें प्रवेश करते हैं।

दानघाटीकी गाथा—एक समयकी बात है। श्रीराधाजी अपनी सखियोंके संग गोविन्दकुण्डपर ऋषियोंद्वारा आयोजित विशाल यज्ञके लिये घी और शहदसे भरे कलश सिरप रखकर उसी ओर जा रही थीं। मार्गमें श्रीकृष्णने श्रीराधा आगे जानेके लिये दान माँगा। श्रीराधाने श्रीकृष्णको अने प्रकारसे समझाया कि वह यह सामग्री यज्ञभगवान्‌को अर्पि करने जा रही है, इसमें जूठन नहीं पड़ा करती, परंतु इनके तर्कको नकार कर श्रीकृष्ण अपने हठपर अड़े रहे। विलम्ब होते देख श्रीराधाने अपना कण्ठहार दानस्वरूप देक समझौता कर लिया। कहा जाता है कि इस लीलाके माध्यमसे व्रजमें उनका यह प्रथम मिलन था।

यहाँसे परिक्रमामें प्रवेश कर ढाई कि० मी० की दूरीपर आन्यौर ग्राम पार कर भगवान्‌की लीलाओंके मुख्य साक्षी संकर्षणकुण्ड, गौरीकुण्ड, नीपकुण्ड, गोविन्दकुण्ड तथा गन्धर्वकुण्ड होते हुए यात्री श्रीगणेशमन्दिर, श्रीगिरिराजमन्दिर, श्रीनृसिंहमन्दिरके दर्शन करते हुए पूछरी ग्राममें पहुँचते हैं।

पूछरी—यहाँ श्रीकृष्णके प्रिय सखा लौटाजीका मन्दिर है। कहा जाता है कि लौठाजीने सदा-सर्वदा व्रजमें निवास करनेकी इच्छा प्रकट की थी। अपने सखाकी इच्छा पूर्ण होनेका वरदान देते हुए श्रीकृष्णने उन्हें भजनाविष्ट अवस्थामें ही इसी स्थानपर स्थापित कर दिया था। इस मन्दिरके समीप नृसिंहदेवमन्दिर, अप्सराविहारी तथा कुण्डेश्वर महादेवजीके मन्दिर दर्शनीय हैं। इन्हींके मध्यमें अप्सराकुण्ड है। कहा जाता है कि देवराज इन्द्रने जब श्रीकृष्णका अभिषेक किया था, उस समय स्वर्गलोकसे अप्सराओंने आकर इसी स्थानपर नृत्य किया था। इस कुण्डके समीप नवालकुण्ड शोभायमान है।

ऋषि-यज्ञ

पितृ-यज्ञ
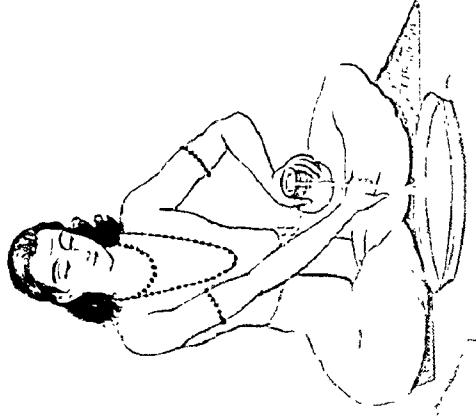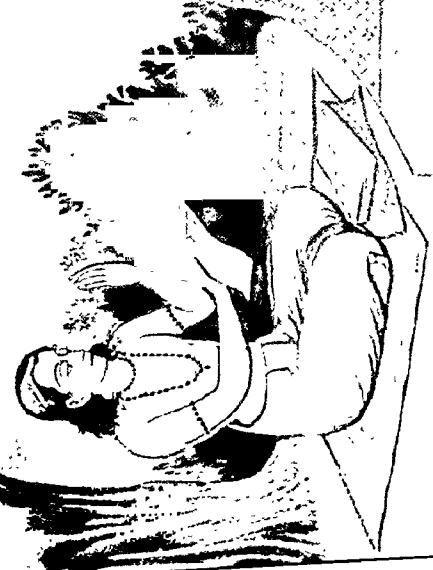
देव-यज्ञ

मनुष्य-यज्ञ

भूत-यज्ञ

व्रतोंके मुख्य अनुष्ठान—पञ्च महायज्ञ
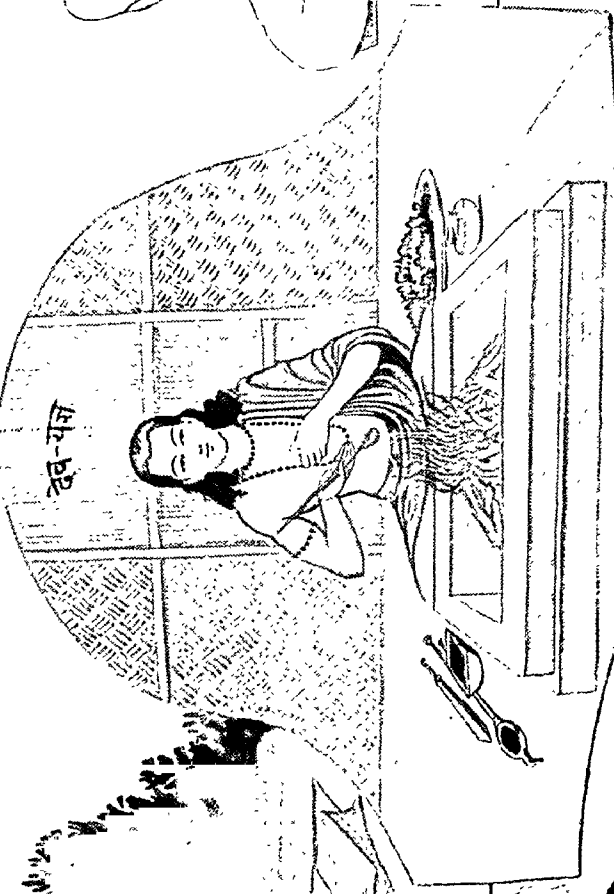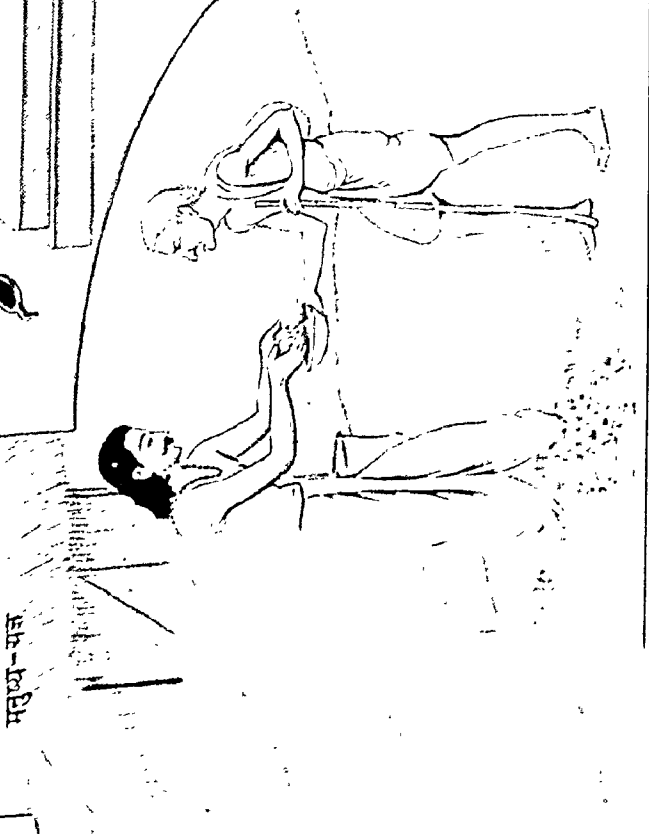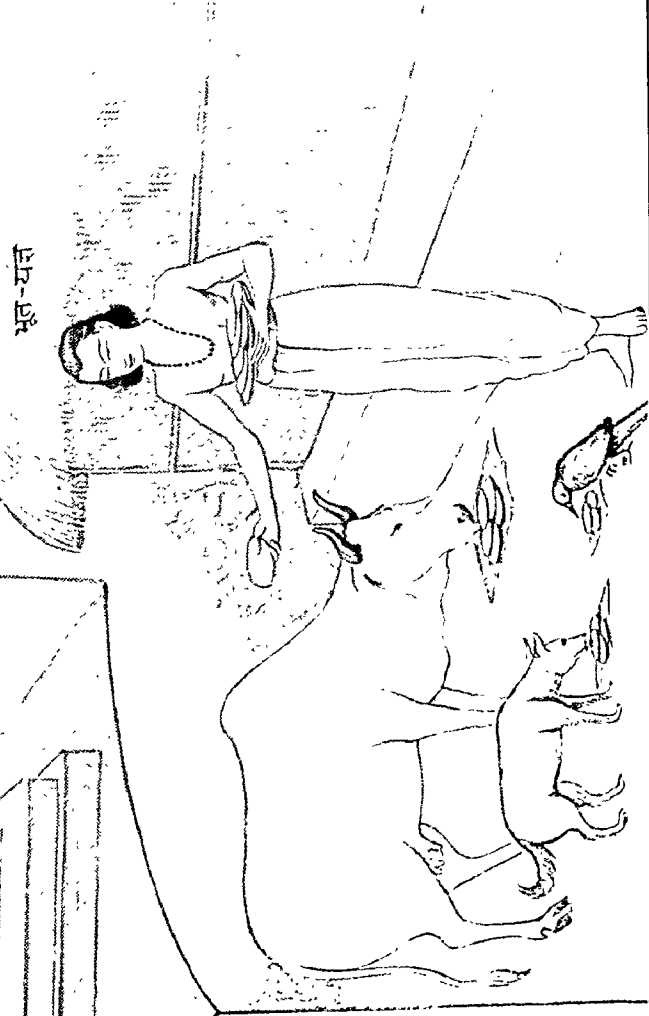
राजर्षि भगीरथके तपोवनमें गङ्गाका अवतरण

यहाँसे थोड़ा आगे गिरिराजके शिखरपर श्रीदाऊजीका मन्दिर है। इसमें एक शिलापर सप्तवर्षीय श्रीकृष्णके चरणचिह्न अंकित हैं। यहींपर सुरभिकुण्ड तथा ऐरावतकुण्ड है। इसीके समीप कदम्बखण्डी विराजमान है। कहा जाता है कि प्रिया-प्रियतम इस स्थानपर रास रचाया करते थे।

परिक्रमामार्गमें अग्रसर होते हुए जतीपुरा ग्राममें मुखारविन्दके दर्शन होते हैं। यहाँसे माडकुण्ड, बिलछुकुण्ड तथा सूरजकुण्ड होते हुए गोवर्धन ग्राम पहुँचकर श्रीराधाकुण्ड परिक्रमामें प्रवेश करते हैं। गोवर्धनके मुख्य बाजारमें प्रवेश कर श्रीमानसीगङ्गाके दर्शन करते हुए श्रीराधाकुण्डकी ओर अग्रसर होते हैं। चलते-चलते सखीकुण्ड और श्रीराम-आश्रमके मध्यमें गोशालाके दर्शन करते हुए अनेक प्राचीन मन्दिरोंकी परिक्रमा कर माल्हारी एवं शिवोधरकुण्ड होते हुए प्रसिद्धतम श्रीगौड़ीयमठ, श्रीरघुनाथगोस्वामीकी समाधि प्रभुकुञ्ज, भानुपोखर, बलरामकुण्ड, ललिताकुण्ड, गोपकुआँ, वनखण्डीमहादेव तथा मदनमोहनमन्दिरके समीप स्थित श्रीराधाकुण्ड और श्रीकृष्णकुण्डके दर्शन प्राप्त होते हैं।

श्रीकृष्णकुण्ड तथा श्रीराधाकुण्डकी उत्पत्तिगाथा

श्रीकृष्णकुण्ड—एक समयकी बात है कि श्रीकृष्णके प्राण हरनेकी दृष्टिसे कंसने वृषासुर (अरिष्टासुर) नामक दैत्यको व्रजमें भेजा था, जिसके मुखकी आकृति बैल (गोवंश)-जैसी थी। श्रीकृष्णने उसका वध कर दिया और थकान मिटानेके लिये रास करनेकी इच्छा हुई। उन्होंने श्रीराधाका स्मरण किया, श्रीराधा अपनी सखियोंके संग श्रीकृष्णके पास पहुँच गयीं। उन्होंने रासनृत्यका प्रस्ताव किया, परंतु श्रीराधाने वृषरूपधारीका वध करनेका पाप श्रीकृष्णपर लगाकर समक्ष रखा। श्रीराधाने अपनी सखियोंकी इच्छाका सम्मान करते हुए अपने अँगूठेके नखसे पृथ्वीमाताकी मिट्टी खुरच-खुरच कर एक कुण्डका निर्माण कर दिया। सखियोंने इसका नाम 'राधाकुण्ड' रख दिया। श्याम (कृष्ण)-कुण्डमें विराजमान समस्त तीर्थोंने श्रीराधारानीसे उनके द्वारा निर्मित कुण्डमें स्थायी निवास करनेकी प्रार्थना की। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर श्रीराधाने उन तीर्थोंको अपने कुण्डमें स्थायी निवास करनेकी आज्ञा प्रदान कर दी। भक्तोंका विश्वास है कि आज भी समस्त तीर्थ इस कुण्डमें विराजमान हैं। श्रीराधाकुण्डमें स्नान करनेसे समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्यलाभ मिलता है।

यहाँसे परिक्रमामें आगे चलते हुए जगद्धात्री देवीमन्दिर, ग्वालियरमन्दिर तथा हनुमत्-मन्दिर होते हुए कुसुमसरोवरके दर्शन प्राप्त होते हैं।

कुसुमसरोवर—यह सरोवर श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका साक्षी है। उस समय यह क्षेत्र विभिन्न प्रकारके रंग-बिरंगे सुगन्धित पुष्पोंसे सुशोभित उद्यानोंसे घिरा हुआ था। यहाँ श्रीकृष्ण अपनी प्राणेश्वरी श्रीराधाके शृङ्गारके लिये मालाएँ गूँथा करते थे और श्रीराधा भी अपने मोहनके लिये पुष्पहार बनाया करती थीं। इस सरोवरकी शोभाके साथ-साथ विशाल गुम्बदोंमें परिलक्षित चित्रकारीके माध्यमसे श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंके दर्शन होते हैं। इन गुम्बदोंके मध्यमें नीचे शिलापर श्रीराधाचरणके भी दर्शन होते हैं। इस सरोवरके बायें तटपर उद्धवघाट स्थित है, जहाँ व्रजगोपियोंकी चरणरज-प्राप्तिहेतु गुल्मलतारूपमें श्रीउद्धवजी भजनाविष्ट अवस्थामें आज भी विराजमान हैं।

आञ्चलिक व्रतपर्वोत्सव

[भारत एक विशाल देश है। यहाँ विभिन्न जातियाँ, समुदाय तथा भाषा-भाषी लोग निवास करते हैं। इनके रहन-खान-पान तथा रीति-रिवाज भी एक-दूसरेसे भिन्न होते हैं, परंतु मूल रूपमें हिन्दू संस्कृतिकी एकरूपता इनमें समावि इसीलिये रीति-रिवाजोंकी कुछ भिन्नता होनेपर भी भारतीय संस्कृतिके सभी त्योहार और उत्सव देशके विभिन्न अञ्चलों साथ अपने-अपने ढंगसे मनाये जाते हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये यहाँ इन्हें प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है—स

हमारे लोकोत्सव, पर्व और त्योहार

(डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी, डी०लिट्०)

आजके भौतिक वातावरणमें यह आवश्यक हो गया है कि हम अपने परम्परागत पर्व और त्योहारोंकी चर्चा करें, उनका अर्थ समझें और पर्वोत्सवोंके नियमोंका अनुपालन करें। त्योहार वास्तवमें सामाजिक मूल्योंके प्रतिष्ठापक हैं और उस सांस्कृतिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाका ही रूप हैं, जो हमारे मनमें 'स्थायीभावों' को जगाती हैं।

श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको घर-परिवारोंमें दीवारपर सरमन (श्रवण कुमार)-के चित्र काढ़े जाते हैं, उनकी पूजा की जाती है और उनकी मातृ-पितृभक्तिकी कहानी कही जाती है।

'**वटसावित्री**' के त्योहारकी तो बात ही निराली है। जिस व्रतके प्रभावसे मृत्युको भी हार माननी पड़ी। सावित्रीके संकल्पकी कैसी दृढ़ता थी, जिसके सामने यमराजको विवश होकर लौटना पड़ा और सत्यवान्‌की मृत्यु जिन पैरोंसे आयी थी, उन्हीं पैरोंसे लौट गयी। धन्य है सावित्री! आज उसीके नामपर वटसावित्रीव्रत होता है।

करवाचौथके त्योहारके दिन नयी-नयी चूड़ियाँ पहने, मेंहदी रचाये सौभाग्यवती स्त्रियाँ जब चन्दाको अर्घ्य बढ़ाती हैं, तब उनका मन परिवारके प्रति अनुरागसे किस प्रकार रच-पच जाता है, इसका आभास उनके इस मार्मिक गीतसे हो सकता है—

मैं तौ बरत रही हूँ करवाचौथ, दहीन के अरघ दिये।
मैंने माँगी कौसल्या सी सास, ससुर राजा दशरथ से।
मैंने वर माँगे श्रीराम, देवर छोटे लछमन से।
मेरे चरत भरत देवर-जेठ, ननद छोटी भगिनी सी।

आश्विन पूर्णिमाको बहनें अपने भाईकी हित-कामनाके लिये उत्सव मनाती हैं तथा 'राखी पूनौ' के दिन राखी बाँधती हैं। **भाई-दोज**को बेरके पेड़की टहनी पूरीको 'धनकुटा' से कुचल कर वे टोटका करती

घर कूटे बैरियरा भैया के बैरियरा।

काँटे बिखेरकर भाईके शत्रुओंको समाप्त करने उड़द बिखेरकर भाइयोंको संगठित करनेका टोटका बहनोंकी सद्भावनाका प्रतीक है—

आंगन सूर बिखेर बैरियरा सब झुरि मरें।
आंगन उरद बिखेर भाई अरे सब करि मिलें।

'**अहोई अष्टमी**' व्रतकी कथा है कि ननद और मिट्टी खोदनेके लिये गयीं। ननदकी खुरपीसे स्याओ म बच्चे कट गये। 'स्याओ माता' आयी, उसने ननदसे क तेरे बच्चोंको मैं डसूँगी। स्याओ मातासे भाभीने हाथ जो विनती की कि ननदकी सजा मुझे ही दे दीजिये। भाभीके निःस्वार्थ प्रेमका ही तो प्रतीक है—अहोई अ

ये त्योहार जब-जब आते हैं, तब-तब अभाव हो जाते हैं तथा घर-आँगन दिव्य भावनाओंसे भर जा '**संकटचौथ**' की रातको संकट देवता आते हैं। मुसीके लड्डू खा जाते हैं तथा सारे संकट अपने स जाते हैं और वैभव दे जाते हैं। सबेरे उठकर पड़ोसी हैं—वैभवका इतना विस्तार, जो समेटे न सिमटे आस्थाका फल नहीं है तो और क्या है?

जब '**नवरात्र**' आता है तो चापड़, पथवारी, और जालपा-मैया नौ दिनोंतक घरमें निवास करते **दीपावली**की रात लक्ष्मी स्वयं दरवाजा खटखटाते **गणगौर**के त्योहारके दिन गौरा-पार्वती स्वयं सौभाग्यके लगा देती हैं। शिवरात्रिके भोरमें 'बम-भोला' हैं, कढ़ी-चावल जीम जाते हैं। आषाढ़की देवशय

देवता शयन करते हैं और **कार्तिककी देवठान**को उनका उत्थापन होता है—

उठो देवा बैठो देवा आँगुरिया चटकावौ देवा।

'**कनागतों**' में सोलह दिनतक 'पुरखा परमेश्वर' श्राद्ध-तर्पण ग्रहण करने तथा अपने वंशकी वृद्धि करने आते हैं। उन्हीं दिनों **साँझीमाता** कुमारी कन्याओंको वरदान देने पधारती हैं।

आप तनिक कल्पना तो कीजिये कि यदि ये त्योहार न होते, व्रत-उपवास न होते तो जीवन कितना नीरस होता! वास्तवमें ये त्योहार केवल लोकजीवनके सांस्कृतिक चिह्न ही नहीं हैं, अपितु ऐसे शक्ति-स्रोत हैं जिनके आधारपर लोकजीवनने अनेक प्रतिकूलताओंके बीच जीवनका उल्लासपूर्ण रास्ता खोज लिया था।

'त्योहारके दिन मन उदास नहीं करते, त्योहारके दिन तपिस (क्रोध) नहीं करते।' त्योहारके दिनकी इस 'चर्या' ने जीवनकी सात्त्विक ज्योतिको कभी मन्द नहीं होने दिया। त्योहारका यही तो उपदेश है और यही आदेश कि मन सदा आनन्द और उल्लाससे भरा रहे, कभी निराश न हो।

वैशाख बदी चौथको '**आस चौथ**' का व्रत किया जाता है। दीवारपर चार बुढ़िया चित्रित की जाती हैं—भूख मैया, प्यास मैया, नींद मैया और आस मैया। कहानी शुरू हुई कि चारों बुढ़ियाओंमें इस बातपर विवाद हुआ कि चारोंमें कौन बड़ी है। नवविवाहिता बहूने निर्णय दिया कि भूख, प्यास और नींदका तो विकल्प है। चुपड़ी न खायी, रूखी-मीसी खा ली। घड़ाका ठण्डा पानी न मिला तो गड्ढेका पानी पी लिया तथा सेज न मिली तो धरतीपर ही सो गये, परंतु आशाका कोई विकल्प नहीं है। इसलिये आस मैया सबसे बड़ी हैं। 'आसा और सासा' अविच्छिन्न हैं।

ये त्योहार व्यक्तिका समाजीकरण करते हैं। ये ऐसा अवसर लाते हैं कि किसी प्रकार आदमीसे आदमी मिले। आदमीसे आदमीकी पहचान हो और वे दोनों मिलकर एकत्र होनेके सुखका अहसास करें, फिर चाहे **कैला-मैयाकी जात** हो अथवा **जगन्नाथकी रथयात्रा** हो।

वैसे तो प्रत्येक **पूर्णिमा, एकादशी** और **अमावास्या** पर्व हैं; क्योंकि स्नान, दान और अनुष्ठानके लिये इनका विशिष्ट महत्त्व है, पर **निर्जला एकादशी** तो संयमकी परीक्षाका त्योहार है, जब जेठकी तपती दोपहरी बिना जल पीये व्यतीत करनी होती है। **मौनी अमावस** वाणीके संयमका त्योहार है। **अक्षय नवमी, अक्षय तृतीया** और **मकर-संक्रान्ति** तो आँगनमें गीत गाती हुई आती हैं कि—

कब कर रे धरम जा सों तिर रे।

दीपावली तो दीपदानका अनुष्ठान है ही, **शिवरात्रिको जागरण** होता है और अनेक भक्त कन्धेपर **काँवर** रखकर महादेवजीपर जल चढ़ाने जाते हैं।

इन त्योहारोंके पास इतिहासकी हजार-हजार वर्ष पुरानी यादें सुरक्षित हैं। किसी त्योहारके पास तुलसी, वट, केला और पीपलकी पूजाके रूपमें यक्ष-संस्कृतिके अवशेष मौजूद हैं तो **दूबड़ी सातें, नागपञ्चमी** और **अहोईके** रूपमें नाग संस्कृतिकी परम्परा विद्यमान है। **करवाचौथ, शरत्पूर्णिमा** तथा चार चौथोंके पास गणपति एवं चन्द्रमाकी पूजाका विधान है तो **बहुला चौथ, ओघद्वादशी** और **गोवर्द्धन-पूजाके** दिन गो-वत्सकी पूजा होती है।

त्योहार तो हमारे लोकजीवनमें नित-नित आते हैं परंतु हमारा ही मन आज कुछ-का-कुछ हो गया है। हम चाहें तो इन त्योहारोंमें नये तेज और नई स्फूर्तिका साक्षात्कार कर सकते हैं।

बिहारका महापर्व—सूर्यपूजा

[छठ और उसकी लोकगाथाएँ]

(डॉ० श्रीदीनानाथजी झा 'दिनकर', एम्० ए० (त्रय), साहित्यायुर्वेदरत्न, साहित्याचार्य, विद्यावाचस्पति)

भारत पर्वोंका देश है। यहाँ प्रत्येक दिन प्रत्येक मास कोई-न-कोई पर्व अवश्य ही मनाया जाता है। पर्वोत्सवोंकी दृष्टिसे कार्तिकमासका विशेष महत्त्व है, इसी कार्तिक मासमें एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण एवं पवित्र पर्व मनाया जाता है जिसे 'छठपर्व'के नामसे जाना जाता है।

छठपर्व बिहारके सर्वाधिक प्रचलित और लोकप्रिय धार्मिक अनुष्ठानके रूपमें जाना जाता है। इस अवसरपर ...त्यक्ष देव भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा की जाती है। ...मद्वाल्मीकीय रामायण (६। १०५। ८, २५)-में आदित्यहृदय-...ोत्रके द्वारा भगवान् सूर्यकी स्तुति करते हुए बताया गया है ... ये ही भगवान् सूर्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, प्रजापति, ...द्र, कुबेर, काल, यम, चन्द्रमा, वरुण हैं तथा पितर आदि ... ये ही हैं। हे राघव! विपत्तिमें, कष्टमें, दुर्गम मार्गमें तथा ...र किसी भयके अवसरपर जो कोई पुरुष इन सूर्यदेवका ...र्तन करता है, उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपाम्पतिः॥

× × ×

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव॥

छठपर्व सूर्योपासनाका अनुष्ठान है। इस अनुष्ठानको ...र्में दो बार—चैत्र तथा कार्तिक मासमें सम्पन्न किया ...ता है। दोनों ही मासोंमें शुक्लपक्षकी षष्ठी एवं सप्तमी ...थेको छठका आयोजन होता है। षष्ठी तिथिको अस्ताचलगामी ...र्यदेवको सायंकाल अर्घ्य प्रदान किया जाता है और ...प्तमी तिथिको प्रातःकाल उदीयमान सूर्यको अर्घ्यदान ...या जाता है।

छठपर्वका सबसे अधिक महत्त्व छठकी पूजाकी ...त्रतामें है। यूँ तो यह पर्व विशेषरूपसे स्त्रियोंद्वारा ही ...ाया जाता है, किंतु पुरुष भी इस पर्वको बड़े उत्साहसे ...ाते हैं। चतुर्थी तिथिको व्रती स्नान करके सात्त्विक भोजन ...ण करते हैं जिसे बिहारकी स्थानीय भाषामें 'नहाय-खाय' के नामसे जाना जाता है। पञ्चमी तिथिको व्रत रखकर संध्याको प्रसाद ग्रहण किया जाता ... 'सरना' या 'लोहण्डा' कहा जाता है। षष्ठी तिथि... संध्याकालमें नदी या तालाबके किनारे व्रती महि... पुरुष सूर्यास्तके समय अनेक प्रकारके पक्वान्नोंको सूपमें सजाकर सूर्यको दोनों हाथोंसे अर्घ्य अर्पित ...

सप्तमी तिथिको प्रातः उगते हुए सूर्यको अ... बाद प्रसाद ग्रहण किया जाता है। इसी दिन इस... समाप्ति भी होती है और व्रतीद्वारा भोजन ग्रहण किया ...

किसी भी पर्वको मनानेके पीछे कोई-न-कोई ... अवश्य ही होता है। छठपर्वको भी मनानेके पीछे अ... पौराणिक तथा लोकगाथाएँ हैं एवं एक लम्बा इतिहा... हुआ है। भारतमें सूर्योपासनाकी परम्परा वैदिकका... रही है। महाभारतकी एक कथामें सूर्य-उपासना-... सविस्तार वर्णन मिलता है। वैदिक साहित्यमें भी ... सर्वाधिक प्रत्यक्ष देव माना गया है। सन्ध्योपासनरू... अवश्यकरणीय कर्ममें मुख्यरूपसे भगवान् सूर्यको ... दिया जाता है, उपस्थान किया जाता है और सूर्यम... भगवान् नारायणका ध्यान किया जाता है।

छठ पर्वकी एक लोकगाथाको द्रौपदीसे जोड़... ऐसा कहा जाता है कि जब पाण्डव जुएके खेलमें सम्पूर्ण राजपाट हार गये, तब उन्हें राज्य छोड़कर जंगल... पड़ा। पाण्डव जब राज्यविहीन होकर जंगलमें भटक... तो उस समय द्रौपदी भी उनके साथ थी। पाण्ड... स्थितिसे दुःखी द्रौपदीने जुएमें खोये राज्यकी प्राप्ति... सुख-समृद्धि एवं शान्तिकी कामनाको लेकर कार्तिक मा... षष्ठी तिथिको सूर्यकी आराधना एवं उपासना की थी। द्रौप... अपार श्रद्धा-भक्तिसे प्रभावित होकर भगवान् सूर्यने ... मनोवाञ्छित फल प्रदान किया, जिससे पाण्डवोंने ... खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कर लिया।

एक दूसरी कथाके अनुसार शर्याति नामक एक... थे। उनकी अनेक स्त्रियाँ थीं, किंतु उन स्त्रियोंसे उन्हें...

एक क[न्य]ा पैदा हुई थी। चूँकि राजाकी वह इकलौती संतान थी, अत: वह उन्हें काफी प्रिय थी। वह अत्यन्त सुन्दर और चंचल भी थी। उसका नाम सुकन्या रखा गया।

एक दिनकी बात है कि राजा शर्याति जंगलमें शिकार खेलने गये। शिकारके ही क्रममें वे ससैन्य दस दिनतक जंगलमें रहे। सखियोंके साथ सुकन्या भी गयी। एक दिन सुकन्या पुष्प लेने जंगलमें गयी और संयोगसे वह उस स्थानपर पहुँच गयी जहाँ च्यवनमुनि ध्यानमग्न हो तपस्यामें लीन थे। च्यवन ऋषि तपस्यामें इतने लीन थे कि उनके शरीरपर दीमक लग गयी थी। किंतु इसका आभासतक उन्हें नहीं हुआ। बाँबीसे उनकी दोनों आँखें जुगनूकी तरह

चमक रही थीं। सुकन्याने कौतूहलवश उन बाँबीके दोनों छिद्रोंमें जहाँसे प्रकाश आ रहा था, तिनके डाल दिये, जिससे मुनिकी दोनों आँखें फूट गयीं। च्यवनमुनिकी आँखोंके फूटते ही उनके शापसे शर्यातिके सैनिकोंका मल-मूत्रका निकलना बंद हो गया। फल यह हुआ कि तमाम अनजाने अपराधके कारण आपकी यह दशा हुई है। अत: आपकी सेवाके लिये मैं अपनी कन्या सुकन्याको आपको समर्पित कर रहा हूँ। कृपया इसकी सेवा स्वीकारकर मेरी सेनाको वेदनासे मुक्त करें तथा मुझे कृतार्थ करें।'

राजाके इस प्रस्तावको सुनकर च्यवन ऋषि प्रसन्न हो गये। सुकन्या ऋषिके समीप रहकर उनकी सेवा करने लगी। कार्तिक मासमें एक दिन सुकन्या जल लानेके लिये एक पुष्करिणीके समीप गयी। वहाँपर उसने एक नागकन्याको देखा। सुकन्याने नागकन्यासे उपस्थितिका कारण पूछा। सुकन्याके पूछनेपर नागकन्याने बताया कि कार्तिक मासकी षष्ठी तिथिको सूर्यकी उपासना एवं व्रत करनेपर मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं। सुकन्याने भी पूरी निष्ठाके साथ छठव्रत किया, जिसके प्रभावसे च्यवन मुनिको आँखोंकी ज्योति वापस मिल गयी।

एक अन्य कथाके अनुसार मगधसम्राट् राजा जरासन्धके किसी पूर्वजको कुष्ठरोग हो गया था। उन्हें कुष्ठरोगसे मुक्त करनेके लिये शाकलद्वीपीय ब्राह्मण मगधमें उपस्थित हुए तथा सूर्योपासनाके माध्यमसे उनके कुष्ठरोगको दूर करनेमें वे सफल हुए। सूर्यकी उपासनासे कुष्ठ-जैसे कठिनतम रोग दूर होते देख मगधके नागरिकोंके बीच छठपर्व महत्त्वपूर्ण हो गया।

यह कहा जाता है कि मगधक्षेत्रमें ही सबसे पहले सूर्यकी पूजा शुरू हुई। मग ब्राह्मणोंसे आवृत्त होनेके कारण यह क्षेत्र मगध कहलाया और मग लोग सूर्यके ही उपासक थे। सूर्यकी रश्मियोंसे चिकित्सा करनेमें इन्हें भारी सफलता मिली थी। इसीलिये पूरी निष्ठा एवं नियमपूर्वक चार दिवसीय सूर्यव्रतोपासनाके रूपमें छठपर्वकी परम्परा प्रचलित हुई एवं उत्तरोत्तर समृद्ध होती चली गयी।

शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको की जाती है। यह पर्व बच्चोंके कष्टनिवारण एवं सुख-समृद्धिहेतु किया जाता है।

षष्ठीव्रतकी एक अन्य कथाको राजा प्रियव्रतसे जोड़ा जाता है और यह प्रसिद्धि है कि महाराज स्वायम्भुव मनुके पुत्र राजा प्रियव्रतको अधिक समय बीत जानेके बाद भी कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई। तदुपरान्त महर्षि कश्यपने पुत्रेष्टियज्ञ कराकर उनकी पत्नीको चरु प्रदान किया, जिससे गर्भ तो ठहर गया, किंतु मृत पुत्र उत्पन्न हुआ। मृत पुत्रको देखकर रानी मूर्च्छित हो गयीं। उसे लेकर प्रियव्रत श्मशान गये। पुत्रवियोगमें प्रियव्रतने भी प्राण त्यागनेका यत्न किया।

उसी समय मणियुक्त विमानपर एक देवी वहाँ आ पहुँचीं। मृत बालकको भूमिपर रखकर राजाने उन देवीको प्रणाम किया और पूछा—'हे सुव्रते! आप कौन हैं?'

देवीने कहा—'राजन्! मैं ब्रह्माकी मानस कन्या देवसेना हूँ। मेरे पिताने स्वामी कार्तिकेयसे मेरा विवाह किया था। मैं सभी मातृकाओंमें विख्यात स्कन्दपत्नी हूँ। मूल प्रकृतिके छठे अंशसे उत्पन्न होनेके कारण मैं 'षष्ठी' कहलाती हूँ। मैं पुत्रहीनको पुत्र, निर्धनको धन, रोगीको आरोग्य तथा कर्मवान्‌को उसके श्रेष्ठ कर्मोंका फल प्रदान करती हूँ।'

देवीने आगे कहा—'तुम मेरा पूजन करो और अन्य जनोंसे भी कराओ। इस प्रकार कहकर देवी षष्ठीने उस बालकको उठा लिया और खेल-खेलमें पुनः जीवित कर दिया।'

राजाने उसी दिन घर जाकर बड़े उत्साहसे नियमानुसार षष्ठीदेवीकी पूजा सम्पन्न की। चूँकि यह पूजा कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको की गयी थी, अतः इस तिथिको षष्ठीदेवी या छठीदेवीका व्रत होने लगा।

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणके अनुसार मूल प्रकृतिके षष्ठ अंशसे प्रकट होनेके कारण इन देवीका नाम षष्ठीदेवी पड़ा। जो व्यक्ति षष्ठीदेवीके बीजमन्त्रका निष्ठापूर्वक जप करता है उसकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं। बीज मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा।'

यूँ तो प्रत्येक महीनेके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको षष्ठीदेवीका पूजन होता है, परंतु विशेषतः शरद् और वसन्तऋतुमें षष्ठीदेवीके पूजनका विशेष महत्त्व है। तन और मनको रोगमुक्त एवं निर्मल रखनेके लिये छठव्रतका पालन करनेकी परम्परा विकसित हुई, ताकि छठमातामें श्रद्धा-भक्ति रखनेवाले प्रत्येक स्त्री-पुरुष वर्षभर स्वस्थ एवं सुखी जीवन जी सकें।

छठका उत्सव लोकोत्सव है, लोकचेतना और लोकसंस्कृतिसे अनुप्राणित है। लोकजीवनके सहज उल्लाससे स्पन्दित, लोक अनुशासनसे नियन्त्रित यह पर्व बिहारकी आत्मा है। ज्ञानके अधिष्ठान भगवान् सूर्यका ध्यान-वन्दनका एक श्लोक इस प्रकार है—

आदित्यं सर्वकर्तारं कलाद्वादशसंयुतम्।
पद्महस्तद्वयं वन्दे सर्वलोकैकभास्करम्॥

मैथिलसमाजके पर्वोत्सव

(प्रो० श्रीवैद्यनाथजी सरस्वती)

मैथिलसम्प्रदायकी पहचान राजा निमिके यज्ञसे प्रारम्भ होती है। निमिके शरीरका मन्थन एक विशेष अनुष्ठान था। इसीसे मिथिला और मैथिल नाम प्रचलित हुआ।

मैथिलोंमें अड़तीस प्रकारके त्योहारोंका विधान है। त्योहारोंका अनुक्रम प्रारम्भ होता है श्रावण कृष्ण पञ्चमीसे। उस दिन सर्पकी माता विषहरा (मनसादेवी)-का जन्मोत्सव मनाया जाता है। श्रावण शुक्लपक्षमें मधुश्रावणीका त्योहार आता है जो विशेषकर नवविवाहिता स्त्रियोंके लिये अनिवार्य है। इस दिन गौरी-शंकरकी पूजा होती है और तेरह दिनोंतक स्त्रियाँ कथा सुनती रहती हैं। कथाका प्रारम्भ होता है विषहराके जन्म एवं राजा श्रीकरसे। इस संदर्भमें पचीस कथाओंका पारायण होता है। बारह और ऐसे पर्व हैं जिनमें कथा सुननेका विधान अनिवार्य है। प्रत्येक पर्वके अपने-अपने संदर्भ हैं, विधान हैं और फलाफलके विश्वास हैं। मैथिलोंके अधिकांश पर्व स्त्रियोंसे सम्बन्धित हैं। कुछ ऐसे भी पर्व हैं जो सिर्फ पुरुषोंके लिये अनिवार्य हैं; जैसे—पितरोंका तर्पण और अनन्तभगवान्‌की पूजा। भ्रातृद्वितीया भाई-बहनका त्योहार है। कुछ नियतकालिक पर्व भी हैं, जैसे—सूर्यका डोरा, जिसे स्त्रियाँ एक वर्ष, तीन वर्ष अथवा पाँच वर्षतक मनाती हैं। नवविवाहिता स्त्रियाँ एक वर्षतक पृथ्वीकी पूजा करती हैं, तत्पश्चात् संक्रान्तिके दिन इसके समापनका विधान है। कुँआरी कन्याएँ आठ वर्षकी अवस्थासे तुसारी-पूजा प्रारम्भ करती हैं और विवाहके एक वर्ष बाद इस अनुष्ठानका समापन होता है। इस प्रकार स्त्रियोंका हरिसोंपर्व भी समयबद्ध है। विवाहोपरान्त कुँआरी कन्याएँ वर्षभर अनुष्ठान करनेके बाद इस पर्वका समापन करती हैं। कुछ ऐसे भी पर्व हैं जो संख्यापद (न्यूमरल)-से अनुशासित होते हैं। जैसे—माघी सप्तमीके दिन सूर्योदयसे पूर्व जलाशयमें तिल लेकर स्नान करना। इसमें सात बेरका पत्ता, सात जौका पत्ता, सात चिरचिरीका पत्ता और सात आमका पत्ता सिरपर रखकर सात बार जलमें डुबकी लगाने और सूर्यके सत्तर नामोंका जप करनेका विधान है। रामनवमी (चैत्र शुक्लपक्षकी नवमी) श्रीरामचन्द्रके जन्मोत्सवके रूपमें मनायी जाती है। जन्माष्टमी (भाद्रपद कृष्णपक्षकी अष्टमी) श्रीकृष्णके जन्मोत्सवका पर्व है। देवोत्थानी एकादशी (कार्तिक शुक्लपक्ष) श्रीविष्णुभगवान्‌से सम्बन्धित है। इस दिन भगवान् क्षीरसागरमें चिरनिद्राके पश्चात् जाग्रत् हुए थे। इस पर्वको देवोत्थान एकादशीके रूपमें मनाया जाता है।

मैथिल पर्व-त्योहारोंके पाँच अङ्ग हैं—१-व्रत (उपवास), २-कथा, ३-पूजन, ४-गायन और ५- अरिपन (चित्रकला)। त्योहार दो प्रकारके होते हैं—शास्त्राचार एवं लोकाचार। लोकाचारमें स्थानीय एवं जातियोंके आधारपर त्योहारोंमें विविधता होती है। पर्व-त्योहारोंका सुनिश्चित तिथियोंका निर्धारण पञ्चाङ्गसे होता है।

पर्व-त्योहार सामान्य दिनोंकी एकरसता (मोनोटोनी)-को दूर करता है। सभी स्तरके लोगोंको नये जीवनका बोध कराता है, आनन्द प्रदान करता है, नया परिवेश बनाता है। पर्व-त्योहार उत्तम भोजन, नृत्य एवं संगीतके आनन्ददायक अनुभवका अवसर देता है। ईश्वरीय विधानका आभास कराता है। सामान्य लोगोंके लिये यह आनन्दका दुर्लभ दिन होता है। ऐसा कहा जाता है कि जिस समाजमें जितने अधिक पर्व-त्योहार मनाये जाते हैं, वह उतना ही अधिक सुव्यवस्थित है।

मैथिल पर्व-त्योहार दो प्रकारके हैं—एक है सम्प्रदायगत और दूसरा लोकगत। इन दोनोंका तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है। मैथिल पर्व-त्योहारोंके आधारपर संक्षेपमें यह कह सकते हैं कि इनमें दो प्रवृत्तियाँ दृश्यगत हैं—एक है शास्त्रनिष्ठ व्यवहार और दूसरा लोकनिष्ठ व्यवहार। आज शास्त्रनिष्ठ व्यवहार सिमटता जा रहा है, लोकनिष्ठ व्यवहार स्त्रियोंके मनोबलपर स्थिर है। ईश्वरीय मन और लोक-मनमें सामञ्जस्यका अभाव दिखता है। मनुष्य और ईश्वरके बीच वस्तुओंकी नहीं, मनकी दूरी है। पर्व-त्योहार आनन्द और प्रकाशके मध्यमें हैं। ईश्वरमें विश्वासका अर्थ है सम्पूर्ण विश्वास, जिससे जीव और जगत्‌में सर्वाधिक सामञ्जस्य स्थापित होता है। यही शाश्वत सिद्धान्त है।

[ज्ञानप्रवाहकी संगोष्ठीसे साभार]
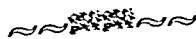
बंगाली समाजके व्रत तथा उत्सव

(डॉ० श्रीप्रणतिजी घोषाल)

भारतवर्षके विभिन्न प्रान्तों खासकर बंगालमें रहनेवाले ंगालियोंके द्वारा अनेक धार्मिक तथा आचारगत व्रत-पर्व मनानेकी अटूट परम्परा शताब्दियोंसे चली आ रही है। ये नोग अत्यन्त श्रद्धा तथा तत्परताके साथ तीन प्रकारके ार्मिक कृत्योंसे सम्बन्धित अनुष्ठान करते हैं। उत्सव, यात्रा ाथा व्रत—इन तीनों विधाओंकी विशाल शृङ्खला बंगालीजनोंद्वारा ातिवर्ष सम्पादित की जाती है। इनमेंसे कुछ उत्सवोंपर ाकाश डाला जा रहा है, जिन्हें बंगाली लोग बड़े ही श्रद्धा-ाव तथा उल्लाससे मनाते हैं। इनके सभी उत्सव मुख्य-ापसे धार्मिक तथा सामाजिक—इन दो कोटियोंके अन्तर्गत । कुछ उत्सव परिवार-स्तरपर घरोंमें तथा कुछ सार्वजनिक-तरपर मनाये जाते हैं।

नववर्ष—बंगाली पञ्चाङ्ग 'नववर्ष' से आरम्भ होता जो सौर वैशाखकी प्रथम तिथि (प्रायः १५ अप्रैल)-को ड़ता है। इस दिन सभी बंगाली अपने मित्रों तथा म्बन्धियोंसे मिलते हैं और उनके प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त रते हैं। इस अवसरपर व्यापारसे जुड़े लोग लक्ष्मी-गेशका पूजन करते हैं और आगेके वर्षके लिये नया ाता-बही चालू करते हैं।

विजयादशमी—सभी बंगाली लोग सामूहिक रूपसे कत्र होकर इस उत्सवको मनाते हैं। चार दिनोंतक ानेवाली 'दुर्गापूजा' की समाप्तिके बाद, खास तौरसे र्ति-विसर्जनके पश्चात् इसे मनानेकी परम्परा है। आपसी न-जोल तथा भाईचारेके विकासमें यह उत्सव प्रबल ायक है।

भ्रातृद्वितीया—भाइयों तथा बहनोंके अपार स्नेहको ानिवाला यह त्योहार कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी द्वितीया थेको पड़ता है। इस अवसरपर बहनें चाहे वे अवस्थामें ईसे बड़ी हों या छोटी, भाईके मस्तकपर चन्दन-अक्षतसे ाक लगाकर आरती करती हैं और भाईके दीर्घजीवन, वास्थ्य तथा समृद्धिके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करती हैं।

नवान्न—काटी गयी फसलका पहला अनाज भगवान्को ाण करनेके उपलक्ष्यमें यह उत्सव मनाया जाता है। ान्यतया इस उत्सवको मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षमें ी भी शुभ दिनमें मना लेनेकी परम्परा है। कभी-कभी परिवारकी परम्पराके अनुसार यह दिन बदल भी जाता है।

दुर्गापूजा—यह बंगालियोंका प्रमुख उत्सव है, जिसे देश तथा विदेशमें रहनेवाले सभी बंगाली बड़े हर्षोल्लाससे मनाते हैं। यद्यपि यह उत्सव बंगालियोंके अतिरिक्त अन्य वर्गोंके द्वारा भी बड़े धूम-धामसे मनाया जाता है, फिर भी इस अवसरपर बंगाली लोगोंकी इस उत्सवके प्रति अभिरुचि तथा तत्परता कुछ और ही होती है। दुर्गापूजाका उत्सव आश्विनमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिसे आरम्भ हो जाता है।

विद्युत्-बल्बों, ट्यूबलाइटों तथा झालरोंके द्वारा प्रकाशकी अनुपम व्यवस्थावाले तथा बेशकीमती वस्त्रोंसे सुसज्जित विशाल पण्डालके भीतर स्थापित की गयी दुर्गाप्रतिमा इस उत्सवका मुख्य आकर्षण बनी रहती है।

पूजनोत्सव पञ्चमीकी शामसे ही 'बोधना' (देवीजागरण)-के साथ प्रारम्भ हो जाता है। इसके बाद षष्ठी तिथिकी शामको आवाहन तथा अधिवास-संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं। सप्तमी तिथिको प्रातःकाल नवपत्रिका-स्नानके साथ वास्तविक पूजा आरम्भ होती है जो तीन दिनोंतक चलती है। अष्टमी तिथिके अन्तिम चौबीस मिनट तथा नवमी तिथिके प्रारम्भिक चौबीस मिनटके समयान्तरालमें देवी चामुण्डाकी विशेष पूजा की जाती है। अष्टमी तथा नवमीके सन्धिकालमें सम्पन्न किये जानेके कारण इसे सन्धिपूजाकी संज्ञा दी गयी है। दशमी तिथिको प्रातःकाल अपराजिताकी पूजाके साथ दुर्गापूजाकी समाप्ति हो जाती है और सायंकाल माँ दुर्गाकी मूर्ति गङ्गामें विसर्जित कर दी जाती है।

लक्ष्मीपूजा—धन, सम्पदा और भाग्यकी देवी होनेके कारण बंगाली समाजमें लक्ष्मीको विशिष्ट देवताके रूपमें माना गया है। परिवारमें सुख और शान्ति स्थापित रहे, इसके लिये बंगाली लोग वर्षके कई समयोंपर लक्ष्मीकी उपासना करते हैं।

बंगाली लोगोंमें प्रत्येक गुरुवारको लक्ष्मीपूजनकी परम्परा है। अधिकांश परिवारोंमें स्त्रियाँ सायंवेलामें पूजन करती हैं। घरकी विधिवत् सफाई करके वे एक ऊँचे आसनपर लक्ष्मीकी प्रतिमा स्थापित करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे लक्ष्मीपूजा करती हैं। इस अवसरपर देवी लक्ष्मीके माहात्म्यसे सम्बन्धित कथाएँ पढ़नेकी

परम्परा प्रचलित है। इसी प्रकार आश्विनमासकी पूर्णिमाको सायं दूसरी लक्ष्मीपूजा होती है, जिसे कोजागरी लक्ष्मीपूजा कहा जाता है। इस दिन लक्ष्मीकी पूजा परिवारजनोंके बीच घरोंमें ही नहीं, अपितु सार्वजनिक रूपसे पण्डालोंमें भी सम्पन्न की जाती है।

कालीपूजा—यह बंगालियोंका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उत्सव है, जिसे वे अपार श्रद्धाभाव तथा मनोयोगसे कार्तिकमासकी अमावास्याकी रातमें मनाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ बंगालीसमुदाय कालीपूजाके दो और उत्सव मनाते हैं—एक पूजा ज्येष्ठमासकी अमावास्याकी रातमें तथा दूसरी माघमासकी अमावास्याकी रातमें सम्पन्न की जाती है।

जगद्धात्रीपूजा—कुछ बंगालीपरिवारोंमें समग्र ब्रह्माण्डकी जननी जगद्धात्रीकी पूजा करनेकी परम्परा है। यह पूजनोत्सव कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिसे लेकर नवमीतक मनाया जाता है। चार दिनोंतक भक्तिपूर्वक पूजन सम्पन्न करके दसवें दिन जगद्धात्रीकी मूर्ति गङ्गानदीमें विसर्जित कर दी जाती है। सामान्यतया यह पूजनोत्सव परिवारस्तरपर मना लिया जाता है, किंतु बंगालमें कहीं-कहीं यह सामूहिक उत्सवके रूपमें मनाया जाता है। बंगालमें चन्दननगर और हुगलीकी जगद्धात्रीपूजा अति प्रसिद्ध है।

सरस्वतीपूजा—बंगालीसमुदायमें 'श्रीपञ्चमी' नामसे सरस्वतीपूजा अत्यन्त लोकप्रिय है, जो माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको बड़े हर्षोल्लाससे मनायी जाती है। सरस्वतीजी ज्ञानकी अधिष्ठात्रीदेवी मानी गयी हैं, अत: यह उत्सव मुख्य रूपसे शैक्षणिक संस्थाओंसे जुड़े लोगों—खास तौरसे विद्यार्थियोंद्वारा मनाया जाता है।

वासन्तीपूजा—बंगाली कैलेण्डरकी समाप्तिपर दूसरा बड़ा उत्सव वासन्तीपूजा है, जो चैत्रमासके शुक्लपक्षकी षष्ठीसे आरम्भ होकर नवमीपर्यन्त चलता है। इस उत्सवके प्रत्येक दिनका अपना अलग नाम है। छठे दिनको अशोकषष्ठी, सातवें दिनको वासन्तीसप्तमी और आठवें दिनको अन्नपूर्णा अष्टमी कहा जाता है। कुछ परिवारोंमें यह उत्सव चैत्र शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे ही आरम्भ हो जाता है, इसे वासन्तीनवरात्र कहा जाता है।

यात्रामहोत्सव—यह बंगालीसमुदायमें काफी लोकप्रिय है, जो भिन्न-भिन्न मासमें उनके द्वारा भगवान् जगन्नाथके प्रति अपनी अगाध श्रद्धा तथा उत्कृष्ट भक्तिभावनाके साथ सम्पन्न किया जाता है।

चन्दनयात्रा—वैशाखमासके शुक्लपक्षमें अक्षयतृतीया तिथिको यह यात्रा निकाली जाती है। बंगालमें यह यात्रा उड़ीसामें निकलनेवाली भगवान् जगन्नाथकी यात्रासे कुछ भिन्न रहती है। बंगालमें भगवान् कृष्णकी मूर्तिपर चन्दनका लेप कर दिया जाता है और तीन सप्ताहतक उनकी पूजा की जाती है। इस उत्सवका मुख्य उद्देश्य भगवान्‌को भीषण गरमीसे राहत प्रदान करना होता है।

पुष्पाभिषेकयात्रा—वैशाखमासकी पूर्णिमा तिथिको यह उत्सव सम्पन्न होता है। बंगालमें इसे फूलडोलयात्रा भी कहा जाता है। यह उत्सव लगभग सभी वैष्णवतीर्थोंमें मनाया जाता है। विभिन्न प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे भगवान्‌की मूर्तिको सुसज्जित करके उनकी यात्रा बड़े धूम-धामसे निकाली जाती है।

स्नानयात्रा—ज्येष्ठमासकी पूर्णिमाको भगवान्‌का यह स्नानोत्सव मनाया जाता है। इस दिन परमपिताकी मूर्ति उनके आसनसे उठाकर स्नानहेतु निर्मित वेदीपर स्थापित की जाती है। प्रत्येक श्रद्धालुको इस अवसरपर भगवान्‌को स्नान कराकर पुण्य अर्जित करनेका अवसर दिया जाता है।

रथयात्रा—आषाढ़मासके शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिको भगवान् जगन्नाथका रथयात्रा-महोत्सव मनाया जाता है। एक सुसज्जित रथपर भगवान्‌को बिठाकर उसे श्रद्धालुओंद्वारा खींचे जानेकी परम्परा है। इस रथयात्रामें अपार जनसमूह भाग लेता है। इस अवसरपर परम्परानुसार मेले भी लगते हैं, जिसमें दूर-दराजके लोग सम्मिलित होकर मेलेका आनन्द लेते हैं और भगवान् जगन्नाथका दर्शन करके कृतकृत्य होते हैं। रथपर चलकर भगवान् अपनी मातृस्वसा (मौसी)-के यहाँ पहुँचते हैं और वहाँ एक सप्ताहतक ठहरते हैं।

एक सप्ताहतक अपनी मातृस्वसाके भवनमें रुकनेके पश्चात् आठवें दिन भगवान् जगन्नाथ अपने स्थानको लौटते हैं। उनकी इस यात्राको 'पुनर्यात्रा' अथवा बँगलामें इसे 'उलटा रथ'की संज्ञा दी गयी है। सप्ताहतक चलनेवाले इस रथयात्रा-महोत्सवमें लोग गहरी दिलचस्पीके साथ शामिल होते हैं। लोगोंका ऐसा विश्वास है कि रथपर आसीन भगवान् जगन्नाथका जो एक बार दर्शन कर लेता है, वह पुनर्जन्मके बन्धनसे मुक्त हो जाता है।

हिण्डोलायात्रा या झूलनोत्सव—भगवान् श्रीकृष्ण था उनकी परम प्रिया राधाका यह झूलनोत्सव अपार हर्ष तथा द्धासे मनाया जाता है। यह उत्सव श्रावणमासके शुक्लपक्षकी कादशीसे आरम्भ होकर पूर्णिमापर्यन्त चलता है।

रासयात्रा—यह उत्सव कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी ोधिनी एकादशीसे पूर्णिमातक बड़े ही प्रेममयरूपमें ाया जाता है। यह भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके न्धिजनों खास तौरसे गोप-गोपिकाओंके परस्पर मिलनका सव है। रासयात्रोत्सवकी झाँकी बड़ी ही आकर्षक तथा ोहारिणी होती है जो उत्सवमें शामिल होनेवाले भक्त-र्नार्थियोंको प्रेमरसमें सराबोर कर देती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बंगालीसमुदायमें अनेक ारके सामाजिक तथा धार्मिक पर्वोत्सवोंको मनानेका लन है। ये सभी उत्सव उनकी सामाजिक रीतियों, धार्मिक चारों तथा भगवान्के प्रति अपार श्रद्धाकी अभिव्यक्तिके क्त माध्यम हैं। ये उत्सव उन्हें एकता, सहिष्णुता और स्पर सौहार्दके एक सूत्रमें बाँधे रखनेमें प्रबल सहायक हैं।

पर्वोत्सवोंको मनानेके अतिरिक्त बंगालीलोग वर्षभर भिन्न मासोंमें व्रतका अनुष्ठान करते रहते हैं। बंगाली ष तथा महिलाएँ बड़ी श्रद्धाके साथ व्रतोंका आचरण ते हैं। वैशाखमासके शुक्लपक्षमें पड़नेवाली अक्षयतृतीयाका बंगालीसमुदायद्वारा महान् श्रद्धाके साथ अनुष्ठित किया ा है। यह मुख्यतया परिवारके मृत पूर्वजोंकी शान्ति तथा के कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको दान देनेका पर्व है। इसी ार बंगाली महिलाएँ अपने बच्चोंकी सुरक्षाके निमित्त वर्षमें क षष्ठीव्रत करती हैं। उनमें ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी षष्ठी थेको अरण्यषष्ठी, आश्विनमासके शुक्लपक्षमें पड़नेवाली षष्ठी, माघमासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको शीतलाषष्ठी चैत्रमासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको अशोकषष्ठीके सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। इन अवसरोंपर माताएँ उपवास ती हैं और अपने बच्चोंके उत्तम स्वास्थ्य तथा दीर्घ नकी मङ्गल कामनाके साथ षष्ठीदेवीकी उपासना ती हैं।

इसी प्रकार वे लोग ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको गङ्गादशहराके अवसरपर व्रत करते हैं और गङ्गाजीकी पूजा करते हैं। इसी दिनसे बंगाली (पश्चिम बंगालके) लोग सर्पोंके भयसे मुक्तिहेतु मनसादेवीकी पूजा आरम्भ करते हैं और यह नागपूजा श्रावण शुक्ल पञ्चमीतक प्रत्येक पञ्चमीको सम्पन्न की जाती है।

रथयात्रा तथा पुनर्यात्राके बीच पड़नेवाले मंगलवार, शनिवारको 'विपत्तितारिणी' देवीका व्रत तथा पूजन करनेकी विशेष प्रथा है। लोगोंका ऐसा विश्वास है कि किसी मुसीबतमें पड़ा हुआ आदमी यदि इस व्रतका अनुष्ठान करे तो उसकी वह मुसीबत दूर हो जाती है। इसी प्रकार बंगाली-लोग भाद्रपदमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीके दिन श्रीकृष्णजन्माष्टमी तथा उसी मासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको राधाष्टमी मनाते हैं और उन दिनों उपवासव्रत रखते हैं।

बंगाली समुदायमें महाशिवरात्रिका पर्व व्रतोपवासके साथ विशेष श्रद्धासे मनाया जाता है। फाल्गुनमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी शिवचतुर्दशीके नामसे विख्यात है। सभी नर-नारी मिलकर इसे शिव तथा पार्वतीके विवाहोत्सवके रूपमें मनाते हैं।

महाशिवरात्रिका व्रत मनुष्योंको अभीष्ट फल प्रदान करता है। उस दिन उपवास रहकर लोग रातभर जागरण करते हैं और शिव-पार्वतीकी लीलाओंसे सम्बन्धित कथाएँ पढ़ते तथा भजन करते हैं। दूध, दही, घी, मधु और गङ्गाजलसे भगवान् शिवका अभिषेक किया जाता है। श्रद्धालुजन शंकरजीको उनकी सर्वप्रिय वस्तुएँ बिल्वपत्र, धतूरा और मदारके फूल अर्पित कर उन्हें संतुष्ट करते हैं।

रामनवमीके दिन लोग व्रत रखकर भगवान् रामचन्द्रका जन्मोत्सव मनाते हैं। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमीके दिन लोग उपवास रखते हैं। इस दिन प्रातःकाल लोग भगवान् रामजीकी पूजा करते हैं और मध्याह्नमें श्रीरामचन्द्रजीका ध्यान करते हुए अपने इष्ट मन्त्रको सिद्ध करते हैं।

बंगालीजनोंमें एकादशीव्रतका अनुष्ठान बड़ी श्रद्धा तथा भक्तिसे किया जाता है।

उपर्युक्त सभी व्रत तथा पर्वोत्सव बंगाली समाजमें अतीव मनोयोग तथा भक्तिभावसे अनुष्ठित किये जाते हैं।*
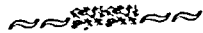
* 'ज्ञानप्रवाह' वाराणसीद्वारा आयोजित 'काशीके पर्व एवं उत्सव' पर दो दिवसीय संगोष्ठी-(१-२ अगस्त २००३ ई०)-में पढ़े गये प्रपत्रके अंश—(साभार)।

उड़ीसामें श्रीश्रीनारायणदेवजीका जलोत्थापन-महोत्सव

(श्रीसुशान्तकुमारजी पंडा)

उत्कल प्रान्तमें विविध प्रकारके पूजनोत्सव प्रायः वर्षभर हुआ करते हैं। सौर संवत्सरकी मेष-संक्रान्ति या विषुव-संक्रान्तिको यहाँ पणा-संक्रान्ति भी कहते हैं। इस दिन भक्तगण इष्टदेवोंको पणा और छतु अर्पण करते हैं। इसे लक्ष्य करके पल्ली कवि नन्दकिशोर वलने लिखा है—

वइशाख मास पणा संकरान्ति हुअइ पणा छतुआ,
काठ गोड नाई मंगला मुण्डाइ नाचन्ति घण्ट पाटुआ।

उड़ीसामें भुवनेश्वरसे उत्तरकी ओर अस्सी किलोमीटरकी दूरीपर बारवाटी बस-स्टैण्ड है। वहाँसे तीन किलोमीटर पश्चिमकी ओर जानेके बाद सिंहापुर गाँव पड़ता है। गाँवके पश्चिम तरफ एक वृहत् सरोवर है। इस सरोवरके जलमें श्रीश्रीनारायण प्रभुजी पूरे वर्ष जलशायी होकर रहते हैं। विषुव-संक्रान्तिको प्रभातकालमें वेदज्ञ विप्र, सेवक, पण्डा आदि भक्तजन महाप्रभुजीको जलाशयसे बाहर निकालते हैं और इस समय हजारों भक्तोंके समावेशमें शङ्ख, घण्ट, घण्टा, ढोल, मृदङ्ग, करताल आदिकी ध्वनिसे आकाश गूँज उठता है। इस मनोज्ञ परिवेशमें 'हरिबोल हुलहुली' की ध्वनिसे श्रीदेवको पूर्वकी ओर पूजा-पावच्छपर ले जाया जाता है, श्रीदेवके विग्रहपर लगी कीचड़को भक्तजन आदर-भक्तिसे सिरपर लगाकर श्रीदेवजीका आशीर्वाद प्राप्त करते हैं और श्रीदेवजीको स्नान करानेके लिये अपने साथ लिये हुए अपक्व नारियल, कंचाक्षीर, माखन आदि स्थानीय वस्तुएँ अर्पण करके अपनेको धन्य मानते हैं।

श्रीश्रीनारायणदेवजीके स्नान-मार्जनके अनन्तर सर्वप्रथम पूजा मधुपुरके राजा द्वारा सम्पन्न होती है। उसके बाद उस जलमें वायुकोण-स्थित पूजा-पावच्छपर सेवकोंके द्वारा श्रीदेवका विग्रह स्थापित किया जाता है। वहाँपर पुनः स्नान-मार्जन किया जाता है और मधुपुरके राजाके द्वारा पुष्पाञ्जलि प्रदान करनेके बाद पुष्पवृष्टिके परिवेशमें श्रीश्रीनारायणदेवजी मन्दिरमें गमन करते हैं। मन्दिरमें सर्वप्रथम रुद्धद्वार-पूजा होती है। श्रीश्रीनारायणजीके पूर्वदिशाके पूजा-पावच्छके पूर्वमें एक मन्दिर है, उस मन्दिरमें श्रीदेवजीकी चल-प्रतिमा 'मदनमोहन' विद्यमान है। श्रीनारायणजीके मन्दिर-प्रवेशके बाद संकीर्तनकी आनन्द-उल्लासपूर्ण ध्वनिसे श्रीश्रीमदनमोहनजीको विमानपर बिठाकर यज्ञमण्डपमें लाया जाता है। यज्ञमण्डपमें तीन दिनतक यज्ञकार्य चलता है। पहले दिन वैष्णवाग्नि-संस्कारपूर्वक विष्णुयज्ञ, दूसरे दिन ग्रहयज्ञ और तीसरे दिन शैवाग्नि स्थापित होकर रुद्रयज्ञ अनुष्ठित होता है।

श्रीश्रीनारायणदेवकी रुद्धद्वार-पूजाके बाद श्रीदेवजी पहले मदनमोहन-वेशमें भक्तजनोंको दर्शन देते हैं। इसके बाद कालिय-दलन-वेशके साथ मीन, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, हलधर (बलराम), बुद्ध और कल्कि-वेश भी धारण करते हैं और अन्तमें संन्यास-वेश धारण करते हैं। यह वेश वैराग्यका संकेत है। इस वेशके साथ त्रिदिवसीय यात्रा समाप्त होती है। चौथे दिन प्रभातकालमें पुनः जल-शयनके लिये विजय-यात्रा करते हैं। श्रीदेवजीकी इस त्रिदिवसीय यात्राका तात्त्विक महत्त्व है। इस त्रिदिवसीय-यात्रा-दर्शनके लिये बहुत ही दूर-दूरसे आये भक्तजनोंका समावेश होता है।

श्रीश्रीनारायणजीके सम्बन्धमें प्रचलित किंवदन्ती यह है कि—

उड़ीसाके अन्तिम स्वाधीन राजा मुकुन्ददेवकी सन् १५६८ ई०में युद्धमें मृत्यु हो जानेके बाद मुसलिम सेनापति कालापहाड़के हमलेद्वारा कई हिन्दू-मन्दिर-मठ, देव-देवी-विग्रह नष्ट-भ्रष्ट हो गये। यहाँके श्रीश्रीनारायणजीके मन्दिरपर भी हमला हुआ था। इस आसन्न विपदासे अपने इष्टदेवजीकी रक्षा करनेके लिये सेवक-पूजकगणोंने निकटके वेतसकुंजसे परिवेष्टित परित्यक्त जलाशयके भीतर उन्हें छिपा दिया था और बदलेमें पार्श्व देवता श्रीनृसिंहजीको सिंहासनपर बिठा दिया था। कालापहाड़ने सिंहासनसे नृसिंहजीको उठाकर तोड़ दिया, अब वही भग्न नृसिंह-विग्रह पुष्करिणीके पूर्वकी तरफके पूजा-पावच्छपर विद्यमान होकर पूजित हो रहा है। लोगोंके मुखसे दूसरी बात यह सुनायी पड़ती है कि कालापहाड़ने श्रीश्रीनारायणजीके पाँव-हाथकी कनिष्ठ अँगुलीको तोड़ दिया था, किंतु विग्रहमें ऐसी क्षति कहीं दिखायी नहीं पड़ती।

लोककथामें यह भी प्रचलित है कि श्रीदेवजी जलशयन करनेके बाद सरोवरसे अन्तर्धान हो जाते हैं और फिर चैत्रमासान्तके दिन अपनी लीला प्रकट करनेके लिये इच्छामय प्रभु स्वेच्छासे उसी निर्दिष्ट स्थानपर अवस्थापित हो जाते हैं, दूसरे दिन महाविषुव-संक्रान्तिके प्रभातमें वाञ्छाकल्पतरु प्रभु भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये जलाशयसे निकलते हैं।

यह स्थल बौद्ध और वैष्णव धर्मके समन्वयकी पीठस्थलीके रूपमें आज भी विद्यमान है।

राजस्थानके पर्व, उत्सव एवं व्रत

(श्रीराजेन्द्रजी अग्रवाल)

राजस्थान प्रदेश, जिसके विभिन्न भागोंमें आजसे लगभग ५५ वर्ष पहलेतक राजाओंका राज्य था, अपनी गौरवमयी परम्परा एवं भारतीय संस्कृतिका पुजारी रहा है। यहाँपर वर्षपर्यन्त पर्वो, उत्सवों आदिकी बहुतायत रहती है। जिस दिन महिलाएँ अपनी पारम्परिक वेश-भूषामें हाथोंमें पूजाकी थाली लिये मन्दिरोंकी ओर जाती मिलें, समझ लेना चाहिये कि आज कोई पर्व, उत्सव अथवा व्रत है। यहाँ संक्षेपमें मनाये जानेवाले वर्षभरके प्रमुख व्रतोत्सवों तथा रीति-रिवाजोंका उल्लेख किया जा रहा है—

चैत्र शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे प्रारम्भ होनेवाले संवत्सर अथवा विक्रमसंवत्के **नववर्षके उत्सवको** राजस्थानमें बहुत ही हर्षोल्लाससे मनाया जाता है। इस दिन लोग स्नान, पूजन एवं होम करके एक-दूसरेको नववर्षकी शुभकामनाएँ देते हैं। पत्रोंद्वारा भी शुभकामनाओंका आदान-प्रदान होता है। मुख्य चौराहोंको सजाया जाता है, वहाँ रात्रिमें रोशनीकी सजावट होती है। इस दिनसे दुर्गामाताके व्रत एवं अनुष्ठानके रूपमें नवरात्र प्रारम्भ हो जाता है। प्रातः ही स्नान करके लोग 'दुर्गासप्तशती' के रूपमें नवरात्रका पाठ करते हैं एवं दुर्गामाताकी मूर्तिकी पूजा करते हैं। दुर्गामाताके मन्दिरोंमें जाकर बड़ी संख्यामें नर-नारी अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं। चैत्र शुक्ल द्वितीयाको राजस्थानका प्रसिद्ध पर्व **गणगौरका सिंजारा** होता है। उस दिन कुँआरी कन्याएँ गौरी पार्वतीका हरी दूर्वा (बड़ी-बड़ी हरी घास)-से पूजन करती हैं। उस दिन वे शृंगार करती हैं और हाथों एवं पैरोंमें मेंहदी लगाती हैं। उसी दिन घरोंमें 'गुणे' बनाये जाते हैं जो गेहूँके आटेके गोल बड़े छल्ले-से होते हैं। ये मीठे होते हैं; क्योंकि इन्हें चीनीमें पागा जाता है। चैत्र शुक्ल तृतीयाको **गणगौरी माताका पूजन** होता है। यह पर्व सारे राजस्थानमें विशेष उत्साह एवं हर्षोल्लाससे मनाया जाता है। राजाओंके समयमें इस पर्वको राजसी ठाटसे मनाते थे। दस दिन पहलेसे ही प्रतिदिन प्रातःकाल ही रानियोंकी दासियाँ समूहोंमें नगरके उद्यानोंसे दूर्वा तोड़कर लाती थीं एवं लोकगीतोंसे वातावरणको आनन्दित करती थीं। उस दूर्वासे रानियाँ गौरी (पार्वती)-का पूजन करती थीं। आजकल भी स्त्रियाँ अपनी पारम्परिक वेश-भूषामें उद्यानोंसे हरी दूर्वा लाकर गौरी-पूजन करती हैं। उस दिन गणगौरीमाता (पार्वतीमाता)-की सवारी गाजे-बाजेसे नगरके मुख्य मार्गोंसे होकर जाती है। अन्तमें यह सवारी एक जलाशय अथवा नदीके तटपर एक मेलेका रूप ले लेती है। उस तटको 'गणगौर-घाट' भी कहते हैं। चैत्र शुक्ल अष्टमीतक प्रतिदिन दुर्गामाताकी पूजा होती है। अधिकतर नर-नारी इन आठों दिनोंतक व्रत तथा उपवास रखते हैं और एक समय फलाहार लेते हैं। अष्टमीके दिन इस अनुष्ठानका समापन हवन अथवा यज्ञसे होता है। इस दिन कन्याओंको भोजन कराया जाता है। चैत्र शुक्ल नवमीको पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका पृथ्वीपर अवतरण हुआ था। अतः नवमीके दिन **श्रीरामजयन्ती** बड़ी धूमधामसे मनायी जाती है। भक्तजन मन्दिरोंमें जाकर पूजा-अर्चना करते हैं एवं इस दिन स्थान-स्थानपर श्रीरामचरितमानसके अखण्ड पाठ होते हैं। श्रद्धालुजन 'सुन्दरकाण्ड' का पाठ भी करते हैं।

ज्येष्ठकृष्ण अमावास्याको **वट-अमावास्या** भी कहते हैं। इस दिन वट-वृक्षका पूजन किया जाता है। इसी दिन पतिव्रता देवी सावित्रीने यमराजसे अपने मृत पति सत्यवान्को जीवित करके पुनः प्राप्त किया था। उसने वट-वृक्षके नीचे तपस्या की थी एवं उसे उसका अभीष्ट प्राप्त हुआ था। इसलिये इस दिन स्त्रियाँ अपने अखण्ड सुहागके लिये वट-वृक्षका विधिवत् पूजन करती हैं। जो स्त्रियाँ वट-वृक्षतक नहीं जा सकतीं, वे बड़ (वट-वृक्ष)-के पाँच अथवा सात पत्तोंको घर मँगाकर उनकी प्रतीकात्मक पूजा करती हैं, व्रत रखती हैं।

राजस्थानमें अलवरके भूतपूर्व महाराज जगन्नाथपुरीसे भगवान् जगन्नाथ, माता सुभद्रा एवं बलभद्रजीकी मूर्तियाँ अपने यहाँ लाये थे। प्रतिवर्ष आषाढ़ शुक्ल नवमीको उनकी **रथयात्रा** निकाली जाती है। यह रथयात्रा मन्दिरसे प्रारम्भ

होकर नगरकी परिक्रमा करती हुई, एक दूसरे मन्दिरमें जाती है। वहाँ आषाढ़ शुक्ल एकादशीको जगन्नाथजीका विवाह होता है और दो दिन पश्चात् वे तीनों ही वापस अपने मन्दिरमें आ जाते हैं। इसी प्रकारकी रथयात्राएँ राजस्थानके कुछ अन्य नगरोंमें भी निकलती हैं। आषाढ़ शुक्ल एकादशीको राजस्थानके निवासी **देवशयनी एकादशीके** रूपमें भी मनाते हैं। इस दिन स्त्रियाँ उपवास रखती हैं और समारोहपूर्वक देवताओंको शयन कराया जाता है। इस एकादशीसे लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशीतक कोई शुभ कार्य; जैसे—विवाह, गृहप्रवेश, भूमि-पूजन आदि नहीं किये जाते। ऐसी मान्यता है कि इन दिनों देवतागण विश्राम करते हैं और किसी भी सत्कार्यसे पहले देवगणोंका आवाहन आवश्यक है, अत: उनके विश्राममें विघ्न नहीं पड़ना चाहिये। इस समय वर्षा-ऋतु होती है और वर्षामें पहले समयमें आवागमन कठिन होता था। संत लोग भी एक ही स्थानपर रहकर चातुर्मास करते थे। आषाढ़ पूर्णिमा—**गुरुपूर्णिमा** होती है तथा गुरुकी पूजा की जाती है और उनको गुरुदक्षिणा भी अर्पित करते हैं।

श्रावण कृष्ण पञ्चमी **नागपञ्चमीके** रूपमें मनायी जाती है। इस दिन स्त्रियाँ अपनी पारम्परिक वेश-भूषामें एकत्र होकर नागदेवताकी पूजा करती हैं। श्रावण शुक्ल द्वितीयाको **तीजका सिंजारा होता है।** उस दिन महिलाएँ मेंहदी लगाती हैं एवं शृङ्गार करती हैं। बाजारोंमें घेवर एवं फेणी मिठाइयोंकी बहार आयी रहती है। जयपुरके घेवर एवं फेणी राजस्थानमें बहुत प्रसिद्ध हैं। श्रावण शुक्ल तृतीयाको तीजका मेला लगता है। सायंकाल तीजमाताकी सवारी धूम-धामसे निकाली जाती है। पूर्व राजाओंके परिवारोंका इसमें विशेष योगदान रहता है। खुले स्थानोंपर पेड़ोंके नीचे महिलाएँ झूले झूलती हैं। तीजके दिन विशेष रूपसे यह दृश्य देखनेको मिलता है। यह पर्व राजस्थानके अन्य भागोंमें भी उमङ्गसे मनाया जाता है। श्रावणकी पूर्णिमाको **रक्षा-बन्धनका** पुनीत पर्व मनाया जाता है। मन्दिरोंमें श्रावणी तीजसे पूर्णिमातक **हिंडोले** होते हैं, जहाँ प्रतिदिन नयी-नयी झाँकियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। बड़ी संख्यामें लोग इन हिंडोलोंको देखने आते हैं।

भाद्रपद कृष्णपक्षकी अष्टमीको भगवान् श्रीकृष्णका जन्मोत्सव बड़ी धूम-धामसे मनाया जाता । **श्रीकृष्णजन्माष्टमीको** लोग उपवास रखते हैं एवं घरे श्रीकृष्णभगवान्‌की झाँकियाँ सजाते हैं। मन्दिरोंमें श्रीकृष्णजीको पालनेमें झूलते दर्शाया जाता है। सायंकाल ही भजन एवं कीर्तन प्रारम्भ हो जाते हैं जो रात्रिके १ बजेतक चलते हैं। उस समय आरती होती है और प्रस वितरण होता है जिसमें भुना हुआ धनियेका चूर्ण होता । इसके पश्चात् ही भक्तजन अपना उपवास तोड़ते हैं अ फलाहार करते हैं। भगवान्‌के अवतारके उपलक्ष्यमें अग दिन अर्थात् नवमीको भी विशेष प्रसाद तैयार किया जा है। भाद्रपद शुक्लकी चतुर्थीको **गणेशचतुर्थीके** रूप समारोहपूर्वक मनाया जाता है। जयपुरके मोती-डूँगरी स्थि गणेशमन्दिरमें विशाल मेला लगता है। सवाई माधोपुर निकट रणथम्भौरके गणेशजीका मेला तो राजस्थानमें प्रसि है। भाद्रपद शुक्ल एकादशीको ठाकुरजीकी स्थान-स्थान सवारी निकाली जाती है एवं व्रत रखा जाता है। इसे जल **झूलनी एकादशी** भी कहते हैं। भाद्रपदकी पूर्णिमा आश्विनकी अमावास्यातक **श्राद्धपक्ष** होता है जिसमें लो अपने दिवंगत पूर्वजोंका श्राद्ध-तर्पण करते हैं।

आश्विन शुक्ल प्रतिपदाको **नवरात्र-स्थापना** होती है इस दिनसे माँ दुर्गाकी पूजा-आराधना प्रारम्भ हो जाती है माता दुर्गाकी पूजा वर्षमें दो बार—चैत्र एवं आश्विनके शुक्ल पक्षमें होती है। यह शरद्-ऋतुकी दुर्गापूजा भी कहलात है। प्रतिदिन लोग ''दुर्गासप्तशती'का पाठ करते हैं ए आठ दिनतक उपवास रखते हैं। नवरात्र स्थापनाके दिव ही छोटी-छोटी हाँड़ियोंमें मिट्टी डालकर जौ बोये जाते है जो नौ दिन बाद हरे-हरे पौधोंके रूपमें उग आते हैं। आमे (जयपुर)-में सरलादेवीका विशाल मन्दिर है, जहाँ आश्वि शुक्ल सप्तमीसे दुर्गाष्टमीतक मेला रहता है। इसके विषय एक दोहा प्रचलित है—

> **साँगानेर का साँगा बाबा, चाँद पोल का हनुमान।**
> **आमेर की सरला देवी, लाया राजा मान॥**

जयपुरनरेश राजा मानसिंह प्रथम, जो सम्राट् अकबरके मुख्य दरबारी थे, ऊपर वर्णित तीन मूर्तियाँ जयपुर लाए थे और उनको तीन भिन्न-भिन्न स्थानोंपर स्थापित किय था, इस प्रकार सरलादेवीकी मूर्ति आमेरमें विराजमान है

यह माता दुर्गाका ही एक रूप है। आश्विन शुक्ल दशमीको **विजयादशमी** पर्वके रूपमें मनाया जाता है। इस दिन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामने लङ्कापति रावणपर विजय पायी थी। इस विजयदिवसको अमर करनेके लिये प्रतिवर्ष रावण, कुम्भकर्ण एवं मेघनादके बड़े-बड़े पुतले जलाये जाते हैं। इससे पहले स्थान-स्थानपर रामलीलाका मंचन किया जाता है जो दस दिनसे अधिक चलता है। एक-एक नगरमें कई-कई स्थानोंपर भिन्न-भिन्न मण्डलियोंद्वारा श्रीरामचन्द्रजीकी जीवनलीला प्रदर्शित की जाती है। यह रामलीला-प्रदर्शन बहुत ही लोकप्रिय है। विजयादशमीके दिन शस्त्रपूजन भी होता है। कुछ परिवार इसी दिन अपने वार्षिक बहीखाते भी बदलते हैं। आश्विनमासकी पूर्णिमाको **शरत्पूर्णिमा** होती है। इस दिनसे शरद्-ऋतुका आगमन हो जाता है। यह सारी ही पूर्णिमाओंसे अधिक दमकती है। इस पूर्णिमाको चन्द्रमाकी चाँदनीकी आभा सबसे अधिक होती है। इस रात्रिको लोग दूधकी खीर बनाकर चन्द्रकी चाँदनीमें रख देते हैं और अगले दिन प्रातः उसे खाते हैं। इस दिन पूर्णिमाका व्रत भी रखते हैं।

कार्तिक कृष्ण चतुर्थी सुहागन स्त्रियोंके लिये विशेष महत्त्व रखती है। सुहागन नारियाँ अपने पतिकी दीर्घायुके लिये उपवास रखती हैं और चन्द्रमाके दर्शन करके ही रात्रिमें भोजन करती हैं। यह व्रत सारे प्रदेशोंमें विशेष समर्पणसे मनाया जाता है, इसे **करवाचौथका** व्रत कहा जाता है। कार्तिक कृष्ण अष्टमीको **अहोई अष्टमी** मनायी जाती है। यह व्रत स्त्रियाँ अपने पुत्रोंकी दीर्घायुके लिये रखती हैं। नारियाँ इस दिन अहोईमाताकी कहानी सुनकर और चन्द्रदर्शन करके ही अपना व्रत समाप्त करती हैं। कई परिवारोंमें तारोंके दर्शनसे भी व्रत समाप्त हो जाता है।

दीपावलीका महान् पर्व पाँच दिनोंतक चलता है। यह कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीसे प्रारम्भ होकर कार्तिक शुक्ल द्वितीयातक चलता है।

कार्तिक शुक्ल एकादशीको **देवोत्थानी एकादशी** भी कहा जाता है। इस दिनसे सारे ही सत्कार्य यथा—विवाह, गृहप्रवेश, भूमि-पूजन आदि प्रारम्भ हो जाते हैं। **कार्तिककी पूर्णिमाको** राजस्थानके पुष्करमें प्रसिद्ध मेला लगता है। इस दिन लोग दूर-दूरसे आकर पुष्कर-सरोवरमें स्नान करते हैं एवं ब्रह्माजीके दर्शन और पूजन करते हैं। पुष्कर तीर्थमें ब्रह्माजीका पुरातन मन्दिर है, यह सिक्खोंके प्रथम गुरु नानकदेवजीका जन्मदिन है। इस पर्वको सारे ही गुरुद्वारोंमें विशेषरूपसे मनाया जाता है।

पौष मासमें **मकर-संक्रान्तिका** पर्व आता है। मकर-संक्रान्तिको लोग प्रातः स्नान-पूजनकर दान देते हैं। उस दिन तिल एवं गुड़ खाने एवं दान करनेका विशेष महत्त्व होता है। माघ शुक्ल पञ्चमी **वसन्तपञ्चमीके** नामसे जानी जाती है। इस दिनसे वसन्त-ऋतुका आगमन होता है। इस दिन माता सरस्वतीकी पूजा होती है और लोग अपने बच्चोंकी पढ़ाई इस दिनसे ही प्रारम्भ करते हैं। इस दिन स्त्रियाँ पीतवर्णके वस्त्र धारणकर पीले पुष्पोंसे ही माँ सरस्वतीका पूजन करती हैं। फाल्गुन कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको **महाशिवरात्रिका** व्रत होता है। भगवान् शिवकी दूध, पुष्प-पत्र आदिसे पूजा की जाती है और रात्रिको शिवका जागरण भी होता है। लोग इस दिन उपवास भी रखते हैं। फाल्गुनकी पूर्णिमाको **होलिका-दहन** होता है। इसी दिन भक्त प्रह्लादकी बुआ होलिका प्रह्लादको गोदमें लेकर अग्नि- चितामें बैठी थी, भक्त प्रह्लाद तो बच गये, परंतु होलिका जलकर राख हो गयी। भगवत्कृपाका ऐसा ही चमत्कार होता है। इसके अगले दिन अर्थात् चैत्र कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको **धूलैण्डी** मनायी जाती है। इस दिन लोग एक-दूसरेपर रंग डालकर एवं मुँहपर गुलाल मलकर स्नेह प्रदर्शित करते हैं। सायंकाल लोग एक-दूसरेके घर जाकर शुभकामनाओंका आदान-प्रदान करते हैं, गले मिलते हैं एवं मिठाई आदि खिलाते हैं। चैत्र कृष्णकी अष्टमीको **शीतलाष्टमीका** पूजन होता है। उस दिन नर-नारियाँ ठण्डा बासी भोजन ही ग्रहण करते हैं।

सारे ही प्रदेशमें धार्मिक प्रवृत्ति अधिक होनेके कारण विशेषरूपसे स्त्रियाँ मासकी प्रत्येक एकादशी एवं पूर्णिमाको व्रत रखती हैं।
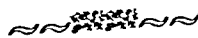
राजस्थानके लोकदेवता और उनके उत्सव

(सुश्री द्रौपदीदेवी)

राजस्थानमें लोकदेवता गाँव-गाँव, ढाणी-ढाणीमें पूजे जाते हैं। लोकसंस्कृतिमें लोकदेवताओंका सदासे महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इनके थान एवं देवालय राजस्थानमें स्थान-स्थानपर बने हुए हैं। सभी वर्गोंमें इनकी मान्यता है। गोगाजी, पावूजी, रामदेवजी, देवनारायणजी और तेजाजीका राजस्थानके लोकदेवताओंमें प्रमुख स्थान है। इन सभी लोकदेवताओंकी लोकचर्या प्राय: समान है। इनका प्रामाणिक विवरण तो नहीं मिलता, परंतु देवनारायणजी, पावूजी तथा रामदेवजीकी जीवनगाथा पडगायनके रूपमें प्रसिद्ध है और गोगाजी एवं तेजाजीकी गाथाएँ लोकगीतों तथा लोकनृत्योंमें प्रचलित हैं।

गोगाजी—इतिहासमें गोगाजीको महमूद गजनवीके समकालीन माना जाता है। उनका विवाह केसलमदेसे हुआ। वह राठौड़ वूडों कीलमंद्रजीकी बेटी थीं। प्रतिवर्ष उनकी पूजा भाद्रपदके कृष्णपक्षकी नवमीको की जाती है। गोगाजीकी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर लोग पूजा करते हैं। राजस्थानमें खेजड़ेके वृक्षके नीचे सभी गाँवोंमें उनका थान (पूजास्थल) होता है। गोगामेड़ी, जिला-गङ्गानगरमें भाद्रपद कृष्णपक्षकी नवमीपर विशाल मेला लगता है। दूर-दूरसे दर्शनार्थी यहाँ आते हैं और श्रद्धाभावसे परम्परागतरूपसे पूजा करते हैं तथा वड़ा भारी उत्सव मनाते हैं। गोगाजीको सर्पोंका देव माना जाता है। राजस्थानके अलावा गोगाजीकी पूजा हिमाचल प्रदेश, पंजाव और उत्तर प्रदेशमें भी की जाती है।

पाबूजी—संवत् १९१३ को मारवाड़के कोलू (कीलमंद्र)-के ठिकानेमें पावूजीका जन्म हुआ था। उन्होंने २४ वर्षकी अवस्थामें ही अपने वचनकी रक्षाहेतु प्राण त्याग दिये थे। ऐसी मान्यता है कि जव देवलीचारणकी गायोंको जींदराव घेर कर ले गया, उस समय पाबूजीका पाणिग्रहण-संस्कार हो रहा था। उन्होंने फेरोंके मध्य ही उठकर अपना वचन पालन किया तथा गायोंकी रक्षाके लिये जींदरावसे युद्ध किया और गायोंकी मुक्तिहेतु लड़ते-लड़ते अपने प्राण गँवा दिये। राजस्थानके ग्रामीण क्षेत्रोंमें उनके पूजास्थान पाये जाते हैं। कपड़ोंके थानोंपर पाबूजीके जीवनवृत्तोंको रंग-विरंगे रंगोंसे चित्रित किया जाता है। यही पाबूजीकी पड कहलाती है।

रामदेवजी—लोकगाथाओंमें रामदेवजीको विष्णु-भगवान्का अंशावतार माना जाता है, यह मान्यता है कि रामदेवजी प्रकट हुए थे। उनका जन्म नहीं हुआ था। लोकदेवोंमें वे सबसे अधिक विख्यात एवं पूजनीय हैं। उन्होंने सदैव निर्वलों, शोषितों तथा पीडितोंकी रक्षा की और उन्हें सम्मानित किया। तेरहताली उनके भक्तोंका प्रिय नृत्य है। वे एक वीर योद्धा, उत्कृष्ट योगी तथा भक्त-कविके साथ-साथ क्रान्तिकारी भी थे। उनके भव्य मन्दिर रुणेचा, बीकानेर, चित्तौड़गढ़, गुजरात तथा कोलकातामें स्थापित हैं। जहाँ प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल एकादशीको हर्षोल्लासपूर्वक विशाल मेला लगता है, उत्सवका आयोजन होता है तथा लोग अपनी मनौती पूर्णकर आह्लादित होते हैं।

देवनारायणजी—देवनारायणजीको भी भगवान्का अवतार माना गया है। उनका अवतरण मालासेरी गरी भीलवाड़ा जिलेके आसीन्द तहसीलमें माना जाता है। बगडावत देवनारायणगाथाके नामसे उनकी गाथा प्रसिद्ध है। उन्होंने राजा दुर्जन सालको युद्धमें पराजित कर अपने राज-समाजकी रक्षा की। सवाई भोज देवनारायणजीका प्रमुख स्थल है, जहाँ प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल सप्तमीको देवनारायणजीके मन्दिरोंमें मेलों और उत्सवोंका आयोजन होता है।

तेजाजी—तेजाजीको गायोंका रक्षक और प्राणपालक देवता माना जाता है। एक वार जव वे गोरक्षाके लिये जा रहे थे तो रास्तेमें नाग उन्हें डँसनेके लिये आया। उन्होंने नागको वचन दिया कि गौओंकी मुक्तिके वाद आपके पास आऊँगा, अभी मुझे जाने दें। नागने जाने दिया। वे गायोंको मुक्त करानेके पश्चात् अपने वचनानुसार नागदेवताके पास आये और नागदेवने उन्हें डँस लिया। तेजाजीके देवालय राजस्थानके सभी गाँवोंमें निर्मित हैं, जहाँ श्रद्धाभावसे लोग उनकी पूजा करते हैं तथा मनोकामना पूर्ण होनेपर प्रसाद चढ़ाते हैं। ब्राह्मणों, इष्ट-मित्रों, परिजनों तथा असहायोंको भोजन कराते हैं, दान-दक्षिणा देते हैं और खूव उत्सव मनाते हैं।

राजस्थानमें सती दादीके महोत्सव

(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)

हमारे शास्त्रोंने सती उसे माना है जो सत्के लिये जीती है एवं सत्की रक्षाके लिये मृत्युका भी वरण कर लेती है। सत्का अर्थ परमात्मा होता है, लेकिन सती वह है जो अपने पतिको परमात्मा मानती है। पतिके न रहनेपर जो प्राण धारण नहीं करती, वह सती है। भारतके नर-नारी अपने महान् आदर्शके रूपमें ऐसी सतियोंकी पूजा करते हैं। सारे समाजका यह विश्वास हो जाता है कि सतियोंके सत्से ही समाजका संरक्षण एवं संचालन होता है। इसी परम्परामें यहाँ विभिन्न गोत्रोंके लोग अपने-अपने कुलकी सतियोंका पूजन प्राय: अपने-अपने घरोंमें कर लेते हैं। यहाँ प्राय: सभी सतियोंके मन्दिर भी बने हुए हैं, जहाँ भाद्रपद अमावास्या (भादीमावस)-पर मेले लगते हैं। देशके कोने-कोनेमें बसे राजस्थानी सज्जन यहाँ आकर अपनी कुलकी सतियोंको धोक देते (प्रणाम करते) हैं और समारोहपूर्वक उनकी पूजा करते हैं। इन सतियोंके नाम भी होते हैं; जैसे—धोलीसती, ढांढनसती, राणीसती आदि।

झुँझनू (राजस्थान)-में श्रीराणीसती दादीजीका विशाल मन्दिर है जो केवल राजस्थानमें ही नहीं, सारे देशमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। विदेशोंमें बसनेवाले भारतीय भी जब स्वदेश आते हैं तो अपने श्रद्धा-सुमन माँ—दादीजीके दरबारमें झुँझनू जाकर चढ़ानेसे नहीं चूकते। विदेशोंमें भी दादीजीके भक्तोंने अपने-अपने घरोंमें दादीजीका मन्दिर बना रखा है, जहाँ नित्य दादीजीकी पूजा-अर्चना होती है। मूलरूपमें तो राणीसती दादी बांसल गोत्रकी हैं, परंतु इनकी मान्यता राजस्थानमें लगभग पूरे अग्रवाल समाजमें है। अग्रवालोंके सभी गोत्रोंके अलावा भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—सभी इनकी नियमित पूजा-आराधना करते हैं। यों तो दादीजीके मन्दिरमें बारहों महीने भक्तों एवं दर्शनार्थियोंका ताँता लगा रहता है। लेकिन दो आयोजन ऐसे होते हैं जब दादीजीके भक्तोंकी संख्या लाखोंमें होती है। प्रत्येक वर्षकी भाद्रपद कृष्ण अमावास्यापर सर्वाधिक भीड़ होती है।

श्रीराणीसतीजीकी वंश-परम्परामें तेरह सतियोंका पूजन किया जाता है, उनके नाम हैं—

१-श्रीराणीसती, २-श्रीसीतासती, ३-श्रीमहादेईसती, ४-श्रीमनोहरीसती, ५-श्रीमनभावनीसती, ६-श्रीयमुनासती, ७-श्रीज्ञानीसती, ८-श्रीपुरासती, ९-श्रीविरागीसती, १०-श्रीजीवणीसती, ११-श्रीटिलीसती, १२-श्रीबालीसती तथा १३-श्रीगुजरीसती।

भाद्रपद कृष्ण अमावास्याको अन्तिम सती श्रीगुजरीसतीजी सती हुईं, इसलिये उस दिन सभी सतियोंकी पूजा-अर्चना बड़े धूमधामसे की जाती है। श्रीराणीसतीजी अपनी वंश-परम्परामें प्रथम सती हैं और मार्गशीर्ष कृष्ण नवमी, मंगलवार संवत् १३५२, तदनुसार ६ दिसम्बर, सन् १२९४ ई०-को उन्होंने सतीत्व ग्रहण किया। अत: सतीके रूपमें उसी दिन उनका प्राकट्य हुआ। इसीलिये उस दिन सभी भक्तोंको प्रसाद-भोजन करानेकी व्यवस्था है। श्रीराणीसती दादीजी एवं सभी सतियोंकी दिव्य ज्योति अपने भक्तोंके जीवनको सदासे आलोकित कर रही है।

भाद्रपद कृष्ण अमावास्याको इनकी पूजाका विशेष दिन है। इस दिन इनके भक्त दादीजीकी विशेष पूजा-आराधना करते हैं। मङ्गलगीत तथा भजन आदिके आयोजन होते हैं। प्रधान मन्दिर तो राजस्थानके शहर झुँझनूमें स्थित है। लेकिन प्रत्येक शहरमें एक या एकसे अधिक दादीजीके मन्दिरोंकी स्थापना हो चुकी है तथा नित्य नये मन्दिर बन रहे हैं। भाद्रपद कृष्ण अमावास्याके दिन भक्तगण दादीजीकी विशेष पूजा कर अपनेको कृतार्थ मानते हैं।

श्रीराणीसती दादीजीके विशेष महत्त्वको देखते हुए उनका जीवन-परिचय जानना आवश्यक है।

दादीजी अमर सुहागन हैं, अमर वीराङ्गना हैं। ऐसी लोकमान्यता है कि महाभारतके युद्धमें जब अर्जुनपुत्र वीर अभिमन्यु वीरगतिको प्राप्त हुआ, उस समय अभिमन्युकी पत्नी उत्तराने सती होनेका निश्चय किया। किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसे सती होनेसे मना कर दिया और कहा कि उत्तरे! इस समय तुम गर्भवती हो, अत: सती होनेपर तुम्हें पाप लगेगा। इस समय तुम सती नहीं हो सकती। मैं समझ रहा हूँ कि इस समय सती होनेकी तुम्हारी प्रबल इच्छा है, किंतु यह समय उचित नहीं है। मैं तुम्हें वरदान देता हूँ तुम कलियुगमें सती होओगी और घर-घरमें तुम्हारी पूजा होगी। यही महाभारतकालकी उत्तरा कलियुगमें नारायणी-

नामसे अवतरित हुईं एवं वीर अभिमन्यु बादमें तनधनदासजीके रूपमें अवतरित हुए। यही नारायणीबाई बादमें हमारी आराध्या श्रीराणीसती दादीजीके नामसे विख्यात और घर-घरमें पूजित हुईं।

भक्तराज गुरसामलजी एवं श्रेष्ठ विभूति माता गङ्गादेवी तत्कालीन राजस्थानके महम नगरके ठोकवा उपनगरके रहनेवाले थे। भक्तराज सेठ गुरसामलजी महाराज अग्रसेनजीके वंशज थे। वे गोयल गोत्रके थे। सेठ गुरसामलजी एवं माता गङ्गादेवीसे एक पुत्रीका जन्म हुआ, जिसका नामकरण नारायणीदेवी किया गया। जन्मके समय नारायणीबाईका मुखमण्डल अति दिव्य एवं तेजस्वी था। माता-पिता अपनी पुत्रीके मुखमण्डलको देखकर अति प्रसन्न होते थे। एक संतने इस कन्याको देखकर आशीर्वाद दिया कि यह कन्या अमर सुहागन होगी, जगमें ऊँचा नाम करेगी एवं भक्तोंके भण्डार भरेगी। यह शुभाशीर्वाद देकर संत अन्तर्धान हो गये।

नारायणीबाई जब पाँच वर्षकी हुईं तो पढ़ने जाने लगीं। जो भी उनके गुरु पढ़ाते थे उन्हें याद हो जाता था। विलक्षण प्रतिभासे सम्पन्न नारायणीबाईने अल्प समयमें ही शास्त्रोंका चिन्तन-मनन कर लिया। रामायण और गीताका तो वे नित्य पारायण करती थीं। बड़ी होनेपर उनके पिताद्वारा उन्हें शस्त्रशिक्षा तथा घुड़सवारी आदिकी भी शिक्षा दिलायी गयी। उस समय हरियाणामें ही नहीं, बल्कि उत्तर भारतमें भी उनके मुकाबलेकी कोई निशानेबाज बालिका तो क्या, कोई पुरुष भी न था।

उधर नारायणीबाईके भावी पति तनधनदासजीका जन्म हिसार नगरमें महाराज अग्रसेनके सुपुत्र विशालदेवजी (वीरभानजी)-के वंशमें हुआ था। इनके वंशज बांसल-गोत्रके थे। तनधनदासजीके पिताका नाम सेठ श्रीजालानदास एवं माताका नाम यमुनादेवी था। उस समय हिसारका नवाबी राज्य क्षेत्र आजकलके हरियाणा प्रदेशसे बड़ा था। उसी नवाबी राज्य हिसारके श्रीजालानदासजी दीवान थे। इनकी न्यायप्रियता प्रसिद्ध थी। श्रीजालानदासजीके बड़े पुत्र तनधनदासजी बहुत ही सुन्दर, सुशील एवं वीर पुरुष थे।

इधर ठोकवा नगरमें माता-पिताको नारायणीबाईके विवाहकी चिन्ता होने लगी। वे तेरह वर्षकी हो चुकी थीं। माता-पिताकी चिन्ता देखकर नारायणीदेवीने अपने तपके बलपर स्वप्नावस्थामें स्वयं ही वर खोजकर हिसारमें वर देखनेके लिये ब्राह्मणको भेजा। ब्राह्मणदेवता जब विवाहका प्रस्ताव लेकर वहाँ पहुँचे तो तनधनदासके पिता अपने पुत्रका विवाह नारायणीबाईके साथ करनेके लिये खुशी-खुशी राज़ी हो गये। यह शुभ-समाचार सुनकर श्रीगुरसामलजी भी अति प्रसन्न हुए।

तनधनदासजी एवं नारायणीके विवाहका माङ्गलिक कार्य बड़े धूमधामसे सम्पन्न हुआ। कन्याके पिताने दहेजमें हाथी, घोड़े, ऊँट, बैल तथा सैकड़ों छकड़े भर दिये। एक श्यामवर्ण सुन्दर घोड़ी भी दहेजमें दी गयी थी। विवाहके पश्चात् श्रीतनधनदासजी सायंकाल अपनी श्यामवर्ण-घोड़ीपर सैर करने हिसारमें जाया करते थे। नवाबके शहजादेको यह घोड़ी बेहद पसंद आ गयी। उसने घोड़ी माँगी लेकिन तनधनदासजीने घोड़ी देनेसे मना कर दिया। आधी रातको नवाबजादा घोड़ी चुरानेके लिये दीवानजीकी हवेलीमें गया। नया आदमी देखकर घोड़ी हिनहिनाने लगी। तनधनदासजी जाग गये और उनके भालेके एक ही प्रहारसे नवाबजादा मारा गया।

दीवानजीने तुरंत रातोरात हिसार छोड़नेका निश्चय किया और पड़ोसी राज्य झुँझनूके नवाबके पास पहुँच गये। हिसार एवं झुँझनूके नवाबोंमें आपसमें शत्रुता थी। नवाबजादा जब दीवानजीकी हवेलीमें मृत अवस्थामें पाया गया तो दीवानको पकड़नेका आदेश हुआ। दीवान तो सपरिवार झुँझनूके राज्यमें आ चुके थे। हिसारकी सेनाकी ताकत झुँझनूकी सेनासे टक्कर लेनेकी नहीं थी। झुँझनूमें भी इन्हें दीवानका पद दिया गया।

मुकलावेमें तनधनदासजी अपनी पत्नी नारायणीको लाने ठोकवा (महम) पहुँचे। मुहूर्तके अनुसार विदाई हो गयी। लेकिन विदाईके समय अपशकुन होने लगे। हिसार राज्यसे होकर जाना पड़ता था। भिवानीसे ४-५ मील दूर देवसरकी पहाड़ीके पास आते ही नवाबकी फौजोंने भयंकर हमला कर दिया। उस युद्धमें तनधनदासजी वीरगतिको प्राप्त हुए। अपने पतिके शवको देखकर नारायणीदेवीने तुरंत अपने पतिका भाला एवं तलवार लेकर घोड़ेपर सवार होकर रणचण्डीका रूप धारण कर लिया और वे नवाबकी सेनासे लड़ने लगीं। उनके तेजबलसे शत्रुसेना पराजित हुई और डरके मारे भाग गयी। सेवक राणासे नारायणीदेवीने

तुरंत पतिका शव लानेको कहा तथा सूर्य ढलनेसे पहले ही तुरंत लकड़ी लानेको कहकर पतिके संग उसी देवसर पहाड़ीपर सती होनेकी इच्छा प्रकट की। सेवक राणाजीने नारायणीदेवीके आदेशका पालन किया। माता नारायणीने अपने सत्के बलपर ज़मीनसे पानीकी धार निकाली और स्वयं तथा मृत पतिको नहलाकर शृङ्गार किया। पतिके शवको अपनी गोदमें रखकर वे स्वयं चितापर चढ़ गयीं, पतिके माथेपर तिलक लगाया। पद्मासनसे बैठकर राणाजीसे गठजोड़ करवाया और स्वयंके तेजसे उनकी चिता प्रज्वलित हो उठी। इन महासतीकी विशेपता है कि इनका जन्म, विवाह एवं सती होना—तीनों मंगलवारको ही सम्पन्न हुए। चिताकी दिव्य ज्योति पूरे क्षेत्रको आलोकित कर रही थी। तत्पश्चात् चितामेंसे त्रिशूलरूपमें सती प्रकट हुईं और मधुर वाणीमें बोलीं—हे राणाजी! मेरी चिता तीन दिनमें ठंडी हो जायगी और तब भस्म एकत्र कर मेरी चुनरीमें बाँधकर मेरी इस घोड़ीपर रख देना। घोड़ी चलते-चलते जहाँ भी खुद ठहर जाय, उसी स्थानपर मैं अपने प्यारे पतिके साथ निवास करती हुई जन-जनका कल्याण करती रहूँगी। घोड़ी झुँझनूके मार्गपर चल पड़ी और जहाँ रुकी, वहींपर सेवक राणाजीने माता नारायणीदेवीका स्मरण किया। उस पवित्र स्थानपर चबूतरा बनाकर भस्मको स्थापित कर पूजन किया गया। माता नारायणीदेवीके आज्ञानुसार नवमीके शुभ दिन जो भी व्रत रखते हैं, उनके घरमें श्रीराणीसती दादीका वास होता है।

श्रीनारायणीजी मुकलावा लेकर आती हुई मार्गमें ही सती हो गयी थीं। दाम्पत्य-जीवनका अर्थ भी नहीं जान पायी थीं कि पतिके संग सती हो गयीं। इसलिये जनसाधारण इन्हें सतियोंकी रानी कहने लगा। एक किंवदन्तीके अनुसार अपने सेवक राणाकी सेवासे प्रसन्न होकर सतीने कहा कि मेरा नाम जगमें 'राणीसती' के नामसे प्रसिद्ध होगा। धीरे-धीरे सतीजी श्रीराणीसतीके नामसे प्रसिद्ध हुईं जो निरन्तर भक्तोंका कल्याण कर रही हैं। जिस स्थानपर घोड़ी रुकी थी, उस स्थानपर झुँझनूमें आज भी माँ राणीसतीका विशाल मन्दिर स्थापित है। भारतके विशाल मन्दिरोंमें यह मन्दिर अपना विशेष स्थान रखता है। सच्ची भक्तिभावनाके साथ जो भी दादीजीके दरबारमें आता है, उसकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है।
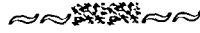
राजस्थानके श्रीश्यामदेवका धाम तथा पर्वोत्सव (मेला)

(डॉ० श्रीश्रीकिशोरजी मिश्र)

शास्त्रोंके अनुसार परमेश्वरने सम्पूर्ण सृष्टिका निर्माण किया है तथा इस सृष्टिके प्राणियोंमें आत्मचैतन्यके रूपमें वे स्वयं विराजित भी हैं। प्राणी जब ईश्वरका स्मरण करता है, तब भगवान् अनुग्रहद्वारा उसका अभ्युदय करते हैं एवं संकटसे उद्धार करते हैं। भक्तोंपर अनुग्रह तथा प्राणियोंके उद्धारके लिये भगवान् श्रीकृष्णने भक्तराज प्रह्लादके द्वारा संसेवित ढुण्ढारिक्षेत्रके 'खाटू' स्थानको विशेषरूपसे भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये अपना लिया तथा कलियुगमें नारायणके पूर्णावतार श्रीकृष्णकी शालग्राममूर्तिके रूपमें श्रीश्यामजीका खाटूमें समागम हुआ। श्रीश्यामदेव राजस्थानके अति प्रसिद्ध देवता हैं और लाखों घरोंके कुलदेव, इष्टदेव हैं। इनकी महिमा तथा भक्त-वत्सलताकी विशेषता विख्यात है। स्कन्दपुराण तथा भारतसारमें श्रीश्यामजीके पौराणिक आख्यान उपलब्ध होते हैं।

श्रीश्यामदेवका पौराणिक आख्यान

श्रीश्यामदेवकी मूल कथा 'स्कन्दपुराण' माहेश्वर खण्डान्तर्गत (द्वितीय) कौमारिकाखण्डमें है। भक्तजनोंकी मान्यताके अनुसार अन्य कथाएँ भी प्रचलित हैं। यहाँ कथाका सार दिया जा रहा है—

महाभारतकालमें ये भीमसेनके पौत्र और घटोत्कचके पुत्र थे। इनका नाम बर्बरीक था। महाभारतके संग्रामके समय ये उपस्थित हुए थे। इनके पास केवल तीन बाण थे। ये पाण्डवपक्षके अतिरथी वीर थे और अपने विपक्षी कौरवदलसे अकेले ही युद्ध करनेकी इच्छा रखते थे। भगवान् श्रीकृष्णने अन्य राजाओंके संदेहनिवारणके लिये इनसे कहा कि आप केवल तीन बाण लेकर इस महासमरमें उपस्थित हुए हैं और विपक्षी दलको अकेले परास्त करना चाहते हैं, यह बहुत आश्चर्यकी बात है। इसके उत्तरमें वीर बर्बरीकने कहा—भगवन्! मैं एक बाणसे ही त्रिलोकका नाश कर सकता हूँ। दो बाण तो मेरे पास अधिक हैं। तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—यदि ऐसा है तो आप इस वृक्षके सभी पत्तोंको एक

आश्चर्य देखकर स्वप्नके आदेशानुसार शास्त्रीयविधिसे भूमिपूजनादि करके खोदना प्रारम्भ किया गया। वहाँपर श्रीश्यामका विग्रह (शालग्राम-शिलारूप) उपलब्ध हुआ। राजाने शास्त्रनियमानुसार उसकी प्रतिष्ठा करायी। वर्तमानमें श्रीश्यामदेवका वह प्रधान मन्दिर है। जहाँ मूर्ति उपलब्ध हुई, वहाँ पानी भर आया। आगे चलकर वह स्थान श्रीश्यामकुण्डके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

श्रीश्यामदेवोत्सव मेला—खाटूमें प्रत्येक शुक्लपक्षकी (चाँदनी) द्वादशीको श्रीश्यामजीके दर्शनार्थ यात्रीगण आते हैं तथापि श्रीश्यामदेवजीके तीन देवोत्सव—प्रधान मेले होते हैं—१-ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी, २-कार्तिक शुक्ल द्वादशी तथा ३-फाल्गुन शुक्ल द्वादशी—इन तीनों मेलोंमें भी ऋतु अनुकूल होनेके कारण फाल्गुनमें विशेष मेला होता है।

श्रीश्यामदेवकथा (अ० ५)-में अन्तिम दो मेलोंका इस प्रकार निर्देश मिलता है—

अनेन यः सुहृदयं श्रावणेऽभ्यर्च्य दर्शके।
वैशाखे च त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे द्विजोत्तमाः।
शतदीपैः पूरिकाभिः संस्तवेत्तस्य तुष्यति।

अर्थात् श्रवणनक्षत्रयुक्त अमावास्या तथा विशाखानक्षत्रयुक्त अमावास्याके बादकी तेरहवीं तिथि (द्वादशी)-के दिन जो अनेक दीप्त अङ्गारोंद्वारा ढके जानेवाले बाटोंके चूरमेंसे पूजन करके स्तोत्रसे स्तुति करता है, उससे श्रीश्यामदेव बहुत प्रसन्न होते हैं।

श्रवणनक्षत्रयुक्त अमावास्या फाल्गुनमासमें आती है। अत: उस अमावास्याका तेरहवाँ दिन फाल्गुन शुक्ल द्वादशी होता है। विशाखानक्षत्रयुक्त अमावास्या कार्तिकमें आती है, अत: उसका तेरहवाँ दिन कार्तिक शुक्लपक्षकी द्वादशी होता है। इस पौराणिक महत्त्वपूर्ण निर्देशके कारण कार्तिक शुक्ल द्वादशी तथा फाल्गुन शुक्ल द्वादशीको श्रीश्यामदेवके दिव्य धाम खाटूमें विशेष मेला लगता है। 'स्कन्दपुराण'के निर्देशसे यह स्पष्ट है कि फाल्गुन शुक्ल द्वादशीको पुनर्वसुनक्षत्र और कार्तिक शुक्लपक्षकी द्वादशीको अश्विनीनक्षत्र हो तो उत्तम (विशेष) योग होता है। भारतसारके उल्लेखके अनुसार उस द्वादशीके दिन यदि सोमवार हो तो अत्युत्तम योग है।

श्रीश्याम-जयन्तीका मेला कार्तिक शुक्ल द्वादशी तिथिको श्रीश्यामधाम खाटूमें लगता है। भगवान् श्रीश्यामदेवकी जयन्ती (वरप्राप्तिकी तिथि) कार्तिक शुक्लपक्ष द्वादशीको माननी चाहिये। इस दिन सोमवार और अश्विनीनक्षत्र हो तो पूर्णयोग कहा जाता है। जयन्ती-उत्सवके दिन भगवान्‌का शक्ति एवं विभव (साधन)-के अनुसार उत्साहसे पूजन, स्मरण, भजन और स्तुति पाठ करना चाहिये। प्रत्येक शुक्ल द्वादशी (चाँदनी बारस)-को भगवान्‌की कुलमर्यादानुसार ज्योति (जोत)-को देखकर या स्मरण करके स्कन्दपुराणोक्त श्रीश्यामदेवकथा सुननी चाहिये, परंतु कारणवशात् प्रत्येक श्याम-द्वादशीको यदि कथा न सुन सके तो जयन्तीके दिन अवश्य कथा सुननी चाहिये और इस दिन भक्तजनोंको श्रीश्यामदेवके स्वरूपका ध्यान-पूजन करना चाहिये।

विशेष तिथि—द्वादशीकी मान्यता—प्रत्येक महीनेकी शुक्लपक्षकी द्वादशी श्रीश्यामदेवकी विशेष तिथि मानी जाती है। इस चाँदनी बारसको कई कुलोंमें ज्योति (जोत) देखते हैं या शालग्रामजीको भोग लगाकर अथवा नैवेद्य परोसकर एक शुद्ध आसनके सामने रख देते हैं और भगवान्‌का ध्यान-स्तोत्रपाठादि करके चूरमाका प्रसाद पाते हैं। जिस कुलमें जैसी प्रथा हो, उन्हें वैसा ही करना चाहिये।

भारतसार (श्रीश्यामदेवेतिवृत्त १। ३०)-के लेखानुसार शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको महाभारतका संग्राम प्रारम्भ हुआ था। इसके पहले दिन अर्थात् द्वादशीको बर्बरीकको श्रीकृष्णका वरदान प्राप्त हुआ था। इसलिये प्रत्येक शुक्ल-पक्षकी द्वादशीको 'वरतिथि' मानकर विशेष उत्सव मनाया जाता है।

एकादशीतिथिकी मान्यता—श्रीश्यामदेवके दर्शन-प्रसाद आदि आराधनामें अनेक भक्तजन शुक्लपक्षकी एकादशीकी मान्यता रखते हैं। अपनी कुल-परम्पराके अनुसार यह मान्यता भी उचित है। श्रीश्यामजीकी मुख्यतिथि द्वादशीको माननेपर भी एकादशीको पूजन, जागरण आदिमें कोई विरोध नहीं है; क्योंकि वेदोक्तविधिके अनुसार मुख्यतिथिके पूर्ववाले दिनको 'उपवसथ' कहा गया है। उपवसथके दिन देवता मनुष्यके अत्यन्त समीप आ जाते हैं तथा भक्तके घरमें निवास करते हैं। यह वेदमें उल्लिखित है—'*देवा गृहानागच्छन्ति* **तेऽस्य गृहेपूपवसन्ति स उपवसथः**' (श०ब्रा० २।१।४।१)।

अतः शुक्ल एकादशीके दिन भी श्रीश्यामदेवकी

विक्रमी-संवत्‌का उत्थान और मकर-संक्रान्ति होनेके कारण वैशाखीके दिन किसी सरोवर, नहर या नदीमें स्नानका बहुत महत्त्व है। पंजाबमें तरन-तारनकी वैशाखी बहुत प्रसिद्ध है, जहाँ भव्य मेलेका आयोजन होता है। इस स्थानपर सन् १७६८ ई० में सिक्खोंके गुरु श्रीरामदासकी स्मृतिमें एक गुरुद्वारा स्थापित किया गया, जिसके साथ एक सरोवर भी है। आम विश्वास है कि इस पवित्र सरोवरमें स्नानोपरान्त कुष्ठ-जैसे असाध्य रोग दूर हो जाते हैं।

पंजाबकी वैशाखीकी विशेष महत्ता है। इस दिन सिक्खोंके दसवें गुरु श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीने खालसा पन्थकी स्थापना की थी। यह सन् १६९९ ई० की वैशाखी थी।

पंजाबमें वैशाखीके साथ-साथ जलियाँवाला बाग-जैसे क्रूर हत्याकाण्डकी याद भी विद्यमान है। इसी घटनाने स्वतन्त्रता-संग्रामको एक नयी दिशा दी थी। जलियाँवाला बागकी वीरभूमिपर निर्मित एक विशाल शौर्य स्मारक उन देशभक्तोंकी याद दिलाता है, जो यहाँ सन् १९१९ ई० में जनरल डायरकी गोलियोंसे शहीद हुए थे।

इसी प्रकारका एक वैशाखी मेला कटराज तालपर लगता है। इस संदर्भमें महाभारतकी एक कथा है कि अपने वनवास कालमें युधिष्ठिर तथा उनके चारों भाई जब इस स्थानपर पहुँचे तो थकान और प्यासके कारण युधिष्ठिरके

अलावा शेष सबकी मृत्यु हो गयी। युधिष्ठिरने उस स्थानके देवतासे अपने चारों भाइयोंको पुनर्जीवित करनेकी प्रार्थना की। इसपर उस देवताने युधिष्ठिरसे यह प्रश्न पूछा—'दुनियामें सबसे आश्चर्यजनक बात क्या है?' युधिष्ठिरने उत्तर दिया कि उनको सबसे अधिक आश्चर्य इसी बातका प्रतीत होता है कि मृत्युको अवश्यम्भावी जानकर भी मनुष्य सर्वदा जीवित रहना चाहता है। देवताने प्रसन्न होकर कहा कि वह युधिष्ठिरके किसी एक भाईको पुनर्जीवित करनेको तैयार है। इसपर युधिष्ठिरने नकुलको पुनर्जीवित करनेको कहा। देवताको इससे बहुत आश्चर्य हुआ, उसने युधिष्ठिरसे पूछा कि तुमने नकुलको जीवित करानेका निश्चय क्यों किया? इसपर युधिष्ठिरने उत्तर दिया कि यह अन्यायपूर्ण होता कि माता कुन्तीके तो दो पुत्र जीवित रहें तथा माता माद्रीका एक भी पुत्र जीवित न रहे। युधिष्ठिरकी इस न्याय-भावनासे प्रसन्न होकर देवताने उनके चारों भाइयोंपर अमृत छिड़ककर उन्हें पुनर्जीवित कर दिया।

मेला मुक्तसरका—वैशाखीकी भाँति माघमासकी संक्रान्तिपर स्नानका बड़ा महत्त्व है। पंजाबमें उस दिन सबसे बड़ा मेला मुक्तसरके स्थानपर लगता है। यहाँ एक ऐतिहासिक गुरुद्वारा और सरोवर है। इस स्थानपर सिक्खोंके दसवें गुरु श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीकी लड़ाई मुगल सेनासे हुई थी। लड़ाईके समय माझे (अमृतसर और लाहौर)-के चालीस सिक्ख सरदार जो पहले गुरु साहिबको आनन्दपुर साहिबमें छोड़कर चले गये थे, प्रायश्चित्त कर फिर उनकी शरणमें आये थे। गुरु साहिबने उनको क्षमादान देकर मुक्त कर दिया। तभीसे इस धामका नाम मुक्तसर पड़ा। इस मेलेमें निहंग सिंघोंके तलवार तथा गत्तकाके खेल सबसे रोचक होते हैं।

आनन्दपुर साहिबका सबसे बड़ा मेला होलीके अगले दिन होता है और होला-मेला कहलाता है। इसे होलगढ़में श्रीगुरु गोविन्दसिंहजीने आरम्भ किया था। होला-मेलाके अवसरपर इस स्थानसे एक भव्य जुलूस निकलता है।

अमृतसरकी दिवाली—समस्त पंजाब और हरियाणामें अमृतसरकी दिवाली प्रसिद्ध है। किंवदन्ती है कि सिक्खोंके छठे गुरु श्रीहरिगोविन्दजी साहिब जब मुगल शहंशाह जहाँगीरकी कैदमें १२ वर्ष तक ग्वालियर वन्दीगृहमें रहनेके उपरान्त मुक्त हुए तो वे अमृतसर आये, उस दिन दीपावली थी। उनके आगमनकी खुशीमें दरबार साहिबपर असंख्य दीप जलाये गये और यह सिलसिला जारी रहा।

त्योहारोंमें एक मेला वामनद्वादशीका है। पंजाबमें

सिक्खोंके त्योहार

(श्रीत्रिलोकदीपजी)

सिक्खोंके अधिकतर त्योहारोंका सम्बन्ध धर्म और धार्मिक रीति-रिवाजोंसे जुड़ा है। चाहे वह दीपावली हो, दशहरा हो या गुरु नानक-जयन्ती। लेकिन जिन त्योहारोंसे वे अपने-आपको अधिक जुड़ा हुआ पाते हैं, वे हैं गुरुओंके जन्मदिन, उनके शहीदी दिवस आदि। लिहाजा सिक्खोंके त्योहार गुरुओंकी वाणी और उनके कार्यकलापोंसे सम्पृक्त हैं।

सभी गुरुओंके जन्मको सिक्ख बड़े ही उत्साह और उमङ्गसे मनाते हैं। लेकिन गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंहके जन्मदिवस तथा गुरु अर्जुनदेव और गुरु तेगबहादुरके शहीदी दिवसको बड़ी ही श्रद्धा और सम्मानके साथ मनाया जाता है। इन चार प्रमुख त्योहारोंके अलावा एक दिन माघीका है, जिसे लोहड़ीके दूसरे दिन बड़े उत्साहसे मनाया जाता है।

सिक्ख-सम्प्रदायके उद्भावक गुरु नानकके जन्मदिन (कार्तिक पूर्णिमा)-को सारे सिक्ख बड़े ही आदर और सम्मानभावसे मनाते हैं। जहाँ-जहाँ भी गुरुद्वारे हैं, गुरु नानकके जन्म-दिवसपर बहुत ही रौनक होती है। इस दिन दीपमाला भी अर्पित की जाती है, ठीक वैसे ही जैसे कि दीपावलीके दिन। इस दिन गुरुद्वारोंमें अखण्डपाठ रखा जाता है, कीर्तन होता है और गुरु नानकको उपलब्धियोंका वर्णन किया जाता है। उनके उपदेशोंका अनेक दृष्टिकोणोंसे विश्लेषण होता है। इस दिन जुलूस भी निकलता है। गुरु नानकने अपने जीवनकालमें चार महान् यात्राएँ कीं। जहाँ-जहाँ भी वे गये, वहाँ-वहाँ आज गुरुद्वारे हैं। पर्वोंकी दृष्टिसे इन गुरुद्वारोंका विशेष महत्त्व है। इन गुरुद्वारोंमें इस दिन विशेष कार्यक्रम होते हैं। गुरु नानकका जन्मस्थान ननकाना साहब अब पाकिस्तानमें है। यहाँपर इनके जन्म-दिवसके अवसरपर सिक्ख श्रद्धालु जाया करते थे। तीन-चार दिनोंतक तो ननकाना साहबमें ऐसा लगता है कि लोग पाकिस्तानमें नहीं, बल्कि पंजाबके किसी बड़े गुरुद्वारेमें बैठे हैं।

गुरु गोविन्दसिंहका जन्मदिन—गुरु गोविन्दसिंह सिक्खोंके दसवें और आखिरी गुरु हुए हैं। उन्होंने वैशाखीवाले दिन सन् १६९९ ई० में खालसा पन्थकी स्थापना की थी। उन्होंने इस दिन ऐसे पाँच व्यक्तियोंको चुना जो धर्मके लिये अपनी जान निछावर कर सकते थे। ये पाँच थे—लाहौरके दयाराम (खत्री), दिल्लीके धर्मदास (जाट), द्वारकाके मोहकम चन्द (धोबी), जगन्नाथपुरीके हिम्मत (रसोइया) तथा बेदरके साहबचन्द (नाई)—इन पाँचोंसे गुरु गोविन्दसिंहने बादमें स्वयं अमृतपान ग्रहण किया।

गुरु गोविन्दसिंहका जन्म पटनामें हुआ था। इसलिये पटनामें उनके जन्मस्थानपर इस दिनको बड़े ही उत्साहसे मनाया जाता है। न केवल बिहारके अपितु भारतके अन्य भागोंसे भी पहुँचनेवाले श्रद्धालुओंकी संख्या बहुत अधिक होती है। इस अवसरपर अखण्डपाठ और कीर्तनके अलावा जो जुलूस निकलता है, उसमें गुरुकी वीरता और धीरताके गुणोंके दृश्य भी देखनेको मिलते हैं।

शहीदी दिवसोंमें तो कई दिन हैं लेकिन उनमें प्रमुख गुरु अर्जुनदेव (पाँचवें गुरु) और गुरु तेगबहादुर (नवें गुरु)-की शहादतको ही अधिक मनाया जाता है। ३० मई सन् १६०६ ई० को गुरु अर्जुनदेव शहीद हुए थे।

सिक्खोंके लिये ये शहादतके दिन शोकके नहीं, बल्कि एक नये विश्वास और विजयके उत्सव हैं। गुरु अर्जुनदेवका जीवन उद्यम, लगन और नये आदर्शोंका जीवन था।

सिक्ख-त्योहारोंमें एकरूपता ही होती है अर्थात् अखण्डपाठ और उसके बाद गुरुवाणीका कीर्तन, गुरु अर्जुन ही आदि ग्रन्थ (सिक्ख जिसे ग्रन्थ साहब कहते हैं)-के रचयिता हैं। इसी दिन सिक्ख सुबहसे शामतक ठंडे-मीठे पानीकी छबीलें लगाते हैं। ज्येष्ठ-आषाढ़के दिनोंमें काफी गरमी पड़ती है। उस गरमीमें गुरुजीपर जो जुल्म हुए उनकी शान्तिके लिये कच्ची लस्सी पिलानेकी यह प्रथा चली है। जिस लगनसे यह 'कच्ची लस्सी' पिलायी जाती है, वह दृश्य देखनेयोग्य होता है। विभाजनसे पूर्व लाहौरके डेरा साहबपर इस दिन विशेष आयोजन होता था। इस दिन जुलूस नहीं निकाला जाता।

गुरु तेगबहादुर दसवें गुरु गुरु गोविन्दसिंहके पिता थे। उनका कार्यक्षेत्र बिहार, असम आदि था। उस समय भारतमें

व्रत और पर्वोत्सव सुरक्षित रखनेमें सफल हो सका है।

सिन्धी समाजमें वर्षकी प्रथम मेष-संक्रान्तिके शुभ अवसरपर बच्चोंका उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया जाता है तथा अक्षयतृतीयापर ब्याही हुई बहनों, कन्याओं, ब्राह्मणों और गुरुजनोंको जलदानके साथ जलपात्र, पंखे, फल, दूध, वस्त्र आदि प्रदान करनेका एक आदिकालीन नियम चलता आ रहा है। आषाढ़ कृष्ण अमावास्याको एक विशेष पर्व 'खुम्भ' नामसे मनाया जाता है, जिसमें घरके छोटे-बड़े पुत्रोंके नामपर कोई-न-कोई खानेका व्यञ्जन बनाकर अड़ोस-पड़ोसमें बाँटनेकी प्रथा है। यह समुदाय प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी द्वितीयाके चन्द्रदर्शनको एक पर्वके रूपमें मनाता आया है। इस दिन घरके बड़े-बूढ़ोंसे लेकर पड़ोसके बूढ़ों और गुरुजनोंको प्रणाम कर आशीर्वाद लिया जाता है तथा परिवारके प्रायः सभी सदस्य समीपके मन्दिरमें या श्रीगुरु महाराजके चरणोंमें जाकर पूजा, अर्चना और सत्संग इत्यादि किया करते हैं। यह पर्व सायंकालीन होनेके साथ ही भगवान् आशुतोषकी स्मृति भी कराता है; क्योंकि भगवान् शिवजीके मस्तकपर शुक्लपक्ष द्वितीयाके ही चन्द्रके विराजित होनेका शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है।

चैत्र शुक्ल द्वितीयाको 'चेटी चाँद' के रूपमें मनाकर सिन्ध-नववर्षका श्रीगणेश किया जाता है। यह दिन श्रीवरुणदेव (भगवान् झूलेलाल)-की जयन्तीके रूपमें भी मनाया जाता है। इस अवसरपर यत्र-तत्र जल-कलशके साथ प्रज्वलित दीप अर्थात् जल और ज्योतिके पूजनका प्रावधान हुआ करता है; क्योंकि ये दोनों ही मानव-जीवनके सारभूत तत्त्व हैं। जलके बिना जीवन अधूरा है तो ज्योतिके बिना सूना। इस पर्वपर प्रायः पूरे भारतवर्षमें ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्वमें जहाँपर भी इस समुदायके सदस्य रहते हैं, वे यथाशक्ति भजन, कीर्तन, सत्संग-प्रवचन, पूजा-पाठ आदि किया करते हैं तथा सायंकाल जल-ज्योतिके साथ 'बहिराणा' अर्थात् शोभायात्रा निकालते हैं। इस शोभायात्रामें भक्तगण नाचते-गाते, डांडिया करते *'आयो लाल झूलेलाल'* का उद्घोष किया करते हैं तथा बादमें उस जल-कलश और ज्योतिको किसी नदी, तालाब या जलस्रोतपर जाकर विसर्जित कर आते हैं। विसर्जनके पश्चात् पल्लव अर्थात् प्रार्थना करते हुए वे अपने समाजके साथ पूरे विश्वकी सुख-शान्ति और समृद्धिके लिये भगवान् वरुणदेव (झूलेलाल)-से याचना किया करते हैं।

सिन्धके प्रसिद्ध शक्तिपीठ माता हिंगलाजका सिन्धी समुदायपर विशेष प्रभाव रहा है, जो अब पाकिस्तानमें स्थित है। इस समाजके अधिकतर व्रत और पर्वोत्सव माता दुर्गाकी पूजासे जुड़े हुए हैं। जैसे नागपञ्चमी 'गोग्यो' में माँ गिरिजा—गौरीका पूजन। श्रावण शुक्ल सप्तमीको छोटी शीतला सप्तमी अर्थात् 'नंढी सतइं' के रूपमें तो भाद्रपद कृष्ण सप्तमीको 'थधड़ी' के रूपमें मनाकर माता शीतलाका पूजन किया जाता है। श्रावणमें ही कज्जलीतीजको 'ट्रीजड़ी'-का पर्व मनाया जाता है, जिसे गौरीपर्वके नामसे ख्याति प्राप्त है। इसके अतिरिक्त भाद्रपद शुक्ल राधाष्टमीके दिन माँ महालक्ष्मीका 'सगिड़ा बधणुव्रत', आश्विन कृष्ण अष्टमीको महालक्ष्मीव्रत अर्थात् 'सगिड़ा छोड़णु' का पर्वोत्सव बड़े ही श्रद्धा और भक्तिपूर्वक मनाया जाता है। पौषमासकी मकर-संक्रान्तिको 'तिरमूरी' तथा उसके एक दिन पहले लोहड़ी पर्वको 'लाल लोई' के रूपमें मनाकर माँ दुर्गाकी पूजा की जाती है। फाल्गुनकी 'सतइं फागुणी' को माता शीतलाका पूजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त चैत्र और आश्विनमासके नवरात्र भी बड़ी श्रद्धा और उत्साहसे मनाये जाते हैं। इन सभी पर्वोंपर माता हिंगलाजकी अनुपम कृपा और छाप आज भी इस समाजमें कायम है। यही कारण है कि सिन्धी समाज माता दुर्गामें आस्था रखते हुए आदिकालसे ही माँ शक्तिकी पूजा किया करता रहा है, जो पञ्चदेवोपासनामें एक प्रमुख व्रत और पर्वोत्सवके रूपमें माना जाता है।

इसके अतिरिक्त भारतीय पर्वोंपर भी इस समाजकी कुछ विशेष छाप देखनेको मिलती है। जैसे दशहराके दिन छोटे-छोटे बच्चोंका मुण्डन करवाना, दीपावलीके दिन रात्रिको घरके बाहर मशाल जैसे—*'काना बारे रखणु'* अर्थात् जलती हुई मशालसे रोशनी करना, *'हटड़ी रखना'* अर्थात् मिट्टीका घर बनाकर उसमें दूकान-जैसी सजावट करना जो कि इस समाजकी एक प्रमुख पहचान है। इसी प्रकार और भी ऐसे कई छोटे-बड़े व्रत और पर्वोत्सव हैं जो सिर्फ सिन्ध-संस्कृतिमें ही विशेषरूपसे मनाये जाते हैं।
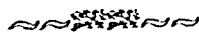
भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू-धर्मके रक्षक—श्रीझूलेलाल (उदेरोलाल)

(प्रो० श्रीलालमोहरजी उपाध्याय)

बढ़ो जवानों झूलेलाल लड़ो जवानों झूलेलाल।
आगे बढ़ो झूलेलाल दुश्मन पछाड़ो झूलेलाल।
भारतके हर वीर सिपाही झूलेलाल।

भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू-धर्मरक्षक श्रीझूलेलाल (उदेरोलाल)-ने धर्मान्ध मिर्ख बादशाहपर विजय प्राप्त की थी। उनकी यह जीत नृशंसतापर मानवताकी, दानवी शक्तिपर मानवी शक्तिकी, अभारतीयतापर भारतीय संस्कृतिकी जीत थी। फलतः चेटी चाँद (चैती चाँद) एवं उदेरोलालकी जयन्ती-महोत्सवपर हर वर्ष विशेषकर सिन्धी-समाजद्वारा चैत्रमासके नवरात्र-प्रारम्भके दिन जो दैवी शक्तिके आह्वानका दिन है, उदेरोलाल-जयन्तीके रूपमें मनाया जाता है। इतना ही नहीं, उपर्युक्त नारे भी बहुत ही श्रद्धा एवं विश्वासके साथ लगाये जाते हैं और धर्मरक्षक श्रीझूलेलालको याद किया जाता है।

कहा जाता है कि संवत् १००७ में सिन्धुनदीके किनारे नसरपुर गाँवमें ठाकुर रतनरावके यहाँ इस महापुरुषका जन्म हुआ था। इस समय सिन्धमें मुसलमानोंका शासन था। तेजस्वी और चमत्कारी स्वभावका था।

दूसरी बात तो यह है कि मिर्ख बादशाह राजमदमें अन्धा हो गया था। मुल्ला-मौलवियोंके द्वारा भड़कानेपर धार्मिक सह-अस्तित्व और सद्भावना खो चुका था। वह जोर-जुल्मसे हिन्दुओंको बलात् मुसलमान बनानेपर उतारू हो गया। इस संकटपूर्ण स्थितिमें बादशाहकी चुनौतीका सामना उदेरोलालने वीरताके साथ किया। उसने एक वीर सेनाका संगठन किया। श्रीउदेरोलालने बादशाह मिर्खको चेतावनी दी कि वह शीघ्र ही सही मार्गपर आ जाय तथा अत्याचारको तिलाञ्जलि देकर हिन्दू-मुसलमान सबको एक नजरसे देखे। मगर मिर्ख बादशाह कब माननेवाला था। बादमें उदेरोलालने मदान्ध मिर्खके महलमें जाकर ऐसी चमत्कारिक लड़ाई लड़ी कि वह परास्त हो गया। कहा तो यहाँतक जाता है कि परास्त होनेपर मिर्ख बादशाह जब उनसे दयाकी भीख माँगने लगा तो उदेरोलालजीने शरणमें आते देखकर उसे क्षमा दान भी दे दिया। यही कारण है कि मानवीय एवं उदार दृष्टिकोणके कारण उदेरोलालकी कीर्ति-पताका चारों तरफ

लोप हो गये, फिर भी जब-जब सिन्धमें संकटकी घड़ी आयी, लोग श्रीउदेरोलालको विशेष याद करते रहे और उनकी मनोकामना पूरी होती रही।

आज भी सिन्धी समाज श्रीझूलेलाल (उदेरोलाल)-को वरुणदेवताके रूपमें मानता है। भारतमें स्थान-स्थानपर झूलेलालजीकी झाँकी और शोभायात्रा निकाली जाती है। लोग बहराना निकालते हैं और छेज (विशेष नृत्य) तथा डोकला (डंके बजाते हुए नृत्य)-के साथ-साथ झूलेलालकी यादमें नाचते-झूमते उत्सवका आनन्द लेते हैं।

जिस विषम परिस्थितिमें श्रीझूलेलालद्वारा साम्प्रदायिक सद्भावकी स्थापना करते हुए भारतीय संस्कृतिकी रक्षा की गयी थी, आज उनके संदेशोंपर चलकर यदि भारतका हर वीर सिपाही उनके आदर्शोंको जीवनमें उतारे तो सम्पूर्ण समाजका कल्याण सम्भव है।

बुन्देलखण्डके पर्वोत्सव

(श्रीमती सन्ध्या पुरवार, एम्० ए०)

पर्व एवं उत्सव लोक-मानसको सदैव प्रेरित करते रहते हैं। ये पर्व एवं त्योहार उल्लासका संदेश लेकर वसुन्धराको अभिसिंचित ही नहीं करते, अपितु चेतनताके नवीन उच्छ्वाससे परिप्लावित भी करते हैं। इनमें जहाँ अतीतकी स्वर्णिम एवं भव्य झाँकी प्रतिबिम्बित होती है, वहीं ये वर्तमानको भी अपनेमें समेटे रहते हैं।

पर्वोत्सव हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं। इनमें भूत, वर्तमान और अनागतके स्वर श्रवणगोचर होते हैं। इनकी शीतल और सुखदायी धारामें अवगाहन करके मनुष्यको एक अभिनव प्रेरणा और अखण्ड शान्तिका अनुभव होता है। बुन्देली जनजीवनमें रची-बसी संस्कृतिका दर्शन हमें यहाँपर मनाये जानेवाले विभिन्न उत्सवों एवं त्योहारोंमें सम्मिलित होनेपर भलीभाँति हो जाता है। वैसे तो हमारा सम्पूर्ण देश धर्मसे अनुप्राणित है, परंतु अञ्चलविशेषमें भौगोलिक तथा सामाजिक स्थितियोंके कारण इन उत्सवों तथा पर्वोंके विधानमें भिन्नता आ जाती है। इन्हीं स्थितियोंके कारण कुछ नवीन स्थानीय वैशिष्ट्य आञ्चलिक उत्सवोंमें देखनेको मिलता है। बुन्देलखण्ड तो पर्वोंका अञ्चल कहलाता है। वस्तुतः यहाँके अधिकतर पर्व कृषिपर आधारित हैं, परंतु फिर भी कुछ उत्सव समाजपरक हैं। ऐसे उत्सवोंसे समाजकी कटुता समाप्त होती है तथा स्नेह एवं प्रेमके उमङ्गकी सरिता प्रवाहित होती है।

इस पवित्र बुन्देली भूमिने नारीको सर्वोच्च स्थानपर प्रतिष्ठित कर सदैव उससे प्रेरणा ली है और यह परिपाटी हजारों वर्षोंसे यहाँके जनजीवनमें चली आ रही है। इस परिपाटीकी जीवन्त झिलमिलाती रश्मियोंने समूचे देशको आलोकित किया है। बुन्देली जनजीवनमें प्रचलित उत्सवों एवं पर्वोंपर एक संक्षिप्त दृष्टि इस प्रकार है—

(१) जवारे—*यह एक धार्मिक उत्सव है, जिसमें* जगज्जननी माँ दुर्गाका पूजन होता है। इसमें जवारे बोये जाते हैं तथा नौ दिनोंतक भक्तिभावसे पूजनका कार्यक्रम चलता है। वस्तुतः यह पर्व शक्तिपर्व है तथा इसे वर्षमें दो बार मनाया जाता है। कृषिकी दृष्टिसे भी यह उत्सव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस अञ्चलमें मुख्यतः दो फसलें—रबी एवं खरीफकी होती हैं। इन दोनों फसलोंसे पूर्व ही इस उत्सवका आयोजन होता है और जवारेका बोना एक प्रकारसे बीज-प्रमाणीकरण तथा उसपर भौगोलिक वातावरणके प्रभावकी जानकारी करना है। समाजके सभी वर्ग तथा स्त्री-पुरुष सम्मिलित रूपसे इसे मनाते हैं।

(२) गनगौर—यह व्रतोत्सव चैत्र शुक्ल तृतीयाको महिलाओंद्वारा माँ पार्वतीके सम्मुख उनके निरूपित आदर्शोंसे प्रेरणा लेने तथा उसे जीवनमें उतारनेहेतु किया जाता है। मुख्यतः यह स्त्रियों तथा कुँआरी कन्याओंका पर्व है।

(३) शीतला आठें—माँ शीतलाको चैत्र अष्टमीको बासी भोजनका भोग लगाकर आनन्दमङ्गलकी कामना की जाती है। यह दिन महिलाओंके विश्रामका भी दिन कहा जाता है; क्योंकि इस दिवसपर घरमें चूल्हा नहीं जलाया जाता है।

(४) चैती पूनौ—यह चैत्रकी पूर्णिमाको मनाया जाता है और इसे यहाँकी भाषामें 'सजनू पूजन' कहते हैं। इस पूजनमें माँ लड्डू बनाकर एक कटोरेमें रख देती है तथा जब पुत्र उस कटोरेसे लड्डू निकालकर उसके आँचलमें डालता है तब उसे वह खाती है और प्रसन्न होती है। इस चैती पूनौका मनोवैज्ञानिक आधार अत्यन्त मार्मिक है। माँका लड्डुओंको कटोरेमें भरना यह इंगित करता है कि

बेटे! मैंने अपने जीवनका श्रेष्ठ फल (लड्डू) तुम्हारे लिये संचित कर रखा है। अब मेरी वृद्धावस्था आ गयी है, मैं कुछ भी करनेमें असमर्थ हूँ अत: तुम जो कुछ भी दोगे उसीसे मैं अपना कार्य चलाऊँगी। वस्तुत: माँके द्वारा अपनी भावी पीढ़ीको चैती पूनौके माध्यमसे यह शिक्षा दी जाती है कि समाजमें बड़े बुजुर्गोंका मान-सम्मान तथा उनका भरण-पोषण समाजकी भावी पीढ़ीको कैसे करना चाहिये?

(५) आस माई-पूजन—यह पूजन वैशाख कृष्ण द्वितीयाको किया जाता है। इस पूजनमें जीवनकी चार महान् आवश्यकताओं—भूख, प्यास, नींद और आस माईकी पुतरियाँ बनाकर उनका पूजन किया जाता है तथा कहानी कही जाती है, जिससे यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्यको भूख-प्यास तथा नींदके कारण जीवनसे कभी निराश नहीं होना चाहिये, बल्कि सदैव आशावान् होना चाहिये। आस माई ही सदा आशावान् होनेकी प्रेरणा देती हैं।

(६) हरायतें लेना—यह कृषि-उत्सव है। कृषि-कार्यसे पूर्व हल-बैल तथा बखर हाँकनेवालेका पूजन किया जाता है। इस पूजाके बाद ही कृषिकार्यका श्रीगणेश होता है।

(७) अखती—वैशाख शुक्ल तृतीयाको भोली-भाली लड़कियोंद्वारा गुड्डे-गुड्डियों (पुतरा-पुतरियों)-के पूजनसे सम्पन्न किया जाता है। इस खेलसे बालिकाओंको अपरोक्ष-रूपसे सामाजिक जीवनकी शिक्षा दी जाती है।

(८) बरा बरसात—ज्येष्ठ कृष्ण अमावास्याको बरगद-वृक्षका पूजन करके यह पर्व मनाया जाता है। यह पर्व वस्तुत: पर्यावरण-सन्तुलनकी शिक्षा देता है। बरगद एक ऐसा वृक्ष है जो वायुमण्डलको स्वच्छ तो करता ही है, साथ-ही-साथ इसके चिकित्सकीय गुण भी बहुत हैं।

यह दिन गुरुपूर्णिमाके रूपमें भी मनाया जाता है।

(११) हरी ज्योतिपर्व—श्रावणी अमावास्याको यह पर्व मनाया जाता है। जिस प्रकार श्रावण अमावास्याकी घनघोर रात्रि मनको दहलानेवाली होती है, उसी प्रकार जीवनमें कुछ दिन अवश्य काली घटाके रूपमें आते हैं। उन दिनोंमें मातृशक्ति ही प्रेरणा तथा मार्गदर्शन देकर हमारा मार्ग प्रशस्त करती है। हरी ज्योतिपर्व भी अपने नामको साकार करता है। भगवान् हरिकी ज्योतिस्वरूपा माँ भगवतीका कन्यारूपमें पूजन इस दिवसको किया जाता है जो कि हमारी अन्धकारमयी रात्रिको आशा-ज्योतिसे आलोकित करती हैं।

(१२) साऊन तीज—श्रावण शुक्ल तृतीयाको महिलाएँ बड़े उल्लाससे यह पर्व मनाती हैं और पेड़ोंपर झूले डालकर झूलती हैं। इस दिवसपर महिलाएँ नयी चूड़ियाँ पहनती हैं। जिनकी खन-खनकी आवाज उन्हें सदैव स्मरण कराती है कि उनके प्रत्येक कार्यको समाज सूक्ष्म दृष्टिसे देखता है। यह पर्व जैसे उल्लासभरा है, वैसे ही आत्मज्ञान तथा सामाजिक ज्ञानकी प्रेरणा भी देता है।

(१३) नमें बाई पर्व—श्रावण शुक्ल नवमीको दाम्पत्य-जीवनके सुखमय निर्वाहहेतु इस पर्वको मनाया जाता है। महिलाएँ अत्यन्त उल्लासपूर्ण वातावरणमें इसे मनाती हैं।

(१४) साऊन (राखी)—श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको यह त्योहार समूचे देशमें तो मनाया ही जाता है, परंतु बुन्देलखण्डमें इसका अत्यधिक महत्त्व है। इस दिन बहन रक्षाहेतु अपने भाईको रक्षाके बन्धनमें बाँधती है। इसके दूसरे दिन कजलीका मेला लगता है, जिसमें बड़े उत्साहके साथ सभी जन एक-दूसरेसे गले मिलते हैं। यह पर्व भाई-बहनके पवित्र प्रेमको दर्शाता है।

निमाड़ अञ्चलके वर्षाकालीन पर्व

(श्रीगजाननसिंहजी चौहान 'नम्र', बी०ए०, साहित्यालङ्कार)

भारत त्योहारों एवं पर्वोंका देश है। यहाँ जितने धिक पर्व-त्योहार मनाये जाते हैं, शायद ही किसी देशमें नाये जाते हों। कुछ पर्व धरतीके लाड़ले पुत्र किसानके विन जमीन, जानवर और खेतीसे सम्बन्धित होते हैं। नमें भारतका पवित्र और विराट्स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। चीन कालमें अनूप-जनप्रदेशके नामसे विख्यात आधुनिक नेमाड़' केवल निमाड़ भूमिके पर्वोंका ही प्रतीक नहीं, न् इसमें भारतकी विशाल संस्कृति और धार्मिक स्था—भावनाके भी दर्शन होते हैं। यहाँके ग्राम्य-वनका आधार कृषि और पशुपालन है तथा कृषिकार्य र्णरूपेण वर्षापर निर्भर हैं। अतः निमाड़के कुछ पर्व र्षाके आरम्भसे जुड़कर शुरू होते हैं एवं वर्षाकी नासिपर इनका समापन भी हो जाता है। यहाँ संक्षेपमें कुछ र्वोंके स्वरूप एवं उनकी विधियाँ दी जा रही हैं—

(१) डोडगलई (डेडर) अमावस

वर्षाकालके प्रथम पर्वके रूपमें ज्येष्ठमासकी अमावास्या- यह डोडगलई (डेडर) अमावसका पर्व मनाया जाता ग्रीष्ममें किसान खेत जोतने और सुधारनेका कार्य पूर्ण के बादलोंकी ओर निहारने लगता है। ज्येष्ठमास वर्षाके ह्वानका महीना माना जाता है। भीषण गरमीके बावजूद ड़ोंमें पानी चढ़ने लगता है। शुष्क पलाशके पेड़ भी हरे रे नवपल्लव पाकर लहलहाने लगते हैं। इसीलिये किसान र्ग-आगमनके स्वागतमें इस त्योहारको मनाते हैं। वर्षाका बनकर मेढक उसके आगमनका शुभ संदेश प्रदान करने ाते हैं। जब धरतीके प्राणी भीषण गरमीसे विह्वल एवं ाकुल हो उठते हैं, तब सलोनी बरसात आकर उन्हें विभोर कर देती है। पुनः मेढक बाहर निकलकर सुहावनी वाजमें टर्र-टर्र करने लगते हैं। इस पर्वको मनानेके लिये ीण बालक एकत्र होकर अपनी टोलीके किसी बालकको ाशके पत्तोंसे ढककर मेढकका स्वरूप देते हैं, फिर येक घर जाकर 'धत्ता' माँगते हैं। घरका कोई सदस्य बाहर कलकर मेढक बने बालकके सिरपर पानी डालता है और के साथीको अनाज देता है। दोपहरके पश्चात् यह बालकोंकी टोली नदीके किनारे खेतके किसी कुएँके पास जाकर भोजन बनाकर खाती है। फिर शामको अपने घर लौट आती है। इस प्रकार यह पर्व निमाड़के प्रत्येक गाँवमें मनाया जाता है।

(२) नाय

अच्छी वर्षा हो जानेके उपरान्त किसान अपने खेतमें खरीफकी फसल बोनेका कार्य आरम्भ कर देते हैं। प्रभातकी मङ्गल-वेलामें किसान-दम्पति बोनेकी सामग्री लेकर खेतमें पहुँच जाता है। मुखपर मुसकराहट और हृदयमें अरमान लेकर वह खेतमें बीज बोता है। खेतमें बोआई आरम्भ करनेके पूर्व वह बैलों एवं बैल हाँकनेवाले व्यक्ति और बीज बोनेवाली महिलाको कुमकुम-तिलक लगाता है। श्रीफल भी खेतके मेड़पर चढ़ाया जाता है। इन्द्रदेवता धरतीपुत्र किसानोंके परिश्रमको सफल बनानेहेतु सुहावनी वर्षा भी करते हैं। पक्षी सुमधुर स्वरमें कलरव करते हुए चहकने लगते हैं। धरतीपर हरी-हरी कोमल घास अंकुरित हो लहलहाने लगती है। धरतीके प्राङ्गणमें खेत एवं बागोंमें जहाँ-तहाँ हरी घासके लुभावने गलीचे बिछ जाते हैं। बोआई समाप्त करके जब किसान-परिवार घर लौटता है, तब नाय उतारा जाता है। बीज बोनेका यन्त्र नाय नामसे जाना जाता है। घर लौटकर किसान-परिवार पक्वान्न बनाकर खा-पीकर आनन्द मनाता है। यह नायपर्व सम्पूर्ण निमाड़में आज भी बड़े धूमधामसे मनाया जाता है।

(३) ध्रुवपूजा

अच्छी वर्षा हो जानेसे प्रसन्नमुद्रासे किसान बोआई तो कर देता है, लेकिन बोनीके पश्चात् फिर लम्बे समयतक वर्षा न होनेसे किसान बेचैन एवं चिन्तित हो जाता है। वह आकाशकी ओर प्यासे पपीहेकी भाँति एकटक निहारता रहता है। वह परिश्रमका धनी है। लेकिन जब परिश्रमका फल उसे नहीं मिलता तो वह ईश्वरसे ही पुकार कर सकता है। ईश्वरमें उसकी अगाध श्रद्धा एवं विश्वास होता है। वह अपनी मुरझाई और सूखी फसल देखकर व्याकुल हो जाता है और अपनी पुकार ईश्वरतक पहुँचानेका प्रयत्न करता है।

उसके लिये संकटसे उबरनेका एकमात्र उपाय ध्रुवपूजा है। गाँवके सभी व्यक्ति गाँवसे बाहर उत्तरदिशाकी ओर ध्रुवपूजाके लिये प्रस्थान करते हैं। यह पूजन मेघके आगमनका स्वागत कहा जाता है।

इस दिन गाँवमें किसी भी घरमें चूल्हातक नहीं जलाया जाता। सभी लोग गाँवसे बाहर खेतमें डेरा डालकर वहीं रोटी बनाते और खाते हैं। फिर स्त्रियाँ गाँवमें आकर घर-घर पानी माँगती हैं। यहाँतक कि बड़े घरकी स्त्रियाँ भी वेष और आवाज बदलकर रोटी माँगती हैं। जब मानव अत्यन्त दीन हो परमेश्वरसे कुछ माँगता है तो ईश्वर उसे अवश्य कुछ देता है। गाँवकी माँगसे द्रवित होकर इन्द्रदेवने सुहावनी बरसात कर दी। सब ग्रामवासियोंके मुरझाये चेहरे प्रसन्न हो उठे। यह ध्रुवपूजा अब भी ग्रामवासी समयपर वर्षा नहीं होनेपर करते हैं।

(४) पोला

जब बोनीका महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हो जाता है और खेतोंमें फसलें स्वाभाविक रूपसे विकसित होने लगती हैं, तब गाँवोंमें पोलेका त्योहार मनाया जाता है। यह त्योहार फसलमें फल आनेके दिन मनाते हैं। इसीलिये खेतीके कार्यसे बैलोंको कुछ दिनोंके लिये अवकाश मिल जाता है। इसलिये आजके दिन उन्हें नहला-धुलाकर उनका शृङ्गार करते हैं। किसान अपने हाथसे अपने बैलोंको भोजन बनाकर खिलाते हैं और तिलक लगाकर उनका पूजन करते हैं।

सन्ध्याके समय बैलोंको एकत्र करके गाँवके चौराहेपर जहाँ एक रस्सी बाँधी जाती है, वहाँ बैलोंकी दौड़ होती है। आज जिस रंगका बैल उस रस्सीको तोड़कर विजयी होता है, उस वर्ष उसी रंगकी फसल अच्छी आयेगी—ऐसा माना जाता है। मान लीजिये यदि सफेद रंगका बैल जीत जाता है तो ज्वार और कपासकी फसल अच्छी आयेगी ऐसा समझा जाता है। यदि लाल रंगका बैल विजय पाता है तो लाल रंगकी समस्त फसलें जैसे—गेहूँ, तूवर (अरहर)-की भरपूर फसल आयेगी, ऐसा विश्वास है।

इस प्रकार किसान अपने जीवनका निर्वाह खेतीमें सहायक वर्षा तथा बीज बोनेके यन्त्र, उपकरण और बैलोंके प्रति कृतज्ञता दर्शाते हुए इन पर्वोत्सवोंको बड़े ही उल्लाससे मनाते हैं।
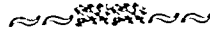
भगवान्‌से पूरा साल सकुशल बीतनेकी प्रार्थना करते हैं। इस त्योहारका पक्वान्न विशेषरूपसे गोड़ भात या केशरी भात (मीठा चावल जिसमें काजू, किशमिश आदि मेवे पड़े रहते हैं) होता है। अनेक घरोंमें शामको आप्त इष्ट-मित्रोंको बुलाया जाता है और उन्हें मलाईदार दूध पिलाया जाता है। बताशा, रेवड़ी, गरीका टुकड़ा आदि दिया जाता है तथा पान खिलाकर और उनपर गुलाबजल छिड़ककर, इत्र लगाकर उनका सम्मान किया जाता है, जो एक तरहसे गुडीपडवापर वर्षभरके लिये शुभकामनाका आदान-प्रदान है। इस विषयमें एक दोहा प्रचलित है—*'आज आहे गुडीपाड़वा गोड़ बोल गाढ़वा।'* अर्थात् आज गुडीपडवा है, आज मीठे शब्दोंका प्रयोग कीजिये।

२-रामनवमी—इसके बाद श्रीरामनवमी उत्सवके रूपमें आती है। प्रत्येक शहर अथवा कस्बेमें एक या दो ान्दिरोंमें श्रीरामजीके जन्मकी कथा आयोजित की जाती है। स पर्वपर लोग कथा-श्रवण करते हैं। मन्दिरमें भगवान्‌की ्र्तिके सामने एक पालना सजाकर रखा जाता है। उसमें डोरी ागी रहती है और पालनेमें शुभ्र बिस्तरपर श्रीरामलला ालरूपमें सुलाये जाते हैं। कथावाचक रामायणके दोहे ढ़कर, गाकर अपनी विशिष्ट शैलीमें कथा सुनाते हैं। श्रोतागण ्री कथा बड़े चावसे सुनते हैं और ठीक १२ बजे दिनमें ीरामजीका जन्म होता है, लोग उत्साहमें ताली बजाते हैं और ्थावाचक पालनेकी डोरीसे पालनेको अपने हाथोंसे धीरे- ीरे हिलाकर *'बाळा जो-जो रे·····'* गीतकी पंक्तियाँ गाकर ीरामललाको सुलाते हैं। *'बाळा जो-जो रे·····'* यह मराठीमें ड़ा प्रसिद्ध गीत है जो छोटे बच्चोंको सुलानेके लिये लोरीके ्पमें गाया जाता है। बादमें श्रीरामभक्त शहरके बारह ीराममन्दिरोंमें जाकर दर्शन कर *'बारह राम'* करनेका ौभाग्य प्राप्त करते हैं।

३-गुरुपूर्णिमा—गुरुपूर्णिमा आम तौरपर अपने- ापने गुरुके यहाँ जाकर उनकी पूजा एवं उपासना करके नसे आशीर्वाद प्राप्त करनेके साथ सम्पन्न की जाती है।

४-नागपञ्चमी—नागपञ्चमीको घरमें किसी पीठपर । नागों एवं उनके नौ बच्चोंकी आकृति बनाकर उनकी पूजा की जाती है। इस दिन महाराष्ट्रिय घरोंमें काटकर, छौंकन देकर अथवा सेंककर बननेवाले पदार्थोंका भक्षण नहीं किया जाता, केवल उबाला हुआ ही खाना खाया जाता है। जिसमें गोल आकारके मोदक बनाये जाते हैं जो उस दिनका विशेष पक्वान्न होता है।

५-राखीपूर्णिमा—राखीपूर्णिमाको महाराष्ट्र-समुदाय 'नारळीपूर्णिमा' भी कहता है। घरकी बहनें अपने भाइयोंको राखी बाँधती हैं और पूजन करके मिठाई खिलाकर भाइयोंसे उपहार प्राप्त करती हैं। इसी दिन महाराष्ट्रियोंमें कृष्णयजुर्वेदी शाखाकी श्रावणीका भी विधान है। पुरुष किसी एक बड़े घरमें विभिन्न मन्त्रोच्चारके साथ भगवान्‌का पूजन एवं हवन करते हैं। फिर नये जनेऊको प्रतिष्ठित—अभिमन्त्रित कर उसे पहनते हैं।

६-गणपति-उत्सव—महाराष्ट्रियोंका सबसे प्रमुख पर्व और उत्सवरूपी त्योहार 'गणपति-उत्सव' होता है, जिसका स्वरूप वैसा ही होता है, जैसा सारे देशमें और विशेषत: बंगालमें दुर्गापूजाका होता है। गणेशोत्सव-प्रारम्भकी पूर्व तिथिको संध्यामें महाराष्ट्रिय घरकी स्त्रियाँ अन्य समाजकी महिलाओंके साथ-साथ हरितालिकापर्व मनाती हैं। इसकी पूर्व संध्यापर मराठी घरोंमें डाटा मनाया जाता है, जिसमें भाँति-भाँतिके व्यञ्जन एवं पक्वान्न बनाकर स्त्रियोंको खिलाये जाते हैं, जिससे अगले दिन वे स्त्रियाँ निर्जल उपवास करनेके लिये तैयार हो जायँ। हरितालिकाके दिन पूर्ण उपवासके बाद रातमें घरमें आस-पासकी तीज-उपवासवाली स्त्रियाँ बुलायी जाती हैं और रातभर उनके कीर्तन-भजन, नृत्य आदिका कार्यक्रम चलता है। लड़कियाँ आपसमें 'फुगड़ी' (चकरी) आदि खेलकर दिनके उपवासको सहजतापूर्वक व्यतीत करती हैं। बादमें प्रात:काल होनेपर उन्हें स्नानके बाद 'पिठल-भात' खिलाया जाता है। बेसनसे बनी हुई गाढ़ी कढ़ीको 'पिठल' कहते हैं। बादमें मिठाई आदि देकर हल्दी-रोरी लगानेके बाद स्त्रियोंको विदा किया जाता है।

गणपतिका त्योहार तो सदियोंसे महाराष्ट्रिय समाजका व्यक्तिगत और पारिवारिक कार्यक्रम है। हर महाराष्ट्रिय घरमें गणेशभगवान्‌की मूर्ति स्थापित की जाती है जो अलग-अलग पारिवारिक परम्पराके अनुसार दोसे सात दिनोंतक पूजन आदिके बाद विसर्जित की जाती है। सुबह-शाम पूजन, आरती और मन्त्र-पुष्पाञ्जलिका कार्यक्रम

प्रत्येक घरमें होता है। उस समय 'सुखकर्ता दुःखहर्ता वार्ता विघ्नाची ....' आरती गायी जाती है। ऐसा कोई बिरला ही महाराष्ट्रिय होगा जिसके घर यह आरती न होती हो। गणेशजीको मोदकके साथ पूजा जाता है। उनका विशेष प्रसाद होता है—'पञ्चखाद्य'। यह गरी, मखाना, मिस्त्री, छुहारेके टुकड़े और चिरौंजी मिलाकर तैयार किया गया प्रसाद है। इसी दौरान महाराष्ट्रिय घरोंमें जब भगवान् गणेशकी स्थापना होती है तो अधिकांश घरोंमें लक्ष्मीस्वरूपा कंकड़ोंकी भी पूजा होती है जिसे 'खड्याची लक्ष्मी' कहते हैं। गणेश-मूर्ति-स्थापनाके अगले दिन घरकी कोई सौभाग्यवती स्त्री नदीपर जाकर पानीमेंसे सात किंवा नौ कंकड़ ले आती है, जिन्हें लक्ष्मी मानकर गणेशजीके साथ ही पूजा जाता है और अगले दिन पक्वान्नका भोजन बनाकर ब्राह्मण, सौभाग्यवती महिला और कुमारिकाको आमन्त्रित करके खिलाया जाता है। अगले दिन भगवान् गणेशके साथ-साथ कंकड़रूपी लक्ष्मीका विधिवत् पूजन-अर्चनके बाद घरका मुखिया सोला (सिल्क)-वस्त्र धारण करके हाथमें छोटी-सी घण्टी बजाते हुए '**गणपति बप्पा मोरया, पुढच्या वर्षी लवकर या**' (गणेशजी अगले वर्ष जल्दी आइये)-के उद्घोषके साथ गङ्गाजीमें उनका विसर्जन करता है। घाटपर सभीको चनेकी भिगोयी दालमें नमक, मिर्च मिलाकर और 'पञ्चखाद्य' का प्रसाद-वितरण किया जाता है। गणपति-लक्ष्मी-विसर्जनके बाद थालीमें गङ्गाजीका जल और मिट्टी अथवा रेत लाकर घरमें रखी जाती है।

बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भसे लोकमान्य बालगंगाधर टिळक (तिलक)-ने गणपतिके इस उत्सवमें विलक्षण शक्तिका प्रादुर्भाव देखा। उन्होंने भगवान् गणेशके इस उत्सवको सार्वजनिक महानता प्रदान की और इसके माध्यमसे राष्ट्रिय भावनाओंको उजागर किया।

टिळक महाराजके आह्वानपर गणपति-उत्सव सप्ताहपर्यन्त

जागो नहीं है वक्त सोनेका' एक अलग ही समाँ बाँधते गणेशजीकी प्रतिष्ठाहेतु उन्हें लाने अथवा महोत्सवसमाप्ति उनके विसर्जन-जुलूसपर शोभायात्राओंके मार्गमें भी उमड़ पड़ती थी। इन शोभायात्राओंके दौरान बच्चो गोफनृत्य जिसमें पद्य गाते हुए गोफके आठ पट्टोंको गूँथ रस्सीनुमा बनाना और उसी तरह विपरीत रूपमें चल उन्हें पुनः खोल देना अपनेमें एक आकर्षक कार्यक्रम हो है। यह परम्परा अभीतक कायम है।

७-अनन्तचतुर्दशी—अनन्तचतुर्दशीको भगव अनन्तकी पूजा होती है। बहुत पहले गणपति-उत्स अनन्तचतुर्दशीतक चलता था, पर अब यह साप्ताहिक गया है।

८-नवरात्र—नवरात्र-उत्सव भी महाराष्ट्रिय समुदाय नौ दिनोंतक मनाया जाता है जो आश्विन शुक्ल प्रतिपदा नवमीतक रहता है। इसमें माँ शारदा या महालक्ष्मी पूजन-शृङ्गारका विधान रहता है।

नवरात्रका एक विशिष्ट महाराष्ट्रिय त्योहार है- महालक्ष्मी। ये महालक्ष्मी मुखौटेस्वरूप होती हैं। इन्हें गग फूँकनेवाली महालक्ष्मी और मराठीमें 'घागरी फुंकण्या महालक्ष्मी' कहते हैं। मुखौटेवाली महालक्ष्मीका उत्स घरमें पारिवारिक कुलधर्म या कुलाचारके रूपमें मना जाता है। दो पीतलकी गगरियाँ एक-पर-एक रखकर उन ऊपर महालक्ष्मीका मुखौटा रखा जाता है और पीतलवा भागको एक साड़ीसे इस तरह सजाया जाता है कि सामने देखनेवालेको एक दिव्यस्वरूपा महालक्ष्मीकी मूर्ति दिखे यह मुखौटा चावलके आटेको उबालकर उसका गोल बनाकर उससे बनाया जाता है। इस पूजा-विधानके अतिरिक्त उस दिन मध्याह्नकालमें अतिथि, सौभाग्यवती स्त्रियों और कुमारिकाओंको विशेषरूपसे आमन्त्रित किया जाता है और उन्हें जो भोजन परोसा जाता है उसमें विभिन्न

चक्करमें नाचती हैं।

९-दशहरा—दशहरा महाराष्ट्रिय घरोंमें विविध व्यञ्जन एवं पक्वान्नके भोजनके साथ मनाया जाता है।

१०-शरत्पूर्णिमा—शरत्पूर्णिमाको महाराष्ट्रिय घरोंमें कोजागरीपूर्णिमाके रूपमें मनाया जाता है, जिस दिन परिवारकी पहली संतानका पूजन तथा आरती करके नववस्त्र धारण कराये जाते हैं और फिर मलाईदार दूध, रेवड़ी, गरी तथा सिंघाड़ेके टुकड़े दिये जाते हैं। भोज्य-पदार्थकी यह सामग्री सभीको दी जाती है। कोजागरीपूर्णिमाके दिन छोटे बड़ोंको 'सोन' (शमीपत्र) देकर चरणस्पर्श करते हैं एवं बड़े छोटोंको उपहारस्वरूप द्रव्य अथवा वस्त्र प्रदान करते हैं।

११-विठोबादर्शन—सम्पूर्ण कार्तिकमासमें विट्ठलमन्दिर-में रोज सुबह भगवान् विठोबाके अद्भुत शृङ्गारकी आरती होती है। बड़े भोरमें संगीतकी धुनोंके बीच भगवान्के मन्दिरके कपाट खुलते हैं और पहले 'काकड़्याची आरती' होती है। यह सामान्य रूईसे तैयार बत्तियोंकी आरती होती है। फिर कपाट बंद हो जाते हैं तबतक संगीत चलता रहता है। जब परदा खुलता है तो भगवान् विठोबा मक्खनसे सराबोर रहते हैं, तब उनकी 'लोण्याची आरती' वाद्य-गानके साथ सम्पन्न होती है। फिर मन्दिरके मुख्य द्वारका परदा गिर जाता है और पाँच मिनट बाद जब परदा उठता है, भगवान् विठोबाकी मूर्ति दहीसे सजी हुई रहती है। इसे 'दह्याची आरती' कहते हैं। बादमें सभीको श्रीखण्ड (दहीसे बना मिष्टान्न)-का प्रसाद दिया जाता है।

१२-कुछ अन्य महोत्सव—तुलसीविवाह, मकर-संक्रान्ति, महाशिवरात्रि, होली, रङ्गपञ्चमी आदि त्योहार लगभग उसी ढंगसे मनाये जाते हैं, जैसे सर्वत्र मनाये जाते हैं। केवल सत्यनारायणपूजामें यह विभिन्नता होती है कि इस पूजामें नैवेद्यके रूपमें पंजीरी न होकर केवल हलवेको केलेके टुकड़ोंसे सजाकर नैवेद्य दिखाया जाता है।

१३-स्त्रियोंके विशिष्ट त्योहार—महाराष्ट्रिय परिवारों-में विशेषरूपसे स्त्रियोंके तीन त्योहार बड़े ही रोचक हैं—१-हळदी-कुंकुम (हल्दी-रोरी), २-सोलह सोमवार और ३-बोडन।

'हल्दी-रोरी' का कार्यक्रम चैत्र शुक्ल तृतीयासे वैशाख शुक्ल तृतीया (अर्थात् अक्षयतृतीया)-तक चलता है। इस दौरान प्रत्येक महाराष्ट्रिय सौभाग्यवती स्त्री अपने यहाँ किसी-न-किसी दिन हल्दी-रोरीका कार्यक्रम रखती है और प्रायः सभी मराठी घरोंकी सौभाग्यवती स्त्रियोंको बुलाती है। अपनी क्षमताके अनुसार स्त्रियोंको हल्दी-रोरी लगाकर भेंटमें कोई चीज दी जाती है, रस पिलाया जाता है और प्रत्येक स्त्रीको अपने पतिका नाम लेनेके लिये मजबूर किया जाता है। यह नाम भी सीधे-सीधे नहीं लेना पड़ता। उसे दोहेमें पिरोकर पूर्ण तुकबंदीके साथ लेना पड़ता है। जो जितना अच्छा दोहा पढ़कर पतिदेवका नाम लेती है, उसे सराहा जाता है। इस दोहेको मराठी भाषामें 'उखाणा' कहा जाता है। जैसे—

'सोमवारी महादेवाला बेलाचे पान एकादशीला विष्णुला तुळशी।
अमुकाचे नाव (नाम) घेते हळदी-कुंकूचा दिवशी॥'

यह उखाणेका कार्यक्रम शादीके दिन भी होता है। विवाहके बाद वरपक्षको जो भोज दिया जाता है, उसमें वरके सामने सजी हुई चाँदीकी थालीके बगलमें एक पीढ़ा और लगाया जाता है, जिसपर नववधू आकर बैठती है और उसी तरह उखाणेके साथ अपने पतिदेवका नाम उच्चारण करके उन्हें थालीमेंसे कोई मिष्टान्न खिलाती है। इसके बाद पतिदेवको भी पत्नीको मिष्टान्न खिलाते हुए उखाणा कहना होता है, जिसमें पत्नीका नाम सम्मिलित होता है। जैसे—

'देवा पुढे ठेवलेल्या उदबत्तीचा वास।
अमुकला मी देते गोड़ाचा घास॥'

दूसरा त्योहार है—'सोलह सोमवारका व्रत'। यह काम्यव्रत है। इस व्रतमें घरकी सौभाग्यवती स्त्री किंवा पुरुष सोलह सोमवार शक्यतया निर्जल उपवास करते हैं। सायंकाल सूर्यास्तके पूर्व भोजन करते हैं और सोलहवें सोमवारको सोलह दम्पति एवं इतनी ही कुमारिकाओंको सायंकाल भोजन कराकर अपने सोळा (सोलह) सोमवार-व्रतका उद्यापन सम्पन्न करती हैं। इस व्रतमें प्रत्येक सोमवारके दिन चूरमेके तीन लड्डुओंका नैवेद्य होता है। जिसमेंसे एक गायको खिलाया जाता है, दूसरा ब्राह्मणको एवं तीसरा स्वयं ग्रहण किया जाता है। इस चूरमेके आटेको बड़ी ही पवित्रतासे तैयार किया जाता है। गेहूँ अपने हाथसे पीसे जाते हैं।

आषाढ़ शुक्लपक्ष—रथयात्रा आयोजित होती है। इसी मासमें व्यासपूर्णिमा भी मनायी जाती है।

श्रावण—पूरे महीने भगवान् शंकरकी पूजा-आराधना होती है। प्रत्येक सोमवारको उपवास और विशेष शिवपूजन होता है। कुछ लोग रुद्राभिषेक भी कराते हैं तथा पूर्णिमाको श्रावणी और रक्षाबन्धन विशेष उत्साहसे मनाया जाता है।

भाद्रपद—भाद्रपद कृष्ण पञ्चमीको नागरोंकी नागपञ्चमी होती है। भाद्रपद कृष्ण अष्टमी (गुजरातियोंकी श्रावण कृष्ण अष्टमी)-को प्रत्येक घरमें अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार श्रीकृष्णपूजन, जन्मोत्सव और झूलाका आयोजन होता है। व्रत तो प्रायः प्रत्येक घरमें होता है। भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशीको अनन्तचतुर्दशी मनाते हैं।

आश्विन कृष्णपक्ष—यह पूरा पक्ष पितृपक्षके नामसे प्रसिद्ध है और आस्तिकलोग पंद्रह दिनतक प्रत्येक तिथिको तिथिश्राद्ध करते हैं। सामान्यजन भी अपने पिताकी निधन-तिथिको, मातृनवमीको तथा सर्वपैत्री अमावास्याको पार्वणश्राद्ध करते हैं। इसी पक्षमें अष्टमी तिथिको लक्ष्मीपूजन होता है।

आश्विन शुक्लपक्ष—शारदीय नवरात्रमें घटस्थापन, श्रीदुर्गासप्तशतीपाठ, विशेष अनुष्ठान, नवदुर्गाका दर्शन आदि होता है। प्रतिपदाको मातामहश्राद्ध होता है। विजयादशमीको शमीवृक्षका पूजन एवं रामलीलाका आयोजन होता है।

नवरात्रमें गरबा लोकनृत्यका आयोजन होता है, जो गुजरातीसमाजकी अपनी विशेषता है। प्रतिपदाके दिन सुन्दर ढंगसे सजाये गये घटमें देवीस्वरूप दीपका प्रज्वलन किया जाता है। प्रतिदिन सायंकाल उसी घटके चारों ओर गरबा लोकनृत्यका आयोजन होता है, जिसमें परिवारके हर उम्र एवं वर्गका व्यक्ति भाग लेता है। देवी माताकी स्तुतिके गीत गाकर एवं डाँडिया नृत्य करके पूरे नौ दिन व्रत रखा जाता है। घटपर जवारा बोते हैं और उनकी कोंपलें ही प्रसादरूपमें वितरित होती हैं।

शारदीयपूर्णिमाको खीर बनाकर चाँदनीमें रखनेकी प्रथा है। इस दिन भी गरबाका आयोजन होता है। धवलवस्त्र धारणकर पुरुष एवं महिलाएँ श्रीकृष्णकी प्रतिमाके चारों ओर गरबा लोकनृत्य करते हैं।

कार्तिकमास—कृष्णपक्षकी चतुर्थीको करवाचौथ, बोणचौथमें बैलकी पूजा होती है तथा कृष्णपक्षकी अष्टमीको अहोईव्रत होता है। कृष्णपक्षकी अमावास्या (दीपावली)-में थालीमें चित्र बनाकर लक्ष्मीपूजन होता है। व्यवसायीवर्ग बही-खातेकी पूजा करता है। शुक्लपक्षकी द्वितीयाको भ्रातृद्वितीया या भैयादूज तथा गोपाष्टमी (अष्टमी)-को गोपूजन होता है।

मकर-संक्रान्तिके दिन सौभाग्यवती स्त्रियाँ एक-दूसरेको तेरह चीजोंकी थाली भेंट करती हैं।

[ज्ञानप्रवाहकी संगोष्ठीसे साभार]

दक्षिण भारतीय पर्व तथा मेले

दिन घरके बाहरी द्वारके चौखटसे शुरू कर पूजास्थलतक बालकृष्णके नन्हे पैरोंको अङ्कित करते हैं। ऐसा लगता है जैसे कृष्ण चलकर आये हों। अगल-बगल कोलम्की मनोहारी डिजाइनोंको भी गीले चावलके आटेसे स्वरूप प्रदान करते हैं। कई घरोंमें बालकृष्णके गीत-भजन आयोजित किये जाते हैं। रात्रिपूजन भी होता है।

इस दिन विविध प्रकारके नमकीन एवं मीठे व्यञ्जन बनाये जाते हैं जो नटखट बालकृष्णके खेलनेके विविध खिलौनोंके प्रतीक हैं। इनमें 'मुर्कू' एक नमकीन व्यञ्जन है जो चक्रकी भाँति होता है। इसे चावलके आटेसे मरोड़ते हुए जलेबीकी भाँति घुमाते जाते हैं, जिसे तेलमें तलकर कुरमुरा निकालते हैं। 'मुर्कू' शब्दका अर्थ ही है मरोड़ना। दूसरा व्यञ्जन 'सीड़े' कहा जाता है जो कञ्चे (गोली)-की तरह गोल होता है। ये नमकीन तथा मीठे दोनों ही बनाये जाते हैं। गुड़से बनी मीठी गोलीको 'वेल्ल सीड़े' कहा जाता है। एक नमकीन व्यञ्जन गोल, चपटा एवं कड़ा बनता है जिसे 'तट्टै' कहते हैं। अन्य कई व्यञ्जन भी नमकीन सेवकी नाईं 'तेंगोयल' के नामसे घर-घरमें काफी मात्रामें बनाये जाते हैं, जिन्हें जन्माष्टमीके बाद भी कई दिनोंतक लोगोंको खाते हुए देखा जा सकता है।

नवरात्र—भारतके प्रमुख पर्वोंमें दशहराका विशेष महत्त्व है। दशहरेके अन्तकी दशमी विजयादशमी कहलाती है। दक्षिण भारतमें यह पर्व नवरात्रके नामसे जाना जाता है। यहाँ इन दिनों ललितादेवी, राजराजेश्वरीदेवीके पूजनकी प्रथा है। रत्नसिंहासनपर विराजमान, अपने चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, गन्ने एवं पुष्पसे शोभायमान देवी राजराजेश्वरी समृद्धि एवं सम्पन्नताकी प्रतीक हैं।

नवरात्र त्योहारपर सीढ़ियाँ लगाकर खिलौने सजानेकी प्रथा अपना अलग ही प्रभाव छोड़ती है। इसे 'कोलू' कहते हैं। कोलूका आशय खिलौनोंसे है। अपनी इच्छा, शक्ति एवं भक्तिके अनुसार लोग सीढ़ियाँ बनाते हैं। सीढ़ियाँ पाँच, सात अथवा नौ—कितनी भी हो सकती हैं, पर विषम संख्यामें बनी सीढ़ियाँ शुभ मानी जाती हैं। पहले लोग सीढ़ियोंके निर्माणमें टिनके कनस्तर, लकड़ी अथवा लोहेकी सन्दूकें, पटरे, ईंटें आदि उपलब्ध-साधनोंका उपयोग करते थे। आजकल लकड़ी तथा लोहेकी बनी सीढ़ियाँ बाजारमें उपलब्ध रहती हैं। इन सीढ़ियोंपर अपने इच्छानुरूप सफेद अथवा रंगीन कपड़े बिछाकर इन्हें सजाते हैं। कहीं-कहीं रंग-बिरंगे छींटदार कागजका भी प्रयोग देखा जाता है।

प्रतिपदाके दिन सबसे ऊपरी सीढ़ीमें चावल-भरे कुम्भ रखे जाते हैं, जिसमें आमके पत्तोंके गुच्छोंके मध्य एक नारियल रखकर देवीका आह्वान किया जाता है। कुछ लोग कुम्भको ही देवीका स्वरूप प्रदान कर रंग-बिरंगे वस्त्रोंसे अलंकृत करते हैं। क्रमशः अन्य सीढ़ियोंको धार्मिक खिलौने एवं मूर्तियोंसे सजाते हैं। कुछ घरोंमें तो प्राचीन समयके पीढ़ियोंसे चले आ रहे खिलौने भी दिखलायी पड़ते हैं, जिन्हें घरकी बुजुर्ग महिलाएँ बड़े गर्वके साथ आनेवाली पीढ़ियोंको दिखलाती हैं और गौरवान्वित होती हैं।

यह पर्व विशेषकर सुहागिनों एवं कन्याओंका है। घरकी स्त्रियाँ ही अपनी-अपनी सौन्दर्यात्मक अनुभूतिके अनुरूप सीढ़ियों एवं दीवारोंको सजाकर अलंकृत करती हैं। घरके पुरुष इस अलंकरणमें उनकी सहायता करते हैं। सजायी गयी सीढ़ियोंके नीचे विविध प्रकारकी कोलम् (अल्पना) घरकी नारियाँ उकेरती हैं। नित्य नौ दिनोंतक विविध प्रकारकी रंगोली काढ़ती हैं। साथ ही सुगन्धित फूल-मालाओंसे देवीका शृङ्गार कर दीप प्रज्वलित करती हैं।

प्रातः ब्राह्ममुहूर्तमें सुहागिनें स्नानकर देवीसहस्रनामपारायण, अर्चन-पूजनकर मीठे, अन्न एवं बड़ा (बड़े)-का भोग लगाती हैं। भीगे एवं पके चनेको भी भोगहेतु उत्तम माना गया है। यह कार्य वे नित्य नौ दिनोंतक करती हैं। इतना ही नहीं, कन्याएँ एवं स्त्रियाँ नये-नये रंग-बिरंगे परिधान पहनकर घर-घर जाकर दूसरी सुहागिनों एवं कन्याओंको कोलूकी सजावट देखनेहेतु आमन्त्रित करते हुए कहती हैं—'**एंगातिलै गोलू वच्चिरुक्कू वांग्गो**।' यानी मेरे घर खिलौनोंकी सजावट हुई है, अवश्य देखने आइये। निरन्तर नौ दिनोंतक कन्याएँ एवं सुहागिनें इन मनोरम झाँकियोंका अवलोकन करने आती रहती हैं। इन कन्याओंसे तरह-तरहके गीत, भजन आदि गानेको कहा जाता है। इन्हें फूल-मालाएँ, ताम्बूल, विविध प्रकारके व्यञ्जन आदि दिये जाते हैं। नौ दिन, नौ प्रकारके स्वादिष्ट व्यञ्जन लोगोंको देनेहेतु प्रायः हर घरमें बनते हैं। यही एक ऐसा अवसर होता है,

तमिलनाडुके उल्लासभरे उत्सव

(श्रीमती मृदुलाजी हालन)

भारत एक विशाल भूखण्ड है, जिसमें प्रकृतिके सभी रूप देखनेमें आते हैं। कहीं हिमाच्छादित गगनचुम्बी पर्वतशृङ्खलाएँ हैं तो कहीं हरी-भरी लहलहाती समतल भूमि। कहीं वायुवेगसे भागती नदियाँ हैं तो कहीं धीर, गम्भीर, गहरे सागर। एक कुशल नटीके समान प्रकृतिनटी इस भारत-भूपर पग-पग रूप बदलती रहती है। भारतके दक्षिणमें तमिलनाडुतक पहुँचते-पहुँचते इसका रूप और भी मनोहारी हो जाता है। नारियल, केला, इमली और चावल इस प्रान्तके विशिष्ट उत्पादन हैं। सम्भवतः इसी कारण यहाँके प्रत्येक त्योहारमें इन्हीं खाद्यान्नोंका बाहुल्य होता है। प्राचीनतम द्रविड़-सभ्यताको इसी तमिलनाडुने आजतक जीवन्त बनाये रखा है। यहाँकी संस्कृति यहाँके त्योहारोंके रूपमें सुरक्षित है। इन त्योहारोंको तनिक नजदीकसे देखें तो समझना सरल हो जायगा।

नववर्ष—इस त्योहारके साथ तमिलनाडुका वर्ष प्रारम्भ होता है। अंग्रेजीके अप्रैल माहकी १४ तारीखको इस प्रान्तके चैत्रकी प्रथम तिथि होती है। अतः इसी दिनका नववर्षके प्रथम दिनके रूपमें यहाँ आयोजन होता है। इस दिन प्रातःकाल स्नान करके सब लोग पूजा-पाठ करते हैं और दहीमें नमक एवं हरी मिर्च डालकर उससे बनी लस्सीका भोग भगवान्‌को लगाया जाता है। वर्षा-ऋतुमें इस प्रान्तका प्रसिद्ध त्योहार 'वरलक्ष्मी वरदम्' मनाया जाता है। अगस्त माहमें मात्र शुक्रवारको ही इसे मनाते हैं, किसी अन्य दिन नहीं। सौभाग्यशालिनी स्त्रियोंके इस त्योहारका आयोजन भी विलक्षण है। त्योहारकी पूर्व सन्ध्यावेलामें लक्ष्मी-प्रतिमाको मंजूषामेंसे निकालकर उसको धो-पोंछकर सुहागिन स्त्रियाँ उसका शृङ्गार करती हैं। रंग-रंगसे रूपसज्जा कर, नखसे शिखतक प्रतिमाका शृङ्गार होता है। यह अलंकृत प्रतिमा घरके प्रवेशकक्षमें रख दी जाती है। इसके सम्मुख दीप जलाकर लक्ष्मीके प्रति आभार प्रकट किया जाता है।

अगले दिन शुक्रवारको प्रातः सुहागिन स्त्रियाँ हल्दी, कुमकुम मलकर स्नान करके सुन्दर शृङ्गार करती हैं और लक्ष्मीप्रतिमाको प्रवेशकक्षसे उठाकर भीतर पूजागृहमें ले जाती हैं। दीप जलाकर उसकी पूजा करती हैं। धागेको हल्दीमें रँगकर स्त्रियाँ कलाईपर बाँधती हैं। इस दिन स्त्रियाँ उपवास न करके विशिष्ट प्रकारका भोजन करती हैं। अन्तमें लक्ष्मीकी आरती होती है।

'वरलक्ष्मी वरदम्' की तृतीय कड़ी है—तीसरे दिनका अनुष्ठान। उस दिन प्रातःस्नान, सन्ध्या करके स्त्रियाँ खीर बनाती हैं। फिर लक्ष्मीकी पूजा करके खीरका भोग लगाती हैं। लक्ष्मी उनके घरोंमें सदा निवास करें, इस दिन यही वरदान ये स्त्रियाँ माँगती हैं। अन्तमें प्रतिमाको फिर उसी मंजूषामें बंद करके रख दिया जाता है। मंजूषाका पट बंद होते ही इस त्योहारका आयोजन भी समाप्त हो जाता है।

आड़ी पैरुक्कु—अगस्त महीनेमें ही तमिलनाडुका एक और त्योहार आता है—'आड़ी पैरुक्कु'। आड़ीमासकी अठारहवीं तिथिको यह मनाया जाता है। यह त्योहार विशेषरूपसे जलके देवताको प्रसन्न करनेके लिये होता है। प्राचीन समयमें कृषिके लिये वर्षापर ही निर्भर रहना होता था। आड़ीमासमें खेतोंमें पौधे निकल आते हैं और उन्हें जलकी आवश्यकता होती है। अतः परिवारके सब सदस्य मिलकर जलदेवताकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्न करते थे। उसी परम्परामें आज भी यह त्योहार मनाया जाता है। इस दिन परिवारके सब सदस्य मित्रोंसहित किसी भी नदीके तटपर जाते हैं और जलमें स्नान करके जलदेवताकी स्तुति करते हैं। फिर सारा दिन नदी किनारे ही आमोद-प्रमोदमें बिता देते हैं।

श्रीजयन्ती—'गोकुलाष्टमी' या 'श्रीजयन्ती' श्रीकृष्ण-जन्मकी खुशीका त्योहार है। समूचे तमिलनाडुमें यह त्योहार धूमधामसे मनाया जाता है। कुछ लोग अष्टमीके दिन इसे मनाते हैं और कुछ नवमीके दिन विशेषकर आयंगर। इस दिन स्त्रियाँ उपवास रखती हैं तथा श्रीकृष्णके प्रिय मिष्टान्न बनाती हैं। मध्यरात्रिको श्रीकृष्णजन्मके समय इन चीजोंसे भगवान्‌को भोग लगानेके बाद स्त्रियाँ उपवास खोलती हैं।

विनायकचतुर्थी—तमिलनाडुमें गणेशपूजा बहुत प्रसिद्ध

कर्नाटकके पर्वोत्सव

(श्रीप्रेमजी भारद्वाज)

प्रकृतिका सदाबहारी आँचल ओढ़े कर्नाटककी वीरभूमि इतिहास और संस्कृतिके कई उज्ज्वल पर्व अपने अङ्कमें सँजोये हुए है।

कर्नाटकमें लगभग सभी त्योहारोंकी शुरुआत पूजासे होती है। कुछ लोग मन्दिरोंमें जाकर पूजा करते हैं और कुछ अपने घरोंपर। कर्नाटकमें नये वर्षका त्योहार युगादि कहलाता है। यह चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको होता है। महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेशमें भी यही दिन नये सालका पहला दिन होता है। कर्नाटकमें इस दिन सबसे पहले लोग तैलस्नान (तेल-मालिशके साथ गरम पानीसे स्नान) करते हैं। इस तिथिसे कुछ दिन पहले घरोंमें सफेदी करायी जाती है। गाँवोंमें लोग अपने मवेशियोंको भी स्नान कराते हैं और गाय-बैलोंके सींगोंको रँगते हैं।

युगादिके दिन बैलकी भी स्तुति की जाती है। युग-युगान्तरसे बैल कृषिका एक अभिन्न अङ्ग रहा है और किसानके लिये उसका विशेष महत्त्व है।

ईसाइयोंका एक त्योहार है—संत फिलोमेनाकी दावत। संत फिलोमेनाकी बहुत सुन्दर ढंगसे सजायी हुई प्रतिमाका जुलूस मैसूर नगरमें निकाला जाता है। बादमें संत फिलोमेनाके गिरजाघरमें प्रवचन होता है। मैसूरके रोमन कैथोलिक नागरिक इस दिनको बड़े उत्साहसे मनाते हैं। यह त्योहार ११ अगस्तको मनाया जाता है।

दशहरा—मैसूरका दशहरा बहुत प्रसिद्ध है। सारे भारतमें जैसा दशहरा कुल्लू और कर्नाटकमें मनाया जाता है, वैसा और कहीं नहीं मनाया जाता। कर्नाटकके दशहरेकी विशेषता यह रही है कि उस दिन एक बहुत शानदार जुलूस निकाला जाता था। जिसमें हाथी, घोड़े, ऊँट, दरबारी और हजारोंकी संख्यामें जनता शामिल होती थी। दरबारी लोग एक विशेष पोशाक पहनकर ही इसमें शामिल हो सकते थे। यह पोशाक (सफेद धोती, काला कोट, रेशमका पट्टा और पगड़ी) थोड़े-से किरायेपर भी मिल जाती थी। पहले मैसूर महाराजाकी हाथीपर सवारी निकलती थी और साथमें होता था अपार जनसमूह। तरह-तरहकी झाँकियाँ निकलती थीं, जिनमें रोमाञ्चकारी इतिहास, मैसूरकी प्रगति और कलात्मक सौन्दर्यकी अद्भुत कृतियाँ होती थीं।

कर्नाटकमें दशहरेके अवसरपर रावण जलानेकी प्रथा नहीं है। केवल विजयोल्लासके रूपमें विजयादशमीको मनाया जाता है। दशहरेसे दो दिन पहले दुर्गापूजा और एक दिन पहले शस्त्रोंकी पूजा होती है।

गौरीपूजा—कर्नाटकके दो प्रसिद्ध त्योहार हैं—गौरीपूजा और गणेशचतुर्थी। गौरीका त्योहार पहले आता है और गणेशका बादमें। कहते हैं कि पार्वती (दूसरा नाम गौरी) एक बार टहलते-टहलते पृथ्वीपर आ निकलीं। शिवको जब पार्वती नहीं दिखीं तब उन्होंने पार्वतीको बुलानेहेतु अपने पुत्र गणेशको भेजा। जब पार्वती पृथ्वीपर आयी थीं तब भी उत्सव मनाया गया और जब गणेश आये तब भी उत्सव हुआ।

गौरीका त्योहार सुहागिनें (सुमङ्गला स्त्रियाँ) मनाती हैं। वे सज-धजकर, कुमकुम लगाकर पूजा करती हैं। फिर उनकी सामूहिक पार्टियाँ होती हैं। यह त्योहार परिवारके कल्याणके लिये मनाया जाता है।

गौरीका त्योहार कुछ-कुछ उत्तर भारतके करवाचौथकी तरह है। खास फर्क यह है कि करवाचौथको स्त्रियाँ व्रत रखती हैं, लेकिन गौरीके दिन व्रत नहीं होता है, बच्चोंको उपहार भी मिलते हैं। एक और फर्क यह है कि करवाचौथ पतिकी सुख-समृद्धिके लिये रखा जाता है जबकि गौरी-उत्सव पूरे परिवारके कल्याणके लिये मनाया जाता है।

एक पर्व है 'महादेश्वर बेट्टा जात्री' कन्नड़में बेट्टाका अर्थ है—पहाड़ी। एक पहाड़ीपर महादेवका मन्दिर है। दूर-दूरसे लिंगायत और अन्य शिवभक्त भगवान्‌का स्तुति-गान तथा पैदल यात्रा करते हुए एक विशेष दिन यहाँ पहुँचते हैं और फिर पूजा करते हैं। इस अवसरपर मवेशियोंका मेला लगता है।

हेमाद्री अम्मा जात्री—यह भी एक स्थानीय त्योहार है। शिवकी पत्नीका नाम हेमा है। उनके दर्शनार्थ यात्री आते हैं और पूजा करते हैं।

देवी चामुण्डेश्वरीकी रथयात्रा—यह कर्नाटकका लोकप्रिय उत्सव है। देवी चामुण्डेश्वरी भूतपूर्व मैसूर राजघरानेकी अधिष्ठात्री देवी हैं। उन्हें चमत्कारकी देवी माना गया है। हर काममें उनका आशीर्वाद लेनेकी प्रथा रही है। सालमें एक बार यहाँ मेला भी लगता है।

करघा—कर्नाटकके व्यापारियोंका त्योहार है, जिन्हें वे तिगला कहते हैं। इस अवसरकी एक बहुत रोचक घटना यह है कि एक व्यक्ति सिरपर एकके ऊपर एक तीन मटकियाँ रखकर हाथमें नंगी तलवार लेकर शहरभरमें कूद-कूदकर वापस धर्मराजके मन्दिरमें पहुँचता है। लोगोंका विश्वास है कि अगर उसकी कोई मटकी गिर जाय तो उसका सिर कट जायगा।

कर्नाटकमें जैन मतानुयायी काफी संख्यामें हैं। तीर्थंकरकी मूर्तियोंवाले जैनमन्दिर भी यहीं हैं। लेकिन जैनियोंका सबसे बड़ा त्योहार है—महामस्तकाभिषेक। यह दिन जैनियोंके लिये बहुत महत्त्वपूर्ण है। हर बारह सालमें एक बार जैनसंत गोमटेश्वरकी ५७ फीट ऊँची ग्रेनाइटसे बनी भव्य मूर्तिको हजारों-लाखों अनुयायी दूध-घी आदिसे स्नान कराते हैं।

कहते हैं कि गोमटेश्वर राजकुमार थे। प्रबल युद्धमें अपने भाईको पराजित करनेके बाद वे राज्यके एकाधिकारी बने। लेकिन उन्हें आभास हुआ कि संसार असार है और यहाँका सुख, वैभव और शक्ति कुछ भी शाश्वत नहीं—नश्वर हैं। उन्होंने राजपाट अपने भाईको सौंपकर संन्यार लिया। भाईने कृतज्ञतापूर्वक उनकी स्मृतिमें विशाल बनवायी। यह मूर्ति एक ही शिलासे बनी है। यहाँ एक प था, उसीको काट-काटकर बीचमें सुन्दर साकार मूर्ति ब गयी। यहीं हर बारहवें साल समारोह होता है। वैसे गोमट नामक मेला यहाँ हर साल लगता है।

खेड्डा—समयके साथ त्योहारोंके रूप-रंग बद हैं। हर दूसरे-तीसरे साल कर्नाटकमें एक समारोह होत जिसे 'खेड्डा ऑपरेशन' कहते हैं। यह पालतू हाथियं मददसे जंगली हाथियोंको पकड़नेका खेल है।

पालतू हाथियोंपर सवार महावत जंगलकी ओर ब हैं और जंगली हाथियोंको एक बड़ी खाईमें धकेल देते फिर तमाम कैदी हाथियोंमेंसे अच्छे होनहार हाथियोंको लिया जाता है और बाकीको फिर खुले जंगलमें भेज ि जाता है।

केरलके प्रमुख पर्वोत्सव

[ओणमकी धूम]

(श्रीएम्० राधाकृष्णन्जी)

केरलके हर परिवारमें लोगोंको जितनी प्रतीक्षा अपने नये वर्षकी होती है, उतनी शायद ही किसी और त्योहारकी होती हो। 'विषु' उनका नये सालका त्योहार है। विषुकी सुबह बच्चोंके कानमें 'कणी....' 'कणी....' 'कणी....' शब्द ऐसे गुँजाया जाता है कि बच्चा नींद छोड़कर उठ खड़ा हो। मलयालममें 'कणी' शब्दका अर्थ है—फल। इसके बाद बच्चोंको फलोंकी दावत दी जाती है। नववर्षकी यह कितनी सुखद शुरुआत है। विषुके इस शुभ दिन केरलके हर घरमें संगीत-लहरियाँ गूँजती हैं। लोग भक्तिसंगीतमें लीन होकर नववर्षका स्वागत करते हैं। एक तरहसे किसानोंके लिये यह पर्व एक अनोखा आशापुञ्ज है। इस दिन वे सुखी और समृद्ध जीवनकी कामना करते हैं।

विषुके पहले उत्तरी केरलके मन्दिरोंमें 'थैट्टम'का आयोजन होता है। थैट्टम एक तरहसे पुरुषोंद्वारा अपने इष्टदेवको रिझानेकी प्रार्थना है। इस आराधनामें दो विभिन्न जातियोंके लोग देवी और देवताका रूप धारण कर रं बिरंगे वस्त्र पहन मन्दिरके समक्ष नृत्य करते हैं। उ आकर्षक रंगोंसे रँगे मुखौटेकी छवि तथा नृत्यकी ल साथ 'छैंदा', ढोलोंकी तेज आवाज एक निराला समाँ ब देती है।

आम तौरपर 'थीरानृत्य'की प्रथा केरलके यो परिवारोंके प्राचीन मन्दिरोंसे जुड़ी हुई है। ये मन्दिर द्रवि परम्पराके अनुगत हैं। इन्हीं बड़े मन्दिरोंमें आर्य देवी-दे विराजते हैं। हर वर्ष अलग-अलग तरहके पर्व मनाये उ हैं, इनमें आरात, ताला प्पोली, पूरम्, वेला या उत्सव अधिक प्रसिद्ध हैं। इन अवसरोंपर सभी धर्मो और वर्गो लोग भारी संख्यामें शरीक होते हैं। इन पर्वोका पारम्परि शास्त्रीय नृत्यों और संगीतसे सीधा सम्बन्ध है। य केरलशैलीके कृष्णानाट्टम्, कथकली, तुल्लल और मोहिनीअ नृत्य तथा नाटिकाएँ अत्यधिक लोकप्रिय हैं।

पूरम्—केरलसे बाहर त्रिचूरका मन्दिर हाथियोंकी लुभावनी यात्रा, जगमगाती आतिशबाजी और मधुर संगीत-लहरियोंके लिये प्रसिद्ध है। पूरम्के मैदानमें इस उत्सवके समापनपर दो-दो पंक्तियोंमें पंद्रह-पंद्रह हाथियोंकी कतारें, मलयाली ढोल, तूतियों और झाँझोंकी करतालकी लयपर जब मस्त होकर झूमती हुई चलती हैं तो दर्शक उन्हें मुग्ध-सा देखता रह जाता है।

हाथियोंके विशाल मस्तकपर स्वर्णिम झालर और पीठपर सवार महावतोंके हाथमें रंग-बिरंगे शोभापटल तथा सतरंगी मोरपंख अनायास ही भारी भीड़का ध्यान अपनी ओर खींच लेते हैं। श्रद्धालुओंकी इस भीड़में ढोल-वादकोंकी भारी गुञ्जार बड़ी रोमाञ्चपूर्ण होती है।

त्रिचूरके पास ही 'अराट्प्रझा' के एक मन्दिरमें भी पूरम्का त्योहार हाथियोंकी शोभायात्राके लिये प्रसिद्ध है।

केरलका दूसरा सर्वाधिक लोकप्रिय मेला सबरी पर्वतके देव अय्यप्पाका मेला है। यह मेला देशभरके विभिन्न क्षेत्रोंमें पूर्ण आराधनाके साथ मनाया जाता है। इस दौरान भक्तगण काले कपड़े पहनकर और दाढ़ी लगाकर नाचते-गाते हैं। उत्तरी केरलमें कोटिअयरमन्दिरमें 'इलानिराट्टम' त्योहारपर तीर्थयात्रियोंकी भीड़ देखते ही बनती है।

केरलकी राजधानी त्रिवेन्द्रम्में पद्मनाभस्वामीका मन्दिर भी तीर्थयात्रियोंका मुख्य आकर्षण है। यहाँ त्रावणकोरके कुलदेवताको तीन मील लम्बे जुलूसकी शक्लमें मन्दिरसे समुद्रतटतक स्नानके लिये ले जाया जाता है, भक्तगण नंगे पाँव उनके साथ चलते हैं।

आम तौरपर केरलके सभी मन्दिरोंमें ऐसे उत्सव वर्षके प्रारम्भमें उस समय मनाये जाते हैं, जब वसन्त और ग्रीष्म-ऋतुका खुशनुमा संगम होता है। तब हरीतिमाकी एक मोहिनी चादर सारे केरलको अपने आँचलमें समेट लेती है और जन-जनका मन एक अनोखी-सी उमङ्ग एक विचित्र-से आकर्षणसे भर उठता है।

ओणम—मईके आते ही काले बादलोंकी छटा और बिजलीकी गरज-चमक समस्त केरलको शीतल जलसे सराबोर कर देती है। मानसूनके इस लुभावने आगमनके साथ ही केरल अपने विश्वविख्यात ओणम मेलेके लिये तैयार हो जाता है। विभिन्न प्रकारके फूलोंसे लदी यहाँकी धरती ओणमका पूर्ण स्वागत करती है। ओणम इस राज्यका सबसे लोकप्रिय और रंगीन उत्सव है।

इस बारेमें धार्मिक परिकल्पना भी है। कहा जाता है कि पुराणोंके विख्यात महाबलि केरलके राजा थे। उनके कालमें सारे राज्यमें दूध-घीकी नदियाँ बहा करती थीं। ऊँच-नीच, धनी-निर्धन, छोटे-बड़े किसी प्रकारका कोई भेदभाव नहीं था। आर्यवर्गके राजा उनकी बढ़ती हुई कीर्तिको सहन नहीं कर सके, इसलिये षड्यन्त्र रचकर उन्हें पदच्युत करानेका यत्न किया गया।

वामन अवतारकी पुराणप्रसिद्ध कथा इसीको सूचित करती है। विष्णुने वामन अवतार लेकर बलिको छला। जनताकी यह धारणा है कि वामन अवतारद्वारा अपनेको पदच्युत किये जाते समय महाबलिने भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की थी कि मैं प्रतिवर्ष अपने राज्य वापस आकर अपनी प्रजाकी सुख-सम्पत्तिका साक्षात्कार करूँ। भगवान्ने स्वीकृति दे दी। अतः तबसे केरलकी जनता अपने प्रिय राजाके स्वागत-सत्कारके लिये आपसमें होड़ करती रहती है। इन दिनों घर-घरसे गान सुनायी पड़ता है जिसका अर्थ है—

मावेली (महाबलि) जब राज्य करते थे उस समय सभी मनुष्य बराबर थे। कहीं असत्य नहीं था, धोखा नहीं था। कामचोरी नहीं थी। दूसरेके धनका लोभ नहीं था, परस्त्री माँके समान थी और सभी एक-दूसरेसे प्रेम करते थे।

यह हस्तनक्षत्रसे शुरू करके श्रवणनक्षत्रतकका दस दिवसीय त्योहार है। हर घरके आँगनमें महाबलिकी मिट्टीकी त्रिकोणात्मक मूर्ति (जिसको 'तृक्काकारकरै अप्पन' कहते हैं) बनी रहती है। उसके चारों ओर विविध रंगोंके फूलोंके वृत्त रचे जाते हैं। प्रथम दिनमें जितने वृत्त रच जाते हैं, उसके दुगुने-तिगुने तथा अन्तमें दसवें दिन दस गुनेतक वृत्त रचे जाते हैं।

तिरुओणमके दिन प्रातः जल्दी ही स्नानादि कर सब लोग नये-नये कपड़े पहनते हैं। बड़े लोग छोटोंको आणप्पुडवा यानी ओणमके कपड़े प्रदान करते हैं। गाँवके युवक गेंद खेलते हैं। स्त्रियाँ इकट्ठी हो तालियाँ बजाकर गाती हैं। घरोंमें केलेके पकवान (जिसको पल्लनुरनकु कहते

हैं) बनाये जाते हैं। तिरुओणमके पहले ही नयी फसलके अनाजोंसे खलिहान भर जाते हैं। सुख-सम्पत्तिके इस अवसरपर ओणमका त्योहार पूरी खुशीसे मनाया जाता है।

इसी अवसरपर यहाँ सर्पनौका-दौड़ प्रतियोगिताका आयोजन किया जाता है। इसे सर्पनौका-दौड़ इसलिये कहा जाता है कि ये नौकाएँ सर्प-सी होती हैं। इनकी लम्बाई लगभग पचास फीटतक होती है और बीचका भाग बहुत तंग होता है। काली लकड़ीकी बनी ये नौकाएँ पानीपर इस तरह तैरती हैं मानो कोई बहुत बड़ा साँप तैर रहा हो।

त्योहारके अवसरपर लोग अपनी नावको सजाते-सँवारते हैं और उसके बाद उसे निकटवर्ती तटपर स्थित मन्दिरके पास ले जाते हैं। धार्मिक अवसरोंपर नौकाओंपर लाल और पीले रंगकी छतरियाँ तान दी जाती हैं। पूजा-पाठके बाद खेवट नावमें सवार हो जाते हैं। कई-कई बार तो एक-एक नावमें सौ-सौ व्यक्ति सवार रहते है, जिनमेंसे कुछ बैठकर चप्पू चलाते हैं और कुछ खड़े होकर एक स्वर और तालमें ताली बजाकर नौका खेनेवालोंका जोश बढ़ाते हैं। खड़े हुए लोग ताल देकर गीत गाते हैं और चप्पू चलानेवाले उनकी तालकी धुनपर चप्पू चलाते हैं। जैसे-जैसे ताल और धुन तेज होती है, वैसे-वैसे चप्पुओंकी गति भी तेज होती जाती है। विभिन्न ग्रामवासियोंके बीच होड़के साथ-साथ यह धार्मिक पर्व एक प्रतियोगिताका रूप धारण कर लेता है।

केरलमें अन्य क्षेत्रोंकी तरह ईसाइयोंके पुनीत प[र्व] पूर्ण श्रद्धासे मनाये जाते हैं। इनमें गल्लातुर, एदाथु औ[र] सेबस्तियाँकी दावत मशहूर है।

इसी तरह मुसलिमवर्ग भी सोत्साह अपने त[्योहार] मनाते हैं। कई मौकोंपर मुसलिम युवक एकत्र [हो] 'मप्पिल लपाट्ट' नृत्य आयोजित करते हैं। इसमें [भाग] लेनेवाले लोग गोलाकार दायरेमें डंडा नृत्य करते हैं। [यह] नृत्य उत्तर प्रदेशके चट्टा नृत्यके समान है। यहाँके [कई] स्थानीय मेले भी बहुत चर्चित हैं। मामपुरम मस्जिदमें [...] और भीमापुल्लीमें भीमाबीबीकी यादमें आयोजित चन्दना[...] मेलेको देखने दूर-दूरके लोग आते हैं।

शिवरात्रि, होली, दशहरा और दीपावली भी [...] देशके दूसरे भागोंकी तरह मनाये जाते हैं। विजयादश[मी] तख्ती और शक्ति-पूजाका काफी प्रचलन है।

केरलके सीमावर्ती इलाकोंपर तमिल-संस्कृ[ति] छाप स्पष्ट अङ्कित है। यहाँ भी रथोत्सव मनाये जाते [हैं।] दक्षिण केरलमें एक रथगाड़ीपर लगे लम्बे बाँ[स] चोटीपर सवार एक पुरुष गरुडका रूप धारण कर घू[मता] और बल खाता है।

आदिवासी शैलीका यह त्योहार अपने-आपमें अ[...] रोमाञ्चक और साहसिक है। केरलके लोग अपनी संस्कृ[ति] इतने निकट हैं कि सदियोंतक उन्हें इससे कोई विलग [नहीं] कर सकता।
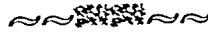
श्रीशीतला मातेश्वरी (बबरेवाली)-का ऐतिहासिक मेला

(श्रीविनोदकुमारजी लखोटिया)

मुजफ्फरनगरसे तीस कि०मी०की दूरीपर पानीपत-खटीमा राष्ट्रिय राजमार्गपर मीराँपुरके निकट बबरेवाली माताके नामसे एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। इस तीर्थस्थलकी महिमाके विषयमें ऐसी प्रसिद्धि है कि यहाँपर चित्राङ्गदासे उत्पन्न महारथी अर्जुनके पुत्र बभ्रुवाहनने पीपलके वृक्षके नीचे बैठकर आदिशक्ति जनकल्याणी कालरात्रि माता शुभकरणी शीतलाका ध्यान किया एवं माँके साक्षात् दर्शन किये और लोककल्याणार्थ

जब जंगल था, तब हस्तिनापुरके शासक यहाँ आखेटको [आते] थे। अर्जुनके पुत्र बभ्रुवाहनका ठहरनेका स्थान यहाँ बना हु[आ] है जो अब देवलके नामसे प्रसिद्ध है। श्रीशीतलामाता [का] मन्दिर मुख्य मार्गसे एक कि०मी० अंदर है। प्रतिवर्ष [...] होलीके तुरंत बाद ऐतिहासिक मेला लगता है। दूर-दूरसे लो[ग] दर्शन करने आते हैं। यहाँ यह प्रथा चली आ रही है [कि] विवाहके बाद दूल्हा-दुलहन सर्वप्रथम यहाँ आकर पू[जा]

आन्ध्रका उगादि पर्व

(श्रीगिरजाशंकरजी उपाध्याय)

फाल्गुन बीतनेपर चैत्र आता है और भारतीय वर्ष प्रारम्भ होता है। आन्ध्रमें यह अवसर सबसे बड़े पर्वके रूपमें मनाया जाता है।

आन्ध्रमें इस पर्वका नाम है—'उगादि'। उगादिका शुद्ध रूप है—युगादि अर्थात् युगका प्रारम्भ। उगादि आन्ध्रका महान् पर्व है, जिसमें उत्तरी भारतमें दीपावलीपर रहनेवाली धूमधाम, व्यस्तता एवं हर्षातिरेकके दर्शन होते हैं। युगादिके नामकरणके बारेमें पौराणिक विवरण प्रचलित है कि चैत्रके प्रथम दिनसे ही ब्रह्माने सृष्टिके निर्माणका कार्य प्रारम्भ किया था। इस अवसरकी उक्त महत्ताके कारण ही हर वर्षका प्रथम दिन अत्यन्त समारोहपूर्वक मनाया जाता है।

उगादि वस्तुतः फसल पकने एवं धरतीके फल-फूलोंसे लदनेका समय है। यह वसन्त-ऋतुका समय होता है जब आमके पेड़ोंमें बौर आने लगते हैं, प्रकृति सब ओर प्रसन्नता लुटाती फिरती है।

पचादि चटनी—उगादिपर आन्ध्रमें घर-घर खुशियाँ मनायी जाती हैं। प्रातः बच्चोंको तैलस्नान कराया जाता है। इसके बाद सभी लोग नहा-धोकर नये कपड़े पहनते हैं। तदुपरान्त नववर्षकी चटनी पचादिके स्वादके लिये घरके सब लोग एकत्र होते हैं। यह चटनी उगादिका विशेष उपहार मानी जाती है। इसमें नीमकी नरम कोपलें, गन्ना, गुड़, कच्चे आमकी फाकें तथा नमक डाला जाता है। इसके बाद इन्हें पीसकर एक बर्तनमें रख लिया जाता है और परिवारके सभी लोग आवश्यकरूपसे इसका आस्वादन करते हैं। बताया जाता है कि चटनीमें नीमकी कोपलें मिलानेका तात्पर्य है कि जीवन मीठा ही नहीं है, उसमें कटुता भी है। वस्तुतः बिना कटुता सहन किये जीवनका आस्वादन प्राप्त नहीं हो सकता। नया वर्ष शुरू हो सकता है, पर उसकी कटुताओंके लिये भी सदा तैयार रहना चाहिये। चटनी इसी बातकी प्रतीति कराती है।

पञ्चाङ्ग-श्रवण—इस पर्वकी एक दूसरी विशिष्टता होती है—पञ्चाङ्ग सुनना। इस दिन सभी लोग सामूहिक रूपसे एकत्र होते हैं और उसमें वर्षका पञ्चाङ्ग सुनाया जाता है, जिसमें नये वर्षकी सम्भावनाओं तथा आशंकाओं एवं शुभ संकेतोंपर प्रकाश डाला जाता है। इसमें न किसी एक व्यक्तिके बारेमें बताया जाता है, न किसी दिनविशेषके बारेमें, अपितु इसमें सारे राष्ट्र एवं समाजके सम्बन्धमें आगामी वर्षका संकेत दिया जाता है। यथा—नये वर्षमें महामारी आयेगी या समृद्धि रहेगी और क्या-क्या होगा। शादियोंके बारेमें भी इस अवसरपर बताया जाता है। ग्रामोंमें आज भी समस्त जनसमुदाय इस दिन एकत्र होता है और इसमें नये वर्षका पञ्चाङ्ग पढ़ा जाता है। नगरोंमें भी आंशिक रूपमें यह प्रथा प्रचलित है। वहाँ सब तो नहीं, फिर भी काफी लोग एकत्र हो जाते हैं और पञ्चाङ्गकी घोषणाएँ सुनते हैं।

वर्षोंके नाम—उगादिपर वर्षका नाम भी रखा जाता है। इस प्रकार साठ वर्षका एक चक्र माना जाता है, जिसमें हर वर्षका नाम होता है। इस नामकरणमें वर्षकी सम्भावनाओंका संकेत रहता है। वर्षोंके नाम होते हैं; यथा—शुभकृत्, क्रोधी, पराभव, विरोधकृत्, प्लव आदि। शुभकृत्से जहाँ शुभताका संकेत मिलता है, वहीं क्रोधीसे भयजनक घटनाओंका।

पर संकेत कुछ भी हों, पचादि चटनीके आस्वादनसे पहले ही यह बता दिया जाता है कि मीठेके साथ तिक्तताका भी भोग आवश्यक है। अतः नये वर्षका स्वागत हर स्थितिमें पूर्ण उत्साहसे करना चाहिये और अशुभ संकेतोंसे बिलकुल निरुत्साहित नहीं होना चाहिये।

काञ्चीपुरम्‌का गरुडोत्सव

(सुश्री हेमा जोशी)

दक्षिण भारतके प्राचीन नगर काञ्चीपुरम्‌में गरुडोत्सव नामका त्योहार मई या जून मासमें दस दिनतक बड़े धूम-धामसे मनाया जाता है। इस अवसरपर गरुडभगवान्‌की मूर्तिको सुन्दर और विशाल रथमें प्रतिष्ठित कर नगरकी वीथियोंमें जुलूसके रूपमें निकाला जाता है। इन दिनों नगरकी सड़कोंपर सुगन्धित जलका छिड़काव होता है। भक्तगण मृदंग तथा अन्य वाद्योंकी मधुर ध्वनिके साथ कीर्तन करते हुए रथके साथ चलते हैं। कुछ लोग रंग-विरंगे छत्र लिये और चँवर डुलाते हुए जुलूसकी शोभा बढ़ाते हैं। मार्गके दोनों ओर खड़े असंख्य नर-नारी सजे हुए थालोंमें रखे नारियल, फल और फूल रथपर चढ़ाते हैं तथा कपूर आदिसे आरती उतारते हैं। इस प्रकार उस उत्सवका उल्लास देखते ही बनता है।

गरुड विष्णुभगवान्‌के वाहन, अनन्य भक्त तथा कृपापात्र हैं। इसीलिये कष्टोंसे मुक्तिके लिये उनकी उपासना की जाती है।

हिमाचलके तीज-त्योहार

(श्रीविजयजी सहगल)

देवताओं, गन्धर्वों और किन्नरोंकी पुण्यभूमि हिमाचलमें आप अकेले किसी भी गाँवकी ओर निकल जायँ, पाँच-छः कच्चे मकानोंके झुरमुटके आस-पास आपको कोई आदमी नजर आये-न-आये, लेकिन गाँवके देवताकी पताका लहराती जरूर नजर आयेगी। गाँवके पुरखे सदियोंसे ग्रामदेवताको पूजते आ रहे हैं। उनकी जिंदगीका यह एक जरूरी हिस्सा है। उनके लिये ये देवता पत्थरकी एक मूर्तिमात्र नहीं, बल्कि उनके जीते-जागते जननायक हैं। परिवारके सदस्योंकी तरह वे उनके सुख-दुःख बाँटते हैं, नाचते, गाते हैं और उनके मौज-मेलोंमें शरीक होते हैं। बाहरकी मायावी दुनियासे उनका कोई सरोकार नहीं।

हिमाचलके अधिकांश बड़े या छोटे मेले तथा तीज-त्योहार इसी लोकभावनाके इर्द-गिर्द घूमते हैं। उनकी पृष्ठभूमिमें सैकड़ों जनश्रुतियाँ और दन्तकथाएँ सुननेको मिलती हैं। प्रत्येक मेलेमें मुख्य देवताका दरबार लगता है।

हिमाचलके सांस्कृतिक जीवनमें चम्बाकी सूहीरानीका त्याग, परशुरामकी माँके रूपमें रेणुका झीलका अस्तित्व, कुल्लूमें रघुनाथजीकी यात्रा, ज्वालामुखीमें ज्वाला मैयाकी ज्योति तथा मण्डीमें शिवजीके सैकड़ों मन्दिरोंकी मौजूदगी यहाँकी सशक्त पौराणिक परम्पराके प्रबल सम्पर्क-सूत्र हैं। इन गाथाओंके साथ यहाँके लोगोंके हर्षोल्लास जुड़े हैं। जिन्होंने धीरे-धीरे मेलों और त्योहारोंका रूप ले लिया।

ऐसे मेलोंकी अनोखी भूल-भुलैयामें यहाँके मेहनतकश आदमी अपने जीवनकी सभी विषमताओंको भूल जाता है। भव्य प्राकृतिक सुषमाके इन्द्रजालमें फँसी पर्वतीय स्वरलहरी मौक़े-बेमौक़े गूँजती है और पाँव थिरकते हैं। यही कारण है कि हिमाचलका कोई भी मेला सामूहिक लोकनृत्यों अथवा गीतोंके बिना अधूरा समझा जाता है। यही इन मेलोंकी विशिष्टता भी है। कुल्लू इस तरहके मेलोंकी शोभा है।

धर्मनिष्ठ जन-जीवन और वादीमें बने सैकड़ों मन्दिर विभिन्न गाँवोंके हजारों देवी-देवता इस तथ्यको स करते हैं कि देवताओंकी घाटीके नामसे विख्यात इस निश्चय ही देवी-देवताओंका वास रहा है।

सालभरमें दशहरेका एक ऐसा अवसर आता है वादीके सब अञ्चलोंके देवी-देवता कुल्लूके ढ मैदानमें पहुँचते हैं। यहाँ भगवान् श्रीरामके प्रतिरूप रघुनाथ उपस्थितिमें सप्ताहभर पूजा, आराधना, नृत्य और लोकगी सिलसिला चलता है। इस दशहरेपर रामायण नहीं दो जाती, केवल लङ्कादहन मनाया जाता है।

रघुनाथजीको उनके सुल्तानपुर-स्थित मन्दिरसे पहियोंवाले एक पुराने रथमें सजा-धजाकर ढालपुर लाया जाता है, जहाँ उनका अस्थायी शिविर और ' दरबार' लगता है। रथकी लम्बी पवित्र रस्सीको ख शुभ माना जाता है। कलगीदार कुल्लू टोपी लगाये रंग-बिरंगी चोगदार पोशाकें पहने कुल्लूवासी अपने देवता रथके पीछे-पीछे पालकीपर लिये चले जाते हैं। इन देवताओंसे देव-दरबार ऐसे सजता है, जैसे इन्द्रलोक जमीनपर उतार दिया गया हो। पूरे सप्ताह कुल्लूकी नृत्य, गीत और संगीतसे गूँजती रहती है।

समारोहके अन्तिम दिन रथको व्यास दरियाके कि पेड़ोंके झुण्डसे बाँध दिया जाता है। लङ्कादहनके रघुनाथजीकी सवारी सुल्तानपुरके लिये वापस जाती इसे त्योहारकी समाप्ति भी समझा जाता है।

रानीकी याद—हिमाचलका पर्वतवासी प्रकृ काफी निकट है। चम्बाके मिंजर मेलेको ही लें, त यहाँका पर्वतवासी प्रकृतिका काफी प्रशंसक है। चम्बाके चौगानमें यह मेला वरुणदेवता (जिसे खीर ख भी कहा जाता है)-को रिझानेके लिये आयोजित होत लोग सप्ताहभर सुनहरा मिंजर (मक्केके सुनहरे बाल

मिंजरमें चम्बाके मुख्य देवता श्रीरघुनाथजीकी शोभायात्रा चित्ताकर्षक होती है। यात्रामें जहाँ वरीकी जालपा (स्थानीय देवी) और सूहीरानीकी सवारियाँ होती हैं, वहीं भगवान् मणी महेश, लक्ष्मी-नारायण तथा चरपतनाथके ध्वज एवं प्रतीकचिह्न इस उत्सवकी रंग-बिरंगी दुनियाको और भी मनोरम बना देते हैं। शहरके बीचोबीच घूमता-घुमाता जुलूस दरियाके किनारे देवताओंकी जलसमाधिके साथ सम्पन्न होता है।

कहते हैं कि जब राजा शैलवर्माने चम्बा शहर बसा लिया तो जनता मारे प्यासके तड़पने लगी। पानी रावी नदीसे लाया जाता था। कष्टनिवारणके लिये राजाने कूल्ह बनवानेके अनेक प्रयास किये, परंतु फिर भी शहरमें पानी न आया। एक रात रानीको स्वप्न आया कि राजवंशमेंसे किसीके बलिदानसे यह समस्या हल हो सकेगी। रानीने जनकल्याणके लिये कूल्हकी दीवारमें खुदको चुनवाकर आत्मत्याग किया। उसी रोजसे चम्बाको पानी मिलने लगा। सूही मेला इसी घटनाकी याद ताजा करता है।

हिमाचलकी परम्पराओंपर शिवशक्ति विचारधाराका विशेष प्रभाव है। कांगड़ा हो या बिलासपुर हर वर्ष तीर्थयात्रियोंकी सैकड़ों टोलियाँ नवरात्रोंके दौरान ज्वालामुखी, व्रजेश्वरीदेवी, चामुण्डा, चित्तपुरणी तथा नैनादेवीके मन्दिरोंके शक्तिपर्वोंमें शरीक होती हैं। इनमें ज्वाला मैयाका विशेष महत्त्व है।

यूँ तो हिमाचलमें शिवरात्रिपर बहुत-से मेले लगते हैं, लेकिन शिवालयोंकी नगरी—मण्डी और भूतनाथकी स्थली बैजनाथकी शिवरात्रि विशेषत: उल्लेखनीय है।

तेजस्वी परशुरामकी माता साध्वी रेणुकाने रेणुका झीलमें समाधि ली थी। आज भी यदि किसी निकटकी चोटीसे इस झीलको निहारा जाय तो इसका आकार पूर्ण नारी-जैसा लगता है। हर वर्ष नवम्बरकी सुनहरी धूपमें यहाँका भारी मेला देवताओंकी भीड़के अलावा भक्तोंकी भी काफी भीड़ खींचता है। मेलेपर सिरमौरी लोकनृत्य 'नाटी' की इतनी धूम रहती है कि स्वयं आप भी नाचे बिना नहीं रह सकेंगे।
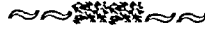
कश्मीर एवं लद्दाखका पर्वोल्लास

(श्रीशिव रैना)

धरतीका स्वर्ग कहा जानेवाला कश्मीर अपने पारम्परिक मेलों और त्योहारोंके लिये सुविख्यात है। नवरात्र हो या हेमिसगुम्पाका मेला, शाह हमदानका उर्स हो अथवा अमरनाथकी यात्रा, सबका अपना-अपना महत्त्व है। इन मेलों-त्योहारोंमें कश्मीरी जीवनकी पूरी झलक रहती है।

मौसमे बहारका प्रथम छींटा पड़ते ही कश्मीरी लोग तथा पर्यटक नमकीन चायके विशेष पात्र (समावार), खाद्य-पदार्थों तथा हँसी-खुशीसे लैस होकर सपरिवार डल झीलपर, वसन्तके पदार्पणका स्वागत करने निकल पड़ते हैं। नृत्य-गायनसे महकता यह स्वागत एक मासतक चलता है। वातावरण कश्मीरी लोकगीतोंसे गुलजार हो उठता है।

बर्फानी मेला—बर्फानी मेला जनवरी मासके पहले पक्षमें रैणा-बाड़ी क्षेत्रमें मनाया जाता है। यह मेला कश्मीरके पहुँचे हुए दरवेश मियाँ शाह साहबकी स्मृतिमें लगता है। इसमें भी सब धर्मोंके लोग सक्रियरूपसे भाग लेते हैं। संयोगकी बात है कि मेलेवाले दिन ही मौसमका प्रथम हिमपात होता है। सुखमय शीत-ऋतुके लिये सामूहिक प्रार्थनाएँ होती हैं और खूब पटाखे चलाये जाते हैं।

क्षीरभवानी तीर्थ श्रीनगरसे २१ किलोमीटर दूर है। यहाँ कुण्डके भीतर एक प्राचीन मन्दिर है, जिसमें भगवतीकी सुन्दर प्रतिमा विराजमान है। कुण्डके जलका रंग बदलता रहता है। यही भगवतीका दर्शन माना जाता है। अष्टमी तथा पूर्णिमाके दिनोंमें यहाँ बहुत बड़ी संख्यामें लोग दर्शनार्थ आते हैं।

वैरीनाग—वैरीनाग गाँव बानिहाल सुरंगके पास स्थित है। यह नाम चश्मा (स्रोत) वैरीनागसे सम्बन्धित है। यहाँ आषाढ़के प्रथम पक्षमें झेलम नदीके जन्म-दिनपर एक विशाल मेला लगता है। यह नदी कश्मीर घाटीकी प्राण है। एक कथाके अनुसार देवी वितस्ता (झेलम)-ने वैरीनागके स्थानसे प्रकट होना चाहा, किंतु वह शिवका स्थान था।

अतएव देवीको वहाँसे मुड़कर उत्तर-पश्चिममें एक मील दूर विथावुन्ना चश्मेसे प्रकट होना पड़ा। तभीसे इसका नाम 'विरहनाग' (वियोगी चश्मा) पड़ गया।

कपालमोचन नामक स्थान श्रीनगरसे ४८ किलोमीटर दूर शोपैयाके निकट है। यहाँ तीन चश्मे हैं, जो एक-दूसरेके निकट स्थित हैं। सबसे बड़े चश्मेमें एक प्राचीन शिवलिङ्ग है। पास ही अन्य दुर्लभ मूर्तियाँ विद्यमान हैं। इस स्थानके विषयमें अनेक कथाएँ कही-सुनी जाती हैं। अगस्त मासमें (श्रावणके बारहवें दिन) यहाँ एक विशाल मेला प्रतिवर्ष लगता है। इस अवसरपर लोग अपने (गत वर्षके) दिवंगत बच्चोंका श्राद्ध करके दान-पुण्य करते हैं। यहाँ लोग पापोंसे बचनेके लिये सोने-चाँदीकी मूर्तियाँ दान करते देखे जा सकते हैं।

क्षरियू ग्राम श्रीनगरसे २२ किलोमीटर दूर है। यह स्थान निकटवर्ती पहाड़ीपर स्थित ज्वालाजी तीर्थके लिये प्रसिद्ध है। यह सारी पहाड़ी एक ज्वालामुखी है। निकट ही एक प्राचीन मन्दिर भी है। प्रतिवर्ष आषाढ़के भव्य मेलेमें यहाँ देवीकी पूजा होती है। लोग पहाड़ीके नीचे एक सुन्दर चश्मेमें स्नान करते हैं। इस चश्मेका जल अनेक रोगोंके लिये रामबाण समझा जाता है।

हज़रतबल—हज़रतबल एक पवित्र स्थल है। डल झीलके किनारे यह नगीनबागके समीप स्थित है। यहाँ हज़रत मोहम्मदका पवित्र बाल सुरक्षित है। इस बालके दर्शन मुसलमानोंको विशेष अवसरों (जैसे—ईद, मिलाद, पीर दस्तगीर साहबके उर्स, शबे-मिराज, शबे बरात आदि)-पर कराये जाते हैं। इस अवसरपर बहुत बड़ा मेला लगता है।

कश्मीरके सूफी संत शेख नूरुद्दीनका निवास-स्थान (तरार गाँव) श्रीनगरसे २७ किलोमीटर दूर उत्तर-पश्चिममें है। हेमन्त-ऋतुके दौरान यहाँ हफ्तोंतक विशाल मेला लगा रहता है। कव्वाली तरारे-शरीफ़ मेलेका विशेष आकर्षण है। जम्मूमें सदियोंसे मुसलिम फकीरों-संतोंके मज़ार मौजूद हैं। इन्हें सभी धर्मोंके अनुयायी पूजते हैं। माता भवानीका बाहुदुर्ग तवी नदीके तटपर ऊँची पहाड़ीपर स्थित है। प्रतिवर्ष मार्च मासमें यहाँ शानदार मेला लगता है। लाखों लोग इसमें भाग लेते हैं। लोग खेल-तमाशों, पूजा-पाठ, खान-पान तथा दान-पुण्यमें खो जाते हैं। वानरसेनाको चने खिलाये जाते हैं। जम्मूवासियोंका दृढ़ विश्वास है कि माता बाहु सदैव सारे नगरकी सजग प्रहरीकी तरह रक्षा करती हैं।

आजसे लगभग ५०० वर्ष पूर्व जमींदारीके विरुद्ध आवाज उठानेवाले प्रथम किसान शहीद बाबा जित्ताका जन्मस्थान रियासी (आगार बाबा जित्तो) था और उनकी समाधि जम्मूसे २५ किलोमीटर दूर शामाचकमें है। दोनों स्थानोंपर देशके कोने-कोनेसे आये किसानोंका मेला लगता है। कृषक समाधिपर अच्छी फसलके लिये प्रार्थना करते हैं। ऊँटोंकी नीलामी, पशु-प्रदर्शनी, मल्ल-युद्ध आदि मेलेके विशेष अङ्ग हैं।

हेमिसगुम्पा—'मिनी तिब्बत' (लद्दाख)-में नृत्य न जानना अनहोनी घटना है। यह लद्दाखी-जीवनका अभिन्न अङ्ग है। हर मेला-त्योहार इसके बिना अधूरा है। लद्दाखमें प्रतिवर्ष दर्जनों मेले लगते हैं। इनमें हेमिसगुम्पा मेला प्रमुख है। लगभग सब मेलोंका स्वरूप एक-सा होता है। ये नृत्य अभिवादनसे आरम्भ एवं समाप्त होते हैं। ढोल, शहनाई, 'छम-छम यन्त्र' अजब समाँ बाँधते हैं। 'पिशाच नृत्य'-में केवल लामा लोग सामूहिक रूपसे नाचते हैं। वे सुन्दर वेश-भूषा पहनकर, डरावने मुखौटों, नंगी तलवारोंसहित इस नृत्यमें भाग लेते हैं। मुखौटे पशुओंसे मिलते-जुलते होते हैं। सर्वोच्च स्थान सीनियर लामा ग्रहण करता है। मेला 'लोसर' दिसम्बरमें लगता है और 'हेमिसगुम्पा' जूनमें। मेला 'दस मोची' फरवरीमें आयोजित होता है। लद्दाखी मेलोंका प्रमुख उद्देश्य है एकता, मनोरञ्जन, भक्ति तथा दैवी प्रकोपोंसे सुरक्षा।

जम्मू-कश्मीरको यदि मेलों-त्योहारोंकी धरती कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। वल्ले बाबा (अखनूर)-का मेला, वैशाखी, कैलाशयात्रा (भद्रवाह), मेला पट (भद्रवाह) उर्स शाह इसरार उद्दीन साहब (डोडा) आदि राज्यके अन्य आकर्षक मेले हैं। वल्लेका बाग (मेले)-में बावले कुत्तेके काटे मनुष्य तथा पशु स्वस्थ होते देखे-सुने गये हैं। संक्षेपमें कश्मीरके प्राकृतिक सौन्दर्यका मुकाबला केवल यहाँकी कला, मेले और त्योहार ही कर सकते हैं।
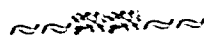
असमका प्रमुख पर्वोत्सव 'बिहू'

(श्रीशुभकरणजी शर्मा, एम्०ए०)

'बिहू' असमिया लोकसंस्कृतिका सबसे बड़ा त्योहार है। 'बिहू' असमका जातीय उत्सव और असमिया संस्कृतिका प्रतीक माना जाता है। असममें सालभरमें तीन बिहू-उत्सव मनाये जाते हैं। जिनमें वर्षके प्रारम्भ—वैशाख-मासमें '**बोहाग-बिहू**' (जिसे रंगाली-बिहूके नामसे जाना जाता है), कार्तिकमासमें '**काती-बिहू**' (जिसे 'कंगाली-बिहू' भी कहते है; क्योंकि इस समय किसानोंके खेत-खलिहान खाली हो जाते हैं) और माघमासमें मकर-संक्रान्तिके अवसरपर मनाया जानेवाला '**माघ-बिहू**' (जिसे 'भोगाली-बिहू' भी कहते हैं) नामसे प्रसिद्ध है। इन तीनोंमें विशेष ऋतुओंमें खेतीकी अच्छी उपजके लिये किसान सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, आकाश आदि देवताओंकी संतुष्टिके लिये उपासना-पूजा करते आये हैं, परंतु असममें आहोम राजाओंके राज्यकालसे इन पर्वोंका यह स्वरूप बदल गया और इन्हें 'बिहू'-के नामसे पुकारा जाने लगा। 'बिहू' शब्दकी उत्पत्ति आहोम भाषाके 'बैहु' से बतायी जाती है, जिसका अर्थ है—'गायकी उपासना'। आगे संक्षेपमें तीनोंका विवरण दिया जा रहा है—

(१) बोहाग-बिहू

'बोहाग-बिहू' अथवा 'रंगाली-बिहू' असमका सबसे मुख्य पर्व है। वसन्त-ऋतु इस समय अपने चरमपर होती है। हर पेड़-पौधे, फूल, बेलें हरे-भरे होते हैं। पेड़ोंपर नये पत्ते आ जाते हैं, हवामें फूलोंकी महक भर जाती है और पक्षी प्रसन्न होकर चहचहाने लगते हैं। वातावरणमें चारों ओर खुशहाली-ही-खुशहाली देखनेको मिलती है। यही वह समय है, जब मानव भी पेड़-पौधों एवं पक्षियोंकी तरह ही नाचने-गानेको मचल उठता है। यही वह वैशाखका पावन मास है, जब असमिया-नववर्षका शुभारम्भ होता है। बिहूको प्रकृतिका अनुपम अवदान कहा जा सकता है।

'बोहाग-बिहू' के लिये कहा गया है ***'बोहाग नोहोये माथो एटी ऋतु, नहय बोहाग एटि माह। असमिया जातिर इ आयुष रेखा, गण जीवनोर इ साह॥'*** अर्थात् वैशाख केवल एक ऋतु ही नहीं, न ही यह एक मास है, बल्कि यह असमिया जातिकी आयुरेखा और जन-गणका साहस है।

भारतीय शास्त्रोंने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का मूल मन्त्र हमें दिया है। असमके जातीय उत्सव बिहूमें यह प्रत्यक्ष देखनेको मिलता है। इस अवसरपर बृहद् असमिया समाजके अङ्गस्वरूप असममें रहनेवाले विभिन्न वर्ण, धर्म, जनगोष्ठियाँ और भाषा-भाषी लोग एक साथ मिलकर इस बिहू-पर्वको मनाते हैं।

चैत्रमासके प्रारम्भसे ही असमिया समाजके बाल-वृद्ध, पुरुष-महिलाएँ बिहूकी तैयारियाँ करने लगते हैं। घरमें औरतें 'पीठा', 'सान्दह', 'हुरूम' (मिठाइयों एवं व्यञ्जनोंके नाम), 'मुड़ी', 'आखोई' आदि बनाना प्रारम्भ कर देती हैं। महिलाएँ अपने हाथसे असमिया संस्कृतिके प्रतीक 'फुलाम-गमछा' तैयार करने लगती हैं।

चैत्रमासकी संक्रान्तिके दिनसे ही बिहू-उत्सव प्रारम्भ हो जाता है। उसे 'उरूका' कहते हैं। इस दिन भोरसे ही गाय चरानेवाले चरवाहे लौकी, बैगन, हल्दी, दीघलती, माखियति आदि सामग्री इकट्ठी करनेमें जुट जाते हैं। शामको सभी गायोंको गुहाली (गोशाला) में लाकर बाँध देते हैं। विश्वास है कि उरूकाके दिन गायोंको खेतमें खुला नहीं रहने देना चाहिये, इस दिन गोशालामें गायें नहीं रहनेसे भविष्यमें गोशालामें गायोंकी संख्यामें कमी आ सकती है। गायके रखनेवाले एक डलियामें लौकी, बैगन इत्यादि सजाते हैं। प्रत्येक गाय बाँधनेके लिये नयी रस्सी तैयार करते हैं।

बिहूके पहले दिनको 'गोरू-बिहू' कहते हैं। इस दिन प्रातः ही गौओंको नदी-किनारे ले जाकर नहलाया जाता है। तदुपरान्त उनपर त्रिशूलके आकारके बाँससे बने 'चांट' से लौकी, बैंगन, दीघलती (एक प्रकारका लम्बा पत्ता) आदि गौपर फेंकते हैं और गौकी पूजा-अर्चना करते हैं। लोकविश्वास है कि त्रिशूलके प्रयोगसे सदाशिव भगवान् शङ्कर प्रसन्न होते हैं। शामको गौके घर आनेपर वस्त्रके स्थानपर उसे नयी रस्सीसे बाँधते हैं। इसके बाद युवा लोग ढोल, पेपा इत्यादि लेकर बिहूके देवताको पान-ताम्बूल चढ़ाकर प्रार्थना करते हैं। फिर गायपर चढ़ायी गयी लौकी, बैगन आदि सब्जियाँ चुन-चुनकर लाते हैं। गौओंको बुरी चीजोंसे बचानेहेतु गोशालामें धुआँ करते हैं। नये वर्षका पहला दिन गौओंको अर्पित करते हैं। 'गोरू-बिहू' के दिन

ही किशोरियाँ तथा महिलाएँ हाथोंमें मेहँदी लगाती हैं।

'गोरू-बिहू' के दूसरे दिन 'मानुह-बिहू' अथवा 'मानव-बिहू' होती है। इस दिन घरके लोग हल्दी आदि लगाकर स्नान करते हैं। नये वस्त्र पहनते हैं। सभी लोग अपनेसे बड़ोंको प्रणाम कर आशीर्वाद लेते हैं एवं एक-दूसरेको शुभकामनाएँ भेंट करते हैं। महिलाएँ अपने हाथसे असमिया संस्कृतिके प्रतीक 'फुलाम-गमछा' तैयार कर अपनेसे ज्येष्ठ परिजनोंको भेंटकर उनका आशीर्वाद प्राप्त करती हैं। साथ ही लोग एक-दूसरेको वस्त्र आदि भेंट करते हैं। इसे 'बिहू-वान' कहते हैं। बिहू-उत्सवपर असमिया समाजके महिला-पुरुष अपने कन्धेपर अथवा गलेमें एक गमछा धारण करते हैं। कुछ लोग पूजन-संकीर्तन आदि भी करते हैं। इस दिन १०१ प्रकारके शाक-पात आदि खानेकी भी परम्परा है। दोनों दिन चिड़वा-आखोईके साथ भैंसका दही और 'पिठा-पना' (मिठाई) आदिका जलपान किया जाता है। 'मानुह-बिहू' का दिन आपसी वैरभाव और वैमनस्यको भुलानेका दिन होता है। इस दिन पुराने विवादोंको भूलकर सब लोग एक-दूसरेके घर जाकर बिहूकी शुभकामनाएँ देते हैं। ब्राह्मणों तथा गरीबोंको दान-दक्षिणा दी जाती है। इन सभी कार्यक्रमोंके साथ ही नये वर्षका स्वागत किया जाता है।

शामको गाँवके युवक-युवतियाँ सामूहिक दल बनाकर ढोल, पेपा, गगना बजाते हुए घर-घर जाकर 'हुसरी' (आनन्दके बिहू-गीत) गाते हैं। साथ ही 'बिहू-नाच' का भी आयोजन किया जाता है। नृत्य-गीतके इस 'हुसरी' कार्यक्रमके अन्तमें गृहस्थ इस 'हुसरी-दल' के आगमनपर अत्यन्त प्रसन्न होकर 'बान-बटे' में पान-ताम्बूल एवं भेंटस्वरूप नकद राशि आदि देकर उनका सम्मान करता है एवं 'हुसरी-दल'से आशीर्वाद प्राप्तकर अपनेको धन्य मानता है। 'हुसरी-दल' आशीर्वादमें गृहस्थके चतुर्दिक् उन्नति एवं मङ्गलकी कामना करता है। यह नृत्य-गीतका कार्यक्रम पूरे महीने चलता रहता है।

बिहका अन्यतम आकर्षण इस दिन होनेवाली करवाया था, परंतु विशाल प्रदेश असमके विभिन्न अञ्चलोंमें स्थानभेदसे बिहू-उत्सव मनानेके रीति-रिवाजोंमें फर्क भी पाया जाता है। जैसे मंगलदै अञ्चलमें बैसाखी दौल-उत्सवका भी पालन किया जाता है। बोडो लोग अपने उपास्य देवता 'बाथौ' अथवा 'महादेव' की पूजा करते हैं।

(२) काती-बिहू

असमिया लोग आषाढ़-श्रावणमासोंमें धानकी खेती करते हैं। आश्विनके अन्तमें यह धान पककर सुनहला स्वरूप ले लेता है। प्रकृतिपर निर्भर किसान खेतकी लक्ष्मी—उपजको सादर घर लानेके लिये प्रस्तुत होता है और आश्विन-कार्तिककी संक्रान्तिके दिन उपजकी मङ्गलकामनासे खलिहान एवं तुलसीके वृक्षके नीचे दीप प्रज्वलित कर अनेकानेक नियमोंका पालन करता है। इसे ही 'काती-बिहू' कहते हैं। बिहूके दिन किसानके खलिहान खाली रहते हैं। इस बिहूमें खेल, नृत्य, गान आदिका आयोजन नहीं किया जाता। अतः इसे 'कंगाली-बिहू' भी कहते हैं। इस बिहूपर बाँसके ऊपर आकाश-दीप जलानेकी भी प्रथा है। लोकविश्वास है कि दीपसे पूर्वजोंके स्वर्ग जानेके मार्गमें प्रकाश मिलता है। तुलसीवृक्षके नीचे दीप पूरे महीनेभर जलाया जाता है। इसके साथ-साथ ही दीपावलीके दिन घरोंमें एवं घरोंके सामने दीपक जलाना, केलेके पेड़ लगाना आदि प्रमुख हैं।

(३) माघ-बिहू

मकर-संक्रान्तिके अवसरपर मनाया जानेवाला 'माघ-बिहू' असमिया समाजका एक कृषिसम्बन्धित पर्वोत्सव है। माघमासका यही वह समय है जब किसान अपने खेतोंमें कटाईका काम सम्पूर्ण करते हैं। यही समय है कि जब किसान अपनी मेहनतसे उपार्जित खाद्यान्नसे अपने खलिहानोंको भर लेता है। अपने भरे हुए खलिहानको देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है। उसके आनन्दकी सीमा नहीं रहती और वह अपार खुशी महसूस करता है। उसके दुःखोंका अन्त होता है और वह खुशीसे झूम उठता है। यह समय मकर-संक्रान्तिके पर्वका होता है। इस अवसरपर भारतके अन्य

रूका' कहा जाता है। 'उरूका' के दिन असमके लोग
ीके किनारे अथवा खुली जगहमें धानकी पुआलसे
स्थायी छावनी तैयार करते हैं जिसे 'भेलाघर' कहते हैं।
र गाँवके सभी लोग वहाँ इकट्ठे होकर रात्रिभोजका
ायोजन करते हैं। इस छावनीके पास ही चार बाँस
ाकर उसपर पुआल एवं लकड़ीसे ऊँचे गुम्बजका
र्माण करते हैं, जिसे 'मेजी' कहते हैं। असमके कुछ
त्रोंमें तीन अलग-अलग निर्धारित दिशाओंमें अलग-
लग स्थानोंपर इस तरहकी 'मेजी' बनानेकी प्रथा भी
लित है। 'उरूका' के दूसरे दिन भोरसे पहले ही स्नान
रनेके उपरान्त 'मेजी' जलाकर 'माघ-बिहू' का शुभारम्भ
या जाता है। गाँवका सारा समाज आबाल-वृद्ध, पुरुष-
हेला तथा बालक-बालिकाएँ इस मेजीके चारों ओर
त्र होकर प्रभुसे सभीके मङ्गलकी कामनाके लिये
र्थना करते हैं। अपनी मनोकामना पूर्ण करनेहेतु लोग
भिन्न वस्तुएँ भी मेजीमें भेंट चढ़ाते हैं। इसके बाद
जीको प्रणाम कर अपने घर वापस चले जाते हैं। मेजीकी
धजली लकड़ियाँ और भस्मका खेतों, फलोंके वृक्ष और
धोंकी जड़में छिड़काव करते हैं। इस तरह करनेसे
मीनकी उर्वरा-शक्तिमें वृद्धि होती है ऐसा लोकविश्वास
। बिहूके अवसरपर बृहद् असमिया समाजके सभी
ति-वर्ण और तबकेके लोग एकत्र होकर एक साथ
लकर मेजी जलाते हैं और बिहू-उत्सव मनाते हैं।

भारतके अन्य प्रान्तोंकी तरह ही असममें भी 'माघ-बिहू' के अवसरपर तिल खानेका महत्त्व है। यही कारण है कि माघ-बिहूके अवसरपर असममें भी तिलके व्यञ्जन बनाये जाते हैं। माघ-बिहूके दिन नाना प्रकारके मिष्टान्न, पक्वान्न आदि बनाये तथा खाये जाते हैं, जिन्हें 'पिठा' कहते हैं। इन व्यञ्जनोंको बनानेके लिये असमिया महिलाएँ काफी पहलेसे तैयारियाँ करती हैं। अपने हाथसे चावल आदिकी पिसाई करके नाना प्रकारके व्यञ्जन बनाती हैं। जिनमें 'चुंगा-पिठा' (जो बाँसके अंदर डालकर पकाया जाता है), 'घिला-पिठा', तिल-पिठा, 'नारियल-पिठा', तिल एवं नारियलके लड्डू, दही-चिड़वा आदि प्रमुख हैं। 'माघ-बिहू' को 'भोगाली-बिहू' भी कहा जाता है।

बिहू असमिया जातिकी अमूल्य धरोहर है। इस बिहूसे असमिया लोक-साहित्यकी अन्यतम धरोहर 'बिहू-नाम' (बिहूके अवसरपर गाये जानेवाले गीत)-की उत्पत्ति हुई है। बिहू-नाम अथवा बिहू-गीतोंमें असमके प्राकृतिक सौन्दर्य, असमिया जीवनकी कल्पनाएँ, उपलब्धियाँ और मनके भावोंके साथ-साथ असमिया संस्कृति, रंग-सुरभिका संचय तथा वर्णन होता है। उसी तरह बिहू-नृत्यमें परिभाषित होता है—असमिया समाजका आदिम विश्वासका रूप और जीवनके मधुर छन्द।

बदलते समयके साथ-साथ असममें भी इस बिहू-उत्सवमें परिवर्तन देखा जा रहा है।

भाद्रपद कृष्ण-अमावास्याका पर्व—विजयपर्व

(डॉ० श्रीकृष्णमोहनसिंहजी)

माँ कालरात्रिका एक भव्य एवं विशाल मन्दिर बिहार
न्तके अन्तर्गत सारण जनपदके छपरा-पटना मुख्यमार्गपर
क छोटे-से ग्राम डुमरी बुजुर्गमें स्थित है। बिहारके
र्थस्थलोंमें इसका विशेष स्थान है। भाद्रपद कृष्ण अमावास्याके
भ दिन यहाँ 'विजयपर्वोत्सव' बड़े ही धूमधामसे मनाया
ता है। स्थानीय अनुश्रुतिके अनुसार आजसे लगभग पाँच
वर्ष पूर्वकी घटना है कि यहाँपर यवनों, मुगलोंका शासन
। धर्म-परिवर्तनके अत्याचारसे पीड़ित होकर यहाँके
र्वजोंने त्राण पानेके लिये अपनी कुलदेवी एवं इष्टदेवी
भगवती श्रीकालरात्रिको पुकारा। अन्ततः माँको अपने भक्तोंकी दुर्दशा देख एवं करुण पुकार सुनकर प्रकट होना पड़ा। वे वहाँपर भाद्रपद कृष्ण अमावास्याको प्रकट होकर एवं विजयश्रीका आशीर्वाद देकर यह कहकर कि यहींपर मेरा पिण्ड (विग्रह) स्थापित कर देना, अन्तर्धान हो गयीं। माँके आशीर्वादसे आज यहाँ माँ भगवती श्रीकालरात्रिका भव्य एवं विशाल मन्दिर विराजमान है। भाद्रपद कृष्ण-अमावास्याको यहाँ भारी मेला लगता है तथा बड़े ही समारोहपूर्वक श्रद्धा-भक्तिसे माँ भगवतीका व्रत-पूजन होता है।

मणिपुरके रासोत्सव

(श्रीअमितजी)

भारतके उत्तर पूर्वका एक छोटा-सा राज्य मणिपुर रासोत्सवों तथा रासनृत्योंके लिये प्रसिद्ध है। किंवदन्ती है कि भगवान् शिवने देवी पार्वतीके साथ मणिपुरमें ही रासलीला की थी। अत: मणिपुरके हर उत्सव, मेले एवं क्रियाओंपर रासका विशेष प्रभाव है।

मणिपुरके उत्सवोंका प्रारम्भ वसन्तपञ्चमीपर वसन्तरासँसे होता है। पहले पाँच दिन पालालय सांगके गीत वहाँके प्रसिद्ध गोविन्ददेवजीके मन्दिरमें नृत्योंके साथ होते हैं। उसके बाद हर गाँवमें वृन्द-वृन्द फाल्गुनकी पूर्णिमातक अलग-अलग नृत्य करते रहते हैं। फिर पूर्णिमाके दिन लोग धोती-कुर्ता पहने वासन्ती रंगमें रँगी पगड़ी एवं रंग-बिरंगे फनिक तथा चादरोंसे सजकर होलिकोत्सव मनाने गोविन्ददेवजीके मन्दिरमें एकत्र हो जाते हैं। इनमें नर-नारी, युवक-युवती, बालक-वृद्ध—सभी होते हैं। रंगकी पिचकारियाँ चलती हैं। अबीर और गुलाल उड़ते हैं। गोविन्ददेवजीका विशाल रासमण्डप मृदंगों, पखावज, ढोल एवं झालसे गुञ्जायमान हो उठता है। फाल्गुन पूर्णिमा चैतन्य महाप्रभुका जन्म-दिन है। अत: उनकी मूर्तिकी स्थापना भी गाँव-गाँवमें की जाती है और उसकी पूजा होती है। इस तरह होली तथा चैतन्य-जयन्ती साथ-साथ चलते हैं।

समूह नृत्य—पूर्णिमाके दूसरे दिनसे मणिपुरका प्रसिद्ध समूह नृत्य—धावल चोण्डवी अर्थात् चाँदनी रातका नृत्य प्रारम्भ होता है। इसमें सैकड़ों युवक एवं युवतियाँ वृत्ताकार घेरेमें आधी राततक झूमते हुए नाचते रहते हैं। ये नृत्य एक महीनेतक होते हैं।

फिर आती है चैत्रकी पूर्णिमा। शामको इस दिन फिर भीड़ उमड़ पड़ती है गोविन्ददेवजीके मन्दिरमें। वहाँ विशाल चन्द्रावलि तथा राधा आती हैं। कृष्ण पहले राधाके साथ और फिर चन्द्रावलिके साथ नृत्य करने लगते हैं। चन्द्रावलिके साथ नृत्य करनेपर राधा नाराज होकर चली जाती हैं। कृष्ण उन्हें ढूँढ़ते हैं और मनाकर संतुष्ट करते हैं। नृत्यशास्त्रकी विभिन्न सांकेतिक तथा प्रतीकात्मक भंगिमाओं और मुद्राओंद्वारा यह रास पूर्ण होता है।

अब वैशाख आता है और लाइहारोबा नृत्योंका प्रारम्भ होता है। लाइहारोबा अर्थात् देवताओंका आनन्दोत्सव। यह मणिपुरका सबसे प्राचीन नृत्य है। इस नृत्य-नाट्यमें एक प्राचीन मणिपुरी कथा प्रस्तुत की जाती है। देवताओंका यह आनन्दोत्सव नृत्य नौ देवताओं तथा सात देवियोंद्वारा सृष्टिरचनाके विकासक्रमको विस्तारपूर्वक नृत्य-भंगिमाओंद्वारा प्रदर्शित करनेके साथ प्रस्तुत होता है। इस सम्पूर्ण नृत्य-नाटिकाको प्रस्तुत करनेमें पंद्रह दिन लग जाते हैं। इस नृत्य-शृङ्खलामें कई लोक-कथाएँ जुड़ गयी हैं। खम्ब थोम्वी नृत्य इसी तरहकी एक लोक-कथापर आधारित है।

जलकेलि—वैशाखकी अक्षयतृतीयाको गोविन्ददेवजीकी मूर्तिका चन्दनसे अभिषेक होता है। तब हरिसंकीर्तन होता है। वैशाख पूर्णिमाको 'जलकेलि' उत्सव मनाया जाता है, जिसमें राधा-गोविन्दकी मूर्तियोंको जल-क्रीड़ा करवाकर स्त्रियोंद्वारा मंजीरोंके साथ नृत्य होता है।

आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको रथयात्राके अवसरपर जगन्नाथकी मूर्तिके रथका परिभ्रमण और स्त्री-पुरुषोंका राधा-विवाहके गीतोंके साथ ताली-नृत्य होता है। श्रावण शुक्ल तृतीयासे झूलनयात्रा होती है, जिसमें राधा-कृष्णकी मूर्तिको झूलेपर झुलाकर मंजीरोंके साथ स्त्रियाँ नृत्य करती हैं। भाद्रपद कृष्णाष्टमीको कृष्णजन्म तथा शुक्लाष्टमीको

उत्थान पर्वमें संकीर्तन तथा गोप या गोष्ठरास एवं उत्खल-रास होते हैं। फिर कार्तिककी पूर्णिमाको महारास होता है। इस तरह मणिपुरमें उत्सव-चक्र पूर्ण होता है। फिर नववर्षके दिनसे पुनः राधा-कृष्णकी सम्पूर्ण लीलाएँ शुरू हो जाती हैं।

इन रासोत्सवोंमें उत्खल तथा गोष्ठ या राखालमें ताण्डव रूप मुख्य है, जबकि शेष सभी रासोत्सवोंमें कृष्ण-गोपियोंका ही माहात्म्य है। राखाल-गोप-गोष्ठरासमें धेनुकासुर-वध, बकासुर-वध एवं कृष्णको यशोदाद्वारा ऊखलसे बाँधने आदि लीलाओंका वर्णन रहता है।

अरुणाचलमें चाँद-सूरजके पर्व

(श्रीसोमदेवजी)

भारतके उत्तरी-पूर्वी अञ्चलमें स्थित अरुणाचलने भी अपने निकटवर्ती अन्य पर्वतीय इलाकोंकी तरह सनातन-धर्मको काफी हदतक सुरक्षित रखा है। अरुणाचल जो पहले नेफा या उत्तर-पूर्वी सीमान्त कहलाता था, अनेक सुरंगी जातियोंका प्रदेश है।

यहाँके लोग नागाओं और मिजो लोगोंकी तरह एक ईश्वरमें विश्वास रखनेके साथ-साथ आत्माओंमें भी विश्वास करते हैं। ये विविध देवताओंको पूजते हैं। उनमें सूरज और चाँद सर्वप्रमुख हैं। यहाँ प्रसिद्ध है कि सूरज एवं चाँद पहले दोनों भाई-भाई थे। एक दिनमें १२ घंटेतक निकलता था दूसरा रातमें। दोनों ही तब सूरज कहलाते थे। फिर एक रात एक मेढकने रातवाले सूरजपर खेल-खेलमें तीर छोड़ दिया, इससे रातवाला सूरज कमजोर हो गया और पीला पड़ गया। यही आगे चलकर चन्द्रमा कहलाने लगा। इसपर पहला सूरज इतना नाराज हुआ कि तबसे आजतक धरतीपर गरमीके तीर चला रहा है। इन तीरोंसे बचनेके लिये मेढक तो पानीमें घुस जाते हैं, मारे जाते हैं बेचारे इनसान।

यहाँके लोग इन्हें संतुष्ट करनेको यूलू एवं मलोकू देवताओंके रूपमें इनकी पूजा करते हैं। विशेषकर बहारके मौसममें वे मलोकूका पर्व मनाते हैं। इस अवसरपर युवक तरह-तरहके शारीरिक करतब दिखाते हैं और खूब खाना-पीना होता है।

मलोकूके पर्वपर वे 'बोबो' खेलते हैं। इसमें एक लम्बा बाँस बाँध दिया जाता है। इसके ऊपरी हिस्सेसे एक रस्सी बाँधी जाती है। रस्सीका एक सिरा जमीनमें गाड़ दिया जाता है। युवक इस रस्सीपर बहुत ऊँचाईसे झूलते हैं।

यहाँ सियांगके मीटी और आदी जातिके लोग भी चाँद और सूरजकी पूजा करते हैं और त्योहारोंपर नाचते-गाते हैं।

लोहितके मिशिमोंका विश्वास है कि वे श्रीकृष्णकी महारानी रुक्मिणीकी संतान हैं। वे श्रीकृष्णको अपनी भाषामें 'खिनत्रिम' कहते हैं। यहाँ शिवपूजा भी चलती है। इस क्षेत्रमें परशुरामकुण्ड, तामेश्वरीमन्दिर, शिवमन्दिर, रुक्मिणीनगरके खण्डहर आज भी मौजूद हैं। ये लोग वसन्तपर वसन्तोत्सव मनाते हैं और उसमें श्रीकृष्णसम्बन्धी नृत्य करते हैं।

मिशिमोंके पड़ोसी खामटी बौद्धधर्ममें विश्वास करते हैं। वस्तुतः इस अञ्चलमें बौद्धधर्म एवं तन्त्रका मिश्रण है। वे अपने पर्वोंपर तरह-तरहके मुखौटे पहनकर मनोरञ्जन करते हैं और तत्सम्बन्धी देवताओंको संतुष्ट करते हैं। किंवदन्ती है कि जब भगवान् बुद्धने दुनियाके लोगोंको बहुत उदास देखा तो उन्होंने अरकाचो देवता और उसकी पत्नीको हँसी-खुशीका प्रचार करने यहाँ भेजा था। अतः ये लोग अधिकतर अरकाचो देवताके मुखौटे बनाते हैं और उसका उत्सव मनाते हैं।

अका जाति सूरजकी पूजाके लिये विशेष पर्व मनाती है। इस अवसरपर पुजारियोंको भेंट चढ़ायी जाती है। अका मानते हैं कि पहले सूरज बहुत गरम था। फिर चिस्मू देवताने सूरज और मनुष्योंके मध्य बादलोंको बनाया। अका जाति अपनी प्रसिद्ध बुनायी एवं अन्य वस्तुओंपर कलामें रेखाओंका जो नमूना प्रस्तुत करती है, वह सूरज तथा बादलोंके महत्त्वका प्रतीक है।
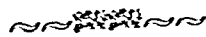
आदिवासियोंके अनूठे त्योहार

(डॉ० श्रीश्यामसिंहजी शशि, श्रीदाऊलालजी पुरोहित, डॉ० श्रीहरिकृष्णजी देवसरे)

शहरी सभ्यतासे बहुत दूर गहन जंगलोंके अँधेरे कोनोंमें, पर्वतोंकी गगनचुम्बी चोटियोंपर और गहरी पथरीली खाइयोंमें आदिवासियोंकी एक अनोखी दुनिया है। एक ऐसी दुनिया जो आधुनिक संसारकी सांस्कृतिक जगमगाहटसे बेखबर है, अनजान है।

आदिवासियोंके मेलों तथा त्योहारोंका अपना अलग आनन्द है। मेलोंके अलावा आदिवासियोंके कठोर जीवनमें कौन रस घोल सकता है। उनके लिये यही तो एक ऐसा आकर्षण है, जिसे आदिवासी वर्षभर एक अनोखी गुदगुदीकी भाँति अपने हृदयमें सँजोये रखते हैं। बात-बातपर उनके गीत गूँजते हैं और पाँव थिरक उठते हैं। एक अजीब-सा मजमा इकट्ठा हो जाता है। स्त्री-पुरुषोंकी टोलियाँ मिलकर झूमती हैं और नृत्योंमें खो जाती हैं। इस दुनियाको देखकर लगता है जैसे त्योहार और मेले ही इनकी आबादियोंको आजतक जीवन देते रहे हैं, उनमें रस घोलते रहे हैं।

मेघनादकी धूम—छत्तीसगढ़के गोंडोंमें एक पर्व मनाया जाता है—'मेघनाद'। इस अवसरपर मेला भी लगता है। मेघनाद-पर्व आमतौरसे फाल्गुनमासके आरम्भमें होता है। अलग-अलग स्थानोंमें यह पर्व अलग-अलग तिथियोंको मनाया जाता है, जिससे विभिन्न गाँवोंके लोग उसमें सम्मिलित हो सकें। गोंडोंद्वारा मेघनादको अपना सबसे बड़ा देवता माना जाता है। इस पर्वके लिये खुले मैदानमें चार खम्भे गाड़े जाते हैं। इनके बीचोबीच सबसे ऊँचा पाँचवाँ खम्भा गाड़ा जाता है और उसके ऊपर एक खम्भा इस तरह बाँधा जाता है कि वह चारों ओर घूम सके। चारों खम्भोंमेंसे दोके बीचमें लकड़ियाँ बाँधकर सीढ़ियाँ बना दी जाती हैं। इसे मुर्गीके पंखों, रंगीन कपड़ोंके टुकड़ों आदिसे सजाया जाता है। इस अवसरपर खण्डारा देवका आह्वान किया जाता है और उनकी पूजा की जाती है। जब इन लोगोंपर कोई विपत्ति आती है या ये बीमार होते हैं तो खण्डारा देवकी मान्यता करते हैं। यदि कोई भारी मुसीबत होती है तो लोग मेघनादपर चक्कर लगानेका भी व्रत करते हैं। इसमें मान्यता माननेवाले व्यक्तिको मेघनादके ऊपर बँधी लकड़ीपर पीठके सहारे बाँध दिया जाता है। ऊपर खड़ा एक आदमी घूमनेवाले खम्भेको सँभालता है और ऊपर बँधे हुए आदमीको जोर-जोरसे घुमाता है। इस अवसरपर खूब ढोल बजते हैं और गीत गाये जाते हैं।

भीलोंके त्योहार—राजस्थानके भील-आदिवासियोंके अधिकांश रीति-रिवाज, उत्सव एवं त्योहार बड़े ही रोचक और विचित्र हैं। ये लोग त्योहारों और उत्सवोंके दिनको शकुन मानकर अपने जीविकोपार्जनके लिये धन्धा प्रारम्भ करते हैं। अन्य हिन्दुओंकी भाँति ये गणगौर, रक्षाबन्धन, दशहरा, दीपावली एवं होली आदि त्योहार मनाते हैं, लेकिन इनके मनानेका ढंग कुछ अनूठा एवं निराला होता है।

'आवल्याँ ग्यारस' (फाल्गुन शुक्ल एकादशी)-को भील समाज मुख्य त्योहारके रूपमें मनाते हैं। मदमस्त होकर आँवलेके पीले फूल अपने पगड़ियोंमें तुर्रेके रूपमें लगाकर, जंगली फूलोंकी मालाएँ पहनकर तथा मण्डलियाँ बनाकर नृत्य और गान करते हुए ये लोग आस-पासके गाँवोंमें मेलेके रूपमें एकत्र होते हैं। इसी दिनको शकुन मानकर ये जंगलोंसे लकड़ियाँ काटकर वेचनेका धन्धा प्रारम्भ करते हैं।

होली-पर्वको ये वड़े विचित्र ढंगसे मनाते हैं। भील महिलाएँ नाचती-गाती आगन्तुकोंका रास्ता रोक लेती हैं और जवतक इन आगन्तुकोंसे इन्हें नारियल या गुड़ नहीं मिल जाता, ये रास्तेसे नहीं हटतीं। होलिकादहनके पश्चात् हाथमें छड़ियाँ लिये रंग-विरंगी पोशाकें पहने ये लोग 'गैर' (एक प्रकारका नृत्य) खेलना प्रारम्भ कर देते हैं। छड़ियों, ढोल एवं मादक तथा थाली (वाद्ययन्त्र)-की लयके साथ पाँवोंमें वँधे घुँघरुओंकी ध्वनिका तालमेल आकाशको एक अनोखी एवं मधुर ध्वनिसे ध्वनित कर देता है। इस नृत्यमें महिलाएँ भाग नहीं लेतीं। होलीके तीसरे दिन 'नेजा' नामक नृत्य वड़े ही कलात्मक एवं अनूठे ढंगसे किया जाता है। एक खम्भेपर नारियल लटकाकर आदिवासी महिलाएँ उसके चारों ओर हाथमें छड़ियाँ तथा [illegible] कोड़े लिये नृत्य करती हैं और ऐसे ही पुरुष नाचते-कूदते हुए

नारियलको प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं, महिलाएँ उन्हें छड़ियों एवं कोड़ोंसे मारती हुई भगा देती हैं। इस नृत्यमें व्रज-मण्डलकी होलीकी झलक कुछ अंशतक दिखलायी पड़ती है।

चैत्रमासमें गणगौरका मुख्य त्योहार अन्य लोगोंकी भाँति ही आदिवासी भी मनाते हैं, लेकिन आबू एवं सिरोहीके पहाड़ों और जंगलोंके बीच आदिवासी गिरासिये नृत्य और गान करते हुए गणगौरकी काष्ठ-मूर्तिको लेकर आस-पासके गाँवोंमें घूमते हैं। सावन एवं भादोंके महीनोंमें भील अपने घरोंको छोड़कर गाँवोंसे बाहर चले जाते हैं और जगह-जगह अपने इष्टदेवकी पूजा कर गौरीनृत्य प्रारम्भ करते हैं। यह कलात्मक और अनूठा नृत्य 'शिव' के जीवनपर आधारित है। भीललोग भगवान् भैरवके प्रति धार्मिक कर्तव्य सम्पन्न करनेके लिये इस नृत्यमें सैकड़ोंकी संख्यामें भाग लेते हैं।

कार्तिकमासमें दीप-पर्व ये अत्यन्त उल्लास एवं उमङ्गसे मनाते हैं। ये पशुओंको लक्ष्मी मानकर उनके ललाटपर कुंकुमका तिलक लगाकर दीपकसे उनकी आरती उतारते हैं। इस उत्सवका प्रारम्भ ये 'खेतरपाल' (खेतके प्रहरी देवता)-की पूजासे करते हैं। खेतके किसी भी ऊँचे पत्थरपर सिन्दूर डालकर, उसके सामने नीबू काटकर एवं नारियल फोड़कर रात्रिको दीपक जलाकर अर्चना करते हैं। दीप-पर्वके दिन एक विशिष्ट स्मारककी पूजा करना भी इनमें प्रचलित है। किसी सत्-चरित्र एवं लोकप्रिय आदिवासीकी असामयिक मृत्यु होनेपर उसका एक प्रस्तर-स्मारक बनाकर त्योहारोंपर उसकी अर्चना करते हैं, जिसे 'गाता-पूजा' कहते हैं। इसी अवसरपर ये एक स्नेह-मिलनका भी आयोजन करते हैं, जिसे 'मेर-मेरिया' का त्योहार कहते हैं। आदिवासी समाजमें दीपावलीके दूसरे रोज पशुओंको अलंकृत करना भी प्रचलित है।

बाणेश्वर बाबा—डूंगरपुर जिलेकी असपुर तहसीलके नवातपुरा ग्रामसे करीब डेढ़ किलोमीटरकी दूरीपर माही एवं सोम नदियोंके बीच लिङ्गाकार बाणेश्वर महादेवके मन्दिरपर माघ शुक्ल एकादशीसे पूर्णिमातक आदिवासियोंका सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण मेला लगता है। महिलाएँ सुरीली आवाजमें *'नाथी बैणासरियो मेलो नाथी घीरी रीजे ए'* (बाणेश्वर बाबासे दूजा कोई बाबा नहीं, बाणासर मेले कोई मेला नहीं) गाती हुईं दूर-दूरसे पद-यात्रा कर सैकड़ोंके झुण्डमें मेलेमें भाग लेती हैं। पुरुष पुरखोंकी अस्थियाँ इसी अवसरपर माही नदीके प्रवाहित करते हैं।

उदयपुरसे ६४ किलोमीटर दूर कोयल नदीपर 'धुलेव' (ऋषभदेव) नामक कस्बेमें प्राचीन जैन तं ऋषभदेवकी काले पत्थरकी बनी प्रतिमाका मेला लग भीललोग इन्हें कालाजी कहकर पुकारते हैं।

भीलोंका भगोरिया-पर्व होलीके ठीक बाद म जाता है। इस अवसरपर मेला लगता है। गाँवके सभी इसमें सम्मिलित होते हैं। अबीर-गुलाल उड़ती है और तथा नृत्यसे सारा वातावरण गूँज उठता है।

संथालोंके त्योहार—भारतके सुदूरपूर्वमें स आदिवासियोंकी अपनी एक अजीबोगरीब दुनिया संथाल बिहार, मध्यप्रदेश तथा उड़ीसामें रहते हैं। सोह इनका प्रसिद्ध त्योहार है। यह त्योहार प्रायः जनवरी मह पाँच दिनतक चलता है। घरकी सफाईके बाद सभी ग्रा एक जगह सम्मिलित होते हैं। जहेर तथा गोधनका अ किया जाता है। इसके साथ भिन्न-भिन्न स्थानोंमें अण्डे जाते हैं। चरवाहोंका विश्वास है कि यदि उनकी अण्डेको सूँघ ले या उसपर उसका पाँव पड़ जाय तो अत्यधिक भाग्यका सूचक है। तत्पश्चात् गायके पैर धु जाते हैं।

दूसरे दिन अपराह्णमें सरभोजका कार्यक्रम होता गाँवकी सभी कुँआरी बालिकाएँ सज-धजकर गाँ मुखियाके घर जाती हैं। वे वहाँ नाचती-गाती और गोपू करती हैं। वे पशुओंके सींगोंमें सिन्दूर और तेल लगाती उस दिन गाँवकी सभी बहुएँ अपने मायके चली जाती

इनका एक और त्योहार है—इरोक सीम। यह जून महीनेमें मनाया जाता है। यह कृषि-पर्व है।

हरियर सिमको जुलाईमें मनाया जानेवाला त्योहार तो दूरी शुण्डली ननवानी अगस्तमें मनाया जाता है। दो ही फसलोंके त्योहार हैं। फसलके फूलते-फलते त उसे काटते समय आदिवासी संथालका प्रसन्न हो स्वाभाविक है।

जगह-जगह मेले लगते हैं। यहाँके मेले बड़े रंग-बिरंगे होते हैं। आदिवासियोंकी पोशाक देखकर ऐसा लगता है, जैसे रंग-बिरंगे पुष्प किसी एक गुलदस्तेमें लाकर सजा दिये गये हों।

माघका त्योहार खाँई जौनपुरमें भी मनाया जाता है। यहाँ वैशाख तथा आषाढ़में पृथक्-पृथक् पर्व मनाये जाते हैं। दखन्यौड़ पर्वमें पशु-पूजा की जाती है। भाद्रपदमें जन्माष्टमी, माघमें माघी और फाल्गुनमें शिवरात्रिका त्योहार मनाया जाता है। दुर्योधनकी जूतेमार पूजा भी इसी इलाकेमें होती है।

मध्यप्रदेशके कोरकू आदिवासी कार्तिकमें दीपावलीका पर्व बड़े हर्षोल्लाससे मनाते हैं। वे बाल्दया (पशुगृह)· सफाई करते हैं तथा पशुओंको लोहेके गर्म औजारसे द हैं ताकि वे बीमार न पड़ें।

चम्बाके गद्दी—चम्बासे लगभग ५० मील उ गद्दी आदिवासियोंका निवास है। भरमौर उनका केन्द्र वहाँ भाद्रपदमासमें कृष्ण जन्माष्टमीके दूसरे दिन नव अमावास्यातक यात्राएँ चलती हैं।

इस प्रकार आदिवासियोंके लोकोत्सव और त्यो अपनी-अपनी संस्कृति एवं रीति-रिवाजोंको उजागर व हैं और विविधतामें एकताका संदेश प्रसारित करते हैं
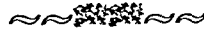
कुमाऊँके त्यार और रीति-रिवाज

(डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

हिमालयकी गोदमें बसा सुरम्य कुमाऊँ* अपने ोकोत्सवों तथा धार्मिक रीति-रिवाजोंके लिये विख्यात है। हाँके उत्सवों तथा पर्वोंमें प्रकृति नटीका अद्भुत विलास ामाहित है। पर्वतीय परिवेश होनेसे प्रकृतिकी अनुपम टाओंको बिखेरता यह क्षेत्र प्रकृतिके साथ ही स्वयं भी र्षोल्लाससे उल्लसित रहता है। प्रकृतिके सामीप्यने यहाँके ोवनमें जहाँ सादगी, सच्चाई और सहजताको सँजोया है, हीं पर्वोत्सवोंके प्रति उसे अति संवेदनशील भी बनाया है।

कुमाऊँमें बोली जानेवाली लोकभाषा 'कुमाऊँनी' का **यार'** शब्द त्योहारका वाचक है, इसमें पर्वोत्सवका भाव ी निहित है। व्रतोंके दिन भी त्यार मनानेकी परम्परा है। तोंको यहाँ **'बर्त्त'** कहा जाता है और व्रतोंके लिये जो ास्त्रीय नियम और वर्जनाएँ हैं, उनका बड़ा ख्याल रखा ाता है। कुमाऊँमें एक कहावत बड़ी प्रसिद्ध है—*'जैक् घर ृनालि वीक् घर त्यारै-त्यार, जैक् घर नानतिन् वीक् घर ौतिकै-कौतिक'* अर्थात् जिसके घरमें दूध देनेवाली गौएँ उसके यहाँ रोज ही त्योहार है और जिसके घरमें छोटे-ाटे बच्चे हैं, उसके घर रोज ही कौतिक (उत्सव) हुआ रता है। यूँ तो वर्षभरके तिथि-पर्वोंपर अन्यत्रकी भाँति हाँ भी सभी त्योहार मनाये जाते हैं, बर्त्त रखा जाता है, मेले जुटते हैं तथापि कुछ ऐसे तिथि-पर्व हैं, कुछ ऐसे त्य हैं, जो खासकर यहीं मनाये जाते हैं और इन त्यारोंके स कुछ स्थानीय रीति-रिवाज भी जुड़े हुए हैं। आगे संक्षेप ऐसे ही कुछ त्योहारोंका विवरण दिया जा रहा है—

यहाँके लोकजीवनमें सौरमासकी अधिक प्रतिष्ठा है सूर्यके एक अंशको यहाँ पैट या गते कहा जाता है। धार्मि कार्य तो चान्द्रमाससे सम्पन्न होते हैं, पर अन्य काम-का पैटके अनुसार चलता है। महीनेकी कुछ तिथियाँ स माताओंके लिये विशेष महत्त्वकी होती हैं। यथा—पड़ (प्रतिपदा), अष्टमि (अष्टमी), नौमि (नवमी), एकादशि (एकादशी), चतुर्दसि (चतुर्दशी), पुन्यू (पूर्णिमा), अमू (अमावास्या) तथा सङ्ग्राँत (संक्रान्ति)।

पुन्यू तथा सङ्ग्राँतको बर्त्त रखा जाता है, नियमसे रह जाता है और दान-पुण्य होता है। इस दिन प्रायः प्रत्येक घरमें शामको श्रीसत्यनारायणव्रतकी कथा होती है। अमूसको पितरोंकी तिथि माना जाता है। इस दिन माताएँ प्रातः ही उठकर घरकी सफाई तथा स्नानादिसे निवृत्त होकर घरके मुख्य द्वारकी देहलीको गोबरसे लीपती हैं (इसे *'देलीको लगाना'* कहते हैं) तथा उसपर जौ बिखेरती हैं। यह माना जाता है कि आज पितर घरमें आते हैं। गोग्रास दिया जाता है, ब्राह्मणको भोजन कराकर

---

* नवगठित पर्वतीय राज्य 'उत्तराञ्चल' के दो खण्ड हैं—कुमाऊँ तथा गढ़वाल। इन दोनों खण्डोंमें तेरह जनपद हैं। कुमाऊँमें—पिथौरागढ़, ल्मोड़ा, नैनीताल, चम्पावत, बागेश्वर तथा ऊधमसिंहनगर और गढ़वालमें—पौढ़ी, उत्तरकाशी, चमोली, टिहरी, रुद्रप्रयाग, देहरादून तथा रद्वार। यहाँपर कुमाऊँके पर्वोत्सवोंकी एक झलक प्रस्तुत है। गढ़वालकी पर्वोत्सव-परम्परा भी अतिसमृद्ध है। बदरी-केदारधाम गढ़वालमें पड़ता है।

दक्षिणा दी जाती है। कुछ लोग सराद (श्राद्ध) भी करते हैं। आजके दिन घरमें ऐपण (अल्पना) नहीं डाले जाते। प्रतिपदाको भी व्रत रखा जाता है। व्रतके दिन स्नान, पूजन तथा एक समय फलाहारका चलन है। अष्टमी तथा चतुर्दशीको शिवतिथि मानकर अपने इष्टदेवके मन्दिरमें खड़ड्पाठ (रुद्रीपाठ) करवाया जाता है। नवमीको प्राय: देवीकी आराधना होती है, दुर्गापाठ होता है। एकादशीको बड़ी श्रद्धासे बर्त्त रखा जाता है, सूर्यास्तसे पूर्व एक समय फलाहार करनेकी परम्परा है। फलार (फलाहार)-में प्राय: यहाँ होनेवाले कन्द तैड़को उबालकर खाया जाता है या उगल (एक फलाहारी अन्न)-का हलुआ या पूरी बनायी जाती है। इस दिन बड़े ही सात्त्विकभावसे रहा जाता है।

स्त्रियाँ वैशाख, कार्तिक, माघ-स्नानका नियम लेती हैं। वैशाखमें सौंफ-कालीमिर्च मिले शरबतका दान करती हैं तथा गुड़पापड़ी (पंजीरी) वामनज्यू (ब्राह्मण)-को खिलाती हैं। कार्तिकका महीना आया तो त्यार-ही-त्यार, बर्त्त-ही-बर्त्त, उत्सव-ही-उत्सव। औरतें तुलसी मैयाका ब्याह रचाती हैं, हरिजागरण कर गीत गाती हैं—*'तुलसा महारानी नमो नमो हरिकी पटरानी नमो नमो।'* चातुर्मासमें भी रातभर भजन-कीर्तन चलता है। स्त्रियाँ माघमें तिल दान करती हैं। मकर-संक्रान्तिको पवित्र नदियोंमें स्नान होता है। इस दिन काले उड़दकी खिचड़ी दान करने एवं खानेका रिवाज है।

त्योहारों तथा उत्सवोंके मौकोंपर घर-घर कमेट (एक प्रकारकी सफेद मिट्टी)-से ऐपण (अल्पना) डाले जाते हैं। शादी-ब्याहके मौकोंपर दीवालोंपर विविध रंगोंसे सर्वतोभद्र आदि चित्रित किये जाते हैं। संस्कारोंके उत्सवोंपर '**शकुनाँखर**' (सगुनके गीत) गाये जाते हैं। त्योहारोंपर नये परिधानोंको पहनने, सजने-सँवरने, परस्पर मिलने तथा बड़े-बूढ़ोंका आशीर्वाद लेनेका रिवाज है। शुभ कार्योंमें सौभाग्यवती स्त्रियाँ रङ्यालीका पिछौड़ा (ओढ़नी) ओढ़कर सगुन मनाती हैं। औरतें रोज सुबह नहा-धोकर पीपलमें जल चढ़ाती हैं। उत्सवोंके मौकोंपर खूब खयौल-पियौल, झर-फर होती है। जो लोग साधनसम्पन्न हैं उनके यहाँ खूब दैल-फैल रहती है।

श्रावण मासमें घर-घर पार्थिव-पूजनका महोत्सव बनाते हैं। फिर प्रतिष्ठाकर सामूहिक रूपसे पूजन-आरती आदिका क्रम चलता है। श्रावणकी पूर्णिमाको **जनेपुन्यू** (श्रावणीपूर्णिमा)-का सामूहिक पर्वोत्सव होता है। यज्ञोपवीतकी प्रतिष्ठाकर धारण किया जाता है। इस दिन घर-घर खीर बनती है। बहनें भाइयोंको रक्षा बाँधती हैं।

शादी-ब्याह और जनेऊकी बात छोड़ भी दी जाय तो '**जनमबार**' के उत्सवका यहाँ बड़ा भारी चलन है। बच्चेकी जन्मतिथिको होनेवाला यह (अब्दपूर्ति, वर्धापन, वर्षवृद्धिका) त्योहार बड़े ही धूम-धामसे मनाया जाता है। मार्कण्डेय, षष्ठीदेवी, सप्तर्षि, जन्मनक्षत्र तथा माता-पिताका पूजन होता है। बालकको हल्दी लगाकर स्नान कराया जाता है। नये वस्त्र पहनाये जाते हैं, बच्चेके हाथमें प्रतिष्ठित रक्षा-पोटलिका बाँधी जाती है। जनमबारके गीत गाये जाते हैं। पुए बनाये जाते हैं, इन्हींका नैवेद्य लगता है तथा सबको खिलाये-बाँटे जाते हैं।

आश्विनमासके पितृपक्षको यहाँ '**सोलसराद**' कहते हैं। श्राद्धके दिन ब्राह्मण-भोजनके अनन्तर पास-पड़ोसके सभी लोगोंको भी खिलाया जाता है। पितरोंकी पत्तल गायको खिलायी जाती है। ब्राह्मणको दक्षिणाके साथ ही दाड़िमके बीज तथा अखरोटके गुद्यालके साथ कसार (धुले चावलोंका आटा) दिया जाता है। श्राद्धके एक दिन पहले एकाबखत (एकभुक्तव्रत) रखा जाता है। श्राद्धके दिन बड़ा, खीर तथा रायता अवश्य बनाया जाता है। कविवर गुमानीने श्राद्धोंके बीत जानेपर श्राद्धीय ब्राह्मणोंकी दशाका चित्रण करते हुए कहा है—*'बीता सोलसराद हाय आकाशचाणी भई।'*

कुमाऊँमें होनेवाला एक अनूठा त्योहार है—'**पुस्यूड़**' या '**काले-काले**'। यह उत्तरायणीके पर्वपर होता है। बड़े लोग तो स्नान-दानमें लगे रहते हैं पर बच्चे दूसरा ही कौतिक मनाते हैं। एक दिन पहले ही रातमें सभी बच्चोंके लिये मीठे खजूरों (एक पक्वान्न)-की माला बना ली जाती है। ठण्डके दिन रहते हैं, फिर भी बच्चे सवेरे ही अपनी-अपनी माला गलेमें डालकर आँगनमें आ जाते हैं और *'काले-काले बड़ पुआ खा ले'* कहते हुए कौएको बुलाते हैं और उसे बड़ा तथा पूरी खिलाते हैं। कहते हैं कि इस दिन सुबह ही कौए गङ्गा-स्नान कर आते हैं। बिना कौएको खिलाये बच्चे कुछ

होता होगा। गाँव-घरकी लड़कियाँ कोई दिन निश्चित कर घरवालोंसे पूछकर किसी लड़कीके घर जाकर एकान्तमें यह उत्सव मनाती हैं। अपने-अपने घरोंसे विविध व्यञ्जनोंकी सामग्री लेकर सभी एकत्र होकर विविध पक्वान्न तथा व्यञ्जन बनाती हैं, मिल-बाँटकर खाती-खिलाती हैं, खूब उल्लास मनाती हैं, हँसी-खुशीके गीत गाती हैं, आपसमें विनोद करती हैं तथा विविध स्वाँग रचाकर आनन्द मनाती हैं, रात्रि वहीं जागरणकर प्रातः घर लौटती हैं।

अन्य मुख्य त्यारोंमें हरियालीभरा **'हरेला'** का त्यार है। आषाढ़में नौ दिनतक उगाये गये धान्यांकुरोंको दसवें दिन कर्कसंक्रान्तिको पूजन करके काटा जाता है। देवताको चढ़ाया जाता है। देवताका आशीष मानकर सब लोग हरेलेको सिरपर धारण करते हैं। जो पारिवारिक जन बाहर दूर देशमें हैं उन्हें पत्रद्वारा **'हरेलेके तिनाड़े'** भेजे जाते हैं। इस दिन विविध पक्वान्न बनते हैं। **'घ्यू सङ्गाँत'** (ओलगिया)-का त्योहार भी होता है।

भाद्रपदमासमें **'सातों-आठों'** का उत्सव होता है। हरी घासके गौरा-महेशर (गौरा-महेश्वर) बनाकर किसी घरमें थापे (स्थापित किये) जाते हैं। सामूहिक रूपमें स्त्रियाँ पूजन करती हैं। कई दिनतक उत्सव चलता है। 'हो भलो' कहते हुए कथा सुनी जाती है। विरूढ़ (अंकुरित धान्य)-का नैवेद्य लगता है। रातको 'खेल' लगते हैं। गौरा-महेश्वरके विवाह तथा लीलाके गीत न्यौली गीतोंके माध्यमसे गाये जाते हैं। विरहलीलाका एक गीत है—

सिलगड़ी का पाला-चाला गिन खेलन्या गड़ो न्यौल्या।
तँ होए हिसालू तोपो मँ उड़न्या चड़ो न्यौल्या॥

इसी प्रकारके उत्सव-गीत मडुवेकी गोड़ाई या धानकी रोपाईमें हुड़के (एक प्रकारका डमरू-जैसा वाद्य)-की ध्वनिके साथ भी गूँजते हैं। दूसरे मौकोंपर भगन्यौल भी गाये जाते हैं। कहीं-कहीं **डिगारा-पूजन** होता है। मिट्टीसे शिव-पार्वतीकी मूर्ति (डिगारा) बनाकर उनका विवाहोत्सव बड़े धूम-धामसे मनाया जाता है।

यह बात स्पष्ट है कि कुमाऊँके लोकोत्सवोंमें धार्मिक मर्यादा तथा पूजनका भाव विशेषरूपसे रहता है। यहाँके प्रत्येक पर्वतकी चोटीमें या तो शिव प्रतिष्ठित हैं या भगवती पार्वती विराजमान हैं। इन दोनोंको लेकर ही यहाँकी सारी संस्कृति बनी हुई है। विशेष तिथि-पर्वोंपर इनके मन्दिरोंमें बड़े भारी मेले लगते हैं। चौपख्या, कालिका, पूर्णागिरि, विखौती, देवीधूराका बग्वाल मेला, वाराही मेला, मोस्टामाण्डू, ध्वज, थलकेदार, झुणिङ्, जौलजीवी, जागेश्वर, बागेश्वर, कपिलेश्वर, उत्तरायणी आदिके मेलोंके उत्सव बहुत प्रसिद्ध हैं। नन्दादेवीकी जात निकलती है। हिलजात्रा मेलेका दृश्य बड़ा ही रोमाञ्चक होता है। आश्विन-कार्तिकमें रामलीलाओंके श्रद्धाभरे उत्सव बड़े ही सुहावने होते हैं।

कुमाऊँके लोक-देवताओंके पूजनके महोत्सव भी खूब हुआ करते हैं। गोल्ल, भनरिया, गङ्गनाथ, ऐड़ी, चौमू, गुस्यानी आदि लोकदेव हैं। इनकी प्रसन्नताके लिये अग्निके साक्ष्यमें जागर तथा खेल लगाये जाते हैं। जागर जगानेवाले जगरिये कहलाते हैं। नवरात्रोंके अवसरपर तो २२ दिनतकका उत्सव होता है। इन दिनों बड़े संयम-नियमसे रहना पड़ता है। रहनी-करनीमें जरा-सी भी चूक हुई तो गौंत (गोमूत्र) छिड़का जाता है।

होली-दीपावलीके उत्सव तो यहाँ भी धूम-धामसे होते हैं, पर थोड़ी विचित्रता है। धनतेरसको प्रायः सामान्य उत्सव होता है। हाँ नरकचतुर्दशीको प्रातः ही स्नान करना आवश्यक होता है। शामको घरमें जितने सदस्य हैं एक बड़े दीपकमें उतनी बत्तियाँ जलाकर उसे घरके बाहर यमके निमित्त रखा जाता है। अमावास्याको घरभरमें ऐपण (अल्पना) पड़ते हैं तथा महालक्ष्मीके पौ (चरणचिह्न) बनाये जाते हैं। गोवर्धनके दिन श्रीकृष्ण तथा गायोंके पूजनमें दही, दूध तथा मक्खनका नैवेद्य लगता है। गायोंको माला पहनायी जाती है, ठप्पे लगाकर उनका शृङ्गार किया जाता है। भैयादूजको **'बगवालीका त्यार'** या **'दुतियाका त्यार'** कहा जाता है। इस दिन घर-घर सिङ्गल (एक विशेष प्रकारका पक्वान्न) बनता है जो बड़ा ही स्वादिष्ट होता है। बहनें भाईके टीका करती हैं।

फाल्गुनके मस्त महीनेमें यहाँ रंगोंकी बहार आ जाती है, खूब अबीर-गुलाल उड़ता है। भगवान् श्रीकृष्णकी, गोपियोंकी, व्रजकी तथा बरसानेकी होरियाँ गायी जाती हैं। बनजारे गाये जाते हैं। तरह-तरहका उत्सव होता है। यहाँ प्रायः अष्टमी या एकादशीसे होली शुरू हो जाती है जो पूर्णिमाको होलिकादहनके साथ पूरी होती है। प्रतिपदाको छरड़ी होती है। होलीके विशेष रसिया गायक होलार कहलाते हैं। गाँवके मुख्य आँगनमें कोई हरा पेड़ गाड़कर उसपर घर-घरसे आयी हुई चीर (रंग-विरंगी कपड़ोंके टुकड़े) बाँधी जाती है, उसी वृक्षके नीचे रातमें खड़ी-होलीका गायन होता है। दिनभर होलारोंकी टोलियाँ घर-घर जाकर होली गाती हैं। रातभर बैठ-होलीकी बैठकोंमें

होलीके पक्के राग गाये जाते हैं। होलीके पेड़में बँधी चीरको होलिकादहनके दूसरे दिन खोलकर लोग अपने-अपने घरोंमें ले जाते हैं। इसे गोपिकाओंका पवित्र वस्त्र समझकर आदर-मान दिया जाता है।

चैत्रमासमें एक खास त्यार यहाँ होता है, नाम है—**'भिटौली या भिटौल्।'** भाई-बहनके पावन-सूत्रको बल देता भिटौलीका त्यार यहाँ घर-घर मनाया जाता है। इस त्योहारके पीछे एक मार्मिक घटना जुड़ी हुई है। कहा जाता है कि बहुत समय पहले भानद्योको अपनी सुलक्षणा तथा रूपराशिसे सम्पन्न गोरीधाना नामक कन्याका विवाह विवश होकर कोसिया राज्यके राजा कालीनागके साथ करना पड़ा था। विवाहके बाद बहुत वर्षोंतक गोरीधाना अपने मायके न आ सकी। इधर भानद्योको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई, उसका नाम साइद्यो रखा गया। जब वह बड़ा हुआ तो उसे अपनी बहन गोरीधानाकी दुःखद कहानी मालूम हुई। बहनके दुःखसे दुःखी साइद्यो अपने माता-पिताके द्वारा रोके जानेपर भी बहुत-सी भेंट (वस्त्राभूषण तथा विविध पक्वान्न) लेकर चैत्रमासमें बहनसे मिलने चल पड़ा। इधर माताको अनेक अपशकुन होने लगे। रास्तेमें उसे गोरीधानाकी ननद भागा मिली। वह साइद्योको लेकर अपनी भाभीके पास पहुँची। पहली बार बहन-भाईने एक-दूसरेको देखा तो हर्षके आँसू छलक पड़े। दौड़कर दोनों गले मिले। भाईको अपनी दीदी (बहन)-को प्रणाम करनेतकको सुध न रही। यही भूल भागाके हृदयमें पापके जन्म लेनेका कारण बनी। भागाने सोचा यदि यह भाभीका भाई होता तो जरूर पहले प्रणाम करता, मालूम पड़ता है यह कोई और ही है। अब तो भागा उन दोनोंको संदेहकी दृष्टिसे देखने लगी। उस समय कालीनाग महलमें नहीं था।

पहली बार भाई भिटौली लेकर आया था। अतः गोरीधाना भाईके साथ कालीनागकी अनुपस्थितिमें मायकेको चल दी। इधर जब राजा कालीनाग महलमें आया तो भागाने उसे सारी घटना बता दी। कालीनाग उनका पीछा करने लगा। नदी पार करनेपर उसकी नजर गोरीधाना तथा साइद्योपर पड़ी। कालीनागने दूरसे ही साइद्योको अपनी रानीके अपहरणकर्ताके रूपमें ललकारा तो इस पापपूर्ण आक्षेपको साइद्यो सह न सका, उसने अपने पेटमें कटार घोंप ली। कालीनाग समीप पहुँचा तो सब कहानी जानकर बड़ा दुःखी हुआ, उसने भी तलवारसे अपना सिर काट लिया।

गोरीधानाका तो मायका तथा ससुराल—दोनों उजड़ चुके थे। अतः उसने भी मृत्युका वरण कर लिया। सारी कहानी खत्म हो चुकी थी।

इस दुःखद घटना तथा भाई-बहनकी पवित्र भावना और स्नेहसूत्रकी स्मृति दिलाता यह भिटौलीका त्यार तभीसे चैत्रमासमें चल पड़ा और तभीसे चैत्रमासमें मायकेकी ओरसे लड़कीको भेंट देनेकी परम्परा चल पड़ी और एक बड़े पवित्र पर्वके रूपमें घर-घर इसकी मान्यता हो गयी। साथ ही एक रिवाज और चल पड़ा कि चैत्रमासमें लड़कीको मायकेकी यात्रा नहीं करनी चाहिये। आज भी लड़कियोंको मायकेकी ओरसे भिटौली भेजी जाती है। भिटौलीकी प्रतीक्षामें उसका मन बड़ा ही व्यग्र तथा उदास रहता है। चैत्रमासमें जब कपू चड़ा (कपू नामक चिड़िया) बोलती है तो उसे मायकेकी याद सताने लगती है—

सुर-सुर बयालो लाग्यो चैत का मैणा को।
कपुआ वासन लाग्यो उदास बैणा को॥

वह कपूसे कहती है तू मेरे मायके जाकर वासना (चहचहाना) ताकि उन्हें मेरी याद आये—

'बास-बास कपू चड़ा मेर मैत बास।'

इस त्योहारकी इतनी मान्यता हो गयी कि लड़कीके विवाहमें विदाईके समय ही पहली भिटौलीके रूपमें विविध पक्वान्न तथा वस्त्राभूषण उसके साथ दे दिये जाते हैं। ससुरालमें पहुँची भिटौली लड़कीकी प्रतिष्ठाका विषय बन जाती है। इतना ही नहीं कुँआरी कन्याओंका भी भिटौली-त्योहार चैत्रमें किया जाता है। इस दिन कन्याएँ सँजती-सँवरती हैं, बड़ोंका आशीर्वाद लेती हैं तथा माँसे प्राप्त अक्षत तथा पुष्पोंसे द्वार-देहलीका पूजन कर अपनी सखियोंके साथ गाँवके सभी घरोंमें जाकर देहली-पूजन करती हैं, वहाँ भी उन्हें अक्षत तथा पुष्प प्राप्त होते हैं। वादमें उन चावलोंका आटा बनाकर उसके निमित्त विविध पक्वान्न बनाये जाते हैं। घर-घर यह उत्सव होता है। ये अक्षत उसके अखण्ड सौभाग्य तथा पुष्प पुष्पवती तथा फलवती होनेके प्रतीक रूप हैं।

इस प्रकार कुमाऊँमें अनेक प्रकारके त्योहार, पर्व तथा उत्सव मनाये जाते हैं। त्योहारोंके बीतनेपर बड़ा निःश्वास (मार्मिक उदासी) लगता है तथा प्रियजनोंकी याद आनेपर वाटुली (हिचकी) लगती है—ऐसा यह कुमाऊँका लोकजीवन पर्वोत्सवोंके प्रति अत्यन्त संवेदनशील है।

अस्तेयव्रत तथा अस्तेयव्रती शङ्ख-लिखितका आख्यान

(डॉ० आचार्य श्रीरामकिशोरजी मिश्र)

अस्तेय अर्थात् चोरी न करनेकी गणना दस धर्मोंके अन्तर्गत की जाती है, जैसा कि भगवान् मनुने लिखा है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

(मनुस्मृति ६।९२)

ऋषि शङ्ख और लिखित अस्तेय धर्मके पालक थे। उन्होंने इसके पालनके लिये व्रत ले रखा था। जो धर्मव्रतका पालन करता है, भगवान् उसे ही प्राप्त होते हैं और जो ईश्वरको प्राप्त कर लेता है, वह सांसारिक बन्धनसे मुक्त हो पुनर्जन्म प्राप्त नहीं करता। जिन लोगोंकी धर्मव्रतमें श्रद्धा नहीं होती, वे जन्म-मृत्युरूपी संसारचक्रमें भ्रमण करते रहते हैं। कहा गया है—

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥

(गीता ९।३)

ऋषि शङ्ख और लिखित अस्तेयव्रतमें पूर्ण श्रद्धा रखते थे। एक बार ऋषि लिखित अपने अग्रज ऋषि शङ्खके आश्रममें गये तो वहाँ उन्हें न शङ्ख मिले और न ही उनकी पत्नी। लिखित क्षुधापीड़ित थे। इस कारण उन्होंने भ्राताके उपवनसे एक फल तोड़ लिया और उसे खाने लगे। उसी समय ऋषि शङ्ख आ गये और उन्होंने लिखितको फल खाते हुए देख लिया। शङ्खने अनुज लिखितको प्रेमपूर्वक अपने समीप बुलाया और उनसे कहा—भ्राता लिखित! तुम मेरे आश्रममें आये और तुमने मेरे उपवनको अपना उपवन समझकर उससे फल तोड़ कर खाया। इससे मेरा मन प्रसन्न तो हुआ, किंतु जिस अस्तेय धर्मका व्रत हमने ले रखा है, उसके पालन करनेसे तुम विमुख हुए हो, अतः तुम दण्डके भागी हो।

ऋषि लिखितने अपने अग्रज शङ्खसे कहा—भैया! आप जो चाहें दण्ड दे सकते हैं, मैं उसे सहर्ष स्वीकार करनेको तैयार हूँ। ऋषि शङ्ख बोले—मैं दण्डविधाता नहीं हूँ। दण्ड देनेका अधिकार तो यहाँके राजाको है, अतः उनके पास जाओ और दण्ड प्राप्त कर चौरकर्मके अपराधसे मुक्त हो जाओ। ऋषि लिखित राजाके पास गये और उन्होंने राजाको अपनी स्तेयकथा कह सुनायी। राजाने कहा—जिस प्रकार राजाको दण्ड देनेका अधिकार है, उसी प्रकार क्षमा करनेका भी उसे अधिकार है। लिखितने उन्हें आगे बोलनेसे रोक दिया और कहा—आप दण्डविधानका पालन करें। स्तेयका जो भी दण्ड ब्राह्मणोंने निश्चित कर दिया है, उसे आप क्रियान्वित करें। ऋषि लिखितके कथनको सुनकर राजाने उनके कलाईतक दोनों हाथ कटवा दिये।

लिखित हाथ कटवाकर बड़े भाई शङ्खके पास लौट आये और उनसे प्रसन्न होकर बोले—भैया! मैं राजासे दण्ड लेकर आया हूँ। देखो, मैंने आपकी अनुपस्थितिमें आपके उपवनसे एक फल तोड़कर जो चोरी की थी, उसके दण्डस्वरूप राजाने मेरे दोनों हाथ कटवा दिये। अब तो आप प्रसन्न हैं न। शङ्खने उत्तर दिया—अब मैं प्रसन्न हूँ; क्योंकि तुम स्तेय नामक अपकर्मसे मुक्त हो गये हो। आओ, पुण्यसलिला नदीमें स्नानकर सन्ध्या-वन्दन करें। लिखितने भाई शङ्खके साथ नदीमें स्नान किया। तर्पण करनेके लिये जैसे ही लिखितके दोनों हाथ जलसे उठे तो वैसे ही वे हाथ पूर्ववत् हो गये।

ऋषि शङ्खका अस्तेयव्रत कभी खण्डित नहीं हुआ था। उनकी मनोवाञ्छा थी कि भाई लिखितके दोनों हाथ पूर्ण हो जायँ। हस्तपूर्णता देखकर लिखितने कहा—भैया! यही करना था तो आपने मुझे राजाके पास क्यों भेजा? शङ्खने उत्तर दिया—अपराधका दण्ड तो राजा ही दे सकता है, किंतु धर्मव्रत-पालक समर्थ ब्राह्मणको उसे क्षमा करनेका भी अधिकार है। अतः मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया, जिससे तुम्हारे हाथ पूर्ण हो गये। अब तुम अस्तेयव्रतका पालन करते हुए प्रतिदिन गङ्गामें स्नान करना, इससे तुम स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित हो सकोगे। महर्षि लिखितने अपने ग्रन्थ 'लिखितस्मृति' में पतितपावनी गङ्गाके माहात्म्यके विषयमें लिखा है कि जबतक व्यक्तिकी अस्थि परमपुनीत गङ्गाजीमें रहती है, उतने हजार वर्षोंतक वह व्यक्ति स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित रहता है—

यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥

(श्लोक ७)
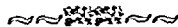
सोमवारव्रतकी कथा, विधि और महिमा

पूर्वकालमें महादेवजीने देवी पार्वतीको सोमवारव्रतके माहात्म्यकी कथा बताते हुए कहा—देवि! कैलासके उत्तरमें निषध-पर्वतके शिखरपर स्वयम्प्रभा नामक एक विशाल पुरी है। उसमें धनवाहन नामक एक गन्धर्वराज रहते थे। अपनी पत्नीके साथ रहकर वे वहाँ दिव्य भोगोंका उपभोग करते थे। समयानुसार उनके आठ पुत्र हुए। पुत्रोंके बाद एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम गन्धर्वसेना था। वह अत्यन्त रूपवती थी, गन्धर्वसेनाको अपने रूपका बड़ा ही अभिमान था। वह अक्सर यह कहा करती थी कि 'संसारमें कोई देवता अथवा दानव मेरे रूपके करोड़वें अंशके भी बराबर नहीं है।' एक दिन आकाशचारी एक गणनायकने जब उसकी बात सुनी तो अहंकारमें भरी हुई उस कन्याको उसने शाप दे दिया—'तुम रूपके अभिमानमें गन्धर्वों और देवताओंका तिरस्कार करती हो, अत: तुम्हारे शरीरमें कोढ़ हो जायगा।' यह शाप सुनकर वह कन्या भयभीत हो गयी और साष्टाङ्ग प्रणाम करके दयाकी भीख माँगने लगी। उसके विनयसे गणनायकको दया आ गयी और उसने कहा—'यह तुम्हारे गर्वका फल है, इसलिये गर्व कभी नहीं करना चाहिये। हिमालयके वनमें गोशृङ्ग नामक एक श्रेष्ठ मुनि रहते हैं। वे तुम्हारा उपकार करेंगे।' यों कहकर गणनायक चला गया। गन्धर्वसेना उस सुन्दर वनको छोड़कर पिताके समीप आयी और कुष्ठ होनेका सब कारण कह सुनाया। इससे उसके माता-पिता शोकसे संतप्त हो उठे और पुत्रीको साथ लेकर तुरंत ही हिमालय पर्वतपर आये। वहाँ उन्होंने गोशृङ्ग ऋषिका दर्शन करके स्तुति-प्रणाम किया तथा उनके सामने भूमिपर बैठ गये। मुनिके पूछनेपर गन्धर्वराजने कहा—'मेरी कन्याका शरीर कुष्ठरोगसे पीड़ित है। जिससे उसकी शान्ति हो, वह उपाय बतानेकी कृपा करें।'

गोशृङ्गजी बोले—'भारतवर्षमें समुद्रके समीप सर्वदेववन्दित भगवान् सोमनाथ विराजमान हैं। वहाँ जाकर मनुष्योंको एक समय भोजन करते हुए सब रोगोंके नाशके लिये सोमनाथकी पूजा करनी चाहिये। तुम सोमवारव्रतके द्वारा भगवान् शङ्करकी आराधना करो, ऐसा करनेसे तुम्हारी पुत्रीका रोग नष्ट हो जायगा।'

महर्षिका यह वचन सुनकर गन्धर्वराजने वहाँ जानेका विचार किया और गोशृङ्गमुनिसे पूछा—'भगवन्! सोमवारव्रत कैसे करना चाहिये और किस समय उसका अनुष्ठान उचित है?'

गोशृङ्गजीने कहा—महाप्राज्ञ! पहले सोमवारको ब्राह्मवेलामें उठकर शौच आदिसे निवृत्त हो दन्तधावन करे, फिर स्नान करके स्वधर्मके अनुसार नित्यकर्म करे। उसके बाद सुन्दर समतल एवं शुद्ध स्थानमें एक उत्तम कलश स्थापित करे, जिसमें आमका पल्लव डाला गया हो और जिसपर चन्दनसे भाँति-भाँतिके चित्र बनाये गये हों। कलशके ऊपर एक पात्र रखे और उसमें जटामुकुट-मण्डित सर्वाभूषणभूषित श्वेतवस्त्रधारी अर्द्धनारीश्वर भगवान् शिवकी प्रतिमा स्थापित करे। तत्पश्चात् उमासहित महेश्वरकी श्वेतवस्त्रों और भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके द्वारा पूजन करे। बिजौरा नीबू अर्पित करे। निम्नाङ्कित मन्त्रसे पूजा करे—

नमः पञ्चवक्त्राय दशबाहुत्रिनेत्रिणे।
देव श्वेतवृषारूढ श्वेताभरणभूषित॥

उमादेहार्द्धसंयुक्त नमस्ते सर्वमूर्तये।

(स्कन्दपुराण, प्रभासखण्ड)

महादेव! आप श्वेत वृषभपर आरूढ, श्वेत आभूषणोंसे भूपित तथा आधे शरीरमें भगवती उमासे संयुक्त हैं। आपके पाँच मुख, दस भुजाएँ तथा प्रत्येक मुखके साथ तीन-तीन नेत्र हैं। आपको नमस्कार है। आप सर्वस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है।

इस मन्त्रसे पूजन और स्तुति करके रात्रिमें भोजन करे। सोमनाथ महादेवजीका ध्यान करते हुए कुशकी चटाईपर सोये। ऐसा करनेपर अठारह प्रकारके कुष्ठ-रोगोंका नाश होता है। दूसरे सोमवारको करञ्जका दन्तधावन कर ज्येष्ठा-शक्तिसे संयुक्त शिवका कमलके फूलोंसे विधिपूर्वक पूजन करे। भगवान्‌को नारंगी चढ़ाये। शेष सब विधि पूर्ववत् करे। ऐसा करनेसे लाख गोदानका फल प्राप्त होता है। तीसरे सोमवारको अपामार्गकी दातून करके शिवजीका पूजन करे। अनारके फलका भोग लगाये तथा चमेलीके फूलोंसे पूजा करे। उस दिन सिद्धि नामक शक्तिके साथ शिवकी पूजा करनी चाहिये। चौथे सोमवारको गूलरकी दातून करनेका विधान है। उस दिन उमासहित गौरीपतिकी पूजा करे, नारियलका फल चढ़ाये और दवने (दौना)-के पत्तेसे पूजा करे। रातमें जागरण करे। पाँचवें सोमवारको विभूतिसहित गणेश्वरकी कुन्दके फूलोंसे पूजा करे। पीपलकी दातून करे और मुनक्काके साथ अर्घ्य दे। ऐसा करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। छठे सोमवारको भद्रासहित स्वरूप नामक शिवका पूजन करे। चमेलीकी दातून करे और धतूरके फलसे अर्घ्य दे। उस दिन बेलाके फूलोंसे परम भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। सातवें सोमवारको बेलाकी दातून करे और दीप्ता-शक्तिके साथ सर्वज्ञ शिवकी पूजा करे। जँभीरी नीबूका फल अर्पण करे और चमेलीके फूलोंसे पूजा करे। ऐसा करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है। आठवें सोमवारको केलेके फल और मरुआके फूलोंसे अमोघा-शक्तिसहित जगदीश्वर शिवका पूजन करे। इससे अग्निष्टोमयज्ञका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार आठ सोमवारव्रत करके नवें सोमवारको व्रतका उद्यापन करे। ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित गोल मण्डप और कुण्ड बनाये। चार दरवाजे बनाकर मण्डपके मध्यमें चौकोर वेदीका निर्माण करे। उसपर मण्डल बनाकर बीचमें कमल बनाये। आठों दिशाओंमें पृथक्-पृथक् सुवर्णसहित कलश स्थापित करके पूर्वसे लेकर वामादि शक्तियोंकी स्थापना करे। कर्णिकामें परम प्रकाशमय श्रीसोमनाथजीको विराजमान करे। सोमनाथजीकी सुवर्णमयी प्रतिमा मनोमती नामक शक्तिके सहित स्वर्णशय्यापर स्थापित करनी चाहिये। सुवर्ण अथवा रजत आदिके पात्रको शहदसे भरकर उसे स्वर्णशय्यापर आच्छादित करके रख दे और उसीपर शिवप्रतिमाका पूजन करे। फिर वस्त्र, आभूषण, ताम्बूल, छत्र, चँवर, दर्पण, दीप, घण्टा, चँदोवा, शय्या और गद्दा आदि वस्तुएँ सोमनाथकी प्रीतिके उद्देश्यसे आचार्यको दान करे। वहीं होम कराये। पूजन करके रातमें वहीं जागरण करे। अपने हृदयमें सोमनाथजीका ध्यान करते हुए पञ्चगव्य पीकर रहे। प्रातःकाल स्नान करके विधिपूर्वक सोमदेवका ध्यान करे। तत्पश्चात् दूध और खाँड़से बने हुए अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके द्वारा नौ ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये। दो वस्त्रों और एक गोका दान करके विसर्जन करे। इस प्रकार सोमवारव्रतका पालन करनेवाला पुरुष अक्षय पुण्यका भागी होता है।

गोशृङ्गमुनिके यों कहनेपर गन्धर्वराज धनवाहन अपनी पुत्रीके साथ सब उपहार लेकर प्रभासक्षेत्रमें आये। वे सोमनाथजीका दर्शन करके आनन्दमें मग्न हो गये। सोमनाथजीका पूजन करके उन्होंने कन्यासहित सोमवारव्रत किया। इससे उनके ऊपर सोमनाथजी प्रसन्न हुए और उन्होंने उनकी कन्याके रोगोंका नाश करके समस्त कामनाओंकी सिद्धि देनेवाला गन्धर्वदेशका राज्य तथा अपनी भक्ति दी।

[प्रेषक—श्रीप्रबलकुमारजी सैनी]
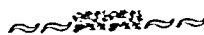
षष्ठी-महोत्सव

[रविषष्ठीव्रतका माहात्म्य एवं कथा]

(श्रीविश्रामदत्तजी द्विवेदी)

आदि प्रकृति या मूल प्रकृतिके छठे अंशसे जिस देवीका प्रादुर्भाव हुआ, उसे षष्ठीदेवी कहते हैं। इन्हें कात्यायनीदेवी भी कहा जाता है। ऋग्वेदके दशम मण्डलके सूक्त १२५ मन्त्र १ में पराम्बादेवी अपने मुखसे कहती हैं कि '**अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।**' अर्थात् ग्यारह रुद्रों, आठ वसुओं, बारह सूर्यों एवं विश्वेदेवोंमें उनके रूपमें मैं विचरण करती हूँ। षष्ठीदेवीके व्रतमें षष्ठीदेवीके साथ सूर्यकी पूजा की जाती है। पूजनकी प्रत्येक सामग्री जोड़ेमें खरीदी जाती है—एक जोड़ी, छः जोड़ी या बारह जोड़ी। उसमें एक भाग षष्ठीदेवी तथा दूसरा भाग सूर्यकी पूजामें रखा जाता है। उसको सूर्यार्घ्यमें सूर्यदेवके लिये अर्पित किया जाता है। इस व्रतमें साक्षात् सूर्यकी प्रातःकालीन आभाका देवीके रूपमें दर्शन कर भक्त अपनेको धन्य मानते हैं। शुम्भ-निशुम्भ-वधके बाद इन्हीं देवीके समक्ष देवताओंने स्तुति की थी—

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम्।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्
विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। २)

देवीका वर्ण प्रातःकालीन सूर्यप्रभाके समान नारंगी है। प्रातःकालीन दिवाकरकी आकृतिके रूपमें देवी षष्ठीको माना जाता है। इसलिये षष्ठीदेवीके साथ सूर्यकी पूजा की जाती है।

नवजात शिशुका छठवें दिन छठियार (षष्ठी-महोत्सव) मनानेकी प्रथा भारतके अधिकांश भागोंमें है। उस दिन भी षष्ठीमाताकी पूजा की जाती है। इन्हें विष्णुमाया तथा बालदा भी कहा जाता है। मातृकाओंमें ये देवसेना कहलाती हैं, जो कन्या हैं। इनकी कृपासे पुत्रहीन व्यक्ति सुयोग्य पुत्र तथा मनोहारिणी कन्या प्राप्त करते हैं। नवजात शिशुओंकी ये साक्षात् माता हैं। ये ही सिद्धियोगिनीदेवी अपने योगबलसे बच्चोंके पास हमेशा विराजमान रहती हैं। अतः अपने बालकोंकी रक्षा, उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घायु और अभ्युदयकी कामनासे षष्ठीदेवीकी पूजा की जाती है। वेदोंमें भी षष्ठीदेवीको पराशक्तिरूपमें बताया गया है जो कामनाओंकी अधिष्ठात्रीदेवी हैं। इस संदर्भमें ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्ड और देवीभागवतमें समानरूपसे एक कथा प्राप्त होती है।

षष्ठीदेवीके माहात्म्यकी कथाएँ

स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत सारी पृथ्वीके राजा थे। ब्रह्माके आदेशसे सृष्टि-रचनाहेतु उन्होंने विवाह किया, परंतु जब उन्हें किसी संतानकी प्राप्ति न हो सकी तो पुत्रहेतु कश्यप ऋषिने उनसे पुत्रेष्टियज्ञ कराया। फलतः उनकी पत्नी मालिनीसे एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ।

संयोगवश पुत्र मरा हुआ था। वैसे पुत्रको देखकर महारानी बेहोश हो गयीं और महाराज शोकमें पड़ गये। राजाकी यह स्थिति देखकर मन्त्रियोंने उन्हें बहुत समझाया, किंतु राजा आश्वस्त न हो सके। किसी प्रकार वे मरे हुए पुत्रको लेकर श्मशानमें गये। वहाँ मृत पुत्रको छातीसे लगाकर रोने लगे। तभी अन्तरिक्षमें उन्हें एक उज्ज्वल विमान दिखायी पड़ा, जिसपर श्वेत चम्पापुष्पके समान एक देवी बैठी हुई थीं। उन्हें देखकर राजाको अपार शान्तिकी अनुभूति हुई। देवी राजाके पास आयीं और कहने लगीं— 'राजन्! मैं देवसेना हूँ। मैं तुम्हारे-जैसे पुण्यात्मा राजाकी इस स्थितिको देखकर यहाँ आयी हूँ। मुझे लोग षष्ठीदेवी भी कहते हैं। मैं बालकोंकी अधिष्ठात्रीदेवी हूँ। अपने कर्मोंके प्रभावसे कुछ लोग पुत्रहीन होते हैं। कुछ बच्चे पैदा

योगमायासे खेल-ही-खेलमें उसे जीवित कर दिया। वात्सल्यमूर्ति देवीकी गोदमें बच्चा मुसकराते हुए उछलने लगा। राजाको खुशीके साथ अपार आश्चर्य हुआ।

उसके बाद देवीने राजासे कहा कि 'तुम्हारा यह पुत्र सभी गुणोंसे युक्त त्रिकालद्रष्टा तथा योगियों-तपस्वियोंमें भी सिद्ध पुरुष होगा। इसका नाम सुव्रत होगा। इसे पूर्वजन्मकी सभी बातें याद रहेंगी।' इतना कहकर देवी उस पुत्रको लेकर आकाशमें जानेके लिये उद्यत हुईं तो राजाने देवीकी प्रार्थना की, इसपर वे बोलीं—'राजन्! तुम मेरी सर्वत्र पूजा कराओ और स्वयं भी करो।' राजाद्वारा सहर्ष स्वीकृति देनेपर देवीने वह पुत्र राजाको सौंप दिया। देवीके आदेशसे राजा और प्रजाद्वारा षष्ठीदेवीका भव्य पूजन प्रारम्भ किया गया। इसीलिये प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको और बालकके षष्ठी-महोत्सव तथा अन्नप्राशनमें षष्ठीदेवीकी पूजा की जाती है।

भविष्योत्तरपुराणमें जनमेजय-वैशम्पायन-संवादमें एक कथा है कि पाण्डव द्रौपदीके साथ वनमें रहते थे तो उन्हें बहुत कष्ट हो रहा था। अतिथियोंके आनेपर सत्कार करना भी कठिन था। द्रौपदी अपने पुरोहित धौम्य ऋषिके पास जाकर आर्तवाणीमें बोली—'ऋषिवर! कम समयमें महान् फल देनेवाला कोई महान् व्रत बताइये, जिससे कष्टनिवारण हो सके।'

द्रौपदीकी वाणी सुनकर धौम्यजीने सुकन्या और च्यवन ऋषिकी कथा सुनाते हुए कहा—पिता शर्यातिद्वारा सुकन्याका च्यवन ऋषिसे विवाह कर देनेपर वह पतिकी सेवा मनोयोगसे करने लगी। एक समय कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको वह कश्यप ऋषिके आश्रमके पास पुष्करणी (छोटे तालाब)-से जल लाने गयी। वहाँ बहुत-सी नागकन्याएँ षष्ठीदेवीके साथ सूर्यका पूजन कर रही थीं। कौतूहलवश वहाँ जाकर सुकन्याने उन नाग-कन्याओंसे पूछा—आप कौन हैं? यहाँ किस कारणसे आयी हैं? नागकन्याओंने बताया कि हमलोग आज रविषष्ठीका व्रत कर रही हैं, पूजा करने यहाँ आयी हैं। सुकन्याने जिज्ञासाके साथ पूछा कि इस व्रत और पूजाका फल, प्रभाव एवं विधि क्या है? तथा पूजाका समय और तिथि क्या है? तब नागकन्याओंने कहा—

कार्तिकस्य सिते पक्षे षष्ठी वै सप्तमीयुता।
तत्र व्रतं प्रकुर्वीत सर्वकामार्थसिद्धये॥
पञ्चम्यां नियमं कृत्वा व्रतं कृत्वा विधानतः।
एकाहारं हविष्यस्य भूमौ शय्यां प्रकल्पयेत्॥
षष्ठ्यामुपोषणं कुर्याद् रात्रौ जागरणं चरेत्।
मण्डपं च चतुर्वर्णं पूजयेद्दिननायकम्॥
तावदुपोषणं कुर्याद् यावत् सूर्यस्य दर्शनम्।
सप्तम्यामुदितं सूर्यं दद्यादर्घ्यं विधानतः॥

अर्थात् कार्तिकके शुक्लपक्षकी षष्ठीयुत सप्तमी तिथिको सभी मनोकामनाओंकी पूर्तिके लिये यह व्रत किया जाता है। पञ्चमी तिथिको व्रती नियमपूर्वक रहकर सायंकाल खीरका भोजन करे और धरतीपर शयन करे। छठीके दिन व्रत रहकर हरे, लाल, नीले एवं नारंगी रंगोंका सुशोभित मण्डप बनाकर उसमें पूजा करे। रातमें जागरण करना चाहिये और अनेक प्रकारके फल तथा पक्वान्नका नैवेद्य लगाकर गीत-वाद्यके साथ सूर्यनारायणस्वरूप षष्ठीदेवीका पूजन कर उत्सव मनाना चाहिये। सप्तमी तिथिको प्रातःकाल सूर्यका दर्शन किये तथा सूर्यार्घ्य दिये बिना भोजन नहीं करना चाहिये। भगवान् सूर्यको निम्न मन्त्रोंसे अर्घ्य देना चाहिये—

नमो भगवते तुभ्यं नमस्ते जातवेदसे।
दत्तमर्घ्यं मया भानो त्वं गृहाण नमोऽस्तु ते॥
एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥

अर्घ्य दूध, नारियल, फूल, फल और चन्दनके साथ देना चाहिये। व्रतका विधिवत् उद्यापन करे। कथा सुनकर ब्राह्मणोंको उचित दक्षिणा देनेसे वाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है।

षष्ठीदेवीकी पूजा जलके किनारे की जाती है, इसके पीछे भी कारण है। देवी कात्यायनी जिन्हें षष्ठीदेवी कहा जाता है, उनका जलसे अगाध प्रेम था।

व्रतका उत्सव उत्तर भारतके बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेशके पूर्वी भागमें तथा बँगलादेशके पश्चिमी भागमें अत्यन्त श्रद्धा एवं विश्वासके साथ बड़े धूमधामसे मनाया जाता है। इस महोत्सवमें कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमीसे लेकर सप्तमीतक पूजाका विधान है। श्रद्धा, विश्वास एवं भक्तिके साथ जो लोग माँ षष्ठीदेवीके साथ सूर्यकी पूजा करते हैं, उन भक्तोंकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं, इसमें संदेह नहीं है। सच्ची आराधना देवताको आकर्षित करती है।

श्रीहरिबाबाजी महाराजद्वारा आयोजित अनूठे महोत्सव

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

परम विरक्त संत पूज्य श्रीहरिबाबाजी महाराज स्वयं उत्सवस्वरूप थे। भगवन्नामके अनन्य प्रचारक श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके प्रति पूज्य बाबाकी अनन्य निष्ठा थी। वे फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाके पावन दिन श्रीचैतन्य महाप्रभुजीकी जयन्ती महोत्सवके रूपमें मनाया करते थे।

पूज्य श्रीहरिबाबाजी महाराजने गवाँ (बदायूँ)-में गङ्गाजीके विशाल एवं अनूठे दिव्य बाँध (जो लगभग २४ मील लम्बा है)-का संकीर्तनके माध्यमसे श्रमदान कराकर निर्माण कराया था। इस बाँधके निर्माणका लक्ष्य प्रतिवर्ष गङ्गाजीकी बाढ़से लाखों व्यक्तियों तथा फसलकी रक्षा करना था। बाबा स्वयं घंटा बजाते हुए 'हरिबोल-हरिबोल'-का संकीर्तन करते थे तथा हजारों भक्तजन टीकरोंमें मिट्टी-पत्थर भरकर बाँधपर डालते थे। इस प्रकार भगवन्नाम-संकीर्तनके बलपर बनवाये गये इस दिव्य बाँधको एक उत्सवका रूप ही प्राप्त हो गया था।

संवत् १९८० वि०में विजयादशमीसे शरत्पूर्णिमातक बाँधका पहला उत्सव बाबाके सांनिध्यमें सम्पन्न हुआ।

इसके पश्चात् बाँधपर अखण्ड संकीर्तनका शुभारम्भ किया गया। होलीपर श्रीचैतन्य महाप्रभुजीकी जयन्तीके उपलक्ष्यमें बाँधपर प्रतिवर्ष महोत्सव किया जाने लगा। पूज्य श्रीहरिबाबाजीके सांनिध्यमें व्रजकी मण्डलियाँ भगवान् श्रीराधा-कृष्णकी लीलाएँ प्रस्तुत करती थीं। बाबा स्वयं ठाकुरजीको चँवर-पंखा डुलाते थे। भगवान्‌की दिव्य लीलाओंके साथ-साथ चैतन्य महाप्रभु तथा अन्य भक्तजनोंकी दिव्य लीलाएँ भी प्रस्तुत की जाती थीं। प्रवचनों तथा कथाओंका भी आयोजन किया जाता था। बाँधके उत्सवमें पूज्य बाबाने स्थान-स्थानपर उत्सवोंके आयोजन कराकर असंख्य व्यक्तियोंको धर्म और भक्तिकी भागीरथीमें स्नान कराया।

सन् १९३० ई० में बाँधके उत्सवके बाद पूज्य बाबाने भटवारा (खुरजा, उत्तर प्रदेशका निकटवर्ती सुरम्य स्थान)-में विशेष उत्सव किया। पूज्य श्रीहरिबाबाजीकी आध्यात्मिक विभूति श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे पहली भेंट सन् १९३० ई० में खुरजाके रेलवे स्टेशनपर हुई थी। इसके बाद तो श्रीभाईजी बाबाके प्रति अनन्य श्रद्धावान् बने रहे।

उसी वर्ष प्रयागमें कुम्भपर्वपर पूज्य बाबाने एक उत्सवका आयोजन किया, जिसमें सुविख्यात गायनाचार्य श्रीविष्णु दिगम्बरजीके संकीर्तनने उन्हें अभिभूत किया।

पूज्य बाबाकी प्रेरणासे सन् १९३१ ई० में नवल प्रेम सभाने दिल्लीमें भव्य महोत्सवका आयोजन किया। सन् १९३२ ई० में अपनी जन्मस्थली होशियारपुरमें एक भव्य महोत्सवका आयोजन कराया।

बाँधके उत्सवोंमें बड़ी-बड़ी दिव्य विभूतियाँ पधारा करती थीं। सन् १९३३ ई० के महोत्सवमें त्रिवेणीतटके परमहंस बाबा अवधविहारीशरणजी, पूज्य श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज, स्वामी करपात्रीजी महाराज, श्रीजयरामदासजी 'दीन', ऋषिकेशके स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती, बंगाली स्वामी कृष्णानन्दजी अवधूत, संत प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, स्वामी नारदानन्दजी, श्रीभोलेबाबाजी, स्वामी शास्त्रानन्दजी, स्वामी शुकदेवानन्दजी, 'कल्याण' के सम्पादक भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, अजमेरके मुस्लिम कृष्णभक्त मोहम्मद याकूब सनम साहब, भक्त रामशरणदास आदिको

पूज्य बाबा सुविख्यात कीर्तनकारों तथा रासमण्डलियों-सहित रतनगढ़ पहुँचे। इस महोत्सवमें पूज्य बाबा स्वयं तन्मय होकर संकीर्तन करते थे। रासलीला तथा प्रवचन होते थे।

स्वामी रघुनाथदासजी, स्वामी अखण्डानन्दजी, स्वामी कृष्णानन्दजी अवधूत, आचार्य चक्रपाणिजी, संत प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, श्रीलक्ष्मीनारायणजी गर्दे, कविरत्न पण्डित राधेश्याम कथावाचक आदि सुविख्यात विभूतियोंके प्रवचन होते थे। पूज्य भाईजी संत-महात्माओंका स्वागत कर अभिभूत हो उठते थे। गौराङ्ग महाप्रभुकी लीलाको देखकर दर्शक रो पड़ते थे। पूरे पंद्रह दिनोंतक रतनगढ़ महोत्सव-स्थलीके रूपमें परिवर्तित हो उठा था।

भिरावटी (बाँधके पासका गङ्गातटीय स्थान)-के महोत्सवमें पूज्य आनन्दमयी माँ भक्तजनोंके आकर्षणका विशेष केन्द्र रही थीं। पूज्य उड़ियाबाबा तथा श्रीहरिबाबाने भिरावटीमें छोटी-छोटी कुटियाओंमें रहकर साधना की थी। अतः इस स्थानका महोत्सव पूरे एक माहतक किया गया।

संत प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीने सन् १९४७ ई० में झूँसी (प्रयाग)-में एक वर्षके लिये संकीर्तन-महोत्सवका आयोजन किया। इसमें भी पूज्य बाबाजी अधिक समयतक उपस्थित रहे। पूज्य श्रीहरिबाबाजीने इन उत्सवों तथा महोत्सवोंके माध्यमसे पूरे देशमें भक्ति-भागीरथी प्रवाहित करनेमें सफलता प्राप्त की थी।
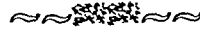
पुरीके रथयात्रा-महोत्सवका आख्यान

(श्रीआशुतोषजी अग्रहरि, साहित्यरत्न)

आषाढ़मासके शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिको सम्पूर्ण भारतवर्षमें रथयात्रा-उत्सव मनाया जाता है। जिसका विशेष समारोह जगन्नाथपुरीमें आयोजित होता है। पुरीका रथयात्रा-उत्सव विश्वप्रसिद्ध है। रथयात्रा-उत्सवके सम्बन्धमें स्कन्दपुराणमें विस्तृत आख्यान प्राप्त होता है। राजा इन्द्रद्युम्नके पूछनेपर महर्षि जैमिनिने भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेवाले एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी सिद्धि करानेवाले बारह यात्रा-उत्सवोंका साङ्गोपाङ्ग विवरण राजाको सुनाया था। वर्षके बारह महीनोंमें इन द्वादश यात्रा-उत्सवोंके मनाये जानेकी तिथि-विधि तथा प्रक्रियाका स्पष्ट निर्देश करते हुए महर्षि जैमिनिने कहा है कि वैशाखमासमें चान्दनी-यात्रासे यह क्रम आरम्भ होता है—

वैशाखादिषु मासेषु देवदेवस्य शार्ङ्गिणः।
या च द्वादशयात्राः स्युस्ता हि वक्ष्यामि ते शृणु॥
वैशाखे चान्दनीयात्रा ज्येष्ठे स्नापन्युदीरिता।
आषाढे रथयात्रा स्याच्छ्रावणे शयनी तथा॥
भाद्रे दक्षिणपार्श्वीया आश्विने वामपार्श्विकी।
उत्थानि कार्तिके मासि छादनी मार्गशीर्षके॥
पौषे पुष्याभिषेकः स्यान्माघे शाल्योदनी तथा।
फाल्गुने दोलयात्रा च चैत्रे मदनभञ्जिका।
एकैका मुक्तिदा सर्वा धर्मकामार्थसाधना॥

(स्कन्दपुराण)

इन यात्रा-उत्सवोंमें तृतीय क्रमपर रथयात्रा-उत्सव मनाये जानेका निर्देश प्राप्त होता है। भगवान् श्रीकृष्णने इसे सभी यात्रा-महोत्सवोंमें श्रेष्ठ बतलाते हुए कहा है कि पुष्य नक्षत्रयुक्त आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको मुझे, सुभद्रा और बलरामसहित रथमें बिठाकर यात्रा करानेवालेके मनोरथ पूर्ण होते हैं—

आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता।
तस्यां रथे समारोप्य रामं मां भद्रया सह॥
महोत्सवप्रवृत्त्यर्थं प्रीणयित्वा द्विजान् बहून्।
रथयात्रैव यात्राणां मुख्येत्याह प्रजापतिः।
गुण्डिचाख्यां महायात्रां प्रकुर्वीथाः क्षितीश्वर।
नातः श्रेयः पदो विष्णोरुत्सवः शास्त्रसम्मतः।

(स्कन्दपुराण)

भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये किये जानेवाले प्रत्येक अनुष्ठानमें उनकी सङ्गिनी श्रीलक्ष्मीजीकी आराधना होती है तथा श्रीकृष्णके साथ राधिकारानी भी पूजित होती हैं, किंतु रथयात्रा-उत्सवमें श्रीकृष्णके साथ बलराम और
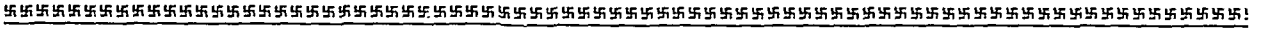
सुभद्रा होते हैं। इसके पीछे जो आख्यान प्राप्त होता है, वह बड़ा ही विचित्र और प्रेममूलक है। यथा—

एक समय द्वारकाधाममें अपनी समस्त रानियोंके बीच शयन कर रहे भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे स्वप्नावस्थामें वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाजीका नाम निकल पड़ा। उनकी रानियोंमें श्रीराधाजी और अपने पतिपरमेश्वर श्रीकृष्णके सम्बन्धोंको जाननेकी उत्कण्ठा हुई। उन्होंने माता रोहिणीजीसे प्रार्थना की कि वे उन्हें कृपया व्रजलीलाकी कथा सुनाएँ। माताजीने पुत्रकी अन्तरङ्ग-लीलाका वर्णन करनेमें झिझक व्यक्त की, किंतु रानियोंने जब जिद ठान ली तो माताजीने उन्हें बंद कमरेमें कथा सुनानी आरम्भ की। कथाके समय बलराम और श्रीकृष्ण किसी भी प्रकार भीतर न आ सकें, इसके लिये उन्होंने द्वारपर सुभद्रासे पहरा देनेको कहा।

जिस समय कथा आरम्भ हुई उस समय श्रीकृष्ण एवं बलराम राजदरबारमें बैठे थे, किंतु कथा आरम्भ होते ही उनका चित्त व्याकुल हो उठा और वे कथास्थल (अन्त:पुर)-की ओर चल पड़े। इधर अन्त:पुरके दरवाजेपर सुभद्राजीका पहरा था। श्रीकृष्ण और बलरामने इस अवरोधका कारण जानना चाहा तो सुभद्राने बताया कि माता रोहिणीजीका आदेश है कि आप दोनों अंदर न आयें। यह सुनकर भगवान्ने बाहरसे ही भीतरकी व्रजलीलात्मक वार्ताको सुना। वार्ता सुनते-सुनते दोनों भाइयोंके मङ्गल श्रीअङ्गोंमें अद्भुत प्रेमविकारके लक्षण दिखायी देने लगे। सुभद्रादेवी भी एक अनिर्वचनीय भावावस्थाको प्राप्त हो गयीं। उन तीनोंके श्रीअङ्गोंमें इस प्रकार महाभावका प्रकाश हुआ कि

भगवान्ने बताया कि श्रीमाताजीके मुखारविन्द[से] व्रजलीलामाधुरीने कर्णगत होकर हमारे हृदय विग[लित कर] दिये थे। इसपर नारदजीने प्रभुसे विनय किया [कि आप] अपने इसी रूपसे पृथ्वीपर सदा निवास करें। श्रीकृष्णने नारदजीके वचन मान लिये और पूर्वकाल[में राजा] इन्द्रद्युम्न तथा श्रीमती विमलादेवीको दिये गये व[रको] सम्मिलित करके नीलाचल क्षेत्र (पुरी)-में अवतीर्ण [होनेका] आश्वासन दिया।

जब कलियुग आया तो मालव देशके राजा इन[्द्रद्युम्नको] ज्ञात हुआ कि उत्कल प्रदेशके नीलाचल पर्वतपर [भगवान्] नीलमाधवका देवपूजित विग्रह है। राजाके मनमें भ[गवान्के] दर्शनकी लालसा जग गयी, किंतु राजा जबत[क] पर्वतपर जाकर भगवान् नीलमाधवके श्रीविग्रहक[ा दर्शन] करते, तबतक देवतागण उस विग्रहको लेकर देवलो[क चले] गये। इससे राजाको बहुत निराशा हुई, किंतु तभी आक[ाशवाणी] हुई—'हे राजन्! तुम चिन्ता न करो, दारुरूप[में तुम्हें] भगवान् जगन्नाथके दर्शन होंगे।'

एक दिन राजाको वहीं समुद्रमें लकड़ीका ए[क] बड़ा टुकड़ा तैरता हुआ मिला। राजा इन्द्रद्यु[म्न उसे] निकलवाकर नीलमाधव भगवान्की मूर्ति बनवानेका [विचार] कर ही रहे थे कि तभी देवशिल्पी विश्वकर्मा ए[क] बढ़ईके रूपमें वहाँ आये और प्रतिमा बनानेका [प्रस्ताव] किया। उनकी यह शर्त थी कि वे एक प्रकोष्ठमें बंद [होकर] एकान्तमें मूर्तिका निर्माण करेंगे। जबतक वे आदे[श न दें,] दरवाजा न खोला जाय, अन्यथा वे मूर्ति-निर्मा[ण] बीचमें ही छोड़कर चले जायँगे। राजाने उनकी श[र्त]

वेधिवत् अलंकृत कराकर प्रतिष्ठित करवा दो। राजाने एक भव्य मन्दिर बनवाकर वहाँ मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करवा दीं। जिस प्रकोष्ठमें तीनों प्रतिमाओंका निर्माण हुआ था, वह स्थान गुण्डिचाघर या मन्दिर कहलाता है। अन्य प्रसंगोंमें गुण्डिचाघर (मन्दिर)-को जनकपुर या ब्रह्मलोक भी कहते हैं। ये मूर्तियाँ भगवान् जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्राजीकी हैं। उत्कल देशके वैष्णवोंकी यह मान्यता है कि राधा और श्रीकृष्णकी युगल मूर्तिके प्रतीक स्वयं जगन्नाथजी हैं। श्रीजगन्नाथजी ही पूर्ण परब्रह्म हैं।

पुरीकी रथयात्रा

पुरीकी रथयात्राके सम्बन्धमें उपर्युक्त यात्रा-उत्सवके आख्यानके अतिरिक्त बहन सुभद्राकी अपने दोनों भाइयों जगन्नाथ स्वामी और बलरामद्वारा नगर-भ्रमण करानेकी इच्छाका पूर्ण किया जाना भी एक प्रधान कारण माना जाता है। पुरीमें उपर्युक्त तीनों देवताओंके लिये तीन पृथक्-पृथक् रथ बनाये जाते हैं। रथयात्रा शुरू होनेके एक दिन पूर्व तीनों रथोंको मन्दिरके मुख्य द्वारके सामने लगे गरुडस्तम्भके बगलमें क्रमसे खड़ा किया जाता है। लाल और हरे रंगके बलभद्रजीके रथको 'तालध्वज' कहते हैं तथा लाल और नीले रंगके सुभद्राजीके रथको 'दर्पदलना' एवं लाल और पीले रंगके रथको 'नन्दीघोष' कहते हैं। इसपर भगवान् जगन्नाथ विराजमान रहते हैं। रथयात्राके समय सबसे आगे बलरामजीका और सबसे पीछे भगवान् जगन्नाथका रथ होता है तथा बीचमें बहन सुभद्राका रथ होता है।

रथयात्रामें विभिन्न स्थानीय पारम्परिक रीति-रिवाजोंको बड़ी श्रद्धा और विश्वासके साथ निभाया जाता है। इनमेंसे 'पोहंडी बिजे' और 'छेरा पोहरा' प्रमुख हैं। सबसे पहले सुदर्शनचक्रको सुभद्राजीके रथपर पहुँचाया जाता है। घंटे-घड़ियाल और नगाड़ोंकी ध्वनि तथा भजन-कीर्तनके बीच एक खास तरहकी लयमें भगवान्‌के विग्रहको मन्दिरसे रथपर लाना 'पोहंडी बिजे' कहलाता है। भगवान् जगन्नाथके श्रीविग्रहको रथपर इस प्रकार ले जाते हैं कि मालूम होता है कि भगवान् बहुत मस्तीसे झूम-झूमकर चल रहे हैं। जब तीनों विग्रह अपने-अपने रथमें बैठ जाते हैं तो पुरीके पारम्परिक राजाको उनके पुरोहित निमन्त्रण देने जाते हैं। राजा पालकीमें आते हैं और तीनों रथोंको सोनेकी झाड़ूसे बुहारते हैं। यह परम्परा 'छेरा पोहरा' कहलाती है।

इसके बाद रथयात्रा शुरू होती है। हजारों अनुचर—भक्त रथ खींचते हैं। पुरीमें इसे 'रथटण' कहते हैं। तीन मीलके बड़दंडसे गुजरते हुए तीनों रथ शामतक गुण्डिचा-मन्दिर पहुँचते हैं। वहाँ नौ दिन विश्राम करनेके बाद यात्रा वापस आती है। इस वापसी यात्राको 'बहुडाजात्रा' कहते हैं। वापस आनेपर भगवान् एक दिन मन्दिरके बाहर ही रथपर दर्शन देते हैं। उनका स्वर्णाभूषणोंसे शृङ्गार किया जाता है इसे 'सुनाभेस' कहते हैं। मन्दिरसे बाहर नौ दिनोंके दर्शनको 'आड़पदर्शन' कहते हैं।

रथयात्राहेतु प्रतिवर्ष नये रथ बनाये जाते हैं। वसन्तपञ्चमीको लकड़ियाँ चुननेका कार्य आरम्भ होता है और अक्षयतृतीयासे रथोंका निर्माणकार्य शुरू होता है। परम्परागत बढ़ई पीढ़ियोंसे यही काम करते चले आ रहे हैं। पुराने रथोंकी लकड़ियाँ भक्तजन श्रद्धापूर्वक खरीद लेते हैं और अपने-अपने घरोंकी खिड़कियाँ, दरवाजे आदि बनवानेमें इनका प्रयोग करते हैं।

जिस विक्रमी वर्षमें आषाढ़मासमें अधिकमास होता है, उस वर्षमें रथयात्रोत्सवके साथ एक विशेष महोत्सव और भी होता है जिसे 'नवकलेवर-उत्सव' कहते हैं। इस उत्सवपर भगवान् जगन्नाथ अपना पुराना कलेवर त्यागकर नया कलेवर धारण करते हैं अर्थात् लकड़ीकी नयी मूर्तियाँ बनायी जाती हैं तथा पुरानी मूर्तियोंको मन्दिर-परिसरमें ही 'कोयली वैकुण्ठ' नामक स्थानपर भू-समाधि दे दी जाती है। पुरीमें रथयात्रा-उत्सव कुल दस दिनोंतक मनाया जाता है। रथारूढ भगवान् जगन्नाथके दर्शनमात्रसे मनुष्यको जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्ति मिल जाती है—

महावेदीं व्रजन्तं तं रथस्थं पुरुषोत्तमम्।
बलभद्रं सुभद्रां च दृष्ट्वा मुक्तिर्न चान्यथा॥

(स्कन्दपुराण)

वेदादि धर्मग्रन्थोंमें पर्व-व्रतोत्सव-रहस्य

(दंडीस्वामी श्रीमद् दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

भारतीय सनातन धर्मशास्त्र तथा ज्योतिषशास्त्रमें विशिष्ट योगोंको 'पर्व' कहा गया है। पर्वको पुण्यकारक माना गया है और पर्वकालमें कतिपय विधि-निषेध भी कहे गये हैं। पाँच पर्व प्रमुख माने गये हैं। इनके विषयमें विष्णुपुराण (३।११।११८)-में लिखा है—

चतुर्दश्यष्टमी चैव तथामा चाथ पूर्णिमा।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च॥

अर्थात् चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा तथा सूर्यसंक्रान्ति—ये सभी पर्वदिन हैं।

दक्षिणायन एवं उत्तरायणका प्रारम्भकाल, विषुवदिन, चन्द्र-सूर्यग्रहण और व्यतीपातयोग तथा मन्वन्तरके प्रारम्भकी तिथियों (मन्वादि तिथियों)-को भी पर्वकाल माना गया है। अर्धोदय, महोदय इत्यादि और भी पर्व कहे गये हैं। प्रातः, मध्याह्न एवं सायं—ये तीन काल भी पर्व हैं। पर्वकालमें विहित कर्म (करनेयोग्य कार्य) इस प्रकार हैं—तीर्थयात्रा, तीर्थस्नान, देवपूजा-दर्शन, श्राद्ध, दान, जप-तप तथा उपवास इत्यादि। पर्वकालमें निषिद्ध कर्म (न करनेयोग्य कार्य) इस प्रकार हैं—क्षौर (मुण्डन), तैलाभ्यङ्ग (शरीरपर तेल लगाना), मांस-मदिरा-सेवन, धूम्रपान, द्यूत, स्त्रीसंग आदि।

'व्रत' शब्द 'वृ' धातुसे बना है। 'वृ'का अर्थ है पसंद करना। 'वृ' धातुसे 'वर' शब्द भी बना है। वरका अर्थ है—इच्छा करना। 'व्रत' शब्दके विविध अर्थ होते हैं जैसे—

ऋग्वेद (८।११।१)-में कहा गया है—**व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः॥'** हे
यज्ञकर्मरक्षक तेजस्वी अग्ने! हम आपका यज्ञीय
करते हैं। यहाँपर व्रत शब्दका अर्थ धार्मिक
देवताकी उपासना है।

इतर संहिताओंमें व्रत शब्दके अर्थ निम्नलिखि
धार्मिक कृत्य अथवा प्रतिज्ञा या धार्मिक कृत
समय अन्न और आचरणसम्बन्धी पालनीय निर्बन्ध (
धार्मिक कृत्य करते समय उदरनिर्वाहके लिये
करनेके विशिष्ट अन्न जैसे कि गोदुग्ध, यवागू (
कांजी), किंवा आमिक्षा (उष्ण दुग्ध एवं दहीका
इत्यादि।

'व्रत' शब्दके उपर्युक्त दोनों ही अर्थ वेदके मह
यास्काचार्यने अपने निरुक्तमें समाविष्ट किये हैं। व्रत
ये दोनों ही अर्थ 'तैत्तिरीयसंहिता' (२।५।५)-
प्रकार दिये हैं—

तस्यैतद् व्रतं नानृतं वदेन्न मांसमश्नीयान्न स्त्रियमुपे
पल्पूलनेन वासः पल्पूलयेयुरेतद्धि देवाः सर्व न कुर्व

अर्थात् ये जिनके व्रत हैं उनको असत्य (झूठ
बोलना चाहिये। मांसभक्षण नहीं करना चाहिये,
सन्निधि (स्त्री-सम्भोग) नहीं करना चाहिये। न
जलसे अपने वस्त्र नहीं धोने चाहिये; क्योंकि देवता

ान करना पड़ता है, जिनको मनुस्मृतिमें व्रत कहा गया महाभारतमें 'व्रत' शब्दका अर्थ धार्मिक कृत्य किंवा ाज्ञा इत्यादि है। पुराणादिमें 'व्रत' शब्दका अर्थ इस प्रकार -'विशिष्ट तिथिमें, विशिष्ट वारमें, विशिष्ट मासमें किंवा : पर्वकालमें विशिष्ट देवताकी पूजा (उपासना) करके ना इच्छित हेतु साध्य करनेके लिये कुछ अन्न-सेवनको इतर आचरणके निर्बन्ध पालन करनेको व्रत कहा है। रकोशमें तो व्रत और नियम—ये प्राय: समानार्थी शब्द मिताक्षरामें कहा गया है कि व्रतका अर्थ है कुछ क्रिया नेका और कुछ क्रिया न करनेका निश्चय। धर्मशास्त्रकार न्दनका कथन है कि व्रत शास्त्रविहित नियम है। वह ग्रासादि लक्षणात्मक होता है। शास्त्रमें कहे हुए प्रत्येक ामको व्रत कहना उचित नहीं है जैसे कि ऋतुकालमें गमन करना शास्त्रका नियम है, किंतु वह व्रत नहीं है। ़क यज्ञ और व्रतमें भिन्नता है। अधिकांश यज्ञोंका फल प्राप्ति होता है और वह फल मृत्युके उपरान्त प्राप्त होता व्रतके विषयमें ऐसा नहीं है। व्रतका फल व्रतकर्ताको जन्ममें भी प्राप्त होता है। वैदिकयज्ञ त्रिवर्ण (ब्राह्मण, ाय और वैश्य)-को ही विहित (करनेयोग्य) है, किंतु तो शूद्र, सधवा-विधवा स्त्रियाँ, कुमारिकाएँ—इन ोके लिये विहित है। देवलस्मृति कहती है—

व्रतोपवासनियमैः शरीरोत्तापनैस्तथा।
वर्णाः सर्वेऽपि मुच्यन्ते पातकेभ्यो न संशयः॥

अर्थात् व्रत, उपवास, नियम तथा शरीरशुद्धिके द्वारा ो वर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाते हैं। इसमें शंका करना र्थक है।

लिङ्गपुराण (पू० ८४। १६)-में सधवा स्त्रियोंके लिये विशेष नियम कहा गया है—

नियोगादेव तत्कार्य्ये भर्तृणां द्विजसत्तमाः।
जपं दानं तपःसर्वमस्वतन्त्रा यतः स्त्रियः॥

स्त्रियोंको जप, दान, तप और इतर धर्मकार्य अपने की आज्ञा लेकर करने चाहिये; क्योंकि स्त्रियाँ अस्वतन्त्र ो हैं।

विविध व्रतोंकी संख्या एवं उनके विषयमें विस्तृत कारी इन ग्रन्थोंसे प्राप्त होती है—लक्ष्मीधरकृत कृत्यकल्पतरु, जीमूतवाहनकृत कालविवेक, हेमाद्रिकृत व्रतखण्ड, चण्डेश्वरकृत कृत्यरत्नाकर, आदित्यनाथकृत कालनिर्णय, शूलपाणिकृत विवेकग्रन्थ, अल्लाटनाथकृत निर्णयामृत, गोविन्दनन्दकृत वर्षक्रियाकौमुदी, गदाधरकृत कालसार, रघुनन्दनकृत तत्त्वग्रन्थ, मित्रमिश्रकृत व्रतप्रकाश, समयप्रकाश, नीलकण्ठकृत समयमयूख, शंकरभट्टकृत व्रतार्क, दिवाकरकृत तिथ्यर्क, हरीतवेंकटनाथकृत दर्शनिर्णय, शंकरभट्ट धारेकृत व्रतोद्यापनकौमुदी, रत्नाकरकृत जयसिंहव्रतकल्पद्रुम, विश्वनाथकृत व्रतराज, विष्णुभट्टकृत पुरुषार्थचिन्तामणि, कमलाकरभट्टकृत निर्णयसिन्धु तथा काशीनाथकृत धर्मसिन्धु इत्यादि।

व्रत-विधानके विषयमें कहा गया है कि किसी भी व्रतमें व्रतारम्भ, संकल्प, पूजा, होम (हवन), उपवास, दान, अन्नदान, जागरण, पारणा और उद्यापन—ये सभी क्रियाएँ आती हैं।

व्रतारम्भ—सामान्यत: सभी व्रत दिनशुद्धि देखकर और ग्रहोंकी विशिष्ट स्थिति होनेपर प्रारम्भ किये जाते हैं। हेमाद्रिमें कहा गया है—

अस्तगे च गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे।
उद्यापनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत्॥

(गार्ग्य)

गुरु, शुक्रके अस्त होनेपर किंवा उनके बाल और वृद्ध होनेपर तथा अधिकमासमें कोई भी व्रत प्रारम्भ न करे, व्रतका उद्यापन भी न करे।

अशौच होनेपर, वार, नक्षत्र, योग इत्यादि दुष्ट होनेपर तथा अमावास्या आदि निषिद्ध तिथियोंमें व्रतारम्भ न करे।

प्रात:कालमें निराहार रहकर स्नानकर सूर्यादि देवताको व्रतविषयक निवेदन कर व्रतका आरम्भ करे—

अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाऽऽचम्य समाहितः।
सूर्याय देवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत्॥

अग्निपुराण (१७५। १२)-में कहा गया है कि व्रतका आरम्भ करनेके बाद व्रतकी समाप्तिपर्यन्त नित्य प्रात:स्नान, सन्ध्यादिकर्म, संयमित आहार-ग्रहण एवं गुरु, द्विज तथा देवताकी पूजा करे और क्षार, क्षौद्र (मद्यादि), नमक, मधु तथा मांस-मत्स्यादि पदार्थोंका वर्जन करे।

व्रतका संकल्प—व्रतारम्भ करनेसे पहले उस व्रतका संकल्प करना चाहिये।

पूजा—प्रत्येक व्रतके विशिष्ट देवता होते हैं, उन देवताकी पञ्चोपचार या दशोपचार किंवा षोडशोपचार पूजा करनी चाहिये। प्रत्येक देवताके विशिष्ट पत्र, पुष्प, नैवेद्यादि होते हैं। जैसे कि शिवको बिल्वपत्र, श्वेत पुष्प चढ़ाये जाते हैं, जबकि विष्णुको तुलसीपत्र, कमलपुष्प तथा गणेशजीको दूर्वा, रक्तपुष्प (जवापुष्प) चढ़ाये जाते हैं। प्रत्येक व्रतमें देवपूजाके बाद उन-उन देवताके मन्त्रका जप करना चाहिये।

होम (हवन)—व्रतमें व्रतदेवताके मन्त्रका उच्चारण करते हुए विशिष्ट हविद्रव्यसे हवन करना चाहिये। विशिष्ट हविद्रव्य न मिलनेपर आज्य (गोघृत)-से यज्ञाग्निमें आहुतियाँ दी जा सकती हैं। ऐसा होमकार्य यजमानके कल्याणके लिये वैदिक ब्राह्मण करते हैं।

उपवास—उपवासका प्रथम अर्थ है यज्ञके यजमानका गार्हपत्य अग्निके समीप वास करना। उपवासका गौण अर्थ है—फलाहार करना अथवा निरशन (निराहार) रहना। महाभारत अनुशासनपर्व (१०६। ११—१३)-में उपवासकी सामान्य कालमर्यादा बतायी गयी है कि ब्राह्मण और क्षत्रियको तीन दिनतक उपवास करना चाहिये तथा वैश्य और शूद्रको केवल दो दिनतक ही उपवास करना चाहिये।

दान—अत्रिस्मृतिमें दानकी महिमा समझाते हुए कहा गया है—'**नास्ति दानात् परं मित्रं इहलोके परत्र च**' अर्थात् इस लोकमें एवं परलोकमें दानसे उत्तम कोई मित्र नहीं है अर्थात् दान ही उत्तम मित्र है। बृहत्पराशरसंहिता (१। २३)-में तो स्पष्ट कह दिया गया है कि '**दानमेकं कलौ युगे**' अर्थात् कलियुगमें दान ही श्रेष्ठ है। सभी व्रतोंमें गोदान (गायका दान) आवश्यक बताया गया है, साथ ही अन्नदान, करके देवताके समीप भजन-कीर्तन, कथा इत्यादि करना चाहिये। व्रतदेवताकी प्रसन्नताके लिये भक्तिगीत, नृत्य आदिके द्वारा महोत्सव करना विहित कहा गया है।

पारणा—व्रतकी समाप्तिके बाद उपवासको छोड़कर देवताका प्रसाद (भोजन) आरोगनेको 'पारणा' कहते हैं। पारणा न करनेपर देवता अप्रसन्न हो जाते हैं।

उद्यापन—व्रत पूर्ण होनेपर उसकी समाप्ति करनेके लिये जप, पूजा, होम इत्यादि धर्म-कृत्य किये जाते हैं, उन सबकी सम्पूर्णताको 'उद्यापन' कहते हैं।

तिथिनिर्णय—व्रतोंके विषयमें तिथिनिर्णय करना महत्त्वकी बात है; क्योंकि उसपर व्रतके फलका अवलम्बन होता है। नारदपुराण (पू० २९। २)-में कहा है—

श्रौतं स्मार्तं व्रतं दानं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम्।
अनिर्णीतासु तिथिषु न किंचित्फलति द्विज॥

श्रौतकर्म, स्मार्तकर्म, व्रत, दान, किंवा अन्य किसी भी वैदिककर्म करनेकी तिथि निश्चित न करनेसे उस धर्मकृत्यका फल नहीं मिलता है। आगे कहा है—

कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः।
तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्॥

धर्मकार्य जिस तिथिको करना है वह तिथि प्रातः, मध्याह्न जब हो तभी करना चाहिये। वही समय योग्य है। तिथिके क्षय-वृद्धिके विषयमें विचार करनेका कारण नहीं है।

सूर्योदयके समय जो तिथि है, वह तिथि उस दिन कम-अधिक कैसी भी होगी, फिर भी उस तिथिको सकला समझना चाहिये और उसके अनुरूप दान, अध्ययन और कर्मका आचरण करना चाहिये—

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः।
सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु॥

ऐच्छिक—जैसा कि विशिष्ट फलप्राप्तिके लिये किये नेवाले व्रत।

द्वितीय वर्गीकरण इस प्रकार है—

नित्य—विशिष्ट आश्रमके अपरिहार्य ऐसे कर्तव्य, —ब्रह्मचर्य, ब्रह्मयज्ञ, पंचमहायज्ञ, देव, द्विज एवं गुरुकी ।।

नैमित्तिक—विशिष्ट नियमसे करनेके व्रत, जैसे— नवमी, कृष्णाष्टमी, नवरात्र, दत्तजयन्ती, शिवरात्रि इत्यादि।

काम्य—कामना (धन, पुत्र, ऐश्वर्य, सत्ता इत्यादि)- मनमें रखकर किये जानेवाले व्रत, जैसे—सत्यनारायणव्रत, दत्तव्रत, सोमवारव्रत, विनायकव्रत इत्यादि।

तृतीय वर्गीकरण इस प्रकार है—

मानसिक, कायिक और वाचिक। इन तीनों व्रतोंके यमें पद्मपुराण (पाताल० ८४। ४२—४४)-में इस प्रकार गया है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्कता।
एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि हरितुष्टये॥
एकभक्तं तथा नक्तमुपवासमयाचितम्।
इत्येवं कायिकं पुंसां व्रतमुक्तं नरेश्वर॥
वेदस्याध्ययनं विष्णोः कीर्तनं सत्यभाषणम्।
अपैशुन्यमिदं राजन् वाचिकं व्रतमुत्तमम्॥

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और निर्दम्भता—ये सिक व्रत कहे गये हैं, इनके आचरणसे भगवान् संतुष्ट हैं। एकभुक्त, नक्तभोजन, उपवास और अयाचितभोजन ा माँगे मिला भोजन)—यह मनुष्यका कायिक ारिक)-व्रत है। वेदाध्ययन, विष्णुका नाम-संकीर्तन, ाषण तथा अन्यकी चुगली न करना—ये वाचिक हैं।

चतुर्थ वर्गीकरण कालविषयक है। व्रत जितने समयपर्यन्त ा है, उस समयके अनुसार उसका वर्गीकरण किया है। जैसे-दिनव्रत, पक्षव्रत, मासव्रत, अयनव्रत, संवत्सरव्रत, व्रत, नक्षत्रव्रत, संक्रान्तिव्रत इत्यादि।

देवताविषयक पञ्चम वर्गीकरण इस प्रकार है— व्रत, शिवव्रत, विष्णुव्रत, दत्तात्रेयव्रत, देवीव्रत तथा त इत्यादि।

व्रतकी परिभाषा

हिन्दू-धर्ममें स्त्री-पुरुषोंके लिये अनेक पालनीय व्रत कहे गये हैं। इस सम्बन्धमें सर्वसाधारणरीतिसे पालन करनेके नियमोंको व्रतपरिभाषा कहा गया है। स्त्रियों और शूद्रोंको दो दिनसे अधिक उपवास करनेका अधिकार नहीं है। सौभाग्यवती स्त्रियोंको पतिकी अनुज्ञाके बिना उपवास करनेका अधिकार नहीं है। प्रातःस्नान करके ताम्रपात्रमें जल भरकर उत्तर दिशामें मुख कर व्रतका संकल्प करना चाहिये। क्षमा, सत्य, दया, दान, शुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, हवन, संतोष और अस्तेय—ये धर्म सभी व्रतोंके लिये आवश्यक हैं। जिस देवका व्रत होता है उसका जप, ध्यान, कथाश्रवण, अर्चन, कीर्तन इत्यादि करना चाहिये।

उपवासके दिन अन्नका अवलोकन, खाद्यपदार्थकी सुवास लेना, तैलाभ्यङ्ग, ताम्बूल-सेवन इत्यादिका वर्ज्य करना चाहिये। शुद्ध उदक, कन्दमूल, फल, गोदुग्ध, हवि, ब्राह्मणकी इच्छा, गुरुका वचन और औषध—इन आठ वस्तुओंके अधिग्रहण करनेपर भी व्रतभङ्ग नहीं होता। यदि भूल-चूकसे व्रतभङ्ग हुआ हो तो व्रतीको तीन दिन उपोषण (उपवास) करके क्षौर करवाकर पुनः व्रतमें दीक्षित होना चाहिये। उपवास करनेमें अशक्त व्रतीको सुपात्र ब्राह्मणद्वारा सहस्र गायत्रीजप करवाकर ब्राह्मणको भोजन, वस्त्र एवं दक्षिणा देना चाहिये। इसे व्रतभङ्गका प्रायश्चित्त समझना चाहिये। आरम्भ किये हुए व्रतको आगे बढ़ानेमें असमर्थ व्रतीको अपने सुयोग्य प्रतिनिधि (सुपात्र ब्राह्मण, पुत्र, बन्धु वगैरह)-द्वारा व्रतको पूर्ण करवाना चाहिये। अनेक बार जल पीना, ताम्बूल चबाना, दिनमें शयन करना, मैथुन इत्यादिसे व्रतभङ्ग होता है।

व्रतीको चाहिये कि वह आमिपान्न (मांसाहार)-का वर्जन करे और हविष्यान्नका सेवन करे। जहाँपर व्रतका विधान नहीं बताया है, वहाँपर पाँच तोला चाँदीकी व्रतदेवकी मूर्ति बनवाकर उसकी पूजा करनी चाहिये। जहाँ द्रव्य नहीं कहा है, वहाँपर गोघृतसे होम करना चाहिये। यदि देवता नहीं कहा है, वहाँ प्रजापतिको देवता समझना चाहिये और जहाँ मन्त्र नहीं कहा है तो वहाँपर व्याहृतिमन्त्र समझना चाहिये। सामान्यतः होम-संख्या १०८ आहुति तथा उपवासकी पूर्तिके

लिये ब्रह्मभोज कराना चाहिये। उद्यापनमें ब्राह्मण-वटुक, कुमारिका, गौ और सधवा स्त्रियोंको भोजन कराये। अशौच, रजस्वलादोष या ज्वरादि होनेपर उपवासादि शारीरिक नियम स्वयं करे, किंतु देवपूजा, होमादि सुपात्र ब्राह्मणद्वारा करवाना चाहिये। काम्यकर्म स्वयं करे, नित्य-नैमित्तिक कर्म प्रतिनिधि (बन्धु, पुत्र, मित्रादि)-द्वारा करवा सकते हैं।

व्रत-माहात्म्य—सभी धार्मिक कृत्योंमें व्रत लोक-साधन एवं भोगसाधन है। व्रत करनेपर जय प्राप्त होती है, इसीलिये सबको व्रतका आचरण करना चाहिये। देव, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर एवं ऋषि—ये उपवासादि व्रतोंके अनुष्ठानसे परमसिद्धिको प्राप्त हुए हैं।

'पुण्य, संतति, सौन्दर्य, ऐश्वर्य, सद्गुण, कीर्ति, विद्या, दीर्घायुष्य, सम्पत्ति, पावित्र्य, सुखप्राप्ति, स्वर्ग और मोक्षादि—ये सभी फल व्रताचरणसे प्राप्त होते हैं'—ऐसा कथन अग्निपुराणका है। अतः लौकिक एवं पारमार्थिक सिद्धिके इच्छुकको व्रतानुष्ठान करना चाहिये।

शुक्लयजुर्वेद (१।५)-में अग्निव्रतकर्ता व्रतके प्रारम्भमें अग्निदेवकी प्रार्थना करते हैं—'**अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि॥**' अर्थात् हे अग्निदेव! हे व्रतके स्वामिन्! मैं आजसे व्रताचरण करता हूँ। मैं अच्छी तरहसे व्रतका आचरण कर सकूँ, इसके लिये आप मुझे शक्ति प्रदान कीजिये। अब मैं असत्यसे सत्यके प्रति प्रयाण कर रहा हूँ। बृहदारण्यक (१।३।२८)-में कहा है—'**असतो मा सद्गमय**' अर्थात् असत्यसे सत्यके प्रति गमन करना ही व्रतका ध्येय है। व्रताचरणसे व्रतकर्तामें इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति एवं ज्ञानशक्ति विकसित होती है।

'शब्दकल्पद्रुम'में उत्सवकी व्याख्या करते हुए कहा गया है—'**नियताह्लादजनकव्यापारः**' अर्थात् निश्चितरूपसे आह्लाद उत्पन्न करनेवाला उद्योग उत्सव कहलाता है। 'अमरकोश' का कहना है—'**मह उद्धव उत्सवः**' जो धार्मिक समारोह सहभाग लेनेवाले लोगोंको हर्ष, आनन्द और मनःप्रसादका अनुभव कराता है, उसे 'उत्सव' कहते हैं। पर्वव्रतादिको उत्सव कहा है। भगवान् दत्तात्रेयकी प्राकट्यतिथि मार्गशीर्ष पूर्णिमाको महोत्सव कहा गया है। भगवान् रामभद्रकी प्राकट्यतिथि चैत्र शुक्ल नवमीको महोत्सव कहा गया है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्राकट्यतिथि भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको महोत्सव कहा गया है। इसी प्रकार अन्य भगवदवतारोंकी प्राकट्यतिथियोंको भी महोत्सव माना गया। महाशिवरात्रि, नवरात्र इत्यादिको भी धर्मग्रन्थोंमें महोत्सव कहा गया है। ये सभी पर्वव्रत महोत्सव हैं।
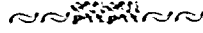
जीवनका निश्चित व्रत

(श्रीरामलखनसिंहजी 'मयंक')

भगवत्कृपा हुई तो प्राणीको नरजीवन हुआ प्राप्त।
मायाके प्रभावमें पड़नेसे तन-मनमें है दुख व्याप्त॥
विधिनिषेधमय कर्मोंको श्रुति-शास्त्र-संत बतलाते हैं।
स्वाध्यायी-सत्संगी जन सार्थक निज समय बिताते हैं॥
व्रत-पर्वोका आश्रय लेनेसे जीवन बनता है पावन।
सेवाव्रती बना मानव वसुधा माताका वीर सुवन॥
व्रतमय जीवन बन जानेसे अन्तर्मनमें शुचिता आती।
व्यवहार शुद्ध हो जाता है उर-अन्तर प्रीति समा जाती॥
इस जगको 'सियाराममय' लख आदर्शयुक्त बन जाता है।
त्रिगुणातीत हुआ वह सेवक प्रभुका ही गुण गाता है॥
जागो रे मन मूढ़, तुम्हारे जीवनका निश्चित व्रत हो।
साँस-साँसमें हरि सुमिरण तन-मन-धनसे सेवारत हो॥
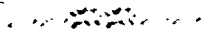
श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें व्रत—एक अनूठे आदर्शके प्रतीक

(डॉ० श्रीसुभाषचन्द्रजी सचदेवा 'हर्ष', एम्०ए०, एम्०फिल्०, पी-एच्०डी०)

व्रतका सम्बन्ध केवल उपवासानुप्राणित भोजन न अथवा फलाहारादि अल्प भोजनतक ही सीमित नहीं है, अपितु व्रत मानव-जीवनको अधिक प्रशस्त ें सक्षम इन्द्रियसंयम, सत्य, तप एवं अन्यान्य सत्कर्म सात्त्विक नियमोंको भी धारण करनेकी प्रेरणा देते हैं। भारतीय मनीषियोंने व्रतके इसी अर्थको अधिक वरीयता ए दुष्प्रवृत्तियोंसे हटाकर सत्कर्मोंकी ओर उन्मुख ाली समग्र शुभ प्रवृत्तियोंको व्रतकी संज्ञा दी है।[1] वैदिक वाङ्मयमें संयम और नियम (अनुशासित)-को व्रतका समानार्थक माना गया है।[2] श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें भी 'निर्दिष्ट व्रत' पद उपर्युक्त आदर्शोंका द्योतक है। व्रतकी व्याख्याके प्रसंगमें न्थ-साहिबमें सत्य[3], अहंकारत्याग (विनम्रता)[4], ंतोष[5] आदि आध्यात्मिक सम्पदाको उत्तम व्रतकी ी गयी है। श्रीगुरुग्रन्थसाहिबकी मान्यता है कि णकी पूर्वभूमिकामें भाँग, मदिरापान आदि नशीले एवं मांस, मछली आदि अभक्ष्य पदार्थोंका सर्वथा कर देना चाहिये, अन्यथा व्रतधारण एवं तीर्थ- ः सभी निष्फल हो जाते हैं।[6]

ध्यातव्य है कि श्रीगुरुग्रन्थसाहिबके अधिकतर स्थलोंमें व्रत शब्दका अकेला प्रयोग न करके उसके साथ-साथ जप, तप, संयम, शुचि (पवित्रता) आदि दिव्य गुणोंका भी नित्य संयोग उपलब्ध होता है।[7] स्पष्ट है कि श्रीगुरुग्रन्थसाहिबजीने इन उदात्तभावोंको व्रतका पूरक स्वीकार किया है। मनको वशमें करके[8] निष्कामभाव[9] धारण करता हुआ साधक ही व्रतपरायण कहा जा सकता है।

श्रीगुरुग्रन्थसाहिबजीने जीवनके प्रत्येक पक्षमें, विशेषतः गृहस्थाश्रममें[10] और इन सबसे बढ़कर ब्राह्मणके जीवनमें व्रतके मूलाधार जप, तप, संयम, शील, संतोष आदिकी विशिष्ट गरिमा स्वीकार की है।[11] जप, तप, संयमादिसे समलंकृत व्रतका पालन जनसामान्यके लिये अत्यन्त दुष्कर है, जन्म-जन्मान्तरार्जित शुभकर्मोंके परिणामस्वरूप उपलब्ध हुई प्रभुकृपासे ही प्राणी जप, तप, संयम आदिपर अधिष्ठित व्रतोंको ग्रहण करनेमें समर्थ होता है।[12]

श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें मानव-जीवनकी उस विडम्बनाको भी ध्वनित किया गया है, जिसके अधीन होकर मनुष्य कभी प्रदर्शनार्थ (लोकदिखावे अथवा पाखण्डके लिये)[13] और कभी स्वार्थमूलक लोभवश[14] व्रत, नियम एवं संयम आदिको

-व्रतमिति कर्मनाम वृणोतीति सतः। निवृत्तिकर्म वारयति इति सतः। (यास्करचित निरुक्त अध्याय २ पाद ४)
-(क) अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥ (ऋक्० १।२४।१५)
(ख) अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि। (शुक्लयजुर्वेद १।५)
-सचु वरतु संतोखु तीरथु गिआनु धिआनु इसनानु। (सलोक महला-१, पृ० १२४५)
-जप तपु संजमु हउमै मारि। (प्रभाती महला-१, पृ० १३४३)
-खिमा गही व्रतु सील संतोखम्। (गउड़ी महला-१, पृ० २२३)
-कबीर भांग माछुली सुरापानि जो जो प्रानी खांहि। तीरथ बरत नेम कीए ते सभै रसातल जांहि॥ (महला-५, पृ० १३७७)
-(क) जप तप बरत कीने पेखन कउ चरणा राम। (बिहागड़ा महला-५, पृ० ५४५)
(ख) जपु तप संजम बरत करे पूजा मनमुख रोगु न जाई॥ (सूली महला-४, पृ० ७३२)
-तीरथ करै ब्रत फुनि राखै नह मनुआ बसि जाको। निहफल धरम ताहि तुम मानो साचु कहत मै याकऊ॥ (बिलावल महला-९, पृ० ८३१)
-(क) बरती बरत रहै निहकाम। अजपा जापु जपै मुखि नाम॥ (बिलावल महला-१, पृ० ८४०)
(ख) तीरथ बरत नेम सुचि संजम सदा रहै निहकामा। (रागु केदारा वाणी कबीरजीकी पृ० ११२३)
-सो गिरही जो निग्रहु करै। जपु तपु संजमु भीखिआ करै॥ (सलोक महला-१, पृ० ९५२),
सो ब्रहमणु जो निंदै ब्रहमु। जपु तपु संजमु कमावै करमु। सील संतोख का रखै धरमु॥ (महला-१, पृ० १४११)
(क) जपु तपु संजमु दइआ धरम जिसु देहि सुपाए (सलोक महला-५, पृ० ९६६)
(ख) हुकमु वरतु नेम सुच संजमु मन चिन्दिआ फलु पाए॥ (सलोक महला-४, पृ० १४२३)
बरत नेम सुच संजमु पूजा। पाखंडि भरमु न जाइ॥ (सलोक महला-४, पृ० १४२३)
करम धरम सुचि संजमु करहि अंतरि लोभु विकार। नानक मनमुखि जि कमावै सु थाइ न पवै दरगह होइ खुआरु॥
(सलोक महला-४, पृ० १४२३)

हो जाते हैं।[२७] जप, तप एवं संयमके अतुलनीय प्रताप तथा परमेश्वरकी आराधनासे मनुष्य (युवावस्थामें उमड़नेवाली) कामाग्निके प्रभावसे मुक्त हो सकता है।[२८]

परमेश्वरके नाम-स्मरणको सर्वोच्च महिमा प्रदान करते हुए[२९] श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें इस तथ्यको आलोकित किया गया है कि नामस्मरण परमेश्वरकी प्राप्तिका सरलतम साधन है और सभी आध्यात्मिक साधनाओंका मूल भी है।[३०] अत: परमेश्वरके नाम-स्मरणमें प्रीति (प्रेम) ही वस्तुत: नियमनिष्ठा एवं व्रत-पूजा है।[३१] श्रीगुरुग्रन्थसाहिबका यह सिद्धान्त *'एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय'* के न्यायको ही प्रकारान्तरसे व्यक्त करता है।

अन्य श्रमसाध्य व्रत, संयमादिकी तुलनामें परमेश्वरके नाम-स्मरण एवं शरणागतिको अधिक वरीयता प्रदान करके श्रीगुरुग्रन्थसाहिबमें अनेकश: प्रभुके नाममें समर्पणभावसे तन्मय होनेकी प्रेरणा दी गयी है;[३२] क्योंकि इहलौकिक सुख-शान्ति एवं पारलौकिक आनन्दका मुख्य स्रोत नाम-स्मरण ही है।[३३] जप, तप, संयम एवं तत्त्वज्ञानको स्थायित्व प्रदान करनेमें नामस्मरणकी अद्वितीय भूमिका है।[३४] व्रत-सेवन आदि उपाय तभी सार्थक हैं—जब साधक एकनिष्ठ भावसे नाम-स्मरण करता हुआ परमेश्वरकी शरण ग्रहण करता है।[३५]

श्रीगुरुग्रन्थसाहिबकी मान्यता है कि परमेश्वरके नाम-स्मरणमें अपने मन एवं तनको आप्लावित करनेवाला साधक, जप, तप, संयमादि व्रतरूप जलयानमें बैठकर बड़ी सुगमतासे भवसागरको पार कर सकता है।[३६] जीवनमें क्षमा, शील, संतोष[३७] सत्य[३८] आदि उत्तम व्रतोंको धारण करनेवाले साधकके सभी रोग (शारीरिक एवं मानसिक) नष्ट हो जाते हैं। इन दिव्य सम्पदाओंसे समन्वित व्रतपरायण भगवद्भक्त सद्गुरुके मार्गदर्शनमें अपने अहंकार आदि सूक्ष्म विकारोंपर विजय प्राप्त करके[३९] और जप, तप एवं संयमका अहर्निश

२७-तीरथ वरत सुचि संजम नाही करमु धरमु नही पूजा। नानक भाइ भगति निसतारा दुबिधा विआपै दूजा॥ (सिरीरागु महला पृ० ७५)

२८-जपु तपु संजमु छोडि सुक्रित मति राम नामु न अराधिआ। उछलिआ कामु काल मति लागी तउ आनि सकति गलि बांधिआ॥ (सिरीराग बाणी भगत बेणीजीकी पृ० ९३)

२९-(क) करम धरम अनेक किरिआ सभ ऊपरि नामु अचारु। (रागु आसा महला-५, घरु १२, पृ० ४०५)

(ख) पुन दान जप तप जेते सभ ऊपरि नामु। (आसा महला-५, पृ० ४०१)

३०-कल मैं एकु नामु किरपानिधि जाहि जपै गति पावै। अउर धरम ताकै सम नाहनि एह बिधि बेदु बतावै॥ (सोरठ महला-९, पृ० ६३२)

३१-(क) जिसु अंतरि प्रीति लगै सो मुक्ता। इन्द्री वसि संजमि जुगता॥ (माझ महला-३, पृ० १२२)

(ख) करम धरम नेम ब्रत पूजा। पारब्रहम बिनु जानु न दूजा॥ (गउड़ी महला-५, पृ० १९९)

३२-(क) वरत नेम संजम करि थाके नानक साध सरणि प्रभ संगि बसै॥ (आसा महला-५, पृ० ४०८)

(ख) बनखंड जाइ जोग तप कीनो कंद मूलु चुनि खाइआ। कहु कबीर जन भए खालसे प्रेम भगति जिह जानी॥ (रागु सोरठि बाणी भगत कबीरजीकी घरु १, पृ० ६५४)

३३-नानक नावहु घुथिआ हलतु पलतु सभु जाइ। जपु तपु संजमु सभु हिरि लइआ मुठी दूजै भाइ॥ (सलोक महला-३, पृ० ६४८)

३४-जप तप संजम गिआन ततबेता जिसु मनि बसै गोपाला। नामु रतनु जिनि गुरमुखि पाइआ ताकी पूरन घाला॥ (सोरठि महला-५, पृ० ६१५)

३५-(क) कहा भइओ तीरथ ब्रत कीए राम सरनि नही आवै। जोग जग निहफल तिह मानउ जो प्रभ जसु बिसरावै॥ (रागु बिलावलु महला-९, दुपदे, पृ० ८३०-८३१)

(ख) जप तप बरत कीने पेखन कउ चरणा राम। तपति न कतहि बुझै बिन सुआमी सरणा राम॥ (बिहागड़ा महला-५, पृ० ५४५)

३६-जप तप का बंध बेड़ुला जितु लंघहि वहेला। ना सरवरु ना ऊछलै ऐसा पंथु सुहेला। तेरा ऐको नामु मंजीठड़ा रता मेरा चोला सद रंग ढोला॥ (सूही महला-१, पृ० ७२९)

३७-खिमा गही ब्रतु सील संतोखं। रोगु न बिआपै ना जम दोखं॥ (गउड़ी महला-१, पृ० २२३)

३८-खिमा गही सचु संचिओ खाइओ अम्रितु नाम। खरी क्रिपा ठाकुर भई अनद सूख बिस्राम॥ (गउड़ी बावनअखरी महला-५, सलोकु, पृ० २६१)

३९-(क) हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि। किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि॥ नानकु कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि॥ (सलोक महला-२, पृ० ४६६)

(ख) सतिगुर पुछै सचु संजमु कमावै हउमैं रोगु तिसु जाए॥ (सलोक महला-३, पृ० ५१२)

अनुष्ठान करके यम-यातनासे मुक्त हो जाता है।[४०] साधनाकी इस उच्चतम भूमिकाके सौजन्यसे साधकका ध्यान पूर्णत: श्रीहरिमें केन्द्रित हो जाता है, परिणामत: शाश्वत क्षेमकारिणी शान्तिकी उपलब्धि होती है।[४१]

निष्कर्षत: श्रीगुरुग्रन्थसाहिबने व्रतके प्रसंगमें सत्य, संयम, अहंकार, त्याग, निष्कामता, जप, तप, इन्द्रियनिग्रह, शील, संतोष एवं परमेश्वरके नाम-स्मरण आदि प्रशस्त गुणोंको अधिक महत्त्व प्रदान किया है।

जैन-पर्व और उत्सव

(सुश्री सुशीलाकुमारीजी वैद)

जैन-धर्मका प्रमुख पर्व है 'पर्युषण'। इसे पर्वरात्र भी कहा जाता है। पर्युषण-पर्व दिगम्बर-सम्प्रदायमें प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल पञ्चमीसे चतुर्दशीतक एवं श्वेताम्बर-सम्प्रदायमें भाद्रपद कृष्ण द्वादशीसे भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीतक मनाये जाते हैं। दिगम्बर इस पर्वको दशलक्षण-पर्व कहते हैं। वस्तुत: यह नाम इस पर्वके मूल उद्देश्यका द्योतक है। पर्युषणका अर्थ है—उपासना, अर्थात् श्रेष्ठ आत्मस्वभावकी उपासना। यह उपासना दस दिनोंतक दस गुणोंके माध्यमसे अपने आत्मस्वभावको पहचानने एवं शोधनेसे पूर्ण होती है। इन दस दिनोंके आत्मशोधके माध्यम दस गुण क्रमश: इस प्रकार हैं—(१) उत्तम क्षमा, (२) उत्तम मार्दव अर्थात् मृदुता, (३) उत्तम आर्जव अर्थात् सरलता, (४) उत्तम सत्य, (५) उत्तम शौच अर्थात् बाह्य एवं आन्तरिक शुद्धि, (६) उत्तम संयम, (७) उत्तम तप अर्थात् इच्छाओंका दमन, (८) उत्तम त्याग, (९) अकिञ्चन्य अर्थात् सञ्चयका त्याग और (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य।

समस्त जैन-धर्मावलम्बी बड़ी श्रद्धासे इस पर्युषण पर्वको मनाते हैं। अनेक जैन इन दिनों व्रत रखते हैं एवं अपने सामर्थ्यानुसार दानादि देते हैं। जो व्रत नहीं रखते वे भी मिताहार करते हैं और कड़ी भाषासे बचते हैं। इन दिनों जैन-मन्दिरोंमें हर्ष तथा आनन्द छाया रहता है। प्रतिदिन प्रात:कालसे ही स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध नित्यकर्मोंसे निवृत्त होकर मन्दिर पहुँच जाते हैं और वहाँ भजन-पूजन, आरती तथा शास्त्र-प्रवचनमें डूबे रहते हैं।

पर्युषणका अन्तिम दिन संवत्सरी या क्षमावाणी-पर्वके रूपमें मनाया जाता है। इस अवसरपर जैन अपने मित्रों, रिश्तेदारों एवं परिचितोंसे जाने-अनजानेमें सालभर किये अपराधोंके लिये क्षमा माँगते हैं।

फिर आते हैं—श्रुतपञ्चमी एवं ज्ञानपञ्चमी-पर्व। इस अवसरपर जैन-ग्रन्थोंकी पूजा तथा उन्हें सुव्यवस्थित रखनेपर ध्यान दिया जाता है। इस दिन जैसलमेर, खम्भात, जयपुर, पाटन, भूधरविदरी, खडंजा आदि स्थानोंमें ग्रन्थ-भण्डारोंकी स्थापना हुई है, जहाँ ताड़पत्र तथा कागजपर रचित मूल्यवान् पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं।

महावीर-जयन्ती जैनोंका एक और महान् पर्व है। यह प्रतिवर्ष जैनोंके अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामीके जन्म-दिन चैत्र शुक्ल त्रयोदशीको धूमधामसे मनाया जाता है। फिर आता है—महावीर स्वामीका निर्वाणपर्व-दिवस, जो ईसासे ५२७-२८ वर्ष पूर्व माना जाता है। उनके निर्वाणपर काशी, कौशलसहित अठारह राजाओं एवं प्रजाओंने उस दिन उपवास रखा था और दीपक जलाये थे। कारण संसारसे ज्ञानज्योति उठ चुकी थी। अत: आलोकके पार्थिव दीप जलाना आवश्यक था। तबसे जैन-दीपावलीका प्रारम्भ हुआ जो कार्तिक अमावास्यापर हिन्दुओंके साथ ही पड़ती है। श्वेताम्बर-जैन धनतेरसको अपने गहने एवं जवाहरात उजालते हैं। काली चौदसको स्त्रियाँ चौराहोंपर मिठाइयाँ एवं दीपक रखती हैं ताकि भूत-प्रेतोंसे उनके बालकोंकी रक्षा होती रहे। रक्षाबन्धन एवं श्रावणी भी जैन लोग हिन्दुओंकी ही तरह मनाते हैं।

जैन-धर्म वैराग्य एवं त्यागप्रधान है। जैन-धर्मानुयायियोंने तीर्थङ्करों एवं साधकोंको अपनी श्रद्धा अर्पित करनेके लिये उनके विशाल मन्दिर भी बनवाये तथा उनकी अर्चना गृह

४०-जप तप संजम तुम खंडे जम के दुख डांड॥ (बिलावलु महला-५, पृ० ८२५)

४१-हरि हरि जाप ताप व्रत नेमा। हरि हरि धिआइ कुसल सभि खेमा॥ (टोडी महला ५, घरु ३ चउपदे, पृ० [illegible])

कर दी। इधर जैन-पुराणोंमें देव-देवियों एवं यक्षिणियोंकी कथाएँ एवं पूजा भी प्रस्तुत हुई। जैन तीर्थङ्करोंकी संख्या चौबीस है। प्रत्येक तीर्थङ्करके दाहिनी ओर यक्ष एवं बायीं ओर यक्षिणीकी कल्पना की गयी। इनके अलावा श्रुत-देवता, शान्ति-देवता एवं सोलह विद्यादेवियाँ भी सामने आयीं। जैन-धर्मके इस स्वरूपके अन्तर्गत प्रायः सभी नगरोंमें जैनमन्दिर स्थित हैं। इनमेंसे पाँच पवित्र पर्वत विशेष उल्लेखनीय माने जाते हैं। जिनकी यात्रा एवं दर्शन हर जैन अपने जीवनमें एक बार करनेके लिये उत्कण्ठित रहता है। इन पर्वतोंमें सर्वाधिक मान्यता गुजरातके पालिताना कस्बेके शत्रुञ्जयकी है। यह विश्वकी प्रमुख मन्दिर-नगरियोंमेंसे एक है। यहाँ पहाड़ीपर ११वीं शताब्दीका मन्दिर तथा ८६ अन्य जैनमन्दिर भी हैं। दूसरा प्रमुखतम पवित्र पर्वत है गिरनार, यह भी गुजरातमें ही है। यहाँ एक टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग तय करनेपर एक शिखर आता है जिसे नेमिनाथ-शिखर कहते हैं। इसपर नेमिनाथजीकी विशाल प्रतिमा है। पास ही शिलापर उनके चरण अङ्कित हैं। ऐसा समझा जाता है कि यहीं नेमिनाथको निर्वाण प्राप्त हुआ था।

जैनतीर्थों एवं मेलोंमें सर्वाधिक उल्लेखनीय है पावापुरी, जहाँ महावीरजीने ७२ वर्षकी आयुमें अन्तिम उपदेश देकर निर्वाण प्राप्त किया था। पटनासे ५० मील दक्षिणमें यहाँ महावीरजीका विशाल जलमन्दिर है। यहाँ दीपावलीपर देशभरसे दोनों सम्प्रदायोंके जैन एकत्र होकर महावीरजीके चरणोंमें निर्वाण लड्डू एवं पुष्प अर्पित करते हैं।

भारत प्रसिद्ध दिगम्बर जैनतीर्थ श्रीमहावीरजी राजस्थानमें हिन्डौन तहसीलमें स्थित हैं। यहाँ महावीरजीके जन्मपर हर वर्ष लाखों भक्त आते हैं। प्रसिद्ध है कि यहाँके टीलेपर आते ही हर गायका दूध स्वतः झर जाता था। जब ग्वालेने यह देखा तो उसने टीला खोदा, जहाँसे महावीरजीकी प्रतिमा प्राप्त हुई। १७वीं शताब्दीमें दिगम्बर जैन श्रीअमरचन्द बिलालाने यहाँ नदीतटपर तीन शिखरोंका विशाल मन्दिर स्थापित करा दिया। महावीर-जयन्तीपर आयोजित पाँच दिवसीय मेलेमें महावीरजीकी रथयात्रा भी निकलती है।

राजस्थानमें ही उदयपुरसे ४० मील दूर कोयला नदीके तटपर ऋषभदेवजीका कस्बा है। जैन धर्मके प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेवकी जयन्तीपर यहाँ लाखों जैन प्रतिवर्ष एकत्र होते हैं।

बंगलौरसे १०० मील दूर श्रवणवेलगोला पहाड़ीपर स्थित तीर्थ भी उल्लेखनीय है। यहाँ ऋषभदेवके पुत्र बाहुबलीकी ५७ फीट ऊँची विश्वप्रसिद्ध प्रतिमा है। बाहुबली एवं उनके भाई भरतमें चक्रवर्ती राजा बननेके लिये भीषण युद्ध हुआ था। बाहुबली जीत गये पर उन्हें फिर वैराग्य हो गया। उन्होंने तपस्या कर शरीर त्याग दिया। उन्हींकी प्रतिमा यहाँ पहाड़ीपर स्थित है। परकोटेमें एकतालीस देवोंकी मूर्तियाँ हैं, सिद्धोंकी शिला है एवं निकटमें आदिनाथ, नेमिनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ तथा चन्द्रप्रभु आदिकी प्रतिमाएँ हैं। यहाँ प्रायः हर चौदह वर्षके बाद मुख्यतः भारत-भरके दिगम्बर जैन एकत्र होते हैं एवं महामस्तकाभिषेक-उत्सव मनाते हैं।

'नहीं आनन्द है दूजा'

('पागल' गोरखपुरी)

भरै उल्लास जो हियमें, वही सत् पर्व कहलाये।
करै कल्याण दूजोंका, वही सत् धर्म कहलाये॥
अहित होवै किसीका न, वही बस कर्म कहलाये।
भजो तूँ रामको 'पागल' सभी सद्ग्रन्थ समझायें॥
बरत् जीवन जो तूँ अपने तो ब्रत इससे नहीं दूजा।
चलो गर रामकी राहें, तो हो सबसे बड़ी पूजा॥
जो बरता त्याग जीवनमें, कमीसे वह न फिर जूझा।
अरे 'पागल!' तूँ भज ले राम, नहीं आनन्द है दूजा॥

बौद्ध-धर्ममें व्रतपर्वोत्सव

(श्रीक्रान्तिकुमारजी, श्रीमती सुमनजी माथुर)

विभिन्न सम्प्रदायोंसे जुड़े लोग अपनी-अपनी परम्पराके अनुसार वर्षभरमें अनेक पर्व तथा उत्सव आयोजित करते हैं। विश्वके अधिकांश भागोंमें रहनेवाले बौद्ध-धर्मावलम्बी लोग भी बड़े हर्षोल्लासके साथ कई उत्सव मनाते हैं, जो उनके सामाजिक परिदृश्यों तथा भगवान् गौतम बुद्धके जीवन-दर्शनपर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

लुम्बिनी, बोधगया, सारनाथ और कुशीनगर—ये चार ऐसे स्थान हैं जो गौतम बुद्धके जन्म, ज्ञान-प्राप्ति, प्रथम उपदेश तथा महापरिनिर्वाणसे सम्बन्धित होनेके कारण बौद्धोंके लिये पवित्र तीर्थ बन गये हैं। इसी प्रकार श्रावस्ती, संकास्य, राजगृह और वैशाली भी बौद्धोंके तीर्थस्थानके रूपमें माने जाते हैं; क्योंकि महात्मा बुद्धने इन स्थानोंपर अपने चार मुख्य चमत्कारोंका प्रदर्शन किया था। इन सभी पावन तीर्थोंमें श्रद्धालुजन अनेक अवसरोंपर एकत्र होते हैं और हार्दिक श्रद्धाके साथ उल्लासपूर्ण वातावरणमें पर्व मनाते हैं। बौद्ध-धर्मके दोनों सम्प्रदायों—हीनयान तथा महायानमें कतिपय विभिन्नताओंके साथ समानरूपसे पर्व मनानेकी प्रथा प्रचलित है। इनमें कुछ लोग पर्वोंके अवसरपर प्रदर्शित होनेवाले संगीत तथा नृत्यको आडम्बरकी संज्ञा देते हुए इसका निषेध करते हैं। उनका मानना है कि बौद्ध-धर्म एक विशुद्ध अध्यात्म है, जिसमें नृत्य तथा संगीत आदिके साथ उत्सव मनाना अनुचित है। जबकि कुछ लोग इसे भी धार्मिक प्रक्रियासे जोड़कर नाच-गानके साथ उत्सव मनाते हैं।

बौद्ध-धर्मावलम्बियोंका सबसे प्रमुख तथा महत्त्वपूर्ण उत्सव वैशाख पूर्णिमाके दिन आयोजित किया जाता है, जिसे वे शाक्यमुनिके जन्म-दिवसके रूपमें मनाते हैं। इसी दिन महात्मा बुद्धको ज्ञान प्राप्त हुआ था और आजहीके दिन उनका महाप्रयाण भी हुआ था। अतएव यह दिन उनके परिनिर्वाण-दिवसके रूपमें भी मनाया जाता है। इस अवसरपर लोग प्रभातफेरी करते हैं, गौतम बुद्धकी प्रतिमाके समक्ष प्रार्थना-पूजन करते हैं और बौद्ध भिक्षुओंको भोजन कराते हैं। सायंकाल मन्दिरोंमें दीपक तथा मोमबत्ती जलाते हैं। इस महोत्सवमें श्रीलङ्का, थाइलैण्ड, बर्मा, मलेशिया, जापान, नेपाल, कम्बोडिया, ताईवान, चीन, तिब्बत, कोरिया तथा अन्य देशोंके बौद्ध-धर्मानुयायी साथ-साथ शामिल होकर इसे मनाते हैं। विभिन्न देशोंके श्रद्धालुओंद्वारा इस उत्सवके मनाये जानेका तरीका एक समान नहीं होता है, अपितु वे अपने देशके रीति-रिवाजके अनुसार मनाते हैं। यद्यपि यह उत्सव हर्षोल्लासका प्रतीक है, किंतु लोग इस आनन्दका अनुभव अत्यन्त शान्तिपूर्ण तरीकेसे करते हैं। श्रद्धालुजन बुद्धके उपदेशों तथा उनके ईश्वरीय चरित्रोंको अपने मनमें धारण कर विश्व-शान्तिके लिये प्रार्थना करते हैं।

बौद्ध भिक्षुओंके तीन माहके 'वस्सावास' (वर्षाकालीन निवास)-की अवधिके अनन्तर कार्तिक पूर्णिमाके दिन एक अन्य आध्यात्मिक पर्व मनाया जाता है। वर्षा-ऋतुमें बौद्ध भिक्षु मठोंमें निवास करते हैं और इस अवधिके बाद ही वे बाहर निकलते हैं। इस दिन लोग प्रातःकालीन प्रार्थना-पूजनके पश्चात् दोपहरसे पूर्व ही भिक्षुओंको भोजन कराते हैं और उन्हें उपहारस्वरूप वस्त्र प्रदान करते हैं। इसे 'चीवरदान' (वस्त्रदान) कहा जाता है। तत्पश्चात् लोग दिनका शेष भाग ध्यान तथा पूजनमें व्यतीत करते हैं और शामको मन्दिरों तथा स्तूपोंपर दीपक एवं मोमबत्तियाँ जलाते हैं।

बौद्धोंके द्वारा एक अन्य महत्त्वपूर्ण उत्सव आषाढ़ पूर्णिमाके दिन मनाया जाता है। इस दिनको अपार श्रद्धाके साथ पर्वरूपमें मनानेके दो मूलभूत कारण है। पहला तो यह कि इसी दिन महात्मा बुद्ध सत्यकी खोजमें महान् त्यागकी भावनासे युक्त होकर राजमहलसे निकल पड़े थे और दूसरा यह कि उन्होंने आजहीके दिन सारनाथमें अपने शिष्य कौण्डिन्य तथा ज्ञानप्राप्तिके पूर्व बोधगयामें साथ रह चुके चार अन्यको चार शाश्वत सत्योंका उपदेश प्रदान किया। यह उत्सव अत्यन्त सादगीके साथ मनाया जाता है। सारनाथ स्थित 'धम्मेक स्तूप' जहाँ गौतम बुद्धने उपदेश दिया था, पर पूजा की जाती है और दीपक तथा मोमबत्तियाँ जलायी जाती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध-मतानुयायी भिन्न-भिन्न अवसरोंपर उत्सवोंका आयोजन करते हैं, जिनसे उनकी आध्यात्मिक अभिरुचि तथा बौद्ध-दर्शनके प्रति अपार झुकावका बोध होता है। भारतके अतिरिक्त अन्य देशोंमें भी बौद्ध-पर्व बड़े ही सम्मान तथा श्रद्धाके साथ मनाये जाते हैं।

[ज्ञानप्रवाह-संगोष्ठीसे साभार]
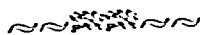
चीनमें श्रीसत्यनारायणव्रतकथा

(श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

जुलाई सन् १९९० ई० में चीनयात्राके दौरान गुरुपूर्णिमाका अति महत्त्वपूर्ण पर्व पड़नेवाला था। इस पर्वपर स्वयंकी श्रद्धाके अनुरूप गुरुदेवका विशेष अर्चन-पूजन और उन्हें गुरुदक्षिणास्वरूप कुछ निवेदन किया जाता है। इस पर्वकी सम्भावना इस देशमें नहीं लग रही थी। फिर भी मैंने चीनी विज्ञान-अकादमीके अन्तर्गत दक्षिण एशिया संस्कृति-संस्थानके डायरेक्टर तथा अपने सहयोगी-मार्गदर्शक प्रो० जिन डिंग हॉनसे राजधानी बीजिंग पहुँचते ही अनुरोध किया कि वे उस दिन मेरा कार्यक्रम प्रात:कालके बजाय दोपहरके बाद शुरू करें। वे मेरे अनुरोधका कारण नहीं समझ सके। अतएव कार्यक्रममें कुछ खास परिवर्तन न किया जा सका। किंतु दैवीविधान तो कुछ और ही था, जिसके बारेमें कल्पना भी नहीं की थी।

हुआ यह कि थाईलैण्डके एक मेरे मित्रने उसी दिन क संदेश बीजिंग-स्थित अपने भारतीय मित्रको मेरे वहाँ हुँचनेके बारेमें दिया जो राष्ट्रसंघकी किसी एजेंसीमें वरिष्ठ नधिकारी थे। उन मित्रको यह गलतफ़हमी हुई कि गईलैण्डके उनके मित्र भी मेरे साथ आ रहे हैं, अतएव अस्वस्थ होते हुए भी हवाई अड्डेपर लेनेके लिये पहुँच ाये। उन्होंने मेरा सहर्ष स्वागत अवश्य किया, किंतु ालतफ़हमी भी बयान कर दी। वास्तवमें उनकी इस ालतफ़हमीमें ही मेरी गुरुपूर्णिमाकी भावी उपलब्धि छिपी थी। नये देशमें पहुँचनेपर की जानेवाली औपचारिकताएँ पूरी करनेके बाद बाहर अपने मेजबानोंसे भेंट हुई और उनसे मैंने भारतीय मित्रका परिचय कराया। इसके बाद पुनः सम्पर्क करनेका वादा करके वे भारतीय मित्र चले गये और अपने मेजबानोंके साथ मैं नियत स्थानपर पहुँचा।

उन्हें भी विदा करके जब कुछ निश्चिन्त हुआ तो मैंने भारतीय मित्रको फोन मिलाया और पूछा कि क्या वे गुरुपूर्णिमाकी शामको अपने यहाँ कोई पूजन-भजनका कार्यक्रम रख सकते हैं ? उनका सहर्ष उत्तर था—क्यों नहीं, मेरे सुझावपर उन्होंने प्रो० जिन डिंग हॉनको भी निमन्त्रित कर लिया जिनसे उनकी हवाई अड्डेपर भेंट हो चुकी थी। उनके घर जब पहुँचा तो पता चला कि आज उन्होंने श्रीसत्यनारायणव्रत-कथाका आयोजन किया है। साथ ही, कुछ अन्य भारतीय मित्रोंको भी बुलाया है जो भारतीय दूतावाससे सम्बन्धित थे।

श्रीसत्यनारायणव्रतकथा पूर्ण होनेके बाद श्रीरामचरित-मानसपर प्रो० जिन डिंग हॉनका प्रवचन हुआ, जिन्होंने चीनी भाषामें इसका पद्यानुवाद किया है। मैंने भी गुरुपूर्णिमाकी कुछ प्रेरक कथाएँ सुनायीं।

इस प्रकार दैव-कृपासे एक साम्यवादी देशमें भी गुरु-पूर्णिमा मना ली गयी और श्रीसत्यनारायणव्रतकथा भी सुन ली।

चीनमें साम्यवादी शासन होनेके कारण वहाँ श्रीसत्यनारायणव्रतकथाके आयोजनका अपना अलग महत्त्व रहा, भले ही वह किसी भारतीयके निवासपर हुई। किंतु इधरके वर्षोंमें अनेक देशोंके मूल निवासियोंमें हिन्दूपर्वों, उत्सवों, त्योहारों आदिके बारेमें रुचि बढ़ रही है। मॉरिशस, सिंगापुर, हांगकांग, फिजी, ट्रिनिडाड, गयाना, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका, जाम्बिया, कीनिया, ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, हॉलैण्ड, थाईलैण्ड, मलेशिया आदि देशोंमें जहाँ भारतवंशी पर्याप्त संख्यामें हैं, मुख्य भारतीय पर्व, त्योहार आदि उसी उत्साहसे मनाये जाते हैं जैसे भारतमें। भारतवासियोंद्वारा अपनी संस्कृति, धर्म और परम्पराओंके प्रति निष्ठा देखकर तथा उनके त्योहारोंके रंगारंग समारोहोंका आकर्षण देखकर उन देशोंके मूल निवासी इनमें शामिल होने लगे। ऐसी समरसता उन देशोंमें जातीय सद्भावना और प्रेम बढ़ानेमें सहायक होती है। होली, दीपावली कुछ ऐसे त्योहार हैं और रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी, शिवरात्रि ऐसे पर्व हैं जो उन देशोंमें राष्ट्रिय एकताके माध्यम बन रहे हैं।

बल्कि इससे भी अधिक मैंने कुछ देशोंके प्रसिद्ध हिन्दूमन्दिरोंमें गैर हिन्दू स्त्री-पुरुषोंको बड़ी संख्यामें भाग लेते हुए देखा। इनमें अनेक तो मन्दिरोंमें नियमित आते हैं और वहाँ बैठकर ध्यान-पूजन, साधना करते हैं। साथ ही, कभी-कभी अपने घरोंमें पूजन-भजन करानेके लिये मन्दिरके पुजारियोंको ले जाते हैं। इनमें अनेक श्रद्धावान् भक्त बन जाते हैं और उनका जीवन बदल जाता है। वे सुरापान, मांसाहार आदि स्वत: छोड़ देते हैं। यह प्रवृत्ति सभी प्रकारसे स्वागत-योग्य है। इसके मूलमें भारतीय व्रतपर्वोत्सवोंकी अध्यात्मपरकता तथा विश्वबन्धुत्वकी सूक्ष्म भावनाका उत्स निहित है।
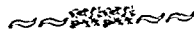
मसीही (ईसाई)-धर्मके पर्वोत्सव

(डॉ० श्री ए० बी० शिवाजी)

हिन्दू और मुसलिम भाइयोंकी तरह मसीही भी अपने पर्वोंको बड़े ही उल्लाससे मनाते हैं। ये लोग प्रत्येक रविवारको गिरजाघरमें सामूहिक आराधना करते हैं, जिसमें बाइबिलका पाठ, भजन एवं प्रार्थनाएँ की जाती हैं और धर्माचार्योंद्वारा बाइबिलकी शिक्षापर प्रवचन होता है। तदनन्तर आशीर्वचनोंसे आराधना समाप्त होती है।

पर्वोंमें विशेषरूपसे ख्रीस्तजयन्ती (बड़ा दिन), खजूरका इतवार, शुभ शुक्रवार और ईस्टरको प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक दोनों लोग बड़े हर्षोल्लासके साथ मनाते हैं। यहाँ संक्षेपमें इनका परिचय दिया जा रहा है—

(१) ख्रीस्तजयन्ती या बड़ा दिन—यह पर्व २५ दिसम्बरसे ३१ दिसम्बरतक मनाया जाता है, जो २४ दिसम्बरकी मध्यरात्रिसे ही आरम्भ हो जाता है। २४ दिसम्बरकी रात्रिसे ही नवयुवकोंकी टोली, जिन्हें कैरल्स कहा जाता है, यीशु मसीहके जन्मसे सम्बन्धित गीतोंको प्रत्येक मसीहीके घर जाकर गाते हैं। २५ दिसम्बरकी सुबह गिरजाघरोंमें विशेष आराधना होती है, जिसे 'क्रिसमस-सर्विस' कहा जाता है। इस आराधनामें धर्माचार्य यीशुके जीवनसे सम्बन्धित प्रवचन करते हैं। आराधनाके पश्चात् मसीही बन्धु एक-दूसरेका अभिवादन करते हुए बड़ा दिन मुबारक (Wish you a happy Christmas) कहते हैं। एक-दूसरेको भेंट देते हैं और घर आनेवालोंका सत्कार करते हैं। क्रिसमससे एक सप्ताह पहले मसीही बन्धु अपने रिश्तेदारों एवं मिलनेवाले लोगोंको जो अन्यत्र रहते हैं, क्रिसमस ग्रीटिंगकार्ड भेजते हैं। यह पर्व यीशुके जन्मका स्मरण कराता है। वास्तवमें यह पर्व मसीहियोंका हृदय है।

(२) खजूरका इतवार—यह पर्व यीशुके विजयोल्लासके साथ येरुशलम नगरमें प्रवेशका पर्व है, जिसका वर्णन मत्तीरचित सुसमाचार २१:१—११, मरकुसरचित सुसमाचार ११:१—११, लूकारचित सुसमाचार १९:२९—४४ और यूहन्नारचित सुसमाचार १२:१२—१९)-में पाया जाता है।

इस पर्वको मनाते समय मसीही भाई-बहन, बच्चे अपने-अपने हाथोंमें खजूरकी डाल रखते हैं, जुलूस निकालते हैं, धर्माचार्य उनकी अगुवाई करते हैं और दाऊदकी संतानको होशन्ना पुकारते हैं। जुलूसकी समाप्तिपर पुनः आराधनालय (चर्च)-में एकत्र होकर ईश्वरकी भक्ति की जाती है। खजूरकी डालके विषयमें यूहन्नारचित सुसमाचारमें लिखा है—'यह सुनकर कि यीशु येरुशलमको आता है, खजूरकी डालियाँ ली और उससे भेंट करनेको निकले और पुकारने लगे कि होशन्ना धन्य इस्राइलका राजा, जो प्रभुके नामसे आता है।' (यूहन्ना १२:१२-१३)

(३) दुःखभोगका सप्ताह—शुभ शुक्रवारका पर्व मनानेके एक सप्ताह पहले दुःखभोगका सप्ताह मनाया जाता है। इसे पेशेन्स वीक (Patience Week) कहा जाता है। सोमवारसे लेकर गुरुवारतक सन्ध्यासमय मसीही भाई-बहन आराधनालयमें एकत्र होते हैं और धर्माचार्य अथवा अन्यत्र स्थानसे बुलाये गये मेहमान जो मसीही शिक्षामें दक्ष होते हैं, प्रवचन करते हैं और उन दिनोंका स्मरण करते हैं जब प्रभु यीशुने मानवजातिको पापसे बचानेहेतु कितना दुःख उठाया था। गुरुवारके दिन प्रभुभोजकी विधि (Lord's Supper) भी मनायी जाती है।

प्रभुभोजकी विधि मनानेका आधार यीशुद्वारा अपने शिष्योंके साथ अन्तिम भोजनपर कहे गये वचन हैं जो पौलुसने १ करिन्थियो ११:२३—२६ में लिखे हैं—'प्रभु यीशुको जिस रात पकड़वाया गया तो प्रभुने रोटी ली एवं धन्यवाद कहते हुए उसे तोड़ा और कहा—यह मेरी देह है जो तुम्हारे लिये है, मेरे स्मरणके लिये यह किया करो।

× × ×

—इस भोजनको 'पवित्र सहभागिता' (Holy Communion) भी कहते हैं। इस भोजके द्वारा मसीहियोंका विश्वास दृढ़ होता है, प्रेम और भक्ति बढ़ती है, प्रभुके आज्ञा-पालन करनेकी प्रेरणा मिलती है और अनन्त जीवनकी आशा बँधती है।

(४) शुभ शुक्रवार (Good Friday)—शुभ शुक्रवार मसीहियोंके लिये आनन्द मनानेका पर्व नहीं है, बल्कि वह

दिन प्रभु यीशुके क्रूसपर चढ़ाये जाने और पापियोंके लिये प्राण देनेकी स्मृतिमें मनाया जाता है। इस दिनसे पहले ४० दिनोंतक बहुत-से मसीही व्रत रखते हैं। शुभ शुक्रवारको विशेष आराधनाका आयोजन किया जाता है, जिसमें यीशुके दु:ख उठाने एवं 'क्रूसपर सात वाणी' आदिपर प्रवचन होते हैं। वे सात वाणियाँ निम्नाङ्कित हैं—

(१) 'हे पिता! इन्हें क्षमा कर; क्योंकि ये जानते नहीं कि क्या कर रहे हैं।' (लूका २३:२४)

(२) 'मैं तुझसे सच-सच कहता हूँ कि आज ही मेरे साथ स्वर्गलोकमें होगा (यह शब्द एक डाकूसे कहे गये थे, जो उनके साथ क्रूसपर टँगा था)।' (लूका २३:४३)

(३) 'हे नारी! देख, तेरा पुत्र (माता मरियमसे कहा) और देख तेरी माता' (यूहन्ना चेलेसे कहा)। (यूहन्ना १९:२६)

(४) 'हे मेरे परमेश्वर! हे मेरे परमेश्वर! तूने मुझे क्यों छोड़ दिया' (क्योंकि उस समय यीशु मानवरूपमें था) (मत्ती २७:४६), (मरकुस १५:३४)

(५) 'मैं प्यासा हूँ।' (यूहन्ना १९:२८)

(६) 'पूरा हुआ।' (यूहन्ना १९:३०)

(७) 'हे पिता! मैं अपनी आत्मा तेरे हाथोंमें सौंपता हूँ।' (लूका २३:४६)

शुभ शुक्रवारकी आराधना दिनमें १२ बजेसे ३ बजेतक होती है। इस पर्वको शुभ शुक्रवार इसलिये कहा जाता है कि यीशुने पापियोंके लिये क्रूसपर प्राण देकर समस्त मानवजातिके लिये उद्धारका मार्ग खोल दिया। यूहन्ना ३:१६ में लिखा है, 'क्योंकि परमेश्वरने जगत्से ऐसा प्रेम रखा कि उसने अपना इकलौता पुत्र दे दिया ताकि जो कोई उसपर विश्वास करे, वह नष्ट न हो, परंतु अनन्त जीवन पाये।'

(५) ईस्टर अथवा पुनरुत्थान-दिवस—ईस्टर मसीहियोंके लिये हर्षोल्लासका पर्व है, जो शुभ शुक्रवारके बाद आनेवाले रविवारको मनाया जाता है। इस दिन यीशु पुन: जीवित हुए थे। यीशुके क्रूसपर चढ़ाये जानेकी घटना जितनी दु:खद थी, उसके विपरीत पुनरुत्थान-दिवस आनन्ददायक एवं इतिहासकी महत्त्वपूर्ण घटना थी। यीशुके जीवित होनेका वर्णन मत्तीरचित सुसमाचारमें बहुत ही मार्मिक ढंगसे किया गया है। वहाँ लिखा है—

'देखो, एक बड़ा भूडोल हुआ; क्योंकि प्रभुका एक दूत स्वर्गसे उतरा और पास आकर उसने पत्थरको (जो क्रूसपर था) लुढ़का दिया और उसपर बैठ गया। उसका रूप बिजलीका-सा और उसका वस्त्र पालेकी तरह उज्ज्वल था। उसके भयसे पहरुए काँप उठे और मृतकके समान हो गये' (मत्ती २८:१—४)। इस अवसरपर मरियम मगदलीनी और दूसरी मरियम कब्रपर पहुँची थीं। वे इस घटनाको देखकर डर गयीं। तब स्वर्गदूतने कहा था, 'तुम मत डरो। मैं जानता हूँ कि तुम यीशुको जो क्रूसपर चढ़ाया गया था। ढूँढ़ती हो, वह यहाँ नहीं है। परंतु अपने वचनके अनुसार जी उठा है' (मत्ती २८: ५—७)। इन स्त्रियोंने ये बातें ग्यारह चेलोंको बतायीं किंतु उन्होंने प्रतीति नहीं की। पतरस उठकर कब्रपर दौड़ गया और झुककर केवल कपड़े पड़े देखे तथा जो हुआ था उससे अचम्भा करते हुए अपने घर चला गया (लूका २४:९—१२)।

यूहन्ना लिखता है कि यीशुने सबसे पहले मरियमको दर्शन दिये, किंतु उसने मरियमको अपने-आपको छूने नहीं दिया और यह कहा—'मुझे मत छू; क्योंकि मैं अबतक पिताके पास ऊपर नहीं गया' (यूहन्ना २०:१७)। इस घटनाके बाद यीशु इम्माउस गाँवको जाते हुए दो भक्तोंको मिला (लूका २४:१३—३५)। संध्याके समय दस शिष्योंको (थोपा उस समय वहाँ नहीं था) दिखायी दिया (लूका २४:२६—४३)। सात दिनके बाद ग्यारह चेलोंको दिखायी दिया और उस समय थोपा भी था (यूहन्ना २०:२४—२९)। तब यीशु पुन: गलीलके पर्वतपर ग्यारह चेलोंको दिखायी दिया और उसने आदेश दिया कि 'तुम जाकर सब जातियोंके लोगोंको चेला बनाओ और उन्हें पिता और पुत्र तथा पवित्र आत्माके नामसे बपतिस्मा दो।' (मत्ती २८:१६—२०) पौलुस प्रेरित १ करिन्थियो १५:७—९ में कहता है—'फिर याकूबको दिखायी दिया, तब सब प्रेरितोंको दिखायी दिया और सबके बाद मुझको भी दिखायी दिया जो मानो अधूरे दिनोंका जन्मा हूँ; क्योंकि मैं प्रेरितोंमें सबसे छोटा हूँ वरन् प्रेरित कहलानेके योग्य भी नहीं; क्योंकि मैंने परमेश्वरकी कलीसियाको सुनाया था।'

इस अद्वितीय घटनाका स्मरण करते हुए मसीही ईस्टरका पर्व मनाते और एक-दूसरेको 'प्रभु जी उठा है' बोलकर अभिवादन करते तथा मुबारकवाद देते हैं। कुछ

लोग 'ईस्टर मुबारक' (Wish you a happy Easter) भी कहते हैं।

पिन्तेकुसका पर्व—कुछ मसीही सम्प्रदाय यीशुके जीवित होनेके ५० दिन बाद पिन्तेकुसका पर्व मनाते हैं। यह पर्व इसलिये मनाया जाता है कि यीशुके स्वर्गारोहणके बाद उसी दिन पवित्र आत्माका अवतरण चेलोंपर हुआ था। जिसका वर्णन 'प्रेरितोंके काम' अध्याय २:१—४ में निम्न रूपसे किया गया है—

'जब पिन्तेकुसका दिन आया तो वे सब एक जगह इकट्ठे थे और एकाएक आकाशसे बड़ी आँधीकी-सी सनसनाहटका शब्द हुआ और उससे सारा घर जहाँ वे बैठे थे, गूँज उठा और उन्हें आगकी-सी जीभें फटती हुई दिखायी दीं और उनमेंसे हर एकपर आ ठहरीं तथा वे सब पवित्र आत्मासे भर गये और जिस प्रकार आत्माने उन्हें बोलनेकी सामर्थ्य दी, वे अन्य-अन्य भाषा बोलने लगे।' प्रत्येक मसीही पवित्र आत्माका वरदान चाहता है और इसलिये परमेश्वरसे प्रार्थना भी करता है, जिनको पवित्र आत्माका वरदान प्राप्त हो जाता है, वे प्रभु यीशु मसीहके नाममें प्रार्थनाद्वारा चंगाईका कार्य एवं भविष्यवाणी करने लगते हैं।
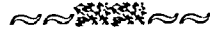
मुसलिम-पर्व—एक दृष्टिमें

(डॉ० कु० परवीन सुल्ताना)

भारत विभिन्न धर्मों तथा संस्कृतियोंवाला देश है। इस देशमें हिन्दू, मुसलिम, सिक्ख एवं ईसाई आदि अनेक धर्म-सम्प्रदायोंके लोग निवास करते हैं। ये लोग देशकी एकताके संरक्षणके प्रति पूरी तरहसे सजग रहते हुए अपनी-अपनी परम्पराओंके अनुसार उत्सव तथा पर्व मनाते हैं। इनमें मुसलिम समुदाय वर्षभरमें अनेक पर्व मनाता है, जिनसे उनकी सामाजिक तथा धार्मिक भावनाओंका प्रकटीकरण होता है। मुहर्रम, रमज़ान, ईद-उल-फ़ितर, ईद-उल-जुहा, शब-ऐ-बरात, बारावफ़ात आदि ऐसे ही उनके उत्सव हैं, जिनसे उनकी धार्मिक, सामाजिक तथा वैचारिक जीवन-शैली साफ-साफ परिलक्षित होती है—

मुहर्रम—मुहर्रम मुसलिम कैलेण्डरका पहला महीना है। यह मुसलिमों और उनमें भी विशेषरूपसे शिया सम्प्रदायके लोगोंके लिये अपने शोक-उद्गारका पर्व है। सऊदी अरबमें मक्कामें कर्बलाकी दुःखान्त घटनाकी यादमें यह पर्व मनाया जाता है, जिसमें अल्लाहके देवदूत मोहम्मद साहबकी पुत्री फ़ातिमाके दूसरे बेटे इमाम हुसैनका निर्दयतापूर्वक क़त्ल कर दिया गया था। मुसलिम समुदाय इस महीनेके दस दिन हज़रत इमाम हुसैनकी शहादतकी यादगारमें तथा उनके प्रति शोक प्रकट करनेमें व्यतीत करता है। यज़ीदकी सेनाके विरुद्ध जंग करते हुए इमाम हुसैनके पिता हज़रत अलीका सम्पूर्ण परिवार मौतके घाट उतार दिया गया था और मुहर्रमके दसवें दिन इमाम हुसैन भी इस युद्धमें शहीद हो गये थे।

इसी दुःखद घटनाके शोकमें यह पर्व भारतवर्ष ही नहीं, अपितु अन्य कई देशोंमें भी बड़े ही आकर्षक रूपमें मनाया जाता है। इस अवसरपर देशके तमाम शहरों तथा कस्बोंमें विविध रंग-रूपोंवाले ताज़िये निकाले जाते हैं। लकड़ी, बाँस तथा चाँदीसे निर्मित और क़ीमती धातुओं तथा रंग-बिरंगे कागजोंसे सुसज्जित ये ताज़िये हज़रत इमाम हुसैनके मक़बरेके प्रतीकके रूपमें माने जाते हैं। इसी जुलूसमें इमाम हुसैनके सैन्य-बलके प्रतीकस्वरूप कुछ लोग अनेकविध शस्त्रोंके साथ युद्धकी कलाबाजियाँ प्रदर्शित करते हैं। मुहर्रमके जुलूसमें लोग इमाम हुसैनके प्रति अपनी संवेदना दर्शानेके लिये बाजोंपर शोक-धुन बजाते हैं और शोक-गीत (मर्शिया) गाते हैं। लोग शोकाकुल होकर आँसू बहाते हुए विलाप करते हैं तथा अपनी छाती पीट-पीटकर 'हाय हुसैन', 'हाय हुसैन' के आर्त स्वरसे पूरे वातावरणको करुणरससे सिक्त कर देते हैं। मुहर्रमके दसवें दिन ताज़ियादारीकी यह परम्परा बग़दादके ख़लीफ़ा मज़ुद्दौलाके द्वारा हिजरी सन् ३५२ में चालू की गयी। भारतमें इस परम्पराकी शुरुआत चौदहवीं शताब्दीमें मुहम्मद तुगलकके समयमें तैमूरलंगके द्वारा की गयी।

रमज़ान—मुसलिम महीने रमज़ानके प्रथम दिनसे

ही यह पर्व आरम्भ हो जाता है। यह रमज़ानका महीना सभी मुसलिम महीनोंमें पवित्रतम माना गया है; क्योंकि हज़रत जिब्राइल इसी महीनेमें अल्लाहके द्वारा पृथ्वीपर भेजे गये थे। इन्हींके माध्यमसे अल्लाहके द्वारा प्रेषित पावन ग्रन्थ 'क़ुरान' मोहम्मद साहबको उस समय हस्तगत हुआ था, जब वे मक्कामें कठोर तपस्या कर रहे थे।

रमज़ानके दौरान पूरे दिन मुसलमान लोग उपवास करते हैं और इस अवधिमें वे आत्म-नियन्त्रणको अल्लाहका आदेश समझकर समस्त प्रकारकी दुर्वृत्तियोंसे अपनेको दूर रखते हैं। इस पवित्र महीनेमें मुसलिम समुदायके लोग भोरमें (उषाकालके पूर्व) उठकर दिनका उपवास-व्रत आरम्भ करनेके पहले अल्पाहार करते हैं। पूरे दिन शुभ विचारों तथा धार्मिक भावनाओंमें मनको केन्द्रित करके उपवास-व्रतका दृढ़ संकल्पके साथ पालन करनेवाले मुसलिम लोग मस्जिदोंमें क़ुरानकी आयतोंका पाठ करते हैं। इस प्रकार रमज़ान महीनेमें कठोर उपवास, क़ुरान-पाठ, आत्म-नियन्त्रण, परस्पर भाईचारेकी भावना आदिके द्वारा मुसलमान बन्धु नैसर्गिक मानवीय गुणोंसे ओत-प्रोत हो जाते हैं।

ईद-उल-फ़ितर—मुसलिम समुदायद्वारा सम्पूर्ण विश्वमें मनाया जानेवाला यह सबसे बड़ा पर्व है। यह हिजरी सन्के दसवें महीने 'शव्वाल' की पहली तारीख़को मनाया जाता है। रमज़ानके दौरान तीस दिनोंके कठोर उपवासके बाद महान् हर्ष तथा उल्लासके साथ लोग नये-नये रंग-बिरंगे भव्य परिधानोंमें सज-धजकर बड़ी संख्यामें मस्जिदों तथा ईदगाहोंमें जाते हैं और वहाँ ईदकी नमाज़ अदा करते हैं। आजके दिन हिन्दू तथा मुसलमान आपसी भाईचारेकी भावनाकी अभिवृद्धिके उद्देश्यसे एक-दूसरेको गले लगाते हैं। इस अवसरपर मुसलिम नारियाँ सुन्दर वस्त्रों तथा यथासामर्थ्य क़ीमती आभूषणोंसे सुसज्जित होकर एक-दूसरेके घर पहुँचकर शुभकामनाएँ व्यक्त करती हैं। आजके दिनका प्रमुख आकर्षण घरोंमें तैयार की गयी अति स्वादिष्ठ 'सेवइयाँ' रहती हैं।

ईद-उल-जुहा—यह पर्व मुसलिम महीने 'जिल-हिज्ज' की दसवीं तिथिको बड़े धूमधामसे मनाया जाता है। यह पर्व हज़रत इब्राहिमकी कठोरतम परीक्षाके यादगारमें सर्वत्र मनाया जाता है। एक बार उन्हें स्वप्नमें सर्वशक्तिमान् अल्लाहसे आदेश मिला कि वे अपने सर्वप्रिय पुत्र इस्माइलकी बलि चढ़ाये। इब्राहिमके लिये यह कठिन अग्निपरीक्षा थी। अल्लाहमें दृढ़ विश्वास रखनेवाले हज़रत इब्राहिमने इसके लिये अपने पुत्र इस्माइलसे पूछा और उसके तत्काल राज़ी हो जानेपर उसकी बलि चढ़ानेको तैयार हो गये। हज़रत इब्राहिमने अपनी तलवार ज्योंही बेटेकी गर्दनपर रखी, उसी समय सर्वव्यापी अल्लाहने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया और कहा कि मैं तो केवल अल्लाहके प्रति आपकी भक्ति तथा विश्वास और उनके द्वारा आपको प्रदत्त आदेशकी परीक्षा ले रहा था।

इस दिन लोग प्रातःकाल बिना नाश्ता किये नमाज़के लिये जाते हैं। आजके दिन मुसलिम बन्धु एक-दूसरेको अपने घर भोजनके लिये आमन्त्रित करते हैं।

शब-ऐ-बरात—यह पर्व प्रतिवर्ष मुसलिम महीने—'शाबान'की पंद्रहवीं रातको पूरे देशमें मनाया जाता है। विश्वासके साथ ऐसा माना जाता है कि महात्मा मोहम्मद साहबने इस दिनको उपवास तथा प्रार्थनाके लिये निर्धारित किया है; क्योंकि आजकी रात सर्वव्यापक अल्लाह सभी लोगोंकी नेकी तथा बदीका हिसाब तैयार करते हैं।

ऐसी धारणा है कि प्रत्येक व्यक्तिके अच्छे तथा बुरे कार्योंकी निगरानीके लिये अल्लाहने दो फ़रिश्ते नियुक्त किये हैं, जो आदमीके दाहिने तथा बायें कन्धेपर सदा विराजमान रहते हैं। दाहिने कन्धेपर 'केरावन' तथा बायें कन्धेपर 'कातेबीन' स्थित रहते हैं जो क्रमशः नेकी तथा बदीका लेखा-जोखा बनाते हैं। इन दोनोंके द्वारा पूरे सालका बनाया गया लेखा-जोखा इसी रात अल्लाहके समक्ष पेश किया जाता है। मनुष्यके अच्छे तथा बुरे कार्योंके अनुसार अल्लाह उसके भाग्यका निर्धारण करते हैं।

आजके दिन मुसलिम लोग पूरी रात जागकर अल्लाहसे प्रार्थना करते हैं तथा पवित्र क़ुरानकी आयतोंका पाठ करते हैं। इस रात लोग अपने मृतक सम्बन्धियोंके उद्धार तथा उनकी शान्तिके लिये 'फ़ातिहा' भी पढ़ते हैं।

बारावफ़ात—ऐसा माना जाता है कि इस पर्वको इराकमें ख़लीफ़ा उमर बिन मोहम्मदने प्रचारित किया। यह पर्व हमें महात्मा मोहम्मद साहबके जन्मकी याद दिलाता है। लोगोंका यह भी विश्वास है कि उनका महाप्रयाण (स्वर्गवास) भी इसी दिन हुआ था। इस अवसरपर मुसलिम बन्धुओंके घर, उनकी बस्तीकी सड़कें तथा गलियाँ प्रकाशसे जगमगा उठती हैं। इसलामका संदेश प्रसारित करनेकी दृष्टिसे इस पर्वपर घर-घरमें 'मिलाद' आयोजित किये जाते हैं।

इसी प्रकार कुछ अन्य उत्सव तथा पर्व भी मुसलिम समुदायमें प्रचलित हैं। इनके सभी पर्व तथा उत्सव रहस्यपूर्ण एवं सच्चाइयोंवाले ऐसे रेखाचित्रोंके समान हैं, जिनसे उनकी प्राचीन सभ्यताओं, मानवतासम्बन्धी अवधारणाओं तथा ईश्वरीय सत्तासम्बन्धी विचारोंकी एक स्पष्ट झाँकी परिलक्षित होती है।

[ज्ञानप्रवाह-संगोष्ठीसे साभार]

लामाओंके भक्तिपर्व

(श्रीविजयक्रान्ति)

तिब्बत अपनी प्राकृतिक सम्पदा तथा लोकरीतियोंके लिये विख्यात है। ल्हासा इसकी राजधानी है। तिब्बतकी अपनी समृद्ध परम्परा है। इस देशके लोग अपनी सांस्कृतिक परम्परा जीवित रखनेके लिये अपने त्योहारोंको पारम्परिक रूपमें बड़े ही उल्लाससे मनाते हैं।

ल्होसार—नव वर्षका त्योहार

तिब्बती लोगोंके त्योहारोंकी शुरुआत होती है 'ल्होसार' यानी नये सालके त्योहारसे, जो तीन दिनतक चलता है। पिछले सालकी आख़िरी शामतक घरोंकी सफ़ाई और सफ़ेदी पूरी कर ली जाती है तथा महिलाएँ घरकी दहलीज और दीवारोंपर भारतीय महिलाओंकी तरह सूर्य, स्वस्तिक, फूल, चन्द्रमा आदिकी तस्वीरें बनाती हैं। रातको सभी लोग पुराने कपड़े उतारकर नये कपड़े पहनते हैं और साल शुरू होनेकी घोषणा सुननेके लिये मुख्य मन्दिरके दरवाजेपर जमा होते हैं। कपड़े बदलनेके पीछे यह मान्यता है कि पुराने कपड़ोंके साथ पिछले सालके दुःख और आपत्तियाँ भी दूर हो जाती हैं। मन्दिरके दरवाजे घंटे और उद्घोषोंके साथ खुलते हैं और पूरा कस्बा मन्दिरमें पूजाके लिये उमड़ पड़ता है। सभी एक-दूसरेको 'ताशी देले—फुत्सुम सोक' यानी सुख और सौभाग्यकी कामनाएँ देते हैं। सुबह सूर्य निकलनेसे पहले सभी मन्दिरमें लौटकर ठोसो चेमार (चने और जौसे बना) प्रसाद लेते हैं।

नगरों और गाँवोंमें तीन दिनोंतक नाच और खेलके कार्यक्रम होते हैं। घोड़ोंके जितने दिल दहलानेवाले करतब ल्होसारके दौरान होते हैं, उसकी बराबरी ढूँढ़ना कठिन है। गोलीकी गतिसे दौड़ते हुए घोड़ेकी पीठसे लटककर स्कार्फ उठाना, पैसे उठाना और हथियार उठाना इतना जोखिमभरा होता है कि देखनेवाले कई बार डरके मारे आँखें बंद कर लेते हैं।

मोन्लमका त्योहार

तिब्बती लोगोंके त्योहारोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण त्योहार है मोन्लम। महान् प्रार्थनाका यह त्योहार २१ दिनोंतक चलता है। इसमें भिक्षु, सैनिक, सरकारी अधिकारी एवं सामान्य नागरिक भाग लेते हैं। प्रार्थनाओं और सैनिक-प्रदर्शनोंके क्रमके बाद पहला प्रमुख समारोह १५वें दिनकी रातको होता है, जब लकड़ीके विशालकाय मचानके पास मक्खनसे बनी और बौद्धकलाकी शानकी झलक देनेवाली मूर्तियाँ बनायी जाती हैं। मक्खनके दीपकोंमें जगमगाती इस प्रदर्शनीको दलाईलामा तथा उनका दरबार देखता है और फिर इसे सार्वजनिक प्रदर्शनके लिये खोल दिया जाता है। सुबह सूर्य निकलनेतक सब कुछ पिघल चुका होता है। इसके पीछे यह बौद्ध-धारणा है कि जीवन क्षणभङ्गुर है।

प्रार्थना-समारोहके आखिरी दिन सैनिक-प्रदर्शनों और लामानृत्योंका आयोजन किया जाता है। इसी दिन भगवान् बुद्धकी सुन्दर झाँकी निकाली जाती है और कुश्तियों, वजन उठाने, दौड़ और घुड़दौड़की प्रतियोगिताओंके साथ मुख्य समारोहकी समाप्ति होती है।

ही यह पर्व आरम्भ हो जाता है। यह रमज़ानका महीना सभी मुसलिम महीनोंमें पवित्रतम माना गया है; क्योंकि हज़रत जिब्राइल इसी महीनेमें अल्लाहके द्वारा पृथ्वीपर भेजे गये थे। इन्हींके माध्यमसे अल्लाहके द्वारा प्रेषित पावन ग्रन्थ 'कुरान' मोहम्मद साहबको उस समय हस्तगत हुआ था, जब वे मक्कामें कठोर तपस्या कर रहे थे।

रमज़ानके दौरान पूरे दिन मुसलमान लोग उपवास करते हैं और इस अवधिमें वे आत्म-नियन्त्रणको अल्लाहका आदेश समझकर समस्त प्रकारकी दुर्वृत्तियोंसे अपनेको दूर रखते हैं। इस पवित्र महीनेमें मुसलिम समुदायके लोग भोरमें (उषाकालके पूर्व) उठकर दिनका उपवास-व्रत आरम्भ करनेके पहले अल्पाहार करते हैं। पूरे दिन शुभ विचारों तथा धार्मिक भावनाओंमें मनको केन्द्रित करके उपवास-व्रतका दृढ़ संकल्पके साथ पालन करनेवाले मुसलिम लोग मस्जिदोंमें क़ुरानकी आयतोंका पाठ करते हैं। इस प्रकार रमज़ान महीनेमें कठोर उपवास, क़ुरान-पाठ, आत्म-नियन्त्रण, परस्पर भाईचारेकी भावना आदिके द्वारा मुसलमान बन्धु नैसर्गिक मानवीय गुणोंसे ओत-प्रोत हो जाते हैं।

ईद-उल-फ़ितर—मुसलिम समुदायद्वारा सम्पूर्ण विश्वमें मनाया जानेवाला यह सबसे बड़ा पर्व है। यह हिजरी सन्‌के दसवें महीने 'शव्वाल' की पहली तारीख़को मनाया जाता है। रमज़ानके दौरान तीस दिनोंके कठोर उपवासके बाद महान् हर्ष तथा उल्लासके साथ लोग नये-नये रंग-बिरंगे भव्य परिधानोंमें सज-धजकर बड़ी संख्यामें मस्जिदों तथा ईदगाहोंमें जाते हैं और वहाँ ईदकी नमाज़ अदा करते हैं। आजके दिन हिन्दू तथा मुसलमान आपसी भाईचारेकी भावनाकी अभिवृद्धिके उद्देश्यसे एक-दूसरेको गले लगाते हैं। इस अवसरपर मुसलिम नारियाँ सुन्दर वस्त्रों तथा यथासामर्थ्य क़ीमती आभूषणोंसे सुसज्जित होकर एक-दूसरेके घर पहुँचकर शुभकामनाएँ व्यक्त करती हैं। आजके दिनका प्रमुख आकर्षण घरोंमें तैयार की गयी अति स्वादिष्ट 'सेवइयाँ' रहती हैं।

ईद-उल-जुहा—यह पर्व मुसलिम महीने 'जिल-हिज्ज' की दसवीं तिथिको बड़े धूमधामसे मनाया जाता है। यह पर्व हज़रत इब्राहिमकी कठोरतम परीक्षाके यादगारमें सर्वत्र मनाया जाता है। एक बार उन्हें स्वप्नमें सर्वशक्तिमान् अल्लाहसे आदेश मिला कि वे अपने सर्वप्रिय पुत्र इस्माइलकी बलि चढ़ाये। इब्राहिमके लिये यह कठिन अग्निपरीक्षा थी। अल्लाहमें दृढ़ विश्वास रखनेवाले हज़रत इब्राहिमने इसके लिये अपने पुत्र इस्माइलसे पूछा और उसके तत्काल राज़ी हो जानेपर उसकी बलि चढ़ानेको तैयार हो गये। हज़रत इब्राहिमने अपनी तलवार ज्योंही बेटेकी गर्दनपर रखी, उसी समय सर्वव्यापी अल्लाहने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया और कहा कि मैं तो केवल अल्लाहके प्रति आपकी भक्ति तथा विश्वास और उनके द्वारा आपको प्रदत्त आदेशकी परीक्षा ले रहा था।

इस दिन लोग प्रातःकाल बिना नाश्ता किये नमाज़के लिये जाते हैं। आजके दिन मुसलिम बन्धु एक-दूसरेको अपने घर भोजनके लिये आमन्त्रित करते हैं।

शब-ऐ-बरात—यह पर्व प्रतिवर्ष मुसलिम महीने—'शाबान'की पंद्रहवीं रातको पूरे देशमें मनाया जाता है। विश्वासके साथ ऐसा माना जाता है कि महात्मा मोहम्मद साहबने इस दिनको उपवास तथा प्रार्थनाके लिये निर्धारित किया है; क्योंकि आजकी रात सर्वव्यापक अल्लाह सभी लोगोंकी नेकी तथा बदीका हिसाब तैयार करते हैं।

ऐसी धारणा है कि प्रत्येक व्यक्तिके अच्छे तथा बुरे कार्योंकी निगरानीके लिये अल्लाहने दो फ़रिश्ते नियुक्त किये हैं, जो आदमीके दाहिने तथा बायें कन्धेपर सदा विराजमान रहते हैं। दाहिने कन्धेपर 'केरावन' तथा बायें कन्धेपर 'कातेबीन' स्थित रहते हैं जो क्रमशः नेकी तथा बदीका लेखा-जोखा बनाते हैं। इन दोनोंके द्वारा पूरे सालका बनाया गया लेखा-जोखा इसी रात अल्लाहके समक्ष पेश किया जाता है। मनुष्यके अच्छे तथा बुरे कार्योंके अनुसार अल्लाह उसके भाग्यका निर्धारण करते हैं।

आजके दिन मुसलिम लोग पूरी रात जागकर अल्लाहसे प्रार्थना करते हैं तथा पवित्र क़ुरानकी आयतोंका पाठ करते हैं। इस रात लोग अपने मृतक सम्बन्धियोंके उद्धार तथा उनकी शान्तिके लिये 'फ़ातिहा' भी पढ़ते हैं।

बारावफ़ात—ऐसा माना जाता है कि इस पर्वको इराकमें ख़लीफ़ा उमर बिन मोहम्मदने प्रचारित किया। यह पर्व हमें महात्मा मोहम्मद साहबके जन्मकी याद दिलाता है। लोगोंका यह भी विश्वास है कि उनका महाप्रयाण (स्वर्गवास) भी इसी दिन हुआ था। इस अवसरपर मुसलिम बन्धुओंके घर, उनकी बस्तीकी सड़कें तथा गलियाँ प्रकाशसे जगमगा उठती हैं। इसलामका संदेश प्रसारित करनेकी दृष्टिसे इस पर्वपर घर-घरमें 'मिलाद' आयोजित किये जाते हैं।

इसी प्रकार कुछ अन्य उत्सव तथा पर्व भी मुसलिम समुदायमें प्रचलित हैं। इनके सभी पर्व तथा उत्सव रहस्यपूर्ण एवं सच्चाइयोंवाले ऐसे रेखाचित्रोंके समान हैं, जिनसे उनकी प्राचीन सभ्यताओं, मानवतासम्बन्धी अवधारणाओं तथा ईश्वरीय सत्तासम्बन्धी विचारोंकी एक स्पष्ट झाँकी परिलक्षित होती है।

[ज्ञानप्रवाह-संगोष्ठीसे साभार]

लामाओंके भक्तिपर्व

(श्रीविजयक्रान्ति)

तिब्बत अपनी प्राकृतिक सम्पदा तथा लोकरीतियोंके लिये विख्यात है। ल्हासा इसकी राजधानी है। तिब्बतकी अपनी समृद्ध परम्परा है। इस देशके लोग अपनी सांस्कृतिक परम्परा जीवित रखनेके लिये अपने त्योहारोंको पारम्परिक रूपमें बड़े ही उल्लाससे मनाते हैं।

ल्होसार—नव वर्षका त्योहार

तिब्बती लोगोंके त्योहारोंकी शुरुआत होती है 'ल्होसार' यानी नये सालके त्योहारसे, जो तीन दिनतक चलता है। पिछले सालकी आख़िरी शामतक घरोंकी सफाई और सफेदी पूरी कर ली जाती है तथा महिलाएँ घरकी दहलीज और दीवारोंपर भारतीय महिलाओंकी तरह सूर्य, स्वस्तिक, फूल, चन्द्रमा आदिकी तस्वीरें बनाती हैं। रातको सभी लोग पुराने कपड़े उतारकर नये कपड़े पहनते हैं और साल शुरू होनेकी घोषणा सुननेके लिये मुख्य मन्दिरके दरवाजेपर जमा होते हैं। कपड़े बदलनेके पीछे यह मान्यता है कि पुराने कपड़ोंके साथ पिछले सालके दुःख और आपत्तियाँ भी दूर हो जाती हैं। मन्दिरके दरवाजे घंटे और उद्घोषोंके साथ खुलते हैं और पूरा कस्बा मन्दिरमें पूजाके लिये उमड़ पड़ता है। सभी एक-दूसरेको 'ताशी देले—फुत्सुम सोक' यानी सुख और सौभाग्यकी कामनाएँ देते हैं। सुबह सूर्य निकलनेसे पहले सभी मन्दिरमें लौटकर ठोसो चेमार (चने और जौसे बना) प्रसाद लेते हैं।

नगरों और गाँवोंमें तीन दिनोंतक नाच और खेलके कार्यक्रम होते हैं। घोड़ोंके जितने दिल दहलानेवाले करतब ल्होसारके दौरान होते हैं, उसकी बराबरी ढूँढ़ना कठिन है। गोलीकी गतिसे दौड़ते हुए घोड़ेकी पीठसे लटककर स्कार्फ उठाना, पैसे उठाना और हथियार उठाना इतना जोखिमभरा होता है कि देखनेवाले कई बार डरके मारे आँखें बंद कर लेते हैं।

मोन्लमका त्योहार

तिब्बती लोगोंके त्योहारोंमें सबसे महत्त्वपूर्ण त्योहार है मोन्लम। महान् प्रार्थनाका यह त्योहार २१ दिनोंतक चलता है। इसमें भिक्षु, सैनिक, सरकारी अधिकारी एवं सामान्य नागरिक भाग लेते हैं। प्रार्थनाओं और सैनिक-प्रदर्शनोंके क्रमके बाद पहला प्रमुख समारोह १५वें दिनकी रातको होता है, जब लकड़ीके विशालकाय मचानके पास मक्खनसे बनी और बौद्धकलाकी शानकी झलक देनेवाली मूर्तियाँ बनायी जाती हैं। मक्खनके दीपकोंमें जगमगाती इस प्रदर्शनीको दलाईलामा तथा उनका दरबार देखता है और फिर इसे सार्वजनिक प्रदर्शनके लिये खोल दिया जाता है। सुबह सूर्य निकलनेतक सब कुछ पिघल चुका होता है। इसके पीछे यह बौद्ध-धारणा है कि जीवन क्षणभङ्गुर है।

प्रार्थना-समारोहके आखिरी दिन सैनिक-प्रदर्शनों और लामानृत्योंका आयोजन किया जाता है। इसी दिन भगवान् बुद्धकी सुन्दर झाँकी निकाली जाती है और कुश्तियों, वजन उठाने, दौड़ और घुड़दौड़की प्रतियोगिताओंके साथ मुख्य समारोहकी समाप्ति होती है।

साका-दावा

सालके चौथे मासको तिब्बती लोगोंमें एक सौभाग्यशाली और महत्त्वपूर्ण मास माना जाता है; क्योंकि

इसी मासमें भगवान् बुद्धने जन्म लिया, ज्ञान प्राप्त किया और निर्वाण प्राप्त किया था। पूरे मास व्रत चलते हैं। आठ, पंद्रह या मासके सभी दिनोंमें मौन-व्रत रखा जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि इस मासमें किया गया पाप और पुण्य हजार गुना हो जाता है। इसीलिये भिक्षुओंको दान दिया जाता है और भेड़ोंको हत्यासे बचानेके लिये उन्हें खरीद लिया जाता है। इस मासमें एक बार पूरे नगरका चक्कर भी लगाया जाता है।

पंद्रहवें दिन मासका मुख्य त्योहार होता है। इस दिन पहाड़ीपर या झील एवं नहरके किनारे अजगरकी पूजा की जाती है। संसारकी सबसे अधिक पिकनिक-प्रेमी तिब्बती जनता इसी दिनसे सालभरका अपना पिकनिक-कार्यक्रम शुरू करती है। अलग-अलग अवसरोंपर चलनेवाली पिकनिकका मौसम तबतक चलता रहता है, जबतक सर्दियाँ नहीं आ जातीं और लोग बर्फके कारण घरोंसे नेकलना बंद नहीं कर देते।

शो-तोन—नाटकोंका महीना

सातवें मासके पहले बारह दिन चलनेवाला 'शो-ोन' त्योहार नाटकोंका त्योहार कहलाता है। सभी ाटक ऐतिहासिक होते हैं। इनमें तिब्बतके महान् राजा ऱ्रांग-मेन-गोम्पोकी चीनी एवं नेपाली रानियोंकी प्रशंसाके ृत्य ग्यासाम-शुंग और बालसा-शुंग मुख्य हैं। इस राजाने अपने समयमें चीनको युद्धमें बुरी तरह हराया था, ज़सके परिणामस्वरूप चीनी राजाने अपनी राजकुमारीकी ाादी तिब्बती राजाके साथ की थी। इसके अतिरिक्त ्लाई लामा एवं पञ्चेण लामा परम्परापर 'चुंगपो थोंडुप ोन्यु शुंग' प्रमुख भारतीय गुरु पद्मसम्भवपर 'पेमा ोम्बा' और विख्यात साध्वीपर 'आचे नांग से शुंग' आदिके नृत्य एवं नाटक होते हैं। एक पार्टी एक स्थानपर पाँच-छः प्रदर्शन करनेके बाद दूसरे नगरोंके लिये चल देती है।

ल्हापप-त्युचिन

ल्हापप-त्युचिन एक विशुद्ध धार्मिक त्योहार है और यह नौवें मासमें भगवान् बुद्धकी स्मृतिमें मनाया जाता है। तिब्बतियोंकी मान्यता है कि इस दिन भगवान् बुद्ध स्वर्गसे सशरीर वापस लौटे थे। मुख्य कथाके अनुसार जब भगवान् बुद्ध काफी देरतक स्वर्गसे नहीं लौटे तो उनके एक प्रमुख भक्त मंगपुत्र जिन्हें जादूकी शक्ति प्राप्त थी, स्वर्गमें भगवान् बुद्धको वापस बुलाने गये। तभी वे सोनेकी सीढ़ीसे नीचे उतरे। इस अवसरपर घरोंको अच्छी तरह साफ कर पूजा की जाती है।

पाला-दुशेन

पाला-दुशेन त्योहार विख्यात देवी पाल्हामोकी पूजाका त्योहार है। दसवें मासमें आनेवाले इस त्योहारपर उपर्युक्त देवी एवं अन्य देवियोंकी पूजा कर बस्तीको बीमारियोंसे मुक्ति दिलायी जाती है। इस अवसरपर मेंढकके चेहरेवाली देवी बई-तोंग्माकी मूर्तिका जुलूस गलियोंमेंसे निकाला जाता है, जिससे बीमारीपर नियन्त्रण हो सके। त्योहारके दस दिन बाद 'गे-लु-पा'-के संस्थापक त्मोन-खा-पाका निर्वाण-दिवस मनाया जाता है, जिसके लिये बौद्ध-विहारमें विशेष समारोह होता है और घरोंमें रातको भारतीय दीपावलीकी तरह दिये जलाये जाते हैं।

गुत्तो-गुतोर

सालके आख़िरी महीनेके २९वें दिन मनाये जानेवाले गुत्तो-गुतोर नामक त्योहारको सालभरकी असफलताओं एवं बुराइयोंके नाशके लिये मनाया जाता है और ल्होसारकी तैयारी शुरू की जाती है। इसी दिन विश्वप्रसिद्ध प्रेत-नृत्य होता है, जिसमें विभिन्न जानवरों और प्रेतोंके मुखौटे पहनकर लामा लोग नृत्य करते हैं।

घरोंमें एक थालीमें उबले जौके आटेको सब्जियोंके टुकडोंसे सजाकर घरके सभी कमरोंमें घुमाया जाता है। घुमानेवाले व्यक्तिके पीछे दूसरा व्यक्ति मशाल लेकर चलता है। पूरे चक्करके बाद थालीके सामानको घरसे बाहर फेंक देते हैं और बन्दूक दागकर या पटाखे छोड़कर यह माना जाता है कि इससे घरमें बसी सभी बुरी आत्माएँ घरसे बाहर निकल जाती हैं।

धर्मशास्त्रोक्त व्रत एवं उनकी उपादेयता

(डॉ० श्रीबीरेन्द्रकुमारजी चौधरी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

भारतीय सनातन संस्कृतिके संरक्षण एवं संवर्धनमें अनादिकालसे ही व्रतोंकी महती भूमिका रही है। हमारे धर्मशास्त्रोंमें आत्मोन्नति एवं मोक्षप्राप्तिके सर्वोत्तम एवं सहज साधनके रूपमें अनेक व्रतोंका विधान किया गया है, जिनमें कुछका उल्लेख समासतः अपेक्षित है। उदाहरणार्थ—

(१) रामनवमीव्रत—यह व्रत चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको भगवान् श्रीरामकी जयन्तीके शुभ अवसरपर किया जाता है। अगस्त्यसंहिताके अनुसार यह व्रत सबके लिये भुक्ति-मुक्तिदाता है। यहाँतक कि अशुचि एवं पापिष्ठ व्यक्ति भी इस व्रतको करके पूजनीय और सम्माननीय हो जाता है। इस व्रतके करनेसे व्यक्तिकी मनोवाञ्छित इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और भगवान् श्रीरामका प्रीतिभाजन बन जाता है।

(२) अक्षयतृतीयाव्रत—यह व्रत वैशाखमासके शुक्ल-पक्षकी तृतीया तिथिको किया जाता है। इस तिथिको व्रती उपवास करता है, अक्षत—चावलसे वासुदेवकी पूजा-अर्चना और अग्निमें होम करता है तथा उनका दान करता है। इस दिन उपवास, स्नान, दान, जप, अग्निमें होम और वेदाध्ययनादि जो कुछ भी कर्म किये जाते हैं, वे सभी अक्षय पुण्यफल देनेवाले होते हैं।

(३) वटसावित्रीव्रत*—यह व्रत 'महासावित्रीव्रत' के नामसे भी जाना जाता है। सधवा नारियाँ ज्येष्ठकी अमावास्याको अपने पति और पुत्रोंकी लम्बी आयु एवं उनके उत्तम स्वास्थ्य-लाभके लिये और विशेषकर इहलोक एवं परलोकमें वैधव्यसे मुक्तिके लिये इस व्रतको करती हैं।

(४) दशहराव्रत—यह व्रत ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी दशमीको किया जाता है। यह 'गङ्गादशहरा' के नामसे भी जाना जाता है। पवित्रतमा गङ्गा इसी तिथिको हस्तनक्षत्रमें स्वर्गसे अवतरित हुई थीं। अतएव इस तिथिको गङ्गामें स्नान करनेसे व्यक्ति दस पापोंसे मुक्त हो जाता है—

हरते दशपापानि तस्माद्दशहरा स्मृता॥

(ब्रह्मपुराण)

व्यक्तिको जिन दस पापोंसे मुक्ति मिलती है, वे हैं—(१) दूसरेके द्रव्यको अन्यायसे लेनेका विचार भी करना, (२) मनसे निषिद्ध कार्य जैसे ब्रह्महत्यादि पाप करनेकी इच्छा करना, (३) असत्य हठ करना, (४) कटु बोलना, (५) झूठ बोलना, (६) परोक्षमें किसीका दोष कहना, (७) निष्प्रयोजन बातें करना, (८) बिना दी हुई दूसरेकी वस्तुको लेना, (९) शास्त्रवर्जित हिंसा करना और (१०) परस्त्रीके साथ सम्भोग (मनुस्मृति १२। ५—७)।

(५) एकादशीव्रत—जो भगवान् विष्णुकी प्रीति चाहते हैं, जो संसार-सागर पार करना चाहते हैं अथवा जो ऐश्वर्य, संतति, स्वर्ग, मोक्षादि प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें सदा प्रत्येक पक्षमें एकादशीके दिन उपवास करनेका परामर्श धर्मशास्त्रकारोंने दिया है। एकादशीव्रत नित्य एवं काम्य दोनों है। धर्मशास्त्रोंमें व्रतीको एकादशीव्रतके उपवासके दिन पतितों, पाखण्डियों, नास्तिकों एवं अन्त्यजों आदिसे सम्भाषण न करनेकी सलाह दी गयी है।

(६) चातुर्मास्यव्रत—आषाढ़ शुक्ल एकादशी या द्वादशी अथवा पूर्णिमाको या जिस दिन सूर्य कर्कराशिमें प्रविष्ट होता है, उस दिन चातुर्मास्यव्रतका शुभारम्भ किया जाता है। किंतु यह व्रत कार्तिक शुक्ल द्वादशीको समाप्त हो जाता है। व्रती व्रतावधिमें शय्यापर शयन, मांस, मधु आदिका त्याग करता है और संयम-नियमपूर्वक एक स्थानपर रहते हुए सात्त्विक चर्याद्वारा जीवन व्यतीत करता है तथा भगवद्भजन, सत्संग, कथा-वार्ता एवं स्वाध्यायव्रतको अपनाये रहता है।

(७) ऋषिपञ्चमीव्रत—यह व्रत भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमीको किया जाता है। यदि पञ्चमी तिथि चतुर्थी एवं षष्ठीसे संयुक्त होती है तो यह व्रत चतुर्थीसे संयुक्त पञ्चमीको किया जाता है, षष्ठीयुक्त पञ्चमीको नहीं। व्रती नदीमें स्नान कर तथा आह्निक कृत्य कर अरुन्धतीसहित सप्तर्षियोंकी प्रतिमाओंको पञ्चामृतमें स्नान कराता है और उनपर चन्दन एवं कर्पूर लगाता है तथा पुष्पों, सुगन्धित

* कहीं-कहीं वट-सावित्रीव्रत ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमाको भी किया जाता है।

पदार्थों, धूप, दीप, श्वेत वस्त्र तथा यज्ञोपवीत एवं नैवेद्यसे पूजा-अर्चना करता है और कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और वसिष्ठ—इन सात ऋषियों (सप्तर्षियों) तथा अरुन्धतीको अर्घ प्रदान करता है। इस व्रतमें व्रती केवल शाक या साँवाँ अथवा कन्द-मूल या फलका सेवन करता है एवं हलसे उत्पन्न किया हुआ अन्न नहीं खाता है। इस व्रतके करनेसे आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक दुःखों एवं सभी पापोंसे छुटकारा मिलता है और सौभाग्यकी वृद्धि होती है। यह ऋषिपूजनका पर्व है।

(८) चान्द्रायणव्रत—इस व्रतमें व्रती मयूरके अण्डेके बराबर ग्रास बनाकर शुक्लपक्षमें तिथिकी वृद्धिके अनुसार एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए और कृष्णपक्षमें तिथिके अनुसार एक-एक घटाते हुए भोजन करता है एवं अमावास्याके दिन उपवास करता है—

तिथिवृद्ध्या चरेत्पिण्डान् शुक्ले शिख्यण्डसम्मितान्।
एकैकं ह्रासयेत्कृष्णे पिण्डं चान्द्रायणं चरेत्॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३। ५। ३२३)

एकैकं वर्धयेत्पिण्डं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत्।
इन्दुक्षये न भुञ्जीत एष चान्द्रायणे विधिः॥

(वसिष्ठस्मृति)

साथ ही, व्रती तीनों सवनों (प्रातः, मध्याह्न और सायं)-में स्नान करता है एवं पवित्र मन्त्रोंका जप करता है और प्रत्येक ग्रासको गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित करता है—

कुर्यात्त्रिषवणस्नायी कृच्छ्रं चान्द्रायणं तथा।
पवित्राणि जपेत्पिण्डान्गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत्॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३। ५। ३२५)

चान्द्रायणव्रतसे उपपातकोंकी शुद्धि होती है—

उपपातकशुद्धिः स्यादेवं चान्द्रायणेन वा।

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३। ५। २६५)

इतना ही नहीं, जिन पापोंके प्रायश्चित्तका विधान नहीं किया गया है, उनकी शुद्धि भी इस व्रतके करनेसे होती है। और-तो-और जो व्यक्ति धर्मार्थ इस व्रतको करता है, वह चन्द्रलोकमें जाता है—

अनादिष्टेषु पापेषु शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु।
धर्मार्थं यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैति सलोकताम्॥

(याज्ञवल्क्यस्मृति ३। ५। ३२६)

(९) महाशिवरात्रिव्रत—यद्यपि किसी भी मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी शिवरात्रि कही जाती है, किंतु फाल्गुनके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी महाशिवरात्रि कहलाती है। महाशिवरात्रिके दिन व्रती उपवास करके बिल्व-पत्रोंसे शिवकी पूजा-अर्चना-वन्दना करता है और रात्रिभर जागरण करता है। फलतः भगवान् शिव प्रसन्न होकर व्रतीको नरकसे बचाते हैं और आनन्द एवं मोक्ष प्रदान करते हैं। यह व्रत नित्य एवं काम्य दोनों है। इस व्रतमें व्रती अहिंसा, सत्य, अक्रोध, ब्रह्मचर्य, दया, क्षमादि गुणोंका पालन करता है और वह शान्तमन, क्रोधहीन, मत्सरहीन एवं तपस्यामें रत रहता है। यह व्रत सभीके लिये अक्षय पुण्यफल देनेवाला है।

मूलतः व्रतकी अन्तर्हित धारणा आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक है। यह मनका अनुशासन है। यह मनको चञ्चलतारहित, निर्मल, निष्कपट, निःस्पृह एवं पवित्र करनेका सर्वोत्तम साधन है। प्रसन्नतापूर्वक दृढ़संकल्प, संयम एवं उपवासादि करनेसे मनुष्यको गर्हित वासनाओंसे निवृत्ति मिलती है और उसकी आत्मोन्नति होती है, जिससे उसमें न केवल समताकी दृष्टि आती है, बल्कि निष्काम कर्म, निष्काम भक्तिकी निर्मल भावना जाग्रत् होती है। साथ ही उसमें अनादि, अनन्त, अनीह, अच्युत, अविनाशी, अव्यय, अक्षर, अद्वैत, सगुण, साकार, सविशेष और सत्यस्वरूप ब्रह्मके दर्शन करनेकी क्षमता विकसित हो जाती है। फलतः वह यज्ञ, तप, दानादि कर्तव्यकर्मोंको अहंकार और आसक्तिसे रहित होकर निष्कामभावसे करता हुआ परमात्माकी निरन्तर भक्तिमें लीन हो जाता है और उनका अनुग्रह प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार व्रतोंकी उपादेयता अनादिकालसे ही अक्षुण्णरूपमें बनी हुई है।

सत्य बचन मानस बिमल कपट रहित करतूति। तुलसी रघुबर सेवकहि सकै न कलिजुग धूति॥
तुलसी सुखी जो राम सों दुखी सो निज करतूति। करम बचन मन ठीक जेहि तेहि न सकै कलि धूति॥

नित्य कथाश्रवणका व्रत

(पं० श्रीविष्णुदत्त रामचन्द्रजी दुबे)

सत्ययुगकी अवधि समाप्त हो रही थी, तबकी बात है। सत्यव्रत नामक ग्राममें जो गङ्गाजीसे दो कोसकी दूरीपर था, एक महातपस्वी बृहत्तपा नामके ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने दीर्घतमा नामक एक जन्मान्ध महर्षिको लगातार सौ वर्षोंतक भगवान्‌की कथा सुनायी। उसी सत्यव्रत ग्राममें एक और ब्राह्मण रहते थे, जिनका नाम था पुण्यधामा। जब बृहत्तपाजीकी कथा होने लगती तब ये पुण्यधामाजी भी वहाँ अवश्य सुनने पहुँचते। इस तरह नित्य नियमपूर्वक भगवत्कथा सुनना, यह उनके जीवनका एक व्रत-सा हो गया था। उनका पूर्ण विश्वास था कि भगवत्कथा जहाँ होती है, वहाँपर सब तीर्थ आ जाते हैं। यथा—

> **तत्रैव गङ्गा यमुना च वेणी**
> **गोदावरी सिन्धुसरस्वती च।**
> **सर्वाणि तीर्थानि वसन्ति तत्र**
> **यत्राच्युतोदारकथाप्रसङ्गः ॥**

केवल हरिचरित्रामृतका ही श्रवण करते-करते उनका सारा समय व्यतीत हो जाता। तीनों सन्ध्याओंके समय वे गायत्रीका जप करते थे। रात्रिके समय तीर्थयात्रियोंकी सेवा भी बड़े दत्तचित्त होकर करते। इस प्रकार पुण्यधामाजीकी दो ही गतियाँ थीं—१-सदा विष्णु-कथाका श्रवण और २-अतिथि महात्माओंकी सेवा।

एक दिन जब पुण्यधामाजी कथा सुनकर लौटे तो उनके यहाँ दो महात्मा—धृतव्रत और शतसिन्धु तीर्थयात्राके प्रसंगमें पधारे। पुण्यधामाजीने उनकी मधुपर्कसे पूजा की, तत्पश्चात् उन्हें भोजन कराकर, चरण दबाकर उनकी सेवा करने लगे। बातचीतके प्रसंगमें उन दोनों महात्माओंने पुण्यधामाजीसे गङ्गाजीकी वहाँसे दूरी पूछी। पुण्यधामाजीने बतलाया—महाराज! मैं तो सौ वर्षोंसे कथा-श्रवणमें लगा हूँ। मुझे स्वयं वहाँ जानेका अवसर नहीं आया। अतएव सुनिश्चितरूपसे तो कुछ बतला सकता नहीं, तथापि लोगोंके मुखसे कई बार सुन चुका हूँ कि वे यहाँसे दो कोस उत्तरमें पड़ती हैं।

इतना सुनते ही दोनों मुनि क्रुद्ध होकर परस्पर कहने लगे—'अहो, इसके समान दूसरा पापी कौन है, जिसने कभी गङ्गाका सेवन नहीं किया। गङ्गाके समीप होनेपर भी जो उनकी सेवा नहीं करता, वह तो सर्वकर्मसे बहिष्कृत करने योग्य है। आज अनजानेमें ही हमलोगोंको इसके संगसे पाप लग गया।' वे दोनों यों कहकर तत्काल वहाँसे उठकर चल दिये और प्रातःकाल बड़ी उत्कण्ठासे गङ्गातटपर पहुँचे। दूरसे ही नमस्कार करते हुए वे स्नानार्थ समीप पहुँचे तो उन्हें कहीं जल नहीं दिखा। वे गङ्गासागरसे हिमालयतक गङ्गातटपर घूमते रहे, पर उन्हें नाममात्रका भी जल नहीं मिला। अन्तमें वे काशी लौटकर गङ्गाजीकी प्रार्थना करने लगे—'देवि! महादेवने आपको सिरपर धारण कर रखा है। आप भगवान् विष्णुके चरण-नखसे निर्गत हुई हैं। आप समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली हैं। माता! यदि हमसे कोई अपराध बन ही गया हो तो आपको क्षमा कर देना चाहिये।' दोनोंने इस प्रकार स्तुति की तो दयामयी भगवती गङ्गा वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हो गयीं और बोलीं—'तुमने महाबुद्धिमान् पुण्यधामाजीकी निन्दा की है, यह बहुत बुरी बात हुई है। मैं स्वयं उन महाभागकी चरणरेणुकी प्रतीक्षासे रात-दिन बैठी रहती हूँ। जहाँ भगवान्‌की कथा होती है और भगवदाश्रित साधुजन रहते हैं, वहाँ सारे तीर्थ रहते हैं—इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं। विष्णुकथाका श्रवण-कीर्तन ही विधि है, उसे भूलना ही निषेध है। करोड़ों ब्रह्महत्याका पाप तो किसी प्रकार शान्त भी किया जा सकता है, पर भगवद्भक्तोंकी निन्दाका पाप कभी नष्ट नहीं किया जा सकता।

जो महाभाग नित्य सदा-सर्वदा भगवत्कथामें लीन हैं, उन्होंने किस सत्कर्मका अनुष्ठान नहीं किया? भगवान् सहस्रों अपराधोंको भूल सकते हैं, पर अपने भक्तोंके अपमानको वे कभी क्षमा नहीं कर सकते। अतएव तुमलोग उन पुण्यधामाको प्रसन्न करो। जबतक तुम ऐसा

नहीं करते, तुम्हें मेरे जलके दर्शन नहीं होंगे।'

भगवती गङ्गाके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर वे दोनों मुनि सत्यव्रत ग्राममें गये और पुण्यधामासे प्रार्थना करने लगे। पुण्यधामा उन्हें लेकर अपने गुरुके पास गये। उन्होंने दोनोंको अपने पास बुलाकर दो वर्षतक भगवत्कथा सुनायी। तत्पश्चात् वे पाँचों गङ्गातटपर आये। भगवती गङ्गाने साक्षात् प्रकट होकर बृहत्तपा, दीर्घतमा और पुण्यधामाकी पूजा की। साथमें आये हुए दोनों मुनियोंने भी देखा कि अब गङ्गाजी जलपूर्ण थीं। अब उन पाँचोंने वहाँ श्रद्धापूर्वक अवगाहन किया तथा परा सिद्धि प्राप्त की।

स्वाध्यायव्रतका स्वरूप—'स्वाध्यायान्मा प्रमदः'

(श्रीगङ्गाधरजी गुरु, बी०ए०, एल्-एल्०बी०)

असीम रहस्यपूर्ण इस मायामय जगत्के मोहजालमें फँसकर मानव प्रतिदिन पाप-पुण्य, नीति-अनीतिसे सम्पृक्त रहनेपर भी आनन्दामृतकी पिपासाका त्याग नहीं कर सकता।

चूँकि आनन्द तो उसका स्वाभाविक धर्म है; आनन्द ही उसका स्वरूप है, किंतु भ्रान्तिवश वह स्वात्मानन्दको भूल जाता है, खो देता है और जहाँ-जहाँ विषयानन्दके कण दृश्य होते हैं वहाँ-वहाँ वह फँस जाता है तथा समस्त आनन्दकी निधिको विस्मृत कर जगत्में चक्कर लगाता रहता है।

असत्यका अनुगमन करनेपर किस तरह सुख प्राप्त हो सकता है? परमात्मापर पूर्ण विश्वास ही आनन्दकी प्राप्तिका मुख्य हेतु है। सत्यद्रष्टा वैदिक महर्षिने स्वशिष्यों (अन्तेवासियों)-के माध्यमसे मानवके कल्याणपथ प्रदर्शन करते हुए एक महत्त्वपूर्ण व्रतका उपदेश दिया है और यह व्रत है—स्वाध्यायव्रत। ऋषियोंका उपदेश है—'**स्वाध्यायान्मा प्रमदः**' अर्थात् 'स्वाध्यायसे प्रमाद मत करना।' श्रुतियों तथा सद्ग्रन्थोंका अध्ययन करणीय है।

स्वाध्यायका निगूढार्थ है—आत्माध्ययन। स्वयंका स्वयं ही अध्ययन करना चाहिये। अपने भीतर विराजित परमात्माको भलीभाँति जानना चाहिये। शरीर, मन तथा इन्द्रियादिके साथ आत्माका क्या सम्बन्ध है—यह अनुसंधानपूर्वक परमसत्यकी उपलब्धि करनी चाहिये।

जो सब प्राणियोंका अन्तर्यामी अद्वितीय एवं सबको वशमें रखनेवाला (परमात्मा) अपने एक ही रूपको बहुत प्रकारसे बना लेता है। उस अपने अंदर रहनेवाले (परमात्मा)-को जो ज्ञानीपुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, उन्हींको ही सदा अटल रहनेवाला परमानन्दस्वरूप वास्तविक सुख प्राप्त होता है, दूसरोंको नहीं। 'बृहदारण्यकोपनिषद्'में कहा गया है कि आत्मा ही द्रष्टव्य, श्रोतव्य, मन्तव्य तथा निदिध्यासितव्य है। इन सभीका तात्पर्य यह है कि यह मनुष्य-शरीर ही देवालय है, जहाँ आत्मदेव विद्यमान हैं। हतभाग्यव्यक्ति ही परमात्मोपासना करनेमें आलस्य करता है। वे ही दुर्भाग्यशाली हैं जो परमात्माकी उपासना नहीं करते।

अद्वैतामृतकी वर्षा करनेवाले गीताशास्त्रमें योगेश्वर श्रीकृष्णने अर्जुनकी मोहासक्तिका विनाश करनेके लिये आत्माका अमरत्व, स्वधर्मकी महिमा, अनासक्त कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोगादिकी शिक्षा देते हुए अन्तमें सम्पूर्ण धर्मों अर्थात् कर्तव्यकर्मोंको त्यागकर केवल एक सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें जानेके लिये निर्भर प्रतिश्रुति दी है। मानव स्वयं ही अमृतसंतान है। सांसारिक मोहपाशमें ही आबद्ध होकर वह स्वधर्मको भूल जाता है तथा किंकर्तव्यविमूढ़ होता है। स्वाध्यायव्रत-निष्ठाके माध्यमसे वह तत्त्वको प्राप्त कर लेता है।

आत्मज्ञान जाग्रत् होनेपर अनात्म वस्तुओंकी उपेक्षापूर्वक मानव निवृत्तिमार्गानुगामी होता है एवं परमात्मामें ही समर्पितचित्त होकर अपने अमृतयोगकी प्राप्तिके साथ स्वधाम लौटनेके लिये प्रयत्नशील होता है।

स्वाध्यायव्रतके परिपालनमें संलग्न रहकर स्वरूपान्वेषण करना ही विधेय है। कदापि लक्ष्यभ्रष्ट न होना चाहिये।

स्वाध्यायसे सत्यकी निष्ठा तथा आत्मनिष्ठा दृढतर होती जाती है। तत्त्व ज्ञात होनेपर श्रेष्ठ-महती शान्तिधारा प्रवाहित होती है एवं महनीयात्मा कैवल्यको प्राप्त होता है। अतः स्वाध्यायको नहीं छोड़ना चाहिये और परमब्रह्मकी प्राप्तिके उपायका ही अवलम्बन करना चाहिये।

स्वाध्यायव्रती व्यक्तिके लिये सदैव 'मैं कौन हूँ? मुझे क्या करना चाहिये? मेरा कर्तव्य क्या है? मैं कहाँ जाऊँगा?

क्या मैं अमृततत्त्वाधिकारी नहीं हूँ?'—इस प्रकार स्वरूपानुसन्धान करना ही विधेय है। अन्त:करणमें आत्मानुसन्धान करनेसे जीवनमें श्रेयोलाभ होता है। मैं कौन हूँ? निरन्तर इस प्रकार आत्मानुसंधान करते-करते जब सुधी व्यक्ति 'सोऽहम्' मैं ही ब्रह्म हूँ—यह जान जाता है, तब वह अमरात्मस्वरूप ही हो जाता है।

आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें व्रतपालनकी महत्ता

(श्रीउपेन्द्रनाथजी मिश्र 'विवेक-भास्कर')

व्रताचरणसे मनुष्यको उन्नत जीवनकी योग्यता प्राप्त होती है। व्रतका आध्यात्मिक अर्थ उन आचरणोंसे है जो शुद्ध, सरल और सात्त्विक हों तथा उनका विशेष मनोयोग एवं निष्ठापूर्वक पालन किया गया हो। माना कि कुछ लोग व्यावहारिक जीवनमें सत्य बोलते हैं और सत्यका आचरण भी करते हैं, किंतु कुछ क्षण ऐसे आ जाते हैं जब सत्य बोलना उनकी स्वार्थ एवं इच्छापूर्तिमें बाधा उत्पन्न करता है। उस समय वे झूठ बोल देते हैं या असत्याचरण कर डालते हैं। निजी स्वार्थके लिये सत्यकी उपेक्षा कर देनेका तात्पर्य यह हुआ कि उस आचरणमें पूर्ण निष्ठा नहीं है। इसे ही हम कह सकते हैं कि आप सत्यव्रती नहीं हैं। बात अपने हितकी हो अथवा दूसरेके हितकी, जो शुद्ध और न्यायसंगत हो उसका निष्ठापूर्वक पालन करना व्रत कहलाता है। इस प्रकार आचरणशुद्धताको कठिन परिस्थितियोंमें भी न छोड़ना व्रत है। प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी प्रसन्न रहकर जीवन व्यतीत करनेका अभ्यास भी व्रत है। इससे मनुष्यमें श्रेष्ठकर्मोंके सम्पादनकी योग्यता आती है, कठिनाइयोंमें आगे बढ़नेकी शक्ति प्राप्त होती है, आत्मविश्वास दृढ़ होता है और अनुशासनकी भावना विकसित होती है। आध्यात्मिक लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये बिखरी हुई शक्तियोंको एकत्र करना और उन्हें मनोयोगपूर्वक कल्याणके कार्योंमें लगाना ही व्रत है। नियमितता व्यवस्थित जीवनकी आधारशिला है। आत्मशोधनकी प्रक्रिया इसीसे पूर्ण होती है। आत्मवादी पुरुषका कथन है कि मैं जीवनमें उत्तरोत्तर उत्कर्ष प्राप्त करनेकी प्रबल आकाङ्क्षा रखता हूँ। यह कार्य पवित्र आचरण करनेसे ही पूरा हो सकता है। इसलिये मैं व्रताचरणकी प्रतिज्ञा करता हूँ। व्रतपालनसे आत्मविश्वासके साथ संयमकी वृत्ति उत्पन्न होती है। व्रत-पालनकी नियमितता आत्मज्ञान प्राप्त करनेका सरल मार्ग है।

मनुष्यके जीवनमें आत्मरक्षावृत्तिसे लेकर समाजवृत्तितक जो मर्यादाएँ निश्चित हैं, उन्हींके भीतर रहकर ही आत्मविकास करनेमें सुगमता होती है। व्यक्तिका निजी स्वार्थ भी इसीमें सुरक्षित है कि सबके लिये समानव्रतका पालन करे। दूसरोंको धोखेमें डालकर आत्मकल्याणका मार्ग प्राप्त नहीं किया जा सकता। साथ-साथ चलकर लक्ष्यतक पहुँचनेमें जो सुगमता और आनन्द है, वह अकेले चलनेमें नहीं। अनुशासन और नियमपूर्वक चलते रहनेसे समाजमें व्यक्तिके हितोंकी रक्षा हो जाती है एवं दूसरोंकी उन्नतिका मार्ग अवरुद्ध भी नहीं होता।

सृष्टिका संचालन नियमपूर्वक चल रहा है। सूर्य अपने निर्धारित नियमके अनुसार चलते रहते हैं। चन्द्रमाकी कलाओंका घटना-बढ़ना सदैव क्रमसे होता रहता है। सारे-के-सारे ग्रह-नक्षत्र अपने निर्धारित पथपर ही चलते रहते हैं। इसीसे सारी दुनिया ठीकसे चल रही है। अग्नि, वायु, समुद्र, पृथ्वी आदि अपने-अपने व्रतके पालनमें तत्पर हैं। कदाचित् नियमोंकी अवज्ञा करना उन्होंने शुरू कर दिया होता तो सृष्टि-संचालन-कार्य कभीका रुक गया होता। अपने कर्तव्यका अविचलभावसे पालन करनेके कारण ही देवशक्तियाँ अमृतभोजी कहलाती हैं। इसी प्रकार व्रत-नियमोंका पालन करते हुए मानव भी अपना लौकिक और पारलौकिक जीवन सुखी एवं समुन्नत बना सकता है।

ऊँचे उठनेकी आकाङ्क्षा मनुष्यकी आध्यात्मिक प्रक्रिया है। पूर्णता प्राप्त करनेकी कामना मनुष्यका प्राकृतिक गुण है, किंतु हम जीवनको अस्त-व्यस्त बनाकर लक्ष्यविमुख हो जाते हैं। प्रत्येक कार्यका आरम्भ छोटे स्तरसे होता है, जिस प्रकार विद्यार्थी छोटी कक्षासे उत्तरोत्तर बड़ी कक्षामें प्रविष्ट होते हैं और लघुतासे श्रेष्ठताकी ओर अग्रसर होते हैं। ठीक उसी प्रकार आत्मज्ञानके महान् लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये प्रारम्भिक कक्षा व्रतपालन ही है। इससे हम अपने जीवनको सार्थक बना सकते हैं। व्रताचरणसे मानव महान् बनता है।

[प्रेषक—श्रीकन्हैयालालजी पाण्डेय 'रसेश']

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

व्रतसे व्यक्तिमें संकल्प जगता है, संकल्पसे लक्ष्यकी ओर बढ़नेकी कुशलता प्राप्त होती है, कुशलतासे लक्ष्यके प्रति श्रद्धा बढ़ती है और श्रद्धासे सत्य प्राप्त हो जाता है। सत्यको प्राप्त करनेका तात्पर्य है परम प्रभुको प्राप्त करना। परमात्मप्रभु सत्यस्वरूप हैं, वे सत्-चित्-आनन्दघन हैं।

सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, संयम, नियम, अस्तेय एवं अपरिग्रह आदि कल्याणकारी साधन भी व्रतोंके ही अङ्ग हैं। इन्हें मानसव्रत कहा गया है। व्रतोपवासोंके पालनके नियमोंसे न केवल देहशुद्धि एवं भावशुद्धि होती है, अपितु अन्त:करण भी निर्मल बनता है। व्रतकर्ताको केवल उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवनकी ही प्राप्ति नहीं होती, बल्कि सद्बुद्धि एवं सद्विचारोंकी भी प्राप्ति होती है, साथ ही उसमें भगवत्प्राप्तिकी योग्यता भी आ जाती है।

मनुष्यसे जाने-अनजाने अनेक पापरूप निन्दित कर्म भी बन ही जाते हैं, जिनकी शुद्धिके लिये शास्त्रोंने प्रायश्चित्तरूप व्रतोंका विधान बताया है। अत: व्रत जहाँ पापोंके विनाशमें हेतु हैं, वहीं पुण्यजनकतामें भी निमित्त बनते हैं।

भारतमें व्रतोंके साथ ही उत्सवोंकी भी सुदीर्घ परम्परा है। भगवान्के प्राकट्य-महोत्सवोंके साथ ही विशेष व्रत-पर्वोंपर भी अनेक उत्सव आयोजित होते रहते हैं। देवमन्दिरोंमें तो भगवद्विग्रहोंकी लीलामय झाँकीके रूपमें नित्यप्रति कोई-न-कोई उत्सव होता ही रहता है। ये उत्सव जहाँ उल्लास, आनन्द एवं भगवत्प्रीतिके विधायक हैं, वहीं ये जीवनको सुखमय, शान्तिमय तथा सौहार्दमय बनानेकी प्रेरणा भी प्रदान करते हैं। इनसे मानवका अधिक-से-अधिक समय भगवान्के कार्योंको सम्पन्न करनेमें ही बीतता है। इसीलिये भगवत्सम्बन्धी उत्सवोंके सम्पादनको श्रेष्ठ सौभाग्य माना जाता है।

प्रसन्नताकी बात है कि पाठकोंकी सेवामें हम इस वर्ष **'कल्याण'** के विशेषाङ्कके रूपमें **'व्रतपर्वोत्सव-अङ्क'** प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसके स्वाध्याय और पठन-पाठनसे भारतीय संस्कृतिके पर्व, उत्सव एवं व्रतोंके रहस्य और उनके गुणोंको समझकर व्रतपर्वोत्सवोंके अवसरपर हम अपने कर्तव्याकर्तव्यका निर्णय कर सकें तथा धर्माचरणमें संलग्न हो कल्याणके भागी बन सकें।

भारतीय सनातन संस्कृतिमें पर्व, उत्सव एवं व्रतोंकी विशेष प्रतिष्ठा है। भारत सदासे धर्मप्राण देश रहा है और यहाँका अध्यात्मदर्शन संयम-नियम, व्रतपालन एवं धर्माचरणपर ही आश्रित है। प्राचीन कालसे ही भारतीय जनमानसकी दैनिकचर्यामें इन व्रतपर्वोत्सवोंका मुख्य विधान रहा है। भारतका आर्ष वाङ्मय यही संदेश प्रसारित करता है कि जैसे भी और जितनी भी जल्दी बन पड़े भगवान्की ओर हमें उन्मुख हो जाना चाहिये तथा उनसे अपना सम्बन्ध जोड़ लेना चाहिये। अत: दैनन्दिनचर्याके नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य कर्मोंमें प्रभुका सतत सांनिध्य प्राप्त करनेके लिये जीवन व्रतपर्वोत्सवोंसे सम्पन्न होना आवश्यक है।

यद्यपि विश्वके अन्य धर्मोंमें भी व्रतपर्वोत्सवोंको मनानेकी प्रवृत्ति दिखती है, किंतु यह भारतीय संस्कृतिकी ही विशेषता है कि यहाँ कोई दिन ऐसा नहीं है जो पर्व न हो तथा कोई तिथि ऐसी नहीं है जिसमें व्रत-उपवास न होता हो।

वास्तवमें 'व्रत' का अर्थ भूखे रहना नहीं होता, आहारपर संयम करना होता है। इस संयमसे शरीर हलका रहता है तथा भजन-चिन्तनमें सुविधा होती है। आहार-संयमके द्वारा केवल जिह्वापर ही नहीं, अन्य इन्द्रियों (नासिका, नेत्र, कर्ण तथा त्वचा)-पर भी पूर्ण संयम आवश्यक है।

व्रतपालनसे आत्मविश्वासके साथ संयमकी वृत्ति उत्पन्न होती है। व्रतोंके पालनकी नियमितता आत्मज्ञान प्राप्त करनेका सरल साधन है।

सृष्टिका संचालन नियमपूर्वक चल रहा है। सूर्य अपने निर्धारित नियमके अनुसार चलते रहते हैं। चन्द्रमाकी

कलाओंका घटना-बढ़ना सदैव क्रमसे होता रहता है। सारे-के-सारे ग्रह-नक्षत्र अपने निर्धारित पथपर चलते रहते हैं। इसीसे सारा संसार ठीकसे चल रहा है। अग्नि, वायु, समुद्र, पृथ्वी आदि अपने-अपने व्रतके पालनमें तत्पर हैं। कदाचित् नियमोंकी अवज्ञा करना उन्होंने शुरू कर दिया होता तो सृष्टि-संचालन-कार्य कभीका रुक गया होता। अपने कर्तव्यका अविचल भावसे पालन करनेके कारण ही देवशक्तियाँ सार्थक होती हैं। इसी प्रकार व्रत-नियमोंका पालन करते हुए मानव भी अपना लौकिक और पारलौकिक जीवन सुखी एवं समुन्नत बना सकता है।

ऊँचे उठनेकी आकाङ्क्षा मनुष्यकी आध्यात्मिक प्रक्रिया है। पूर्णता प्राप्त करनेकी कामना मनुष्यका प्राकृतिक गुण है, किंतु हम जीवनको अस्त-व्यस्त बनाकर लक्ष्यविमुख हो जाते हैं। प्रत्येक कार्यका आरम्भ छोटे स्तरसे होता है, जिस प्रकार विद्यार्थी छोटी कक्षासे उत्तरोत्तर बड़ी कक्षामें प्रविष्ट होते जाते हैं और लघुतासे श्रेष्ठताकी ओर अग्रसर होते हैं, ठीक उसी प्रकार आत्मज्ञानके महान् लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये प्रारम्भिक कक्षा व्रतपालन ही है। इसीसे हम अपने जीवनको सार्थक बना सकते हैं।

व्रतपर्वोत्सवके मुख्य कृत्य हैं—स्नान, पूजन, जप, तप, दान, हवन तथा भगवद्भजन आदि। इनमेंसे प्रत्येक कर्म बाह्यवृत्तिको अन्तर्मुख करनेकी प्रेरणा देता है, उसमें सात्त्विक भावकी प्रतिष्ठा करता है और उसे त्याग एवं अनासक्तिका पाठ पढ़ाता है—'**यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्**' (गीता १८।५)। अतः आत्मकल्याणकी दृष्टिसे व्रतपर्वोत्सवोंका बहुत अधिक महत्त्व है और इनके विषयमें जानकारी रखने तथा इनके सम्यक् परिपालनकी विशेष आवश्यकता है। आजके इस विषम वातावरणमें तो इनका यथाविधि अनुपालन और भी आवश्यक हो गया है।

इन सब दृष्टियोंसे इस वर्ष यह विचार आया कि भारतीय सनातन संस्कृतिके व्रत, पर्व और उत्सवोंका संकलन '**व्रतपर्वोत्सव**' विशेषाङ्क के रूपमें प्रकाशित किया जाय। इस विशेषाङ्कमें पर्व, त्योहार, उत्सव तथा व्रत-तत्त्वमीमांसा, व्रतोंका वास्तविक अर्थ, विविध पर्वो तथा उत्सवोंका स्वरूप, भारतके विभिन्न प्रदेशों तथा तीर्थोंमें पर्व-त्योहारकी परम्परा तथा विविध अञ्चलोंमें मनाये जानेवाले धार्मिक मेलोंका स्वरूप, भगवदवतारोंकी प्राकट्यतिथियाँ (जयन्तियाँ), उनमें पड़नेवाले व्रतोत्सव एवं उनके आख्यान, पुरुषोत्तममासमें स्नान, दान, व्रत, महोत्सवोंकी महिमा और उनकी कथाएँ, चैत्र, वैशाखादि द्वादश मासोंमें पड़नेवाले मुख्य-मुख्य त्योहार, पर्व, उत्सव एवं व्रत—इन व्रतों, उत्सवोंका शास्त्रीय विधान, व्रतोंके कायिक एवं वाचिक भेद तथा सत्य, अहिंसा, संयम, नियम आदि मानसव्रतोंकी पालनीय विधि और इनसे सम्बद्ध पौराणिक आख्यान, प्रायश्चित्त आदिसे सम्बद्ध व्रत-विधान, व्रतोपवाससे स्वास्थ्यलाभकी प्रक्रिया, नारियोंद्वारा पालनीय पातिव्रत्य आदि व्रतोंका निरूपण, तिथि-वार तथा संक्रान्तियोंमें पड़नेवाले व्रतोत्सव, उनके आख्यान, व्रतकर्ताके पालनीय नियम तथा व्रतपर्वोत्सवोंसे प्राप्त होनेवाले आध्यात्मिक लाभोंका विवेचन आदि विषयोंसे सम्बद्ध तात्त्विक सामग्री तथा इनसे सम्बन्धित कथाओंको संकलित कर सरल एवं सुगम रूपसे प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है, जिससे सर्वसाधारण व्रतपर्वोत्सवकी सनातन कल्याणकारी परम्परासे परिचित हो सकें और इसका अनुगमन कर कल्याणके भागी बनें।

इस वर्ष 'विशेषाङ्क' के लिये लेख तो बहुत आये, परंतु हम जिस रूपमें विशेषाङ्कका समायोजन करना चाहते थे, उस प्रकारकी सामग्री अत्यल्प मात्रामें ही प्राप्त हुई, जिसके कारण यथासाध्य अधिकांश सामग्री यहाँ विभागमें तैयार करनी पड़ी। विशेषाङ्ककी पृष्ठ-संख्या सीमित होनेके कारण '**व्रतपर्वोत्सव-अङ्क**' की सम्पूर्ण सामग्री विशेषाङ्कमें समाहित कर पाना सम्भव न हो सका। यद्यपि इस अङ्कके साथ दो मासके 'परिशिष्टाङ्क' भी प्रकाशित किये जा रहे हैं, जिसमें बची सामग्रीके कुछ अंशोंका समायोजन करनेका प्रयत्न किया गया है, फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण सामग्रियाँ तथा माननीय विद्वान् लेखकोंके विशेषाङ्कमें प्रकाशनके लिये स्वीकृत लेख नहीं दिये जा सके, जिसके लिये हमें अत्यधिक खेद है। यद्यपि उनमेंसे कुछ सामग्री आगेके साधारण अङ्कोंमें देनेका अवश्य प्रयत्न करेंगे, परंतु विशेष कारणोंसे यदि कुछ लेख प्रकाशित न हो सकें तो विद्वान्

लेखक हमारी विवशताको ध्यानमें रखकर हमें अवश्य क्षमा करनेकी कृपा करेंगे।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्रहृदय संत-महात्माओं, आदरणीय विद्वान् लेखक महानुभावोंके श्रीचरणोंमें प्रणाम करते हैं, जिन्होंने विशेषाङ्ककी पूर्णतामें किञ्चित् भी योगदान किया है। सद्विचारोंके प्रचार-प्रसारमें वे ही निमित्त हैं; क्योंकि उन्हींके सद्भावपूर्ण तथा उच्च विचारयुक्त भावनाओंसे 'कल्याण' को सदा शक्तिस्रोत प्राप्त होता रहता है।

हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहभरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। हम अपनी त्रुटियों और व्यवहार-दोषके लिये उन सबसे क्षमाप्रार्थी हैं।

'व्रतपर्वोत्सव-अङ्क' के सम्पादनमें जिन संतों और विद्वान् लेखकोंसे सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें हम अपने मानस-पटलसे विस्मृत नहीं कर सकते। सर्वप्रथम मैं वाराणसीके समादरणीय पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्रीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करता हूँ, जो निरन्तर प्रेरणाप्रद लेख एवं परामर्श प्रदान कर निष्कामभावसे अपनी सेवाएँ परमात्मप्रभुके श्रीचरणोंमें समर्पित करते रहते हैं। 'गोधन'-के सम्पादक श्रीशिवकुमारजी गोयलके भी हम आभारी हैं, जो विशेषाङ्कसे सम्बन्धित कई लेख, घटनाएँ तथा अपने पूज्य पिता श्रीरामशरणदासजीके संग्रहसे प्राप्त कई दुर्लभ सामग्रियोंको उपलब्ध कराते रहते हैं। मैं अपने छोटे भाई प्रेमप्रकाश लक्कड़को भी साधुवाद देता हूँ, जो हमारे सम्पादनकार्यमें सतत सहयोग प्रदान करते हैं। डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता, डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी तथा श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन आदि महानुभावोंके प्रति हम आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने **'व्रतपर्वोत्सव'** पर विशिष्ट सामग्री उपलब्ध कराकर अपना सहयोग प्रदान किया।

इस अङ्कके सम्पादन, संशोधन तथा चित्र-निर्माण आदिमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहयोग मिला है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

'कल्याण' का कार्य भगवान्‌का कार्य है। अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं। हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। इस बार **'व्रतपर्वोत्सव-अङ्क'** के सम्पादन-कार्यके क्रममें भारतीय उत्सव-त्योहारों, व्रतों एवं पर्वोंका अन्वेषण, चिन्तन-मनन और स्वाध्यायका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा, यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी बात थी। हमें आशा है इस 'विशेषाङ्क' के पठन-पाठनसे हमारे सहृदय प्रेमी पाठकोंको भी भारतीय सनातन संस्कृतिके व्रतपर्वोत्सवोंकी जानकारी समग्ररूपसे प्राप्त हो सकेगी।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये पुनः क्षमा-प्रार्थना करते हुए दीनवत्सल अकारण करुणावरुणालय व्रतेश्वर परमात्मप्रभुके श्रीचरणोंमें प्रणतिपूर्वक निवेदन करते हैं कि इस संसारके सभी प्राणी सुखी हों, सम्पूर्ण व्याधियोंसे मुक्त हों, सम्पूर्ण जगत्‌का कल्याण हो, किसी भी प्राणीको किसी भी प्रकारका कोई कष्ट और दुःख न हो—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

—राधेश्याम खेमका

सम्पादक

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकोंका सूचीपत्र

दिसम्बर २००३

कोड — मूल्य

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-तत्त्व-विवेचनी—(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका) २५१५ प्रश्न और उत्तर- रूपमें विवेचनात्मक हिन्दी टीका, सचित्र, सजिल्द आकर्षक

- ■ 1 बृहदाकार १२०
- ■ 2 ,, ग्रन्थाकार (विशिष्ट संस्करण) ७०
- ■ 3 ,, ,, साधारण संस्करण ४५

[बँगला, तमिल, ओडिआ, कन्नड़, अंग्रेजी, तेलुगु, गुजराती, मराठी भी]

गीता-साधक-संजीवनी—(टीकाकार—स्वामी श्रीरामसुखदासजी) गीताके मर्मको समझनेहेतु व्याख्यात्मक शैली एवं सरल, सुबोध भाषामें हिन्दी टीका, सचित्र, सजिल्द

- ■ 5 बृहदाकार परिशिष्टसहित १६०
- ■ 6 ,, ग्रन्थाकार परिशिष्टसहित १००

[मराठी, तमिल (दो खण्डोंमें), गुजराती, अंग्रेजी (दो खण्डोंमें), कन्नड़ (दो खण्डोंमें), बँगला, ओडिआ भी]

- ■1317 **गीता पॉकेट साइज**—(साधक-संजीवनीके आधारपर अन्वय और पदच्छेदसहित) १२

गीता-दर्पण—(स्वामी रामसुखदासजीद्वारा) गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश, गीता-व्याकरण और छन्द-सम्बन्धी गूढ़ विवेचन

- ■ 8 सचित्र, सजिल्द ३५ [मराठी, बँगला, गुजराती, ओडिआ भी]
- ■ 784 **ज्ञानेश्वरी गूढ़ार्थ-दीपिका** (मराठी) १३०
- ■ 748 ,, मूल गुटका (मराठी) २५
- ■ 859 ,, मूल मझला (मराठी) ३५
- ■ 10 **गीता-शांकर-भाष्य**— ६०
- ■ 581 **गीता-रामानुज-भाष्य**— ४०
- ■ 11 **गीता-चिन्तन**—(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीता-विषयक लेखों, विचारों, पत्रों आदिका संग्रह) ३५

गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका, टिप्पणी प्रधान

- ■ 17 लेखसहित, सचित्र, सजिल्द [गुजराती, बँगला, मराठी, कन्नड़, तेलुगु, तमिल भी] २२
- ■ 16 **गीता**—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्य, सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें (मराठीमें भी) २५
- ■ 18 ,, भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान विषय, मोटा टाइप [ओडिआ, गुजराती, मराठी भी] १३
- ■ 502 **गीता**- ,, ,, (सजि०) २० [तेलुगु, ओडिआ, कन्नड़, तमिल भी]
- ■ 19 **गीता**—केवल भाषा (तेलुगु, उर्दू, तमिलमें भी) ७
- ■ 750 ,, भाषा पाकेट साइज (हिन्दी) ४
- ■ 20 ,, —भाषा-टीका पॉकेट साइज (हिन्दी) ५ [अंग्रेजी, मराठी, बँगला, असमिया, ओडिआ, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु भी]
- ■ 633 ,, —भाषा-टीका पॉकेट साइज सजिल्द १० [गुजराती, बँगला, अंग्रेजी भी]
- ■ 21 **श्रीपञ्चरत्नगीता**—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष (मोटे अक्षरोंमें) [ओडिआ भी] १५
- ■ 22 **गीता**—मूल, मोटे अक्षरोंवाली ६
- ◘ 23 **गीता**—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित ३ [कन्नड़, तेलुगु, तमिल, मलयालम, ओडिआ भी]
- ◘ 488 **नित्यस्तुतिः**—गीता मूल, विष्णुसहस्रनामसहित ५
- ◘ 700 **गीता**—छोटी साइज मूल (ओडिआ, बंगला भी) २
- ◘1392 **गीता ताबीजी** (सजिल्द) (बंगला भी) ४
- ◘ 566 **गीता**—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (१०० प्रति एक साथ) .२५
- ▲ 289 **गीता-निबन्धावली** २
- ▲ 297 **गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप** १
- ▲ 388 **गीता माधुर्य**-सरल प्रश्नोत्तर-शैलीमें (हिन्दी) ८ [तमिल, मराठी, गुजराती, उर्दू, तेलुगु, बँगला, असमिया, कन्नड़, ओडिआ, अंग्रेजी, संस्कृत भी]
- ◘1223 **गीता रोमन मूल श्लोक एवं अंग्रेजी अनुवाद** १०
- ◘1242 **पाण्डवगीता एवं हंसगीता** ३
- ◘1431 **गीता-दैनन्दिनी** (२००४) पुस्तकाकार विशिष्ट संस्करण [बंगला भी] ४५
- ◘ 503 **गीता-दैनन्दिनी** (२००४) रोमन पुस्तकाकार प्लास्टिक जिल्द ३०
- ◘ 506 **गीता-दैनन्दिनी** (२००४)—पाकेट साइज डीलक्स २०
- ◘ 464 **गीता-ज्ञान-प्रवेशिका**-स्वामी रामसुखदास १२

रामायण

- ◘1389 **श्रीरामचरितमानस**-बृहदाकार (राजसंस्करण) ३५०
- ◘ 80 **श्रीरामचरितमानस**-बृहदाकार २५०
- ◘1095 ,, ग्रन्थाकार (राजसंस्करण) १९०
- ◘ 81 ,, ,, सचित्र, सटीक मोटा टाइप, १३० [ओडिआ, बँगला, तेलुगु, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी भी]
- ◘1402 ,, ,, सटीक, ग्रंथाकार (सामान्य) ९५
- ◘ 82 ,, ,, मझला साइज, सटीक सजिल्द ६५ [गुजराती, अंग्रेजी भी]
- ◘1318 **श्रीरामचरितमानस रोमन एवं अंग्रेजी अनुवादसहित** २००
- ◘ 456 ,, ,,अंग्रेजी अनुवादसहित १००
- ◘ 786 ,, ,,मझला ,, ,, ७०
- ◘1436 ,, ,,मूलपाठ बृहदाकार १४०
- ◘ 83 ,, ,,मूलपाठ, ग्रंथाकार ६५ [गुजराती, ओडिआ भी]
- ◘ 84 ,, ,,मूल, मझला साइज [गुजराती भी] ४०
- ◘ 85 ,, ,,मूल, गुटका [गुजराती भी] २५
- ◘1282 **श्रीरामचरितमानस** -मूल मझला डीलक्स ६० (सचित्र, आरती-संग्रह उपहार-स्वरूप साथमें)

[श्रीरामचरितमानस-अलग-अलग काण्ड (सटीक)]

- ◘ 94 ,, ,,बालकाण्ड १८
- ◘ 95 ,, ,,अयोध्याकाण्ड १८
- ◘1349 **श्रीरामचरितमानस-सुन्दरकाण्ड सटीक** मोटा टाइप (लाल अक्षरोंमें) (श्रीहनुमानचालीसासहित) १५
- ◘ 98 ,, ,, -सुन्दरकाण्ड [कन्नड़, तेलुगु, बँगला भी] ५
- ◘101 ,, ,, -लंकाकाण्ड ९
- ◘ 102 **श्रीरामचरितमानस**--उत्तरकाण्ड ८
- ◘ 141 ,, ,, अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड ९
- ◘ 830 ,, ,, सुन्दरकाण्ड मूल ग्रन्थाकार, मोटा (रंगीन) १२
- ◘ 99 ,, ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, गुटका [गुजराती भी] ३
- ◘ 100 ,, ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, मोटा टाइप ५ [गुजराती, ओडिआ भी]
- ◘1378 ,, ,, सुन्दरकाण्ड मूल मोटा टाइप (लाल रंगमें) ६
- ◘ 858 ,, ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, लघु आकार २ [गुजराती भी]
- ◘1376 **मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका** (श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार-प० प० प्रज्ञानानन्द सरस्वती (सातों खण्ड) ७६०
- ◘1192 ,, बालकाण्ड (खण्ड-१) दोहा ४३ (क) तक ९०
- ◘1193 ,, बालकाण्ड (खण्ड-२) दोहा ४३ (ख) से १८८।६ तक १००
- ◘1194 ,, बालकाण्ड (खण्ड-३) दोहा १८८।७ से काण्डसमाप्तितक ११०
- ◘1195 ,, अयोध्याकाण्ड (खण्ड-४) दोहा ३२६ तक १५०
- ◘1196 ,, अरण्यकाण्डसे सुन्दरकाण्ड (खण्ड-५) (दोहा ६०) काण्डसमाप्तितक ९०
- ◘1197 ,,लंकाकाण्डसे उत्तरकाण्ड (खण्ड-६) (दोहा १३०) समाप्तितक १२०
- ◘1188 ,, (प्रस्तावना खण्ड) १००
- ◘ 86 **मानसपीयूष**-(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड) १०५० (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)
- ◘1291 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण कथा-सुधा-सागर ८५
- ◘ 75, 76 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट २२०
- ◘1337, 1338 ,, ,, भाषा (मोटा टाइप) दो खण्डोंमें सेट २४०
- ◘ 77 ,, ,, केवल भाषा १२०
- ◘ 583 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—(मूलमात्रम्) ९०
- ◘ 78 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-सुन्दरकाण्ड, मूलमात्रम् १५
- ◘ 452, 453 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (अंग्रेजी अनुवादसहित दो खण्डोंमें सेट) २५०
- ◘1002 सं० वाल्मीकीय रामायणाङ्क ६५
- ◘ 74 अध्यात्मरामायण—सटीक [तमिल, तेलुगु भी] ६० [गुजराती भी]
- ◘ 223 मूल रामायण २
- ◘ 460 रामाश्वमेध १०
- ▲ 401 मानसमें नाम-वन्दना ८
- ◘ 103 मानस-रहस्य ३५
- ◘ 104 मानस-शंका-समाधान ११

- ☞ भारतमें डाक खर्च, पैकिंग तथा फारवर्डिंगकी देय राशिः—२ रुपया-प्रत्येक १० रु० या उसके अंशके मूल्यकी पुस्तकोंपर। [पैकेटका अधिकतम वजन ५ किलो (अनुमानित पुस्तक मूल्य रु० २५०)] —रजिस्ट्री / वी० पी० पी० के लिये २० रु० प्रति पैकेट अतिरिक्त।
- ☞ रंगीन चित्रोंपर ३५ रु० प्रति पैकेट स्पेशल पैकिंग चार्ज अतिरिक्त।
- ☞ रु० ५००/-से अधिककी पुस्तकोंपर ५% पैकिंग, हैण्डलिंग तथा वास्तविक डाकव्यय देय होगा।
- ☞ पुस्तकोंके मूल्य एवं डाक दरमें परिवर्तन होनेपर परिवर्तित मूल्य / डाकदर देय होगा।
- ☞ पुस्तक-विक्रेताओं एवं विदेशोंमें निर्यातके अलग नियम हैं।

सम्पर्क करें—
व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

कोड		मूल्य
■ 572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	१००
■ 517	गर्ग-संहिता-[भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन]	८०
■ 1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	६०
■ 1362	अग्निपुराण	११०
■ 1432	वामनपुराण	७५
■ 657	श्रीगणेश-अङ्क	७५
■ 42	हनुमान-अङ्क—	७०
■ 1361	सं० श्रीवराहपुराण	६०
■ 791	सूर्याङ्क	६०
■ 584	सं० भविष्यपुराणाङ्क	९०
■ 586	शिवोपासनाङ्क	७५
■ 628	रामभक्ति-अङ्क	६५
■ 653	गोसेवा-अङ्क	७५
■ 1132	धर्मशास्त्राङ्क	
■ 1131	कूर्मपुराणाङ्क	
■ 448	भगवल्लीला-अङ्क	६५
■ 1044	वेद-कथाङ्क	
■ 1189	सं० गरुडपुराणाङ्क	९०
■ 1377	आरोग्य-अङ्क	८०
■ 1379	नीतिसार-अङ्क (मासिक अङ्कोंके साथ)	१२०
■ 1472	नीतिसार-अङ्क (बिना मासिक अङ्कोंके)	८०
■ 1467	भगवत्प्रेम-अङ्क (मासिक अङ्कोंके साथ)	१००
■	कल्याण-मासिक-अङ्क	६

Annual Issues of Kalyan-Kalpataru at Reduced Rates

Code	Title	Price
■ 1395	Woman No.	40
■ 1396	Rama No.	40
■ 1397	Manusmriti No.	40
■ 1398	Hindu Sanskriti No.	40

अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन

संस्कृत

कोड		मूल्य
▲ 679	गीतामाधुर्य	६

बँगला

कोड		मूल्य
■ 954	श्रीरामचरितमानस-ग्रन्थाकार	१२०
■ 763	गीता-साधक-संजीवनी—परिशिष्टसहित	१००
■ 1118	गीतातत्त्व-विवेचनी—	६५
■ 556	गीता-दर्पण—	४०
■ 013	गीता-पदच्छेद—	२५
■ 957	गीता-ताबीजी—	३
■ 1444	गीता-ताबीजी-सजिल्द	४
■ 1455	गीता-लघुआकार	२
■ 1322	दुर्गासप्तशती सटीक	१५
■ 1460	विवेकचूड़ामणि	१०
■ 1075	ॐ नमः शिवाय	१५
■ 1043	नवदुर्गा	१०
■ 1439	दशमहाविद्या	१०
■ 1292	दशावतार	१०
■ 1096	कन्हैया	१०
■ 1097	गोपाल	१०
■ 1098	मोहन	१०
■ 1123	श्रीकृष्ण	१०
■ 1393	गीता भाषा टीका (पॉकेट साइज) सजि.	१०
■ 496	गीता भाषा टीका (पॉकेट साइज)	६
■ 1454	स्तोत्ररत्नावली	१६
■ 275	कल्याण-प्राप्तिके उपाय	१०
▲ 1305	प्रश्नोत्तरमणिमाला	८
▲ 395	गीतामाधुर्य	५
▲ 1102	अमृत-बिन्दु	६
■ 1356	सुन्दरकाण्ड—सटीक	४
▲ 816	कल्याणकारी प्रवचन	४
▲ 276	परमार्थ-पत्रावली—भाग-१	५
▲ 1306	कर्तव्य साधनासे भगवत्प्राप्ति	४
▲ 1119	ईश्वर और धर्म क्यों?	९
▲ 1456	भगवत्प्राप्तिका पथ व पाथेय	७
▲ 1452	आदर्श कहानियाँ	६
▲ 1453	प्रेरक कहानियाँ	४
▲ 1469	सब साधनोंका सार	४
▲ 1478	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१०
▲ 1359	जिन खोजा तिन पाइया	४
▲ 1115	तत्त्वज्ञान कैसे हो?	४
▲ 1303	साधकोंके प्रति	४
▲ 1358	कर्मरहस्य	४
▲ 1122	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	३
▲ 625	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲ 428	गृहस्थमें कैसे रहें?	४
▲ 903	सहज साधना	३
▲ 1368	साधना	३
▲ 312	आदर्श नारी सुशीला	३
▲ 955	तात्त्विक प्रवचन	४
■ 1103	मूल रामायण एवं रामरक्षास्तोत्र	२
▲ 449	दुर्गतिसे बचो गुरुतत्त्व	२
▲ 956	साधन और साध्य	३
▲ 330	नारद एवं शांडिल्य-भक्ति-सूत्र	२
▲ 762	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 848	आनन्दकी लहरें	१.५०
■ 626	हनुमानचालीसा	२
▲ 1319	कल्याणके तीन सुगम मार्ग	१.५०
▲ 1293	शिखा धारणकी आवश्यकता और हम कहाँ जा रहे है?	१.५०
▲ 450	हम ईश्वरको क्यों मानें?	२
▲ 849	मातृशक्तिका घोर अपमान	१
▲ 451	महापापसे बचो	१
▲ 469	मूर्तिपूजा	१
▲ 1140	भगवान्‌के दर्शन प्रत्यक्ष हो सकते हैं	१.५०
▲ 296	सत्संगकी सार बातें	१
▲ 443	संतानका कर्तव्य	१

मराठी

कोड		मूल्य
■ 1314	श्रीरामचरितमानस सटीक मोटा टाइप	१२०
■ 784	ज्ञानेश्वरी गूढार्थ-दीपिका	१३०
■ 853	एकनाथी भागवत—मूल	९०
■ 7	गीता-साधक-संजीवनी टीका	१००
■ 1304	गीता-तत्त्व-विवेचनी	७०
■ 1071	श्रीनामदेवांची गाथा	६०
■ 859	ज्ञानेश्वरी—मूल मझला	३५
■ 15	गीता-माहात्म्यसहित	३०
■ 504	गीता-दर्पण	३०
■ 748	ज्ञानेश्वरी—मूल गुटका	२५
■ 14	गीता-पदच्छेद	२५
■ 1388	गीता श्लोकार्थसहित (मोटा टाइप)	१०
■ 1257	गीताश्लोकार्थसहित (पॉकेट साइज)	७
■ 1168	भक्त नरसिंह मेहता	९
▲ 429	गृहस्थमें कैसे रहें?	८
▲ 1387	प्रेममें विलक्षण एकता	८
■ 857	अष्टविनायक	६
▲ 391	गीतामाधुर्य	६
▲ 1099	अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲ 1335	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	७
▲ 1155	उद्धार कैसे हो?	४
▲ 1074	अध्यात्मिक पत्रावली	५
▲ 1275	नवधा भक्ति	५
▲ 1386	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	५
▲ 1340	अमृत बिन्दु	५
▲ 1382	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
▲ 1210	जित देखूँ तित तू	६
▲ 1330	मेरा अनुभव	८
■ 1073	भक्त चन्द्रिका	५
■ 1383	भक्तराज हनुमान्	५
▲ 886	साधकोंके प्रति	५
▲ 885	तात्त्विक प्रवचन	४
■ 1333	भगवान् श्रीकृष्ण	५
■ 1332	दत्तात्रेय-वज्रकवच	३
■ 855	हरीपाठ	३
■ 1169	चोखी कहानियाँ	४
▲ 1385	नल-दमयंती	३
▲ 1384	सती-सावित्री-कथा	२
▲ 880	साधन और साध्य	४
▲ 1006	वासुदेवः सर्वम्	३
▲ 1276	आदर्श नारी सुशीला	३
▲ 1334	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲ 899	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲ 1339	कल्याणके तीन सुगम मार्ग और सत्यकी शरणसे मुक्ति	४
▲ 1341	सहज साधना	४
▲ 802	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 882	मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲ 883	मूर्तिपूजा	२
▲ 884	सन्तानका कर्तव्य	२
▲ 1279	सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲ 901	नाम-जपकी महिमा	१.५०
▲ 900	दुर्गतिसे बचो	२
▲ 902	आहार-शुद्धि	
▲ 1170	हमारा कर्तव्य	२
▲ 881	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	५
▲ 898	भगवन्नाम	४

गुजराती

कोड		मूल्य
■ 799	श्रीरामचरितमानस ग्रन्थाकार	१३०
■ 1430	श्रीरामचरितमानस मूल, मोटा	६०
■ 1326	सं० देवीभागवत	१३०
■ 1286	संक्षिप्त शिवपुराण	११०
■ 467	गीता-साधक-संजीवनी	१००
■ 1313	गीता-तत्त्व-विवेचनी	७०
■ 785	श्रीरामचरितमानस—मझला सटीक	
■ 468	गीता-दर्पण	४५
■ 878	श्रीरामचरितमानस—मूल मझला	३५
■ 879	श्रीरामचरितमानस—मूल गुटका	२५
■ 1365	नित्यकर्म पूजाप्रकाश	३०
■ 12	गीता-पदच्छेद	२५
■ 1315	गीता—सटीक, मोटा टाइप	१५
■ 1366	दुर्गासप्तशती—सटीक	१५
■ 1227	सचित्र आरतियाँ	१०
■ 1034	गीता छोटी—सजिल्द	१०
■ 1225	मोहन— (धारावाहिक चित्रकथा)	१०
■ 1224	कन्हैया— ,,	१०
■ 1228	नवदुर्गा	१०
■ 936	गीता छोटी—सटीक	७
■ 948	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	५
■ 1085	भगवान् राम—	४
■ 950	सुन्दरकाण्ड—मूल गुटका	३
■ 1199	सुन्दरकाण्ड—मूल लघु आकार	२
■ 1226	अष्टविनायक	१०
■ 613	भक्त नरसिंह मेहता	९
▲ 1486	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१०
▲ 1164	शीघ्र कल्याणके सोपान	८
▲ 1146	श्रद्धा, विश्वास और प्रेम	८
▲ 1144	व्यवहारमें परमार्थकी कला	८
▲ 1062	नारीशिक्षा	८
▲ 1129	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	८
■ 1400	पिताकी सीख	८
■ 1425	वीर बालिकाएँ	५
▲ 1128	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श	७
▲ 1061	साधननवनीत	७
▲ 1264	मेरा अनुभव	७
▲ 1046	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	७
■ 1143	भक्त सुमन	७
■ 1142	भक्त सरोज	७
▲ 1211	जीवनका कर्तव्य	७
▲ 404	कल्याणकारी प्रवचन	७
▲ 877	अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति	७
▲ 818	उपदेशप्रद कहानियाँ	८
▲ 1265	अध्यात्मिक प्रवचन	७
▲ 1052	इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति	६
■ 934	उपयोगी कहानियाँ	६
■ 1076	आदर्श भक्त	६
■ 1084	भक्त महिलारत्न	६
■ 875	भक्त सुधाकर	६
▲ 1067	दिव्य सुखकी सरिता	६
▲ 933	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	५
▲ 1295	जित देखूँ तित तू	६
▲ 943	गृहस्थमें कैसे रहें?	६

कोड		मूल्य
▲ 932	अमूल्य समयका सदुपयोग	६
▲ 392	गीतामाधुर्य-	६
■1082	भक्त सप्तरत्न	५
■1087	प्रेमी भक्त	५
▲1077	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	५
▲ 940	अमृत-बिन्दु	५
▲ 931	उद्धार कैसे हो ?	५
▲ 894	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	५
▲ 413	तात्त्विक प्रवचन	५
■ 892	भक्त चन्द्रिका	४
■ 895	भगवान् श्रीकृष्ण	५
▲1126	साधन -पथ	४
▲ 946	सत्संगका प्रसाद	४
▲ 942	जीवनका सत्य	४
▲1145	अमरताकी ओर	४
▲1066	भगवान्से अपनापन	४
■ 806	रामभक्त हनुमान्	४
▲1086	कल्याणकारी प्रवचन [भाग-२]	४
▲1287	सत्यकी खोज	४
▲1088	एकै साधे सब सधै	४
■1399	चोखी कहानियाँ	५
▲ 889	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३
▲1141	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	३
▲ 939	मातृ-शक्तिका घोर अपमान	३
■ 890	प्रेमी भक्त उद्धव	३
▲1047	आदर्श नारी सुशीला	३
▲1059	नल-दमयन्ती	३
▲1045	बालशिक्षा	४
▲1063	सत्संगकी विलक्षणता	३
▲1064	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग	४
▲1165	सहज साधना	३
▲1151	सत्संगमुक्ताहार	३
■1401	बालप्रश्नोत्तरी	३
■ 935	संक्षिप्त रामायण (वाल्मीकीय रामायण-अन्तर्गत)	२
▲ 893	सती सावित्री	२
▲ 941	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	२
▲1177	आवश्यक शिक्षा	३
▲ 804	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲1049	आनन्दकी लहरें	१.५०
■ 947	महात्मा विदुर	
■ 937	विष्णुसहस्रनाम	१.५०
▲1058	मनको वश करनेके उपाय एवं कल्याणकारी आचरण	२
▲1050	सच्चा सुख	२
▲1060	त्यागसे भगवत्प्राप्ति और गीता पढ़नेके लाभ	२
■ 828	हनुमानचालीसा	२
▲ 844	सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1055	हमारा कर्त्तव्य एवं व्यापार सुधारकी आवश्यकता	१.५०
▲1048	संत-महिमा	२
▲1179	दुर्गतिसे बचो	१.५०
▲1178	सार-संग्रह, सत्संगके अमृत कण	१.५०
▲1152	मुक्तिमें सबका अधिकार	१.५०

कोड		मूल्य
▲1207	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.५०
▲1167	भगवत्तत्त्व	१.५०
▲1206	धर्म क्या है ? भगवान् क्या है ?	२
▲1051	भगवान्की दया	१.५०
■1198	हनुमानचालीसा—लघु आकार	१
■1229	पंचामृत	१
▲1054	प्रेमका सच्चा स्वरूप और सत्यकी शरणसे मुक्ति	१.५०
▲ 938	सर्वोच्चपदप्राप्तिके साधन	१
▲1056	चेतावनी एवं सामयिक चेतावनी	१
▲1053	अवतारका सिद्धान्त और ईश्वर दयालु एवं न्यायकारी	१.५०
▲1127	ध्यान और मानसिक पूजा	१.५०
▲1148	महापापसे बचो	१
▲1153	अलौकिक प्रेम	१.५०

तमिल

कोड		मूल्य
■1426	गीता-साधक-संजीवनी भाग-१	७५
■ 800	गीता-तत्त्व-विवेचनी	८०
■1256	अध्यात्मरामायण	६०
■ 823	गीता-पदच्छेद	२०
■ 743	गीता मूलम्	१५
▲ 389	गीतामाधुर्य	९
■ 365	गोसेवाके चमत्कार	९
■1134	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१०
▲1007	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	८
▲ 553	गृहस्थमें कैसे रहें ?	९
▲ 850	संतवाणी—(भाग १)	७
▲ 952	,, (,, २)	७
▲ 953	,, (,, ३)	७
▲1353	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1354	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	७
■ 795	गीता भाषा	६
■ 646	चोखी कहानियाँ	७
■ 608	भक्तराज हनुमान्	७
■1246	भक्तचरित्रम्	७
▲ 643	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	५
▲ 550	नाम-जपकी महिमा	१.५०
▲1289	साधन पथ	५
▲1480	भगवान्के स्वभावका रहस्य	७
▲1481	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	७
▲1482	भक्तियोगका तत्त्व	७
■ 793	गीता मूल-विष्णुसहस्रनाम	५
▲1117	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	५
▲1110	अमृत बिन्दु	६
▲ 655	एकै साधे सब सधै	५
▲1243	वास्तविक सुख	५
■ 741	महात्मा विदुर	५
▲ 536	गीता पढ़नेके लाभ, सत्यकी शरणसे मुक्ति	३
▲ 591	महापापसे बचो, संतानका कर्तव्य	३
▲ 609	सावित्री और सत्यवान्	३
▲ 644	आदर्श नारी सुशीला	३
▲ 568	शरणागति	३
▲ 805	मातृशक्तिका घोर अपमान	२
▲ 607	सबका कल्याण कैसे हो ?	२
■ 794	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	२

कोड		मूल्य
■ 127	उपयोगी कहानियाँ	
■ 600	हनुमानचालीसा	३
▲ 466	सत्संगकी सार बातें	२
▲ 499	नारद-भक्ति-सूत्र	१.५०
■ 601	भगवान् श्रीकृष्ण	७
■ 642	प्रेमी भक्त उद्धव	
■ 647	कन्हैया (धारावाहिक चित्रकथा)	१५
■ 648	श्रीकृष्ण—(,, ,,)	१५
■ 649	गोपाल—(,, ,,)	१५
■ 650	मोहन—(,, ,,)	१५
■1042	पञ्चामृत	
▲ 742	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	
▲ 423	कर्मरहस्य	४
▲ 569	मूर्तिपूजा	१.५०
▲ 551	आहारशुद्धि	२
▲ 645	नल-दमयन्ती	६
▲ 606	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२
▲ 792	आवश्यक चेतावनी	

कन्नड़

कोड		मूल्य
■1112	गीता-तत्त्व-विवेचनी	७०
■ 1369 1370	गीता-साधक-संजीवनी (दो खण्डोंमें सेट)	१२०
■ 726	गीता-पदच्छेद	२५
■ 718	गीता तात्पर्यके साथ	१५
■1375	ॐ नमः शिवाय	१५
■1357	नवदुर्गा	१०
▲1109	उपदेशप्रद कहानियाँ	९
▲ 945	साधन नवनीत	८
■ 724	उपयोगी कहानियाँ	८
▲ 833	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	७
▲ 834	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	७
■1288	गीता श्लोकार्थ	६
▲ 716	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
■ 832	सुन्दरकाण्ड (सटीक)	६
■ 840	आदर्श भक्त	७
■ 841	भक्त सप्तरत्न	६
■ 843	दुर्गासप्तशती—मूल	६
▲ 390	गीतामाधुर्य	७
▲ 720	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1374	अमूल्य समयका सदुपयोग	६
▲ 128	गृहस्थमें कैसे रहें ?	५
■ 661	गीता मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	५
■ 721	भक्त बालक	६
■ 951	भक्त चन्द्रिका	५
■ 835	श्रीरामभक्त हनुमान्	४
■ 837	विष्णुसहस्रनाम—सटीक	४
■ 842	ललितासहस्रनामस्तोत्र	४
▲ 717	सावित्री-सत्यवान् और आदर्श नारी सुशीला	४
▲ 723	नाम-जपकी महिमा और आहार शुद्धि	३
▲ 725	भगवान्की दया एवं भगवान्का हेतु रहित सौहार्द	३
▲ 722	सत्यकी शरणसे मुक्ति, गीता पढ़नेके लाभ	३
▲ 325	कर्मरहस्य	३
▲ 597	महापापसे बचो	१.५०

कोड		मूल्य
▲ 719	बालशिक्षा	३
▲ 839	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३
▲1371	शरणागति	४
■ 737	विष्णुसहस्रनाम एवं सहस्रनामावली	३
▲ 836	नल-दमयन्ती	३
▲ 838	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
■ 736	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२
■1105	श्रीवाल्मीकि रामायणम् संक्षिप्त	१.५०
■ 738	हनुमत्-स्तोत्रावली	१.५०
▲ 593	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	
▲ 598	वास्तविक सुख	
▲ 831	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३

असमिया

कोड		मूल्य
■ 714	गीता-भाषा-टीका—पॉकेट साइज	६
■1222	श्रीमद्भागवत-माहात्म्य	७
■ 825	नवदुर्गा—	५
▲ 624	गीतामाधुर्य—	५
▲1487	गृहस्थमें कैसे रहें ?	७
■1323	श्रीहनुमानचालीसा	२
▲ 703	गीता पढ़नेके लाभ	१

ओडिआ

कोड		मूल्य
■1121	गीता-साधक-संजीवनी	१००
■1100	गीता-तत्त्व-विवेचनी—ग्रन्थाकार	७०
■1463	रामचरितमानस सटीक मोटा टाइप	१३०
■1218	रामचरितमानस—मूल मोटा टाइप	७०
■1473	साधन-सुधा-सिन्धु	९०
■1298	गीता-दर्पण	३५
■ 815	गीता श्लोकार्थसहित—(सजिल्द)	१८
■1219	गीता पञ्चरत्न	१५
■1009	जय हनुमान्	१५
■1250	ॐ नमः शिवाय	१५
■1157	गीता-सटीक मोटे अक्षर (अजिल्द)	१०
■1010	अष्टविनायक	१०
■1248	मोहन	१०
■1249	कन्हैया—	१०
■1476	दुर्गासप्तशती सटीक	१८
■ 863	नवदुर्गा	१०
▲1251	भवरोगकी रामबाण दवा	९
▲1209	प्रश्नोत्तरमणिमाला	८
▲1274	परमार्थ सूत्र संग्रह	७
▲1254	साधन नवनीत	७
■1008	गीता—पॉकेट साइज	७
▲ 754	गीतामाधुर्य	६
▲1208	आदर्श कहानियाँ	६
▲1139	कल्याणकारी प्रवचन	६
■1342	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा	६
▲1205	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	७
■1204	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	५
▲1299	भगवान् और उनकी भक्ति	५
■ 854	भक्तराज हनुमान्	४

कोड		मूल्य
▲1004	तात्त्विक प्रवचन	५
▲1138	भगवान्‌से अपनापन	४
▲1187	आदर्श भ्रातृप्रेम	४
▲430	गृहस्थमें कैसे रहें ?	५
▲1321	सब जग ईश्वररूप है	५
▲1269	आवश्यक शिक्षा	५
▲865	प्रार्थना	३
▲796	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲1130	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	३
■1154	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■1200	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	३
▲1174	आदर्श नारी सुशीला	३
■541	गीता मूल विष्णुसहस्रनाम-सहित	३
▲1003	सत्संगमुक्ताहार	३
▲817	कर्मरहस्य	३
▲1078	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	३
▲1079	बालशिक्षा	४
▲1163	बालकोंके कर्तव्य	४
▲1252	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३
▲757	शरणागति	३
▲1186	श्रीभगवन्नाम	३
▲1267	सहज साधना	३
▲1005	मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲1203	नल-दमयन्ती	३
▲1186	श्रीभगवन्नाम	३
▲1253	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य	३
▲1220	सावित्री और सत्यवान्	२
▲826	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
■856	हनुमानचालीसा	२
▲798	गुरुतत्त्व	१.५०
▲797	सन्तानका कर्तव्य-	१.५०
■1036	गीता—मूल लघु आकार	२
■1070	आदित्यहृदयस्तोत्र	१.५०
■1068	गजेन्द्रमोक्ष	१.५०
■1069	नारायणकवच	१.५०
▲1089	धर्म क्या है? भगवान् क्या है?	१.५०

कोड		मूल्य
▲1039	भगवान्‌की दया एवं भगवत्कृपा	१.५०
▲1090	प्रेमका सच्चा स्वरूप (पॉकेट साइज)	१.५०
▲1091	हमारा कर्तव्य	१.५०
▲1040	सत्संगकी कुछ सार बातें	१.५०
▲1011	आनन्दकी लहरें	१.५०
▲852	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.५०
△1038	संत-महिमा	१
△1041	ब्रह्मचर्य एवं मनको वश करनेके कुछ उपाय	१.५०
△1221	आदर्श देवियाँ	३
■1201	महात्मा विदुर	३
■1202	प्रेमी भक्त उद्धव	३
■1173	भक्त चन्द्रिका	५

नेपाली

कोड		मूल्य
▲394	गीतामाधुर्य	

उर्दू

कोड		मूल्य
■1446	गीता (संस्कृतश्लोकका उर्दू अनुवाद)	८
△393	गीतामाधुर्य	८
△590	मनकी खटपट कैसे मिटे	०.८०

तेलुगु

कोड		मूल्य
■1352	रामचरितमानस सटीक—ग्रन्थाकार	१२०
■1419	रामचरितमानस केवल भाषा	७०
■1429	श्रीमद्वाल्मीकि रामायण सुन्दरकांड (तात्पर्यसहित)	७५
■1477	,, ,, (सामान्य)	५५
■1172	गीता-तत्त्व-विवेचनी	८०
■845	अध्यात्मरामायण	६०
■772	गीता-पदच्छेद-अन्वयसहित	२२
■1466	वाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड, मूल पुस्तकाकार	३०
■914	स्तोत्ररत्नावली	२०
■1026	पंच सूक्तमुलु-रुद्रमु	५
■887	जय हनुमान् पत्रिका	१५
■771	गीता तात्पर्यसहित	१५
■910	विवेकचूडामणि	१५

कोड		मूल्य
▲904	नारद-भक्तिसूत्र मुलु (प्रेमदर्शन-)	१२
■909	दुर्गासप्तशती—मूलम्	१०
■1029	भजन-संकीर्तनावली	१२
■1301	नवदुर्गा पत्रिका	१०
■1309	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१०
■1390	गीता तात्पर्य (पॉकेट साइज) (मोटा टाइप)	१०
■691	श्रीभीष्मपितामह	९
▲1028	गीता माधुर्य	८
▲915	उपदेशप्रद कहानियाँ	९
▲905	आदर्श दाम्पत्य-जीवनमु	८
■1031	गीता—छोटी पॉकेट साइज	६
■929	महाभक्तुलु	६
■919	मंचि कथलु (उपयोगी कहानियाँ)	७
▲766	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	५
▲768	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	६
△733	गृहस्थमें कैसे रहें ?	६
■908	नारायणीयम्—मूलम्	
■682	भक्तपञ्चरत्न	६
■687	आदर्श भक्त	६
■767	भक्तराज हनुमान्	५
■917	भक्त चन्द्रिका	७
■918	भक्त सप्तरत्न	५
■641	भगवान् श्रीकृष्ण	५
■663	गीता भाषा	५
■662	गीता मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	४
■753	सुन्दरकाण्ड— सटीक	४
■685	भक्त बालक	५
■692	चोखी कहानियाँ	५
▲920	परमार्थ-पत्रावली	५
■930	दत्तात्रेयवज्रकवच	३
■846	ईशावास्योपनिषद्	३
■686	प्रेमीभक्त उद्धव	४
■1023	श्रीशिवमहिम्नः-स्तोत्रम्-सटीक	३
■1025	स्तोत्रकदम्बम्	३
■674	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■675	सं० रामायणम्, रामरक्षास्तोत्रम्	३
▲906	भगन्तुडे आत्मेयुणु	३

कोड		मूल्य
■801	ललितासहस्रनाम	
■688	भक्तराज ध्रुव	
■670	विष्णुसहस्रनाम, मूल	
■732	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	
■912	रामरक्षास्तोत्र, सटीक	
■676	हनुमानचालीसा	
■677	गजेन्द्रमोक्षम्	
▲913	भगवत्प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट साधनमु-नाम स्मरणमें	१
▲923	भगवन्तु दयालु न्यायमूर्ति	१
▲760	महत्त्वपूर्ण शिक्षा	
▲761	एकै साधे सब सधै	
▲922	सर्वोत्तम साधन	
▲759	शरणागति एवं मुकुन्दमाल	
▲752	गर्भपात उचित या अनुचि फैसला आपका	
△734	आहारशुद्धि, मूर्तिपूजा	
▲664	सावित्री-सत्यवान्	
▲665	आदर्श नारी सुशीला	
▲921	नवधा भक्ति	
▲666	अमूल्य समयका सदुपयोग	
▲672	सत्यकी शरणसे मुक्ति	
▲671	नामजपकी महिमा	
▲678	सत्संगकी कुछ सार बातें	
▲731	महापापसे बचो	
▲925	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	
▲758	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	
▲916	नल-दमयन्ती	
▲689	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	
▲690	बालशिक्षा	
▲907	प्रेमभक्ति-प्रकाशिका	
▲673	भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द	
▲926	सन्तानका कर्तव्य	

मलयालम

कोड		मूल्य
■739	गीता विष्णुसहस्रनाम, मूल	
■740	विष्णुसहस्रनाम—मूल	

Our English Publications

Code	Title	Price
■ 1318	Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text, Transliteration & English Translation)	200
■ 452, 453	Śrīmad Vālmīki Rāmāyaṇa (With Sanskrit Text and English Translation) Set of 2 Volumes	250
■ 564, 565	Śrīmad Bhāgavata (With Sanskrit Text and English Translation) Set	250
■ 1080, 1081	Śrīmad Bhagavadgītā Sādhaka-Sañjīvanī (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary) Set of 2 Volumes	80
■ 457	Śrīmad Bhagavadgītā Tattva-Vivecanī (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary	60
■ 455	Bhagavadgītā (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size	5
■ 534	,, ,, (Bound)	10
■ 1223	Bhagavadgītā (Roman Gītā) (With Sanskrit Text, Transliteration and English Translation)	10
■ 456	Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text and English Translation)	100
■ 786	,, ,, ,, Medium	70
▲ 783	*Abortion Right or Wrong You Decide*	2
■ 824	Songs From Bhartṛhari	2
■ 494	The Immanence of God (By MadanMohan Malaviya)	
■ 808	NavaDurgā (Story with the Picture)	

By Jayadayal Goyandka

Code	Title	Price
▲ 477	Gems of Truth [Vol. I]	8
▲ 478	,, [Vol. II]	6
▲ 479	Sure Steps to God-Realization	12
▲ 481	Way to Divine & Bliss	5
▲ 482	What is Dharma? What is God?	1
▲ 480	Instructive Eleven Stories	4
▲ 694	Dialogue with the Lord *During Meditation*	2
▲ 1125	Five Divine Abodes	3
▲ 520	*Secret of Jñānayoga*	12
▲ 521	,, ,, Premayoga	9
▲ 522	,, ,, Karmayoga	12
▲ 523	,, ,, Bhaktiyoga	12
▲ 658	,, ,, Gītā	6
▲ 1013	Gems of Satsaṅga	1

By Hanuman Prasad Poddar

Code	Title	Price
▲ 484	Look Beyond the Veil	8
▲ 622	How to Attain Eternal Happiness?	8
▲ 483	Turn to God	8
▲ 485	Path to Divinity	7
▲ 847	Gopīs' Love for Śrī Kṛṣṇa	4
▲ 620	The Divine Name and Its Practice	3
▲ 486	Wavelets of Bliss & the Divine Message	

By Swami Ramsukhdas

Code	Title	Price
▲ 1470	For Salvation of Mankind	12
▲ 498	In Search of Supreme Abode	
▲ 619	Ease in God-Realization	4
▲ 471	Benedictory Discourses	6
▲ 473	Art of Living	4
▲ 487	Gītā Mādhurya	7
▲ 1101	The Drops of Nectar (Amṛta Bindu)	4
▲ 472	How to Lead A Household Life	4
▲ 570	Let us Know the Truth	3
▲ 638	Sahaja Sādhanā	2
▲ 634	God is Everything	4
▲ 621	Invaluable Advice	3
▲ 474	Be Good	9
▲ 497	Truthfulness of Life	2

Code	Title	Price
▲ 669	The Divine Name	
▲ 476	How to be Self-Reliant	
▲ 552	Way to Attain the Supreme Bliss	
▲ 562	*Ancient Idealism for Modernday Living*	

SPECIAL EDITIONS

Code	Title	Price
■ 1391	*The Bhagavadgītā* (Sanskrit Text and English Translation) Pocket Size	
■ 1411	Gītā Roman (Sanskri Transliteration & English Translation) Book S	
■ 1407	The Drops of Nectar (By Swami Ramsukh	
■ 1406	Gītā Mādhurya (By Swami Ramsukh	
■ 1438	*Discovery of Truth* Immortality (By Swami Ramsukh	
■ 1413	*All is God* (By Ramsukhdas)	
■ 1414	*The Story of Mīrā B* (Bankey Behari)	

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याण-पथ (आत्मोद्धारके सुमार्ग)-प अग्रसरित करनेकी प्रेरणा देना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम—भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि प्रेरणाप्रद एवं कल्याण-मार्गमें सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिग आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ा और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशि मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

१-'कल्याण' का वर्तमान वार्षिक सदस्यता-शुल्क डाक-व्ययसहित नेपाल-भूटान तथा भारतवर्षमें रु० १३ (सजिल्द विशेषाङ्कका रु० १५०) और विदेशके लिये सजिल्द विशेषाङ्कका हवाई डाक (Air mail)-से US$2 (रु० ११५०) तथा समुद्री डाक (Sea mail)-से US$13 (रु० ६००) है। समुद्री डाकसे पहुँचनेमें बहुत सम लग सकता है, अत: हवाई डाकसे ही अङ्क मँगवाना चाहिये।

२-**'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अत: ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं** वर्षके मध्यमें बननेवाले ग्राहकोंको जनवरीसे ही अङ्क दिये जाते हैं। एक वर्षसे कमके लिये ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं

३-**ग्राहकोंको वार्षिक शुल्क १५ दिसम्बरतक 'कल्याण'-कार्यालय अथवा गीताप्रेसकी पुस्तक-दूकानोंपर अवश्य भेज देना चाहिये।** जिन ग्राहक-सज्जनोंसे अग्रिम मूल्य-राशि प्राप्त नहीं होती, उन्हें विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा भेजनेक नियम है। वी०पी०पी० द्वारा 'कल्याण'-विशेषाङ्क भेजनेमें यद्यपि वी०पी०पी० डाक-शुल्कके रूपमें रु० १० ग्राहकक अधिक देना पड़ता है; तथापि अङ्क सुविधापूर्वक सुरक्षित मिल जाता है। **अत: सभी ग्राहकोंको वी०पी०पी० ठीक समयर छुड़ा लेनी चाहिये।** पाँच वर्षके लिये भी ग्राहक बनाये जाते हैं, इससे आप प्रतिवर्ष शुल्क भेजने / वी०पी० पी० छुड़ानेकं असुविधासे बच सकते हैं।

४-जनवरीके विशेषाङ्कके साथमें फरवरीका अङ्क भी प्रेषित किया जाता है। मार्चसे दिसम्बरतकके अङ्क प्रतिमास भली प्रकार जाँच करके मासके प्रथम सप्ताहतक डाकसे भेजे जाते हैं। यदि किसी मासका अङ्क २० तारीखतक न मिले तो डाक-विभागसे जाँच करनेके उपरान्त हमें सूचित करना चाहिये। खोये हुए मासिक अङ्कोंके उपलब्ध होनेकी स्थितिमें पुन: भेजनेका प्रयास किया जाता है।

५-पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम ३० दिनोंके पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। पत्रोंमें **ग्राहक-संख्या, पिनकोडसहित पुराना और नया—पूरा पता पढ़नेयोग्य सुस्पष्ट तथा सुन्दर अक्षरोंमें लिखना चाहिये।**

६-पत्र-व्यवहारमें 'ग्राहक-संख्या' न लिखे जानेपर कार्यवाही होनी कठिन है। अत: 'ग्राहक-संख्या' प्रत्येक पत्रमें अवश्य लिखी जानी चाहिये।

७-जनवरीका विशेषाङ्क ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। वर्षपर्यन्त मासिक अङ्क ग्राहकोंको उसी शुल्क-राशिमें भेजे जाते हैं।

८-'कल्याण' में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी स्थितिमें प्रकाशित नहीं किये जाते।

'कल्याण' के पञ्चवर्षीय ग्राहक

पाँच वर्षके लिये सदस्यता-शुल्क अजिल्द विशेषाङ्कके लिये ६५० रुपये, सजिल्द विशेषाङ्कके लिये ७५० रुपये, विदेश (Foreign)-के लिये सजिल्द विशेषाङ्कका हवाई डाक (Air mail) -से US $ 125 (रु० ५,७५०), समुद्री डाक (Sea mail) -से US $ 65 (रु० ३,०००) है। फर्म, प्रतिष्ठान आदि भी ग्राहक बन सकते हैं। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण' का प्रकाशन बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों उतनेमें ही संतोष करना चाहिये।

☞ विदेश हेतु निर्धारित सदस्यता शुल्कके साथ बैंक कलेक्शन चार्ज US $ 6 अतिरिक्त भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)